	विषय					মূম	विषय पू
गर्मवतीको	आवर	यक वि	स् गिये		***	990	नळका पानी १७
बालरक्षण		***	•••	***	•••	920	ताखाबका पानी १७
नास			•••	***	•••	126	ऋतुके अनुसार पानीका उपयोग १७
स्नान	•••	***			•••	920	खराव पानीसे होनेवाळे उपद्रव १७
वस्र	•••	***	•••	***	***	935	ज्वर १७
ध्य पिलान	П		•••		•••	939	दस्त वा मरोड़ा १७
दूष पिलाने	का स	मय			•••	933	अजीर्ण १८
वूष पिलान	के सम	य हि	দাজর	•••	•••	933	कृमि वा वात १८०
पूरा दूध न				ाय	•••	933	नहरुवा १८०
धात्रीके छ			•••	•••		138	स्वचा चमडीके रोग १८०
खराक			•••	•••	•••	938	विष्विका हैजा १८०
हवा	•••		•••	•••	•••	930	अश्मरी पश्री १८०
निद्रा		***			•••	930	पानीकी परीक्षा तथा खच्छ करनेकी युक्ति १८०
कसरत	•••		•••		***	135	पानीका औषधरूपमें उपयोग १८
दातोंकी रह	झा	•••	•••	•••	•••	980	रक्तलाव खुनका गिरना १८३
चरणरक्षा	•	•••	•••	•••	•••	989	सकोचन १८०
मस्तक			***		***	989	रारवाच
लग वा वि		•••			•••	982	3-
कर्णरक्षा	•••		•••		•••	983	
शीवछारोग			•••	•••	•••	183	David and
वालग्रहिका		•	•••		•••	988	ETTE ETTE
आस		•••	•••	•••	•••	984	40.5
-1, 4			 अध्या	ж U	•••	107	
वेद्यकशास्त्र				40		960	
सास्थ्य वा				•••	•••	986	
वायुवर्णन		****		•••	•••	943	00
<u>.</u> सच्छहवावे			÷ ~	•	•••	944	
ह्वाके विग			ur	•••	•	940	**
खभावजन्य				•••	•••	363	
पानीकी आ			•	•••	***	950	0
पानीके सेद		•••	•••	•••			पानी १९६ खुराकके मुख्य पदार्थीमे पाचों तत्त्वोंका कोष्टक १९५
अंतरीक्ष ा र		•••	• •	***	***	965	
•	•••		***	•••	•••	900	で :
		•••		***		909	छमो रसोंके मिश्रित गुण २०१
आनूपजल		•••	***	•••	***	969	वैद्यकसाग निर्मंह २०३
नदीका जल	5	•••	•••	***	•••	909	वान्यवर्ग २०३
कएका पार्न			***	***		908	गेहू २०४
कुडका पार्न		***			***	- 1.	वाजरी २०५
G-34 414	•		***	***	***	364	ज्वार २०५

विषय					र्ब ह	विषय				মূন্ত
मूंग		•••	***	***	204	वकरीका दूध	100		•••	290
अरहर	***	•••	***	***	308	मेंडका दूध		400	•••	२१७
उड्द	•••	•••	•••	***	२०६	छंटनीका दूध	•••	***	•••	290
मटर	***	•••	***	•••	306	स्रीका दूष	***	***	***	290
शाकवर्ग	***	•••	***	•••	209	घारोष्ण दूध	•••	•••	•••	290
वंदलया चौलाई	***	•••	***	•••	299	खराव दूध	***	•••	***	296
पालक .	***	***	•••	***	292	द्यके मित्र	***	•••	***	220
वधुमा	***	•••	•••	•••	292	दूधके शत्रु		144	•••	229
पानमोगी	•••	•••	***	•••	२१२	घीके सामान्य गुण	***	***	***	222
पानमेथी	***	•••	***	•••	292	गायका भक्खन	***	***	•••	223
अध्इके पत्ते	***	***	•••	***	२१२	भैसका मक्खन	•••	***	***	२२३
मोगरी	•••	•••	***	***	292	व	धिवर्ग			
मूडीके पत्ते	***	***	•••	***	२१२	दहीके सामान्य गुण	***	***	***	२२३
परवल	**	***	***		285	स्ताहु /	•••	•••	***	२२३
मीठा तूवा	•••	• •	•••	•••	395	स्राद्वम्क	***	***	***	२२४
कोला पेठा	***	***	***	•••	313	अम्ल		•••	***	२२४
वैंगन	***	•••	•••	•••	२१३	अलम्ब	***	***	•••	258
विया तोरई	***	٠	***	***	₹9₹	दहीके मित्र	•••	***	•••	388
तोरी	***	•••	***	***	₹9₹		ाकवर्ग			
केरला	***	***	•••	***	293	तकके मेद	***	***	***	२२६
ककडी	***	***	***	***	293	तऋसेषनविधि	444	***	***	338
कर्डींदा मतीरा	•••	***	***	***	294	तऋसेवननियेध	***	• • • •	***	१२७
सेमकी फळी	•••	•••	***	***	२१४	/ 4	छचर्ग			
गुवारफडी	•••	***	***	***	२१४	क्षे साम	•••	•#•	•••	२२८
सहजनेकी फली	•••	•••	***	***	२१४	पर्व आम	•••	***	***	२२८
सूरणकद	•••	**	***	***	२१४	जास्ति	***	•••	***	२२८
आख्	***	***								२२८
THE 201 14			•••	***	२१४	वेर	***	***	***	440
रताल् तथा सव		•••	***	***	२१५	णनार	•••	•••	***	225
मूली	रकंद	***	•••		२१५ २१५	अनार केला	•••	•••		
मूली गानर	रकंद •••	•••	•••	•••	२१५ २१५ २१५	मनार\ केळा आवळा	***	***		२२९
मूली	रकंद	•••	***	***	२१५ २१५	भनार केला भावला मारिंगी-संतरा	•••	***		२२ ९ २२ ९
मूली गानर कादा	तर्कद डु	•••	***	•••	२१५ २१५ २१५ २१५	कनार केळा आवळा मारिंगी-संतरा दाख वा अगूर	•••	•••		२२९ २२९ २२९ २३० २३०
मूली गानर कादा	तर्कद 	 ग्धवर्ग	***	•••	२१५ २१५ २१५ २१५ २१५	कनार केळा भावळा मारिगी-संतरा दाख वा अगूर नीवू	***	•••		२२९ २२९ २२९ २३० २३०
मूळी गानर कादा काळीगायका दूर लाळगायका दूर	त्कंद डु	 ग्धवर्ग	***	•••	२१५ २१५ २१५ २१५ २१६ २१६	कलार केला केला भावला नारिंगी-संतरा दाख वा अगूर नीवू मीठा नींबू	***	•••	***	२ २ ९ २ २ ९ २ ३ ० २ ३ ० २ ३ ० २ ३
मूळी गाजर कादा काठीगायका दूष लालगायका दूष सफेदगायका दूष		ःः ग्धवर्श	***	***	२१५ २१५ २१५ २१५ २१६ २१६	क्रनार केळा भारिगी-संतरा दाख वा अगूर नीवू नीवूका वाहिरी उपयोग	***	***	***	२ २ ९ २ २ ९ २ ३ ० २ ३ ० २ ३ ० २ ३ ० २ ३ २
मूली गाजर कादा कालीगायका दूष लालगायका दूष सफेदगायका दूष सुरत व्याई हुई	दर्कद इ गामका	ःः ग्धवर्श	***		२१५ २१५ २१५ २१५ २१६ २१६ २१६	कनार		***	***	२२९ २२९ २३० २३० २३० २३० २३१
मूळी गाजर कादा काठीगायका दूष लालगायका दूष सफेदगायका दूष	दर्कद इ गामका	ःः ग्धवर्श	***	***	२१५ २१५ २१५ २१५ २१६ २१६	क्रनार केळा भारिगी-संतरा दाख वा अगूर नीवू नीवूका वाहिरी उपयोग		•••	***	२ २ ९ २ २ ९ २ ३ ० २ ३ ० २ ३ ० २ ३ ० २ ३ २

विषय				वृष्ट	विपय	मुष्ठ
जायफल		•••	•••	233	वरा और मंगोरा आदि	340
सकरकद	•••	•••		१३२	आमका पत्ता आदि	246
अजीर		•••		२३२	तिलकुटा	249
इमली	•••	***	***	233	काजी वरा आदि	260
पक्षी इमली	***	**	•••	233	कपूरनाठी आदि	369
नारियल	•••	•••	•••	538	पथ्यापथ्य	
रारवूजा	•••	•••	•••	२३४	पध्यापथ्यका वर्णन	२६२
कलिंदा मतीरा तरवूर	ī	***	•••	258	पथ्य पदार्थं ,	२६२
वादाम चिरौजी पिस्त		••	•••	२३५	शकोमे	२६३
	इक्षुवर्ग	•			कुपथ्य पदार्थं	354
इक्षु ईख				२३५	सामान्य पथ्यापथ्य आहार	२६७
इक्षुके सूचीपत्रादिमेव	•••	•••		२३६	पव्यविहार	२६७
फाणित	•••	•••		२३७	हुर्वल मनुष्यके खाने योग्य पदार्थ	२६९
गुड	***		•••	२३७	स्थूल मनुष्यके खाने योग्य	२७१
खांट ,	•••		•••	२३८	मजा ततुओंको हड वनानेवाला	205
मिथी और कद	***	•••	•••	355	स्मरणशक्ति और बुद्धिको बढानेवाडी ग्रुराक	२७२
	तेलवर्ग				बीमारीके पीने योग्य जरू	२७६
तिलका तेल	•••	•••	•••	383	नीवृत्रा पानक	२७६
सरसोंका तेल	•••	•••	•••	283	गोंदका पानी	३७६
राईका वेळ	•••	•••	•••	283	्ञोका पानी	345
तुवरीका तेल .	•••	•••		3.83	, अतुचर्या वर्णन	•
अलसीका तेल			Ber .	283	ऋतुके अनुकूल आहार विहार	२ ७७
कुभकका तेल	***		•••	383	वसत ऋतु	360
खसखसका देळ .		•••	•••	388	वसतका पथ्यापध्य	२८३
अंडीका तेल 🕠	***	***		288	" खानेयोग्य नियम	२८३
रालका तेल	***	***	***	२४४	वर्षा भीर प्रावृद्धका पथ्यापथ्य	२८९
	क्षारवर्ग	Ī			शरद् ऋतुका पथ्यापथ्य	२९०
सेंघानमक ••• ••	• •••	•••	•••	२४५	हेमत और शिशिरका पथ्यापथ्य	२९३
साभरनमक	• •••	•••	***	२४५	दिनचर्यावर्णन	
समुद्रनमक	***	***	***	२४५	त्रातःकालका वस्ता	२९५
विडनमक वगैरह .	_		***	२४६	" वायुसेवन	२९६
	मिश्रव	Ť			" जलपान ,	250
दाल और शाकके स	साछे	•••	***	२४७	मलमूत्रका स्वाग	350
अचार और राईता	•••	•••	•••	२५१	मुख्युद्धि	२९८
चाय		•••	***	२५२	व्यायाम अर्थात् कसरत	388
काफी	• •••	•••	•••	२५४	व्यायामका निषेष	305
	• •••	•	•••	२५५	सुगधित तैलोंके गुण	308
खिचड़ीआदि .	• •••	***	***	348	झान *** *** *** ***	\$08

विषय		वृष्ठ ।	विषय	प्रष्ठ
पैर घोना	*** ***	३०६	विषयोग	368
भोजन		३०६	रसविकार	308
भोजनके नियम	***	vof	चेप आदि	३८५
मुखयुर्गघ	*** ***	394	एक रोग दूसरे रोगका कारण	३८६
शयन निद्रा		. ३१७	श्रदींगर्मी	36v
खप्रविचार		396	दासी मदि	३८६
सदाचार	ार्णन		त्रिद्दोषज रोग	
सदाचारका खरूप		. ३२१	बायुके कोपके कारण	369
जुआ आदि सात व्यसन	*** **	. ३२२	आक्षेप बायु आदि	३८९
सर्व हितकारी कर्तव्य	,	. ३३२	पक्षाधात आदि	३९०
रोगसामान्य	कारेंग -	-	प्राणायामभादि	३९१
रोगका विवरण	*** **	. 730	बद्धविद्वता सादि	३९२
रोगके कारण	***	336	साध्यान सादि	३९३
खकृतादि कारण	*** **		पित्तकोपके कारण	353
प्रत्येक मनुष्यके आदिकारण			घूमोद्गार आदि	३९३
रोगके दूरवर्ति कारण	•••		कातिहानि मादि	388
मातापिताकी निर्वलता	•••		रुष्णमूत्रत्व सादि	394
निजङ्गद्धवमे विवाह			कफकोपके कारण	३९५
वालकपनमे विवाह		. 349	तन्द्रा भादि	394
संतानका विगडना		345	श्वेतावलोकन आदि	३९६
अवस्था •••		. \$69	रोगपरीक्षा प्रकरण	•••
জারি		. 35-	परीक्षाके सावश्यक	३९६
जीविका वा वृत्ति		. ३६३	प्रकृतिपरीक्षा	. 396
সক্রবি ••• •••		. 303	वातप्रधान प्रकृति	355
रोगजनक समीपवर्ति कारण		· ३६५	पित्तप्रकृति	800
ह्वा		355	ৰুদ্যসূচুৱি	800
पानी		3uu		४०१
खराक	***	३६८	स्पर्शपरीक्षा	४o२
कसरत	•	३७9	नाडीपरीक्षा	** 803
वयोविचार		<i>देण</i>	नार्बाज्ञानमें समझने योग्य	** 808
रूपगुणविचार	•	३७७		You
कालविचार	•••	300	डाक्टरोंके मतसे नाडीपरीक्षा	808
शारीरिकस्थिति		३७९	जलदी गाड़ी	705
मानसिकस्थिति	*** *	360 360	घीमी नाडी	808
पवित्रता		369	मारी नाडी आदि	890
एकपनीवत		369	नाडीविपयमें लोगोंका विचार	899
मिलनता		३८२	ल्बापरीक्षा	894
व्यसन	••••	२८२ ३८३		
3		464	विमानदर ••• ••• •••	&3£

विषय	ſ				हें हैं		विषय					वृष्ठ
स्टेथोस्कोप		***	•••	***	298	वाफ	•••	•••	•••	•••	***	88.£
दर्शनपरीक्षा		***	•••	•••	896	वंघेरण	•••	***	•••		***	883
जिह्वापरीक्षा	•••	•••	•••	***	296	मुख्वा	•••	***	•••			883
सामान्य परीक्षा		••	•••	***	895	मोदक	•••			***		XX3
नेत्र परिक्षा	•••		***	•••	83.	सन्ध	•••	***		***	***	883
आकृति परीक्षा	•••	•••	•••	***	839	छेप		•••		•••	•••	AR3
खचा परीक्षा	•••		•••	•••	४२२	लपडो व	पोक्टि	e	•••		•••	888
मूत्र परीक्षा			•••	•••	४२३	सेक	•••		•••	•	••	888
मुत्रद्वारा रोगकी		शाध्य प	रीक्षा	•••	858	खरस	•••	•••			•••	888
डाक्टरी मतसे				•••	४२५	हिम	•••		***	***	•••	888
मूत्रमं जानेवाछे			#T		४२६	क्षार	•••	•••	•••	•••		XXX
पित्त आदि			•••	•••	४२८	सत्व	•••		4		***	884
आल्ब्युसीन	•••				४२८	सिरका						४४५
शुगर अर्थात् श			•••		826	गुलकद	•••	•••	• •	***		884
एसीड और आ			•••	'\	1881		… पर्धोंके		Ar ====		A an	
मळपरीक्षा	c desire!				133	देशी तीत					-	५ ५४६
पतला वगैरहदर		***	•••	•••		अभेजी त			***	***	***	004
नतका नगरहरू प्रक्ष परीक्षा		•••	•••		838) इंक्र	अभजा त	।।क जा		द्वर्णन			
नम पराका	 A	 घ प्रय	_	•••	643	। ज्वरके वि						a de O
			वि			जनस्क स					***	849
औषधौंका समह अरिष्ट और आ		***		•	836	जनरक से जनरके के			***	**	***	849
	લવ	•••	• •	•	836	देशी औ			···	•••	***	४५२
मद	•••	***	•••	•••	४३६					***	***	४५३
अवकेह	• •	***	•••	•••	४३९	ज्वरके स			•••		***	848
कल्क	***											
			•••	•••	838	वातज्वर			- ***	••	***	४५४
काथ .	***	•••	***	•••	836	पित्तज्बर	का वर्णन	ī	•••	•••	•••	845
कुरला	***	•••	•••	•••	880 858	पित्तज्बर कफज्बर	का वर्णन का वर्णन	ī	-			४५६ ४५८
कुरला गोली	•••	•••	•••	•••	880 880 856	पित्तज्बर कफज्बर द्विदोपजर	का वर्णन का वर्णन ज्वर	ī	•••	•••	•••	४५६ ४५८ ४५९
कुरला गोली घी तथा तेल	••	•••	•••	•••	284 280 280 856	पित्तज्बर कफज्बर द्विदीपजर वातपित्त	का वर्णन का वर्णन ज्वर ज्वर	ī	•••	•••	•••	४५६ ४५८ ४५९ ४५९
कुरला गोली घी तथा तेल चूर्ण	***		•••	•••	884 880 880 880 886	पित्तज्बरः कफज्बरः द्विदोपजर बातपित्तः बातकफ	का वर्णन का वर्णन ज्वर ज्वर	T	•••	•••	•••	४५६ ४५८ ४५९ ४५९ ४६०
कुरला गोली घी तथा तेल चूर्ण घूमों वा धूप	***	•••	•••		284 280 280 856	पित्तज्बरः कफज्बरः द्विदोपजर बातपित्तः बातकफ पित्तकफ	का वर्णन का वर्णन ज्वर ज्वर ज्वर	· · · ·	•••	•••	•••	४५६ ४५९ ४५९ ४६० ४६०
कुरला गोली घी तथा तेल चूणे घूमों वा धूप धूमपान	***	•••	***	***	881 881 881 880 880 880	पित्तज्बरः कफञ्चरः द्विदोपजरः बातपित्तः बातकफः पित्तकफः सामान्यः	का वर्णन का वर्णन ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर		•••	•••	•••	४५६ ४५९ ४५९ ४६० ४६० ४६१
कुरला गोली घी तथा तेल चूर्णे घूर्गो चा धूप धूम्रपान नस्म	***	•••	***	•••	% ? ? ? ? ? ? ? ? ? ? ? ? ? ? ? ? ? ? ?	पित्तज्बरः कफ्रज्वरः द्विदोपजरः वातपित्तः वातकफ्र पित्तकफ्र सामान्यः सनिपातः	का वर्णन का वर्णन ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर		•••	•••		*45 *45 *45 *50 *50 *50 *50 *50
कुरला गोली भी तथा तेल चूर्णे भूगों मा भूप भूमपान नस्म पुटपाक	***	•••	***	•••	881 881 881 880 880 880	पित्तज्वरः कफ्रज्वरः द्विदोपजर वातपित्तः वातकफ्र पित्तकफ्र पित्तकफ्र सामान्यः सनिपातः आगद्यक	का वर्णन का वर्णन ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर					४५६ ४५९ ४५९ ४६० ४६० ४६१
कुरला गोली भी तथा तेल चूर्णे भूमों वा भूप भूमपान नस्य पुटपाक पंचाय	***	•••	•••	•••	444 444 444 444 444 444 444 444 444 44	पित्तज्वरः कफज्वरः द्विद्दोपज्ञः वातपित्तः वातकफ पित्तकफ सामान्यः स्विपातः आगद्यक ज्वरोंके	का वर्णन का वर्णन ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर	····				*45 *45 *45 *50 *50 *50 *50 *50
कुरला गोली घी तथा तेल चूर्णे घूनों वा धूप धूप्रपान नस्य पुटपाक पंचाय	***	•••	•••	***	\$25 \$40 \$40 \$41 \$41 \$41 \$41 \$45 \$45	पित्तज्वरः कफाज्वरः द्विद्दोपज्ञः वातपित्तः वातकफा पित्तकफा सामान्यः स्विपातः आगद्यक ज्वरोंकेः विषमज्व	का वर्णने का वर्णने ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर भेद तथ रका वर्ण	····				*4¢ *4¢ *4¢ *6° *6° *6°
कुरला शोली शी तथा तेल चूर्णे धूरों बा धूप धूप्रपान नस्य पुटपाक पंचाय फलवर्ती		•••	•••	***	444 444 444 444 444 444 444 444 444 44	पित्तज्वरः कपाज्वरः द्विदोपजरः वातपित्तः वातकफा पित्तकफा समान्यः समिपातः आगद्यकः ज्वरोंकेः विषमज्व सत्तर्ज्ञः	का वर्णन का वर्णन ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर अवर स्वार स्वार स्वार	ा । । । स्टक्षण				%46 %46 %46 %46 %46 %46 %46 %46 %46
कुरला गोली घी तथा तेल चूणी घूमों वा धूप धूमपान नस्य पुटपाक पंचाय फाट विस्त		•••	•••	***	\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\	पित्तज्वरः कपाज्वरः द्विदोपजरः वातपित्तः वातकपाः पित्तकपाः स्विपातः आगद्यकः ज्वरोंकेः विषमज्व सत्तज्वः सत्तज्वः	का वर्णने का वर्णने ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर क्वर क्वर सेव तथ रका वर्ण र आदि	ा । स्टक्ष्मण्				%46 %46 %46 %60 %69 %69 %69 %69 %69
कुरला शोली शी तथा तेल चूर्णे धूरों बा धूप धूप्रपान नस्य पुटपाक पंचाय फलवर्ती		***	•••	***	335 335 335 335 336 336 336 336 336 336	पित्तज्वरः कपाज्वरः द्विदोपजरः वातपित्तः वातकफा पित्तकफा समान्यः समिपातः आगद्यकः ज्वरोंकेः विषमज्व सत्तर्ज्ञः	का वर्णने का वर्णने ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर ज्वर क्वर क्वर सेव तथ रका वर्ण र आदि	ा । स्टक्ष्मण्				\$45 \$46 \$46 \$46 \$46 \$46 \$46 \$46 \$46 \$46 \$46

विषय		99	विषय		पृष्ठ
ज्वरमे उत्पन्न अन्य उपद्रविकित्स	rr	868	द्वितीयसंख्या-वरिंदया	***	६ २२
ज्यर्से पथ्य		४८२	ती. कुकुड चोपडा. गणघर चोपडा		हर५
0 2-2		४८५	घाडीबाल गोत्र	***	६२६
A		866	चोरहिया, मटनेरा वगैरह	***	£30
20.1		894	गुजराथियोंकी लाग खुड्वाईका		635
		885	यंड शाली भूरागोत्र	***	630
2-0		890	पापरिया, खगावत	***	639
प्रकीणरोग			रतनपुरा, कटारीया गोत्र		६३२
			राका, काळासेठिया ***		638
प्रकीणरोगसे शारीरिक संवंध .			राखेचाह्, पूगिखयागोत्र	***	634
अजीर्णका वर्णन	** ***	•	ल्यूणिया गोत्र	***	934
	•••		साखला, सुराणा गोत्र	***	e g u
	•••	-	घागरिया गोत्र	•••	630
	•••	•	पूगह सुगह गोत्र	***	६३८
	•••		ओहीवाल, आलावत	•••	438
	***	• •	वोथरा, फोफलिया ,	***	435
मरोडा, सामातिसार, सप्रहणी . इसि, चूरणिया, गिंडोळा	•••		गौलडा गोत्र	***	६५१
	***		लोढा गोत्र	***	<i><u>६५२</u></i>
2-1-21-6	•••		स्रोसवालोंके गोत्र जाननेका कारण	•••	443
-0	•••	. ५३० . ५३०	शाखागोत्रोंका सिक्षप्त इतिहास	•••	669
			ओसवालजातिका गौरव	***	668
वाळ उपदंशका वर्णन	• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •		पोरवाळ वंशोत्पत्ति	***	596
प्रमेह, सुजाख (गिनोरिया)		444	विमलकाहमंत्रीका वर्णन		EE.
	•••		वस्तुपाछ और तेजपालका वर्णन	•••	६७१
2-412-5			खडेलवास जातिका वर्णन	•••	इ७५
-2	• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •		माहेश्वरी वंशोत्पत्ति वर्णन	•••	660
छर्दिरोगका वर्णन			वारह्न्यातोंका वर्ताव	***	६८५
स्रीरोग (प्रदर) का वर्णन	•••	408	चौरासीन्यातका वर्णन	***	€ < €
राजयक्सारोगका वर्णन	•••	404	वैश्योंकी पूर्वकालीन सहातुमृति	•••	868
जातीफलादिचूर्णं	•••	. 460	ऐतिहासिक पदार्थविज्ञान	***	६९८
जीवन्सादिष्टत	•••	. 463	राजनियमवर्णन	***	409
आमवातरोगका वर्णन		469		***	७०५
महारास्त्रादि काथ	•••	. 452		***	Bos
उन्माद (हिष्टीरियाका) वर्णन	•••	. ६००		***	vov
पंचम अध्या	य			***	V0V
ओसवाल वशोत्पत्ति	*** **	. ६२१	अमकायोंमे निविद्धतिथि आदि	***	200
n	*** **			***	200
	-	, ,,,	1 . 2 . att. at at all all ton hon	***	490

विष्य		gg.	विषय	প্রন্ত
छोटी वडी पनोती पायेका वर्णन	***	499	खरोदयका खरूप	12
चोरीगई वा खोगई वस्तुकी प्राप्ति	***	. ७१२		25
नामरखनेके नक्षत्र		693		७२७
चद्रराशिका वर्णन	•••	493		350
दिशाशूलके जाननेका कोष्ठ	•••	490		25
योगिनीके निवासवान		498		33
चदमाके निवासजाननेका	***	७१४	44	* } }
कालराहुका ज्ञान		094		33
अकेदग्घा तथा चद्रदग्धातिथि	•••	७१५		şξ
इष्टकाळसाधन	•••	७१५		≀ हैं ज
	•••		योगसबंधिनी मेस्मेरिजमविवाका सिक्षत-	
	***	292	वर्णन ५	138
सूर्योदय जाननेकी विधि	**	096		18
लम जाननेकी रीत	***	495	पासावलिका यंत्र ५	83
महाजनोंकी कुडलिया	***	499	पासाविष्ठका ऋमसे फळ ७	λź
खरोदयवर्णन	***	७२१	परदेशगमनादि विषयक शकुनविचार ७	49

जैनसम्प्रदायशिक्षा॥

अथवा

गृहस्थाश्रमशीलसौभाग्यभूषणमाला ॥



प्रथम अध्याय॥

मङ्गलाचरण ॥

ओंकार उदार अगम्य अपार संसारमें सार पदारथ नामी। सिद्धि समृद्धि सरूप अनृप भयो सबही सिर भूप सुधामी॥ मन्त्रमें यन्त्रमें प्रन्थके पन्थमें जाकुं कियो धुर अन्तरजामी। पश्चिह इष्ट वसे परमिष्ठ सदा प्रमसी करे ताहि सलामी॥१॥

गुरुमहिमा नमस्कार॥

महिमा जिनकी सिगरी महिमें जिन दीन्हों महा इक ज्ञान नगीनो । दूर भग्यो भ्रम सो तम देखत पूरि जग्यो परकाद्य नवीनो ॥ देतिहि देतिह दूनो वधै अरु खायोहि खुटत नाहि खजीनो । ऐसो पसाय कियो गुरुराय तिन्हें भ्रमसी पदपङ्कज लीनो ॥ १॥

प्रकरण प्रथम-वर्णसमाम्राय ॥

स्वर वर्णोंका विवरण ॥ अ आ इ ई उ ऊ ऋ ऋ ॡ ॡ ए ऐ ओ औ अं आ:॥

व्यञ्जन वर्णीका विवरण॥

क लगघड। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। तथद्धन। पफ वभ म। यर छ व॥ शषसह। क्ष च ज॥ इस प्रकार वर्णमाला में कुल ५२ अक्षर है-परन्तु पिछले ३ वर्ण (क्ष, त्र और ज्ञ) वा-स्तव में वर्ण नहीं है, किन्तु ये तीनों संयुक्ताक्षर हैं, क्योंकि क् और प् के संयोग से क् त् और र के संयोग से त्र और ज् तथा न् के संयोग से ज्ञ बनता है, इसलिये मुख्यतया वर्णमालामें ४९ ही अक्षर है अर्थात् १६ खर और ३३ व्यक्तन ॥

संयुक्ताक्षरों (संयोगी अक्षरों)का वर्णन ॥

स्+त=स्त । द्+य=च । द्+व=व । व्+य=ज्य । स्+क=स्क । ग्+र=म । न्+त= त । क्+र=क । प्+र=म । द्+ण=ण । स्+र=म । द्+थ=ध । प्+प=ण । स्+म= द्व । द्+व=द्व । द्+व=द्व । प्+व=न्य । प्+प=ण्य । प्+प=च्य । प्+प=च्य । प्+प=च्य । प्+प=च्य । प्+प=च्य । प्+द=च्द । त्+व=त्व । च्+च=च्य । प्+प=त्य । प्+द=च्द । क्+प=च्य । प्+प=त्य । छ्+द=च्द । क्+प=च्य । प्+प=त्य । छ्+द=च्द । क्+प=च्य । त्+प=त्य । स्+प=च्य । स्+प=च्य । स्+प=च्य । स्+प=च्य । स्-प=च्य । स-प=च्य । स्-प=च्य । स्-प=च

वक्रों के संयोग में नीचे लिली हुई बातों को याद रखना:---

- १—रेफ जब किसी अगले वर्ण से मिलता है तब उस के ऊपर चढ़ जाता है। जैसे र+क=र्फ इत्यादि, परन्तु जब रेफ से कोई वर्ण मिलाया जाता है तब रेफ उसके नीचे जोड़ा जाता है। जैसे क्+र≔क इत्यादि॥
- २—प्रायः सव वर्ण अगले वर्ण के साथ अपने आधे सहस्पसे मिलते हैं, जैसा कि उक्त संयोगी अक्षरों में दिसलाया गया है, परन्तु इ, छ, झ, ट, ठ, इ, द, प, फ, ह, ये वर्ण प्रायः अपने पूरे सहस्प के साथ अगले वर्णों से मिलते है, जैसे इ+क=इ। इ+ग=इ। इ+ग=इ। इ+ग=इ। इ+ग=इय। इ+च=इय। इ+क=दू। इ+क=दू। इ+य=छ्य। द+य=छ्य। द+क=दू। द+क=दू। द+य=छ्य। द+क=दू। द+क=दू। द+य=छ्य। इ+क=दू। द+क=दू। द+य=छ्य। इ+क=दू। द+य=छ्य। इ+क=द्व। द+य=छ्य। इ+य=एर्थ। इ+य=छ्य। इ+य=॥। इ+र्थ=छ। इस्यादि॥

३—कोई कोई वर्ण अन्य के साथ मिछने से बिळकुछ रूपान्तर में पछट जाते हैं।जैसे श्+र≔श्र । त्+र≔त्र । न्+ल≔ज्ञ । क्+प≔क्ष । क्+त≔क । त्+त≕त । इत्यादि ॥

बारह अक्षरी का वर्णन ॥

जब व्यक्तन वर्ण किसी अगले खर वर्ण के साथ जोड़े जाते हैं तो वे खर मात्रारूप में होकर व्यक्तन के साथ मिलते है, इसी को हिन्दी मापा में बारहखड़ी कहते है। इसका खरूप यह है:—

बारह अक्षरी का स्वरूप ॥

१२३४५६७८९१०१११२ क् क क क क क क क क क अआ हई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं आ ाा ि ुू े ौ ौ ैं ः क का कि की कु कू के कै को कौ कं कः

सूचना— व्यञ्जनों के साथ यह वारह खरों का मेळ दिखळाया गया है, इसमें ऋ, ऋ, ळ, ॡ, ये ४ खर छोड़ दिये गये है, क्यों कि इन स्वरों के साथ व्यञ्जन मिले हुए अक्षर प्रायः संस्कृत के शब्दों में देखे जाते है, भाषामें इन का उपयोग वहुत ही कम आता है, किन्तु छ, छ, का संयोग तो संस्कृत के शब्दों में भी वहुत ही कम देखा जाता है, हां आवश्यकता होने पर यथायोग्य इन स्वरों का भी मेळ कर छेना चाहिये, इन में से ऋ की मात्रा ृ यह है, ऋ की मात्रा ृ यह है, छ की मात्रा ७ यह है तथा छ की मात्रा १ यह है अर्थात् इन स्वरूपों से ये चारों खर व्यञ्जनों में मिळते है। जैसे क्+ऋ=ऋ। क्+ऋ=क क्+छ=ऋ । क्+छ=ऋ । क्+छ=ऋ । क्+छ=ऋ । क्+छ=ऋ । क्+छ=ऋ । क्+छ=ऋ

सूचना दूसरी—कपर लिखे खरूप में जिस प्रकार से बारह स्वरों के साथ ककार का संयोग दिखलाया गया है, उसी प्रकार से उक्त वारह स्वरों का संयोग खकार आदि सब वर्णों के साथ समझ लेना चाहिये।

दो अक्षरों के शब्द ॥

कर । मर । अब । तव । जव । कय । हम । तुम । वह । माता । पिता । दाटा । दादी । भाई । नानी । नाना । मामा । मामी । करो । चले । बैठो । जाओ । खाओ । सोओ । कहो । देवी । नदी । राजा । रानी । वहू । वेटी । सोना । चांदी । मोती । आल्. । सीठी । बेटा । सखी आदि ॥

तीन अक्षरों के शब्द ॥

केवल । पाठक । पुस्तक । अन्दर । संवत् । पण्डित । कमल । गुलाव । अनार । चमे-ली । मालती । सेवती । छुहारा । चिरोंजी । बादाम । सेवक । नौकर । टहल । बगीचा । आराम । नगर । शहर । इत्यादि ॥

चार अक्षरों के शब्द ॥

यद्रालय । उपवन । विद्यालय । कालचक । मद्दापन । सरस्रती । कटहल । बडुहर ।

जमघट । भीडभाड़ । ख़ुशदिल । मोटापन । तन्दुरुस्ती । अकस्मात् । दैवाधीन । प्रजापति । परमेश्वर । आदि ॥

छोटे २ वाक्य ॥

यह हो । अब जाओ । अभी पढ़ो । रोओ मत । सबेरे उठो । विद्या सीखो । जह भरो । गाही मत दो । मत खेळो । कहम हाओ । पत्र हिखो । घर जाओ । सीघे बैठो । दौड़ो मत । यह देखो । बाहर जाओ । घरमें रहो । घर्म करो । ज्ञान कमाओ । इत्यादि ॥

कुछ बड़े वाक्य ॥

कुछ आवश्यक शिक्षायें ॥

जहां तक हो सके विश्वासपात्र बनो । झूंठे का कमी विश्वास मत करो । शपथ खाने-वाला प्रायः झूंठा होता है । जो तुम्हारा विश्वास करता है उसे कमी घोखा मत दो । माता पिता और गुरु की सेवा से बढ़ कर दूसरा घर्म नहीं है । राज्य के नियमों के अनुसार सर्वदा वर्ताव करो । सबेरे जल्दी उठो और रात को जल्दी सोओ । अजीणे में भोजन करना विष के तुल्य हानि पहुंचाता है । दया घर्म का मुख्य अंग है, इस लिये निर्दय पुरुष कमी धर्मीत्मा नहीं बन सकता है । प्रतिदिन कुछ विद्याभ्यास तथा अच्छा कार्य करो । साधु महात्माओं का संग सदैव किया करो । जीवदान और विद्यादान सन दानों से नद कर हैं । कभी किसी के जीव को मत दुलाओ । सन काम ठीक समय पर किया करो । स्वामी को सदैव प्रसन्न रखने का यन करो । विद्या मनुष्य की आंख खोल देती है । सज्जन विपत्तिमें भी सरीखे रहते है, देखो जलाने पर कपूर और भी सुगन्धि देता है तथा सूर्य रक्त ही उदय होता है और रक्त ही अस्त होता है । नासण, विद्वान, किन, मिन्न, पड़ोसी, राजा, गुरु, की, इन से कभी विरोध मत करो । मण्डली में नैठकर किसी स्वादिष्ठ पदार्थ को अकेले मत खाओ । विना जाने जल में कभी प्रवेश मत करो । नख आदि को दाँतसे कभी मत काटो । उत्तर की तरफ सिर करके मत सोओ । विद्वान को राजा से भी वड़ा समझो । एकता से बहुत लाम होते हैं इस लिये इस के लिये चेष्टा करो । प्राण जाने पर भी धर्म को मत छोड़ो ॥

यह प्रथम अध्याय का वर्णसमाज्ञाय नामक प्रथम प्रकरण समाप्त हुआ !!

दूसरा प्रकरण (व्याकरण विषयक)

इस में कातन्न व्याकरण की	प्रथम सन्धि दिखलाई गई	ġ:
संख्या शुद्ध उचारण ॥	अशुद्ध उचारण ॥	अर्थविवरण ॥
१ सिद्धो वर्णसमाझायः ॥	सीद्धो वर्णा समामनाया ॥	वर्णसमाझाय अर्थात् वर्णसेसु-
		दाय स्वयंसिद्ध है अर्थात् सा-
		षित नहीं है ॥
२ तत्र चतुर्दशादी स्वराः॥		उनवर्णीमें पहिले चौदह स्वर है।।
३ दश समानाः ॥	दशे समाना ॥	उनमें से पहिले दश वर्णी की
• • •		समान संज्ञा है ॥
४ तेषां ह्री द्वावन्योऽन्यस-		उन समानसंज्ञक वर्णों में दो दो
वर्णी ॥		वर्ण परस्पर सवर्णी माने जाते है।
५ पूर्वी इस्वः ॥	पूर्वी हंस्या ॥	उन द्विक वर्णों में से पूर्व २ वर्ण
		इस कहाते हैं ॥
६ परो दीर्घः ॥	पारो दीरघा ॥	उन्हीं द्विकों में से पिछले वर्ण
.		दीर्घ कहाते हैं।
७ स्वरोऽवणेवर्जो नामी ॥	सारो वर्णा विन ज्योनामी॥	अवर्ण को छोड़ कर शेय स्वर
		नामी कहाते हैं ॥

१. अकार से केकर हकारपर्यंत ॥ १. अ से केकर औं पर्यंत ॥

एकारादि संध्यक्षर वर्ण हैं।। ८ एकारादीनि सन्ध्यक्षराणि। इकारादीनी संधलराणी ।। कदेन हेतुविण ज्यो नामी॥ ककार सादि व्यञ्जन वर्ण हैं॥ ९ कादीनि व्यञ्जनानि ॥ ते वरगा पंचोपंचा ॥ वेही ककारादिवर्ण ५ मिलकर १० वे वर्गाः पञ्च पञ्च ॥ वर्ग कहलाते है और वर्ग पांच हैं॥ विरघानाउं प्रथम दुतईया ॥ वर्गोंके पहिले और दूसरे वर्ण॥ ११ वर्गाणां प्रथमद्वितीयौ ॥ तथा श ष स ये अघोष हैं।। संखसहेचिया ॥ १२ शषसाध्याघोषाः ॥ दूसरे वर्ण घोषवान् है ॥ १३ घोषवन्तोऽन्ये ॥ घोखाघोख पतोरणी ॥ अनुनासका न नानैरी नमा॥ ड, ब, ण, न, म, ये वर्ण अनु-१४ अनुनासिकाः 😎 ञ ण नासिक हैं ॥ न माः॥ अंतसंया जीरे छवा ॥ य,र,छ,ब,को अन्तःस्य कहते हैं॥ १५ अन्तस्था यरलवाः ॥ उक्रमणा संखोसाहा ॥ श,ष,स,ह,इनको ऊप्म कहते है।। १६ ऊष्माणः श प स हाः॥ १७ जः इति विसर्जनीयः ॥ आईतीवी सारजनीयो ॥ अः यहां विसर्जनीय है ॥ १८ ५क इति जिह्नामूलीयः॥ काईती जीवामुलियो ॥ ूक को जिह्वामूलीय कहते है। १९ ५प इत्युपध्मानीयः ॥ पाइती पदमानीयो ॥ ्रप इस को उपध्मानीय कहते है॥ आयोअंत नसंवारो ॥ अं यहां अनुस्वार है। २० अं इत्यनुस्तारः ॥ प- पूर्वी फिलियोरयोपालपदुं र ॥ पूर्व और परमें अर्थकी उपल-२१ पूर्वपरयोरथींपलब्धौ विष होनेपर पद मानाजाता है।। दम् ॥ बिणज्यो नामी सरुंबरुं ॥ स्वररहितवर्णको व्यञ्जन कहतेहै २२ अस्वरं व्यक्तनम् ॥ व्यञ्जन को अगले वर्ण में जोड़ २३ परवर्णेन योजयेत् ॥ बरण अनेत् ॥ देना चाहिये॥ २ अनितक्रमयन् विश्वेषयेत्।। अनेत करम्या विसलव जेता। अतिक्रम न करके संयोग क-रना चाहिये ॥ २५लोकोपचाराद् ब्रहणसिद्धिः॥ लखोपचायरा रोप संज्ञाओं की सिद्धि लोक की इति सन्धिसूत्रतः प्रथमश्चरणः ॥ दुर्घण संधियेती ॥ रीति से समझनी चाहिये॥ सेती सुतरता प्रथमी संघी यह सन्धिसूत्रकम से प्रथम समापताः । चरण समाप्त हुआ ॥

अब प्रथम सन्धि का विवरण यह है:---

प्रथमसूत्र—वर्णसमाञ्चाय अर्थात् वर्णसमूह यह है- अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ, ॥

१-सरों में अ, अ:, छोट दिया गया है, क्योंकि वह बातुस्तार और विसर्ग कोटि में माना गमा है ॥

क स्व ग घ ड । च छ ज झ ज । ट ठ उ ढ ण । त थ द घ न । प फ व म म । य र ल व । श ष स ह । यह वर्णसमूह स्वयंसिद्ध अर्थात् अनादिसिद्ध है, किन्तु साघित (वनाया हुआ) नहीं है ॥

द्वितीयसूत्र—उन वर्णों में से पहिले चौदह सर है अर्थात् अ आ इ ई उ ऊ ऋ ऋ ळ ळ ए ऐ ओ औ, ये सर हैं॥

तीसरास्त्र—उनमें से पहिले दश वर्णों की समान संज्ञा है अर्थात् अ आ ह ई उ ज ऋ ऋ ऌ ऌ, इनको समान कहते हैं ॥

चौथा सूत्र—उन समानसंज्ञक वर्णों में दो २ वर्ण परस्पर सवर्णी माने जाते हैं, जैसे— ज्ञ का सवर्णी आ, इ का सवर्णी ई, उ का सवर्णी ऊ, ऋ का सवर्णी ऋ, छ का सवर्णी छ है।

पांचवां सूत्र—उन द्विक वर्णों में से पूर्व २ वर्ण इस कहाते हैं, अर्थात् अ इ उ ऋ छ, ये इस (एकमात्रिक) कहाते है ॥

छठा सूत्र—उन्हीं द्विकों में से पिछले वर्ण दीर्घ कहाते है अर्थात् आ ई क ऋ ॡ, ये दीर्घ (द्विमात्रिक) है ॥

सातवां सूत्र—अवर्ण को छोड़ कर शेष खर नागी कहाते है अर्थात् इ ई उ क ऋ ऋ छ छ इनकी नामी संज्ञा है॥

आठवां सूत्र—एकारादि सन्ध्यक्षर वर्ण है अर्थात् ए ऐ ओ औ इन वर्णों को सन्ध्य-क्षर वर्ण कहते है, क्योंकि ये सन्धि के द्वारा वने है जैसे—अ वा आ+इ वा ई=ए। अ वा आ+ए वा ऐ=ऐ। अ वा आ+उ वा ऊ=ओ। अ वा आ+ओ वा औ≕ओ ॥

नवां सूत्र—ककार आदि व्यञ्जन वर्ण हैं अर्थात् क से लेकर ह पर्यन्त वर्णों की व्य-स्नन संज्ञा है ॥

दशवां सूत्र—वे ही ककारादि वर्ण पांच २ मिलकर वर्ग कहलाते है और वर्ग पांच हैं अवर्ग कवर्ग-क ल ग व ड । चवर्ग-च छ ज झ य । टवर्ग-ट ठ ड ढ ण । तवर्ग-त थ द ध न । पवर्ग-प फ व म म ॥

ग्यारहवां तथा बारहवां सूत्र—वर्गों के पहिले और दूसरे वर्ण तथा श, प, स, यें अधोष है, अर्थात् क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ, और श, प, स, इन वर्णों को अधोप कहते है।

तेरहवां सूत्र—दूसरे वर्ण घोषवान् है अर्थात् ऊपर छिखे वर्णों से मिन्न जो वर्ण हैं उनको. घोषवान् कहते है ॥

चौदहवां सूत्र—ह, न, ण, न, म, ये वर्ण अनुनासिक हैं अर्थात् इन पांचों वर्णों का उचारण मुलसहित नासिका से होता है–इसिलये इन्हें अनुनासिक कहते हैं ॥ पन्द्रहवां सूत्र—य, र, छ, व, को अन्तस्य कहते हैं अर्थात् पांचों वर्गो के अन्त में स्थित होने से इनकी अर्न्तस्य संज्ञा है ॥

सोलहवां सूत्र-श, ब, स, ह, इन को ऊप्म फहते हैं अर्थात् इन के उचारण में

उप्णता की प्रधानता है, इस लिये ये ऊष्म कहाते हैं ॥ सत्रहवां सत्र—अ: यहां विसर्जनीय है, अर्थात् अ: यह कोई मिन्न असर न

सत्रहवां सूत्र— अः यहां विसर्जनीय है, अर्थात् अः यह कोई भिन्न अक्षर नहीं है किन्तु अकार के पश्चात् इसमें विसर्जनीय (विसर्ग वा दो विन्दु) है ॥

अठारहवां सूत्र— भक्त इस को जिहाम्लीय कहते है, अर्थात् क और स से पूर्व भ इस चिह्न को जिह्नाम्लीय कहते है, क्योंकि इसका उचारण जिह्ना के मूल (जड़) से होता है।। उन्नीसवां सूत्र— भ प इसको उपघ्मानीय कहते हैं, अर्थात् प और फ से पहिले भ इस चिह्न को उपध्मानीय कहते हैं।।

बीसवां सूत्र—अं यहां अनुस्वार है, अर्थात् अं यह कोई भिन्न अक्षर नहीं है फिन्तु अकार के ऊपर एक बिन्द है, इसी को अर्नुस्वार कहते है ॥

इक्कीसवां सूत्र—पूर्व और परमें अर्थ की उपलिट्य होने पर पद माना जाता है, अर्थात् मुक्कृति और मत्यय का जहां अर्थ मतीत होता हो उसे पद कहते है ॥

बाईसवां सूत्र—सररिहत वर्ण को व्यञ्जन कहते है, अर्थात् क् ख् ग् घ् इ हत्यादि वर्णों को व्यञ्जन कहते है ॥

तेईसवां सूत्र—व्यञ्जन को अगले वर्ण में जोड़ देना चाहिये अर्थात् व्यञ्जन वर्ण प्रथक् नहीं लिखे जाते किन्तु अगले वर्ण में मिला कर लिखे तथा बोले जाते हैं, जैसे—म ५ व् अत्र=मध्वत्र, हत्यादि ॥

चौवीसवां सूत्र—अतिक्रम न करके संयोग करना चाहिये, अर्थात् क्रमसे व्यक्षन वर्ण को अगळे २ वर्ण में मिळाना चाहिये, इसका उदाहरण पूर्वोक्त ही है, क्योंकि पहिले धकार व्यंजन वर्ण कार में जोड़ा गया, पीछे धकारसहित क्कार अकार में जोड़ा गया।।

पचीसवां सूत्र—शेष संज्ञाओं की सिद्धि लोक की रीति से समझनी चाहिये, अर्थात् जिन संज्ञाओं का वर्णन नहीं किया है उन की सिद्धि भी लोकव्यवहार से ही जान लेनी

कोई आचार्य अन्त.स्य सजा मानते हैं, उसका हेतु वह है कि पानों नगों के तथा ऊष्म वणों के
 मध्य में स्थित होने से ये अन्तःस्य (मध्यनतीं) हैं ॥

२. अर्थात् वर्ण के आगे दो विन्दुओं को विसर्जनीय वा विसर्य कहते है ॥

३. जिह्नामूलीय और उपध्मानीय का उचारण आधे विसर्ग के समान होता है ॥

४. अर्थात् वर्ण के ऊपर जो एक बिन्दु रहता है उसको अनुसार कहते हैं।

५. जिससे प्रत्य का विधान हो उसे प्रकृति कहते हैं तथा जिसका विधान किया जाता है उसे प्रत्य कहते हें, जैसे सेवक इसमें सेव् प्रकृति तथा अक प्रत्यय है ॥

६. जिनका उचारण खरों की सहायता निना नहीं हो सक्ता उनको व्यञ्जन कहते हैं ॥

चाहिये, फिन्तु उन में शङ्का नहीं करनी चाहिये॥ यह सन्धिस्त्रक्रम से प्रथम चरण समाप्त हुआ॥

यह प्रथम अध्याय का व्याकरण विषय नामक दूसरा प्रकरण समाप्त हुआ ।।

तीसरा प्रकरण (वैर्णविचार)

- १---भाषा उस कहते हैं जिसके द्वारा मनुष्य अपने मन के विचार का प्रकाश करता है।।
- ३—ज्याकरण उस विद्या को कहते है जिसके पढ़ने से मनुष्य को शुद्ध २ बोळने अथवा लिखने का ज्ञान होता है ॥
 - 8—व्याकरण के मुख्य तीन माग है—वर्णविचार, शब्दसाधन और वाक्यविन्यास ।।
 - ५-वर्णविचार में अक्षरों के आकार, उचारण और उनकी मिलावट आदि का वर्णन है।।
 - ६--- शब्दसाधन में शब्दों के भेद, अवस्था और व्युत्पत्ति का वर्णन है ॥
 - ७-वाक्यविन्यास में शब्दों से वाक्य बनाने की रीति का वर्णन है।

वर्णविचार ॥

- १---अक्षर--शब्द के उस खंड का नाग है जिस का विमाग नहीं हो सकता।
- २-अक्षर दो प्रकार के होते है खर और व्यञ्जन ॥
- ३--- सैर उन्हें कहते हैं जिनका उचारण अपने आप ही हो ॥
- 8--- खरोंके इस और दीर्थ ये दो भेद है, इन्हीं को एकमात्रिक व द्विमात्रिक भी कहते हैं॥
- ५-व्यक्तैन उन्हें कहते है जिनका उचारण सरकी सहायता विना नहीं हो सकता॥
- ६--अनुसार और विसर्ग भी एक प्रकार के व्यञ्जन माने गये है॥
- ७—िकसी अक्षर के आगे कार शब्द जोड़ने से वही अक्षर समझा जाता है। जैसे क वा ककार इत्यादि ॥
- ८---जनतक लर किसी व्यञ्जन से नहीं मिलते तनतक अपने असली सहर में रहते हैं परन्तु मिलने पर मात्राहर में हो जाते हैं. जैसे क्+ज=क, क्+इ=िक, क्+उ=कु क्+ए=के, हत्यादि ॥

यद्यपि यह प्रकरण वर्णविचार नामक है तथापि उसका प्रारंग करने से पूर्व व्याकरण की कुछ आव-स्थक बाते प्रथम दिखाई गई है ।।
 उ—खय राजन्त इति स्वराः ।।
 उ—अन्वग् अवति व्यक्षनम् ।।

- ९—जिसमें दो या दो से अधिक अक्षर एक में मिळे रहते है उसे संयुक्ताक्षर कहते हैं, जैसे अल्प, सत्य, इनमें रूप और त्य संयुक्ताक्षर है ॥
- १०—संस्कृत में संयुक्त वर्ण से पहिला इस स्वर दीर्घ बोला जाता है किन्तु भाषा में ऐसा कहीं होता है और कहीं नहीं होता है ॥
- ११—कोई अक्षर संयोग में पूरे ख़रूप से मिळते और कोई आधे स्वरूप से मिळते हैं, जैसे ग्र्+क=क क्+क=क्क, इत्याँदि ॥
 - १२--अक्षरों के दो भेद और भी हैं एक सानुनासिक और दूसरे निरनुनासिक ॥
- १३—सानुनासिक उन्हें कहते हैं जिन का उचारण मुख और नासिका से हो, इस का चिन्ह अर्द्धचन्द्राकार विन्दु तथा अनुस्वार है जैसे दॉत, कॉच, कंठ, अंग, इत्यादि। इन के सिवाय क अ ण न म भी अनुनासिक है।
- १४—ह अ ण न म, ये वर्ण प्रायः अपने ही वर्ग के वर्णों से मिलते हैं, जैसे-दन्त, पम्प, कङ्कण, कण्ठ, व्यक्षन, इत्यादि ॥

वर्णों के स्थान और प्रयत्न का वर्णन ॥

संख्या	स्थान ॥	अक्षर ॥	नाम ॥
8	कण्ड	अ, आ, कवर्ग, विसर्ग और हकार ॥	कण्ड्य ॥
२	ताळ	इ, ई, चवर्ग, यकार और शकार ॥	तालन्य ॥
₹	मूर्घा	ऋ, ऋ, टवर्ग, रेफ और पकार ॥	सूर्घन्य ॥
8	दन्त	ळ, ॡ, तवर्ग, ईकार और सकार ॥	दन्त्य ॥
ų	ओष्ठ	ड, ऊ, पवर्ग और उपघ्मानीय ॥	ओष्ठच ॥
Ę	कण्ठ और तालु	ए और ऐ॥	कण्डतालन्य ॥
9	कंठ और ओष्ठ	को और कौ ॥	कण्ट्याष्ट्रच ॥
6	दन्त और ओष्ठ	वकार ॥	दन्तौष्ठच ॥
९	मुख और नासिका	ङ, ञ, ण, न और म ॥	सानुनासिक ॥

१—वेखो चंयुक्तासरों का दूसरा नियम ॥ २—प्रयत्न दो प्रकारके होते हैं आध्यन्तर और बाह्य । आध्यन्तर के पाच भेद हैं स्प्रष्ट, ईपत्स्पृष्ट, ईपद्विवृत विवृत और संवृत। वाह्य प्रयत्न ११ प्रकार का है—निवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अचोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ॥

प्रयत्नवर्णन ॥

	विवा श्वार अधो अधो प्रस्पम	स ॥ प ॥	विवार ॥ श्वास ॥ अद्योष ॥ महामाण ॥	संवार	उदात्त,	घोप, अल्प अनुदात्त, रित ॥	प्राण ॥	संवार नाद घोष	11 11
स्वर र	क च ट त	ख ड उ य फ	श प स	गड जञ ड ण द न द म	अ	इ ए ड ओ ऋ ऐ ऌ औ	य व र इ	घ झ इत इत ध भ	एग ।। ह
आभ्यन्त	तर	स्प्रष्ट ।	ईपद्विवृत,		इस्व, विवृत, विवृत ॥		ईप- त्स्प्रष्ट ।	fge,	ईपद्धि- वृत ।

खरों की सैनिघ ॥

खर सन्त्रि के मुख्यतया ५ भेद है:---

प्रथम भेद-दीर्घ ॥

परिभाषा ॥ जब समान दो खर इस वा दीर्थ इकट्टे होते हैं तो दोनों को मिळाकर एक दीर्घ खर कर देते है ॥	दो शब्दों का स्वरोंद्वारा मिलाप। कोष+अग्नि=कोषाग्नि । चन्द्र+आनन=चन्द्रानन । निद्रा+अवस्था+निद्रावस्था । मित+इति=मतीति । मही+इन्द्र=महीन्द्र । लघु+उपकार=लघूपकार । स्वयम्म्+उदय=स्वयम्मृद्य । म्	कौन कौन स्वर मिलकर क्या हुआ॥ आ+अ=आ। आ+अ=आ। इ+इ=ई। ई+इ=ई। उ+उ=ऊ। ऊ+उ=ऊ।
	प्रस्काकृत्यस्य । पितृ+ऋण≕पितृषा ।	क+क=क । ऋ+ऋ=ऋ ।

१--जब दो वर्ण आपस में मिलते हैं उस को सन्त्रि कहते हैं ॥

दूसरा भेद-गुण॥

परिभाषा ॥	दो शब्दों का स्वरों द्वारा मिलाप।	कौन२स्वर मिलकर क्या हुआ॥
ह्रस्व वा दीर्घ अकार	गज+इन्द्र=गजेन्द्र ।	अ+इ=ए ।
से परे हस्व वा दीर्घ	वीर+ईश=वीरेश ।	अ+ई=ए ।
इ, उ, ऋ रहें तो	स्वर-। उदय=स्वरोदय ।	ष। उ=ओ ।
थ+ इ= ए, थ +उ=	मुख+ऊपर=मुखोपर ।	अ - ऊ=ओ ।
बो, ब।ऋ=बर् ,	महा-ा-उत्सव≔महोत्सव ।	मा+उ≔ओ ।
होता है ॥	राज+ऋषि+राजर्षि ।	अ∔ऋ≔अर् ।
	महा+ऋषि=महर्षि ।	था+ऋ≕अर् ॥

तीसरा भेद-वृद्धि॥

परिभाषा ॥	दो शब्दों का स्वरों द्वारा मिलाप॥	कौन२स्वर मिलकरक्या हुआ॥
ह्रस्य वा दीर्घ अ से परे	परम+एक=परमैक ।	क्ष+ए≔ऐ ।
प्, पे, ओ, औ,रहे तो	देव+ऐश्वर्य≕देवैश्वर्य ।	म+ऐ≕ऐ ।
अ+ए वा अ+ऐ=ऐ,	परम+ओषधि=परमौषधि।	अ+ओ≕औ ।
अ+ओ वा अ+औ≕	महा+औषध≕महौषध ॥	अ।+औ≔ औ ॥
मी, हो जाता है ॥		

चौथा मेद--यण्॥

परिसाषा ॥	दो शब्दों का स्वरों द्वारा मिलाप ॥	किस स्वर को क्या हुआ।
इस्व वा दीर्घ इ उ,	विषि+अर्थ=विध्यर्थ ।	इ+ज=य ।
ऋ, से परे कोई	मति+माशा=पत्याशा ।	इ+आ=या ।
असैवर्ण स्वर रहे तो	बहु- -आरम्म=बह्वारम्म	उ+आ≔वा ।
इ को य्, उको व्	वहुं +ईर्षा +वहीर्षा ।	उ+ई≔वी ।
और ऋ को इ हो	अतिथि-। उपकार=अतिच्युपकार ।	इ+उ≕यु ।
जाता है तथा अगळा	निषि+ऐश्वर्य=निध्येश्वर्य ।	इ+ऐ=थै ।
स्वर उस य्, व्, र्,	पितृ+आगमन≔पित्रागमन ∤	ऋ-। आ=रा ।
में मिल जाता है ॥	मातृ+ऐश्वर्य≔मात्रैश्वर्य ।	ऋ+ऐ≕रै ।
	स्वामि+आनन्द=स्वाम्यानन्द् ॥	इ+सा=या ॥

१—जिसका स्थान और प्रयक्ष एक न हो उसे असवर्ण कहते हैं ॥

पांचवां भेद-अयादि॥

परिभाषा ॥	दो शक्दों का स्वरों द्वारा मेल ॥	किस स्वर को क्या हुआ ॥
ए, ऐ, ओ, औ,	ने- -अन≔नयन ।	ए+अ≔अय ।
इनसे परे कोई स्वर	गै-∤-अन≔गायन ।	ऐ+अ≕आय ।
रहे तो कमसे उनके	पो+अन=पवन ।	ओ+ज≕अव ।
स्थानमें अय्, आय्	पौ-1-अक=पावक ।	अै।+अ≔आव ।
अव्, आव्, हो जाते	भौ+इनी≕भाविनी ।	औ+इ≔आवि ।
हैं तथा अगला स्वर	नौ+आ=नावा ।	औ+आ=आवा ।
पूर्व न्यञ्जनमें मिला	शै-।-ई=शायी।	ऐ+ई≕आयी ।
दिया जाता है॥	शे+आते=शयाते ।	ए+आ=अया ।
	मौ+उक=भावुक ।	औ+उ≕आवु ॥

व्यञ्जनसन्धि ॥

इस के नियम बहुत से है-परन्तु यहां बोड़े से दिखाये जाते हैं:---

नम्बर || नियम ||

१ बदि क् से घोष, अन्तरश्चवा सर वर्ण परेरहेतो क् के स्थानमें गृहो जाता है॥

२ यदि किसी बर्ग के प्रथम बर्ण से परे सातु-नासिक वर्ण रहे तो उसके स्थान में उसी बर्ग का सानुनासिक वर्ण हो जाता है ॥

३ यदि चू, ट्, प्, वर्ण से परे घोष, अन्त-स्थ वा खर वर्ण रहे तो कमसे ज्, ड् और व् होता है ॥

श्र यदि च्हल स्वर से परे छ वर्ण रहे तो वह च् सहित हो जाता है, परन्तु दीर्घ स्वरसे परे कही २ होता है।

५ यदि त् से परे चवर्ग अथवा टवर्ग का प्र-थम वा द्वितीय वर्ण हो तो त् के स्थान में च्वा द्ही जाता है. और तृतीय वा चतुर्थ वर्ण परे रहे तो न् वा इही जाता है॥ व्यक्षनों के द्वारा शक्दों का मेळ ॥
सम्यक्+दर्शन=सम्यग्दर्शन।दिक्+अम्बर=
दिगम्बर।दिक् + ईशः=दिगीशः इत्यादि ॥
चित् + मूर्ति=चिन्मूर्ति । चित् + मय=
चिन्मय। उत्+मच=उन्मच। तत्+नयन=
तत्रयन। अप्+मान=अम्मान॥
अच्+अन्त=अजन्त। पर्+यदन=पट्टदन।
अप्+जा=अला, इत्यादि॥

ष्ट्स+छाया=ष्ट्रसच्छाया । अव+छेद=अव-च्छेद ।परि+छेद=परिच्छेद ।परन्तु रूक्मी+ छाया=रूक्मिच्छाया वा रूक्मीछाया ॥ तत्+चारु+तचारु । सत्+जाति=सज्जाति । उत्+च्वरु=उज्जुरु । तत्+टीका=तट्टीका । सत्+जीवन=सज्जीवन । जगत्+जीव=ज-गज्जीव । सत्+जन=सज्जन ॥ ६ यदि त्से परे ग्, घ्, इ, घ्, व्, भ्, य्, र, व्, अथवा स्वर वर्ण रहे तो त् के स्थान में द्हो जाता है॥

 यदि अनुस्तार से परे अन्तस्य वा ऊष्म वर्ण रहे तो कुछ भी विकार नहीं होता।

८ यदि अनुस्तार से परे किसी वर्ग का कोई वर्ण रहे तो उस अनुस्तार के स्थान में उसी वर्ग का पांचवां वर्ण हो जाता है॥

पदि अनुस्तार से परे स्तर वर्ण रहे तो मकार हो जाता है ॥ सत्+मक्ति=सद्मिकि । जगत्+ईश=जग-दीश । सत्+जाचार=सदाचार । सत्+घ-मे=सद्धमे, इत्यादि ॥ सं+हार=संहार । सं+यम=संयम । सं+ रक्षण=संरक्षण । सं+वत्सर=संवत्सर ॥ सं+गति=सङ्गति । अपरं+पार=अपरम्पार । अहं+कार=अहङ्कार । सं+चार=सङ्गार । सं+जोघन=सम्बोधन, इत्यादि ॥

सं+माचार=समाचार । सं+उदाय=समु-

दाय । सं+ऋद्भि=समृद्धि, इत्यादि ॥

विसर्गद्वारा शब्दों का मेल ॥

विसर्गसन्धि ॥

इस सन्धि के भी बहुत से नियम है उनमें से कुछ दिखाते हैं:---

नम्बर ॥ नियम ॥

१ यदि विसर्ग से परे प्रत्येक वर्ग का ती-सरा, चौथा, पांचवां अक्षर, अथवा य्, र, ल, ब, ह, हो तो ओ हो जाता है॥

२ यदि इकार उकार पूर्वक विसर्ग से परे क्, ख्, द, द, प्, फ्, रहे तो मूर्धन्य ष्, च्, छ रहे तो ताळव्य श् और त, थ्, रहे तो दन्त्य स् हो जाता है।।

३ यदि इकार उकार पूर्वक विसर्ग से परे प्रत्येक वर्ग का तीसरा, चौथा, पांचवां अक्षर वा स्वर वर्ण रहे तो इ होता है।।

४ यदि इकार उकार पूर्वक विसर्ग से परे रेफ हो तो विसर्गका छोप होकर पूर्व स्वर को दीर्घ हो जाता है ॥ मनः स्वातः स्वातः । पयः स्वरः स्वावरः । मनः स्वरः स्वातः । व्यदः स्वातः । व्यदः स्वातः ॥ व्यदः स्वातः ॥ विः स्वरः स्वातः ॥ विः स्वरः स्वातः ॥ विः स्वरः विः स्वरः । विः स्वरः विः स्वरः । विः स्वरः ।

धन≔निर्धन, इत्यादि ॥ निः+रस≔नीरस। निः+रोग≔नीरोग। निः+ राग≔नीराग । गुरुः+रम्यः=गुरूरम्यः, इत्यादि ॥

यह प्रथम अध्यायका वर्णविचार नामक तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

चौथा प्रकरण-शन्दविचार ॥

१- शब्द उसे कहते हैं-जो कान से छनाई देता है, उस के दो भेद है:-

(१) वर्णात्मक अर्थात् अर्थवोधक—जिसका कुछ अर्थ हो, जैसे—माता, पिता, घोड़ा, राजा, पुरुष, स्त्री, वृक्ष, इत्यादि ॥

(२) ध्वन्यात्मक अर्थात् अपशव्द-निसका कुछ भी अर्थ न हो, जैसे---चक्की या वादल

आदि का शब्द ॥

 याकरण में अर्थशोधक शब्द का वर्णन किया जाता है और वह पांच प्रकार का है— संज्ञा, सर्थनाम, विशेषण, किया और अव्यय ॥

(१) किसी देश्य वा अदस्य पदार्थ अथवा जीवधारी के नाम को संज्ञा कहते हैं. जैसे-

रामचन्द्र, मनुष्य, पशु, नर्मदा, आदि ॥

- (२) संज्ञा के बद्छे में जिस का प्रयोग किया जाता है उसे सर्वनाम कहते हैं, जैसे—मैं, यह, वह, हम, तुम आप, इत्यादि। सर्वनाम के प्रयोग से वाक्य में सुन्दरता आती है, द्विरुक्ति नहीं होती अर्थात् व्यक्तिवाचक शब्द का पुनः २ प्रयोग नहीं करना पढ़ता है, जैसे—मोहन आया और वह अपनी पुस्तक छे गया, यहां मोहन का पुनः प्रयोग नहीं करना पड़ा किन्तु उस के लिये वह सर्वनाम लाया गया।
- (३) जो संज्ञा के गुण को अथवा उस की संख्या को वतलाता है उसे विशेषण कहते हैं, जैसे—लारु, पीली, दो, चार, खट्टा, चौथाई, पांचवां, इत्यादि ॥

(४) जिस से करना, होना, सहना, आदि पाया जाने उसे क्रिया कहते हैं । जैसे— स्राता था, मारा है, जाऊंगा, सो गया इत्यादि ॥

(५) जिसमें लिंग, बचन और पुरुष के कारण कुछ विकार अर्थात् अदल बदल न हो उसे अन्यय कहते हैं, जैसे-अव, आगे, और, पीछे, ओहो, इत्यादि ॥

संज्ञाका विशेष वर्णन ॥

- १-- संज्ञा के स्वरूप के मेद से तीन मेद है-रूढि, यौगिक और योगरूढि ॥
 - (१) रूढ़ि संज्ञा उसे कहते है निसका कोई खण्ड सार्थक न हो, जैसे—हाथी, घोड़ा, पोथी, इत्यादि ॥
 - (२) जो दो शब्दों के भेल से अथवा प्रत्यय छगा के वनी हो उसे यौगिक संज्ञा कहते है, जैसे—बुद्धिमान, वाललीला, इत्यादि ॥
 - (३) योगरूदि संज्ञा उसे कहते है-जो रूप में तो यौगिक संज्ञा के समान दीखती हो

१. जो दीख पडेउसे हस्य तथा न दीख पडे उसे अहस्य कहते हैं॥

६ यदि त्से परेग, घ, इ, घ, व, भ, य, र, व, अथवा स्वर वर्ण रहे तो त् के स्थान में दृ हो जाता है ॥

७ यदि अनुसार से परे अन्तस्य वा ऊष्म वर्ण रहे तो कुछ भी विकार नहीं होता॥

८ यदि अनुसार' से परे किसी वर्ग का कोई वर्ण रहे तो उस अनुसार के स्थान में उसी वर्ग का पांचवां वर्ण हो जाता है॥

पदि अनुसार से परे सर वर्ण रहे तो मकार हो जाता है ॥ सत्+मक्तिः सद्मक्ति । जगत्+ईशः जग-दीश । सत्+श्राचारः सदाचार । सत्+ध-र्भः सद्धर्मे, इत्यादि ॥ सं+हारः अंद्वार । सं+यमः संयम् । सं+

सं+हार=संहार । सं+यम=संयम् । सं+ रक्षण=संरक्षण । सं+वत्सर=संवत्सर ॥

सं+गति=सङ्गति । अपरं+पार≔अपरम्पार । अहं+कार=अहङ्कार । सं+चार=सङ्गार । सं+चोघन=सम्बोघन, इत्यादि ॥

सं+आचार=समाचार । सं+उदाय=समु-दाय । सं+ऋद्धि=समृद्धि, इत्मादि ॥

विसर्गसन्धि ॥

इस सन्धि के भी बहुत से नियम हैं उनमें से कुछ दिखाते हैं:-

नम्बर ॥ नियम ॥

१ यदि विसर्ग से परे प्रत्येक वर्ग का ती-सरा, चौथा, पांचवां अक्षर, अथवा यू, इ, ह, बु, ह, हो तो ओ हो जाता है।।

२ यदि इकार उकार पूर्वक विसर्ग से परे क्, ख्, ट्, द, प्, फ्, रहे तो मूर्धन्य प्, च्, छ् रहे तो ताल्व्य श् और त, थु, रहे तो दन्त्य सु हो जाता है।।

३ यदि इकार उकार पूर्वक विसर्ग से परे प्रत्येक वर्ग का तीसरा, चौथा, पांचवां अक्षर वा स्वर वर्ण रहे तो इ होता है॥

श्व यदि इकार उकार पूर्वक विसर्ग से परे रेफ हो तो विसर्गका छोप होकर पूर्व स्वर को दीर्घ हो जाता है ॥ विसर्गद्वारा शब्दों का मेल ॥

मनः+गत=मनोगत । पयः+घर=पयोघर ।

मनः+हर=मनोहर । अहः+माग्य=अहो-माग्य । अवः+मुख=अघोमुख, इत्यादि ॥ निः+कारण=निष्कारण । निः+चळ=नि-चच्छ । निः+तार=निस्तार । निः+फळ= निष्फळ । निः+छळ=निश्छळ । निः+पाप= निष्पाप । निः+टइ=निष्टङ्क, इत्यादि ॥ निः+विन्न=निर्विन्न । निः+चळ=निर्वेळ-निः+मळ=निर्मेळ ।निः+जळ=निर्वेळ ।निः+ः घन=निर्धेन, इत्यादि ॥

निः+रस=नीरस। निः+रोग=नीरोग। निः+ राग=नीराग । गुरुः+रम्यः=गुरूरम्यः, इत्यादि॥

यह प्रथम अध्यायका वर्णविचार नामक तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

चौथा प्रकरण-शब्दविचार ॥

- १- शब्द उसे कहते हैं-जो कान से सुनाई देता है, उस के दो भेद हैं:--
 - (१) वर्णात्मक अर्थात् अर्थबोधक-निसका कुछ अर्थ हो, जैसे---माता, पिता, घोड़ा, राजा, पुरुप, स्त्री, बृक्ष, इत्यादि ॥
 - (२) ध्वन्यात्मक वर्थात् अपशब्द-जिसका कुछ मी अर्थ न हो, जैसे---चिक्की या वादल आदि का शब्द ॥
- व्याकरण में अर्थवोधक शब्द का वर्णन किया जाता है और वह पांच प्रकार का है— संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, किया और अव्यय ॥
 - (१) किसी देश्य वा अदृश्य पदार्थ अथवा जीवधारी के नाम को संज्ञा कहते हैं. जैसे---रामचन्द्र, मनुष्य, पशु, नर्भदा, आदि ॥
 - (२) तंज्ञा के बदले में जिस का प्रयोग किया जाता है उसे सर्वनाम कहते हैं, जैसे—में, यह, वह, हम, तुम आप, इत्यादि।सर्वनाम के प्रयोग से वाक्य में युन्दरता आती है, द्विरुक्ति नहीं होती अर्थात् व्यक्तिवाचक शब्द का युनः २ प्रयोग नहीं करना पढ़ता है, जैसे—मोहन आया और वह अपनी युस्तक ले गया, यहां मोहन का युनः प्रयोग नहीं करना पढ़ा किन्तु उस के लिये वह सर्वनाम लाया गया ॥
 - (२) जो संज्ञाके गुण को अथवा उस की संख्या को बतलाता है उसे विश्लेषण कहते हैं, जैसे—कारू, पीली, दो, चार, खट्टा, चौथाई, पांचवां, इत्यादि ॥
 - (४) जिस से करना, होना, सहना, आदि पाया जावे उसे किया कहते हैं । जैसे---खाता था, मारा है, जाऊंगा, सो गया इत्यादि ॥
 - (५) जिसमें लिंग, वचन और पुरुष के कारण कुछ विकार अर्थात् अदल बदल न हो उसे अन्यय कहते हैं, जैसे—अव, आगे, आर, पीछे. ओहो, इत्यादि ॥

संज्ञाका विशेष वर्णन ॥

- १- संज्ञा के स्वरूप के भेद से तीन भेद हैं-रूढि, यीगिक और योगरूढि ॥
 - (१) रूढ़ि संज्ञा उसे कहते है जिसका कोई खण्ड सार्थक न हो, जैसे—हाथी, घोड़ा. पोथी, इत्यादि ॥
 - (२) जो दो शन्त्रों के मेल से अथवा प्रत्यय लगा के बनी हो उसे यौगिक संज्ञा कहते है, जैसे—बुद्धिमान, वाललीला, इत्यादि ॥
 - (३) योगरूढि संज्ञा उसे कहते हैं-जो रूप में तो बैंगिक संज्ञा के समान दीवनी हो

१. जो दीस पंडेटसे इस्य तथा न दीस पड़े उमे अहरा कहते हैं ॥

परन्तु अपने शब्दार्थ को छोड़ दूसरा अर्थ बताती हो, जैसे—पङ्कज, पीताम्बर, हनुमान्, आदि ॥

- २- अर्थ के भेद से संज्ञा के तीन भेद है-जातिवाचक व्यक्तिवाचक और माववाचक॥
 - (१) जातिवाचक संज्ञा उसे कहते हैं-जिस के कहने से जातिमात्र का वोघ हो, जैसे-मनुष्य, पशु, पक्षी, पहाड़, इत्यादि ॥
 - (२) व्यक्तिवाचक संज्ञा उसे कहते है जिस के कहने से केवल एक व्यक्ति (मुख्यनाम) का बोध हो, जैसे---रामलाल, नर्मदा, रतलाम, मोहन, इत्यादि ॥
 - (२) माववाचक संज्ञा उसे कहते हैं जिस से किसी पदार्थ का धर्म वा स्वभाव जाना जाय अथवा किसी व्यापार का बोध हो, जैसे—कंबाई, चढ़ाई, छेनदेन, बालपन, इत्यादि ॥

सर्वनाम का विशेष वर्णन॥

सर्वनाम के मुख्यतथा सात भेद हैं-पुरुषवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, प्रश्नवाचक, संबन्धवाचक, आदरस्चक तथा निजवाचक ॥

- १— पुरुषवाचक सर्वनाम उसे कहते हैं—जिस से पुरुष का बोध हो, यह तीन प्रकार का है—उत्तमपुरुष, मध्यमपुरुष और अन्यपुरुष ॥
 - (१) जो कहनेवाले को कहे-उसे उत्तम पुरुष कहते हैं, जैसे मै ॥
 - (२) जो धुनने वाले को कहे-उसे मध्यम पुरुष कहते है, जैसे तू॥
 - (३) जिस के विषयमें कुछ कहा जाय उसे अन्य पुरुष कहते है, जैसे—वह इत्यादि॥
- २ निश्चयवाचक सर्वनाम उसे कहते है-जिससे किसी बात का निश्चय पाया जावे, इसके दो भेद है-निकटवर्ती और दूरवर्ती ॥
 - (१) जो पास में हो उसे निकटवर्ती कहते हैं, जैसे यह ॥
 - (२) जो दूर हो उसे दूरवर्ती कहते है, जैसे वह ॥
- ३- अनिश्चयवाचक सर्वनाम उसे कहते हैं-जिस से किसी बात का निश्चय न पाया जावे, जैसे-कोई, कुछ, इत्यादि ॥
- ४-- प्रश्नवाचक सर्वनाम उसे कहते हैं जिस से प्रश्न पाया जावे, जैसे---कौन, नया, इत्यादि॥
- ५— सम्बंधवाचक सर्वनाम उसे कहते है जो कही हुई संज्ञा से सम्बंध बतलावे, जैसे—जो, सो, इत्यादि ॥
- ६- आदरसूचक सर्वनाम उसे कहते है-जिस से आदर पाया जावे, जैसे-अाप, इत्यादि॥
- ७- निजवाचक सर्वनाम उसे कहते है-जिस से अपनापन पाया जाने, जैसे-अपना इत्यादि ॥

विशेषण का विशेष वर्णन ॥

विशेषण के मुख्यतया दो भेद हैं-गुणवाचक और संख्यावाचक ॥

- १— गुणवाचक विशेषण उसे कहते है—जो संज्ञा का गुण प्रकट करे, जैसे—काला, नीला, कंचा, नीचा, रूम्बा, आज्ञाकारी, अच्छा, इत्यादि ॥
- २ संख्यावाचक विशेषण उसे कहते हैं जो संज्ञा की संख्या वतावे, इस के चार भेद हैं – शुद्धसंख्या, कमसंख्या, बाद्दिसंख्या, और संख्यांश ॥
 - (१) शुद्धसंख्या उसे कहते है जो पूर्ण संख्या को बतावे, जैसे एक, दो, चार ॥
 - (२) कमसंख्या उसे कहते है जो संज्ञा का कम वतलावे, जैसे-पिहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, इत्यादि ॥
 - (३) आवृत्तिसंख्या उसे कहते हैं जो संख्या का गुणापन बतलावे, जैसे-दुगुना, चीगुना, इत्यादि ॥
 - (४) संख्यांश उसे कहते हैं जो संख्या का भाग वतावे, जैसे पंचमांश, आधा, तिहाई, चतुर्थीश, इत्यादि ॥

क्रिया का विशेष वर्णन ॥

किया उसे कहते हैं जिस का मुख्य अर्थ करना है, अर्थात् जिस का करना, होना, सहना, इत्यादि अर्थ पाया जावे, इस के दो भेद है—सकर्मक और अकर्मक ॥

- (१) सकर्मक किया उसे कहते हैं—जो कर्म के साथ रहती है, अर्थात् जिस में क्रिया का व्यापार कर्ता में और फल कर्म में पाया जाने, जैसे—वालक रोटी को खाता है, मै पुस्तक को पढ़ता हूं, इत्यादि ॥
- (२) अकर्मक किया उसे कहते है—जिसमें कर्म नहीं रहता, अर्थात् किया का ज्यापार और फल दोनों एकत्र होकर कर्ता ही में पाये जावें, जैसे लड़का सोता है, में जागता हूं, इत्यादि ॥ स्मरण रखना चाहिये कि—किया का काल, पुरुप और वचन के साथ नित्य सम्बंध रहता है, इस लिये इन तीनों का संक्षेप से वर्णन किया जाता है:—-

काल-विवरण ॥

किया करने में जो समय लगता है उसे काल कहते हैं, इस के मुख्यतया तीन भेद हैं— मूत, भविष्यत् और वर्तमान ॥

१— मृतकाल उसे कहते है—जिस की किया समाप्त हो गई हो, इस के छः भेद हैं— सामान्यभूत, पूर्णमूत, अपूर्णमूत, आसनमूत, सन्दिम्बमूत और हेतुहेतुमद्भूत ॥ (१) सामान्यमूत उसे कहते है-जिस मूतकाल से यह निश्चय न हो कि-काम योड़े समय पहिले हो चुका है या बहुत समय पहिले, जैसे खाया, मारा, इत्यादि॥

-(२) पूर्णमूत उसे कहते हैं कि जिस से माद्यम हो कि काम बहुत समय पहिले हो चुका है, जैसे—स्वाया था, मारा था, इत्यादि ॥

- (३) अपूर्णभूत उसे कहते हैं जिस से यह जाना जाय कि किया का आरंभ तो हो गया है परन्तु उस की समाप्ति नहीं हुई है, जैसे—खाता था, मारता था, पढ़ाता था, इत्यादि ॥
 - (४) आसम्रम्त उसे कहते हैं जिस से जाना जाय कि काम अभी थोड़े ही समय पहिले हुआ है, जैसे—साया है, मारा है, पढ़ाया है, इत्यादि ॥
 - (५) सन्दिग्यमूत उसे कहते हैं जिस से पहिळे हो चुके हुए कार्य में सन्देह पाया जावे, जैसे—साया होगा, मारा होगा ॥
- (६) हेतुहेतुमद्म्त उसे कहते हैं जिसमें कार्य और कारण दोनों मृत काल में पाये जावें, अर्थात् कारण किया के न होने से कार्य किया का न होना बतलाया जावे, जैसे—यदि वह आता तो मैं कहता, यदि सुन्नष्टि होती तो सुभिक्ष होता, हत्यादि ॥
- २— मिवण्यत् काल उसे कहते हैं जिसका आरंग न हुआ हो अर्थात् होनेवाली किया को मिवण्यत् कहते है. इसके दो भेद हैं—सामान्यमिवण्यत् और सन्माव्यमिवण्यत् ॥
 - (१) सामान्यमिवण्यत् उसे कहते है जिस के होने का समय निश्चित न हो, जैसे— मैं जाऊंगा, मै खाऊंगा, इत्यादि ॥
 - (२) सम्मान्यमिवण्यत् उसे कहते हैं जिसमें भविण्यत् काल और किसी वात की इच्छा पाई जावे, जैसे—साऊं, मारे, आवे, इत्यादि ॥
- वर्तमानकाळ उसे कहते है जिस का आरम्म तो हो जुका हो परन्तु समाप्ति न हुई
 हो, इस के दो भेद है—सामान्यवर्तमान और सन्दिग्धवर्तमान ॥

(१) सामान्यवर्तमान उसे कहते है जहां कर्ता किया को उसी समय कर रहा हो, जैसे— खोता है, मारता है, पढता है, इत्यादि ॥

- (२) सन्दिग्ध वर्तमान उसे कहते है जिस में प्रारंग हुए काम में सन्देह पाया जावे, जैसे—खाता होगा, पढ़ता होगा, इत्यादि ॥
- इनके सिवाय किया के तीन भेद और माने गये हैं—पूर्वकालिका किया, विधिकिया
 और सम्भावनार्थ किया ॥
 - (१) पूर्वकालिका किया से लिंग, वचन और पुरुष का बोध नहीं होता किन्तु उस का काल दूसरी किया से नोषित होता है, जैसे—पड़कर जाऊंगा, खाकर गया, इत्यादि ॥

- (२) विधिकिया उसे कहते हैं जिस से आज्ञा, उपदेश वा प्रेरणा पाई जावे, जैसे----खा, पढ़, साइये, पढ़िये, खाना चाहिये, इत्यादि ॥
- (३) सम्मावनार्थ किया से सम्मव का बोच होता है, जैसे—खाऊं, पहूं, आ जावे, चला जावे, इत्यादि ॥
- ५- प्रथम कह चुके है कि किया सकर्मक और अकर्मक मेद से दो प्रकार की है, उस में से सकर्मक किया के दो मेद और भी हैं-कर्तृप्रधान और कर्मप्रधान ॥
 - (१) कर्तृप्रधानिकया उसे कहते हैं—जो कर्ता के आधीन हो, अर्थात् जिसके छिंग, और बचन कर्ता के छिंग और बचन के अनुसार हों, जैसे—रामचन्द्र पुस्तक को पहता है, इंटकी पाठशाला को जाती है, मोहन बहिन को पढ़ाता है, इंट्यांदि ॥
 - (२) कर्मप्रधानिकया उसे कहते है कि जो किया कर्म के आधीन हो अर्थात् जिस क्रियाके लिंग और वचन कर्म के लिंग और वचन के समान हों, जैसे—राम-चन्द्र से पुस्तक पढ़ी जाती है, मोहन से वहिन पढ़ाई जाती है, फल खाया जाता है, इत्यादि ॥

पुरुप-विवरण ॥

प्रथम वर्णन कर चुके है कि—उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुष, ये ३ पुरुष है, इन का भी किया के साथ नित्य सम्बंध रहता है, जैसे—मै खाता हूं, इम पढ़ते हैं, वे जावेंगे, वह गया, तू सोता था, तुम वहां जाओ, मै आऊंगा, इत्यादि, पुरुष के साथ िंग का नित्य सम्बन्ध है इस िंथे यहां िंग का विवरण भी दिखाते हैं:—

लिंग-विवरण ॥

- १— जिस के द्वारा सजीव वा निर्जीव पदार्थ के पुरुषवाचक वा स्त्रीवाचक होने की पहिचान होती है उसे लिंग कहते हैं, लिंग माषा में दो प्रकार के माने गये हैं—पुर्लिंग और स्त्रीलिङ्ग ॥
 - (१) पुर्हिग—पुरुषवोषक शञ्द को कहते हैं, जैसे—मनुष्य, घोड़ा, कागज़, घर, इत्यादि ॥
 - (२) स्नीलिंग—सीवोधक शब्द को कहते हैं, जैसे—स्नी, कलम, घोड़ी, मेज़, कुसी, इत्यदि ॥
- २— माणिवाचक शब्दों का लिंग उन के जोड़े के अनुसार लोकव्यवहार से ही सिद्ध है, जैसे—पुरुष, स्त्री, घोड़ा, घोड़ी, बैल, गाय, इत्यांदि ॥

१-पुर्लिंग से स्नीलिंग बनाने की रीतियों का वर्णन यहा विशेष आवश्यक न जानकर नहीं किया गया है, इस का विषय देखना हो तो दूसरे व्याकरणों को देखों ॥

२— जिन अमिणवाचक शब्दों के अन्त में अकार वा आकार रहता है और जिन का आदिवदी अक्षर त नहीं रहता, वे शब्द मायः पुर्छिग होते है, जैसे—छाता, छोटा, घोडा, कागज, घर, इत्यादि ॥

(दीवार, कलम, स्लेट, पेन्सिल, दील आदि शब्दों को छोड़कर) ॥

- ४— जिन अप्राणिवाचक शब्दों के अन्तमें म, ई, वा त हो वे सब् खीलिंग होते हैं, जैसे—कलम, चिट्टी, लकड़ी, दवात, जात, आदि (धी, दही, पानी, खेत, पर्वत, आदि शब्दोंको छोड्कर)॥
- ५- जिन भाववाचक शब्दों के खन्त में आव, त्व, पन, और पा हो, वे सब पुर्लिंग होते है, जैसे--- चढ़ाव, मिळाव, मनुष्यत्व, छड़कपन, बुढ़ापा आदि ॥

६— जिन भाववाचक शब्दों के अन्त में आई, ता, वट, हट हो, वे सब स्नीर्लंग होते है, जैसे— चतुराई, उत्तमता, सनावट, चिकनाहट आदि ॥

७— समास में अन्तिम शब्द के अनुसार लिंग होता है, जैसे—पाठशाला, पृथ्वीपति, राजकन्या, गोपीनाथ, इत्यादि ॥

वचन-वर्णन ॥

१- वचन व्याकरण में संख्या को कहते हैं, इस के दो भेद हैं-एकवचन और बहुवचन।

(१) जिस शब्द से एक पदार्थ का वोध हो उसे एकवचन कहते है, जैसे—छड़का पढ़ता है, इस हिलता है, घोड़ा दौड़ता है॥

(२) जिस शब्द से एक से अधिक पदार्थी का नोघ होता है उसे नहुनचन कहते है, जैसे—छड़के पढ़ते है, बोड़े दौड़ते है, इत्यादि ॥

२- कुछ शन्द कत्ती कारक में एकवचन में तथा बहुवचन में समान ही रहते हैं, जैसे---घर, जल, वन, बृक्ष, बन्धु, वान्धव, इत्यादि ॥

वचनोंका सम्बंध नित्य कारकों के साथ है इसल्बिय कारकों का विषय संक्षेप से दिखाते हैं—हिन्दी में औठ कारक माने जाते हैं—कत्ती, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण और सम्बोधन ॥

कारकों का वर्णन ॥

१- कर्ता उसे कहते हैं जो किया को करे, उस का कोई चिन्ह नहीं है, परन्तु सकर्मक

⁹⁻कोई लोग सम्बध और सम्बोधन को कारक न मानकर शेष छ: ही कारकों को मानते हैं ॥

किया के कर्ता के आगे अपूर्णमूत को छोड़कर श्रेष मूर्तों में 'ने' का चिह्न आता है, जैसे—छड़का पढ़ता है, पण्डित पढ़ाता था, परन्तु पूर्णमूत आदि में गुरु ने पढ़ाया था, इत्यादि ॥

२- कर्म उसे कहते हैं जिस में किया का फल रहे, इस का चिह्न 'को' है. जैसे मोहन को बुलाओ, पुस्तक को पढ़ो, इत्यादि ॥

३- करण उसे कहते हैं जिस के द्वारा कर्ता किसी कार्य को सिद्ध करे, इस का चिह्न 'से' है, जैसे-चाक से करम बनाई, इत्यादि ॥

४— सम्प्रदान उसे कहते हैं जिस के लिये कर्ता किसी कार्य की करे, इस के चिह्न 'को' के लिये हैं, जैसे—मुझ को पोथी दो, लड़के के लिये खिलौना लाओ, इत्यादि ॥

५- अपादान उसे कहते हैं कि जहां से किया का विभाग हो, इस का चिह्न 'से' है, जैसे- वृक्ष से फल गिरा, घर से निकला, इत्यादि ॥

६— सम्बन्ध उसे कहते हैं—जिस से किसी का कोई सम्बंध प्रतीत हो, इस का चिह्न का, की, के, है, जैसे--राजा का घोड़ा, उस का घर, इत्यादि ॥

७— अधिकरण उसे कहते हैं—िक कर्ता और कर्म के द्वारा जहां पर कार्य का करना पाया जावे, उसका चिद्व में, पर, है, जैसे—आसन पर बैठो, क्ल में द्वगन्धि है, चटाईपर सोस्रो, इत्यादि ॥

८— सम्बोधन उसे कहते हैं जिस से कोई किसी को पुकारकर या चिताकर अपने सम्मुख करे, इस के चिह्न—हे, हो, अरे, रे, इत्यादि है ॥ जैसे—हे माई. अरे नौकर. अरे रामा, अय छड़के इत्यादि ॥

अन्ययों का विशेष वर्णन ॥

मथम कह चुके हैं कि—अन्यय उन्हें कहते हैं जिनमें लिंग, बचन और कारक के कारण कुछ विकार नहीं होता है, अन्ययों के छः मेद हैं कियाविशेषण, सम्बंधवीषक, उपसर्ग, संयोजक, विमाजक और विसायादिबोषक ॥

- १- कियाविशेषण अन्यय वह है-जिस से किया का विशेष, काल और रीति आदि का वोष हो, इस के चार भेद हैं-कालवाचक, स्थानवाचक, भाववाचक और परि-माणवाचक ॥
 - (१) कालवाचक समय वतलानेवाले को कहते है, जैसे अव, तव, तव, कल, फिर, सदा, शाम, प्रातः, परसों, पश्चात्, तुरन्त, सर्वदा, श्रीघ्र, कव, एकवार, वारंवार, इत्यादि ॥
 - (२) स्थानवाचक—स्थान वतळानेवाळे को कहते हैं, जैसे—यहां, जहां, वहां, कहां, तहां, हघर, उघर, समीप, दूर, इत्यादि ॥

- (३) मानवाचक उन को कहते हैं जो मान को प्रकट करें, जैसे अचानक, अर्थात्, केवल, तथापि, बृथा, सचमुच, नही, मत, मानो, हां, खयम्, झटपट, ठीक, इत्यादि ॥
- (४) परिमाणवाचक-परिमाण नतलानेवालों को कहते हैं, जैसे-अत्यन्त, अधिकं, कुछ, प्रायः, इत्यादि ॥
- २— सम्बंघबोधक अव्यय उन्हें कहते है—जो वाक्य के एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ सम्बंघ वतलाते है, जैसे—आगे, पीछे, संग, साथ, मीतर, बदले, तुल्य, नीचे, ऊपर, बीच, इत्यादि ॥
- ३- उपसर्गों का केवल का प्रयोग नहीं होता है, ये किसी न किसी के साथ ही में रहते हैं, संस्कृत में जो—म आदि उपसर्ग हैं वे ही हिन्दी में समझने चाहियें, वे उपसर्ग ये हैं—म, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर, वि, आ, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, प्रति, परि, अभि, उप।।
- ४— संयोजक अन्यय उन्हें कहते हैं—जो अन्यय पदों वाक्यों वा वाक्यखंडों में आते हैं और अन्वय का संयोग करते है, जैसे—और,यदि, अथ, कि, तो, यथा, एवस्, भी, पुनः, फिर, इत्यादि ॥
- ५- विभाजक अञ्यय उन्हें कहते है जो अञ्यय पदों वाक्यों वा वाक्यखण्डों के मध्य में आते है और अन्वय का विभाग करते है, जैसे-अथवा, परन्तु, चाहें, क्या, किन्तु, वा, जो, इत्यादि ॥
- ६— विस्मयादिवीयक अन्यय उन्हें कहते हैं जिनसे—अन्तःकरण का कुछ माय या दशा प्रकाशित होती है, जैसे—आह, हहह, ओहो, हाय, घन्य, छीछी, फिस, विक्, दूर, इत्यादि ॥

यह प्रथमाध्याय का शब्दविचार नामक चौथा प्रकरण समाप्त हुआ !!

पांचवां प्रकरण-वाक्यविचार ॥

पहिले कह चुके हैं कि पदों के योग से वाक्य वनता है, इस में कारकसहित संज्ञा तथा किया का होना अति आवश्यक है, वाक्य दो प्रकार के होते हैं—एक कर्तृप्रधान और दूसरा कर्मप्रधान ॥

१- जिसमें कर्ता प्रधान होता है उस वाक्य को कर्तृमवान कहते हैं, इस प्रकार के वाक्य में यधिप आवश्यकता के अनुसार सब ही कारक आ सकते हैं परन्तु इस में

- कती और किया का होना बहुत जरूरी है और यदि किया सकर्मक हो तो उस के कर्म को भी अवश्य रखना चाहिये॥
- न्यानय में पदों की योजना का कम यह है कि—वाक्य के आदि में कत्ती अन्त में किया
 और शेष कारकों की आवश्यकता हो तो उन को बीच में रखना चाहिये॥
- ३— पदों की योजना में इस बात का विचार रहना चाहिये कि—सव पद ऐसे गुद्ध और यथास्थान पर, रखना चाहिये कि उन से अर्थ का सम्बंध ठीक प्रतीत हो, क्योंकि पद असम्बद्ध होने से वाक्य का अर्थ ठीक न होगा और वह वाक्य अगुद्ध समझा जायगा॥
- 8- गुद्ध बाक्य का उदाहरण यह है कि—राजा ने बाण से हरिण को मारा, इस कर्तृप्रधान वाक्य में राजा कर्ता, बाण करण, हरिण कर्म और मारा, यह सामान्य मृत की क्रिया है, इस बाक्य में सब पद शुद्ध है और उन की योजना भी ठीक है, क्योंकि एक पद का दूसरे पद के साथ अन्वय है, इस लिये सम्पूर्ण वाक्य का 'राजा के बाण से हरिण का मारा जाना' यह अर्थ हुआ ॥
- ५- व्याकरण के अनुसार पदयोजना ठीक होने पर भी यदि पद असम्बद्ध हों तो बाक्य अशुद्ध माना जाता है, जैसे—बनिया बस्छे से कपड़े को सींता है, इस बाक्य में यद्यपि सद पद कारकसहित शुद्ध है तथा उनकी योजना भी यथास्थान है परन्तु पद असम्बद्ध हैं अर्थात् एक पद का अर्थ दूसरे पद के साथ अर्थ के द्वारा मेल नहीं रखता है, इस कारण बाक्य का कुछ भी अर्थ नहीं निकलता है, इसलिये ऐसे बाक्यों को भी अशुद्ध कहते हैं ॥
- ६ जैसे कर्तृप्रधान वाक्य में कर्ता का होना आवश्यक है वैसे ही कर्मप्रधान वाक्य में कर्म का होना भी आवश्यक है, इस में कर्ता की विशेष आकांक्षा नहीं रहती है, इस कर्मप्रधान वाक्य में भी श्रेष कारक कर्म और किया के वीच में यथास्थल रक्खे जाते हैं।
- ७— फर्मप्रधान वाक्य में यदि कर्ता के रखने की इच्छा हो तो करण कारक के चिन्ह 'से' के साथ लाना चाहिये, जैसे—छड़के से फल खाया गया, गुरु से शिप्य पढ़ाया जाता है, इत्यादि ॥
- ८— वाक्य में जिस विशेष्य का जो विशेषण हो उस विशेषण को उसी विशेष्य से पहिले ला-ना चाहिये, ऐसी रचना से वाक्य का अर्थ शीघ ही जान लिया जाता है, जैसे—निर्देयी सिंह ने अपनी पैनी दाढ़ों से इस दीन हरिण को चावडाला, इस वाक्य में सब विशे-पण यथास्थान पर है, इस लिये वाक्यार्थ शीघ ही जान लिया जाता है ॥
- ९- यदि विशेषण अपने विशेष्य के पूर्वः न रक्से जांय तो दूरान्वय के कारण अर्थ समझने में फठिनता पड़ती है, जैसे- बड़े वैठा हुआ एक रूडका छोटा घोड़े पर चला जाता है। इस बाक्य का अर्थ विना सोचे नहीं जाना जाता, परन्तु इसी वाक्य में यदि

अपने २ विशेष्य के साथ विशेषण को मिला दें-तो शीघ ही अर्थ समझ में आ जायगा, जैसे एक छोटा लड़का वहे घोड़े पर वैठा चला जाता है, यद्यपि ऐसे वाक्य अशुद्ध नहीं माने जाते हैं, किन्तु क्किष्ट माने जाते हैं ॥

१०-जब वाक्य में कर्ता और किया दो ही हों तो कर्ता को उद्देश्य और किया को विधेय

कहते हैं॥

- ११-जिस के विषय में कुछ कहा जाने उसे उद्देश्य कहते हैं और जो कहा जावे उसे वि-धेय कहते है, जैसे-वैल चलता है, यहां वैल उद्देश्य और चलता है यहां विघेय है ॥
- १२—उद्देश्य को विशेषण के द्वारा और विधेय को कियाविशेषण के द्वारा बढ़ा सकते हैं, जैसे अच्छा रुद्का शीघ्र पढ़ता है।।
- १३—यदि कर्ता को कह कर उसका निशेषण किया के पूर्व रहे तो कर्ता को उहेक्य और निशेषणसहित किया को विषेय कहेंगे, जैसे— कपड़ा मैला है, यहां कपड़ा उद्देश्य और मैला है विषेय है ॥
- १४-यदि एक क्रिया के दो कर्ता हों और वे एक दूसरे के विशेष्य विशेषण न हो सकें तो पहिला कर्ता उद्देश्य और दूसरा कर्ता कियासहित विषेय माना जाता है, जैसे-यह मनुष्य पशु है, यहां 'यह मनुष्य' उद्देश्य और 'पशु है' विषेय जानो ॥
- १५—जो शब्द कर्ता से सम्बंध रखता हो उसे कर्ता के निकट और जो किया से सम्बंध रखता हो उसे किया के निकट रखना चाहिये, जैसे— मेरा टहू जंगल में अच्छी-तरह फिरता है, इत्यादि ॥

१६-विशेषण संज्ञा के पूर्व और क्रियाविशेषण क्रिया के पूर्व रहता है, जैसे-अच्छा छड्का शीव पढता है ॥

१७-पूर्वकालिका किया उसी किया के निकट रखनी चाहिये जिससे वाक्य पूर्ण हो, जैसे- लड़का रोटी खाकर जीता है।।

१८-वानय में प्रश्नवाचक सर्वनाम उसी जगह रखना चाहिये जहां मुख्यतापूर्वक प्रश्न हो, जैसे-यह कौन मनुष्य है जिसने मेरा मुख्य किया ॥

- १९-यदि एक ही किया के जुदे २ लिंग के अनेक कर्ता हों तो किया बहुवचन हो जाती है, तथा उस का लिंग अन्तिम कर्ता के लिंग के अनुसार रहेगा, जैसे-वकरियां, घोड़े और विल्ली जाती हैं॥
- २०-यदि एक ही किया के अनेक कर्ता िंग और वचन में एक से न हों परन्तु उन के समुदाय से एकवचन समझा जाय तो किया भी एकवचनात्त होगी, और यदि बहुवचन समझा जाय तो किया भी बहुवचनान्त होगी, जैसे- मेरा घन माल और रुपये पैसे आज मिलेंगे। मेरे घोड़े बैठ ऊंट और विल्ली सो गई ॥

- २१-आदर के लिये किया में बहुवचन होता है, चाहें आदरस्चक शब्द कर्ता के साथ हो वा न हो, जैसे- राजाजी आये है। पिताजी गये है, आप वहां जावेंगे, इत्यादि॥
- २२-यदि एक किया के बहुत कर्म हों और उन के नीच में निमाजक शब्द रहे तो कि-या एकवचनान्त रहेगी, जैसे-मेरा माई न रोटी, न दाछ, न मात, खानेगा ॥
- २३-यदि एक किया के उत्तम, मध्यम और अन्य पुरुष कर्ता हों तो किया उत्तम पुरुष के अनुसार और यदि मध्यम तथा अन्य पुरुष हों तो मध्यम पुरुष के अनुसार होगी, जैसे---तुम, वह और मैं चढंगा। तुम और वह जाओंगे॥
- २४—बाक्य में कभी २ विशेषण भी क्रियाविशेषण हो कर आता है, जैसे—भोड़ा अच्छा दौड़ता है, इत्यादि ॥
- २५-वाक्य में कभी २ कती, कर्म तथा किया गुप्त भी रहते है, जैसे-खेलता है, दे दिया, घर का नाग ॥
- २६—सामान्यभूत, पूर्णमूत, आसन्नमूत और सन्दिग्धमूत, इन चार कालों में सकर्मक किया के आगे 'ने' चिन्ह रहता है, परन्तु अपूर्णमूत और हेतुहेतुमद्भृत में नहीं रहता है, जैसे—में ने दिया, उस ने खाया था, लड़के ने लिया है, माई ने दिया होगा, माता खाती थी, इत्यादि ॥
- २७--वक्तना, बोलना, भूलना, जनना, जाना, के जाना, ला जाना, इन सात कियाओं के किसी भी काल में कर्ता के आगे 'ने' नहीं आता है ॥
- २८-जहां उद्देश्य विरुद्ध हो वहां वाक्य असंमव समझना चाहिये, जैसे---आग से सींच-ते है, पानी से जरूते है, इत्यादि ॥

यह प्रथमाध्याय का वाक्यविचार नामक पांचवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥ इति श्री जैन श्वेताम्बर धर्मोपदेशक, यतिप्राणाचार्य, विवेकलव्यिशिप्य, शील-सौमाग्य-निर्मितः । जैनसम्प्रदायशिक्षायाः ।

प्रथमोऽध्यायः ॥

Sec. 15

द्वितीय अध्याय॥

प्रथम प्रकरण-चाणक्यनीतिसारदोहावलि ॥

- 1888 S

मङ्गलाचरण ॥

श्रीग्रह्देव प्रताप से, होत मनोरथ सिद्धि ॥ घन ते ज्यों तह वेल दल, फूल फलन की बृद्धि ॥ १ ॥ बालबोध के कारणे, नीति करूं परकास ॥ दोहा छन्द बनाय के, सुगम करूं मैं जास ॥ २ ॥

भाषार्थ—विद्या को बतलाकर—इस मब और परमव में छुखी करने वाले श्रीपरम गुरु महाराज के प्रताप से मनुष्य को मनोवान्छित सिद्धि प्राप्त होती है, जैसे मेघ के बरसने से दृक्ष, बेल, कल, फल और फल जादि की दृद्धि होती है ॥ १ ॥ बुद्धिमानों ने संस्कृत में जिस नीतिशास्त्र को प्रकाशित किया है, जसी को मैं वालकों को बोध होने के लिये दोहा छन्द में बनाकर सुगम रीति से प्रकाशित करता हूँ ॥ २ ॥

शास्त्र पठन से होत है, कीरति इस जग मान ॥ सुस्री होत परलोक में, शास्त्र गुरूगम जान ॥ ३॥

शास्त्र के पढ़ने से इस छोक में कीर्ति होती है और जिस का इस छोक में यश है वह परछोक में भी सुसी होता है, इस छिये शास्त्र गुरु के द्वारा अवस्य पढ़ना चाहिये॥ ३॥

इल्म पढ़न उद्यम करो, वृद्ध काय पर्यन्त ॥ इल्म पढ़े पहुँचें जहां, नहिँ पहुँचें घनवन्त ॥ ४॥

बुदापा आ जावे तब भी विद्या पढ़ने का उद्यम करते ही रहना चाहिये, देखी! जिस जगह धनवान् नहीं जा सकता उस जगह विद्यावान् पहुँच सकता है ॥ ८ ॥

सल शास्त्र के अवण से, चीन्हैं घर्म सुजान ॥ कुमति दूर व्है ज्ञान हो, सुक्ति ज्ञान से मान ॥ ५॥

सचे शास्त्र के सुनने से बुद्धिमान् जन धर्म को अच्छी तरह पहिचानते है, शास्त्र के श्रव-ण से सराब बुद्धि दूर होकर ज्ञान होता है और ज्ञान से मुक्ति अर्थात् अक्षय मुख मि-छता है ॥ ५ ॥

नहिं होवै जिस शास्त्र से, धर्म प्रीति वैराग ॥ निकमा श्रम तहँ क्यों करो, वृथा छवै ज्यों काग ॥ ६ ॥ जिस शास्त्र के सुनने से न तो वैराग्य हो और न वर्म में ही प्रीति हो, ऐसे शास्त्र में व्यर्थ परिश्रम नहीं करना चाहिये, क्योंकि उस का पढ़ना काकमाण के समान है ॥ ६ ॥

पैसा दै मैधुन करै, भोजन पर आधीन ॥

खण्ड खण्ड पण्डित पनो, जॉन विडम्बन तीन ॥ ७ ॥

द्रव्य खर्च कर मैथुन करना, पराये वश होकर मोजन करना और अध्रे २ शास्त्र सीखना, इन तीन बातों से मनुष्य की विडम्बना (फजीहत) होती है ॥ ७॥

चरण एक वा अर्ड पद, नित्य सुभाषित सील ॥ भूरख हू पण्डित हुवै, निदयन सागर दील ॥ ८ ॥

एक पाद अथवा आधा पद भी प्रतिदिन सुमापित का सीखने से मूर्क भी पण्डित हो सकता है, जैसे देखो । बहुत सी निदयों के इकड़े होने पर सागर भर जाता है ॥ ८॥

महा वृक्ष को सेविये, फल छाया जुत जोय॥ दैव कोप करि फल हरै, क्कै न छाया कोय॥९॥

. बड़े दृक्ष का सेवन करना चाहिये जो कि फल और छाया से युक्त हो, यदि दैव के कोप से फल न मिले तो भी छाया को कौन रोक सकता है।। ९।।

गुरु छाया अरु तात की, बड़े भ्रात की छांह ॥ राजमान छाया गहिर, दुर्लभ है जहँ ताँह ॥ १०॥

गुरु की छाया, बाप की छाया, बढ़े भाई की छाया और राजा से आदर मिलनेरूप छाया (ये छाया मिलने से जगत्में सब प्रकार से मनुष्य खुश रहता है परन्तु) ये छाया हर ज-गह मिलनी कठिन हैं॥ १०॥

नदी तीर जो तरु लग्यो, विन अंकुश जो नारि॥ राजा मन्नी हीन जो, तिहुँ विनसे निरवारि॥ ११॥

नदी के किनारे पर छगा हुआ वृक्ष, विना अंकुश्च के की और मन्नीहीन राजा, ये तीनों प्रायः नष्ट हो जाते हैं ॥ ११ ॥

अतिहिँ दान तें बाले बँध्यो, दुर्योघन अति गर्व ॥ अति छवि सीता हरण भो, अति तजिये थल सर्व ॥ १२॥

बहुत दान के कारण बर्लिराजा (विष्णुकुमार मुनि के हाथ से) बांघा गया, बहुत अहं-कार के करने से दुर्योधन का नाश हुआ और बहुत छवि के कारण सीता हरी गई, इस लिये भति को सब जगह छोड़ना चाहिये ॥ १२ ॥

क्षमा खड्ग जिन कर गद्यो, कहा करै खल कोय ॥ विन ईंघन महि अग्नि परि, आपहि चीतल होय ॥ १३॥

१—इस की कथा त्रिषष्टिशलाकापुरुपचरित्रादि प्रन्यों में लिंखी है ॥

क्षमारूपी तलवार जिस के हाथ में है उस का कोई दुए क्या कर सकता है, जैसे ई-धनरहित पृथिवी पर पड़ी हुई अग्नि आप ही बुझ जाती है ॥ १३ ॥

धर्मी राजा जो हुवै, अथवा पापी जार ॥ प्रजा होत तिहि देश की, राजा के अनुसार ॥ १४॥

राजा धर्मात्मा हो तो उस की प्रजा भी धर्म की रीति पर चलती है, राजा अधर्मी अथवा जार हो तो उस की प्रजा भी वैसी ही हो जाती है, तात्पर्य यह है कि—जैसा राजा होता है उस देश की प्रजा भी वैसी ही हो जाती है ॥ १४ ॥

बुद्धिगम्य सब शास्त्र हैं नहिँ पावै निरवुद्धि ॥ नेत्रवन्त दीपक रुखै, नेत्रहीन नहिँ सुद्धि ॥ १५ ॥

अपनी बुद्धि ही शास पढ़कर भी ज्ञान का प्रकाश करती है, किन्तु बुद्धिहीन को शास भी कुछ लाभ नहीं पहुंचा सकता है, जैसे—दीपक नेत्रवाले के लिये चांदना करता है परन्तु अन्वे को कुछ भी लाभ नहीं पहुंचाता है।। १५॥

पण्डित पर उपदेश में, जग में होत अनेक ॥ चलै आप सतमार्ग में, सो लाखन में एक ॥ १६॥

दूसरे को उपदेश देने में पण्डित (चतुर) संसार में अनेक देखे जाते हैं, परन्तु आप अच्छे मार्ग में चलनेवाला लाखों में एक देखा जाता है ॥ १६ ॥

नहीं देव पाषाण में, दारु मृत्तिका माँहि ॥ देव भाव मांहीं बसै, भाव मृत्र सव मांहि ॥ १७ ॥

न तो पत्थर में देव हैं, न डकड़ी और मिट्टी में देव है, किन्तु देव केवल अपने भाव में है (अर्थात् जिस देव पर अपना भाव होगा वैसाही फल वह देव अपनी शक्ति के अनुसार दे सकेगा) इस लिये सब में माव ही मूल (कारण) समझना चाहिये॥ १७॥

क्षमा तुल्य कोइ तप नहीं, सुख सन्तोष समान ॥ नहिँ तृष्णा सम व्याघि हु, घम द्या सम आन ॥ १८॥

क्षमा के बराबर कोई तप नहीं, सन्तोप के बराबर कोई झुल नहीं, तृष्णा के समान कोई रोग नहीं और देया के समान कोई धर्म नहीं है ॥ १८ ॥

तृष्णा चैतरणी नदी, यम है कोघ छ दोष ॥ कामधेनु विद्या सही, नन्दन वन सन्तोष ॥ १९॥

तृष्णा वैतरणी नदी के समान है (अर्थात् इस की याह नहीं मिलती है), क्रोधरूपी दोष यमराज के सदश है, विद्या कामधेनु के समान है (अर्थात् सव प्रकारके वांछित फल

१—इसी लिये " यथा राना तथा प्रना " यह लोकोक्ति भी संसार में प्रसिद्ध है ॥

१-दया का लक्षण ९१ वे दोहे की व्याह्या में देखो ॥

देने वाली है) और सन्तोष नन्दन वन के समान इ (अर्थात् मुख और विश्राम का बाग है) ॥ १९॥

गुण पूछहु तजि रूप को, कुल तजि पूँछहु शील॥ विद्या तजि सिधि पूँछिये, मोग पूँछ घन ढील॥ २०॥

रूप को छोड़कर विद्या को पूंछो, कुछ को छोड़कर शीछ को पूंछो, विद्या को छोड़-कर सिद्धि को पूंछो तथा घन को छोड़कर मोग को पूंछो, (अर्थात् यदि गुणवान् है तो . रूप हो तो क्या और न हो तो क्या, अच्छा शीछवान् अर्थात् आचारवान् पुरुष है तो उस की जाति से क्या प्रयोजन है अर्थात् जाति उत्तम हो तो क्या और उत्तम न हो तो क्या, जो मत्यक्ष सिद्धि दिखछाता है तो उस की विद्या का क्या पूंछना और सदा मोग करता है अर्थात् खाता सरचता है तो फिर उस के पास घन का क्या पूंछना)। २०।

> गुण आभूषण रूप को, कुल को शील सँयोग॥ विचा भूषण सिद्धि है, घन को भूषण भोग॥ २१॥

रूप का भूषण (गहना) गुण है, जाति का भूषण शील (अच्छा चाल चलन) है, विद्या का भूषण सिद्धि है और धन का भूषण भोग है (तात्पर्य यह है कि गुण के विना रूप किसी काम का नहीं, अच्छे चाल चलन के विना जाति कुछ काम की नहीं, सिद्धि के विना विद्या कुछ काम की नहीं और भोग के विना धन किसी काम का नहीं है) ॥ २१ ॥

भूमि पड़्यो जल होत शुचि, पतिव्रत से शुचि नार ॥ प्रजापाल राजा शुची, विप्र सँतोष सुधार ॥ २२ ॥

पृथिदी पर पड़ा हुआ जल पवित्र है, पतित्रता अर्थात् शीलवती स्त्री पवित्र है, मजा की पालना करने वाला राजा पवित्र है तथा सन्तोष रखने वाला बाह्मण पवित्र है ॥ २२ ॥

विन लिम्पी वसुघा सकल, ग्रुची होत मन मान ॥
जह लिम्पी तह फेर ह, लिम्पे वह श्रुचि थान ॥ २३ ॥
विना लिपी हुई पृथिवी पवित्र होती है, नहां लिपी हुई हो वहां फिर लीपने से वह स्थान
पैवित्र होता है ॥ २३ ॥

कृषि देखो पहिले प्रहर, दूजे घर सम्माल ॥ घन देखो तीजे प्रहर, नित प्रति पुत्र निहाल ॥ २४ ॥

^{9—}इस का तात्पर्य यह है कि वैसे तो विना लिपी हुई सब पृथिवी सर्वदा पवित्र ही मानी जाती है क्यों-कि पृत्रिवी और जल बादि पदार्थ खभाव से ही छह माने गये हैं परन्तु जिस स्थान मे लीप पोत कर कोई कार्यविशेष किया गया है अतः वह स्थान उस कार्यविशेष के ससर्ग से अछुद्ध होने के कारण फिर लीपने से झुद्ध माना जाता है ॥

पहिले प्रहर में अर्थात् प्रातःकाल खेती का काम देखना चाहिये, दूसरे प्रहर में अर्थात् दोपहर को घर का काम देखना चाहिये, तीसरे प्रहर में घन (माल) का काम देखना चाहिये और पुत्र तथा पुत्री को प्रतिसमय देखते रहना चाहिये, तात्पर्य यह है कि यदि घर का खामी इन सब को नहीं देखेगा तो ये सब अवस्य बिगड़ जांयगे॥ २४॥

कहा करें मतिवन्त अरु, शूर वीर कवि राज ॥ दैव छ छल देखत रहें, करें विफल सब काज ॥ २५ ॥

बुद्धिमान्-शर्वीर और बड़ा कवि (शास्त्र पढ़ा हुआ पण्डित) भी क्या कर सकता है-यदि दैव (कर्म की गति) ही छक करके सब काम को निष्फळ कर रैहा हो ॥ २५॥

सब उपकार करो सही, चो घन दान कु कोय ॥ लाड़ लड़ाओ बहुत ही, नहिँ वश भाणज होय ॥ २६॥

बहुत उपकार भी किया जाय और सब प्रकार का धन माल भी दिया जाय तथा प्री-ति से लाड़ भी किया जाय तो भी मानजा (बहिन का पुत्र) वश्च में नहीं होता (अपनी लाञ्चा में नहीं चलता) है ॥ २६॥

भगिनीसुत अधिकार में, कवहुँ न दीजै काम ॥ कछु दिन बीते बाद ही, होय महा रिपु वाम ॥ २७॥

समझदार मनुष्य को चाहिये कि अपनी बहिन के पुत्र के अधिकार में कभी घर का काम न सैंपि, क्योंकि कुछ दिन बीतने पर वह समय पाकर महाझत्रु तथा उछटा (विरुद्ध) हो जाता है॥ २७॥

जिस नर को कुल शील अर, विद्या जानी नाँहि॥ निह करिये विश्वास तिहिँ, चतुर पुरुष मन माँहि॥ २८॥ जिस मनुष्य का शील, कुल और विद्या न माद्धम हो, उस का चतुर पुरुषों को विश्वास नहीं करना चाहिये॥ २८॥

प्रीति कहा मक्षार सों, कह राजा सों प्रीति ॥ गणिका सों पुनि प्रीति कह, कह जाचक की प्रीति ॥ २९॥

मार्जार (बिछी) के संग प्रीति क्या है (व्यर्भ है), राजा के साथ भी प्रीति क्या है (यह भी व्यर्थ है, क्योंकि राजा छोग पिशुनों अर्थात् चुगुळखोरों के कहने से आगा पीछा न विचार कर बोड़ी सी बात पर ही श्रीष्ठ ही आंख बदळ छेते हैं), वेक्या से भी क्या प्रीति है (यह भी व्यर्थ है, क्योंकि वह तो केवळ द्रव्य से प्रीति रखती है, उस का जो कुछ हाव मान और प्रेम है सो केवळ रूपचन्द के छिये है) और याचक (भीख

१---तात्पर्य यह है कि क्में की गति के उसटे होने से कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता है ॥

मागने वाले) से भी क्या प्रीति है (यह भी व्यर्थ रूपही है, क्योंकि इस से भी कुछ प्र-योजन की सिद्धि नहीं हो सकती है किन्छु लघुता ही होती है) ॥ २९ ॥

नर चित कों दुख देत हैं, कुच नारी के दोय ॥ होत दुखी वह पड़न तें, इस विधि सब कों जोय ॥ ३० ॥

देखो ! क्षियों के दोनों कुच पुरुषों के चित्त को दुःख देते हैं, आखिरकार वे आप भी दुःख पाकर नीचे को गिरते है, इसी प्रकार सब को जानना चाहिये अर्थात् वो कोई मनुष्य किसी को दुःख देगा अन्त में वह आप भी सुख कभी नहीं पावेगा ॥ ३०॥

सिंघरूप राजा हुवै, मन्नी बाघ समान ॥ चाकर गीघ समान तब, प्रजा होय क्षय मान ॥ ३१ ॥

राजा सिंह के समान हो अर्थात् प्रजा के सब धन माछ को छट्टने का ही खयाल रक्से, मन्नी बांबके समान हो अर्थात् रिश्वत खाकर झूंटे अभियोग को सचा कर देवे अथवा बादी और प्रतिवादी (मुद्दई और मुद्दायला) दोनों से घूष खा जावे और चाकर छोग गीध के समान हों अर्थात् प्रजा को ठगने वाले हों तो उस राजा की प्रजा अवस्य नाश को प्राप्त हो जाती है ॥ २१ ॥

उपज्यो धन अन्याय करि, दृश्ताहिँ बरस ठहराय॥ सबिह सोलवें वर्ष लौं, मूल सहित विनसाय॥ ३२॥

अन्याय से कमाया हुआ धन केवल दश वर्ष तक रहता है और सोलहर्ने वर्ष तक वह सब घन मूलसहित नष्ट हो जाता है ॥ ३२ ॥

विद्या में व्हे कुशल नर, पावै कला सुजान ॥ द्रव्य सुभाषित को हुँ पुनि, संग्रह करि पहिचान ॥ २३ ॥

विद्या में कुशल होकर झुजान पुरुष अनेक कलाओं को पा सकता है अर्थात् विद्या सीखा हुआ मनुष्य यदि सब प्रकार का गुण सीखना चाहे तो उस को वह गुण शीष्ट्र ही प्राप्त हो सकता है, फिर—विद्या पढ़े हुये मनुष्य को चतुराई पाप्त करनी हो तो—सुभाषित अन्य (जो कि अनेक शास्त्रों में से निकाल कर बुद्धियान् श्रेष्ठ किवयों ने बनाये हैं, जैसे—चाणक्यनीति, मर्तृहरिशतक और सुमाषितरत्नमाण्डागार आदि) सीखने चाहियें, क्यों-कि जो मनुष्य सुमाषितमय द्रव्य का संश्रह नहीं करता है वह समा के बीच में अपनी वाणी की विशेषता (खूबी) को कमी नहीं दिखला सकता है ॥ ३३॥

शूर वीर पण्डित पुरुष, रूपवती जो नार ॥ ये तीन हुँ जहँ जात हैं, आदर पार्वे सार ॥ ३४ ॥

१--छोटा नाहर ॥

शूर वीर पुरुष, पण्डित पुरुष और रूपवती श्री, ये तीनों जहां जाते हैं, वहीं सम्मान (आदर) पाते हैं ॥ ३४ ॥

नृप अरु पण्डित जो पुरुष, कबहुँ न होत समान ॥ राजा निज थल मानिये, पण्डित पूज्य जहान ॥ ३५ ॥

राजा और पण्डित, ये दोनों कभी तुल्य नहीं हो सकते है (अर्थात् पण्डित की बरा-वरी राजा नहीं कर सकता है) क्योंकि राजा तो अपने ही देश में माना जाता है और पण्डित सब जगत् में मान पाता है ॥ ३५॥

रूपवन्त जो मूर्ख नर, जाय सभा के बीच॥ मौन गहे शोभा रहे, जैसे नारी नीच॥ ३६॥

विद्यारहित रूपबान् पुरुष को चाहिये कि-िकसी समा (दर्बार) में जाकर ग्रंह से अक्षर न निकाले (कुछ मी न बोले) क्योंकि मौन रहने से उस की शोमा बनी रहेगी, जैसे दुष्टा स्त्री को यदि उस का पति बाहर न निकलने देवे तो घर की शोमा (आवरू) बनी रहती है ॥ ३६॥

कहा भयो ज विचाल कुल, जो विचा करि हीन ॥ सुर नर पूजहिँ ताहि जो, मेघावी अकुलीन ॥ ३७॥

जो मनुष्य विद्याद्दीन है, उस को उत्तम जाति में जन्म छेने से भी क्या सिद्धि मिछ सकती है, क्योंकि देखो ! नीच जातिवाला भी यदि विद्या पढ़ा है तो उस की मनुष्य और देवता भी पूँजा करते है ॥ ३७॥

विद्यावन्त सपूत बरु, पुत्र एक ही होत ॥

कुल भासत नर श्रेष्ठ सें, ज्यों शशि निशा उदोत ॥ ३८॥

चाहें एक भी छड़का विद्यावान् और सपूत हो तो वह कुछ में उजाला कर देता है, जैसे चन्द्रमा से रात्रि में उजाला होता है, अर्थात् शोक और सन्ताप के करनेवाले बहुत से छड़कों के भी उत्पन्न होने से क्या है, किन्तु कुटुम्ब का पालनेवाला एक ही पुत्र उत्पन्न हो तो उसे अच्छा समझना चाहिये, देखो ! सिंहनी एक ही पुत्र के होने पर निडर होकर सोती है और गधी दश पुत्रों के होने पर भी बोझे ही को लादे हुए फिरती है ॥ ३८॥

शुभ तरुवर ज्यों एक ही, फूल्यो फल्यो सुवास ॥ सब वन आमोदित करे, त्यों सपूत गुणरास ॥ ३९॥

जिस प्रकार फूळा फळा तथा धुगन्धित एक ही बृक्ष सब वन को धुगन्धित कर देता है, इसी प्रकार गुणों से युक्त—एक भी सपूत छड़का पैदा होकर कुछ की शोमा को बढ़ा देता है ॥ ३९ ॥

१--इस बात को वर्तमान में प्रत्यक्ष ही देख रहे है ॥

निर्शुणि शत सें हूँ अधिक, एक पुत्र गुणवान ॥ · एक चन्द्र तम को हरे, तारा नहिँ शतमान ॥ ४० ॥

निर्गुणी छड़के यदि सौ भी हों तथापि वे किसी काम के नहीं है, किन्तु गुणवान् पुत्र यदि एक भी हो तो अच्छा है, जैसे—देखों । एक चन्द्रमा उदित होकर अन्यकार को दूर कर देता है, किन्तु सैकड़ों तारों के होने पर भी अंधेरा नहीं मिटता है, तार्पय यह है कि—गुणी पुत्र को चन्द्रमा के समान कुछ में उद्योत करनेवाळा जानो और निर्गुणी पुत्रों को तारों के समान समझो अर्थात् सौ भी निर्गुणी पुत्र अपने कुछ में उद्योत नहीं कर सकते हैं।

सुल चाहो विद्या तजो, विद्यार्थी सुल लाग ॥ सुल चाहे विद्या कहाँ, कहँ विद्या सुल राग ॥ ४१ ॥

यदि सुल भोगना चाहे तो विद्या को छोड देना चाहिये और विद्या सीखना चाहे तो सुल को छोड़ देना चाहिय, क्योंकि सुल चाहनेवाले को विद्या नहीं मिंकती है ॥ ४१ ॥

नहिँ नीचो पाताल तल, ऊँचो मेरु लिगार॥ ज्यापारी उचम करै, गहिरो दिध नहिँ धार॥ ४२॥

उधमी (मेहनती) पुरुष के लिये मेरु पहाड़ कुछ ऊंचा नहीं है और पाताल भी कुछ नीचा नहीं है तथा समुद्र भी कुछ गहरा नहीं है, तात्पर्य यह है कि—उद्यम से सब काम सिद्ध हो सकते हैं ॥ ४२ ॥

एकहि अक्षर शिष्य कों, जो गुरु देत बताय ॥ घरती पर वह द्रव्य निहँ, जिहिँ दै ऋण उतराय ॥ ४३॥

गुरु कृपा करके चाहें एक ही अश्वर किप्य को सिखलावे, तो भी उस के उपकार का बदला उतारने के लिये कोई घन संसार में नहीं है, अर्थात् गुरु के उपकार के बदले में श्विष्य किसी भी वस्तु को देकर उन्हण नहीं हो सकता है ॥ ४३ ॥

पुस्तक पर आप हि पढ़्यो, गुरु समीप नहिँ जाय॥ समा न शोमै जार सें, ज्यों तिय गर्भ घराय॥ ४४॥

जिस पुरुष ने गुरु के पास जाकर विद्या का अभ्यास नहीं किया, किन्तु अपनी ही बुद्धि से पुस्तक पर आप ही अभ्यास किया है, वह पुरुष समा में शोमा को नहीं पा सकता है, जैसे—जार पुरुष से उत्पन्न हुआ छड़का शोमा को नहीं पाता है, क्योंकि जार से गर्म धारण की हुई स्त्री तथा उसका छड़का अपनी जातिवाओं की समा में शोमा नहीं पाते हैं, क्योंकि—छजा के कारण नाप का नाम नहीं बतला सकते हैं ॥ ४४ ॥

१—तारपर्य यह है कि-विद्याभ्यास के समय में यदि मनुष्य भीग विकास से छगा रहेगा तो उस की विद्या की प्राप्ति कुदापि नहीं होगी, इस किये विद्यार्थी सुख को और सुखार्थी विद्या को छोड देवे ॥

कुलहीन हु धनवन्त जो, धनसें वह सुकुलीन ॥ शिश समान हु उच कुल, निरधन सब से हीन ॥ ४५ ॥

नीच जातिवाला पुरुष भी यदि घनवान् हो तो घन के कारण वह कुळीन कहळाता है और चन्द्रमा के समान निर्मेळ कुळ अर्थात् ऊंचे कुळवाळा भी पुरुष घन से रहित होने से सब से हीन गिना जाता है ॥ ४५॥

वय करि तप करि वृद्ध है, शास्त्रवृद्ध सुविचार ॥ वे सब ही घनवृद्ध के, किङ्कर ज्यों लखि द्वार ॥ ४६॥

इस संसार में कोई अवस्था में बड़े हैं, कोई तप में बड़े है और कोई बहुश्रुति अर्थात् अनेक शास्त्रों के ज्ञान से बड़े हैं, परन्तु इस रुपये की महिमा को देखो कि—वे तीनों ही धनवान के द्वार पर नौकर के समान खड़े रहते है। १६।

वन में सुख सें हरिण जिमि, तृण भोजन भरू जान ॥ देहु हमें यह दीन वच, भाषण नहिँ मन आन ॥ ४०॥

जंगल में जाकर हिरण के समान झुखपूर्वक वास खाना अच्छा है परंतु दीनता के साथ किसी स्म (कज़्स) से यह कहना कि "हम को देओ" अच्छा नहीं है ॥ ९७॥

कोई विद्यापात्र हैं, कोई घन के घाम ॥ कोई दोनों रहित हैं, कोइ उभयविश्राम ॥ ४८॥

देखों ! इस संसार में कोई तो विद्या के पात्र हैं, कोई धन के पात्र हैं, कोई विद्या जीर धन दोनों के पात्र हैं और कोई मनुष्य ऐसे भी हैं जो न विद्या और न धन के पात्र हैं ॥ ४८ ॥

पांच होत ये गर्भ में, सब के विद्या विस्त ॥ आयु कर्म अरु मरण विधि, निश्चय जानो मिस्त ॥ ४९ ॥

हे मित्र ! इस वात को निश्चय कर जान हो कि — पूर्वकृत कर्म के योग से जीवधारी के लिये — विद्या, धन, आयु, कर्म और मरण, ये पांच वैतिं गर्भ ही में रच दी जाती हैं ॥ १९॥

चित्रगुप्त की भाल में, लिखी जु अक्षर माल॥ बहु श्रम सें हु नहिँ मिटै, पण्डित बहु श्रुपाल॥ ५०॥

जो कमें के अक्षर छछाट में छिखे हैं उसी को नित्रगुस कहते हैं (अर्थात् छिपा हुआ छेख) और इसी को छैकिक शास्त्रवाछे विघाता के छिखे हुए अक्षर भी कहते हैं, तथा जैनधर्मवाछे पूर्वकृत कर्म के स्वामाविक नियम के अनुसार अक्षर मानते हैं, तात्पर्य इस का यही है कि—जो पूर्वकृत कर्म की छाप मनुष्य के छछाट पर छगी हुई है उस को

१—इस बात को वर्तमान में पाठकगण आखों से देख ही रहे होंगे॥ २—इन्हीं बातों को लोक में विचाता का छठी का लेख कहते हैं, क्योंकि देव और विवाता ये दोनों <u>क्या कर</u>

छोग नहीं जान सकते हैं और न उस छेख को कोई मिटा सकता है, चाहें पण्डित और राजा कोई भी कितना ही यस क्यों न करे ॥ ५० ॥

वन रण वैरी अग्नि जल, पर्वत शिर अरु शुन्य ॥ सुप्त प्रमत अरु विषम थल, रक्षक पूरव पुन्य ॥ ५१॥

जंगल में, लड़ाई में, दुश्मनों के सामने, अग्नि लगने पर, बल में, पर्वत पर, शून्य स्थान में, निद्रा में, प्रमाद की अवस्था में और विषम स्थान में, इतने स्थानों में मनुष्य का किया हुआ पूर्व जन्म का अच्छा कमें ही रक्षा कैरता है ॥ ५१ ॥

मुर्ल शिष्य उपदेश करि, दारा दुष्ट बसाय॥ वैरी को विश्वास करि, पण्डित हू दुख पाय॥ ५२॥

मूर्ल शिष्य को सिलला कर, दुंध स्त्री को रलकर और शत्रु का विश्वास कर पण्डित पुरुष भी दुःखी होता है ॥ ५२ ॥

हुष्ट भारजा भित्र शठ, उत्तरदायक भृत्य ॥ सर्पसहित घर वास ये, निश्चय जानो मृत्य ॥ ५३ ॥

दुष्ट स्त्री, धूर्त मित्र, उत्तर देनेवाला नौकर और जिस मकान में सर्प रहता हो वहां का निवास, ये सब बातें मृत्युस्वरूप हैं, अर्थात् इन बातों से कभी न कभी मनुष्य की मृत्यु ही होनी सम्भव है ॥ ५३ ॥

विपति हेत रिलये धनहिँ, धन तें रिलये नारि ॥ धन अरु दारा दुहुँन तें, आतम नित्य विचारि ॥ ५४ ॥

विपत्तिसमय के लिये धन की रक्षा करनी चाहिये, धन से स्त्री की रक्षा करनी चाहिये और धन तथा स्त्री, इन दोनों से नित्य अपनी रक्षा करनी चाहिये ॥ ५४ ॥

एकहिँ तजि कुल राखिये, कुल तजि रखिये ग्राम ॥ ग्राम त्यागि रखु देश कों, आतमहित वसु धाम ॥ ५५॥

एक को छोड़कर कुछ की रक्षा करनी चाहिये अर्थात् एक मनुप्य के लिये तमाम कुछ को नहीं छोड़ना चाहिये किन्तु एक मनुष्य को ही छोड़ना चाहिये, कुछ को छोड़कर प्राम

^{9—}तात्पर्य यह है कि-इस संसार में मनुष्य की हानि और लाम का हेतु केवल पूर्व जन्म का किया हुआ कमें ही होता है, यही मनुष्य को विपत्ति में डालता है और यही मनुष्य को विपत्तिसागर से पार निकालता है, इस लिये उस कमें के प्रमान से जो युख या दु ख अपने को प्राप्त होनेनाला है उस को देवता और दानव आदि कोई भी नहीं हटा सकता है, इस लिये है बुद्धिमान पुरुषो! जरा भी विन्ता मत करों क्योंकि जो अपने भाग्य का है वह पराया कमी नहीं हो सकता है ॥ २—तात्पर्य यह है कि-धन के नाश का कुछ भी विचार न कर विपत्ति से पार होना चाहिये तथा खी की रक्षा करना चाहिये और धन और दी, इन दोनों के भी नाश का कुछ विचार न करके अपनी रक्षा करनी चाहिये लयांत इन दोनों का यद्धि-नाश- होकेंटें भी अपनी रक्षा होती हो तो भी अपनी रक्षा करनी चाहिये ॥

की रक्षा करनी चाहिये अर्थात् कुछ के लिये तमाम प्राम को नहीं छोड़ना चाहिये किन्तु प्राम की रक्षा के लिये कुछ को छोड़ देना चाहिये, प्राम का त्याग कर देश की रक्षा कर रनी चाहिये अर्थात् देश की रक्षा के लिये प्राम को छोड़ देना चाहिये और अपनी रक्षा के लिये तमाम पृथिवी को छोड़ देना चाहिये ॥ ५५॥

नहीं मान जिस देश में, वृत्ति न बान्धव होय ॥ नहिँ विद्या प्रापति तहाँ, वसिय न सज्जन कोय ॥ ५६ ॥

जिस देश में न तो मान हो, न जीविका हो, न माई बन्धु हों और न विद्या की ही प्राप्ति हो, उस देश में सज्जनों को कमी नहीं रहना चाहिये ॥ ५६ ॥

पण्डित राजा अरु नदी, वैद्यराज धनवान ॥ पांच नहीं जिस देश में, वसिये नाहिँ सुजान ॥ ५७ ॥

सव विद्याओं का जाननेवाला पण्डित, राजा, नदी (कुआ आदि जल का स्थान), रोगों को मिटानेवाला उत्तम वैद्य और घनवान्, ये पांच जिस देश में न हो उस में बुद्धि-मान् पुरुष को नहीं रहना चाहिये॥ ५७॥

भय लजा अरु लोकगति, चतुराई दातार ॥ जिसमें नहिँ ये पांच ग्रुण, संग न कीजै यार ॥ ५८ ॥

हे मित्र ! जिस मनुष्य में मय, छजा, छैकिक व्यवहार अर्थात् चारुच्छन, चतुराई और दानशीरुता, ये पांच गुण न हों, उस की संगति नहीं करनी चाहिये ॥ ५८ ॥

काम भेज चाकर परख, बन्धु दुःख में काम ॥ मित्र परख आपद् पड़े, विभव छीन लख बाम ॥ ५९ ॥

कामकाज करने के लिये मेजने पर नौकर चाकरों की परीक्षा हो जाती है, अपने पर दुःख पड़ने पर भाइयों की परीक्षा हो जाती है, आपत्ति आने पर मित्र की परीक्षा हो जाती है और पास में धन न रहने पर स्त्री की परीक्षा हो जाती है॥ ५९॥

आतुरता दुख हू पड़े, शत्रु सङ्कटौ पाय ॥ राजद्वार मसान में, साथ रहे सो भाय ॥ ६०॥

आतुरता (चित्त में घनड़ाहर) होने पर, दुःख आने पर, शत्रु से कष्ट पाने पर, राजदर्वार का कार्य आने पर तथा श्मशान (मौतसमय) में जो साथ रहता है, उसी को अपना माई समझना चाहिये ॥ ६०॥

सींग नखन के पशु नदी, शस्त्र हाथ जिहि होय ॥
नारी जन अरु राजकुल, मत विश्वास हु कोय ॥ ६१ ॥
सींग और नखनाले पशु, नदी, हाथ में शस्त्र लिये हुए पुरुष, स्त्री तथा राजकुल, इन
का विश्वास कभी नहीं करना चाहिये ॥ ६१ ॥

छेवो अम्मृत विषहु तें, कश्चन अग्नुचिहुँ थान ॥ उत्तम विद्या नीच से, अकुछ रतन तिय आन ॥ ६२॥

अमृत यदि विष के भीतर भी हो तो उस को छे छेना चाहिये, सोना यदि अपवित्र स्थान में भी पड़ा हो तो उसे छे छेना चाहिये, उत्तम विद्या यदि नीच जातिवाछे के पास हो तो भी उसे छे छेना चाहिये, तथा स्नीरूपी रैंब यदि नीच कुछ की भी हो तो भी उस का अङ्गीकार कर छेना चाहिये॥ ६२॥

तिरिया भोजंन दिगुण अरु, लाज चौगुनी मान ॥ जिद्द होत तिहि छः गुनी, काम अष्टगुण जान ॥ ६३॥

पुरुष की अपेक्षा की का आहार दुगुना होता है, कजा चौगुनी होती है, हठ छ:-गुणा होता है और काम अर्थात् विषयभोग की इच्छा आठगुनी होती है ॥ ६३ ॥

मिथ्या हट अरु कपटपन, मौद्धा कृतशी भाव ॥ निर्देयपन पुनि अञ्जुचिता, नारी सहज सुभाव ॥ ६४ ॥

झूंठ बोलना, हठ करना, कपट रखना, मूर्खता, किये हुये उपकार की भूल जाना, त्या का न होना और अशुचिता अर्थात् शुद्ध न रहना, ये सात दोष क्षियों में स्वभाव से ही होते हैं ॥ ६४ ॥

भोजन अरु भोजनशकति, भोगशक्ति वर नारि॥ गृह विभूति दातारपन, छउँ अति तप निर्धार॥ १५॥

उत्तम मोजन के पदार्थों का मिळना, भोजन करने की शक्ति होना, स्त्री से भोग करने की शक्ति का होना, युन्दर स्त्री की प्राप्ति होना और घन की प्राप्ति होना तथा दान देने का स्वभाव होना, ये छवों वार्ते उन्हीं को प्राप्त होती हैं जिन्हों ने पूर्व मव में पूरी त-पस्या की है ॥ ६५ ॥

नारी इच्छागामिनी, पुत्र होय वस जाहि॥ अल्प घन हुँ सन्तोष जिहि, इहैं खर्ग है ताहि॥ ६६॥

जिस पुरुष की स्नी इच्छा के अनुसार चलनेवाली हो, पुत्र आज्ञाकारी हो और योदा भी धन पाकर जिस ने सन्तोष कर लिया है, उस पुरुष को इसी लोक में लगे के समान मुख समझना चाहिये ॥ ६६ ॥

^{9—}परम दिव्य झीरूप रझ नकवतीं महाराज को प्राप्त होता है-क्योंकि दिव्यागना की प्राप्ति पूर्ण तप-स्था का फल माना अया है—अत: पुण्यहीन को उस की प्राप्ति नहीं हो सकती है, इस लिये यदि वह स्नीरूप रझ अनार्थ म्लेच्छ जाति का भी हो किन्तु सबैगुणसम्पन्न हो तो उस की जाति का विचार न कर उस का अंगीकार कर देना चाहिये ॥

स्रुत बोही पितुभक्त जो, जो पालै पितु सोय ॥ मित्र वही विश्वास जिहि, नारी सो सुख होय ॥ ६७॥

पुत्र वही है जो माता पिता का मक्त हो, पिता वही है जो पालन पोषण करे, मित्र वही है जिस पर विश्वास हो और स्त्री वही है जिस से सदा झुख प्राप्त हो ॥ ६७ ॥

पीछे काज नसावही, मुख पर मीठी बान ॥ परिहरू ऐसे मित्र को, मुख पय विष घट जान ॥ ६८॥

पीछे निन्दा करे और काम को निगाड़ दे तथा सामने मीठी २ बाँते ननाने, ऐसे मित्र की अन्दर विष मरे हुए तथा मुख पर दूध से मरे हुए बड़े के समान छोड़ देना चाहिये॥६८॥

निहँ कुमित्र विश्वास कर, मित्रहुँ को न विसास ॥ कबहुँ कुपित है मित्र हु, गुद्ध कर परकास ॥ ६९॥

स्रोटे भित्र का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये, किन्तु मित्र का भी विश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि संमव है कि-मित्र भी कभी कोध में आकर गुप्त वात को प्रकट कर दे॥ ६९॥

मन में सोचे काम को, मत कर वचन प्रकास ॥ मन्त्र सरिस रक्षा करै, काम भये पर भास ॥ ७० ॥

मन से विचारे हुए काम को वचन के द्वारा प्रकट नहीं करेना चाहिये, किन्तु उस की मन्न के समान रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि कार्य होने पर तो वह आप ही सन को प्रकट हो जायगा ॥ ७० ॥

मूरल नर सें दूर तुम, सदा रहो मतिमान ॥ विन देखे कंटक सरिस, येथे हृदय कुवान ॥ ७१ ॥

साक्षात् पशु के समान मूर्ख जन से सदा बच कर रहना अच्छा है, क्योंकि वह विना देखे कांटे के समान कुनचन रूपी कांटे से हृदय को वेघ देता है ॥ ७१ ॥

कण्टक अरु धूरत पुरुष, प्रतीकार दे जान ॥ जूती सें मुख तोड़नो, दूसर खागन जान ॥ ७२॥

धूर्त मनुष्य और कांटे के केवल दो ही उपाय (इलाज) है-या तो जूते से उस के मुख को तोड़ना अथवा उस से दूर हो कर चलना ॥ ७२ ॥

१—क्योंकि कार्य के सिद्ध होने से पूर्व अदि वह सब को विदित हो जाता है तो उम में किसी म किसी प्रकार का प्राय: विझ पड़ जाता है, दूसरा यह मी कारण है कि—कार्य की सिद्धि से पूर्व यदि वह सब को प्रवट हो जावे कि अमुक पुरुष अमुक कार्य को करना बाहता है और देवयोग से उस कार्य की सिद्धि न हो तो उपहास का स्थान होगा ॥

शैल शैल माणिक नहीं, मोती गज गज नाहिं॥ वन वन में चन्दन नहीं, साधु न सब यल माहिँ॥ ७३॥

सब पर्वतों पर माणिक पैदा नहीं होता है, सब हाथियों के कुम्मस्थल (मसाक) में मोती नहीं निकलते हैं, सब वनों में चन्दन के बृक्ष नहीं होते हैं और सब स्थानों में साधुं नहीं मिलते हैं ॥ ७३ ॥

पुत्रहि सिखवै शील को, वुष जन नाना रीति ॥

कुल में पूजित होत है, शीलसहित जो नीति ॥ ७४ ॥

बुद्धिमान् लोगों को उचित है कि अपने छड़कों को नाना मांति की सुशीलता में ल-गार्ने, क्योंकि नीति के जानने वाले यदि शैलिवान् हों तो कुछ में पूजित होते हैं॥ ७४॥

ते माता पितु शबु सम, सुत न पड़ावें जौन ॥ राजहंस बिच वकसरिस, सभा न शोभत तौन ॥ ७५ ॥

वे माता और पिता वैरी हैं जिन्हों ने ठाड़ के वश में होकर अपने बाठक को नहीं पढ़ाया, इस कारण वह बाठक सभा में जाकर शोमा नहीं पाता है, जैसे हंसों की पंक्ति में बगुड़ा शोभा को नहीं पाता है ॥ ७५ ॥

पुत्र लाड़ सें दोष बहु, ताड़न सें बहु सार ॥ यातें सुत अरु शिष्य को, ताड़न ही निरघार ॥ ७६ ॥

पुत्रों का लाड़ करने से बहुत दोन (अवगुण) होते हैं और ताड़न (धमकाने) से बहुत लाम होता है, इस लिये पुत्र और शिष्य का सदा ताड़न करना ही उचित है॥७६॥

पांच बरस सुत लाड़ कर, दश लौं ताड़न देहु॥ बरस सोलवें लागते, कर सुत मित्र सनेहु॥ ७७॥

पांच वर्ष तक पुत्र का (खिलाने पिलाने आदि के द्वारा) लाड़ करना चाहिये, दश वर्ष तक ताड़न करना चाहिये अर्थात् त्रास देकर विद्या पढ़ानी चाहिये—परन्तु जब सोलहवां वर्ष लगे तब पुत्र को मित्र के समान समझ कर सब वर्ताव करना चौहिये ॥ ७७ ॥

रूप भयो यौवन भयो, कुल हू में अनुकूल ॥ विन विद्या शोभै नहीं, गम्बहीन ज्यों फूल ॥ ७८ ॥

रूप तथा यौवनवाला हो जीर बड़े कुल में उत्पन्न भी हुआ हो तथापि विधारहित पुरुष शोभा नहीं पाता है, जैसे--गन्ध से हीन होने से टेस् (केस्ले) का फूल ॥ ७८ ॥

१--साधु नाम सरपुरुष का है ॥ २--शील का लक्षण ९१ वें दोहे की व्याख्या में देखी ॥

३.—तारपर्य यह है कि-सोलह वर्ष के पीछे ताडन कर विद्या पढ़ाने का समय नहीं रहता है क्योंकि घोलह वर्ष तक में सब इन्त्रियां और मन आदि परिषक होकर जैसा संस्कार हृदय में जम जाता है, उस का मिटना अति कठिन होता है, जैसे कि बढे वृक्ष की शाखा सुदृढ़ होने से नहीं नमाई जा सकती है ॥

पर को वसनर अन्न पुनि, सेज परस्त्री नेइ॥
इ्रार तजहु एते सकल, पुनि निवास पर्गेइ॥ ७९॥

पराया वस्त, पराया अन्न, पराई श्राय्या, पराई सी और पराये मकान में रहना, इन पांचों बातों को दूर से ही छोड़ देना चाहिये ॥ ७९ ॥

जग जन्में फल धर्म अरु, अर्थ काम पुनि मुक्ति ॥ जासें सधत न एक हूं, दुःख हेत तिहिं मुक्ति ॥ ८० ॥

संसार में मनुष्यजन्म का फल यही है कि-धंर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करे, किन्तु इन चारों में से जिस ने एक भी प्राप्त नहीं किया-उस का सब भोग केवल दुःख के लिये है।। ८०।।

परिनन्दा विन दुष्ट नर्, कबहूँ निहँ सुख पाय ॥ स्थागि काक जिमि सर्व रस्, विष्ठा चिक्त सुहाय ॥ ८१ ॥

दुर्जन मनुष्य पराई निन्दा किये विना कमी सुली नहीं होता है (अर्थात् पराई निन्दा करने से ही सुली होता है), जैसे कौआ अनेक प्रकार का उत्तम मोजन छोड़ कर विष्ठा खाये विना नहीं रहता है ॥ ८१॥

स्तुति विद्या की लोक में, निहँ शरीर की चाहिँ॥ काली कोयल मधुर धुनि, सुनि सुनि सकल सराहिँ॥ ८२॥

लोक में विद्या से प्रशंसा होती है—िकन्तु शरीर की प्रशंसा नहीं होती है, देखो । को-यल यदापि काली होती है—तथापि उस के मीठे खर को मुन कर सब ही उस की प्रशंसा करते है ॥ ८२ ॥

सवैया—पितु धीरज औ जननी जु क्षमा, मननिग्रह भ्रात सहोदर है।
सुत सत्य द्या भिगनी गृहिणी, शुम शान्ति हु सेवमें तत्पर है॥
सुखसेज सजी धरणी दिवि। अम्बर, ज्ञानसुधा शुभ आहर है।
जिन योगिन के जु कुटुम्ब यहें,कहुमीत तिन्हें किन्ह को हैर है॥८३

जिन का घीरज पिता है, क्षमा माता है, मन का संयम आता है, सत्य पुत्र है, दया विहन है, सुन्दर शान्ति ही सेवा करनेवाली मार्या (क्षी) है, पृथिवी सुन्दर सेज है, दिशा वस्त्र है तथा ज्ञानरूपी अगृत के समान मोजन है, हे मित्र! जिन योगी जनों के उक्त कुदुम्बी है वतलाको उन को किस का ढर हो सकता है ॥ ८३॥

वादल छाया तृण अगनि, अधम सेव थल नीर ॥ वेदयानेह कुमित्र ये, बुद्बुद ज्यों निहँ थीर ॥ ८४ ॥

९---धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का खस्म सुमाधिताविक के २२३ से २२८ वें तक दोहों में देखी ॥ २---यह सैवैया ''धेर्म यस्य पिता झमा च जननी'' इस्तादि मर्तृहरिजतक के म्होक का अनुवादरूप है ॥

बादल की छाया, तिनकों (फूस) की अभि, नीच स्वामी की सेवा, रेतीली पृथिवी पर दृष्टि, वेश्या की मीति और दुष्ट मित्र, ये छओं पदार्थ पानी के बुलबुले के समान हैं अ-र्थात् क्षणमात्र में नष्ट हो जाते हैं, इस लिये ये कुछ भी लामदायक नहीं हैं॥ ८९॥

नगर शरीर क जीव रूप, मन मस्त्रीन्द्रिय लोक ॥ मन विनशे कञ्च वश नहीं, कौरव करण विलोक ॥ ८५ ॥

इस शरीररूपी नगरी में जीव राजा के समान है, मन मन्नी अर्थात् प्रधान के समान है, और इन्द्रियां प्रजा के समान हैं, इस लिये जब मनरूपी मन्नी नष्ट हो जाता है अर्थात् जीत लिया जाता है तो फिर किसी का भी बश नहीं चलता है, जैसे कंर्ण राजा के मर जाने से कौरवों का पाण्डवों के सामने कुछ भी बश नहीं चला ॥ ८५॥

धर्म अर्थ अरु काम ये, साधहु शक्ति प्रमाण ॥ नित डिट निज हित चिन्तहू, ब्राह्म सुहूरत जाण ॥ ८६॥

मनुष्य को चाहिये कि- अपनी शक्ति के अनुसार धर्म, अर्थ और काम का साधन कर तथा प्रतिदिन बाह्मसुद्धर्त में उठकर अपने हित का विचार करना चाहिये, तार्व्य यह है कि-पिछली चार घड़ी रात्रि रहने पर मनुष्य को उठना चाहिये, फिर अपने को क्या करना जा छो है और क्या करना द्वरा है-ऐसा विचारना चाहिये, प्रथम धर्म का आचरण करना चाहिये, अर्थात् समता का परिणाम रख कर ईश्वर की भक्ति और किये हुए पापों का आलोचन दो घड़ी तक करके माध्यूचा करे, फिर देव और गुरु का वन्दन तथा पूजन करे, पीछे व्याख्यान अर्थात् गुरुसुल से धर्मकथा सुने, इस के पीछे सुपात्रों को अपनी शक्ति के अनुसार दान देकर पथ्य भोजन करे, फिर अर्थ का उपार्जन करे अर्थात् व्यापार आदि के द्वारा धन को पैदा करे परन्तु स्मरण रखना चाहिथे कि-वह धन का पैदा करना न्याय के अनुकूल होना चाहिथे किन्तु अन्याय से नहीं होना चाहिये, फिर काम का व्यवहार करे अर्थात् कुटुम्ब, मकान, छड़का, माता, पिता और की आदि से यथोचित वर्त्ताव करे, इस के पश्चात् मोक्ष का आचरण करे अर्थात् इन्द्रियों को वहा में करके वैराग्य- गुक्त माब के सहित जो साधु धर्म (दु:ख के मोचन का श्रेष्ठ उपाय) है उस को अंगीकार करे ॥ ८६॥

कौन काल को मित्र है, देश खरच क्या आय ॥ को मैं मेरी शक्ति क्या. नित उठि नर चित घ्याय॥ ८७॥

यह कीन सा काल है, कीन मेरा मित्र है, कीन सा देश है, मेरे आमदनी कितनी है और सर्च कितना है, मैं कीन जाति का हूँ औ क्या मेरी शक्ति है, इन वार्तों को मनुष्य को

^{9—}इस इतिहास को पांडबचरित्रादि अन्यों में देखो ॥ २—क्योंकि अन्याय से पैदा किया हुआ धन दश वर्ष के पक्षात मूलसहित नष्ट हो जाता है, यह पहिछे ३२ वें दोहे में कहा जा चुका है ॥

प्रतिदिन विचारते रहना चाहिये, क्योंकि जो मनुष्य इन वातों को विचार कर चलेगा वह अपने जीवन में कमी दुःख नहीं पावेगा ॥ ८७ ॥

भयत्राता पतिनी पिता, विद्यापद गुरु जौन ॥ मस्रदानि अरु अञ्चानपद, पत्र पिता छितिरौन ॥ ८८ ॥

हे राजन् । भय से बचानेवाला, मार्या का पिता (श्वशुर), विद्या का देनेवाला (गुरु) मन्न सर्यात् दीक्षा अथवा यज्ञोपवीत का देनेवाला तथा मोजन (अन्न) का देनेवाला, ये पांच पिता कहलाते है ॥ ८८ ॥

राजभारजा दार गुरु, मित्रदार मन आन ॥ पतनी माता मात निज, ये सब माता जान ॥ ८९ ॥

राजा की स्त्री, गुरु (विद्या पढ़ानेवाले) की स्त्री, मित्र की स्त्री, सार्या की माता (सास्) और अपने जन्म की देनेवाली तथा पालनेवाली, ये सब मातार्थे कह- लाती हैं॥ ८९॥

ब्राह्मण को गुरु विह्न है, वर्ण विप्र गुरु जान ॥ नारी को गुरु पति अहै, जगतगुरू यति मान ॥ ९० ॥

मासणों का गुरु अभि है, सब वर्णों का गुरु त्रासंण है, कियों का गुरु पति ही है तथा सब संसार का गुरु येति है।। ९०॥

तपन चिसन छेदन कुटन, हेम यथा परखाय ॥ चास्त्र चील तप अरु द्या, तिमि बुध धर्म लखाय ॥ ९१ ॥

जैसे अभि में तपाने से, कसीटी पर घिसने से, छेनी से काटने से और हथीड़े से क्रूटने से, इन चार प्रकारों से सोना परला जाता है, उसी प्रकार से बुद्धिमान् पुरुष धर्म की परीक्षा का प्रहण करते हैं, उस धर्म की परीक्षा का प्रथम उपाय यह है कि—उस धर्म का यथार्थ ज्ञान देखना चाहिये अर्थात् यदि ज्ञाक्षों के बनानेवाले मांसाहारी तथा नशा पीनेवाले आदि होते हैं तो वे पुरुष अपने बनाये हुए अन्यों में किसी देव के विल्दान आदि का बहाना लगाकर "मांस खाने तथा मध पीने से दोष नही होता है" इत्यादि बातें अवस्य लिल ही देते हैं, ऐसे लेलों में परस्पर विरोध भी प्राय: देखा जाता है अर्थात् पहिला और पिछला लेल एक सा नहीं होता है, अथवा उन के लेल में परस्पर विरोध इस प्रकार भी देखा जाता है कि—एक स्थान में किसी बात का अरयन तिवेध लिलकर दूसरे स्थान में वही अन्यकर्ता अपने अन्य में कारणविशेष को न

१—जन्म और मरण आदि का सब संस्कार कराने से सब शाकों को जाननेवाला तथा ब्रह्म को जानने-वाला ब्राह्मण ही वर्णों का गुरु है किन्तु मूर्ख और किवाहीन ब्राह्मण गुरु नहीं हो सकता है ॥

र-इन्द्रियों का दमन करनेवाले तथा कवन और कामिनी के खागी को यदि कहते हैं।

वतलाकर ही उसी बात का विधान लिख देते है, अथवा चार प्रमाणों में से एक मी प्रमाण जिस शास्त्र के बचनों में नहीं मिलता हो वह भी माननीय नहीं हो सकता है, वे चार प्रमाण न्यायशास्त्र में इस प्रकार बतलाये हैं—नेत्र आदि इन्द्रियों से साक्षात् वस्तु के प्रहण को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं, लिंग के द्वारा लिक्की के ज्ञान को अनुमान प्रमाण कहते हैं—जैसे धूम को देख कर पर्वत में अधि का ज्ञान होना आदि, तीसरा उपमान प्रमाण है—इस को साहस्यज्ञान भी कहते हैं, चौया शब्द प्रमाण है अर्थात् आस पुरुष का कहा हुआ जो वाक्य है उस को शब्द प्रमाण तथा आगम प्रमाण भी कहते हैं। परन्तु यहां पर यह भी जान लेना चाहिये कि—आसवाक्य अथवा आगम प्रमाण वहीं हो सकता है जो वाक्य रागद्रेष से रहित सर्वज्ञ का कथित है और जिस में किसी का भी पक्षपात तथा सार्थिसिद्ध न हो और जिस में मुक्ति के यथार्थ स्रक्रप का वर्णन किया गया हो, ऐसे कथन से युक्त केवल स्त्रप्रस्थ हैं, इस लिये वे ही बुद्धिमानों के मानने योग्य हैं, यह धर्म की प्रथम परीक्षा कही गई॥

दूसरे प्रकार से शील के द्वारा धर्म की परीक्षा की जाती है—शील आचार को कहते हैं, उस (शिल) के द्रव्य और भाव के द्वारा दो मेद है—द्रव्य के द्वारा शील उस को कहते हैं कि—ऊपर की शुद्धि रखना तथा पांचों इन्द्रियों को और कोष आदि (कोष, मान, माया और लोम) को जीतना, इस को भावशील कहते हैं, इस लिये दोनों प्रकार के शील से युक्त आचार्य जिस धर्म के उपदेशक और गुरु हों तथा कम्मन और कामिनी के त्यागी हों उन को श्रेष्ठ समझना चाहिये और उन्हीं के वाक्य पर श्रद्धा रखनी चाहिये किन्तु—गुरु गाम धरा के अथवा देव और ईश्वर नाम धरा के जो दासी अथवा वेश्या आदि के भोगी हों तो न तो उन को देव और गुरु समझना चाहिये और न उन के वाक्य पर श्रद्धा करनी चाहिये, इसी प्रकार जिन शास्त्रों में श्रद्धार्च से रहित पुरुषों को देव अथवा गुरु लिखा हो—उन को भी कुशास्त्र समझना चाहिये और उन के वाक्यों पर श्रद्धा नहीं रखनी चाहिये, यह धर्म की दूसरी परीक्षा कही गई॥

धर्म की तीसरी परीक्षा तप के द्वारा की जाती है—वह तप मुख्यतया वाद्य और आभ्यन्तर मेद से दो प्रकार का है—फिर उस (तप) के बारह मेद कहे हैं—अर्थात् छः प्रकार का बाह्य (बाहरी) और छः प्रकार का आम्यन्तर (मीतरी) तप है, बाह्य तप के छः भेद—अनशन, कनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसत्याग, कायक्केश्च और संलीनता हैं। अब इन का विशेष खरूप इस प्रकार से समझना चाहियेः—

१—जिस में आहार का त्याग अर्थात् उपवास किया जावे, वह अनशन तप कह-ठाता है।

१--- प्रत्यक्ष आदि चारों प्रमाणो का वर्णन च्यायदर्शन आदि प्रन्यों में देखो ॥

२—एक, दो अथवा तीन आस मूख से कम खाना, इस को ऊनोदरी तप कहते हैं। ३—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव विषयसम्बन्धी अभिग्रह (नियम) रखना, इस को वृत्तिसंक्षेप तप कहते हैं—जैसे—श्री मैहावीर खामी का चतुर्विष अभिग्रह चन्दन-वाला ने पूर्ण किया था।

४—रस अर्थात् दूष, दही, घृत, तैल, मीठा और पकान आदि सब सरस वस्तुओं का

त्याग करना, इस को रसत्याग तप कहते हैं।

५—शरीर के द्वारा वीरासन और दण्डासन आदि अनेक प्रकार के कष्टों के सहन करने को कायक्केश तप कहते हैं।

- १—जो पाप पूर्व किये है उन को फिर न करने के लिये मितिज्ञा करना तथा उन पूर्वकृत अपने पापों को योग्य गुरु के सामने कह कर उन की निवृत्ति के लिये गुरु के समीप उस की आज्ञा के अनुसार दण्ड का ग्रहण करना, इस को प्रायश्चित्त तप कहते हैं।
 - २-अपने से गुणों में अधिक पुरुष के विनय करने को विनय तप कहते हैं।
- ३----आचार्य, उपाध्याय, तपस्ती और दुःखी पुरुषों को अन्न छाकर देना तथा उन को विश्राम (आराम) देना, इस को वैयाष्ट्रस्य तप कहते है ।
- ४—आप पढ़ना और वूसरों को पढ़ाना, संशय उत्पन्न होने पर गुरु से पूंछना, पढ़े हुए विषय को वारंवार याद करना और जो कुछ पढ़ा हो उस के तात्पर्य (आशय) को एकाम चित्त होकर विचारना तथा धर्मकथा करना, इस को खाँध्याय तप कहते हैं।

५—आर्चध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्कध्यान ये चार ध्यान कहलाते है, इन-में से पहिले दो ध्यानों का त्याग कर पिछले दो ध्यानों को (धर्मध्यान और शुक्कध्यान को) अंगीकार करना, इस को ध्यान तप कहते हैं।

१---इस विषय का वर्णन कल्पसूत्र की टीका मे देखो ॥

३—पहिन्ने दो ध्यानों का त्याग इसिन्ने कहा गया है कि—ये परिणाम में अति हानिकारक होते हैं, देखो आर्तिच्यानके ४ मेद हैं—अथम अनिष्टार्थर्पयोगार्तिच्यान अर्थात् इन्द्रियग्रुख के नाशक अनिष्ट (अप्रिय) अञ्चादि विषयों के स्योग न होने की चिन्ता करना, दूसरा—इप्टिनेगोगार्तिच्यान अर्थात् अपने प्रखदायक

६-सर्व उपाधियों के परित्याग करने को उत्सर्ग तप कहते है।

इस प्रकार से यह बारह प्रकार का तप है, इस तप का जिस धर्म में उपवेश किया गया हो वही धर्म मानने के योग्य समझना चाहिये तथा उक्त बारह तपों का जिस ने प्रहण और धारण किया हो उसी को तपसी समझना चाहिये तथा उसी के वचन पर श्रद्धा रखनी चाहिये किन्तु जो पुरुष उपवास का तो नाम करे और दूध, मिठाई, मावा (खोया), धी, कन्द, फल और पकाल आदि झन्दर र पदार्थों का धमसान करे (मोजन करे) अथवा दिनगर मूखा रहकर रात्रि में उत्तमोत्तम पदार्थों का मोजन करे—उस को तपसी नहीं समझना चाहिये क्योंकि—देखो ! बुद्धिमानों के सोचने की यह बात है कि—सूर्य इस जगत् का नेत्रक्रप है क्योंकि सब ही उसी के प्रकाश से सब पदार्थों को देखते है और इसी महत्त्व को विचार कर लोग उस को नारायण तथा ईश्वरखरूप मानते हैं, फिर उसी के अस्त होने पर मोजन करना और उस को त्रत वर्थात् तप मानना कदापि योग्य नहीं है, इसी प्रकार से तप के अन्य भेदों में भी वर्तमान में अनेक ब्रुटियां पड़ रही हैं, जिन का निदर्शन फिर कमी समयानुसार किया जावेगा—यहां पर तो केवल यही समझ लेना चाहिये कि ये जो तप के बारह भेद कहे हैं—इन का जिस धर्म में पूर्णतया वर्णन हो और जिस धर्म में ये तप यथाविधि सेवन किये जाते हों—यही श्रेष्ठ धर्म है, यह धर्म की तीसरी परीक्षा कही गई।

धर्म की चौथी परीक्षा दया के द्वारा की जाती है—एकेन्द्रिय जीव से छेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों को अपने समान जानना तथा उन को किसी भी प्रकार का क्षेत्रा न पहुंचाना, इसी का नाम दया है और यही पूर्णरूप से (बीस विश्वा) दया कहलाती है—परन्छ इस पूर्णरूप दया का वर्चाव मनुष्यमात्र से होना अति कठिन है—िकिन्छ इस (पूर्णरूप) दयाका पालन तो संसार के त्यागी, ज्ञानवान् मुनिजन ही कर सकते है, हां केवल शुद्ध गृहस्थ पुरुष सवा विश्वामात्र दया का पालन कर सकता है, इस लिये समझदार गृहस्थ

[,] द्रव्य तथा कुंद्रभ्य आदि इष्ट (प्रिय) पदार्थों के वियोग के न होने की चिन्ता करना, तीसरा—रोगनिदानार्त ध्यान क्षयांत् रोग के कारण से बरना और उस को पास में न आने देने की चिन्ता करना, चौथा—अध- शोचनामार्त्रध्यान—अर्थात् आगामि समय के लिये ग्रुस और द्रव्य आदि की प्राप्ति के लिये अनेक प्रकार के मनोरयो की चिन्ता करना। एवं रौद्रध्यान के भी चार भेद हैं—प्रथम-हिंसानन्द रौद्रध्यान—अर्थात् अनेक प्रकार की जीवहिंसा कर के (परापकार वा ग्रुहरचना आदि के द्वारा) मन में आनन्द मानना, द्वारा—मृष्तनन्दरौद्रध्यान—अर्थात् मिन्या के द्वारा छोगों को घोसा देकत मन में आनंद मानना, तीसरा—चौर्यानन्द रौद्रध्यान—अर्थात् अनेक प्रकार की चौरी (परद्रव्य का अपहरण आदि) करके आनद मानना, चौथा—संरक्षणानन्दरौद्रध्यान—अर्थात् अवमीदि का सय न करके द्रव्यादि का समह कर तथा उस की रक्षा कर सन में आनन्द मानना, इन का विशेष वर्णन जैनतत्त्वादकी आदि ग्रन्थों में देखना चाहिये॥

⁹⁻बीस विश्वा दया का वर्णन ओसवारु वशाविक में आगे किया जायगा ॥

पुरुष को चाहिये कि-चलते, बैठते, और सोतेसमय में, वर्तन आदि के उठाने और रखने के समय में, खाने और पीने के समय में, रसोई आदि में, छकड़ी, थेपड़ी आदि ईंघन में, तथा तेल, छाछ, घी, दूघ, पानी आदि में यथाश्वन्य (जहां तक हो सके) जीवों की रक्षा फरे--किन्त प्रमादपूर्वक (लापरवाही के साथ) किसी काम को न करे, दिन में दो वक्त जल को छाने तथा छानने के कपड़े में जो जीव निकर्ले-यदि वे जीवें कुएं के हों तो उन को कुएं में ही गिरवा दे तथा वरसाती पानी के हों तो उन को वरसात के पानी में ही गिरवा दे, मुख्यतया व्यापार करनेवाले (हिलने चलनेवाले) जीव तीन प्रकार के होते हैं-जलचर, खलचर, और खचर, इन में से पानी में उत्पन्न होनेवाले और चलनेवालों को जलचर कहते है, पृथिवी पर अनेक रीति से उत्पन्न होने वाले और फिरने वाले चीटी से छेकर मनुष्य पर्यन्त जीवों को खलचर कहते है तथा आकाश में उड़नेवाले जीवों को खचर (आकाशचारी) कहते है, इन सब जीवों को कदापि सताना नहीं चाहिये. यही दया का सरूप है, इस प्रकार की दया का जिस धर्म में पूर्णतया उपदेश किया गया है तथा तप और शील आदि पूर्व कहे हुए गुणों का वर्णन किया गया हो उसी धर्म को बुद्धिमान पुरुष को खीकार करना चाहिये- क्योंकि वही धर्म संसार से तारनेवाला हो सकता है क्योंकि-दान, शील, तप और दया से युक्त होने के कारण वही धर्म है-दसरा धर्म नहीं है ॥ ९१॥

राजा के सब भृत्य को, ग्रुण लक्षण निरुघार ॥ जिन से ग्रुम यश ऊपजै, राजसम्पदा भार ॥ ९२॥

अब राजा के सब नौकर आदि के गुण और उक्षणों को कहते हैं — जिस से यश की प्राप्ति हो, राज्य और उक्ष्मी की वृद्धि हो तथा प्रजा शुखी हो ॥ ९२ ॥

आर्थ वेद न्याकरण अरु, जप अरु होम सुनिष्ट ॥
ततपर आशिर्वाद नित, राजपुरोहित इष्ट ॥ ९३ ॥

चार आर्थ वेद, चार छोिकक वेद, चार उपवेद और व्याकरणादि छः शास्त्र, इन चौद-हों विद्याओं का जाननेवाला, जप, पूजा और हवन का करनेवाला तथा आशीर्वाद का बोलनेवाला, ऐसा राजा का पुरोहित होना चाहिये॥ ९३॥

सोरठा—भलो न कबहुँ कुराज, मित्र कुमित्र भलो न गिन॥ असती नारि अकाज, शिष्य कुशिष्य हु कव भलो॥ ९४॥

१-- क्योंकि जो जीव जिस स्थान के हीते हैं वे उसी स्थान में पहुचकर सुख पाते हैं ॥

र-- घर्म शब्द का अर्थ प्रथम अध्याय के विज्ञप्ति प्रकरण में कर चुके हैं कि दुर्गति से वचाकर यह शुभ स्थानमें घारण करता है इसलिये इसे घर्म कहते हैं ॥

सोटे राजा का राज्य होने से राजा का न होना ही अच्छा है, दुष्ट मित्र की मित्रता होने से मित्र का न होना ही अच्छा है, कुमार्था के होने से स्त्री का न होना ही अच्छा है और सराब चेले के होने से चेले का न होना ही अच्छा है ॥ ९४ ॥

राज कुराज प्रजा न सुख, निहं कुमित्र रित राग ॥ निहं कुदार सुख गेह को, निहं कुशिष्य यशभाग ॥ ९५॥

दुष्ट राजा के राज्य में प्रजा को सुख नहीं होता, कुमित्र से आनंद नहीं होता, कुमार्या से घर का सुख नहीं होता और आज्ञा को न माननेवाले शिष्य से गुरु को यश नहीं मिलता है ॥ ९५ ॥

इक इक वक अरु सिंघ से, कुक्ट से पुनि चार॥ पांच काग अरु श्वान षट्, खर त्रिहुँ शिक्षा धार॥ ९६॥

बगुले और सिंह से एक एक गुण सीखंना चाहिये, कुक्कुट (मुर्गे) से चार गुण सीखंन चाहिये, कीए से पांच गुण सीखंन चाहियें, कुत्ते से छः गुण सीखंने चाहियें और गर्दम (गदंहे) से तीन गुण सीखंने चाहियें ॥ ९६॥

छोटे मोटे काज को, साहस कर के यार॥ जैसे तैसे साथिये, सिंघ सीख इक घार॥ ९७॥

है मित्र! सिंह से यह एक शिक्षा छेनी चाहिये कि—कोई भी छोटा या बड़ा काम करना हो उस में साहस (हिम्मत) रख कर जैसे बने वैसे उस काम को सिद्ध करना चाहिये, जैसे कि सिंह शिकार के समय अपनी पूर्ण शक्ति को काम में ठाता है।। ९७।।

करि संयम इन्द्रीन को, पण्डित बकुल समान॥ देश काल बल जानि के, कारज करै सुजान॥ ९८॥

बगुछे से यह एक शिक्षा छेनी चाहिये कि—चतुर पुरुष अपनी इन्द्रियों को रोक कर बगुछे के समान एकाम घ्यान कर तथा देश और काल का विचार कर अपने सब कार्यों को सिद्ध करे ॥ ९८ ॥

समर प्रबल अति रति प्रबल, नित प्रति उठत सवार ॥ स्वाय अज्ञान सो बांटि के, ये कुक्कुट ग्रन चार ॥ ९९ ॥

ळड़ाई में प्रबळता रखना (मागना नहीं), रति में अति प्रवळता रखना, प्रतिदिन तड़के उठना और मोजन बांट के खाना, वे बार गुण कुक्कुट से सीखने चाहियें ॥ ९९ ॥

^{9—}गुणप्राही होना सत्पुरुषों का खामाविक वर्म है—अतः इन वक आदि से इन गुणो के प्रहण करने का उपदेश किया गया है ॥

मैथुन गुप्तरु घृष्टता, अवसर आलय देह ॥ अप्रमाद विश्वास तज, पांच काग गुण लेह ॥ १००॥

गुप्तरीति से (अति एकान्त में) स्त्री से मोग करना, घृष्टता (टिठाई), अवसर पाकर घर बनाना, गाफिल न रहना और किसी का भी विश्वांस न करना, ये पांच गुण कौए से सीखने चाहिये ॥ १०० ॥

बहुसुक थोड़े तुष्टता, सुखनिद्रा झट जाग ॥ खामिभक्ति अरु ग्रूरता, षट ग्रुण म्वान सुपाग ॥ १०१ ॥

अधिक खानेवाला होकर भी बोड़ा ही मिलने पर सन्तोष करना, अस से नींद लेना परन्तु तनिक आवाज होने पर तुरन्त सचेत हो जाना, खामि में मिक्त (जिस का अन जल खावे पीवे उस की मिक्त) रखना और अपने कर्तव्य में शूर वीर होना, ये छः गुण कुत्ते से सीखने चाहियें ॥ १०१॥

थाक्यो हू ढोवै सदा, शीत उष्ण नहिँ चीन्ह ॥ सदा सुखी मातो रहे, रासभिशक्षा तीन्ह ॥ १०२॥

अत्यन्त थक जाने पर भी बोझ को ढोते ही रहना (परिश्रम में छगे ही रहना) तथा गर्मी और सर्दी पर दृष्टि न देना और सदा सुखी व मैस्त रहना, थे तीन गुण रासम(गर्ध) से सीखने चाहियें ॥ १०२ ॥

जो नर घारण करत हैं, यह उत्तम ग्रुण बीस ॥ होय विजय सब काम में, तिन्ह छलिया नहिँ दीस ॥ १०३॥

ये दीस गुण जो शिक्षा के कहे है-इन गुणों को जो मनुष्य घारण करेगा वह सब कामों में सदा विजयी होगा (उस के सब कार्य सिद्ध होंगे) और उस पुरुष को कोई मी नहीं छक्ष सकेगा ॥ १०२ ॥

अर्थनाश मनताप को, अरु कुचरित निज गेहु॥ नीच वचन अपमान ये, धीर प्रकाशि न देहु॥ १०४॥

धन का नाश, मन का दुःख (फिक), अपने घर के खोटे चरित्र, नीच का कहा हुआ वचन और अपमान, इतनी वार्तों को बुद्धिमान् पुरुष कमी प्रकौशित न करे॥१०॥

धन अरु घान्य प्रयोग में, विद्या संग्रह कार ॥ आहाररु व्यवहार में, लज्जा अवस निवार ॥ १०५ ॥

१---क्योंकि नीतिशास्त्र में किसी का भी विश्वास न करने का उपदेश दिया गया है, देखो पिछला ६९ वां दोहा ॥ २---अर्थात् चिन्ता को अपने पास न आने देना, क्योंकि चिन्ता स्वसन्त दुःखदायिनी होती है ॥ ३---क्योंकि इन बातों को प्रकाशित करने से मसुष्य का उलटा उपहास होता है तथा लघुता प्रकट होती है ॥

धन और धान्य का सम्बय करने के समय, विद्या सीखने के समय, मोजन करने के समय और देन छेन करने के समय मनुष्य को छज्जा अवस्य त्याग देनी चाहिये ॥१०५॥

सन्तोषामृत दस् को, होत ज शान्ती सुक्ख ॥

सो धनलोभी को कहां, इत उत घावत दुक्ख ॥ १०६ ॥

सन्तोष रूप अमृत से तृप्त हुए पुरुष को जो शान्ति और मुख होता है वह धन के लोभी को कहां से हो सकता है-किन्तु घन के लोभी को तो लोभवश इधर उधर दौड़ने से दुःख ही होता है ॥ १०६॥

तीन थान सन्तोष कर, घन भोजन अरु दार ॥ तीन सँतोष न कीजिये, दान पठन तपचार ॥ १०७ ॥

मनुष्य को तीन स्थानों में सन्तोष रखना चाहिये—अपनी स्त्री में, मोजन में और धन में, किन्तु तीन स्थानों में सन्तोष नहीं रखना चाहिये— छुपात्रों को दान देने में, विद्या-ध्ययन करने में और तप करने में ॥ १०७॥

पग न लगावे अग्नि के, ग्रह ब्राह्मण अरु गाय ॥ और कुमारी बाल शिशु, विद्युजन चित लाय ॥ १०८ ॥

अभि, गुरु, ब्राह्मण, गाय, कुमारी कन्या, छोटा नालक और विधानान्, इन के जान बूझकर पैर नहीं लगाना चाहिये ॥ १०८ ॥

हाथी हाथ हजार तज, घोड़ा से श्रत भाग ॥ शृंगि पशुन दश हाथ तज, दुर्जन मामहि लाग॥ १०९॥

हाथी से हजार हाथ, घोड़े से सौ हाथ, बैल और गाय आदि सींग नाले जानवरों से दश्च हाथ दूर रहना चाहिये तथा दुष्ट पुरुष जहां रहता हो उस शाम को ही छोड़ देना चाहिये ॥ १०९॥

लोभिहिँ धन से वश करै, अभिमानिहिँ कर जोर ॥ मूर्ख चित्त अनुवृत्ति करि, पण्डित सत के जोर ॥ ११०॥

लोमी को धन से, अभिमानी को हाँब जोड़कर, मूर्ख को उस के कथन के अनुसार चलकर और पण्डित पुरुष को यथार्थता (सचाई) से वश में करना चाहिये ॥ ११०॥

१—क्योंकि इन कार्मों में लजा का लाग न करने से हानि होती है तथा पीछे पछताना पडता है।।

२—क्योंकि दान अध्ययन और तप में सन्तोष रखने से अर्थात् बोड़े ही के द्वारा अपने को कृतार्थ समझ छने से मनुष्य आगामी में अपनी उन्नांत नहीं कर सकता है।।

३—इन में से कई तो साधुद्दत्ति बाले होने से तथा कई उपकारी होने से पूज्य हैं अतः इन के निकुष्ट अम पैर के अगाने का निपेध किया गया है।।

४—इस बात को अवस्य याद रखना चाहिये अर्थात् मार्ग में हाथी, घोडा, बैल और कट आदि जानवर खड़े हों तो उन से दूर होकर निकलना चाहिये अर्थात् मार्ग में प्रमाद (गफलत) किया जावेगा तो कभी न कभी अवस्य दु:ख उठाना पड़ेगा।।

बलबन्तिहँ अनुकूल है, निबलहिँ है प्रतिकूल ॥ वशा कर पुनि निज सम रिपुहिँ, शक्ति विनय ही मूल ॥ १११ ॥ वलवान् शत्रु को उस के अनुकूल होकर वश में कैरे, निर्वेष शत्रु को उस के प्रतिकृत होकर वश में करे और अपने बरावर के शत्रु को युद्ध करके अथवा विनय करके वश्च में करे ॥ १११ ॥

जिन जिन को जो भाव है, तिन तिन को हित जान ॥ मन में धुसि निज वद्य करै, निहँ उपाय वस आन ॥ ११२॥

जिस २ पुरुष का जो २ भाव है (जिस जिस पुरुष को जो २ वस्तु अच्छी छगती है) उस २ पुरुष के उसी २ भाव को तथा हित को जानकर उस के मन में घुम कर उस को वश में करना चाहिये, क्योंकि इस के सिवाय वश में करने का दूसरा कोई उपाय नहीं है ॥ ११२ ॥

अतिहिँ सरल नहिँ हूजिये, जाकर वन में देख ॥ सरल तरू तहँ छिदत हैं, बांके तजै विशेख ॥ ११३॥

मनुष्य को अंत्यन्त सीधा भी नहीं हो जाना चाहिये—िकन्तु कुछ टेवापन भी रखना चाहिये, क्योंकि—वेखो ! जंगल में सीधे वृक्षों को छोग काट छे जाते हैं और टेवों को नहीं काटते हैं ॥ ११३॥

जिनके घर धन तिनहिँ के, मित्ररु बान्धव लोग ॥ जिन के घन सोई पुरुष, जीवन ताको योग ॥ ११४॥

जिस के पास धन है उसी के सब मित्र होते हैं, जिस के पास धन है उसी के सब माई बन्धु होते है, जिस के पास धन हैं बही संसार में मनुष्य गिना जाता है और जिस के पास धन है उसी का संसार में जीना योग्य है ॥ ११९॥

मित्र दार सुत सुहृद हु, निरधन को तज देत॥

पुनि धन लिख आश्रित हुवैं, धन बान्धव करि देत ॥ ११५॥ जिस के पास धन नहीं है उस पुरुष को मित्र, स्त्री, पुत्र और माई वन्धु मी छोड़ देते है और धन होने पर वे ही सब आकर इकड़े होकर उस के आश्रित हो जाते हैं, इस से सिद्ध है कि—जगत् में धन ही सब को बान्धव बना देता है॥ ११५॥

अर्थहीन दुःखित पुरुष, अल्प बुद्धि को गेह ॥ तासु किया सब छिन्न हों, ग्रीष्म कुनदि जल जेह ॥ ११६ ॥

९—क्योंकि वळवान् शत्रु प्रतिकृळता से (ळडाई आदि के द्वारा) वन में नहीं किया जा सकता है ॥ ९—ग्रसाई तुलसीदास जी ने सल कहा है कि—"टेड जानि शका सन काह । वक चन्द्र जिमि प्रसे न राहु" ॥ अर्थात डेवा जानकर सन सन सन सानते हैं—जैसे राहु भी टेवे चन्द्रमा को नहीं प्रसता है ॥

धनहीन पुरुष सदा दु:स्वी ही रहता है और सब छोग उस को अल्पद्धिद्ध का घर (मूर्ज) समझते हैं तथा धनहीन पुरुष का किया हुआ कोई भी काम सिद्ध नहीं होता है—किन्तु उस के सब काम नष्ट हो जाते हैं—जैसे अध्मि ऋतु में छोटी २ निदयां सूख जाती है ॥ ११६॥

धनी सबहि तिय जीत ही, सभा जु बचन विशाल ॥ उद्यमि रुक्ष्मिहिँ जीतही, साधु सुवाका रसाल ॥ ११७ ॥

धनवान् पुरुष स्त्रियों को जीत छेता है, बचनों की चतुराईवाला पुरुष सभा को जीत छेता है, उद्यम करने बाला पुरुष लक्ष्मी को जीत छेता है और मधुर बचन वोलने बाला पुरुष साधु जनों को जीत छेता है ॥ ११७॥

दीमक मधुमाखी छता, ग्रुक्त पक्ष शिशा देख ॥ राजद्रव्य आहार ये, थोड़े होत विशेख ॥ ११८॥

दीसक (उदई), मधुमक्सी का छता, गुक्क पक्ष का चन्द्रमा, राजाओं का धन और आहार, ये पहिले थोड़े होकर भी पीछे दृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ११८॥

धन संग्रह पथ चलन अरु, गिरि पर चढ़न सुजान ॥ धीरे धीरे होत सब, धर्म काम हू मान ॥ ११९॥

हे द्वजान ! धन का संग्रह, मार्ग का चलना, पर्वत पर चटना तथा धर्म और काम आदि का सेवन, ये सब कार्य धीरे घीरे ही होते हैं ॥ ११९॥

अञ्जन क्षयहिँ विलोकि नित, दीमक वृद्धि विचार ॥ चन्ध्य दिवस निंह कीजिये, दान पठन हित कार ॥ १२०॥

अंजन के क्षय और दीमक के सञ्चय को देखकर-मनुष्य को चाहिये कि-दान, पठन और अच्छे कार्यों के द्वारा दिन को सफैल करे ॥ १२०॥

क्रिया कष्ट करि साधु हो, विन क्षत होवै शूर ॥ मद्य पिये नारी सती, यह श्रद्धा तज दूर ॥ १२१ ॥

क्रियाकप्ट करके साधु वा महात्मा हो सकता है, विना घाव के भी शूर वीर हो

१—इस दोहे का सारांश नहीं है-कि बुद्धिमान् पुरुष को सब कार्य विचार कर घीरे धीरे ही करने चाहिये-क्योंकि घनसंत्रह तथा बर्मोपार्जन आदि कार्य एकदम नहीं हो सकते हैं॥

२—देखिये अजन नेत्र में ज़रा सा डाखा जाता है केकिन प्रतिदिन उस का थोडा २ खर्च होने से पहाड़ों के पहाड़ नेत्रों में समा जाते हैं-इसी प्रकार दीमक (जतुनिशेष) थोडा २ क्लीक का संप्रह करता है तो की जमा होते २ वह वहुत वडा बल्मीक वन जाता है—इसी बात को सोचकर अनुष्य को प्रतिदिन यथा-भी जमा होते २ वह वहुत वडा बल्मीक वन जाता है—इसी बात को सोचकर अनुष्य को प्रतिदिन यथा-शक्ति वान, अध्ययन और शुभ कार्य करना चाहिये—क्योंकि उक्त प्रकार से घोटा २ करने पर भी कालान्तर में उन का बहुत वडा फलू दीख पड़ेगा॥

सकता है तथा मद्य पीनेवाली स्त्री भी सती हो सकती है, इस श्रद्धा को दूर ही त्याग देना चौहिये॥ १२१॥

नेत्र कुटिल जो नारि है, कष्ट कल्ह से प्यार ॥ यचन भड़कि उत्तर करे, जरा वहै निरधार ॥ १२२ ॥

खराव नेत्रवाली, पापिनी, कल्ह करने वाली और क्रोम में मर कर पीछा जवाब देने बाली जो स्नी है—उसी को जरा अर्थात् बुढापा समझना चाहिये किन्तु बुढ़ापे की अवस्था को बढ़ापा नहीं समझना चौहिये ॥ १२२ ॥

जो नारी शुचि चतुर अरु, खामी के अनुसार ॥ नित्य मधुर घोळै सरस, रुक्ष्मी सोइ निहार ॥ १२३ ॥

जो स्त्री पवित्र, चतुर, पित की आज्ञा में चलने वाली और नित्य रसीले मीठे वचन बोलने बाली है, वही लक्ष्मी है दूसरी कोई लक्ष्मी नहीं है ॥ १२३ ॥

घर कारज चित दै करै, पति समुझै जो प्रान ॥

सो नारी जग धन्य है, सुनियो परम सुजान ॥ १२४ ॥

हे परम चतुर पुरुषो ! झुनो, जो स्त्री घर का काम चित्त छगाकर करे और पति को माणों के समान मिय समझे-यही स्त्री जगत में घन्य है ॥ १२४ ॥

भले वंश की घनवती, चतुर पुरुष की नार ॥ इतने हुँ पर व्यमिचारिणी, जीवन बूथा विचार ॥ १२५ ॥

मले वंश की, धनवती और चतुर पुरुष की खी होकर भी जो खी पर पुरुष से खेह करती है-उस का जीवन संसार में बूँथा ही है ॥ १२५ ॥

लिखी पड़ी अरु धर्मवित, पतिसेवा में लीन ॥ अल्प सँतोषिनि यदा सहित, नारिहिँ लक्ष्मी चीन ॥ १२६ ॥

विद्या पटी हुई, धर्म के तत्व को समझने वाली, पति की सेवा में तत्पर रहने वाली, जैसा अन वस्न मिल जाय उसी में सन्तोष रखने वाली तथा ससार में जिस का यश प्रसिद्ध हो, उसी स्नी को उक्ष्मी जानना चाहिये, दूसरी को नहीं ॥ १२६ ॥

१—सर्थात क्षान आदि के बिना केवल कियाकष्ट कर के साधु नहीं हो सकता है, जिस के लडाई में कभी घाव आदि नहीं हुआ वह शूर नहीं हो सकता है (अर्थात वो लड़ाई में कभी नहीं गया), मध पीने वाली की सती नहीं हो सकती है—क्योंकि वो सती ली होगी वह दोपों के मूलकारण मध को पियेगी ही क्यों ? इसलिये केवल कियाकष्ट करने वाले को साधु, धावरहित पुरुप को श्रूर वीर तथा मध पीने वाली की सती समझना केवल श्रम मात्र है ॥ २—तात्पर्य यह है कि ऐसी कलहकारिणी ली के द्वारा शोक और चिन्ता पुरुष को उत्पन्न हो वाती है और वह (शोक व चिन्ता) बुढ़ापे के समान शरीर का घोषण कर देती है ॥ ३—क्योंकि सब उत्तम सामग्री से युक्त होकर भी वो मूर्खता से अपने चित्त को चलाय-मान करे उस का जीवन क्या ही है ॥

निरजर दिज अरु सतपुरुष, खुद्मी होत सतभाष ॥ अपर जान अरु पान से, पण्डित वाका प्रभाव ॥ १२७॥

देवता, ब्राह्मण और सत्पुरुष, ये तो मानमिक से प्रसन्न होते हैं, दूसरे मनुष्य खान पान से प्रसन्न होते हैं और पण्डित पुरुष वाणी के प्रभाव से प्रसन्न होते हैं ॥ १२७ ॥

अग्नि तृप्ति नहिँ काष्ठ से, उद्धि नदी के वारि ॥ काल तृप्ति नहिँ जीव से, नर से तृप्ति न नारि ॥ १२८ ॥

अमि काष्ट से तृप्त नहीं होती, निदयों के जल से समुद्र तृप्त नहीं होता, काल जीवों के खाने से तृप्त नहीं होता, इसी प्रकार से खियां पुरुषों से तृप्त नहीं होती हैं ॥ १२८ ॥

गज को दूट्यो युद्ध में, शोभ लहत जिमि दन्त ॥ पण्डित दारिद दूर करि, त्यों सज्जन घनवन्त ॥ ११९ ॥

जैसे बड़े युद्ध में ट्रटा हुआ हाथियों का दांत अच्छा छगता है—उसी प्रकार यदि कोई सत्पुरुष किसी पण्डित (विद्वान् पुरुष) की दरिद्रता खोने में अपना धन खर्च करे तो संसार में उस की शोमा होती है ॥ १२९॥

सुत विन घर सूनो कहाो, विना बन्धुजन देश ॥ सूरख को हिरदो समझ, निरधन जगत अशोष ॥ १३० ॥ छड़के के विना घर सूना है, बन्धु जनों के विना देश सूना है, मूर्ख का हृदय सूना है और वरिद्ध (निर्धन) प्रस्प के छिये सब जगत ही सुना है ॥ १३० ॥

नारिकेल आकार नर, दीसैं विरले मोंय॥ बदरीफल आकार बहु, ऊपर मीठे होंय॥ १३१॥

नारियेंक के समान आकार बार्के सत्युरुप संसार में थोड़े ही दीखते हैं परन्तु वेरैं के समान आकार बार्के बहुत से पुरुष देखे जाते हैं जो केवल ऊपर ही मीठे होते है॥ १३१॥

जिन के सुत पण्डित नहीं, नहीं भक्त निकलङ्क ॥ अन्धकार कुल जानिये, जिमि निशि विना मयङ्क ॥ १३२॥ जिस का पुत्र न तो पण्डित है, न मक्ति करने वाला है और न निष्कलंक (कलंक-

⁹⁻⁻⁻केवल वे स्नियां समझनी चाहियं जो कि चित्त को स्थिर न रखकर क्रमार्ग में प्रवृत्त हो गई हैं क्यों-कि इसी आर्यटेश में अनेक वीर्रागना परम सती, साच्यी तथा पतिप्राणा हो चुकी हैं ॥

२—मारियल के समान आकार वाले अर्थात् ऊपर से तो रूख परन्तु भीतर से उपकारक, जैसे कि मारियल ऊपर से खराब होता है परन्तु अन्दर से उत्तम गिरी देता है ॥

र्—चेर के समान आकार वाळे अर्थात् ऊपर से लिग्न (चिकने चुपडे) परन्तु भीतर से कुछ नहीं, जैसे कि वेर ऊपर से चिकना होता है परन्तु अन्दर केवल नीरस गुठली निकलती है ॥

रहित) ही है, उस के कुछ में अंधेरी ही जानना चाहिये, जैसे चन्द्रमा के निना रात्रि में अंधेरा रहता है ॥ १२२ ॥

निशि दीपक शशि जानिये, रवि दिन दीपक जान ॥ तीन भुवन दीपक घरम, कुल दीपक सुत मान ॥ १३३॥

रात्रि का दीपक चन्द्रमा है, दिन का दीपक सूर्य है, तीनों छोकों का दीपक धर्म है और कुछ का दीपक सपूत छड़का है ॥ १२३॥

तृष्णा खानि अपार है, अर्णव जिमि गम्भीर ॥ सहस यतन हूँ नहिँ भरै, सिन्धु यथा बहुनीर ॥ १३४॥

यह आशा (तृष्णा) की खान अपार है तथा समुद्र के समान अति गन्भीर है, यह (तृष्णा की खान) सहस्रों बजों से भी पूरी नहीं होती है, जैसे—समुद्र बहुत जल से भी पूर्ण नहीं होता है ॥ १३४॥

जिहि जीवन जीवें इते, मित्ररु वान्धव लोय ॥ ताको जीवन सफल जग, उदर भरें नहिं कोय ॥ १३५ ॥

जिस के जीवन से मित्र और बांघन आदि जीते हैं—संसार में उसी पुरुष का जीना सफल है और यों तो अपने ही पेट को कौन नहीं भरता है ॥ १२५॥

भोजन वहि सुनि शेष जो, पाप हीन वुध जान ॥ पीछेड हितकर मित्र सो, धर्म दम्भ विन मान ॥ १३६ ॥

मुनि (साधु) को देकर जो शेष बचे वहीं भोजन हैं (और तो शरीर को भाड़ा देना मात्र है), जो पापकर्म नहीं करता है वहीं पण्डित है, जो पीछे भी मलाई करने वाला है वहीं मित्र है और कपट के बिना जो किया जावे वहीं धर्म है।। १३६॥

अवसर रिपु से सन्धि हो, अवसर मित्र विरोध ॥ कालछेप पण्डित करै, कारज कारण सोध ॥ १३७॥

समय पाकर शत्रु से भी मित्रता हो जाती है और समय पाकर मित्र से भी शत्रुता (विरोध) हो जाती है, इस लिये पण्डित (बुद्धिमान्) पुरुष कारण के विना कार्य का न होना विनार अपना कालक्षेप (निर्वाह) करता है ॥ १३७॥

१—क्योंकि मूर्ख और मिक्तिहित पुत्र से कुछ को कोई सी छास नहीं पहुंच सकता है ॥ २—क्योंकि ज्यों २ धनादि मिछता जाता है त्यों २ तृष्णा और मी बढती जाती है ॥

३—कार्य कारण के विषय में वह समझना चाहिये कि—पाच पदार्थ ही जगत के कर्ता है, उन्हीं को इंश्वरवद मानकर बुद्धिमान पुरुष अपना निर्वाह करता है—ने पांच पदार्थ ये है—काल अर्थाद समय, वसुओं का खमान, होनहार (नियति), जीवों का पूर्वकृत कर्म और जीवों का उद्यम, अन देखिये कि उत्पत्ति और विनाश, संसार की स्थिति और गमन आदि सब व्यवहार इन्हीं पाचों कारणों से होता है, स्रष्टि अनादि है, किन्तु जो लोग कर्मरहित, निरजन, निराक्तर और झानानन्द पूर्ण ब्रह्म को संसार का कर्त्ता

व्याधिसहित धन हीन अरु, जो नर है परदेश ॥ शोक तस पुनि सुहृद जन, दुर्शन औषध भेष ॥ १३८ ॥ रोगी, निर्धन, परदेश में रहने वाले और शोक से दुःखित पुरुषों के लिये प्रिय मित्र का दर्शन होना औषधरूप है ॥ १३८ ॥

घोड़ा हाथी लोह मय, वस्त्र काछ पाषान ॥ नारी नर अरु नीर में, अति अन्तर पहिचान ॥ १३९॥

घोड़ा, हाथी, छोहे से वने पदार्थ, वस्न, काछ, पत्थर, स्त्री, पुरुष और पानी, इन का अन्तर एक वड़ा ही अन्तर है ॥ १३९ ॥

तिय कुलीन अरु नरपती, मश्री चाकर लोग ॥ थान अष्ट शोभैं नहीं, दन्त केश नख भोग ॥ १४० ॥

कुलवती स्त्री, राजा, मन्नी (प्रधान), नौकर छोग, दाँत, केश, नख, भोग और मनुष्य, ये सब अपने स्थान पर ही शोगा देते हैं किन्तु अपने स्थान से अष्ट होकर शोगा नहीं देते हैं ॥ १४० ॥

पूगीफल अरु पत्र अहि, राजहंस तिमि वाजि॥ पण्डित गज अरु सिंह ये, थान ऋष्ट हू राजि॥ १४१॥ द्यपारी, नागरवेळ के पान, राजहंस, घोड़ा, सिंह, हाथी और पण्डित, वे सब अपने स्थान से ऋष्ट होकर भी शोगा पाँते हैं॥ १४१॥

जो निश्चय मारग गहै, रहे ब्रह्मगुण लीन ॥ ब्रह्म दृष्टि सुख अनुभवै, सो ब्राह्मण परवीन॥ १४२॥ जो निश्चयमार्ग का ब्रह्म करे, ब्रह्म के गुणों में लीन (तत्पर) हो तथा ब्रह्मदृष्टि के सुख का अनुभव करे, उस को चतुर ब्राह्मण समझना चाहिये॥ १४२॥

मानते हैं वह उन का अम है और यथाय तत्त्व को विना विचार वे ऐसा मानते हैं—सिष्टविषयक कर्ता के विषयमें विशेष वर्णन देखने की इच्छा हो तो बृहत्खरतर गच्छीय महासुनि श्री विदानन्द जी महाराज (जो कि महासाता विने भेतान्त्रर संघ में एक नामी पुरुष हो गये हैं) के बनाये हुए स्वाहादानुभव रहाकर नामक सुदित अन्य में देखों, उक्त अनिजी ने पहापातरहित होकर इस अन्य को बनाया है. अतः यह अन्य अस्वन्त माननीय है, यदापि यह अन्य खण्डन मण्डन का है तथापि अस्वन्त पक्षपातरहित है स्वा अन्य में वादी के माने हुए मत से ही उस का खण्डन दिखाया गया है, मेरी सम्मति में ऐसा उपकारी अन्य उक्त विषय में जैन अन्यों में दूसरा कोई नहीं छपा है, इस स्वि अत्येक जैन आता को योग्य है कि, इस अन्य की एक पुस्तक मंगाकर अवस्य पढ़ें, इस अन्य की कुछ प्रतियां हमारे कार्याख्य में भी हैं यदि किसी सुजन को आवश्यकता हो तो मेजी जा सकती है—इस का मून्य केवल २॥ ६० मान्न है॥

9—इस का उदाहरण प्रसास ही है ॥ २—इस का भी उदाहरण प्रसास ही दीस पढ़ता है ॥ ३—अर्थात, व्यवहारमार्थ (व्यवहारनय) को छोड़कर निष्ठवमार्थ (निष्ठयनय) का प्रहण करे, नय सात हैं—इन का निषय "नयपरिच्छेद" सादि प्रन्यों में देखो ॥

जो निश्चय गुण जानि के, करै ग्रुद्ध व्यवहार ॥ जीतै सेना मोह की, सो क्षत्री मुजमार ॥ १४३ ॥

जो निश्चय गुणों को जान कर, गुद्ध गुद्ध व्यवहार करै तथा मोह की सेना को जीत छे, वही बड़ी मुजावाला (विष्ठ) क्षत्रिय जानना चाहिये ॥ १४३ ॥

जो जानै व्यवहार नय, दृढ़ व्यवहारी होय ॥ ग्रुम करणी सों रिम रहै, वैश्य कहावै सोय ॥ १४४ ॥

जो व्यवहाँर नय को जानता हो, व्यवेंहार में इढ हो तथा ग्रुम करणी (मुन्दर कर्मी)में रमण करता हो (तत्पर रहता हो) उसीको वैक्य कहना चाहिये ॥ १४४ ॥

जो मिथ्या तम आद्रै, राग दोष की खान ॥ विनय विवेक कृतिहिं करै, श्रद्ध वर्ण सो जान ॥ १४५ ॥

जो मिर्स्यातम का आदर करे, राग और दोष की खान हो तथा अपने कर्तव्य विनय को ही जानकर सब कार्य करे, उसी को शृद्ध वर्ण जानना चाहिये ॥ १९५ ॥

सर्जन सुनियो कान दै, गृह आश्रम के बीच ॥
नीति न जाने जो पुरुष, करै काम वह नीच ॥ १४६ ॥
तत्व विचारै नीति को, जो नर चित्त लगाय ॥
तीन लोक की सम्पदा, अनायासं वह पाय ॥ १४७ ॥

१—निधय गुणो को अर्थात् निश्चय नय के गुणो को प्रहण करे ॥

२- क्योंकि मोह की सेना के काम कोघ आदि बोद्धाओं को जीतना अति कठिन है।।

३---देखो १४२ वें दोहे का नोट । यह नयो का अकरण बहुत क्डा है-इस वास्ते इस विपय में यहां नहीं लिखा गया है-किन्तु इस का विषय क्सरे अन्थों में देखना चाहिये॥

४—वैश्म को व्यवहार में सदा रह रहना चाहिये-तथा अपने बचन पर कायम रहना चाहिये-किन्तु होगों का धन केकर दिवाला नहीं निकाल देना चाहिये ॥

५—श्रुभ करणी में अर्थात् दान, परोपकार, पश्चरक्षण, विद्यादृद्धि, साधुसेवा और धर्मव्यवहार मे तत्पर रहना चाहिये ॥

६——िमयातम शब्द का अर्थ अञ्चानान्यकार है—अर्थात् अञ्चानान्यकार से होनेवाले कार्यों का आदर करै—कैसे—कोष, मान, माया, कोम और परोपकार आदि निकुष्ट कार्यों को अच्छा समझे—िकन्तु ज्ञान-संस्वधी कार्यों में श्रद्धा न स्वस्ते ॥

७—क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और नैस्य, इन तीन वर्णों का विनय करना ही शह का मुख्य कर्त्तव्य है— जैसा कि धर्मशास्त्र में ढिखा है कि—"एक्सेन तु शहस्य प्रशुः क्में समादिशत् ॥ एतेपामेन वर्णाना शुक्रु-षामनसूयया ॥ ९ ॥ " अर्थात् असूयारहित होकर तीन वर्णों की शुक्रूषा (सेवा और विनयादि) करना ही शह का मुख्य कर्त्तव्य है ॥

८-अन्थकर्ता के विनय के दोहे ॥ ९-विना परिश्रम ही ॥

विश्वे छोला में ने करी, छमी मोहिं खुज्ञान ॥
किविता जानों में नहीं, निहं मोहिं पिङ्गेल ज्ञान ॥ १४८ ॥
चाणक नीती सार गहि, कमला रक्षक कीन ॥
नीतिसार दोहावली, द्विट सब छमहु प्रवीन ॥ १४९ ॥
यह द्वितीय अध्याय का चाणक्य नीतिसार दोहाविल नामक प्रथम प्रकरण
समास हुआ ॥

दूसरा प्रकरण—सुभाषित रत्नाविल के दोहे ॥

उत्तम मध्यम अथम की, पाईन सिंकता तोर्य ॥ श्रीति अनुक्रम जानिये, बैर व्यक्तिम होय ॥१॥ रागी औराण ना गिनै, यही जगत की चाल ॥ देखो सब ही श्याम को, कहत बारू सब ठारू ॥ २ ॥ जो जाको गुन जानहीं, सो तिहि आदर देत ॥ कोकिल अन्बिह लेत है, काग निवोली लेत ॥ ३ ॥ हलन चलन की शक्ति है, तब ली उद्यम ठान ॥ अजगर ज्यों मूर्गंपंतिवदन, मूग न परत है आन ॥ ८ ॥ जाही तें कुछ पाइये, करिये ताकी आस ॥ रीते सैरैवर पै गये, कैसे बुझत पियास ॥ ५ ॥ देवो अवसर को मछो, जासों सुधरै काम ॥ खेती सुखे वरसिवी, धेर्ने को कौनै काम ॥ ६ ॥ अपनी पहुँच बि-चारि के, करतव करिये दौड़ ॥ ते ते पाँच पसारिये, जेती छांबी सौड़ें ॥ ७ ॥ कैसे निब-है निवल जन, करि सवलन सों गैरें॥ जैसे विस सागर विषे, करत मगर सों वैर ॥ ८॥ पिशुन छल्यो नर झजन सीं, करत विसास न चुक ॥ जैसे दौर्ध्यो दूध को, पियत छाछ कीं फुक || ९ || प्राण तृषीतुर के रहे, थोड़े हूँ जलपान || पीछे जल भर सहैस घट, डारे मिलत न प्रान ॥ १० ॥ विद्या धन उद्यम विना, कहो जु पानै कौन ॥ विना हुलाये ना मिळे, ज्यों पंखे की पीन ॥ ११ ॥ बनती देखि बनाइये, परत न दीजे पीठ ॥ जैसी चळे वयार तव, तैसी दीजे पीठ ॥ १२ ॥ ओछे नर की प्रीति की, दीन्ही रीति वताय ॥ जैसे छीलरें ताल जल, घटत घटत घटि जाय ॥ १३ ॥ अन मिलती जोई करत, ताही को उ-पहास ॥ जैसे जोगी जोग में, करत भोग की आस ॥ १४ ॥ दुरे लगत सिर्द के वचन,

१-वाललीला अर्थात् वर्षो का खेल ॥ २-छन्द का एक अन्य है ॥ ३-श्रीपाल वा श्रीपालचन्त्र ॥ ४-पत्थर् ॥ ५-रेत, वाल्र् ॥ ६-जल ॥ ७-क्रमसे ॥ ८-उल्टा ॥ ९-आम को ॥ १०-सिं-इ के मुख में ॥ ११-वालाव ॥ १२-मेव ॥ १३-लिहाफ वा रजाई ॥ १४-विरोध ॥ १५-चुगुलखोर, निन्दक ॥ १६-जला हुआ ॥ १७-प्यास से व्याकुल ॥ १८-सहस्र अर्थात् हुजार् ॥ १९-कम महिरा ॥ २०-इंसी, ठहा ॥ २१-सिका, नसीहत् ॥

मनमें सोचह आप ॥ कड़ई औषघ बिन पिये, मिटत न तन को ताँप ॥ १५ ॥ रहे स-मीप बहेन के, होत बढ़ो हित मेळ ॥ सब ही जानत बढ़त है, बृक्ष बराबर बेळ ॥ १६ ॥ .उपकारी उपकार जग, सब सों करत प्रकास ॥ ज्यों कहें मध्रे तेरु मर्छय, करत छवासहि जास ।। १७ ॥ करिये सुख को होत दुख, यह कह कौन सयाँन ।। वा सोने को जारिये, जासों ट्रेंट कान ॥ १८ ॥ नयना देत बताय सब, -हिर्य को हेर्त अहेर्त ॥ ज्यों नाई की आरसी, मली बुरी कहि देत ॥ १९ ॥ फेर न व्हे है कपट सों, जो कीने व्योपार ॥ नैसे · हांड़ी काठ की, चढ़े न दूजी बार ॥ २० ॥· सुखदायी जो देत दुख; सो सब दिन को -फेर ॥ शैशि शीतल संयोग में, तर्पत विरेहैं की वेरे ॥ २१ ॥ मले बरे सब एकसे. जी ''लीं बोलत नाहिं ॥ जान परत है कीक पिकें, ऋतु वसर्न्त के माहिं ॥ २२ ॥ नि-सफल श्रोती मूर्ड यदि, वक्ती वचन विलास ॥ हाव माव ज्यों तीये के, पति अन्धे के पास || २३ || कुछ अरु गुण जाने विना, मान न कर मनुहार || ठगत फिरत ठग जगत .को, मेव मगत को घार ॥ २४ ॥ हित हु की कहिये न तिहिं, जो नर होय अँवीघ ॥ . ज्यों नकटे को आरसी. होत दिखाये कोष ॥ २५ ॥ मूरल को पोथी दई, बांचन को गु-नगाथ ॥ जैसे निर्मल आरसी. दई अन्य के हाथ ॥ २६ ॥ मधुर वचन से मिटत है. उ-त्तम जन अभिमान ॥ तनक शीते जल से मिटै, जैसे द्व उफाव ॥ २७ ॥ जिहिं से रक्षा होत है, हुवै उसी से घोतें ॥ कहा करे कोऊ जतन, वाड़ काकड़ी खात-॥ २८ ॥ सबै सहायक सबल के, कोउ न निवल सहाय ॥ पर्वेर्क जगावत- आग कों, दीपहिं देत वक्षाय ॥ २९ ॥ समय समुक्ति जो कीजिये, काम वही अभिरोम ॥ सिन्धव मांग्यो जी-मते. घोडे को कह काम ॥ ३० ॥ जो जिहिं भीवें सो मलो, गुन को कल न विचार ॥ तिज गजर्मुकता भीलनी, पहिरत गुझौहार ॥ ३१ ॥ जासों चालै जीविका, करिये सो अभ्यास ॥ वेक्या पाँछे अश्रील तो, कैसे पूरे आस ॥ ३२ ॥ दुष्ट न छोड़े दुष्टता, नाना शिक्षा देत ॥ धोये हूँ सी बेर के, काजल होत न श्वेत ॥ २२ ॥ एक मले सब को मलो, देखी विशेंद विवेक ॥ जैसे सिंत हरिचन्द के, उघरे जीव अनेक ॥ ३४ ॥ एक बुरे सब को त्ररो, होत सबैँछ के कोपैँ ॥ औगून अर्जुन के मयो. सब क्षत्रिन को छोप ॥ ३५ ॥

१-दु.ख, उत्तर की पीडा ॥ १-मलाई करनेवाला ॥ ३ मलाई ॥४-कडुआ ॥ ५-इस ॥ ६-चन्द्रन ॥ ७-चुराई ॥ ८-इस्य ॥ ९-मलाई ॥ १०-खुराई ॥ ११-चन्द्रमा ॥ ११-दु.ख देता है ॥ १३-जुराई ॥ १४-समय ॥ १५-तक ॥ १६-कीआ ॥ १०-कोयल ॥ १८-मीसम वहार ॥ १९-खुनेवाला ॥ २०-मूर्ख ॥ २९-चोलने वाला ॥ २२-छी ॥ २३-अज्ञान, मूर्ख ॥ २४-उडा ॥ २५-पीडा, हावि ॥ २६-ह्वा ॥ २०-खुन्दर ॥ २८-घोड़ा तथा सधानोन ॥ २९ अच्छा लगता है ॥ २०-ह्यां के मोती ॥ ३१-खुन्दर ॥ २८-घोड़ा तथा सधानोन ॥ २९ अच्छा लगता है ॥ २०-ह्यां के मोती ॥ ३१-खुन्दर ॥ २६-सदाचार ॥ ३२-सदाचार ॥ ३१-खंकर मी सल को नहीं छोड़ा था ॥ ३५-झान ॥ ३६-सला हरिस्वन्द्र राजा, जिन्हों ने राज्य आदि को छोड़कर भी सल को नहीं छोड़ा था ॥ ३५-झन्वान, जोरावर ॥ ३८-सुस्सा ॥

मान होत है गुनन हैं, गुन विन मान न होय ॥ श्रीक सीरिक राखें सबै, काग न राखे कोय ॥ ३६ ॥ आडम्बैर तिन कीनिये, गुण संग्रेंह चित चाँहि ॥ दूघरहित गउ निहें विके, आनी घण्ट वजाँहि ॥ २७ ॥ बैसे गुण दीन्हें देई, तैसी ह्रप निवन्य ॥ ये दोक कहँ पाइये, सोनो और सुगन्य ॥ ३८ ॥ अर्सिंटापी इक वात के, तिन में होय निरोध ॥ कान राज के राजर्द्धत, छड़त मिड़त करि कीय ॥ ३९ ॥ नहिं इछान देख्यो सुन्यो, नासों मिटत सुमाव ॥ मधुपुट कोटिक देत हूँ, विष न तजत विषमीव ॥ ४० ॥ प्रीति निवाहन कठिन है, समुझि कीजियो कोय ॥ मांग मखन है सुर्गेमै पुनि, छहर कठिन ही होय ॥ ४१ ॥ देव सेव फल देत है, जाको जैसो गाँव ॥ जैसो मुख करि आरसी, देखै सोड दिखाव ॥ ४२ ॥ कुल वल जैसो होय सो, तैसी करिये वात ॥ वनिके पुत्र जाने कहा. गेंढें छेवे की बात ॥ ४३ ॥ जैसो बन्धन प्रेम को, तैसो बन्ध न और ॥ काँठैं मेद समरत्य हुँ, कमल न छेदै मौरं ॥ ४४ ॥ अपनी अपनी गैर्रज सव, बोलत करत निहोरं ॥ विना गरेंज बोलें नहीं, गिरिवरें हैं के मोर ॥ ३५ ॥ जो सब ही को देत है, दाता क-हियें सोय ॥ जर्लेंघर बरसत सेंमें विषेत, थेंलें न विचारत कोय ॥ ४६ ॥ जो समुझे जि-हिं बात को, सो तिहिं करे विचार ॥ रोग न जानै ज्योतियी, वैद्य ग्रहन के चार्र ॥४७॥ प्रकृति मिळे मन मिलत है. अन मिल ते न मिलाय ॥ दूघ दही से जमत है, कांजी से फटि जाय ॥ ४८ ॥ वात कहन की रीति में, है अँन्तर अधिकाय ॥ एक वचन रिसैं क पजै, एक वचन से जाय ॥ ४९ ॥ एक वस्तु गुण होत हैं. भिन्न प्रकृति के भाय ॥ भैटा एक को पित करत. करत एक को नाँयं ॥ ५० ॥ स्वारथ के सब ही संगे. बिन खारथ कोड नाहिं ॥ सेवै पंछी सरैंसै तँहै, निरैंसै मये उड़ि जाहिं ॥ ५१ ॥ झल वीते दल होत है. दल बीते सल होत ॥ दिवैंस गये ज्यों निशिं उदितें, निश गैते दिवस उ-दोतें ॥ ५२ ॥ जो मापै सोई सही, वड़े पुरुष की वान ॥ है अनंग ताको कहै, महारूप की खान ॥ ५३ ॥ पर घर कवहूँ न जाइये, गये घटत है जीत ॥ रविमण्डल में जात श्रविं, हीर्ने कला छनि होत ॥ ५४ ॥ टॅरैही से कोमल प्रकृति, सज्जन परम दयाल ॥ कीन सिखावत है कहो, राजहंस को चाल ॥ ५५ ॥ जिन पण्डत विधा तजह, मूरल

^{&#}x27;१-तोता ॥ २-मैना ॥ ३-डोंग ॥ ४-संचय ॥ ५-विधाता, ईश्वर ॥ ६-वाहनेवाछ ॥ ७-वैर ॥ ८-राजपुत्र ॥ ९-शहद के पुट ॥ १०-करोडों ॥ ११-विधाता ॥ ११-सहज ॥ ११-श्वदा ॥ १४-विधाता ॥ १

धन अवरेख ॥ कुँळजा शील न परिहेरै, कुलैंटा मूचन देख ॥ ५६ ॥ एक दशा निवहे नहीं, जैनि पछितावह कीय ॥ रैनि ह की इक दिवसे में, तीन अवस्था हीय ॥ ५७ ॥ नर सन्पति दिन पाइके, अति मति करियो कोय ॥ दुर्योधन अति मान से. मयो निधन कुछ खोय ॥ ५८ ॥ जे चेर्तन ते क्यों तर्जे, जाको जासों मोह ॥ चुम्बक के पाछे छायो. फिरत अचेर्तन छोह ॥ ५९ ॥ घटत बढत सम्पति निपति, गति अरहट की जोर्य ॥ रीती" घटिका भरत है. मरी स रीती होय ॥ ६० ॥ उत्तम जन की होई करि. नीच न होत रसील ॥ कीवा कैसे चिल सके, राजहंस की चाल ॥ ६१ ॥ उत्तम जन के सङ्ग में, सहजै ही सख गाँसें ॥ जैसे तृप 'ठाँवै अतर, केत समाजन वाँसै ॥ ६२ ॥ जो पावै अति कंच पद, ताको पतेन निर्दान ॥ ज्यों तिप तिप मध्यान्ह ैं छैं, अस्त होत है भीने ॥६३॥ मुरल गुण समुक्ते नहीं, तौ न गुणी में चूक ॥ कहा मयी दिन की विभी रे, देख्यो जो न उद्धें । ६४ ॥ विन सार्य कैसे सहैं, कोऊ कद्भवे वैने ॥ ठात साय प्रचकारिये. होय दुर्घोह्न धेर्ने ॥ ६५ ॥ सुजन तजहिं नहिं सुजनता, कीन्हे हुँ अपेकार ॥ ज्यो चन्दन छेदै तर्क, ग्रेरिमित करहि कुठाँर ॥ ६६ ॥ दृष्ट न छांडै दृष्टता, पोषे राखे ओट ॥ सर्प-हिं कैसहूँ हित करी, उत्पे चलावे चोट ॥ ६७ ॥ होय बुराई से बुरो, यह कीन्हो नि-रबीरे ॥ साह बेलेंनेगो और को, ताको कूँप तयार ॥ ६८ ॥ अति ही सैरैंक न इजिये, देखो ज्यों वनराय ॥ सीधे सीधे छेदिये, वैशंको तरु विच जाय ॥ ६९ ॥ बहुतन को न विरोधिये, निवल जानि वलवान ॥ मिलि मिलि जाहिं पिपीलिकी. नींगहिं नेंग के मीन ॥ ७० ॥ बहुत निवल मिलि वल करें, करें जु चाहें सोय ॥ तुँनैगण की डोरी करे. हस्ति हुँ बन्धन होय ॥ ७१ ॥ सजन कसङ्गति दोष तें, सज्जनता न तर्जेन्त ॥ ज्यों सुँजंगगण संगह, चन्दन विष न घरन्त ॥ ७२ ॥ पड़ि संकेंटै ह साधुजन, नेक न होत मर्लान ॥ ज्यों ज्यों कर्झेन ताइये, त्यों त्यों निरमल बान ॥ ७३ ॥ कन कन जोरे मन जैरे, काढे निवरें ' सोय ॥ बंद बंद ज्यों घंटे गरे, टपकत रीते सोय ॥ ७४ ॥ ऊंचे हु बैठे नहिं 'छेहै,

१-देखो ॥ १-क्रलीन स्त्री ॥ १-क्रोबती है ॥ ४-व्यमिनारिणी स्त्री ॥ ५-मत ॥ ६-सूर्य ॥ ७-मह हुआ ॥ ८-जानदार, समझदार ॥ ९-वेजान ॥ १०-देखो ॥ ११-खाली ॥ १२-वराबरी ॥ ११-ज्याता है ॥ १६-गन्य, खुरानू ॥ १७-निरता ॥ १४-माल्य, होता है ॥ १५-क्याता है ॥ १६-गन्य, खुरानू ॥ १७-निरता ॥ १८-आखिरकार ॥ १९-दो पहर ॥ २०-त्रक ॥ २१-सूर्य ॥ २४-प्रकार, रोशनी ॥ २३-छहु, युग्यू ॥ २४-जन्य । २५-दो नी ॥ २६-गाय ॥ २७-दुराहे ॥ २४-तो भी ॥ २९-प्रान्थत ॥ ३०-क्रव्हाचा ॥ १४-दोवेगा॥ २०-द्वाचे पर ॥ ३२-नियय ॥ ३१-प्रहा ॥ ३४-तोदेगा॥ १५-प्रान्थत ॥ ३६-प्रान्थत ॥ ३४-वर्वे पर ॥ ३४-चियय ॥ ३४-वर्वे व्या ॥ ४४-वर्वे हैं ॥ ४५-वर्वे का देर ॥ ४४-दोवा ॥ ४४-प्रान्थे का समूह ॥ ४६-द्वाचा ॥ ४९-प्रान्थे आदमी ॥ ४८-दुःखित ॥ ४९-सोवा ॥ ५०-प्रा हो जाता है ॥ ५९-महा ॥ ५९-पाता है ॥

शुग विन वहशन क्रोब ॥ वैठ्यो देनेल शिक्षर पर, वार्यंत नरुड़ न होव ॥ ७५ ॥ सांच इंट निरणय करें, चीतिनिर्देग को होया। यावहंस तिन को करें, कीर नीर की दोष ॥ ७६ ॥ दोवहिँ क्रो उनेहैं गहै, गुण न गहै संबंबोक ॥ पिँग रुविरे पेर्य ना रिये, छगी प्योवेर जॉक ॥ ७७ ॥ मठो न होने दुष्ट जन, मर्छो ऋहे जो छोव ॥ विष ममुरी नीठो लवण, इहे न नीठो होय ॥ ७८ ॥ एक उईरै एकहि सनय, उपनत एक न होय ॥ जैसे कांद्रे देर के, सीने वाँके दोय ॥ ७९ ॥ इरत देवता निवल लढ़, दुर्बल ही के मान ॥ सब सिंह को छोहि के, छेत छोंगै विट्यान ॥ ८० ॥ स्थम क्वहुँ न छोड़िये पर आद्या के नोई ॥ गागर कैसे फोरिय, ईनैयो देखि प्योई ॥ ८१ ॥ कारन वरि होत है. ऋहे होत अर्थार ॥ समय पाय तत्त्वर फले, केर्तिक सीवह नीर ॥ ८२ ॥ वो पहिले कींने बदन, सो पांड फ़ड़दाय ॥ भाग छमे खोदै हुआ, कैसे आग बुझाय ॥ ८३ ॥ क्यों र्कांत्रे ऐसी यतन, जासों काल न होय ॥ परवत पे लोड़े कुआ, कैसे निकस तीर्य ॥८४॥ मेंज्यों छोटो ही नजो, जासे गरेंबे सराँयं ॥ क्रींबे कहा ससुद्र को, बासे प्यास र जाय ॥ ॥ ८५ ॥ उछन से सद निकत हैं, विन टबन न मिलाहिँ ॥ सीबी अंगुर्छा बी बन्यो। कर्ड निर्वेत्त नाहिं ॥ ८६ ॥ कहिये बात प्रनाण की, वासो तुमरै काव ॥ फीको थोडे खर्वेणें से, नामिक्राह सारो नाव ॥ ८७॥ कहें रैसीकी बात सो, विगड़ी टेत सुवार ॥ सैर्स्स डक्ज की दारू में, ज्यों नीकृत्स डार ॥ ८८ ॥ सुघरी विगई वेर्ग से, विगड़ी फिर सुघर न ॥ दूब फर्ट फ़ॉबी पड़े, सो फिर दूव बने न ॥ ८९ ॥ विगड़ी हू सुबरै बचन, बैसे वर्णिक विशेष ॥ डींग निरी " वीरो केंद्र, हम नर जर छिस छेप ॥ ९० ॥ वहत किये हैं नीव की. नीच मुगान न बात ॥ छोड़ि ताल बल कुर्न्स ने. काँवा चोंच भरात ॥ ९१ ॥ चतुर हूर्र इक सैंन गिन, बाके नीहि विवेकी ॥ वैसे महीव गमार के, पांच कांच है एक ॥ ९२ ॥ इर न होने चतुर नर. कूर कहे वो क्रोय ॥ मानै क्रांच गमार ती, पांच क्राच कहिँ होय ॥ ९३ ॥ देन बनाये क्षे को, क्रौंबेर सुर न होय ॥ सारू उड़ाये सिंह की, स्याङ सिंह नीहें होय ॥ ९८ ॥ बहें न ^हें छोपें छाजकुँछ, छोपें नीच अधीर ॥ उद्देषि रहें सरबाद ने, बहै टैर्निड़ निंद नीर ॥ ९५ ॥ जैसी संगति देठिये, इज्जत मिलि है आय ॥ सिर पर नत्तनरु सेहरो. पनहीं नत्तनरु पांच ॥ ९६ ॥ चतुर समा ने मूर्त

९-एन्ड्रंग १-कोटी॥ ३-होआ ॥ ४-व्याव वे सपुर ॥ ४-दूष ॥ ६-प्राची ॥ ७-पत्र से ॥ ८-दुट दन ॥ ९-क्न ॥ १०-दूष ॥ ११ स्तन, धन ॥ ११-पेट ॥ ११-वक्स ॥ १४-सूटो ॥ १४-टनटा हुआ ॥ १६-पेप ॥ १४-किन हो ॥ १८-प्राची ॥ १४-सास्त्र ॥ १०-पृते हो ॥ २१-तिकटमा है ॥ २२-तिनक, सेन ॥ २१-मोटो ॥ २४-सिक ॥ १५-स्तित्र ग २६-व्यक्ति । १४ स्त्योठ ॥ २४-यह ॥ २६-मूर्व ॥ ३०-स्ताव ॥ ३१-साव ॥ ३२-पृत्ते ॥ ३१-व्यक्ति ॥ १४-तट क्रिक है ॥ ३६-कुछ की समा ॥ ३०-स्त्य ॥ स्तुत्र ॥ १८-चनक्ति ॥

नर, शोमा पावत नांहि ॥ जैसे वैक जोमत नहीं, इंस मंडेली मांहि ॥ ९७ ॥ बुरी करे सोई बुरो, बुरो नांहि कोइ और ॥ वर्णिंज करे सो वानियां, चोरी करे सो चीर ॥ ९८ ॥ झूंठ बसै जा पुरुप के, ताही की अप्रेंतीत ॥ चोर जुवारी से मलो, याते करत प्रेंतीत ॥ ॥ ९९ ॥ विना सिखाये हू रूँहै, जाकी जैसी रीत ॥ जनमत सिंहनि को तंनेय, गज पर चदत असीत ॥ १०० ॥ सत्य वचन मुख जो कहै, ताकी चाह सराहं ॥ श्राहिक अर्थि दूर से, सुनि इक शैवदी सीहै ॥ १०१ ॥ बुद्धि विना विद्या कही, कहा सिर्खांने कीय ॥ प्रथम गाम ही नांहि तो, सींव कहां से होय ॥ १०२ ॥ कह रैसै में कह रोपें में. अंरि सों 'र्जनि पर्तियाय ॥ जैसे शीर्तर्रू तैसे जरू, डारत आग बुझाय ॥ १०३ ॥ विद्या याद किये विना, विर्संर जात है मान ॥ विगड़ जात विन खबर तें, चोली को सो पान ॥१०॥। अन्तेरे अंगुली चार को, सांच झूँठ में होय ॥ सब माँने देखी कही, सुनी न माँन कोय ॥ ॥ १०५ ॥ जोर न पहुँचै निवल पर, जो पै सवल सहाय ॥ भोडल की फानूस हु, दीप न वाँते बुझाय ॥ १०६ ॥ होय मले के सुत बुरो, मलो बुरे के होय ॥ दीपक से कानल प्रकेट, कमल कीच से होय ॥ १०७ ॥ जो धनवन्त सो देत कछ, देय कहा धैनहीन ॥ कहा निचोरे नेर्म जन, स्नान सरोवेर कीन ॥ १०८ ॥ जाकी जेती र पहुँच सो, उतनी करत प्रकाश ॥ रविजेंथों कैसे करि सकै, दीपक तैम को नाश ॥ १०९ ॥ उत्तम को अप-मैंनि अरु, जहां नीच को मौनै ॥ कहा मयो जो हंस की, निन्दें। काग बखान ॥ ११० ॥ वर्थीयोग की ठैरिं विन, नर ³र्द्धिव पावत नांहि ॥ जैसे रतन कथीर में, काच कनैंक के मांहि ॥ १११ ॥ विपत बड़े ही सहत है, इँतर विपत से दूर ॥ तारे न्यारे रहत है, गहै राहु शैशि सूँरे ॥ ११२ ॥ विद्या गुरु की मक्ति सी, क्या कीन्हे अभ्यास ॥ भील द्रोण के विन कहे, सीख्यो वाण विलास ॥ ११३ ॥ उद्यम बुधि वलसों मिले, तव पावत शुभ-साज ॥ अर्न्य खंरें चिंद पर्क्षु ज्यों, सबै सुधारत काल ॥ ११४ ॥ फल विचारि कारज करह, करहु न व्यर्थ अमेरु ॥ तिल जेंचों नाल पेरिये, नांहिने निकसे तेल ॥ ११५ ॥ दुष्ट निकट वसिये नहीं, वसि न कीजिये वात ॥ कर्दें ही वेर प्रेसेंग से, विधिह कर्प्टेंकन पीत ॥ ११६ ॥ पुन्य निवें के प्रभान से, निश्चय छक्ष्मि निवास ॥ जवला तेल प्रदीप में,

१-वयुका॥ १-समूह ॥ १-व्यापार ॥ ४-अविश्वास ॥ ५-विश्वास ॥ ६-छेता र्ह ॥ ७पुत्र ॥ ८-विवर होकर ॥ ९-तारीफ ॥ १०-छेनेवाला॥ ११-एक यात करनेवाला॥ ११साहकार ॥ ११-प्रीति ॥ १४-गुस्सा ॥ १५-वेरी ॥ १६-मत ॥ १७-विश्वास करो ॥ १८ठेता ॥ १९-गर्म ॥ २०-मूळ जाती र्ह ॥ २१-फ्रि ॥ २१-ह्वा ॥ २१-मेटा ॥ २४-पेदा होता है ॥ २५-गर्म ॥ २६-मता ॥ २७-तालाव ॥ २८-विनर्म ॥ २९-मूर्व के ममान ॥
१०-अधेरा ॥ ११-धनादर ॥ ११-आवर ॥ ११-ग्रान ॥
१९-जोमा ॥ १७-सोना ॥ १८-ह्तरे ॥ १९-व्या ॥ ४०-मूर्व ॥ ४१-अंदा ॥ ४०-स्वित ॥
१६-जोमा ॥ १७-सोना ॥ १८-ह्तरे ॥ १९-व्या ॥ ४०-मूर्व ॥ ४१-अंदा ॥ ४०-सोहपत ॥
४८-पांडो से ॥ ४९-पत्ने ॥ ५०-हान ॥ ५९-म्राताप ॥ ५१-हीवक ॥

तंबलैं ज्योति प्रकास ॥ ११७॥ अरि छोटो गिनिय नहीं, जासों होत बिगार ॥ तून स-मृह को छिनक में, जारत तिनक अँगार ॥ ११८ ॥ ताको अरि कह करि सकै, जाके य-तन उपाय ॥ जरे न तौती रेत में, जाके पर्नही पाय ॥ ११९ ॥ पण्डित जन को अँग मरम, जानत जे मर्तिधीर ॥ बांझ न कबहूँ बानही, तन प्रस्तेत की पीरे ॥ १२०॥ वीर पराकीम सों करे. मूमण्डल को राज ॥ जोरावर यातें करे. वन अपनो मुग्रीजा।१२१॥ चप प्रताप से देश में, दुष्ट न प्रकटै कोय ॥ प्रगटै तेज दिनेशें को, तहां तिर्मिरें नहिं होय ॥ १२२ ॥ यह सांची सब ही कहैं, राजा करें सो न्याव ॥ ज्यों चौपड़ के खेळमें, पासा पहें सो दाव ॥ १२३ ॥ कारज ताही को 'सँरै, करै जो समय निहाँर ॥ कबहुँ न हारै लेल जो, सेलै दाव विचार ॥ १२४ ॥ सब देखें गुण आपने, ऐव न देखे कोय ॥ फरै उजालो दीपे^र पर, तले अँघेरो होय ॥ १२५ ॥ अपनी अपनी ठौर पर, सब को लागे दाव || जरू में गाडी नाव पर, थेंछै गाड़ी पर नाव || १२६ || ब्राहक सबै सपूत के, रेंगरे काज सपूत ॥ सब को ढांकेन होत है, बैसे वन को सत ॥ १२७ ॥ आप कह सहि भौर की, शोमा करत सपत ॥ चरखी पींजण चरख चढ़ि, जग ढंकन ज्यों सत ॥ ॥ १२८ ॥ स्रियर स्रथाने न क्रांडिये, जब ^{२३}कीं होय न और ॥ पिक्रको पांव उठाइये, देखि धरन को ठौर ॥ १२९ ॥ को छल को दुख देत है, देत करम झकझोर ॥ उरझै छरझै आपही, बैंजा पर्वन के जोर ॥ १३० ॥ मली करत लागे विलंबे विलंब न बरे विचार ॥ मवेन बनावत दिन लगें, ढेाईत लगत न बेरि ॥ १३१ ॥ विनसत वार न लागही, ओले नर की मीत ॥ अर्बंद हम्बर सांझ के, ज्यों बाख की मीत ॥ १३२ ॥ वहे वचन परू-टैं नहीं. कहि निरवाहैं धीर ॥ कियो विभीषण लंकीपैति, पाइ विजय रैंधेवीर ॥ १३३ ॥ लखियत जनैनी उदेरें में, देखि कहै सब कीय ॥ दोहद ही कहि देत है, जैसी सनैतित होय ॥ १३४ ॥ मेरैंक ही से होत है, कारज सिद्ध निर्दोंने ॥ चढे धनुष हैं ना चलें, विना चलाये वान ॥ १३५ ॥ युख सज्जन के मिळन को, दुरजन मिले जनौर्य ॥ जानै उर्दें मिठांस की, जब मुख नींव चबाय ॥ १३६ ॥ जाहि मिले सुख होत है, तिहिं वि-र्केंद्रे दुख होय ॥ र्सेंर उदय फूळे कमल. ता विन स्केंद्रे सोय ॥ १३७ ॥ कारज सोह

१-सिनकों का देर ॥ २-थोडी घेर में ॥ ३-जरा सी ॥ ४-अप्रि ॥ ५-गर्म ॥ ६-ज्ञ्रा ॥ ४-मेहनत ॥ ८-धीर मतिवाछे ॥ ९-वणा जमना ॥ १०-पीडा ॥ ११-वहादुरी ॥ १२-प्रम्वी का घेरा ॥ १३-सिंह ॥ १४-सूर्व ॥ १५-अंघरा ॥ १६-सिंह होता है ॥ १७-देखकर ॥ १८-सीवा ॥ १९-जमीन ॥ २०-सिंद करता है ॥ २१-डांकने वाला ॥ २२-अच्छी जगह ॥ २३-तक ॥ २४-महा ॥ २६-देरी ॥ २७-चर ॥ २८-मिराने में ॥ २९-देरी ॥ ३०-वादल ॥ ३१-लका का मालिक ॥ ३२-रामचह ॥ ३३-माता ॥ ३४-वेट ॥ ३५-सतान, औलाद ॥ ३६-अरणा करने वाला ॥ ३७-आखिरकार ॥ ३८-माल्य एवता है ॥ ३९-माला ॥ ३४-माला ॥ ३४-माला ॥ ३४-माला ॥ ३४-वेट ॥ ३५-

स्रवारि है, जो करिये समगाय ॥ अतिवरसे वरसे विना, ज्यों खेती कुन्हलाय ॥ १३८ ॥ आपिं कहा बखानिये, मठी बुरी के जोग ॥ वृंठे घन की बात की, कहैं बटाऊ छोग ॥ ॥ १३९ ॥ जानै सो बुझे कहा, आदि अन्त विर्तंन्त ॥ घर जन्मे पश्च के कहा. कोउ दे-खत है दन्त ॥ १४० ॥ जो कहिये सो कीजिये, पहिले करि निरधौर ॥ पानी पी घर पूँ-छनो, नाहिन मलो विचार ॥ १४१ ॥ पीछे कारन कीनिये, पहिले यँतन विचार ॥ वहे कहत हैं बांधिये, पानी पहिछे बार ॥ १४२ ॥ ठीक किये विन और की, बात सांच मत थांपै ॥ होत कॅंघेरी रैने में, पड़ी जेवेरी सांप ॥ १४३ ॥ एक ठीर है सुनेन खेंळ, तजे न व्यपनी अंग ॥ मणि विषेद्दर विपैकर सैरैप, सदा रहत इक संग ॥ १४४ ॥ हिये दुष्ट के बर्दर्ने से, मधुरे न निकस बात ॥ जैसी कड़ई वेकि के, को मीठे फल खात ॥ १४५॥ ताही को करिये यतन, रहिये जिहिँ आधीर ॥ को बैठे जा डीर पर, काटै सोई डार ॥ ॥ १४६ ॥ भौगहीन को ना मिले. मली वस्त को मोग ॥ जैसे पाकी दार्लसों. होत काग सस्त रोग ॥ १४७ ॥ सब कोऊ चाहत मलो. मित्र मित्र की ओर ॥ ज्यों चकवी रिव को उदय, शिक्ष को उदय चकोर ॥ १४८ ॥ मले वंश सन्तित मली, क्रवहूँ नीच न होबा।। ज्यों कर्वेंन की खान में. काँच न उपजे कोय।। १४९॥ शर वीर के वंश में. शूर बीर हेर्त होय ॥ ज्यों सिंहिनि के गर्भ में, हिरन न उपजै कोय ॥ १५० ॥ अधिक चतर की चैतिरी, होत चतर के संग ॥ नैगै निरमल की डांक सें, बढत ज्योति छविरंग ॥ ॥ १५१ ॥ पण्डित अरु वनितें। केती, शोमत आश्रेष पाय ॥ है माणिक वेहँमोल तैर्ड. हे-मैंजिटित छिवर्छीय ॥ १५२ ॥ अति उदारपन वडन को, कहँईँग बरनै कीय ॥ चौतैक की ने तनक वैनें, बरिस मरे ^कमंहि तोयें ॥ १५३ ॥ दृष्ट संग वसिय नहीं, अवगुन होय सुमाय ॥ घिसत वंश की अप्रि सें, जरत सबै वनराय ॥ १५८ ॥ करै अनादर गुनिन को. ताहि समा छवि जाय ॥ गज कपोर्लैं श्लोमा मिटत, जो अठि देत उड़ाय ॥ १५५ ॥ हीन जानि न निरोधिये, वहीं होत दुखदाय !! रैंजे हु ठोकर मारिये, चढै सीस पर आय !! ॥ १५६ ॥ विना दिये नहिँ मिलहि कल, यह समुझै सब कोय ॥ देत शिशिर में पेंत तेंरी धुरिमि सप्हेंब सीय ॥ १५७ ॥ जो सेवक कारज करे, होत वहे को नाम ॥ पथर तिरत

१--वृत्तान्त, हाल ॥ २-निश्चय ॥ ३-नहीं ॥ ४-कोशिश, उपाय ॥ ५-वाढ़ ॥ ६-मान ॥ ५-रात्रि ॥ ८-रस्सी, लोरी ॥ ९-अच्छे आदमी ॥ १०--दुष्ट पुरुष ॥ ११-विप को दूर करने वाला ॥ १२-साप ॥ १४-मुख ॥ १५-मीठा ॥ १६-सहारा ॥ १४-वाला ॥ १४-निर्माग्य ॥ १५-किशमित्र ॥ १०-चोना ॥ २९-वेटा ॥ २२-चतुराई ॥ १६-हीरा मानक ॥ १४-की ॥ २५-वेल ॥ २६-सहारा ॥ २०-वहुत कीमत का ॥ २८-तो मी ॥ २९-सोने में जहा हुआ ॥ ३०-छोमा देता है ॥ ३१-कहां तक ॥ ३१-परीहा ॥ ३१-मांगता है ॥ ३४-मेष ॥ ३५-प्रिची ॥ ३६-वल ॥ ३७-मांगता है ॥ ३४-मीरा ॥ ३९-धूल ॥ ४४-वसन्त में ॥ ४३-पर्ता वाला ॥

करनील तें, कहत तिराये राम ॥ १५८ ॥ यह निश्चय कर जानिये, जानैहार सो जाय ॥ गज के मुक्त कवीठ के, ज्यों गिरि बीज विखाय ॥ १५९ ॥ दूर कहा निर्धरे कहा, होनै-हार सो होय ॥ थुँर सीचै नाँछेर के, फरू में प्रकैटै तोयँ ॥ १६० ॥ मीठी मीठी वर्सत नहिं, मीठी जाकी चाहि ॥ अमळी मिसरी परिहेरै, ऑफ़्रं खात सेरीहि ॥ १६१ ॥ मले बरे को जानियो, जान बचन के बन्ध ॥ कहै अन्धे को सर इक, कहै अन्ध को अन्य ॥ ॥ १६२ ॥ चिरंजीवी तन ह 'तेंजे, जाको जग जैसे वीर्स ॥ फूछ गये ज्यों फूछ की, रहत तेल में बांस ॥ १६३ ॥ बृद्धि होत नहिँ पाप से, बृद्धि धर्म से बार ॥ सुन्यो न देख्यो सिं-ह के, मृग को सो परिवेरि ॥ १६४ ॥ दोष लगावत गुनिव को, जाको हृदय मैंलीन ॥ धर्मी को देर्रभी कहै, क्षमाञ्चील बल्हीन ॥ १६५ ॥ खाय न खरनै सूर्य धन, चोर सबै ं है जाय ॥ पीछे ज्यों मर्धुर्मेक्षिका, हाथ विसे पछिताय ॥ १६६ ॥ दान दीने को दीनिये मिटै ज बाकी पीरे | अषेषच ताको दीजिये, जाके रोग शरीर | १६७ | उत्तम विद्या लीजिये, जेंदेंपि नीच पे होय ॥ पडचो अपार्विन ठौर में, कब्बन तजत न कोय ॥ १६८॥ निश्चय कारण विपति को. किये भीति और संग ॥ चग के झल चगरौंन सों, होत फनह तन मंग ॥ १६९ ॥ कहा करे और्गम निर्मेंम, जो मूरख समुक्षे न ॥ दर्मन को दोष न कछ, अन्य वर्दन देखे न ॥ १७० ॥ सज्जन के प्रिय वचन से, तन सँतापे मिटि जाय ॥ जैसे चन्द्रन नीरे से. तौंपे ज तन को जाय ॥ १७१ ॥ सुजन वचन दुरजन वचन, अ-³रीर बहुत लखीय ॥ वह सब को नीको^{3८} लगे, वह काहू न खुँहीय ॥ १७२ ॥ धन घर गेंद जु लेक की, दोऊ एक सुमाँथ ।। कैंर में आवत छिंनैक में, छिन में कर से जाय ॥ १७३ ॥ धन अरु यौवन को गरेंबै, कबहूँ करिये नांहि ॥ देखत ही मिट जात है, ज्यों बादर की छांहि ॥ १७४ ॥ बड़े बड़े को विपति में, निश्वय लेत उर्वीर ॥ ज्यों हायी को कीच से, हाथी छेत निकार ॥ १७५ ॥ बड़े कष्ट हू में बड़े, करें उचित ही काज ॥ स्वार निकेट 'तैजि खोज के, सिंह 'हैंनै गजराच ॥ १७६ ॥ बहु गुन अर्म से उँचपद, तनिक दोष से जाय ॥ नीठें चढ़ै गिरिं पर शिकी, ढाँरैत ही ढरिंकींय ॥ १७०॥ छोटे भरि

१-जानेवाला ॥ १-सभीप ॥ १-होनेवाला ॥ ४-मूल, जड ॥ ५-नारियल ॥ ६-पैदा होता है ॥ ७०-सभीम ॥ ११-नारियल ॥ ६-पैदा होता है ॥ १०-सभीम ॥ ११-नारियल कर के ॥ ११-अवन पर ॥ ११-यश, कीर्ति ॥ १६-रहता है, मौजूद है ॥ १४-सुगन्धि ॥ १८-कुटुम्ब ॥ १६-मैला ॥ २०-पाखि ॥ २१-कहूस ॥ १६-सेला ॥ २०-पाखि ॥ २१-कहूस ॥ १६-सेला ॥ २५-यापि, अगर्चे ॥ २६-अपित्र, मेला ॥ २५-यापि, अगर्चे ॥ २६-अपित्र, मेला ॥ २५-यापि, अगर्चे ॥ २६-कार ॥ २०-वेद ॥ ३१-मोसा ॥ ३१-सुख ॥ ३१-कार ॥ ३०-वेद ॥ ३१-मोसा ॥ ३१-सुख ॥ ३१-कार ॥ ३१-पाली ॥ ३१-दुःख ॥ ३६-पाली, मेद ॥ ३४-पाली ॥ ३१-पाली ॥ ३४-पाली ॥ ३१-पाली ॥ ४१-पाली ॥ ४१-पाली

को सीधिये, छोटे करि उपचौर ॥ मरै न मुसा सिंह से, मारै ताहि मँजौर ॥ १७८ ॥ सेवक सोई जानिये, रहे विपति में संग॥तन छाया ज्यों घूप में, रहे साथ इंकेरंग॥१७९॥ दृष्ट रहे जा ठीर पर, ताको करै विगार ॥ आग जहां ही राखिये, जीरि करै तिहिं छीर ॥ 1) १८० ।। विना तेज के पुरुष की, अवैशि अवैज्ञा होय ।। आग बुझे ज्यों राख की, आन छुवै सब क्रोय !! १८१ !! नेहं करत तिर्थं नीच सों, घन किर्रेंपेन घर मांहि !! बरसै मेंह पहाड़ पर, के ऊसर के मांहि ॥ १८२ ॥ जहां रहत गुनवैन्त नर, ताकी शोमा होत ॥ जहां घर दीर्पक तहां. निर्ध्य करे उदोर्त ॥ १८३ ॥ मोह प्रवेर्ष्ट संसार में, सब को उपजे आय ॥ पाले पोषे खेगे शिश्चेर्न, देवें कहा कमाय ॥ १८४ ॥ वहत द्रव्य संचेर्य जहां, चोर राजभय होय ॥ कांसे कपर बीजुली, परत कहत सब कीय ॥ १८५ ॥ गुरु मुख विद्या विन पढे, पोथी अर्थ विचार ॥ सो शोमा पावै नहीं, जार गर्म युत नार ॥ १८६ ॥ र्वंबोछे नर के पेट में. रहे न मोटी बात ॥ आधसेर के पाँत्रे में. कैसे सेर समात ॥१८७॥ गुँढ मेंब्र तब तक रहत. होत ज मिलि जन दोय ॥ मई छकेंबी वात जब, जान जात सब कीय || १८८ || गूढ मन्न गेंहेए विना, कोक राखि सके न || बाँर्त पाँत्र विन हेर्स के, बाघनि दूध रहे न ॥ १८९ ॥ जो प्राणी परवँशे परची, सो दल उँहै अपार ॥ जैँथ विछोहों विज्ञ सहै, बन्धन अंकुँश मार ॥ १९० ॥ मन प्रसन्त तन चैन किहि, खेच्छा-चार विहाँरें ॥ संग सृगी सृग सुख उँसैंवे, वन विस तून आहार ॥ १९१ ॥ उँदेर भरन के कारने, प्राणी करत इलाज ॥ वानै नानै रंण मिहें , राँनै काँज अकाँज ॥ १९२ ॥ काह को हँसिय नही, हँसी कर्लेंह को मेंंछ ॥ हांसि हँसे दोक मये, कीरव पाण्ड निम्छ॥१९३॥ र्पेंपिति के दिन होत है, प्रापित बारंबार ॥ छाम होत व्यापार में, आमर्बें ण अधिर्कार ॥ ॥ १९४ ॥ अप्रॉपित के दिनन में, खर्च होत अविचार ॥ घर आवत है पाहने, विजेज न लाम लिगाँर ॥ १९५ ॥ दीन घनी आधीन है े . सीस नमाँवेत काहि ॥ माँनैयंग की

१-वश में करना चाहिये॥ १-उपाय॥ १-विक्री॥ ४-एक समान॥ ५-जला कर॥ ६-राख॥ ७-जरूर॥ ८-अनादर॥ ६-सेह, प्रेम॥ १०-स्री॥ ११-क्सूम॥ १२-गुणी॥ १३-दीना॥ १४-जरूर॥ १५-वजाला॥ १६-वजनम्॥ १०-प्सी॥ १८-वजो को ॥ १९-वजे को ॥ १९-वजेना॥ १०-पाता है॥ ११-ज्रुदा॥ ३१-ज्ञुदा हुआ॥ १३-ज्ञुदा ॥ ३४-ज्ञुदा ॥ ३५-वजेना॥ १९-वजेना॥ १०-वजेना॥ १९-कजेना है॥ ११-कर वैठता है॥ ४१-करने योग्य काम॥ ११-ज्ञुदा ॥ ११-ज्ञु

मूँमि यह, पेट दिखावत ताहि ॥ १९६ ॥ कहैं वचन पैल्टें नहीं, वे सतपुरुष सँघीर ॥ कहत सबै हरिचन्द्र त्रेंप. मर्यो नीच घर नीर ॥ १९७ ॥ प्यारी अनर्प्यारी छगै. समय पाय सब बात ॥ घृप सुहावत शीत में, शीर्षम नाहिं सुहात ॥ १९८ ॥ जूना खेळे होत है, सुल सम्पति को नाश ॥ राजकाज नल ते छुट्यो, पाण्डव किय वनवास ॥ १९९॥ सरसिति के मण्डार की, बड़ी अपूर्व बात ॥ क्यों खरचे त्यों त्यों बढ़े, विन खरचे बटि जात ॥ २०० ॥ देखा देखी करत सब, नांहिनें तत्विचार ॥ याको यह उनमीने है, भेड़ चाल संसार ॥ २०१ ॥ खरचत खात न जात घन, औसर किये भनेक ॥ जात पु-न्य पूरन मये, अरु उपजे अविवेर्क ॥ २०२ ॥ एक एक अक्षर पढे, जानै प्रन्थ विचार॥ पैंड हैं चेंड ह चलत जो. पहुँचे कोस हजार ॥ २०३ ॥ लिखी दूरि नहिँ होत है, यह जानो तेईकीक ॥ मिटै न ज्यों क्यों हूँ किये, ज्यों हाथन की ठीक ॥ २०४ ॥ चिंदीनन्द वर्ट में वसे, बूझत कहा निवास ॥ ज्यों सगर्मेद सगनामि में, ढूंढ़ै फिर वनवास ॥ २०५॥ सब काह की कहत है, मली बुरी संसार ॥ दुर्योघन की दुर्रेती, विकेंम की उपकेरि ॥ ॥ २०६ ॥ वैय समान रुचि होत है, रुचि समान मन मोदे ॥ बालक खेल झुहाँवेई, यौ-वर्न विषे विनोद ॥ २०७ ॥ वह सम्पति किहि काम की, अनि काह के होय ॥ जाहि कमानै कष्ट करि, विरुसि औरिह कोय ॥ २०८ ॥ नृप गुरु शुँचितिये सेविये, मध्यैमाव जगमांहि ॥ है विनाश अति निकट से. दूर रहे फल नांहि ॥ २०९ ॥ देखत है जग जात है, तउ ममता से मेर ॥ जानत हू या जगत को, देखत मूली खेर ॥ २१० ॥ छुजन वचावत कष्ट से, रहे निर्देन्तर साथ ॥ नैयँन सहैं हि ज्यों परुक, देह सहाहे हाथ ॥ २११॥ धनी होत निर्धन कवहूँ, निरधन से धनवान ॥ बड़ी होत निश्चि शीत ऋतु, ज्यों प्रीषम दिन मान ॥ २१२ ॥ ज्यों ज्यों छूट अयानपन, त्यों त्यों प्रेम विकास ॥ जैसे कैरी आ-म की, पकड़त पके मिठास ॥ २१३ ॥ थोरा थोरी पीति की, कीन्हें बढत हुर्डीस ॥ अति साये उपने अरुचि, थोड़ी वस्तु मिठींस ॥ २१४ ॥ भीहे तर्त्व ज्ञीनी पुरुष, बात विचारि विचारि ॥ मर्थेनैहारि तिज छाछ को, माखन छेत निकारि ॥ २१५ ॥ जो उपजै सोई

१-स्थान ॥ १-बदलते है ॥ १-अच्छे आदमी ॥ ४-धीरज बार्छ ॥ ५-राजा ॥ ६-वेप्यारी, दुरी ॥ ७-ठड ऋतु ॥ ८-गर्मा ॥ ९-अच्छी लगती है ॥ १०-दौलत ॥ १९-विचा ॥ १२-विचा ॥ १२-अज्ञान ॥ १२-अज्ञान ॥ १६-अज्ञान ॥ १६-अज्ञान ॥ १६-अज्ञान ॥ १८-ज्ञान ॥ १८-विचा ॥ १८-विचा ॥ १८-विचा ॥ १८-अज्ञान ॥ १६-अज्ञान ॥ १८-विचा ॥ १८-विचा ॥ १८-विचा ॥ १८-विचा ॥ १४-मळाई ॥ २५-उम ॥ २६-इव ॥ १९-अज्ञान ॥ २४-मळाई ॥ २५-उम ॥ ३१-मोगता है ॥ २४-अच्छा लगता है ॥ २४-ज्ञानी ॥ २४-ज्ञान ॥ ३५-मोगता है ॥ ३४-विचा ॥ ३४-विचा ॥ ३४-विचा ॥ ३५-मा ॥ ३१-आग्नता ॥ ३४-विचा ॥ ३४-विचा ॥ ३४-विचा ॥ ४४-ज्ञानता ॥ ४०-कचा लगत ॥ ४१-आग्नत्व ॥ ३४-विचा ॥ ३४-विचा ॥ ३४-विचा ॥ ४४-ज्ञानता ॥ ४४-ज्ञानवान् ॥ ४१-विचा ॥ ४४-विचा ॥ ४४-ज्ञानवान् ॥ ४६-विचा ॥ ४४-ज्ञानवान् ॥ ४६-विचा ॥ ४४-विचा ॥ ४४-विच ॥ ४४-विचा ॥ ४४-विच ॥ ४४-विच ॥ ४४-विच ॥ ४४-विच ॥ ॥ ४४-विच ॥ ४४-विच ॥ ॥ ४४-विच ॥ ॥ ४४-विच ॥ ४४-विच ॥ ४४-विच ॥ ४४-विच ॥ ॥ ४४-विच ॥ ॥ ४४-विच ॥ ॥ ॥ ४४-विच ॥ ॥ ॥ ४४-विच ॥ ॥ ॥ ४४-विच ॥ ॥ ४४-विच ॥ ॥ ॥ ४४-विच ॥ ॥ ॥ ४४-विच ॥ ॥ ॥ ॥

करै, जिहि कुछ जो अभ्यास ॥ छोटे मर्छ हू जल तिरैं, पंली उर्ड़े अकास ॥ २१६ ॥ यश्रायोग सब मिलत है. जो विधि लिख्यो अँकर ॥ खल गुरू मोग गरीविनी, रानी पान कपूर ॥ २१७ ॥ *हिंसा दुख नी वेठँड़ी, हिंसा दुख नी खाण ॥ वहुत जीव नरकें गया, हिंसा तर्णे प्रमाण ॥ २१८ ॥ दया सुक्ल नी बेलडी, दया सुक्ल नी खाण ॥ वहुत जीव मुक्तें गया, दया तर्णे परिमाण ॥ २१९ ॥ जीव मारता नरक छे, राखन्तां छे सम्में ॥ ॰ यह दोनों है बाँटही, जिण भावे तिण र्रुगा ॥ २२० ॥ विन कपास कपड़ो नहीं, दया विना निहं धर्म ॥ पाप नहीं हिंसा विना, बूझो एहिंज मैंर्म ॥ २२१॥ धन "वंछै इक अ-धैमें नर, उत्तम बंछे मान ॥ ते शौनैक सेंहुँ "छंडिये, जिंह लहिये अपैमान ॥ २२२ ॥ धर्म अर्थ अरु काम शिवै. साधन जग में चार ॥ ज्यवहारे ज्यवहार लख, निश्चय निर्के गुण धार ॥ २२३ ॥ मूरल कुछ आचार थी, जाणत वर्म सदीवे[°] ॥ वस्तु समाव धरम सुघी, कहत अंतुमवी जीव ॥ २२४ ॥ लेह खजाना कूँ अरय, कहत अर्जीनी जेह ॥ कहत द्रव्य दरसाव कूँ, अर्थ धुनौनी तेह ॥ २२५ ॥ दम्पैति रति क्रींडा प्रते, कहत देंर्मती काम ॥ काम चित्त अमिलाव कूँ, कहत सुँगैति गुँगैवाम, ॥ २२६ ॥ इन्द्रलोक कूँ कहत शिव, जे आर्गेर्मद्दगद्दीन ॥ बन्ध अभाव अचल गती, माषत नित्य प्रैवीन ॥ २२७ ॥ एम अ-ध्यातैमपद छली, करत साधना जेह ॥ चिदानैन्द जिनधर्म नो. अनुमव पानै तेह॥२२८॥ मेरा मेरा क्या करै, तेरा है नहिं कीय ॥ चिदानन्द परिवार का. मेला है दिन दीय ॥ ॥ २२९ ॥ ज्ञान रैवी वैराग्य जस, हिरदे चन्द्र समान ॥ ताँ म निकट कह किर्मिं रहै, मिथ्यातैंने दुख खान ॥ २३० ॥ जैसे केंड्रैंकि त्याग सें, विनसत नांहि धुँजंग ॥ देह त्याग थी जीव पिर्ण, तैसे रहत अर्थनंग ॥ २३१ ॥ धर्म बधाये धन "बंधे, धन वध मन वधि जात ॥ मन बय सब ही वर्धत है, वयत वयत विष जात ॥ २३२ ॥ धर्म घटाये धन घटे, भन घट मन घटि जात ॥ मन घट सब ही घटत है. घटत घटत घटि जात ॥ २३३ ॥ यह जीवन थिरें ना रहै, दिन दिन छीजेंत जात ॥ चार दिना की चांदेंनी, फेर अँधेरी

१-मड़ । १-विधाता ॥ ३-वतुर ॥ अवहां (११८) से डेकर-वे सव दोहे-मारवाड़ी वालके हैं -अर्थात् इन में मारवाड़ी शब्द व्यक्ति है ॥ ४-वेळ ॥ ५-वर्ते ॥ ६-मार्ग ॥ ७-अच्छा छने ॥ ४-पक्त छे ॥ ९-यही ॥ १०-अस्त्री हाळ ॥ ११-वर्ते ॥ ११-नीच ॥ ११-स्थान ॥ १४-वर्ते ॥ १५-वर्ते ॥ १५-वर्ते ॥ १४-वर्ते ॥

रात ॥ २३४ ॥ तबलग जोगी जगतगुरु, जनलग रहै निर्रोस ॥ जब जोगी मंमता घरै तब जोगी जगदास ॥ २३५ ॥ धरम करत संसार मुख, घरम करत निरवान ॥ धरम-पन्यै जाणैं नहीं, ते नर पश्र समान ॥ २३६ ॥ कोधी छोभी क्रुपेंण नर, सानी अरु मेद-थन्ध ॥ चोर जुवारी चुगुळ नर, भाठी दीखत अर्न्ष ॥ २३७ ॥ शीळ रतन सब से बड़ो, सन रतनन की सान ॥ तीन छोक की सम्पदा, रही श्रील में आन ॥ २३८ ॥ शिली संगति स्त्रोन की, दोनूं बातें दुक्स ॥ ईंद्रो पकड़े पांव कूँ, तूँठो चाटै मुक्स ॥ २३९ ॥ सर्तर्जन मन में ना घरें, दुरंजैन जन के बोल ॥ पथरा मारत आम को, तैंठ फल देत अमोल ॥ २४० ॥ पाँत ईंह्बंतो इम कहै, सुण तरुवर बनराय ॥ अब के बिछुरे कब मिछैं, दूर पहेंगे जाय ॥ २४१ ॥ तरुवर सुणकर बोलियो, सुण पत्ता मुझ बात ॥ या जग की यह रीति है, इक आवत इक जात ॥ २४२ ॥ झुल दुल दोनूं संग हैं, मेटि सकै नहिं कोय ॥ जैसे छाया देह की, न्यारी नेक न होय ॥ २४३ ॥ जिमि पनिहारी जेवेंडी. हैं-चत कटै पर्यांन ॥ तैसे नर उद्यम कियां, होत सही विद्वान ॥ २४४ ॥ तन धन परिजेन रूप कुरू, तर्रेणी तर्नेय तुषार ॥ ये सब है पिण बुद्धि नहिं, व्यर्थ गयो अवर्तीर ॥२ १५॥ मात तीते द्वत आत तिर्य, खराँम सबिह को मेल ॥ सत्य मित्र को जगत में, महा कप्ट से मेल ॥२ ४६॥ उर्वेम से लिखेमी मिले, मिले द्रव्य से मान ॥ वैर्ड्डम पैरिस जगत में, मि-लियो मित्र सुर्जीन ॥ २४७ ॥ उपनो उत्तम दंश में, सज्जन न्यजैन समान ॥ परिश्रमैंण करि तरत ही, मेटि ताप सखदान ॥ २४८ ॥ हैये गैर्य अयेंस सरत की, पीर्वेक को हि पिछोंग ॥ विण प्रीक्षक जन गन तणां, करि न सकै निरमाण ॥ २४९ ॥ हिकर्मेतं करि उदरिहें भरउ, किसमत पर रहु नांह ॥ किसमत सें हिकमत बड़ी, करि देखी जगमांह॥ ॥ २५० ॥ झजन मित्र को सेह नित, बधै राफ सम बीर ॥ अंजिल जल सम कुजेंनै की, **घटै खेह को नीर ॥ २५१ ॥ उत्तम जन अनुरींग तें, चोछ मजीठ समान ॥ पार्मेरै रींग** पतंग सम, परू में परुटै वीन ॥ २५२ ॥ जो जामैं निसदिन वसे, सो तामें पेर्रवीन ॥

१-आशा से रहित ॥ १-मुक्ति ॥ ३-धर्म का मार्ग ॥ ४-कज्ञ्स ॥ ५-मद से अन्धा ॥ ११-तुष्ट हो कर ॥ ६-अन्था ॥ ७-सम्पति, दौलत ॥ ८-नीच ॥ ९-कृता ॥ १०-रुष्ट हो कर ॥ १२-अच्छे आदमी॥ १३-द्वरे आदमी॥ १४-तो भी॥ १५-पत्ता॥ १६-गिरता हुआ ॥ १७-पानी भरने वाली ॥ १८-रस्सी ॥ १९-पत्थर ॥ २०-क्रद्धम्व ॥ २१-स्री ॥ २१-पुत्र ॥ २८-मेहनत्॥ २५-पिता ॥ २६-इती॥ २७-सहज ॥ २३-परन्तु ॥ २४-जन्म ॥ २९-लक्सी, दौलता। ३०-मुह्किक से मिलने नाला।। ३१-एक प्रकार का परधर जिस की छूने से लोहा सोना हो जाता है ॥ ३२-ज्ञानवान् ॥ ३३-पसा ॥ ३४-धूमना ॥ ३५-घोडा ॥ ३६-हाथी ॥ ३७-छोहा ॥ ३८-परीक्षा करने वाला ॥ ३९--पहिचान ॥ ४०-तदवीर ॥ ४१-खराव आदमी ॥ ४२-प्रेम ॥ ४३-नीच ॥ ४४-रंग ॥ ४५-खमाव ॥ ४६=चत्र ॥

सरिता गजकं हे चहै, उलट चलत है मीने ॥ २५३ ॥ थिति वें अन्तरेवासना, जीति धर्म गुण रूप ॥ जो समान तो मित्रता, अँहनिश्चि निमै अर्नुष ॥२५२॥ नर्त्र पुरुष 'धी नम्र रहु, वैक दुष्ट थी वक ॥ अकेंड्र थी अकड़ रहो, गुणि जन थी अनर्वक ॥ २५५ ॥ देश जाति कुछ वर्म को, उँरें राखे अमिमान ॥ वन्य तेज नर और तो, खरेर्ज खँर सैंम मान ॥ २५६ ॥ पर सख देखी पर जले, पर्द्रैलशीन प्रमोदे ॥ नित्य कर्म यह नीचेनूं, माने मेहीविनोद ॥ २५७ ॥ गुण्याही सज्जन सदा, दोवैप्राहि छे दुष्ट ॥ पिये खून पैये ना पिये, लगी जोंक थन पृष्ट ॥ २५८ ॥ तन मन धन जीवन अरू, परेर्म देव प्रिये वस्त ॥ गिणे सेंती पति ने सदा, अनेय न बहुँभ बस्तु ॥ २५९ ॥ शुँभैतिय सें संसार झुल, झ-भैति संगुरु से जाण ॥ अँचि मन्नी से राज नित, सुघरै सदा सुजाण ॥ २६० ॥ प्रायः पर की मूळ की. देखे सब संसार॥ वैष न विचारे निजताणी, होय जु मूळ हजार॥२६१॥ गती बिगर अति आर्केला, भैतीहीन मगरूर ॥ रति शत्र हैति दँग विणा, तेज न मूर्ख जरूर ॥२६२॥ नन्दर्जीति नटेंबैट सदा, "पेचीली पर मार ॥ निर्देर्य निर्पेट सँशंक नित, र्हेंबार्शसिद्धि करनीर ॥ २६३ ॥ गुण विन रूप न काम को, जिम रोहेंहें फूछ ॥ दीसं ती रिख्यानेंगां, पर्णे नहिं पासे मूछ ॥ २६८ ॥ "श्रीरी मित्रह सा गुणा, ताली मित्र अनेक ॥ (पण) जेथी सुल दुल "हैचिये, सो ठालन में एक ॥ २६५ ॥ नाम रहण दो ठॅकैरां, नांगां नही रहन्ते ॥ कीरंते हन्दा कोर्टड़ां, पीट्यां नही पहनत ॥ २६६ ॥ फल्पवृक्ष काने सुण्यो, कींपे इच्छित भीग ॥ "है मे मन में निश्चय क्यों, कल्पप्टक्ष उद्योग ॥ २६७ ॥ उपने सल उद्योग थी, सुधरे विंकी स्वदेश ॥ ते कारण उद्योग की, हिन्मत घरो हमेश ॥ ॥ २६८ ॥ कदरत पिर्ण उद्योगि ने, देने विक्षस दान ॥ आ अवसँर यूरोप ना, लोकर्ज

१-नदी॥ २-मछली।। ३-स्थिति, हाळत ॥ ४-भवस्था, उम्र ॥ ५-भीतरी इच्छा ॥ ६-जाति ॥ ७-दिनरात ॥ ८-धव्युत ॥ ९-नमने वास्त ॥ १०-से ॥ ११-टेहा ॥ १२-अकः दने वाला !! १३-सिधा !! १४-दिल !! १५-वमण्ड !! १६-सायन्त ही !! १७-गवा !! १८-समान ॥ १९-दसरे के दुःख से ही ॥ २०-आनन्द ॥ २१-वीच का ॥ २२-वडी खुकी।। २३-गुण को छेनेवाला।। २४-दोप को छेनेवाला।। २५-दुव ।। २६-उत्तम ।। २८-पतिनता स्त्री ॥ २९-दूसरा ॥ ३०-प्यारो ॥ ३१-अच्छी स्त्री ॥ २७-प्यारी ॥ ३२-अच्छी गति ॥ ३३-उत्तम गुरु ॥ ३४-पवित्र, शुद्ध ॥ ३५-अक्सर ॥ ३६--परन्त ॥ १८-व्याकुल ॥ ३९-वृद्धि से रहित ॥ ४०-धमण्डी ॥ ३ ७--अपनी ॥ ४३-पेवदार ॥ ४४-पेंचवाली ॥ ४५-दया से रहित ॥ ४६-अवन्त ॥ ४७-शका के सहित ।। ४८-अपना मतलव ॥ ४९-करने वाळा ॥ ५०-एक प्रकार का जगली वृक्ष ।। ५१-देखने में ॥ ५२-अच्छा कगता है ॥ ५३-परन्तु ॥ ५४-उत्तम समय में ॥ ५५-वंटाइये ॥ ५६-हे ठाकुर ॥ ५७-घन ॥ ५८-रहता है ॥ ५९-कीर्ति, यश ॥ ६०-रूपी ॥ ६१-किला ॥ ६२-गिराने से ॥ ६३-गिरता है ॥ ६४-देता है ॥ ६५-नाहा हुआ ॥ ६६-मैं ने ॥ ६७-और ॥ ६८-अपना देश ॥ ६९-सी ॥ ७०-समय ॥ ७१-सन्ध्य ही ॥

चढे विभान ॥ २६९ ॥ आलस भूंडी मूतेही, व्यन्तर नो वल गाड ॥ पेसे जेनी पंडींगं. बहुँचा करे निगाड़ ॥ २७० ॥ जन आउस ना जर्सम थी, जे कोइ जलेंगी थाँय ॥ पडे पेथारी पाँचरी, जीवन रहित जणीय ॥ २७१ ॥ मर्यो घड़ो छिँछेंके नहीं, अँधुरो झट छि-र्वेकाय ॥ विश्वेष कुँलीन बकै नहीं, बके सो नीच वेलाय ॥ २७२ ॥ मुख पीछे दुख स्रात है, दुख पीछे सुख भात ॥ आवत जावत अनुकांमे, ज्यूं जग में दिनरात ॥ २७३ ॥ के-रैरिकेश सुनेगैमेणि, सुरनौरी रेर्रेगह ॥ सेंतीपयोघर विभैधन, चेंद्रशे हर्त्थ सुवैहि ॥ २७४॥ दुष्ट वैर्यसन दुक्खेंद सदा, केंद्री न कैरेबो संग ॥ घन जीवन यश धर्म नो, तरत करे के मंगैं।। २७५ ॥ मूल न वासी घैंट अरु, नींद न तूँटी खैंट ॥ कामी जात कुर्जीत नहिँ, देखे रात कि प्रौत ॥ २७६ ॥ रसिंक संग में रसिक जन, अति पामै आनंद ॥ अरेंसिक साथे अँहेर्निस, पामे खेर्द अमर्न्द ॥ २७७ ॥ वहे बहे कूं देखि के, ठेंचु न दीनिये डार ॥ काम पढ़े जब र्रें.चि को, कहीं करे तलवार ॥ २७८ ॥ जो र्मित पीछे अपने, सो मित प-हिले होय ॥ काज न विगड़े आपनो, जग में हँसे न कोय ॥ २७९ ॥ मॉर्यहीन कूँ ना मिले. मली वस्तु को मोग ॥ दाल पके मुख्याकवो, होत काँग कूँ रोग ॥ २८० ॥ क-रिये काम विचारिके, होय नहीं उपहाँसे ॥ कैपि नी पूँछ प्रजालतीं, मयो लंके को नास ॥ ॥ २८१ ॥ सोरठा — केंड़े न "सांचिह आंच, जूँई न झाले आंचने ॥ पिवले" पर्लो कांच, पैंग कैदि रत्न न पीघले ।। २८२ ॥ ईकै तिंगे इक ढील दे, तिंटे न कींची तार ॥ ताणतताणत र्त्टही, लोहा सांकर सारी ॥ २८३ ॥ समयप्रैमाणे "सेर्वदा, करिये काम त-माम ॥ दौंम हाँमैं निंजें नाम बेंलि, दीपै कुरू शय धौंमै ॥ २८४ ॥ काजी पण पाँजी बने, बाँह बने छे चोर ॥ उत्तम ने अधमै करे, होशी निपट निठोर ॥ २८१॥ विंबे

१--बराव ॥ २-भूतिनी ॥ ३-भूत ॥ ४-प्रसता है ॥ ५-जिस के ॥ ६-हृहय में ॥ ७-अक्सर ॥ ८-घाद ॥ ९-घायरु ॥ १०-होता है ॥ ११-विछोना ॥ १२-विछाकर ॥ १३-माद्धम होता है ॥ १४-इलकता है।। १५-अधूरा, अपूर्ण ॥ १६-इलकता है॥ १७-पण्डित ॥ १८-अच्छे कुरु का ॥ १९-दु:स में डालनेवाला ॥ २०-कम से ॥ २१-सिंह के वाल ॥ २२-साप की मणि ॥ २३-देवांगना ॥ २४-इर का शक्त ॥ २५-पतिवता का स्तन ॥ २६-व्राह्मण का धन ॥ २७-च्हेगा, आवेगा ॥ २८-हाय मे ॥ १९-मरने पर ही ॥ ३०-खराव आदत ॥ ३१-ह ख देने वाला ॥ ३१-कमी ॥ ३३-करना चाहिये ॥ ३४-नाश ॥ ३५-आंटे की रावड़ी (जो मारवाड में महे में बनाई जाती है)॥ ३६-दृटी हुई ॥ ३७-चारपाई ॥ ३८-खराव जाति ॥ ३९-सवेरा ॥ ४०-बौकीन ॥ ४१-वेशौकीन ॥ ४२-दिनरात ॥ ४३-द्वन्त, रज ॥ ४४-बहुत ॥ ४५-छोटा ॥ ४६-छुई ॥ ४७-क्या ॥ ४८-सङ्घ ॥ ४९-भाग्य से रहित ॥ ५०-सुख का पकजाना ॥ ५१-कीआ ॥ ५२-इँसी, ठड्डा ॥ ५३-वन्दर ॥ ५४-जलाने पर ॥ ५५-लङ्का ॥ ५६-पास आती है ॥ ५७-सल को ॥ ५८-स्ट ॥ ५९-पिचलता है॥ ६०-परन्तु॥ ६१-कमी॥ ६२-पिघलता है॥ ६३-एक॥ ६४-खींचे॥ ६५-दूटे ॥ ६६-क्रमा ॥ '६७-सीचते सीचते ॥ ६८-दूट जाता है ॥ ६९-सजबूते ॥ ७४-अपना ॥ ७५-और॥ ७०-समय के अनुकृत ॥ ७१-सदा ॥ ७२-**∪**≩− ७६-घर ॥ ७७-हुष्ट ॥ ७८-साहूकार ॥ ७९-अखन्त ॥ ८०-निष्टुर, दयाहीन ॥ ८१-स्री ॥

मर्केट शिश्चे भूप की, मन नहिं अंचल सुमित्र ॥ सावर्धान रह कर सदा, करो प्रतीति पवित्र ॥ २८६ ॥ प्रेर्म सत्वे प्रकंटी तिहीं. रहे न पर्हदो छेशे ॥ योग्यींयोग्य विचारिणा. निभें न नेटें निमेर्ष ॥ २८७ ॥ शक्ति छैतां पण अवरेंनां, दुःल न टैंछि ज़ेहें ॥ शरद ऋतू ना मेथेसम, फोकेंट गाँजे तेहें ॥ २८८ ॥ काम पड़े परखाँय छे, वस्तु मात्र को नीर ॥ विण परले सेंई एकसा, देखाये पिय वीर ॥ २८९ ॥ जिम्यों में अमिरेंत वसे, विष भी तिण के पास ॥ इक बोलै तो छास छै. एके छास विनास ॥ २९० ॥ बात बात सब एक है, बतलावन में फेरें ॥ एक पर्वेन बादल मिले, एक देत नीखेर ॥ २९१ ॥ मान्य घवें वेंदि पुरुष को, (तो) दुल अभीटी सुल थींय ॥ पिण को निर्वेर्ट भाग्य तो, झुलैंज संर्मूं जो जाँय ॥ २९२ ॥ जो न जरे निश्चय करी, करें जो कार्य हमेश ॥ सदा हैंहो सुल यश देंही, केंदी न पानो क्केश ॥ २९३ ॥ बुद्धि निना नर नेंपिड़ो, बुद्धि अँकी बलवान ॥ बुद्धि थकी झुल सेंभ्य "जै, बुद्धि गुँगारी थॉर्न ॥ २९४॥ साहर्से पॉकैस "बुँद्धि बेंहें, देंईंबम देंबें जु होय ॥ तो डरता रहे देविषण, जीति सके निर्ह कोय ॥ २९५ ॥ मेंाली बैठी गुड परें; रही पंख लिपटाय ॥ हाथ मले अरु सिर घुणे, लार्डंच द्वरी वर्डीय ॥ ॥ २९६ ॥ अमेरवेलि विनमूल हरेले, प्रतिपालेले तीहि ॥ एम नाथ ने वीसेरी, दृढे ले तुँ काहि ॥ २९७ ॥ हीरा पच्यो चुर्हार्ट में, छाँर रखो लिपटाय ॥ कितनेहँ मुरख नीसैंथी, पौरित लियो उठाय ॥ २९८ ॥ आपे छे जो मान विण, अभिरत मलो न जाण ॥ प्रेमैर्स-हित विष पॅण दिवे, मलो त्याँग के प्राण ॥ २९९ ॥ मुँका वणे कपूर पण, चातँर्क जी-वण जोय ॥ "एँतो मोँटी तोर्थ" पण, न्यांल मुक्तें विषे होर्थ" ॥ ३०० ॥

यह द्वितीय अध्याय का सुमापित रत्नाविल नामक दूसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

१-बन्दर॥ २-बाळक॥ ३-राजा॥ ४-स्थिर॥ ५-हे अच्छे मित्र॥ ६-होश्यार॥ ७-वि-सास॥ ८-सुह्ज्वत॥ ९-सनाई॥ १०-वैदा हुआ॥ ११-यहा॥ १२-पर्या॥ ११-जरा मी॥ १४-जित्रत और अजुनित॥ १५-निवार॥ १६-निमता है॥ १७-आखर में॥ १८-पळ भर भी। १९-होने पर॥ २०-दूसरे के॥ २१-मिटाता है॥ २२-जो ॥ २३-वादळ के समान॥ १४-व्यर्थ मे ॥ २५-गरजता है॥ २६-वह॥ २७-परखा जाता॥ २८-सा॥ २९-जीम॥ ३०-असत ॥ ३१-फर्क ॥ ३१-फर्क ॥ ३१-कात ॥ ३१-साफ, उब्वर्छ ॥ ३४-अगर॥ ३५-जीम॥ ३०-मुळसहित॥ ४५-निवार है॥ ३०-परन्तु॥ ३८-कमजोर॥ ३६-होता है॥ ४०-पुळसहित॥ ४९-वाफ, उव्वर्छ॥ ४९-मुळसहित॥ ४९-वाता है॥ ४०-मुळसहित॥ ४९-वाता है॥ ४०-मुळसहित॥ ४९-होने पर॥ ४८-सम्पत्ति, एकता॥ ४९-उत्पा होता है॥ ५०-गुजों का॥ ५१-स्थान॥ ५२-सावा॥ ५२-सम्पत्ति, एकता॥ ४९-उत्पा होता है॥ ५०-गुजों का॥ ५१-स्थान॥ ५२-वाता ॥ ५१-स्वाचा॥ ५१-सावा॥ ५१-सावा॥ ५२-माकावेळ॥ ६१-निवाज की॥ ६४-हे॥ ६५-पाळता है॥ ६०-लोम॥ ६१-हे से देनेवाल॥ ६२-अस्त्ता॥ ५४-अस्त ॥ ७४-अस्त ॥ ०४-स्ता ॥ ७४-स्ता ॥ ०४-स्ता ॥ ०

तीसरा प्रकरण—चेलौ गुरु प्रश्लोत्तर॥

गीहूं सूखा खेत में, घोड़ा हींसकैराय ॥ परुंग थेंकी घर पोढिया, केंड्ड चेला किण दाय ॥ १ ॥ गुरुजी पाँची नहीं ॥

पेवन पंचारे पर्तेली, कार्मिण मुख कमलीय ॥ मेंडी चौपड़ मेलग्यों, कहु चेला किण दाय ॥ २॥ गुरुकी सारी नहीं॥

रर्जनी अंन्वारो भयो, मिली रात वीहाँय॥ षीयो खेत न नीपंजो, कहु चेला किण दाय॥३॥ गुरुजी केंगो नहीं॥

बेटा कुम्बोरा फिरै, कर्नेत ज छुँको खाय॥ दीवै जर्मेर औपियो, कहु चेला किण दाय॥४॥ गुरुजी सम्मत नहीं॥

र्केंप्यो 'सूं लाई दियो, बलैंद पुराँगी खाय ॥ कैरहो सहे जु कांबेंड्री, कहु चेला किण दाय ॥ ५॥ गुरुजी चैंग्लै नहीं ॥

हैं। ख़िंड़े हैंकॉंतरे, पैंग अलवेंगणे जाय ॥ हूंबेंज गाँवे एकंली, कहु चेला किण दाय ॥ ६॥ गुरुजी जिंही नहीं॥

१-इस चेला गुद प्रश्नोत्तर के अन्त में दिये हुए नोट को देखिये ॥ २-मेहू ॥ ३-हिनहिनाता है ॥ ४-होते हुए भी ॥ ५-पृथिवी ॥ ६-शयन किया ॥ ७-वतलाओ चेले क्या कारण है (इस बीये पाद का सर्वत्र यही अर्थ समझना चाहिये) ॥ ८-सींचा हुआ, पानी पिलाया हुआ, खाट का पागा (इसी प्रकार से तीन प्रश्नों के उत्तर सबधी पद के सर्वेष्ठ ३ अर्थ किये चायगे, वे सर्वत्र कम से जान नेना चाहिये, क्योंकि भारवाडी भाषा में वह एक पद तीनो अर्थों का वाचक है) ॥ ९-इवा ॥ १०-उंडाती है ॥ १९-इवा ॥ ११-अपी ॥ ११-अपी ॥ ११-अपी ॥ १४-अपी ॥ १४-अपी ॥ १४-अपी ॥ १४-अपी ॥ १४-अपी ॥ १४-वंडाती ॥ १४-वंडाती ॥ १४-वंडाती ॥ १४-वंडाता ॥ ४४-वंडाता ॥ ४४-वंडाता वंडाता वंडाता वंडाता ॥

घोड़ा घोड़ी ना छिवैं, चोर ठयेलीं जाय ॥ कामण कन्त जु परिहरे, कहु चेला किण दाय ॥ ७ ॥ गुरुजी जांगे नहीं॥

घोड़ै मारग छाँड़ियो, हिरण फड़ाँके जाय ॥ माली तो बिर्ल्खो फिरै, कहु चेला किण दाय ॥ ८॥ गुरुजी बोग नहीं ॥

पड़ी कवाण न पार्केलैं, कार्मिण ही छिटकार्य ॥ केंवि बूँझंतां खीजिंघी, कहु चेला किण दाय ॥ ९ ॥ गुरुजी गुँण नहीं ॥

र्अरट न बाजै पार्टेड़ी, वालद प्यासो हि जाय॥ धेंबल न केंबे गींडलो, कहु चेला किण दाय॥१०॥ गुरुजी बुँहवो नहीं॥

नेंरी पुरुष न आदरै, तेसेंकर बांध्यो जाय ॥ तेजी तांजेंणणो र्वमें, कहु चेला किण दाय॥ ११॥ गुरुजी तेजें नहीं॥

भोजन स्वाद न ऊपजो, सँगो रिसीयां जाय॥ कैंन्ते केंामण परिहैंरी, कहु चेला किण दाय॥ १२॥ गुरुजी रैस नहीं॥

वैर्दें मैं।न पायो नहीं, सींगंण नीहें सुंलजाय ॥ कन्ते कामण परिहरी, कहु चेला किण दाय ॥ १३॥ गुरुजी गुंणे नहीं ॥

हीरी झेर्ने पड़ गयो, बाग गयो बीलाय ॥ दरपण में दीसे नहीं, कहु चेला किण दाय ॥ १४ ॥ गुरुजी पाँणी नहीं ॥

छीँपा घर सोधा नहीं, कामेण पीईर जाय ॥ छयेल पीघ नहिं मोलैंबै, कहु चेला किण दाय ॥ १५॥ गुरुजी रंगें नहीं ॥

गेंहुँ सूले हल हू थके, बाँटै रथ निहं जाय ॥ बाँलन्तो ढीलो चलै, कहु बेला किण दाय ॥ १६॥ गुरुजी जूँतो नहीं ॥

चौपेंड़ रेमे न चौहेंटें , तीतर जौलां जाय ॥ राज द्वार आद्र नहीं, कहु चेला किण दाय ॥ १७ ॥ गुरुजी पैसि नहीं ॥

धार्न पंड्यो आटो नहीं, घोरे " नीर्र न जाय ॥ कातर्ण जोगी" मुखां मरे, कहु चेला किण दाय ॥ १८॥ गुरुजी फेरी" नहीं ॥

भैंगि साल न बांजैंवे, नैंगों ले फिरि जाय ॥ पाँगा ढीला साल में, कहु चेला किण दाय ॥ १९॥ गुरुजी वर्णियी नहीं॥

वैणै बुलर्न्सं लड़्थेंड़े, नार्येण गीत न गाँय ॥ भोजन घाँरैं जु जीमणो, कहु चेला किण दाय ॥ २०॥ गुरुजी दाँतै नहीं ॥

खेत णेठो किंग कारणें, चोपेंद घर घर जाय ॥ गुँछ मुंहँगो किणैविघ हुँचो, कहु चेला किण दाय ॥ २१ ॥ गुरुजी वांड़ नहीं ॥

अमेंल अरंकों गेल गयो, दीढ़ी बैंघती जाय ॥ चांभी क्षेनन न वार्चियी, कहु चेला किण दाय ॥ २२ ॥ गुरुजी नाई नहीं ॥

र्पन्य बेटाक ना बेंहै, सेंयण पुहूँचो जार्ये ॥ इसें गोरज्यें। हाँलेणों, कहु चेला किण दाय ॥ २३ ॥ गुरुजी बोर्लेंचो नहीं ॥

बनराँजा रों नाम सुंण, पैंटो छोड़ घर जाय॥ लिखेतां लेखेण क्यों तैजी, कहु चेला किण दाय॥ २४॥ गुरुजी सैंही नहीं॥

मोती मोटो मोर्ल कम, सरँवैर पीर्ह न थैाय॥ रावेंत भागो रीड में, कहु चेला किण दाय॥ २५॥ गुरुजी पीणी नहीं॥

पान सड़ै घोड़ो अँड़ै, विद्या वीर्सेर जाय ॥ रोटो जलै अंगीर में, कहु चेला किण दाय ॥ २६ ॥ गुरुजी केंच्यो नहीं ॥

दूध डॅफाण्यो ऊंफण्यो, बँच्छे चूँगी गाय ॥ मिनेंकी मौलण ले गई, कहु चेला किण दाय ॥ २७ ॥ गुरुजी देखेंयों नहीं ॥

१-नष्ट हुआ ॥ १-किस ॥ ३-कारण से ॥ ४-चतुष्पद ॥ ५-गुड ॥ ६-तेन, मॅहगा ॥ ७-किस तरह से ॥ ८-हुआ ॥ ९-गढ, बाढ और आसद ॥ १०-अफीस ॥ ११-गळा ॥ ११- वाढ ॥ ११-वाढ ॥ १४-इल की लीक ॥ १५-वा ॥ १६-वा हुआ ॥ १७-पिहले हो में नाई, तीसरे में हलकी मूंगली ॥ १८-राखा ॥ १९-यात्री ॥ १०-वलता है ॥ ११-सम्बन्धी ॥ १२-सम्बन्धी ॥ १३-महादेव ॥ १४-पार्वती ॥ १५-वलना ॥ २६-वोळनेवाला, सत्कार और खला ॥ २७-सिंह ॥ २८-का ॥ २४-प्राई वेता है ॥ ३०-वागीर ॥ ३१-लिखते हुए ॥ १२-कलम ॥ ३३-छोढ से ॥ ३४-सेही (बंदुविशेष); मोहर और खाही ॥ ३५-वला ॥ ३६-कीमत ॥ ३५-वला ॥ ३४-सेही (बंदुविशेष); मोहर और खाही ॥ ३५-वला ॥ ३६-कीमत ॥ ३५-ललता ॥ ३४-सेही ॥ ४९-नाविशेष ॥ ४१-लला ॥ ४१-लला ॥ ४१-लला ॥ ४५-लला ॥ ४१-लला ॥ ४१-लला ॥ ४१-लला ॥ ४१-लला ॥ ४१-लला ॥ ४५-नाविशेष ॥ ४१-महाही ॥ ४४-महाही ॥ ४४-महाही ॥ ४४-महाही ॥ ४४-महाही ॥ ४४-महाही ॥ ४४-महाही ॥ ४१-वला ॥ ५४-वला ॥ १४-वला ॥ १४-व

ेंधुंई धुंवो ना सैश्वरै, मेंहिले पवन न जाय ॥ झीर्वर विलंखो क्यूँ फिरै, कहु चेला किण दाय ॥ २८॥ गुरुजी जीली नहीं ॥

घड़ो झरन्तो ना रहे, पैंदै रोवै बेंख ॥ सासु बैठि बहुँ पेंदिस, कहु चेला किण दाय ॥ २९ ॥ गुरुजी सीरो नहीं ॥

कपड़ो पोर्ति न पैंकड़ै, मूँजं मेल नहिँ खाय ॥ चोघरि सर्ट्यो क्यूं फिरै, कहु चेला किण दाय ॥ ३०॥ गुरुजी कूट्यो नहीं ॥

र्संको पीपल खरैंहरो, कलियां हुई विणासे ॥ दीको मूंधी क्यूं पड़्यो, कहु चेला किण दाय॥ ३१॥ गुरुजी पाँन नहीं॥

बांईज देंोले बंहु दुंले, लावं सरे के जाय॥ आग भम्की क्यूं करे, कहु चेला किण दाय॥ ३२॥ गुरुजी दीबी नहीं॥

गाड़ी पड़ी उजाड़ें में, पैंगगट ठाँली जाय॥ कांटो लागो पांच में, कहु चेला किण दाय॥ ३३॥ गुरुजी वैजीड़ी नहीं॥

घोड़ो तिणो न चैं।खवै, चें।कर केंठो जाय ॥ पिँलेंग थैंकी धॅर पोढ़ेंजै, कहु चेला किण दाय ॥ ३४ ॥ गुरुजी पींयो नहीं ॥

१-आग जलाने का गड्ढा ॥ २-घुआ ॥ २-निकलता ॥ ४-महल ॥ ५-हवा ॥ ६-मछली पकडनेवाला ॥ ७-व्याफुल ॥ ८-जलाई हुई, खिडकी (जाली) और जाला ॥ ९ करता हुआ ॥ १०-छोटी माची ॥ ११-माकक ॥ १२-वह ॥ १३-परोसती है ॥ १४-पक्का, नीरोग और लिघकार ॥ १५-मादापन ॥ १६-पकडता है ॥ १७-एक चास ॥ १८-हका हुआ ॥ १९-कृटा हुआ (दो में) और मारा हुआ ॥ २०-स्वां हुआ ॥ २१-खड़खडाता है ॥ २२-नष्ट, नाका ॥ २३-हुका ॥ २४-जलता है ॥ २५-पत्ते (दो में) और तमाख ॥ २६-चाड़ ॥ २७-हिल्ती है ॥ २८-वह त ॥ २९-बोलती है ॥ २८-पत्ते (दो में) और तमाख ॥ २६-चाड़ ॥ २०-हिल्ती है ॥ २८-वह हुआ ॥ २९-बोलती है ॥ ३०-रस्सा ॥ ३१-वह त तेजी के साथ ॥ -३२-भमकना ॥ ३३-ववाई हुई (तीनों में समान जानना चाहिये) ॥ ३४-जंगल ॥ ३५-पनिहारी ॥ ३६-चाली ॥ ३७-जोडी का वैल (दो में) और जते ॥ ३४-पलग ॥ ४३-होने पर भी ॥ ४४-जमीन ॥ ४५-सोता है ॥ ४०-नौकर ॥ ४९-मुलदा और नार पाई का पाग ॥

वैडलो र्रंब वैधे नहीं, दुनिया मालवें जाय॥ ं ं ं लिखिया खत कूड़ा पड़े, कहु चेला किण दाय॥ ३५॥ गुरुजी साख नहीं॥

गाड़ी पंड़ी गवाड़े में, कुए खड़ी पंणिहार ॥ गोरीं अभी गोखड़े, कहु चेळा किण दाय ॥ ३६ ॥ गुरुजी 'जीड़ी नहीं ॥

कोस पिछोर्केंड़ क्यूं पड्यो, सोच बैंटाऊ खाय ॥ अँणवीलोयो क्यूं पड्यो, कहु चेला किण दाय ॥ ३७ ॥ गुरुजी फीट गयो ॥

गाड़ी लीकें न दीसेंबै, घीणी तेल न थाँये॥ कांटो लागो पांव में, कहु चेला किण दाय॥ ३८॥ गुरुजी जोड़ी नहीं॥

गुँटमण गुटमण फिरतो दीठोँ, कोइ जोगी होयँगो ॥ नौ गुरु जी स्नुत लपेट्यो, कोइ तांणो तणैंती होयगो ॥ ना गुरु जी मुख लोहा जैड़ियो, कोइ सेंतेन तौयो होयगो ॥ ना गुरु जी पकड़ पैंछाड्यो, बेंको वैंघग्यो ऐ गाँहै रो ॥ अँरथ कहो तो तुम गुरु हम चेलो ॥ ३९॥

लहू ॥

इति चेलाँ गुरु प्रश्नोत्तरं समाप्तम् ॥ यह द्वितीय अध्याय का चेलागुरु मश्नोत्तरनामकं तीसरा मकरण समाप्त हुआ ॥

१-बद (वह)॥ १-वृक्ष ॥ १-वदता है॥ ४-सालवा देश ॥ ५-लिखा हुआ ॥ ६इंद्रण ॥ ७-शाखा, युसिक्ष और गवाही ॥ ८-पडी हुई ॥ ९-युद्द्र ॥ १०-पानी भरनेवाली ॥
११-की ॥ ११-खडी हुई है ॥ १२-झरोखे में ॥ १४-जोडी का वैठ (दो में) और किवाड़ों की जोड़ी ॥ १५-पीछे का स्थान ॥ १६-यात्री, युसाफिर ॥ १५-विना सथा हुआ ॥ १८-फटा हुआ वर्मवल, फॅटा हुआ सार्ग और फटा हुआ वृद्ध ॥ १९-व्हितीर, पिता ॥ २०-दीखती है ॥ ११-विली की घाणी ॥ २२-होता है ॥ २३-जोती हुई, (दो में) और ज्तों की जोड़ी ॥ २४-सनमनाता हुआ ॥ २५-देखा ॥ २६-होता है ॥ २६-होता ॥ २०-वहीं ॥ २८-लपेटा हुआ ॥ २५-विला ॥ ३०-जुनता हुआ ॥ ३१-जवा हुआ ॥ ३२-सोना ॥ ३३-तपाया ॥ २४-पिरा दिया ॥ ३५-जल्दी ॥ ३६-वह यया ॥ ३७-जवा हुआ ॥ ३२-सोना ॥ ३१-सत्वव ॥ ३९-इन दोहों का मारवाड देश में अधिक अचार देखा जाता है और वहुत से भोले लोगों का ऐसा ख्याल है कि किसी गुरु तथा चेठे के आपस में यह प्रश्नोत्तर हुआ है और इस में चेना गुरु से जीत गया है, परन्तु -यह वात सल नहीं है-किसी सारवाडी

इति श्री जैन श्वेताम्बर-वर्गीपदेशक-यतिप्राणाचार्य विवेकल्लिश्वशिष्य शील-सौभाग्यनिर्मितः, जैनसम्प्रदायशिक्षायाः ।

द्वितीयोऽध्यायः॥



किन ने अपनी बुद्धि के अञ्चलार हिंगळ किता में बनाये हैं, यसपि इन दोहों की किता ठीक नहीं है— सथापि इन में यह चातुर्य है कि तीन प्रसों का उत्तर एक ही बाक्य में दिया है और इन का प्रचार मनस्थल में अधिक है अर्थात् किसी पुरुष को एक दोहा बाद है, किसी को पांच दोहे बाद है, किन्तु ये वोहें इकट्ठे कहीं नहीं मिळते थे, इसळिये अनेक सब्बनों के अनुरोध से इन दोहों का अन्वेषण कर उलेख किया है अर्थात् बीकानेर के जैनहितवल्लम झानमंदार में ये १९ दोहे प्राप्त हुए ये सो यहा ये लिखे गये हैं— तथा यथाशक्य इन का संशोधन भी कर दिया है और अर्थझान के लिये अक देकर शन्दों का भावार्य भी लिख दिया है।

तृतीय अघ्याय॥

मङ्गैलाचरण ॥

प्रथम प्रकरण—स्त्री पुरुष का धर्म ॥

स्त्री का अपने पति के साथ कर्तव्यं ॥

इस संसार में स्त्री और पुरुष इन दोनों से गृहस्थाश्रम बनता और चलता है किन्त्र विचार कर देखने से ज्ञात होता है कि- इन दोनों की स्थिति, श्ररीर की रचना, खामा-विक मन का वल, शक्ति और नीति आदि एक दूसरे से भिन्न २ है, इस का कारण केवल समाव ही है, परन्तु हां यह अवस्य मानना पढ़ेगा कि— पुरुष की बुद्धि उक्त बातों में स्त्री की अपेक्षा श्रेष्ठ है- इस लिये उस (पुरुप) ही पर गृहसम्बंधी महत्त्व तथा जी के भरण, पोषण और रक्षण आदि का सब मार निर्भर है और इसी लिये भरण पोषण करने के कारण उसे भत्ती, पालन करने के कारण पति, कामना परी करने के कारण कान्त, प्रीति दर्शाने के कारण त्रिय, शरीर का प्रमु होने के कारण खामी, प्राणी का आधार होने के कारण प्राणनाथ और ऐश्वर्य का देनेवाला होने से ईश कहते हैं. उक्त गुणों से युक्त जो ईश अर्थात पति है और जो कि संसार में अन्न. वस और आभूपण आदि पदार्थों से स्त्री का रक्षण करता है- ऐसे परम मान्य भर्ता के साथ उस से उन्नरण होने के लिये जो स्त्री का कर्चन्य है— उसे संक्षेप से यहां दिखलाते है, देखो ! स्त्री को माता पिता ने देव, अभि और सहसों मनुष्यों के समक्ष जिस पुरुष को अर्पण किया है-इस लिये सी को चाहिये कि उस पुरुष को अपना प्रिय पति जानकर सदैव उस की सेवा करे- यही स्त्री का परम वर्ग और कर्चन्य है, पति पर निर्मेख प्रीति रखना, उस की इच्छा को पूर्ण करना और सदैन उस की आज्ञा का पालन करना, इसी को सेवा कहते हैं, इस प्रकार जो स्त्री अपनी सन इन्द्रियों को नश में रख कर तन मन और कर्म से अपने पति की सेवा के सिवाय दूसरी कुछ मी इच्छा नहीं रखती है- वही पतिवता.

१-मगलाचरण का अर्थ- में (प्रन्यकर्ता) श्री भारदा (सरखती) देवी का ध्यान करके अब श्रेष्ठ एहस्थ के कार्य का वर्णन करता हु जो कि सद्गुहस्थ सब के जीवन का स्थान (आधार) है।

साध्वी और सती कहलाती है और जो स्नी पितनता तथा पितपाणा होकर सर्वदा खुशी से क्रिपेन स्वामी की सेवा करती है वही धर्ममागिनी होती है तथा उसी सी को सामी की सेवा करती है जिस करने से उत्तर्म फूल की प्राप्ति होती है— क्योंकि स्नी का जो कुछ सर्वस है वह केवल पित ही है, पित, के ही प्रताप से सी अनेक प्रकार का वैभव (ऐश्वर्य) भोग स- कृती है, पित ही से सी को शृंगार शोमा देता है, सौमान्य रहता है और पित ही से पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है, इस प्रकार अमुल्य और अकथनीय छाम पहुँचानेवाछे पित की निरन्तर प्रीति से सेवा करना, मर्यादा रखकर उस को मान देना और पूज्य मानना तथा उस का अपमान या तिरस्कार नहीं करना, यही स्नी का प्रधान (मुख्य) कर्चन्य है।

स्त्री को चाहिये कि-जन पति नाहर से घर में आवे उस समय खडी होकर आसन और जल आदि देकर उस का सत्कार करे, पति अपने वस्न उतार कर सौपे उन को लेकर अच्छे स्थान में एल देवे और मांगने पर उन (वस्तों) की हानिर करे, नियमपूर्वक, रुचि के अनुसार तथा ऋतु के अनुकूल रसोई बना कर खिलाने, व्यर्थ नातें करके उस के मन को कष्ट न पहुँचाने किन्तु प्रिय मधुर और लामकारी नातों से उस के मन को प्रसन करें, यदि पति किसी कारण से ऋद (सफा) हो जावे तो धीरज रख कर वचनामृत (वंचनरूपी असूत) से उस के कीय की शान्त करे, उस से बाद विवाद कदापि न करे, यदि कमी पति की मूळ भी माख्स पड़े तो उस की उस मूळ को कोघ के साथ न कह कर शान्तिपूर्वक युक्ति से समझा कर कहे, व्यर्थ क्रोध कर मनमानी नात मुख् से कमी न निकाले, कभी विश्वासमात न करे क्योंकि विश्वासमात करने से जी की निकृष्ट (स्वोटी) गति होती है, जिस से पति का मन दुः स्वित हो ऐसा काम कमी न करे, पति के साथ ऊंचे खर से न बोळे, विपत्ति पहने पर पति को धीरज देवे तथा दुःख में ज्ञामिल होते, अपनी कोई मूल हो गई हो तो उस को न लिपाकर पति से क्षमा मांगे, सर्वदा पति की आजा से ही सब व्यवहार करे, ईश्वरमक्ति तथा व्यवहारसम्बन्धी सब कार्यों में पति की सहायता करे, अपनी कोई मूल होने पर यदि पति कुद्ध हो जाने तो स्त्री की चाहिये कि अपना धर्म समझ के मधुर और विनय के वचनों से इस मकार उस के कीष की दूर करे "हे प्राणनाय! आप गुझ दासी पर ऐसा कोघ मत करी, क्योंकि इस दासी से विना जाने यह मूळ हो गई है, मै आप से कर (हाम) जोड़ कर इस मूल की क्षमा मांगती हूं और आगामी को (मविष्यत् में) ऐसी मूल कदापि न हो सकेगी, मैं तो आप की आज्ञा उठानेवाठी आप की दासी हूं, जो कुछ आप कहोगे वहीं मैं सचे मान से (शुद्ध हृदय से) करूंगी, क्योंकि हे जीवनावार! यह स्वामाविक (क़ुदरती) नियम है कि-छड़की अपने मा नाप के घर में पाल पोष कर नड़ी होती है परन्तु उस को अपना सम्पूर्ण जन्म तो पति ही के साथ व्यतीत करना होता है इस

लिये मेरे सचे सम्बन्ध में तो केवल आप ही हो, आप यदि मुझे दुःख भी दो तो भी कुछ अनुचित नहीं है, क्योंकि आप मेरे स्वामी हो और मै आप की दासी हूं, हे नाथ! आप को जो क्रोधजन्य (क्रोध से उत्पन्न होने वाला) दुःख हुआ उस का हेतु मै ही मन्दमागिनी हूं परन्तु में अब प्रतिज्ञापूर्वक (वादे के साथ) आप से कहती हूं कि—आगामी को ऐसा अपराध इस दासी से कदापि न होगा किन्तु सर्वदा आप के चित्त के अनुकूल ही सब व्यवहार होगा, क्योंकि जहां तक मैं आप से मान नहीं पाऊं वहां तक मेरा वस्नालंकार, व्यवहार, चतुराई, गुण और मुन्दरता आदि सब बातें एक कौड़ी की कीमत की नहीं हैं" इत्यादि।

खियों को सोचना चाहिये कि—जो बी पित के गौरव को समझनेवाली, प्रेम रखने-वाली और पित को प्रसन्न करनेवाली हो ते—मला वह पित को प्यारी क्यों न लगेगी अर्थात् अवश्य प्यारी लगेगी, क्योंकि शरीर प्रेम का हेंद्र नहीं है किन्तु गुण ही प्रेम के हेन्न होते है, इस लिये पितप्राणा (पित को प्राणों के समान समझनेवाली) बी को उचित है कि—पित की आज्ञा के विना कोई काम न करे और न पित की आज्ञा के विना कहीं जावे आवे, युज्ञ बी को उचित है कि अपना विवाह होने से प्रथम ही पित की जितनी तहकीकात और जौकसी करनी हो उतनी कर ले किन्तु विवाह होने के पश्चात् तो यदि दैवेच्ला से रोगी, वहिरा, अन्या, लगड़ा, जला, मुर्ख, कुरूप, दुर्गुण तथा अनेक दोषों से युक्त भी पित हो तो भी उस पर सच्चा भाव (गुद्ध प्रेम) रख कर उस की सेवा तन-मन से करनी चाहिये; यही कियों का सनातन धर्म है और यही कियों को उत्तम मुख की प्राप्ति कराने वाला है, किन्तु जो कियां विवाह के पश्चात् अपने पित के अनेक दोषों को प्रकट कर उस का अपमान करती हैं तथा उस को कुदृष्टि से देखती हैं—यह उन (कियों) की महामूल है और वे ऐसा करने से नरक की अविकारिणी होती हैं, इस लिये समझदार की को ऐसा कदापि नहीं करना चाहिये।

देखी! इस गृहस्थाश्रम में बी और पुरुष इन दोनों में से पुरुष तो घर का राजा है और बी घर की कार्यवाहिका (कारवार करनेवाली अर्थात् मन्त्रीरूप) है और यह सब ही जानते है कि मन्त्री का अपने राजा के आधीन रह कर उस की सेवा करना और उस के हित का सदैव विचार करना ही परम वर्म है, बस यही बात ब्री को अपने विषय में भी सोचना चाहिये, जैसे मन्त्री का यह धर्म है कि अपने प्राणों को तज कर भी राजा के प्राणों की रक्षा करे उसी प्रकार इस संसार में ब्री का भी यह परम धर्म है कि—यदि अपना प्राण भी तजना पड़े तो अपने प्राणों को तज कर मी खामी के हित में सदा तरपर रहे, देखो! इसी वचनामृत का स्मरण कर सती तारामती ने अपने प्राणप्रिय पति हिरिश्चन्द्र का शरीर की छाया के समान संग न छोड़कर अपने धर्म का निर्वाह किया था, वह पित के हित के लिये दूसरे के वर विकी, पित का वियोग हुआ वहुत से

दुःख भोगे . और ऐसी अवस्था में भी सन्तोष के एकमात्र आधार एकलौते पुत्र का मरण हुआ. उस को जलाने के लिये मसान का माड़ा देने योग्य भी कुछ पास नहीं रहा, ऐसी महादःखदायिनी दशा के आ पड़ने पर भी उस वीरांगना ने अपने पति पर से ज़रा भी प्रेम कम नहीं किया और अपना शील भंग नहीं किया, अन्त में पित के हाय से ही मरने का समय आया तब भी जुरा भी न धनड़ा के पूर्ण प्रेम प्रकट कर बोली कि "हे प्राणनाथ! आप के हाथ से मेरे गर्छ में डाठी हुई यह तठबार मुझ को मोती की माला के समान लगेगी, इस लिये आप कुछ भी चिन्तातुर न हो कर शीघ ही यह काम करो" बाह धन्य है ! यह कैसा अद्मुत प्रेम है!! धन्य है इस पतिप्राणा स्त्री की जिस ने स्वामिमिक्त में ही अपने जीवन को ट्रू-भदान कर छकीर्ति पाप्त की, इसी प्रकार से अन्य भी बहुत सी साध्वी खियों ने अपने पति की प्राणरक्षा के लिये अपने जीवन को तुच्छ जान कर अपने प्राण दिये है/अर्थात् अपने पति की प्राणरक्षा के लिये अनेक बीरांगनायें युद्धामि में अपने जीवन को आहुत कर चुकी हैं और प्राण जाने के समय तक पति पर असण्ड भेम रख कर अपने शील का परिपालन दिखा गई है, जब यह बात है तो पति के बचनों का पालन करने में अनेक दुःखों का सहन करना तो सती क्षियों के लिये एक साधारण बात है, इस के सहस्रों उदाहरण प्राचीन क्षियों के चरित्र पढ़ने से अवगत (ज्ञात) हो सकते है।

(सत्य तो यह है कि-जिस स्त्री में विश्वासपात्रता और पितसम्बन्धी निर्मेल प्रेम निर्मेल को स्त्री का नाम देना ही समुचित नहीं है, क्योंकि-की वहीं है जो पित को देवरूप समझ के अन्तःकरण से उस को चाहती हो तथा उसी को अपना सामी, नाथ, बहुम और प्राणाधार समझती हो तथा जीवनपर्यन्त भी उस की सेवा से उऋण न हो। सकने का विचार जिस के अन्तःकरण में हो, क्योंकि जो स्त्री अपने पित के उपकारों का सारण न कर पित के साथ निमकहरामी करके उस के बचनों को तोड़ती है वह इस छोक और पर लोक में महादुःखिनी होती है, क्योंकि अनादि काल के कुदरती नियम को तोड़ने से उस को दुःखरूप फल मोगना ही पड़ता है।

श्चियों के लिये पति ईश्वर के तुल्य है—चाहे वह किसी दशा में तथा किसी मी स्थिति में क्यों न हो, क्योंकि स्त्री ने अपनी राज़ी ख़ुश्ची से और अक्क तथा होशियारी से बहुत से मनुष्यों के समक्ष में प्रण (वचन) दिया है और मा बाप ने भी जिस के हाथ में उस का हाथ सौंपा है उस पति की सदा आजा का पालन करना स्त्री का प्रथम कर्तव्य है, इस लिये जो स्त्री अच्छे प्रकार से विश्वासपात्रता के साथ अपने वचन के पालन करने का प्रयस्न करती है उसको कुदरती नियम के अनुसार निरन्तर ग्रुख प्राप्त होता है, देखों किसी का वाक्य है:—

जे नारी निज नाथ साथ रहिने आनन्द छेवा चहे।
ते नारी पित नी रुड़ी रित वड़े सी भाग्यवन्ती रहे ॥
सांचो खेह खनाथ नो समजवो बीजो जुठो जाणजो।
सेवा नीज पती तणी प्रिष्ठ करी मोज्यूं रुड़ी मार्णजो ॥ १॥

इस वाक्य का अर्थ यह है कि जो स्त्री अपने पित के साथ रह कर आनन्द मोगना चाहे वह अपने पित में अपना सचा प्रेम रक्ले और पित से ही अपने को सौमाग्यवती समझे तथा अपने स्वामी का ही खेह सचा समझे और सब के खेह को झूंठा समझे और उस को चाहिये कि पित की अच्छे प्रकार से सेवा करने में ही उत्तम मौज समझे ॥ १॥

'क्षी को स्वामी की सेवा करनी चाहिये, यह कुछ अर्वाचीन (नवीन) काल का धर्म नहीं है किन्तु यह धर्म तो प्राचीन काल से ही चला जाता है और इस का कथन केवल जैन आर्य शास्त्र के ज्ञाता आर्य महात्मा लोग ही करते हों यह बात भी नहीं समझनी चाहिये किन्तु प्रथ्वी के सर्व धर्मशास्त्र और सर्व धर्मों के अप्रगन्ताओं ने भी यही सिद्धान्त निश्चित किया है, देखो! खिष्टीय धर्मप्रन्थ में एक स्थान में ईश्रू की माता मरियम ने कहा है कि—''हे स्त्रियो! जैसे तुम प्रभु के आधीन होती हो उसी प्रकार अपने पित के आधीन रहो, क्योंकि—पित स्त्री का शिर रूप है'' जर्थोस्ती ने पारसी लोगों के धर्मप्रन्थ जन्तावस्था में कहा है कि—''वही औरत बहुत नेक, पटी हुई और चतुर है जो कि—अपने पित को सर्दार तथा बादशाह गिनती हैं" इसी प्रकार से जर्मन देश के बिद्वान् मि. टेलर ने भी कहा है कि—''स्त्री को अपने पित के तावे में रहना, उस की सेवा करना, उस को राज़ी रखना, मान देना और जिस काम से उस का मन प्रसन्न हो वही काम करना चाहिये"।

-- जो चंद्वर स्त्री ऐसा वर्ताव करेगी उस को उस का पित आप ही मान सत्कार देगा, जो स्त्री समझदार होगी वह तो अपने पित को नेक सलाह और मदद देने का काम आप ही करेगी।

स्त्री को चाहिये कि-उस का पित जो उस को अन्न वस्त्र और आमृषण आदि पदार्थ देवे उन्हीं पर सन्तोष रक्से, पित के सिवाय दूसरा पुरुष चाहे जैसा पृथ्वीपित (राजा) भी क्यों न हो तथा रूपवान, बुद्धिमान, युवा और वलवान भी क्यों न हो तथा चाहे सब पृथ्वी का घन भी क्यों न मिलता हो तथापि उस को काकविष्ठा (कीए की विष्ठा) के समान बुच्छ गिने और उस के सामने दृष्टि भी न करे, क्योंकि धर्मशास्त्रों का कथन है कि "पर पुरुष का सेवन करने से स्त्री को घोर नरक की प्राप्ति होती है" देखो ! इस

१ यह छन्द गुजराती भाषा का है ॥

संसार में सब ही दृश्य (दीसने वाले) धन आदि पदार्थ नाशवान् हैं, इस लिये वे सन तुच्छ समझे जाते हैं, केवल एक धर्म ही अचल तथा सुल देनेवाल है, यही बात नीतिशास्त्र में भी कही है कि-चला लक्ष्मीः चलाः प्राणाः चले जीवितमन्तिरे ॥ चला-चले च संसारे, धर्म एको हि निध्यलः ॥ १ ॥ अर्थात् लक्ष्मी चलायमान् है, पाण चलाय-मान हैं तथा जीवन और मन्दिर (घर) भी चलायमान हैं किन्तु इस चलाचल संसार में एक घर्म ही अचल पदार्थ है ॥ १ ॥ इस लिये धर्म ही महान् है, इस महान् धर्म का पालन करना ही पतित्रता स्त्री का मुख्य कार्य है, क्योंकि मरने के समय जगत के नाना प्रकार के धन और आमूषणादि पदार्थ यहां ही पड़े रह जाते है इन पदार्थों में से कोई भी साथ नहीं चलता है किन्तु मनुष्य का किया हुआ एक धर्म और अधर्म ही उस के साथ चलता है, इन दोनों में से अधर्म तो मनुष्य को नरक में डाल कर नाना प्रकार के दु:खों का देनेवाला है और वर्म स्वर्ग तथा मोक्ष में ले जा कर परमोत्तम अक्षय और अनन्त सुलों का देने वाला है, देखिये-वर्मशालों में लिला भी है कि-"एक एव सुद्धद्वर्मी, निघनेऽप्यनुयाति यः ॥ ऋरीरेण समं नाज्ञं, सर्वमन्यतु गच्छति" ॥ १ ॥ अर्थात मनुष्य का एक धर्म ही सचा मित्र है जो कि मरने पर मी उस के पीछे २ जाता है. वाकी तो संसार के सब (द्रव्य और आभूषण आदि) पदार्थ शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं अर्थात एक भी शरीर के साथ नहीं चलता है ॥ १ ॥ इस लिये हे प्यारी बहिनो ! अधर्म का त्याग कर धर्म का ही अहण करो कि जिस से इस सब में तन्हारी कीर्ति फैले और पर भव में भी तुम को सुख प्राप्त हो और तुम्हारे करने योग्य वर्म केवल यही है कि-द्रम अपने पति को अपने सद्गुणों से प्रसन्न रक्खो ।

वर्तमान काल में बहुत सी क्षियां इस बात को बिल्कुल नहीं जानती हैं कि पति के साथ हमारा क्या धर्म और कर्तन्य है और यह बात उन के न्यवहार से ही माल्स होती है, क्योंकि बहुत सी क्षियां जपने पति से मनमाना बचन बोलती है, पति को धमकाती हैं, मर्यादा छोड़ कर पति को गाली देती हैं, पति का सामना करती हैं, पति का अपमान करती हैं, जब पति बाहर से परिश्रम करके थका और हारा हुआ घर आता है तब मनो-रज़न करके विश्रांति (आराम) देने के बदले साधुं दुसरा (श्वग्रुर) आदि कुदुम्ब की तथा पड़ोसी आदि की बार्व करके उस के मन को और भी दुःखी करती हैं, समय पर मोजन तैयार कर जिमाने के बदले आप वैठी रह कर पति से घर का काम काज कराती हैं, पति के पास कुछ न होने पर भी दूसरों के अच्छे वस्त (धायरा, ओड़ना, कांचली आदि) तथा गहने (आम्पण) देलकर पति को क्रेश देकर तथा आप स्ली रह कर भूषण आदि करवाती हैं, जिस से निर्धन पति को ऋण के गड़े में गिर कर अनेक कप्र सहने पड़ते हैं, पति को किसी काम में सहायता नहीं देती हैं, घर के सव न्यवहारों का

बोझ अकेले घर के स्वामी पर ही ढाल देती हैं, पित के मुख दुःख के समय को नहीं जानती हैं, पित को नाम का ही समझ के अपना पातिन्नत घर्म नहीं पालती हैं, पित के द्वारा जब लोग की पूरी नृष्ठि नहीं होती तब वे कुमार्या पापिनी स्त्रियां लोग की तृष्ठि होने की आज्ञा से अनेक कुकर्म करती हैं, परन्तु जब इच्छा के अनुसार मुख मिल-ने के बदले आक्स और प्रतिष्ठा जाती है तथा लोगों में निन्दा होती है तब पश्चात्ताप (पछतावा) कर के अपने सम्पूर्ण जन्म को दुःख में निताती हैं।

बहुत सी खियां ऐसी भी देखी जाती हैं कि—जो ऊपर से पतित्रता का धर्म दिखाती हैं और मन में कपट रख के ग्रुप्त रीति से कुकर्म करती हैं परन्तु यह निश्चय है कि ऐसी खियों का वह शृंद्धा धर्म कभी छिपा नहीं रहता है, किसी बुद्धिमान ने कहा भी है कि "चार दिनकी चोरी और छः दिन का छिनाछा हुआ करता है" तात्पर्य यह है कि—कितना ही छिपा कर कोई चोरी और छिनाछा करे किन्तु वह चार दिन छिप कर आखिर को मकट हो ही जाता है, ऐसी खी का कपट जब मकट हो जाता है तब उस खी पर से पित का विश्वास अवश्य उठ जाता है और प्रीति दूर हो जाती है, मेरी सन्मित में ऐसी खियों को खी नहीं किन्तु राक्षसी कहना चाहिये, ऐसी अधर्मिणी खियों को विकार है और विकार है उन के माता पिताओं को कि जिन्हों ने कुछ को दाग छगानेवाछी ऐसी कुपात्र (अयोग्य) पुत्री को जन्म दिया।

इस िक्ये सुपात्र पुत्री का यही वर्म है कि माता पिता ने पंचों की साक्षी से उस का हाय जिसे पकड़ा दिया है उसी को परम बहुम (अत्यन्त प्रिय) समझे तथा उस की तरफ से जो कुछ साना पीना और बस्नाठंकार आदि मिळे उसी पर सन्तोष रक्से, क्योंकि इसी में उस की प्रतिष्ठा, शोमा और सुख है।

जो स्त्री कुदरती नियम का भय रख कर अपने पित की इच्छानुसार मन वचन और शरीर को वश में रख कर अपने पातिव्रत धर्म को समझ कर उसी के अनुसार चडती है उस को धन्य है और उस के माता पिता को भी धन्य है कि जिन्हों ने ऐसा पुत्रीरल उत्पन्न किया।

देलो ! जो कुळवती स्त्री होती है वह कभी अपनी इच्छा के अनुसार स्वतन्त्र वर्तीव नहीं करती है, बैसा कि कहा भी है कि:—

बालपने पितु मातु वदा, तरुणी पति आधार ॥ बृद्धपने स्रुत वंश रहे, नहिँ स्वतन्त्र कुलनार ॥ १ ॥

अर्थात् स्नी नाठक हो तव अपने मा नाप की आज्ञा में रह कर उन की शिक्षा के अनु-सार नतीन करे, युनानस्था में पति को ही अपना आधार मान कर उस की आज्ञा के अनु- सार वर्चे तथा वृद्धावस्था में जो पुत्र हो उस का पाठन पोषण करे और सुपुत्र का कथन माने, इस प्रकार कुछीन खी को खतन्त्र होकर कमी नहीं रहना चाहिये ॥ १ ॥

स्त्री का यह भी सुख्य कर्तव्य है कि-जैसे पुरुष अपने पिता के नाम से प्रसिद्ध होकर अपने सद्गुणों से पिता की कीर्ति को बढ़ाता है उसी प्रकार स्त्री भी अपने पित के नाम से प्रसिद्ध होकर अपने सद्गुणों के द्वारा अपने पति की कीर्ति को बढावे, किन्त्र जिन कार्मों से लोक में निन्दा हो ऐसे काम कदापि न करे तथा पति के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शंका न करे, यदि कोई दृष्ट मनुष्य पति पत्नी में हढ प्रेम देखकर उस को तोडने के लिये उपाय करे अर्थात इस प्रकार की बातें कहे कि-"तुम्हारा पति अनुचित मार्ग पर चलता है, चुम्हारे ऊपर वह पूर्ण प्रेम नहीं रखता है किन्तु दूसरी स्त्री पर सेह रखता है" इत्यादि, तो अपने कान कचे न करके उस की ऐसी वार्ते छुनी अनछुनी कर जाना चाहिये (उस की वातों पर ध्यान नहीं देना चाहिये) किन्तु उस के कथन की जांच करनी चाहिये अर्थात विचारना चाहिये कि-यह मनुष्य ऐसी बातें किस लिये करता है, किन्त उस पुरुष से तो विना विचार किये ही (एकदम) यह कहना चाहिये कि इमारा पति ऐसा काम कभी नहीं कर संकता है, किन्तु उस के मड़काने से मड़कना नहीं चाहिये क्योंकि बदि किसी का कहना सुन कर विना जांच किये ही मन में शंका कर लेगी तो पति के साथ अवस्य खेह टूट जायगा और खेह के टूट जाने से गृहस्थाश्रम निगड़ कर यह संसार दु:सरूप हो जायगा. इस लिये समझदार स्त्री को किसी के भी कहने पर निश्वास नहीं करना चाहिये किन्त्र केवल एक पति पर ही पूर्ण विश्वास रखना चाहिये, यदि फदाचित् फर्मसंयोग से पति बुरा भी मिल जाय तथापि उस पर ही सन्तोप रखना चाहिये, क्योंकि देखो ! जिस कुंछ में मती मार्या से और मार्या मती से सदा सन्तुष्ट रहते हैं उस कुछ में सदा कल्याण का वास होता है।

कपर कही हुई शिक्षा के अनुसार जो स्त्री चलेगी वही साध्वी' और सती का पद प्राप्त कर दोनों लोकों में उत्तम सुस्त का मोग करेगी ॥

न्पति का स्त्री के साथ कर्तव्य ॥

गृहस्थाश्रम में स्त्री देवी और घर की रूक्ष्मीरूप कहरूती है, क्योंकि—सर्व बुद्धिमानों का यह मत है कि—घर जो है वह वास्तव में घर नहीं है किन्तु गृहिणी अर्थात् घर की जो स्त्री है वहीं घर है, देखिये नीतिशास्त्र में लिखा भी है कि—"न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी

^{9—}जैसा कि धर्मबालों में लिखा है कि-सन्तुष्टो सार्यया सतो, सर्जा सार्धा तथैव च ॥ -यस्मिनेव छुळे तित्यं, कल्याणं तर्ज वै धुनंम् ॥ ९ ॥ इस का कार्य कपर लिखे अनुसार ही है ॥ २-क्योंकि धर्मशालों में सती की को दोनों खोको के उत्तम सुख की श्राप्ति कही गई है ॥

गृहसुच्यते ॥ तया विरहितं यतु यथारण्यं तथा गृहम्" ॥ १ ॥ अर्थात् घर वास्तव में घर नहीं है किन्तु गृहिणी ही घर है, क्योंकि गृहिणी से रहित जो घर है वह जंगल के समान है ॥ १ ॥

धर्मशास में यह भी कहा गया है कि—विस कुछ में स्नियां दुःसी होती हैं उस कुछ का शीघ्र ही नाश हो जाता है तथा उस घर की समृद्धि चछी जाती है, इस छिये पुरुष का यह धर्म है कि—समृद्धि, सुस, वंश और कल्याण की वृद्धि करनेवाछी जो अपनी स्त्री है उस को अपनी शक्ति के अनुसार अब वस्त्र और आमृषण आदि से दुःस्तित न रख कर उस का सब प्रकार से सन्तोष कर सत्कार करे, उस का संरक्षण करे, उस पर पूर्ण खेह रक्ले, उस का हित करे तथा उस का अनादर (तिरस्कार) कदापि न करे।

पहिले कह चुके हैं कि-स्नी घर की कार्यवाहिका अर्थात मन्त्री है वही घर की लक्ष्मी तथा संसारसागर से पार होने में साथी कहलाती है, इसीलिये शासकारों ने स्त्री की अर्थागिनी कहा है; इसिकिये पुरुष को चाहिये कि-जिस प्रकार अपने शरीर को शोभित करने की और झुखी रखने की चेष्टा करता है उसी प्रकार स्त्री के लिये भी चेष्टा करे. क्योंकि देखो ! यदि आधा शरीर अच्छा नहीं होता है तो सब व्यवहार अटक जाया करते है, इसी मकार यदि स्त्री अयोग्य और दुःखी होगी तो पुरुष कभी सुस्ती नहीं रह सकता है, इस छिये पुरुष को उचित है कि-बी को तन मन और कर्म से अपने प्राणों के समान समझे. क्योंकि शासकारों का कथन है कि 'इस संसार में पुरुष का सचा मित्र स्नी ही है, और विचार कर देखा जाय तो यह बात बिलकुल सत्य है, क्योंकि-द:ख को हर करना ही मित्र का परम धर्म है और इस बात को खी बराबर करती ही है. देखी! जिस समय पुरुष पर अनेक प्रकार की आपत्ति आ पहती है और पुरुष को यह भी नहीं सझता है कि इस समय मुझे क्या करना चाहिये. उस समय सी ही पति को वैर्थ (वीरज) हिन्मत और दिलासा देती है और उस को विपत्ति से पार होने का उपाय और मार्ग बतलाती है, इतना ही नहीं किन्तु स्त्री सुख दुःख दोनों में ही पति को जानन्द देनेवाली है, इस छिये सब प्रकार आनंद देनेवाछी अपनी अर्घीगिनी की सदा सख देकर उसे आनन्द में रक्खे यही पुरुष का परम वर्म है।

यदि स्त्री से जान बूझ कर अथवा विना जाने कोई काम विगढ़ जाय तो उस पर क्षमा रक्ले और फिर वैसा न होने पावे इस बात की शिक्षा कर दे, क्योंकि जैसा प्रीति से काम अच्छा बनता है वैसा भय से कदािंग नहीं बनता है, इस लिये जहां तक हो सके केवल कपरी भय दिखाकर मीतरी प्रीति का ही वर्चाव रक्ले, यद्यपि संसार में यह कहावत प्रसिद्ध है कि—"मय विन बाढ़ै न प्रीति" अर्थात् मय के विना प्रीति नहीं होती है, और

यह बात किसी अंश में सत्य भी है, परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि केवल भय भयका-रूप होकर हानिकर्ता हो जाता है, इसी प्रकार से बहुत से अज्ञ जन कहा करते हैं कि "ढोल गैंवार शूद्र अरु नारी । ये चारहुँ ताड़न के अधिकारी" अर्थात् ढोल (बार्बा-विशेष), गँवार (मूर्ल), शूद्ध (नीच जाति का) और स्त्री, ये चारों ताडने के ही ' अधिकारी है, अर्थात ताडना देने से ही ठीक रहते है, सो यह उन छोगों का अत्यन्त अम है. क्योंकि प्रथम तो यह वाक्य किसी आप्त पुरुष का कहा हुआ नहीं है इस िंग माननीय नहीं हो सकता है, दूसरे तमाम धर्मशाखों और नीतिशाखों की भी ऐसी सम्मति नहीं है कि--खियों को सदा मार कुट कर दवाये रखना चाहिये, किन्तु शाखों की इस से विपरीत सम्मति तो सर्वत्र देखी जाती है कि-खियों का अच्छे प्रकार से आदर सत्कार करके उन को अपने अनुकूल बनाना चाहिये. अत एव किन्हीं शास्त्रकारों ने यहां तक कथन किया है कि-"जो लोग ऐसा विचार करते है कि-स्रियां सदैव हर के कूटने पीसने आदि कार्य में छगी रहें और पुरुष उन को ताडना कर दबाये रहें कि बिस से वे उद्धत न हो जावें और उन का चित्त चलायमान न होने पावे, सो यह/उन लोगों की परम मुर्खता है क्योंकि उक्त साधन क्षियों को वश में रखने के लिये ऐसे असमर्थ हैं जैसे कि-मदोन्मच हाथी को रोकने के लिये माला का वन्यन" न केवल इतना ही किन्त कई दूरदर्शी सुज्ञ विद्वानों का यह भी कथन है कि "ईप्येंब क्रियं परपुरुषासक्तां करोति" अर्थात पुरुष का स्त्री के साथ जो ईर्प्या (द्रोह) रखना है वह (ईर्प्या) ही स्त्री को कमी २ परपुरुवासक्ता (दूसरे पुरुव पर आसक्त) कर देती है, और यह बात युक्ति तथा प्रत्यक्ष प्रमाण से मानी भी जा सकती है और इस के उदाहरण भी प्रायः देखे व धने गैरे है. क्योंकि स्नीजाति प्रायः मूर्ख तो होती ही है उस को अपने कर्तव्य का ज्ञान भी शिक्षा के न होने से नही होता है, ऐसी दशा में पित की ओरसे ताड़ना के होने से वह अपने पर परम आपत्ति आई हुई जान कर निराश्रय होकर यदि कुछ अनुचित कार्य कर लेवे तो इस में आश्चर्य ही क्या है ?

फिर देखिये कि—इस संसार में किसी को जीतने के या वश में करने के केवल दो उपाय ही होते है, एक तो वल के द्वारा, और दूसरा दया वा प्रेम के द्वारा,—इन दोनों में से वल के द्वारा वश में करना नीतिशाका आदि के विलक्षल विरुद्ध है और समझदार पुरुष वल के द्वारा वश में करने को वश में करना नहीं मानते है, क्योंकि उन की सन्मति यह है

१-जैसा कि लिखा है कि-कर्माण्यस्क्रमाराणि, रक्षणार्थेऽवदन्मनुः ॥ तासा सज इवोहाम, गजाला-नोपसहिता ॥ १ ॥ अर्थात् स्त्रियों की रक्षा के लिये मनु ने जो कठोर कर्म (पीसना कूटना आदि) कहे हैं ने उन के लिये ऐसे हैं, जैसे कि-उन्मत्त हाथी को बावने के लिये फूलों की मालायें ॥ १ ॥

२-पाठकगणों ने भी इस के अनेक उदाहरण देखे वा छने ही होंगे ॥

कि—बल के द्वारा वश में करना ऐसा है जैसा कि—बहते हुए पानी की धारा में वांध वांधना, यह बोड़े काल तक ही पानी के बहान को रोक सकता है परन्तु जब वह (वांघ) दूदता है तब पानी की धारा पहिले की अपेक्षा और भी अधिक वेग से वहने लगती है, परन्तु दया वा प्रेम के द्वारा जो वश में करना है वही वास्तव में वश में करना कहाता है, क्योंकि दया वा प्रेम से वश में करना ऐसा है जैसा कि स्रोत (सोत) को जहां से पानी आता है वन्द कर देना, फिर देखिये कि—बल से वश में करना सिंह को जंजी- रों से बांधने के तुल्य है, किन्तु दया वा प्रेम के द्वारा वश में होने पर सिंह भी हानि नहीं पहुंचाता है, उस की प्रकृति बदल जाती है और वह (सिह) मेड़ के बच्चे के समान सीघा हो जाता है।

इन सब बातों को बिचार कर छुद्ध पुरुष को उचित है कि गृहस्थाश्रम के कर्तव्य का उपदेश करनेवाले शासों के कथन के अनुसार सब व्यवहार करे और शासों का कथन यही है कि—जिस स्नी के साथ विवाह हो उसी पर सन्तोष रक्ते और उस को अपने पाणों के समान प्यारी समझे, यदि स्नी में ज्ञान अथवा बुद्धि न्यून भी हो तो उस को विधा, धर्म, नीति, पाकशास्त्र तथा व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा देकर श्रेष्ठ बनावे, क्योंकि स्नी की की शिक्षा देना तथा उस को श्रेष्ठ बनाना पित ही का कार्य है, देखो ! शासों में तथा इति-हासों में जिन २ उत्तम सती स्नियों की प्रशंसा सुनते हो वह सब उन के माता पिता और पित की शिक्षा का ही प्रताप है।

इतिहासों के द्वारा यह मी सिद्ध है कि-जिस कुटुम्ब में तथा जिस देश में क्षियों की स्थिति ठीक होती है वह कुटुम्ब और वह देश सब प्रकार से श्रेष्ठ और प्रल सम्पत्ति-वाला होता है और जहां क्षियों की स्थिति लराब होती है वह कुटुम्ब तथा वह देश सदा निक्कष्ट दशा में ही रहता है, देखों! साईवीरिया, कामरकाटका, लाख़ंड, श्रीनलांड, क्षमीना और आस्ट्रेलिया आदि देशों की ख़ियों की स्थिति वहुत हलकी है अर्थात् उक्त देशों में अनेक प्रकार के दुःल ख़ियों को दिये जाते है, ख़ियों को गुलाम के समान गिन-कर उन से सब तरह के कठिन काम कराये जाते है, गर्मवती जैसी कठिन स्थिति में उत्तम प्रकार से सम्माल रखने के बदले उन्हें अपवित्र समझ कर घर तथा झोंपड़ी से वाहर निकाल देते है जिस से वे वेचारी उसी कठिन दशा में शीत उष्ण आदि अनेक प्रकार के दुःलों का सहन करती हैं तथा उन को पशु के समान गिनते है, इस लिये उन देशों की स्थिति प्रायः शोचनीय है, क्योंकि देलो वर्तमान के सुधरे हुए भी समय में वहां के निवासी पशुक्त स्थिति में पड़े हुए अपना समय व्यतीत कर रहे है, इस के विरुद्ध इंग्लेंड, जर्मनी लीर फांस आदि देशों में क्षियों की स्थिति बहुत ही उत्तम है अतः उन देशों की स्थिति बहुत ही उत्तम है अतः उन देशों की स्थित

भी श्रेष्ठ तथा ऊंचे दर्जे पर है, क्योंकि वहां की क्षियों को सब प्रकार का आदर सरकार और मान मिळता है, वहां क्षियों का दर्जा वहुत ही उत्तम गिना जाता है तथा वहां के क्षियों को इस देश की क्षियों के समान अन्यकार रूप गुप्त पड़ते में नहीं रहना पड़ता है इस प्रकार वहां का वर्ताव होने से वे देश सब प्रकार की सम्पत्ति से भरपूर और मुखी हैं। इस लिये यह सिद्ध है कि—क्षियों की स्थिति अच्छी रखने से सब का कल्याण होता है, किसी विद्वान ने कहा भी है कि—"वह पुरुष पशु है जो कि यह समझता है कि मैं की अपनी इन्द्रियसेवा के लिये लाया हूं, किन्तु मनुष्य वह है जो कि यह समझता है कि मैं अपने मुख और दुःल में सहारे के वास्ते की का लाया हूं?"।

विचार कर देखने से माळम होता है कि—स्त्री अन में छवण के समान है अर्थात् कैं अन में छवण न डाछने से वह खाद न देकर फीका छगता है, इसी प्रकार से गृहस्था-श्रम में स्त्री के विना कुछ भी खाद (आनन्द) नहीं है।

पाचीन काल में इस देश के सब आर्थ जन ऊंचे कुल, ऊंचे खमान, ऊंची वृत्ति और ऊंचे विचारों में निमग्न थे, जिन की श्रेष्ठता की वरावरी तो वर्तमान में सुधरे हुए जमाने में भी यूरुप आदि देश नहीं कर सकते हैं।

उस प्राचीन काल में इस देश में यहां की आर्थ महिलाओं को किसी प्रकार का भी बन्धन नहीं था अर्थात् ने अपने पित के साथ समा आदि सन खानों में जा सकती थीं, देशाटन में अपने पित के साथ रह सकती थीं, तात्पर्थ यह है कि वर्तमान समय के अनुसार पढ़ेदे में पढ़ी रहने की रीति उस समय नहीं थी, यह कुत्सित रीति तो मुसलमानों का यहां अधिकार होने के पीछे से शुरू हुई है, प्राचीन काल में खियों का मान रक्ला जाता था, उन का गृह में मन्त्री का पद ठीक रीति से गिना जाता था, उस समय में विवाह की भी मितज्ञा तथा प्रण नहीं तोड़ा जा सकता था, क्योंकि विवाह की प्रतिज्ञा और उस का प्रण दूसरी वस्तुओं के कबाड़े के समान कवाड़ा नहीं है, यह तो प्राचीन पिवत्र समय का वर्णन किया—अब वर्तमान समय का भी कुछ रहस्य शुनिये-वर्तमान में देखा जाता है कि बहुत से निवेकहीन पुरुष अपनी खी के साथ कुछ बोल चाल (कलह आदि) हो जाने पर उस को जुच्छ करने के लिये दूसरी खी के साथ सम्बन्ध वांधते हैं, परन्तु ऐसा करना उन के लिये बहुत ही लजा की वात है, क्यों कि—यह काम तो केवल पशु के काम के

^{9—}क्योंकि मुसलमान लोग अपने अधिकार के समय में यह अत्याचार करने लगे थे कि जिस की बहु घेटी वा की को रूपवती देखते से उस को एकड़ के बाकर उस के साथ अनुचित वर्ताव करते थे, परन्तु अब यह अन्यकार का समय नहीं है, अब तो श्रीमती ब्रिटिश गवर्नमेंट न्यायपरायणा का धर्मराज्य है जिस में सिंह और वकरी एक घाट पर पानी पीते हैं अतः ऐसे समय में अब तो क्षियों को पढ़देहए अन्यकार से बाहर निकालना चाहिये।

समान है कि—अनेकों के साथ व्यवहार बांघ कर पीछे छोड़ देना, किन्तु यह कार्य मनुष्य-जाति के करने योग्य नहीं है, यदि मनुष्य भी पशु के समान ही वर्षाव करे तो मनुष्य और पशु में भेद ही क्या रहा है इसिक्ये धुन्न पुरुषों को केवल अपनी धर्मपत्नी के साथ ही सब व्यवहार रखना चाहिये और उसी को सब प्रकार का धुल देना चाहिये क्योंकि ऐसा ही व्यवहार उत्तम है और यही व्यवहार उन को प्राचीन धुलदायिनी खिति में लानेवाला है ॥

_ मतिवता स्त्री के लक्षण ॥

· पितवता साध्वी और सती भी वही है जो कि सदा अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर अपने पति पर निर्मेल प्रीति रखती है तथा उस की इच्छा के अनुसार चलकर उस की .आजा का पाछन करती है अर्थात् तन मन और कर्म से अपने पति की सेवा के सिवाय दसरी कुछ भी इच्छा नहीं रखती है, घर वाहर सब खच्छ रमणीक रखती है, अपने पति ही को अपने सख द:ख का साथी समझ कर उस की आजा के विना घरहार कभी नहीं छोडती, विना काम कमी वाहर नहीं जाती, सास्र को अपनी माता के समान और इवशुर को अपने पिता के समान जान कर दोनों की तन मन और कर्म से सवा सेवा करती है, ननंद को अपनी बहन के समान समझती है, पति के सोने के पीछे आप सोती है और उस के उठने के पहिले आप उठकर खच्छता से घर का सब कार्य करती है, पति को नियमपूर्वक प्रथम भोजन कराके फिर आप खाती है, वर के काम से बचे हुए समय में ज्ञान के प्रहण करने में मन लगाती है, पति का वियोग उस को कमी सहन नहीं होता है अर्थात निस प्रकार पानी के विना मीन (मळळी) नहीं रह सकती है उसी प्रकार पति के नियोग में वह नहीं रह सकती है, पति के प्रिय जनों को सन्मान देती है, सास ननँद तथा ससी के साथ के विना अकेळी कही भी नहीं जाती है, नीची दृष्टि रख-कर घर में काम कान करती है, दूसरे पुरुष के साथ व्यर्थ बात चीत नहीं करती है. छजा रसकर किसी के साथ कोघ से अथवा सहज स्वमाव से भी ऊंचे खर से वहीं बोळती है. पति का श्रम हरण करंती है, पति से छिपा कर कुछ मी नहीं करती है, सच्छास और सद्गुरु का उपदेश श्रवण कर उसी के अनुसार वर्ताव करती है, पति को धर्मसम्बंधी तथा व्यवहारसम्बंधी कार्यों में उत्साह और हिम्मत देकर तन मन और कर्म से उस की सहायता करती है, सन्तान का प्रेम से पालन पोषण कर उस को घीर, बीर, वार्मिक, सर्व-गुणसम्पन्न और विद्वान् बनाने का सदा प्रयत्न करती है, अशुभ आंचरण में उस को पष्टच नहीं होने देती है, पति बो कुछ काकर देता है उस को घर में सन्माल कर रखती

१-अर्थात् हाय पैर सादि को दाव कर वा असल कर पति की शकावट को दूर करती है ॥

है, यदि कोई दुष्ट पुरुष कामना की इच्छा से उस के सामने देखे, अथवा प्रिय वचन से रिझावे, अथवा बहुत से मनुष्यों की मीड़ में बहुत आवश्यक (ज़रूरी) काम पड़ जाने से जाना पढ़े और उस समय किसी पुरुष का स्पर्श हो जाय तथापि मन में नरा भी विकार नहीं छाती है, पर पुरुष के सामने दृष्टि स्थिर करके एक दृष्टि से नहीं देखती है, किन्तु यदि पर पुरुष के सामने देखने की आवश्यकता होती है तो उस को भाई और नाप के समान समझ के देखती है, देवदर्शन आदि के बहाने पुरुषों की मीड़ में घके न साकर धर में बैठकर ईश्वरमिक माव पूजा (सामायिक आदि) को प्रीति से करती है, बाद दैवइच्छा से पति रोगी स्रोटा तथा दुर्गुणी मी मिछता है तो मी उसी को अपने देव के तुल्य प्रिय जान कर सदा पसक रहती है, पति के सिवाय दूसरे किसी की मी गरन नहीं रखती है, यदि कोई द्रव्य आदि का लोग भी दिखलावे तो भी अपने मन को चला-थमान नहीं होने देती है, यदि कोई कामी पुरुष दृष्ट वांछा (इच्छा) से नम्रता के साथ अथवा वल कर के बारण करे, अथवा वस्त्र और आभूषण आदि का लोग देवे तो चाहे वह देव और गन्धर्व के समान रूपवान् युवा तथा द्रव्यवान् भी क्यों न हो तथापि काढ-च न करके उस को धिकार के दूर कर देती है, पति के सिवाय दूसरे की जरा भी नहीं भजती है, पर पुरुष के साथ अपने शरीर का संघट्ट हो जावे ऐसा नहीं वर्तती है, जिस से मर्थादा का भंग हो ऐसा एक वस्न पहर कर नहीं फिरती है किन्त जिस से पैरों की पींडी और पेट आदि शरीर के सब माग अच्छे प्रकार से ढके रहें ऐसा वक्ष पहरती हैं, वक्ष उतार कर अर्थात् नम् (नंगी) होकर कभी स्नान नहीं करती है, बीमी चलती है, अपने मुख को सदा हर्ष में रखती है, ऊंचे खर से हास्य नहीं करैती है, अन्य स्नी अथवा अन्य पुरुष की चेष्टा की नहीं देखती है, सीमाग्यदर्शक साधारण श्रंगार रखती है, उत्तम नस और अलंकार आदि से शरीर को शोभित करने के बदले सदुगुणों से शोमित करने की इच्छा सदा रखती है, देह को क्षणमंगुर (क्षण भर में नाश होने वाला) जान कर तथा परलोक के मुख का विचार कर मुकूत (उत्तम काम-दान पुण्य आदि) कर के सत्कीर्ति का सम्पादन करती है, सदा शीळ का रक्षण करती है, सत्य बोलती है, काम, कोघ, लोग, मोह, मद, मारसर्थ और तृष्णा आदि विकारों को शञ्ज के समान समझ कर उन का त्याग करती है, सन्तोष, समता, एकता और क्षमा आदि सदगुणों को मित्र के समान समझ कर उन का खेह से संग्रह करती है, पति के द्वारा जो कुछ मिछे उसी में निर-हतर सन्तोष रखती है, विद्या विनय और विवेक आदि सद्गुणों का सदा सम्पादन करती है, उदार, चतुर और परोपकारी बनने में प्रीति रखती है, धर्म, नीति, सद्व्यवहार और कला कौशल्य का सिक्षण स्वयं (खुद) प्राप्त कर अपने सम्बंधी आदि जनों को सिखाने में

१-वर्गोकि ऊचे स्वर से इंसना दुष्ट क्रियों का छक्षण है ॥

तथा श्रेष्ठ उपदेश देकर उन को सन्मार्ग में ठाने का यत्न करती है, किसी को दःख प्राप्त हो ऐसा कोई भी कार्य नहीं करती है, अपने कुटुम्व अथवा दूसरों के साथ विरोध ढाल कर क्केश नहीं करती है, हर्ष शोक और मुख दु:ख में समान रहती है, पति की आजा लेकर सौमाग्यवर्धक वृत नियम आदि धर्मकार्य करती है, अपने धर्म पर स्नेह रखती है, जेठ को श्रद्युर के समान, जिठानी को माता के समान, देवर को पुत्र के समान, देवरानी को पुत्री के समान तथा इन के पुत्रों और पुत्रियों को अपनी सन्तान के समान समझती है, सच्छाखों को सदा पढ़ती और सुनती है, किसी की निंदा नहीं करती है, नीच और कलंकित खियों की संगति कभी नहीं करती है किन्तु उन के पास खड़ी रहना व वैठना भी नहीं चाहती है, फिन्तु केवळ कुलीन और सुपात्र लियों की संगति करती है, सब दुर्गुणों से आप दूर रह कर तथा सद्गुणों को घारण कर दूसरी खियों को अपने समान बनाने की चेष्टा करती है, किसी से कटु बचन कमी नहीं कहती है, ज्यर्थ वकवाद न करके आवश्यकता के अनुसार अल्पमाषण करती है (थोडा वोलती है), पित का खयं अपमान नहीं करती तथा दूसरों के किये हुए भी उस के अपमान का सहन नहीं कर सकती है, वैद्य बृद्ध और सद्गुरु आदि के साथ भी आवश्यकता के अनुसार मयोदा से बोलती है, पीहर में अधिक समय तक नहीं रहती है, इस संसार में यह मनुष्य-जन्म सार्थक किस मकार हो सकता है इस बात का अहर्निश (दिन रात) विचार करती है, और विचार के द्वारा निश्चित किये हुए ही सत्य मार्ग पर चल कर सब वर्ताव करती है, विघ्नों को और अनेक संकटों को सह कर भी अपनी नेक टेक को नहीं छोडती है, इत्यादि ग्रुम रुक्षण सती अर्थात पतित्रता स्नी में होते है।

देखों ! उक्त रुक्षणों को घारण करनेवाली ब्राह्मी, युन्दरी, चन्दनवाला, राजेमती, द्रौपदी, कीशस्या, रुगावती, युरुसा, सीता, युमद्रा, शिवा, कुन्ती, शीलवती, द्रमयन्ती, पुप्पचूला और पद्मावती आदि अनेक सती खियां प्राचीन काल में हो चुकी है, जिन्हों ने अपने सत्य वर्त को अलंडित रखने के लिये अनेक प्रकार की आपित्यों का भी सामना कर उसे नहीं छोड़ा अर्थात् सब कष्टों का सहन करके भी अपने सत्यव्रत को अलंडित ही रक्ता, इसी लिये वे सती इस महत् पूज्य पद को प्राप्त हुई, क्योंकि सती इस दो अक्षरों की पूज्य पदवी को प्राप्त कर लेना कुछ सहज बात नहीं है किन्तु यह तो तलवार की घार पर चलने के समान अति कठिन काम है, परन्तु हां जिस के पूर्वकृत पुण्यों का सक्षय होता है उस को तो यह पद और उस से उत्पन्न होनेवाला ग्रुल खामाविक रीति से ही सहज में ही प्राप्त हो जाते है ।

इस अर्वाचीन काल में तो बहुत से मोले लोगों को यह भी ज्ञात (माल्स) नहीं है कि सती किस को कहते हैं और वह किस प्रकार से पहिचानी जाती है, इसी का फल यह हो रहा है कि-उत्तम और अधम स्त्री का विवेक न करके साधारण एक वा दो गुणों को धारण करनेवाली स्त्री को भी सती कहने लगते हैं, यह अत्यन्त निक्रष्ट (खराब) प्रणाली है, वे इस बात को नहीं समझते हैं कि इस पद को प्राप्त करने में सब गुणों का धारण करना रूप कितना परिश्रम उठाना पड़ता है और कितनी बड़ी २ तकलीफें सहनी पड़ती हैं, अनेक प्रकार के दु:ख सहने पड़ते हैं तब यह पद प्राप्त होकर जीवन की सफलता प्राप्त होती है और जीवन का सफल करना ही परम वर्म है, इसी तत्त्व को विचार कर प्राचीन काल की खियां तन मन और कर्म से उस में तत्त्वर रहती थीं किन्तु आज कल की खियों के समान केवल इन्द्रियों के तुप्त करने में ही वे अपने जीवन को व्यर्थ नहीं खोती थीं।

देखी ! जन्म मरण के बंधन से छूट जाना यही पुरुष तथा स्त्री का मुख्य कर्तव्य है, उस (कर्तव्य) को पूर्ण न करके इन्द्रियों के मुख में ही अपने जन्म को गँवा देना, यह बड़े अफसोस की बात है, इस लिये हे प्यारी बहनो ! तुम अपने स्नीधर्म को समझो, समझ कर उस का पालन करो और सतीत्व प्राप्त करके अपने जीवन को सार्थक (सफल) करो, यही तुम्हारा कर्तव्य तथा परम धर्म है और इसी से तुम्हें इस लोक तथा पर लोक का मुख प्राप्त होगा !!

" पतिर्वताः क्षिप्रताप्र १। ः

पतिनता स्त्री असक देश, असक ज्ञाति अथवा असक क़द्रम्ब में ही होती है, कोई नियम नहीं है, फिन्त यह (पतिवता स्त्री) तो प्रत्येक देश, प्रत्येक ज्ञाति और प्रत्येक कुदुन्व में भी उत्पन्न हो सकती है, पतिनता स्त्रियों के उत्पन्न होने से वह देश, वह ज्ञाति और वह कुटुम्न (चाहें वह छोटा तथा कैसी ही दुर्दशा में भी क्यों न हो तथापि) वन्य होकर उत्तमता को प्राप्त होता है, क्योंकि यह सृष्टि का नियम है कि पति-व्रता खियों से देश ज्ञाति और कुल शोमा को प्राप्त होकर इस संसार में सब सद्गुणों का आधाररूप हो जाता है, पतित्रता स्त्री से घर का सब व्यवहार प्रदीत होता है, उस की सन्तान धार्मिक, नीतिमान, शुद्ध अन्तःकरण वाली, शौर्ययुक्त, पराक्रमी, घीर, वीर, वेजसी. विद्वान तथा सद्गुणों से युक्त होती है, क्योंकि सद्गुणों से युक्त माता के उन सद् गुणों की छाप बालकों के कोमल अन्तःकरण में ऐसी दृढ़ हो जाती है कि वह जीवनपर्यन्त भी कभी नहीं जाती है, परिश्रम से थका हुआ पुरुष अपनी पतिन्नता स्त्री के सन्दर खमाव से ही आनन्द पाकर विश्रान्ति पाता है, यदि पुत्र और द्रव्य आदि अनेक प्रकार की समृद्धि भी हो परन्तु घर में सद्गुणों से युक्त और सुन्दर खमाववाली पतिनता स्त्री न हो तो वह सब समृद्धि व्यर्थरूप है, क्योंकि ऐसी दशा में पुरुष को संसार का छुल पूर्ण रीति से कदांपि नहीं प्राप्त हो सकता है-किन्तु उस पुरुष को अपना घन्य माग्य समझना चाहिये निस को सुन्दर गुणों से युक्त सुशीला स्नी प्राप्त होती है।

स्त्री का पातित्रत धर्म ही परम दैवत, रूप, तेज और खलैंकिक शक्ति होती है, इसी अलैंकिक शक्ति से उस को असण्ड और अनन्त सुख प्राप्त हो सकता है तथा इसी शक्ति के प्रभावसे सती स्त्री के सामने कुदृष्टि करने वाले पुरुष का सर्व नाश होजाता है।

इस सतीत्व धर्म से केवल सती स्त्री की ही महिमा होती हो यह बात नहीं है किन्तु सती स्त्रीके माता पिता भी पवित्र गिने जाकर घन्यवाद और महिमा के योग्य होते हैं, न केवल इतना ही किन्तु सती स्त्री दोनों कुलों को तार देती है, जैसे तारागणों में चन्द्रमा शोभा देता है इसी प्रकार से सब स्त्रियों में सती स्त्री शोमा देती है, सती स्त्री ही पित के कठोर हृदय को भी कोमल कर देती है तथा उस के तीहण कोघ और शोक को शान्त कर देती है।

पतित्रता की प्रेम सहित रीति, मचुरता, नम्रता, खेह और उस के धैर्य के वचनाय़त रोग समय में ओषिका काम निकालते हैं, पतित्रता की अपनी अच्छी समझ, तरपरता, दयालुता, उद्योग और सावधानता से आते हुए विम्नोंको रोक कर अपना कार्य सिद्ध करकेती है, पतित्रता की ही पति और कुटुम्बकी शोभा में विशेषता करती है, पतित्रता की के द्वारा ही उत्तम शिक्षा पाकर बालक इस संसार में मानवरता हो जाते हैं, इसी लिये पेसी साध्वी कियों को रलगर्भा कर्हते हैं, वांत्वं में ऐसी रलगर्भा कियां ही देश के उदय होने में साधनरूप है, देखो । ऐसी माताओं से ही सर्वज्ञ महाबीर, गौतम आदि ग्यारह गणधर, मद्रवाहु, जम्बू, हेमचन्द्र, जिन दत्त सूरि, युधिष्ठिर आदि पांच पाण्डव, रामचन्द्र, कृष्ण, श्रेणिक, अमयकुमार, मोज, विक्रम और श्वालिवाहन आदि महापुरुष तथा सीता, द्वीपदी और राजेमती आदि जगत्मसिद्ध साध्वी कियों उत्पन्न हुई हैं, अहो पतित्रता साध्वी कियों का मताप ही अलैकिक है, साध्वी कियों के प्रताप से क्या नहीं हो सकता है अर्थात् सब कुछ हो सकता है, जिन के सतीत्वं के प्रताप के आगे देवता भी उनके आधीन हो जाते है तो मनुज्यकी क्या गिनती है।

प्राचीन समय में इस देश में वल बुद्धि और मित आदि अनेक वातों में आर्थ मिह-लाओं ने अनेक समयों में पुरुषों के साथ समानता कर दिखाई है, जिस के अनेक उदा-हरण इतिहासों में दर्ज है और उन को इस समय में वहुत से लोग जानते हैं, परन्तु हत-माग्य है इस आर्थावर्च देश की आर्थ तरुणियों का जो कि इस समय सतीत का वह अपूर्व माहात्म्य और गौरव कम होगया है, इसका कारण केवल यही है कि—वैसी सती साध्वी खियां अब नहीं देखी जाती हैं और यह केवल इसी लिथे ऐसा है कि—वर्तमान में खियों को उत्तम शिक्षा, सत्संगति, सदुपदेश, धर्म और नीतिआदि सद् गुणों की शिक्षा नहीं दी जाती है, उनको सच्लाखों का ज्ञान नहीं मिलता है, उन को श्रेष्ठ साध्वी खियोंकी संगति

प्राप्त नहीं होती है, स्त्रीधर्म और नीति का उपदेश नहीं मिलता है तथा उन के कोमल हृदय में सती चरित्रों के महत्त्व की मोहर नहीं लगाई जाती है, जब ऐसा अन्धेर चल रहा है तो मठा साध्वी श्वियों के होने की आशा ही कैसे की जा सकती है तथा श्वियां अपने धर्म को समझ कर यथार्थ मार्ग पर कैसे चल सकती हैं । इस लिये हे गृहस्थो ! यदि तुम अपनी पुत्रियों को श्रेष्ठ और साध्वी बनाने की इच्छा रखते हो तो वाल्यावसा से ही प्राचीन पद्धति के अनुसार सत्य शिक्षा, मुसंगति, सद्द्यदेश और सतीचरित्रादि के महत्त्व से उनके अन्तःकरण को रंगित करो (रँग दो), पीछे देखो उस का क्या प्रभाव होता है, जब इस प्रकार से सद्व्यवहार किया जायगा तो शीघ ही तुम्हारी पुत्रियों के हृदयों में असती क्रियों के क़ित्सत आचरण पर ग्लानि उत्पन्न हो जायगी और ने इस प्रकार से दुराचारों से दूर मार्गेगी जैसे मयूर (मोर) की देखकर सर्प (सांप) दूर भाग जाता है और इस प्रकार का भाव उन के हृदय में उत्पन्न होते ही वे बालायें पवित्र पाति-व्रत धर्म का पालन करना सीलकर आपत्तियों का उल्लंघन कर अपने सत्य व्रत में अचल रहेंगी. तब ही वे छोम छालच में न फँस कर उस को तृण समान तुच्छ जान कर अपने हृदयसे दूर कर उसकी तरफ दृष्टि भी न ढालेंगी, इस लिये अपनी प्यारी पुत्रियों बहिनों और धर्मपत्नियों को पूर्वोक्त रीति से सुशिक्षित करो, जिस से वे मविष्यत् में सद् वर्ताव कर पतिव्रतारूप उत्क्रष्ट पद को प्राप्त कर अपने वर्म को यथार्थ रीतिसे पालने में तत्पर होनें कि जिस से इस पवित्र देशकी निवासिनी आर्य महिलाओं का सदा विजय हो कर इस देश का सर्वदा कल्याण हो ॥

॥ पति के परदेश होनेपर पतिवता के नियम-॥

जो स्त्री पतिपर पूर्ण प्रेम रखनेवाली तथा पितत्रता है उस के लिये यद्यपि पित के परदेश में जाने से वियोगजन्य दु:ख असझ है परन्तु कारण वश इस संसार में मनुष्यों को परदेश में जाना ही पड़ता है, इसलिये उस दशा में समझदार खियों को उचित है कि जब अपना पित किसी कारण से पर देश जावे तव यदि उसकी आज्ञा हो तो साथ जावे और उस की इच्छा के अनुसार विदेश में भी गृह के समान अहानिश वर्ताव करे, परन्तु यदि साथ जाने के लिये पित की आज्ञा न हो अथवा अन्य किसी कारण से उस के साथ जानेका अवसर न मिले तो अपने पित को किसी प्रकार जाने से नहीं रोकना चाहिये तथा जिस समय पित जाने को उधत (तैयार) हो उस समय अग्रुम सूचक वचन भी नहीं बोलने चाहियें और न रुदन करना चाहिये. किन्तु उस की आज्ञा के अनुसार अपनी साध क्वाउं आदि गुरु जनों के आधीन रह कर उन्हीं के पास रहना चाहिये, साध ननेंद आदि पिया सगी स्त्री के पास सोना चाहियें, जब तक पित वापिस न आवे तब तक आदि पिया सगी स्त्री के पास सोना चाहियें, जब तक पित वापिस न आवे तब तक

अपने न्नतः और नियमों को पाछते रहना चाहिये तथा पति के जुम का चिन्तवन करना चाहिये, पित की उपस्थिति में उस की मसजता के लिये जैसे पूर्व वस्र और अलंकार आदि का उपमोग करती थी उस मकार पित की अनुपस्थिति में उनका उपमोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि उत्तम वस्र और अलंकार आदि तो केवल पित के चित्त को रंजन करने के लिये ही पिहने जाते हैं जब पित तो पर देश में है तो फिर किस का रखन करने के लिये वस्र और अलंकार आदि का शृंगार करे ! अर्थात् उस दशा में शृंगार आदि नहीं करना चाहिये, क्योंकि पित के पर देश में होने पर मी शृंगार आदि करना साध्वी स्त्रियों का धर्म नहीं है, इस शिक्षा का हेतु यह है कि—यह स्वामाविक नियम है कि सांसारिक उपमोगों से इन्द्रियां तथा मन की दृति चलायमान होती है इस लिये इन्द्रियों को तथा मन की दृति को वश में रखने के लिये उक्त नियमों का पालन अति लाम दायक है, इसलिये पित के परदेश में होने पर सांसारिक वैभव (ऐश्वर्य) के पदार्थों से विरक्त रहना चाहिये, सादी पोशाक पहरना और सौमाग्यदर्शक निह्न अर्थात् हाथ में कंकण और कपालमें कुंकुम का टीका आदि ही रखना चाहिये।

पति को चाहिये कि-पर देश जाते समय अपनी स्त्री के मरण पोषण आदि सब बातों का ठीक प्रबंध करके जावे. परन्त यदि किसी कारण से पति सब बातों का प्रबंध न कर गया होतो खी को उचित है कि-पति के वापिस आने तक कोई निवेंाव (दोष-रहित) जीविका करके अपना निर्वाह करे, जिनपदार्थों को पति ने वर में रखने और संमा-छनेको सीपा हो उन को सम्माङकर रक्खे, आमदनी से अधिक खर्च न करे, छोगों की देखा देखी ऋण कर के कोई भी कार्य न करे. सास स्वश्रर तथा संगे खेही आदि के साथ का व्यवहार तथा सब संसार का कार्य उसी प्रकार करती रहे जैसा कि-पतिकी विद्यमानता में करती थी, पति की आयु की रक्षाके लिये कोई भी निन्दित कार्य न करे. स्नान करे वह भी शरीर में तेल लगा कर अथवा और कोई सुगन्धित पदार्थ लगा के न करे किन्तु केवल जल से ही करे, चन्दन और पुष्प आदि घारण न करे, नाटक, खेल जीर स्तांग आदि में न जाने और न स्तयं करे, ऊंचे स्वर से हास्य न करे, अन्य स्त्री अथवा पुरुष की चेष्टा को न देखे, जिस से इन्द्रियों में अथवा मनमें विकार उत्पन्न हो ऐसा माषण न करे और न ऐसे माषण का श्रवण करे, इधर उधर व्यर्थ में न सटके. सासु और ननंद आदि प्रिय जनों के साथ के विना पराये घर न जाने, केवल एक वस्त (घोती अर्थात् साड़ी) पहिन के न फिरे, अन्य पुरुष के साथ अपने शरीर का संघट्ट हो जाने ऐसा वर्ताव न करे, बजा को न छोड़े, मेला आदि में (जहां बहुत से मनुष्य इक्टे हो वहां) न जावे, देवदर्शन के बहाने इघर उघर अगण न करे किन्त घर में बैठके परमेश्नर का सरण और मक्ति करने में श्रीतिरक्से, अपने शीछ तथा सद्यवहार को विचार कर परमार्थ का कार्य सदा करती रहे, पितके कुशळ समाचार मंगाती रहे, इत्यादि सब व्यवहार पितके परदेश में जाने पर साघ्वी खियों को वर्तना चाहिये, यही पितनता खियों का धर्म है और इसी प्रकार से वर्चाव करने वाली स्त्री पित, साधु और स्वशुर आदि सब को प्रिय लगती है तथा लोक में भी उस की कीर्ति होती है।

वर्तमान समय में बहुत सी क्षियां यह नहीं जानती है कि—पति के विदेश में जाने पर उन को किस प्रकार से वर्चना चाहिये और इस के न जाननेसे वे अपने सत्य अत को मंग करने वाले खतन्त्रता के ज्यवहार को करने लगती है, यह वहे ही अफ़सोस की वात है, क्योंकि केवल शरीर के अल्प मुख के लिये अपना अकल्याण करना, कुदरती नियम को तोड़ कर पतिकी अप्रिय बनकर अपराधका भार अपने शिरपर रखना तथा लोगोंमें निंदापात्र बनना बहुत ही खराब है, देखो । मोती का पानी और मनुष्य का पानी नष्ट हो जाने पर फिर पीछे नहीं आसकता है, इस लिये समझदार कियों को उचित है कि—अपने जीवन के मुखके मुख्य पाये रूप प्रेम को पति के संयोग और वियोगों भी एक सरीखा और अखण्ड रक्खे, पतिके विदेश से वापिस आने तक पतित्रता के नियमों का पालन कर सदाचरण में वर्चाव करे, क्योंकि—इस प्रकार चलनेसे ही पतिपत्नी के अखण्ड प्रेम रह सकता है और अखंड प्रेम का रहना ही उन के लिये सर्वथा और सर्वदा मुखदायक है ॥

यह तृतीय अध्याय का-स्त्री पुरुषधर्म नामक प्रथम प्रकरण समाप्त हुआ ।।

दूसरा-प्रकरण क्लोक्शन ॥

अर्थात् स्त्रीका ऋतुमती होना ॥

रजो दर्शन-स्त्री का कन्या भाव से निकळ कर स्त्री-अवस्था (तरुणावस्था) में आने का चिह्न है, यह रजोदर्शन स्त्री के गर्भाश्यसे प्रतिमास नियमित समय पर होता है और यह एक प्रकार का रक्तसाव है, इसीलिये इसको रक्तसाव, ऋतुसाव, अधोवेशन, मासिकवर्म, पुज्यमाव और ऋतुसमय आदि मी कहते हैं॥

रजोद्दीनसे होनेवाला दारीर में फेरफार ॥

ऋतुस्नाव होने के समय स्नी का करीर गोल और मरा हुआ माल्स होता है, शरीर के मिल २ मागों में चरनी की वृद्धि हो जाती है, उस के मनकी शक्ति वढती है, शरीर के भाग स्थूल हो जाते हैं, स्तन मोटे तथा पृष्ट हो जाते हैं, कमर स्थूल हो जाती है, अस और चेहरा जासूस रंगका दिखलाई देने लगता है, आंखें विशेष चपल हो जाती हैं, व्यव-

हार आदि में छजा (शर्म) हो बाती है, सन्तित (पुत्र पुत्री) के उत्पन्न करने की योग्यता जान पड़ती है और खामाविक नियम के अनुसार जिस काम के करने के छिये वह मानी गई है उस कार्यका उसको ज्ञान होगया है. यह बात उस के चेहरे से माछ्स होती है, इत्यादि फेरफार ऋतुखाव के समय स्त्री के शरीरमें होता है ॥

्रजोदर्शन होनेका समय ॥-

रजोदर्शन के शीघ अथवा विलम्ब से आने का मुख्य आधार हवा और संगति है, देखो । इंग्लेंड, जर्मनी, फांस, रशिया, यूरुप और एशिया खण्ड के शीत देशोंकी वाळा-स्रोंके यह ऋत वर्म प्रायः १९ वें सथवा २० वें वर्षमें होता है. क्योंकि वहां की ठंढी हवा उन की मनोवृत्ति और वैषयिक विकार की वृत्तिको उसी ढंग पर रक्ले हुए हैं, परन्तु अपने इस गर्म देशमें गर्म सासियत के कारण तथा दूसरे भी कई कारणों से प्रायः १२ वा १४ वर्ष की ही अवस्था में देखा जाता है और ४५ वा ५० वर्ष की अव-स्या में इस का होना बन्द हो जाता है, यद्यपि यह दूसरी बात है कि- किन्हीं खियों को एक वा दो वर्ष आगे पीछे भी आने तथा एक वा दो वर्ष आगे पीछे वह वन्द होने परन्त इस का साधारण नियमित समय नहीं है जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं. इसके आगे पीछे होने के कुछ साधारण हेतु भी देखे वा अनुमान किये जा सकते हैं. जैसे देखो ! परि-श्रम करने वाली और उद्योगिनी क्रियों की अपेक्षा आलस्य में पड़ी रहने वाली, नाटक जादि तथा नवीन २ रसीछी कथाओं की वांचने वाछी, प्रेम की वार्ते करने वाछी, इक्क-वान श्वियों का संग करने वाली; विलम्ब से तथा विना नियम के असमय पर सोने का अम्यास रखने वाठी और मसालेदार तथा उत्तम सरस ख़ुराक खानेवाठी आदि कई एक स्नियों का गर्भाशय शीघ्र ही सतेज होकर उन के रजोदर्शन शीघ्र आया करता है, इसके विरुद्ध ग्रामीण, मेहनत मजूरी करने वाली और सादा (साधारण) ख़राक खाने वाली आदि साघारण वर्ग की क्रियों को पूर्व कही हुई क्रियोंकी अपेक्षा ऋतु विलम्बसे आता है यह भी सरण रखना चाहिये कि जिस कदर ऋतु धर्म निलम्बसे होगा उसी कदर सियों के शरीर का वन्येज विशेष दृढ रहेगा और उसको बुढापा भी विखम्बसे खावेगा केवल यही कारण है कि जामों की स्नियां शहरों की स्नियों की अपेक्षा विशेष मजबूत और कदा-बर (ऊंचे कद की) होती हैं ॥

रक्तस्रांव का साधारण समय ॥

खियों के यह रक्तखान साधारण रीतिसे प्रतिमास ३० वें दिन अथवा फिन्हीं के २८ वें दिन भी होता है, परन्तु किन्हीं खियों के नियमित रीतिसे तीन अप्राह (अठवाडे) अर्थात् २४ दिनमें भी होता है, यह रजो दर्शन प्रारम्भ दिनस से छेकर ३ से ५ दिनस तक देखा जाता है परन्तु कई समयों में कई क्षियों के एक वा दो दिनस न्यूनाधिक भी देखा जाता है ॥

्र नियमित् रजोद्वर्शनभा

खियों के जब प्रथम रजोदर्शनका प्रारंम होता है तब वह नियमित नहीं होता है अर्थात् कभी २ कई महीने चढ़ जाते हैं अर्थात् पीछे आता है, इस प्रकार कुछ कालतक अनियमित ही रहता है. पीछे नियमित हो जाता है, जिन खियों के अनियमित समय पर रजोदर्शन आता है उन खियों के गर्म रहने का सम्भव नहीं होता है, केवल यही कारण है कि— बंध्या खियों के यह रजोदर्शन प्रायः अनियमित समय पर होता है. जिन के अनियमित समय पर रजोदर्शन होता है. उन खियों को उचित है कि—अनियमित समय पर रजोदर्शन होने के कौरणोंसे अपने को प्रथक् रक्खें (बचाये रहें) क्योंकि गर्माधान के लिये रजो दर्शनका नियमित समय पर होना ही आवश्यक है, जिन खियों के नियमित समय पर बरावर रजोदर्शन होता है तथा नियमित रीति पर उसके चिह्न दील पढ़ते है. एवं उसकी अन्दर की खिति उसका दिखाव और वन्द होना आदि भी नियमित हुआ करते हैं. उन्हीं के गर्मिखित का संगव होता है, नवल (नवीन) वधू के रजोदर्शन के प्राप्त होने के पीछे तीन या चार वर्ष के अन्दर गर्म रहता है और किन्हीं खियों के कुछ विकम्ब से भी रहा करता है।

रजोदर्शन अनि के पहिले होनेवाले चिन्हः॥

जब स्नी के रजोदर्शन आनेवाला होता है तन पहिले से कमर में पीड़ा होती है, पेंडू मारी रहता है, किसी २ समय पेंडू फटने सा लगता है, शरीर में कोई मीतरी पीड़ा हो ऐसा माख्स होता है, शरीर वेचैन रहता है, युस्ती माख्स होती है, अरुप परिश्रम से ही थकावट आ जाती है, काम काज में मन नहीं लगता है, पड़ी रहने को मन चाहता है, शरीर मारी सा रहता है दस्त की कली रहती है, किसी २ के वमन और माथे में दर्द भी हो जाता है तथा जब रजोदर्शन का समय अति समीप आ जाता है तथ मन यहुत तीत्र हो जाता है, इन चिहों में से किसी को कोई चिह्न माख्स होता है तथा किसी को कोई चिह्न माख्स होता है तथा किसी को कोई चिह्न माख्स होता है. परन्तु ये सब चिह्न रजोदर्शन होने के पीछे किन्हों के धीमे पड़ जाते है तथा किन्हीं के विलक्षक मिट जाते है, कभी २ यह भी देखा जाता है कि कई कारणोंसे किन्हीं कियों को रजोदर्शन होने के पीछे एक वा दो दिनतक नियमके विरुद्ध दिन में कई वार शीच जाना पड़ता है।

९-अनियमित समय पर ऱ्जोद्र्यन आने के कारण आगे लिखेंगे ॥

योग्य अवस्था होने पर भी रजोदर्शन न आने से हानि ॥

स्नी के जिस अवस्था में रजोदर्शन होना चाहिये उस अवस्थामें प्रतिमास रजोदर्शन होने के पहिले जो चिह्न होते हैं वे सब चिह्न तो किन्हीं र क्रियों को माल्क्स पड़ते हैं परन्तु वे सब चिह्न दो या तीन दिन में अपने आप ही ज्ञान्त हो जाते हैं— इसी प्रकार से वे सब चिह्न प्रतिमास माल्क्स होकर ज्ञान्त हो जाया करते हैं. परन्तु रजोदर्शन नहीं होता है इस प्रकार से कुछ समय बीतने पर इस की हानियां झलक ने छगती हैं अर्थात् थोड़े समय के बाद माथे में दर्द होने छगता है, कोठे में विगाड़ माल्क्स पड़ता है, दस्त बराबर नहीं आता है और धीरे २ श्वरीरमें अन्य विकार भी होने छगते हैं, अन्त में इस का परिणाम यह होता है कि हिष्टीरिया (उन्माद) और क्षय आदि मयंकर रोग श्वरीर में अपना घर बना छेते है।

रजोद्र्शन न आने के कारण ॥

बहुत झुल में जीवन का काटना, तमाम दिन नैठे रहना, उत्तम सरस खादिष्ठ तथा अधिक मोजन का करना, खुली हवा में चलने फिरने का अम्यास न रंखना, बहुत नींद लेना, मन में भय और चिन्ता का रखना, कोष करना, तेज हवा में तथा भीगे हुए खान में रहना, करदी का लग जाना और किसी कारण से निर्वलता का उत्पन्न होना आदि कई कारणों से यह रोग उत्पन्न हो जाता है, इस लिये इस रोगवाली भी को चाहिये कि किसी बुद्धिमान् और चतुर वैद्य अथवा डाक्टर की सन्मति से इस भयंकर रोग को छी मही दूर करे।

्र-स्जोदर्शन के बन्द करने से हानि ॥

वहुत सी खियां विवाह आदि उत्सवों में शामिल होने की इच्छा से अथवा अन्य किन्हीं कारणों से कुछ ओपि लाकर अथवा ओपि छगा कर ऋतुसाव को बन्द कर देती हैं अथवा ऐसी दवा सा छेती है कि जिस से ऋतु धर्म विछकुल ही बंद हो जाता है, इस प्रकार रजोदर्शन के बन्द कर देने से गर्भस्थान में अथवा दूसरे ग्रुप्त मागोंमें शोथ (स्जन) हो जाता है, अथवा अन्य कोई दु:खदायक रोग उत्पन्न हो जाता है, इस प्रकार कुदरतके नियम को तोड़ने से इस का दण्ड जीवनपर्यन्त मोगना पड़ता है, इस लिये रजोदर्शन को बन्द करने की कोई ओपि आदि मूल कर के मी कभी नहीं करनी चाहिय, यह तो अपना समय पूर्ण होने पर कुदरती नियम से आप ही बन्द हो यही उत्तम है, क्योंकि-इसको रोक देने से यह मीतर ही रह कर शरीर में अनेक प्रकार की सरावियां पैदा कर बहुत हानि पहुँचाता है ॥

रजोदर्शन के समय स्त्री का कर्तव्य॥

स्त्री को जब ऋतु धर्म प्राप्त हो तब उसे अपनी इस प्रकार से सम्भाल करनी चाहिये कि-जिस प्रकार से ज़लगी अथवा दर्दवाले की संगाल की जाती है।

रजलला स्त्री को खुराक बहुत ही सादी और हलकी लानी चाहिये क्योंकि खुराक की फेरफार का प्रमाव ऋदु धर्म पर बहुत ही हुआ करता है, श्रीतल मोजन और वायु का सेवन रजलला स्त्री को नहीं करना चाहिये क्योंकि श्रीतल मोजन और वायु के सेवन से उदर की दृद्धि और अजीर्ण रोग हो जाता है जो कि सब रोगों का मूल है, एवं गर्म और मसालेदार खुराक भी नहीं लानी चाहिये क्योंकि इस से शरीर में दाह उत्पन्न हो जाता है, बहुत सी अज्ञान स्त्रियां ऋदु धर्म के समय अपनी अज्ञानता से उद्धत (उन्मच) होकर छाछ, दही, नीवू, इमली और कोकम आदि लट्टी बस्तुओं को तथा लांड़ आदि हानिकारक बस्तुओं को ला लेती हैं कि जिस से रजोदर्शन बन्द होकर उन को ज्वर चढ़ जाता है, मस्तक और पीठ के सब हाड़ों में दर्द होने लगता है तथा किसी र समय पेट में पेंठन (लेचतान) आदि होने लगती है, लांसी हो जाती है, इस प्रकार ऋदु धर्म के समय पूर्वक न चलनेसे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिये ऋदु-धर्म के समय खूव संमल कर आहार बिहार आदि का सेवन करना चाहिये, यदि कमी मूल चूक से ऐसा (मिथ्या आहार बिहार) हो भी जावे तो शिष्ठही उसका उपाय करना चाहिये और आगामी को उस का पूरा ल्याल रखना चाहिये।

रजोदर्शन के समय क्षियों को केवल रोटी, दाल, मात, पूड़ी, शाक और दूध आदि सादी और हलकी ख़ुराक खानी चाहिये जिस से अजीर्ण उत्पन्न हो ऐसी और इतनी (मात्रा से अधिक) ख़ुराक़ नहीं खानी चाहिये, अशक्ति (कमज़ोरी) न माछ्म पड़े इस लिये कुल पुष्ट ख़ुराक़ भी खानी चाहिये, यथाशक्य गर्म कपड़ा पहरना चाहिये परन्तु तंग पोशाक नहीं पहरनी चाहिये, शीत काल में अत्यन्त शीत पड़ने के समय कपड़े घोने के आलस्य से अथवा उनके विगड़ जाने के मय से काफ़ी कपड़े न रखने से बहुत खराबी होती है, कभी २ ऐसा भी होता है कि—स्त्री ऋतुधर्म के समय विलक्तल ख़ले और दुर्गन्थवाले स्थान में वैठी रहती है इससे भी बहुत हानि होती है, एवं ऋतु धर्म के समय छत पर वैठने, शरीर पर ठंढी पवन लगने, नंगे पैद ठंढी ज़मीन पर चलने, भीगी हुई ज़मीन पर चैठने और भीगा कपड़ा पहरने आदि कई कारणों से भी शरीर में सदीं लगकर ऋतु धर्म अटक (रुक) जाता है और उसके अटक जाने से गमीशय में शोथ (सूजन) हो जानेका सम्मव होता है. क्योंकि सदीं लगने से ऋतु धर्म का रक्त (खून) गर्म में जमकर शोथ को उत्पन्न कर देता है तथा पेंह्न में दर्द को भी उत्पन्न कर देता है तथा पेंह्न में दर्द को भी उत्पन्न कर देता है तथा पेंह्न में दर्द को भी उत्पन्न कर देता है तथा पेंह्न में दर्द को भी उत्पन्न कर देता है तथा पेंह्न में दर्द को भी उत्पन्न कर देता है तथा पेंह्न में दर्द को भी उत्पन्न कर देता है तथा पेंह्न में दर्द को भी उत्पन्न कर देता है तथा पेंह्न में दर्द को भी उत्पन्न कर देता है तथा पेंह्न में दर्द को भी उत्पन्न कर देता है तथा पेंह्न में दर्द को भी उत्पन्न कर देता है तथा पेंह्न में दर्द को भी उत्पन्न कर देता होता है तथा पेंह्न में दर्द को भी उत्पन्न कर देता है तथा पेंह्न में दर्द को भी उत्पन्न कर देता है तथा पेंह्न में दर्द को भी उत्पन्न कर देता है तथा पेंह्न में दर्द को भी उत्पन्न कर देता है तथा पेंह्न में दर्द को भी उत्पन्न कर देता

है, इस प्रकार गर्माशय के विगड़ जानेसे गर्मस्थिति (गर्म रहने) में वड़ी अड़चल (दिक्कत) आ जाती है, इसिल्ये श्ली को चाहिये कि—उक्त समय में इन हानिकारक वर्तानों से विलकुल अलग रहे।

इसी प्रकार बहुत देर तक खड़े रहने से, बहुत मय चिन्ता और कोष करने से तथा धिति तीक्ष्ण (बहुत तेज़) जुळाव छेने से मी ऋतुषर्म में वाषा पड़ती है, इसिल्ये स्वी को चाहिये कि—जहां ठंढी पवन का झकोरा (झपाटा) लगता हो वहां अथवा वारी (खिड़की या झरोखा) के पास न बैठे और न वहां श्रयन करे, इसी प्रकार भीगी हुई ज्मीन में भी सोना और बैठना नहीं चाहिये।

इस के सिवाय—कान, शौच, गाना, रोना, इंसना, तेलका मर्दन, दिन में निद्रा, जुवा, आंख में किसी अंजन आदि का लगाना, लेपकरना, गाड़ी आदि वाहन (सवारी) पर बैठना, बहुत बोलना तथा बहुत झुनना, पित संग करना, देन का पूजन तथा दर्शन, ज्मीन खोदना (करोदना), बहिन आदि किसी रजस्त्रा की का स्पर्श, दांत विसना, प्रियवी पर लकीरें करना, प्रियवी पर सोना, लोहे तथा तांवे के पात्र से पानी पीना, शाम के बाहर जाना, चन्दन लगाना, पुण्पों की माला पहरना, ताम्बूल (पान, बीड़ा) खाना, पाटे (चौकी) पर बैठना, दर्पण (कांच, शीसा) देखना, इन सब वातों का मी खी ऋतुधर्म के समय त्याग करे तथा प्रस्ता स्त्री का स्पर्श, विटला हुआ, देद (चांडाल), सुर्गा, कुत्ता, झुलर, कौका और सुर्दा आदि का स्पर्श मी नहीं करना चाहिये, इस प्रकार से वर्णव न करने से बहुत हानि होती है, इसिल्ये समझदार स्त्री को चाहिये कि ऋतु धर्म के समय कपर लिखी हुई वातों का अवश्य स्मरण रक्से और उन्हीं के अनुसार वर्षांक करे।।

रजोदर्शन के समय उचित वर्ताव न करने से हानि ॥

रजीदर्शन के समय उचित वर्ताव न करने से गर्भाशय में दर्द तथा विकार उत्पन्न हो जाता है जिस से गर्भ रहने का सम्भव नहीं रहता है, कदाचित गर्भ रहमी जाता हे तो प्रस्त समय में (वचा उत्पन्न होने के समय) अति मय रहता है, इस के सिवाय प्रायः यह मी देखा जाता है कि—बहुत सी क्षियां भीले शरीर वाली तथा मुर्दार सी दीख-पड़ती हैं, उस का मुख्य कारण ऋतुधर्म में दोष होना ही है, ऐसी क्षियां यदि कुछ भी परिश्रम का काम करती हैं तथा सीढ़ी पर चढ़ती है तो शीम्रही हांफने लगती है तथा कमी र उनकी आंखों के आगे अँघेरा छा जाता है—इसका हेतु यही है कि—ऋतुधर्मके समय उचित वर्ताव न करने से उन के आन्तरिक निकलता उत्पन्न हो जाती है, इस लिये ऋतुधर्मके समय बहुत ही सँगलकर वर्ताव करना चाहिये।

ऋतुधर्म के समय बहुत से समझदार हिन्दू, पारसी, मुसलमान तथा अंग्रेज सादि वर्गोमें खियों को अलग रखने की रीति जो अचलित है—वह बहुतही उत्तम है क्योंकि उक्त दशा में खियों को अलग न रखने से गृहसम्बंधी कामकाज में सम्बंध होने से बहुत खराबी होती है, वर्तमानमें उक्त ज्यवहारके ठीक रीति से न होने का कारण केवल मनुष्य जाति की छुज्धता तथा मनकी निर्वलता ही है, किन्तु उचित तो यही है कि-रजसला खियोंको अतिस्वच्छ, प्रकाशयुक्त, स्ते तथा निर्मल स्थान में गृह से पृथक् रखने का प्रवंध करना चाहिये किन्तु दुर्गन्धयुक्त तथा प्रकाशरहित स्थान में नहीं रखना चाहिये।

ऋतुषर्भ के समय खियों को चाहिये कि—मलीन कपड़े न पहरें, हाथ पैर सूखे और गर्म रक्लें, हवा में तथा भीगी हुई ज़मीन पर न चलें, ख़राक अच्छी और ताजी खावें, मन को निर्मल रक्लें, ऋतुषर्भ के तीन दिनों में पुरुष का मुख भी न देखें, स्नान करने की बहुत ही आवश्यकता पड़े तो खान करें परन्तु जलमें बैठकर स्नान न करें किन्तु एक जुदे पात्रमें गर्म जल भर के खान करें और ठंढी पवन न लगने पावे इसलिये शीप्र ही कोई स्वच्छ वस्त अथवा ऊनी वस्त पहरलें परन्तु विशेष आवश्यकता के विना खान न करें।

रजोदर्शन के समय योग्य सम्भाल न रखने-से बालक पर

पड्ने वाला असर ॥

रजला की के दिन में सोने से उस के जो गर्भ रह कर बालक उत्पन्न होता है वह अति निद्राह्ण (अत्यन्त सोनेवाला) होता है, नेत्रों में अल्लन (कालल, सुर्मा) के आंजने (लगाने) से अन्या, रोने से नेत्र विकारवाला और दुःली खमाव का, तेलमर्दन करने से कोढ़ी, हँसने से काले ओठ दाँत जीम और तालुवाला, बहुत बोलनेसे मलापी (बकवाद करनेवाला) बहुत सुनने से बहिरा, ज्मीन कुचरने (करोदने) से आलसी, पवन के अति सेवन से गैला (पागल), बहुत मेहनत करनेसे न्यूनांग (किसी अंग से रहित), नस्त काटने से खराब नखवाला, पात्रों (तांने आदिके वर्चनों) के द्वारा जल पीने से उन्मत्त और छोटे पात्र से जल पीनेसे ठिंगना होता है, इसलिये की को उचित है कि न ऋतुधर्म के समय उक्त दोषों से बचे कि जिस से उन दोषों का बुरा प्रमाव उस के सन्तान पर न पड़े।

इसके सिवाय रजस्तला स्त्री को यह भी उचित है कि-मिट्टी काष्ट तथा पत्थर आदि के पात्र में भोजन करे, अपने ऋतुधर्म के रक्त (रुधिर) को देवस्थान गौओं के बाड़े और जलाशयमें न डाले, ऋतुधर्म के समय में तीन दिन के पिट्टे हुए जो वस्त्र हों उन को चौथे दिन धो डाले तथा सूर्य उदय होने के दो या तीन घण्टे पीछे गुनगुने (कुछ गर्म) पानी से स्नान करे तथा स्नान करने के पश्चात् सन से प्रथम अपने पति का ग्रस देखे,

जो क्षी ऊपर लिसे हुए नियमों के अनुसार वर्ताव करेगी वह सदा नीरोग और सौभाग्य-वती रहेगी तथा उस का सन्तान भी सुशील, रूपवान, बुद्धिमान तथा सर्व शुभ लक्षणों से युक्त उत्पन्न होगा ॥

यह तृतीय अध्यायका-रजोदर्शन नामक दूसरा प्रकरण समाप्ते हुआ ॥

तीसरा प्रकरण-गर्भाधान।

'गर्भाघान का समय॥

गर्भाघान उस क्रिया को कहते हैं जिसके द्वारा गर्भाशयमें वीर्य स्थापित किया जाता है, इस का समय शास्त्रकारोंने यह वतलाया है कि—१६ वर्ष की स्त्री तथा २५ वेषिका पुरुष इस (गर्माधान) की किया को करे अर्थात् उक्त अवस्थाको प्राप्त हो कर पुरुष और स्त्री सन्तान को उत्पन्न करें, यदि इस से प्रथम इस कार्य को किया जायगा तो गर्भ गिर जायगा अथवा (गर्भ न गिरा तो) सन्तित उत्पन्न होते ही मर जायगी अथवा (यदि सन्तित उत्पन्न होते ही न भी गरी तो) दुर्वलेन्द्रिय होगी इसलिये अल्पावस्था में गर्भा-धान कमी न करना चाहिये।

प्यारे सज्जनो देखो ! स्त्री की योनि सन्तान के उत्पन्न करने का क्षेत्र (खेत) है इस लिये जिस प्रकार किसान अन्न आदि के उत्पन्न करने में विचार रखता है उसी भांति बरन उस से भी अधिक सन्तानोत्पत्ति में विचार करना मनुष्य को अति आवश्यक है जिससे किसी प्रकार की हानि न हो।

गर्भाधान के विषय में श्रास्तकारों की यह सम्मित है कि—जब तक स्त्री १६ बार रजो धर्म से शुद्ध न हो जावे तब तक उसमें बीज बोने (बीर्यस्थापन करने) अर्थात् । सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा नहीं करनी चाहिये, परन्तु अत्यन्त शोक का विषय है कि—आज करू इस विचार को लोगों ने विरुक्त ही त्याग दिया है और इस के त्यागने ही के कारण वर्तमानमें यह दशा हो रही है कि—मनुष्यगण न्यूनवरू, निर्नुद्धि, अस्पायु,

१-क्योंकि उत्पन्न करने की शक्ति की पुरुष में उक्तअवस्थानमें ही प्रकट होती है. तथा लीमें ४५ अथवा ५० वा ५५ वर्षतक वह शक्ति स्थित रहती है, परन्तु पुरुष में ७५ वर्षतक उक्त शक्ति प्राय: रहती है, यथि यूरोप आदि देशोंमें सी २ वर्ष की अवस्था वालेमी पुरुष के बच्चेका उत्पन्न होना अखवारों में पढते हैं तथापि इस देशके लिये तो सालकारोंका कपर कहा हुआ ही कथन है, ८ वर्षसे लेकर १४ वर्षकी अवस्थातक उत्पन्नकरने की शक्ति की उत्पत्ति का प्रारंग होता है १५ से २१ वर्ष तककी वह अवस्था है कि निसमें अवकोश में वीर्य वनने लगता है तथा पुरुषिवहको प्रयोग में आवे की इच्छा उत्पन्न होती है, २१ से ३० वर्षतक पूर्णता की अवस्था है, इसविषय का विशेष वर्णन सुश्रुतआदि प्रन्त्रों में देखलेना चाहिये॥

रोगी तथा नाटे (छोटें कद के) होने छगे हैं, इस छिये जब स्त्री १६ वार रजो धर्म से निवृत्त हो कर शुद्ध ही जावे तब उस के साथ प्रसंग करना चाहिये तथा उस (स्त्री प्रसंग) की भी अवधि स्त्री के मासिक धर्म (जो कि स्वामाविक रीति के अनुसार प्रतिमास होता है) के दिन से लेकर १६ दिन तक है, इन ऊपर कही हुई १६ रात्रियों में से भी प्रथम चार रात्रियों में स्त्री प्रसंग कदापि नहीं करना चाहिये क्योंकि-इन चार रात्रियों में स्त्री के शरीर में एक प्रकार का विकारयुक्त तथा मलीन रुघिर निकलता है, इस लिये नो कोई इन रात्रियों में स्त्री प्रसंग करता है उस की बुद्धि, तेज, वल, नेत्र और आयु आदि हीन होजातें हैं तथा उस को अनेक प्रकार के रोग भी आ धेरते हैं, इस के सिवाय उक्त चार रान्नियों में स्त्री प्रसंग का निषेध इस िवये भी किया गया है कि-उक्त रात्रियों में बी प्रसंगं करने से पुरुष का अमूल्य वीर्य ज्यर्थ जाता है अर्थात् उक्त रात्रियों में गर्भा-धान नहीं हो सकता है क्योंकि-यह नियम की बात है कि जैसे बहते हुए जल में कोई वस्त नहीं ठहर सकती है इसी अकार वहते हुए रक्त में वीर्यकी स्थित होना भी अस-न्मर्व है. अतः रजसळा स्त्री के साथ कदापि प्रसंग नहीं करना चाहिये, रजसळा स्त्री के साथ प्रसंग करना तो दूर रहा किन्तु रजलका श्री को देखना भी नहीं चाहिये और न बी को अपने पति का दर्शन करना चाहिये किन्त बी को तो यह उचित है कि उक्त समय में गृहसन्बंधी भी कोई कार्य न करे, केवल एकान्त में बैठी रहे, शरीरका शंगार आदि न करे किन्त जब रज निकलना बंद हो जावे तब खान करे इसी को ऋत खान कहते हैं।

यह भी सरण रहना चाहिये कि नहातुसानके पीछे स्नी जिस पुरुष का दर्शन करेगी उसी पुरुष के समान पुत्र की आकृति होगी, इस लिये स्नी को योग्य है कि नहातुसान के अनन्तर अपने पित पुत्र अथवा उत्तम आकृतिवाले अन्य किसी सम्बंधी पुरुष को देखे, यदि किसी कारण से इन का देखना संगव न हो तो अपनी ही आकृति (सूरत) को (यदि उत्तम हो तो) दर्पण में देख ले, अथवा किसी उत्तम आकृतिमान् तथा गुणबान् पुरुष की तस्वीर को मंगा कर देख ले तथा उन की सूरत का चित्त में ध्यान भी करती रहे क्योंकि जिस का चित्त में वारंवार ध्यान रहेगा उसी का बहुत प्रमाव सन्तान पर होगा इस लिये पुरुष का दर्शन कर उसका ध्यान भी करती रहे कि जिस से उत्तम मनो-हर पुत्र और पुत्री उत्पन्न हों।

१-देखो लिखा है कि-अवहत्सिलिके क्षिप्त इन्यं गच्छत्यमो यथा ॥ तथा वहति रक्ते हु क्षिप्त वीर्यमयो त्रजेत् ॥ १ ॥ अर्थात् जैसे वहते हुए चल में दाली हुई वस्तु नीचे चली जाती है, उसी प्रकार वहते हुए इषिर,में दाला हुआ वीर्थ नीचे चला जाता है अर्थात् गर्मीस्थिति नहीं होती है ॥

जिस प्रकार से स्नी प्रसंग में पहिली चार रात्रियों का त्याग है उसी प्रकार ंग्यारहवीं तेरहवीं रात्रि तथा अष्टमी पूर्णमासी और अमानास्या का मी निपेध किया गया है, इन से शेष रात्रियों में स्नी प्रसंग की आज्ञा है तथा उन शेष रात्रियों में भी यह शास्त्रीय (शास्त्रका) सिद्धान्त है कि—समरात्रियों में अर्थात् ६, ८, १०, १२, १४ और १६ में स्नीप्रसंगद्वारा गर्भ रहने से पुत्र तथा निषम रात्रियों में अर्थात् ७, ९, ११, १३ और १५ में गर्भ रहने से पुत्री उत्यन्न होती है क्योंकि—सम रात्रियों में पुरुष के नीर्थ की तथा निषम रात्रियों में स्नी के रज की अधिकता होती है, मुख्य तात्पर्य यह है कि मनुष्य का नीर्थ अधिक होने से छड़का कम होने से छड़की और रोनों का नीर्थ और रज नरावर होने से नपुंसक होता है तथा दोनों का नीर्थ और रज कम होने से गर्भ ही नहीं रहता है।

पुत्र और पुत्री की इच्छावाला पुरुष कपर कही हुई रात्रियों में नियमानुसार केवल एकवार स्नीमसंग करे परन्तु दिन में इस किया को कदापि न करे क्योंकि दिन में मकाश तेज और गर्मी अधिक होती है तथा मैथुन करते समय और भी गर्मी शरीर से निकलती है इस लिये इस दो प्रकार की उप्णता से शरीर को बहुत हानि पहुंचती है और कमी २ यहां तक हानि की सम्भावना हो जाती है कि—अति उष्णता के कारण प्राणों का निकलना भी सम्भव हो जाता है, इस लिये—रात्रिमें ही स्नीप्रसंग करना चाहिये किन्तु रात्रि में भी दीपक तथा लेम्प आदि जलाकर तथा उन को निकट रख कर स्नी प्रसंग नहीं करना चाहिये—क्योंकि—इस से भी पूर्वीक हानि की ही सम्भावना रहती है।

रात्रि में दश वा ग्यारह वजे पर खीप्रसंग करना उचित है क्योंकि—इस किया का ठीक समय यही है, जब वीर्थ पात का समय निकट आवे उस समय दोनों (खीपुरुष) सम हो जावें अर्थात् ठीक नाक के सामने नाक, मुंहके सामने मुंह, इसी प्रकार शरीर के सब अंग समान रहें।

स्त्रीप्रसंग के समय स्त्री तथा पुरुष के चित्त में किसी वात की चिन्ता नहीं रहनी चाहिये तथा इस किया के पीछे श्रीष्ठ नहीं उठना चाहिये किन्तु थोड़ी देरतक छेटे रहना चाहिये और इस कार्य के थोड़े समय के पीछे गर्मकर श्रीतछ किये हुए गायके दूधमें मिश्री ढाछकर दोनों को पीना चाहिये क्योंकि दूधके पीने से श्रकावट जाती रहती है और जितना रज तथा वीर्य निकछता है उतना ही और वन जाता है तथा ऐसा करनेसे किसी प्रकार का शारीरिक विकार भी नहीं होने पाता है।

⁹⁻इस सर्व विषय का यदि विशेष वर्णन देखना हो तो भावप्रकाश आदि वैद्यक प्रन्यों को देखो ॥

इस कार्य के कर्चा यदि प्रातःकाल शरीर पर उबटन लगा कर स्नान करें तथा खीर, मिश्री, सहित, दूध और भाँत खार्वे तो अति लामदायक होता है।

्हस प्रकार से सर्वदा ऋतु के समय नियमित रात्रियों में विधिवत् स्नीप्रसंग करना चाहिये किन्तु निषिद्ध रात्रियों में तथा ऋतुषर्भ से छेकर सोछह रात्रियों के पश्चात् की रात्रियों स्नीप्रसंग कदािप नहीं करना चाहिये क्योंकि धर्मग्रन्थों में छिसा है कि बो मनुष्य अपनी स्नी से ऋतु के समय में नियमानुसार प्रसंग करता है वह गृहस्य हो कर भी ब्रह्मचारी के समान है।

गर्भिणी स्त्री के वैर्तावका वर्णन ॥ -

स्त्री के जिस दिन गर्भ रहता है उस दिन श्वरीर में निम्नलिखित चिन्ह मतीत होते हैं:—

जैसे बहुत अम करने से शरीर में श्रकावट आ जाती है उसी प्रकार की श्रकावट माख्य होने लगती है, शरीर में ग्लान होती है, तृषा अधिक लगती है, पैरों की पीढियों में दर्व होता है, प्रसवस्थान फड़कता है, रोमांच होता है (रोंगटे खड़े होते हैं), सुगन्थित बस्तु में भी तुर्गन्थि माख्य होती है और नेत्रोंके पलक चिमटने लगते है।

गर्भाषान के एक मास के अनुमान समय होने पर शरीर में कई एक फेर फार होते हैं—स्त्री का रजोदर्शन बंद हो जाता है, परन्तु नवीन गर्मवती (गर्भ घारण की हुई) स्त्री को इस एक ही चिन्ह के द्वारा गर्म रहने का निश्चय नहीं कर लेना चाहिये किन्तु जिस स्त्री के एक वा दो वार सन्तित हो चुकी हो वह स्त्री नियमित समय पर होने वाले रजो-दर्शन के न होने पर गर्मिस्थिति का निश्चय कर सकती है।

^{9—}स्मरण रखना चाहिये कि-सन्तान का उत्तम और बलिष्ठ होना पति पत्नी के नोजन पर ही निर्मर है इस लिये जी पुरुषको चाहिये कि अपने आत्मा तथा शरीर की पुष्टि के लिये वस और बुद्धिके बढाने बाळे उत्तम औषध और नियमानुसार उत्तम २ मोजनों का सेवन करें, भोजन आदि के निषय में इसी प्रन्य के चीथे सच्याय में वर्णन किया गया है वहां देखें ॥

२-सर्व शास्त्रों का यह सिद्धान्त है कि-स्त्री गर्भसमय में अपना जैसा आवरण रखती है-उन्हीं करणों से युक्त सन्तान भी उस के उत्पन्न होता है-इसिक्टिय यहा पर संक्षेप से गर्भिणी स्त्री के नर्तान का कुछ वर्णन किया जाता है-आज्ञा है कि-स्त्रीमण इस से यथोचित काम प्राप्त कर सकेंगी॥

३-जैसा कि लिखा है कि-रानयोर्भुखकार्ष्यं साद्रोमराज्युद्रमस्त्रया ॥ अक्षिपक्ष्माण नाप्यसाः सम्मी-रुबन्ते विशेषतः ॥ १ ॥ छर्दयेत् पप्य सुक्सापि गन्यादुद्धिनते झुमात् ॥ प्रसेकः सदन नैव गर्मिष्या लिक्समुच्यते ॥ २ ॥ अर्थात् दोनों स्तर्नोका अप्रमाग काला हो जाता है, रोमाब होता है, आर्खों के पलक अस्तन्त नियरने लगते हैं ॥ १ ॥ पम्य मोजन करने पर भी छर्दि (नमन) हो जाता है छुम गन्य से भी भय लगता है मुख से पानी गिरता है तथा अयो में बकावट माल्स होती है ॥ २ ॥ वे लक्षण जो लिखे हैं ये गर्मरहने के पक्षात् के हैं किन्तु गर्भरहने के तत्काल तो नहीं निन्ह होते हैं जो कि स्वर लिखे हैं ॥

एक मास के पीछे गर्भिणी की के जी मचलाना और वमन (उलटियां) प्रात:काल में होने लगते हैं, यद्यपि रजोदर्शन के बंद होने की सबर तो एक मास में पड़ती है, परन्तु जी मचलाना और वमन तो बहुतसी क्षियों के एक मास से मी पिहले होने लगते हैं तथा बहुत सी क्षियों के मास वा डेड मास के पीछे होते हैं और ये (मोल और वमन) एक वा दो मासतक जारी रह कर आप ही बंद हो जाते हैं परन्तु कभी २ किसी २ स्त्री के पांच सात मासतक भी बने रहते हैं तथा पीछे शान्त हो जाते हैं।

गर्मिणी स्त्री को जो बमन होता है वह दूसरे बमन के समान कप्ट नहीं देता है इस लिये उस की निवृत्ति के लिये कुछ जोषि छेने की आवश्यकता नहीं है, हां यदि उस बमन से किसी स्त्री को कुछ विशेष कप्ट माख्स हो तो उसका कोई साधारण उपाय कर लेना चाहिये।

जिस गर्मिणी जी को ये मोछ (जीम चलाना) और वमन होते हैं उसको प्रस्त के समय में कम संकट होता है, इस के अतिरिक्त गर्मिणी जी के मुख में थूक का आना गर्भिखिति से योड़े समय में ही होने अगता है तथा थोड़े समयतक रह कर आप ही वन्द हो जाता है, धीरे २ स्तनों के मुख के आस पास का सब भाग पहिले फीका और पीछे स्थाम हो जाता है, स्तनों पर पसीना आता है, प्रथम स्तन दावने से कुछ पानी के समान पदार्थ निकलता है परन्तु थोड़े दिन के बाद दूध निकलने अगता है।

गर्भिणी स्त्री का दोहद ॥

तीसरे सथवा नौथे मार्स में गर्भिणी की के दोहद उत्पन्न होता है अर्थात् मिन्न र विषयों की तरफ उस की अभिलाषा होती है, इस का कारण यह है कि, दिमागं (मगन) और गर्माश्चयं के ज्ञानतन्तुओं का अति निकट सम्बन्ध है इस लिये गर्भाश्य का प्रमाव दिमाग पर होता है, उसी प्रमाव के द्वारा गर्भिणी की की मिन्न र वस्तुओं पर रुचि चलती है, कभी र तो ऐसा भी देखा गया है कि उस का मन किसी अपूर्व ही वस्तु के खाने को चलता है कि जिस के लिये पहिले कभी इच्छा भी नहीं हुई थी, कभी र ऐसा भी होता है कि-जिस वस्तु में कुछ भी सुगन्धि न हो उस में भी उस को सुगन्धि माछ्म होती है अर्थात् वेर, इमली, राख, घूल, कंकह, कोयला और मिट्टी आदि में भी कभी र उसको सुगन्धि माछ्म होती है तथा इन के खाने के लिये उस का मम खल्माया करता है, किसी र खी का मन अच्छे र वक्षों के पहरने के लिये चलता है, किसी र का मन अच्छी र बातों के करने तथा सुनने के लिये चलता है तथा किसी र का मन अच्छी र बातों के करने तथा सुनने के लिये चलता है तथा किसी र का मन उत्तम र पदार्थों के देखने के लिये चला करता है।

१-परन्तु इस का नियम नहीं है कि तीसरे अथवा चीये मास में ही दोहद छत्पन हो, क्योंकि-कई कियों के उक्त समय से एक आप मास पहिले वा पीछे भी दोहद का उत्पन्न होना देखा जाता है।

पेट में बालक का फिरना ॥

पेट में बालक का फिरना चौथे वा पांचवें महीने में होता है, किन्तु इस से पूर्व नहीं होता है क्योंकि गर्मस्थ सन्तान के बड़े होने से उस की गति (इघर उघर हिलना आदि चेष्टा) माळम होती है किन्तु जहांतक गर्मस्थ सन्तान छोटा रहता है वहांतक गति नहीं माळम होती है।

यद्यपि ऊंपर कहे हुए सब चिन्ह तो बी से पूंछने से तथा जांच करने से माछम हो सकते हैं परन्तु गर्भ स्थिति के कारण पेट का बदना तो प्रत्यक्ष ही माछम हो जाता है, किन्तु प्रथम दो वा तीन महीनेतक तो पेट का बदना मी स्पष्ट रीति से माछम नहीं होता है परन्तु तीन महीने के पीछे तो पेट का बदना साफ तौर से माछम होने कगता है अर्थात् ज्यों २ गर्भस्थ बालक बड़ा होता जाता है त्यों २ पेट मी बदता जाता है, परन्तु यह भी सरण रहना चाहिये कि केवल पेट के बदने से ही गर्भस्थिति का निश्चय महीं कर लेना चाहिये किन्तु इस के साथ में ऊपर कहे हुए चिन्ह मी देखने चाहिये क्योंकि उदर की बृद्धि तो तापतिछी और जलोदर आदि कई एक रोगों से भी हो जाती है।

गर्भिणी स्त्री के दिन पूरे होने के समय में होनेवाले चिन्हें ॥

इस समय में बहुमूत्रता होती है अर्थात वारंवार पेशाव करने के लिये जाना पहता है परन्तु उस में दर्द नही होता है, किसी २ स्त्री के गर्भ स्थिति की प्रारंभिक दशा में भी बहुमूत्रता हो जाती है परन्तु इस दशा में उस के कुछ पीड़ा हुआ करती है, वारंवार पेशाव कगने का कारण यह है कि—गर्भाशय और मृत्राशय ये दोनों बहुत समीप है इसिलिये गर्भाशय के बढने से मृत्राशय पर दवाव पड़ता है उस दवाव के पड़ने से वारंवार पेशाव कगता है, परन्तु यह (वारंवार पेशाव का लगाना) भी कुछ समय के पश्चार आप ही बन्द हो जाता है, इस के सिवाय गर्भिणी स्त्री का चेहरा प्रकुछित होता है परन्तु बहुत सी स्त्रियां प्रायः दुवेल भी हो जाया करती हैं, इत्यादि ॥

प्रत्येक मास में गर्मिस्थिति की दशा तथा उसकी संभाल ॥
स्थानांग सूत्रके पांचर्ने स्थान में कामसेवन का पांच मकार से होना कहा है. जिस का सेक्षेप से वर्णन यह है:—

१—पुरुष वा स्त्री अपने मन में काम भोग की इच्छा करे, इस का नाम मनःपरिचारण है।। २—जिन शब्दों से कामविकार जागृत हो ऐसे शब्दों के द्वारा परस्पर वार्ताकापं (सम्माषण) करना, इस का नाम शब्दपरिचारण है॥

३-परस्पर में राग जागृत ही ऐसी दृष्टि से एक दूसरे की देखना, इस का नाम रूप-पश्चिरण है ॥ ४-आिङ्कान आदि के द्वारा केवल स्पर्श मात्रसे काम सेवन करना, इस का नाम स्पर्शपरिचारण है ॥

५--एक शय्या (चार पाई वा विस्तर) में सम्पूर्ण अङ्गों से अङ्गों को मिला कर काम भोग करना, इस का नाम कायपरिचारणा है ॥

इन पांचों काम सेवन की विधियों मेंसे पांचवी विधि के अनुसार जब काम सेवन किया जाता है तब ब्री के गर्म की स्थिति होती है, गर्म की स्थिति का स्थान एक कमलाकार नाड़ी विशेष है अर्थात् ब्री की नामि के नीचे दो नाड़ी एक दूसरी से सम्बद्ध हो कर कमल पुष्पके समान बनी हुई अघोमुल कमलाकार है, इसी में गर्म की स्थिति होती है, इस नाड़ी के नीचे आमकी गांजर (मज़री) के समान एक गांस का गांजर है तथा उस गांजर के नीचे योनि है, प्रतिमास जो ब्री को ऋतुषर्म होता है वह इसी गांजर से लोह गिर कर योनि के मार्ग से बाहर आता है।

पहिले कह चुके हैं कि—ऋदुसान के पीछे चौथे दिन से लेकर बारह दिन तक गर्म स्थिति का काल है, इस विषय में यह भी जान लेना आवश्यक है कि—कायपरिचारणा (कामसेवंन की पांचवीं विधि) के द्वारा काम भोग करने के पीछे स्खलित हुए वीय और शोणित में कची चौवीस घड़ी (९ घंटे तथा ३६ मिनट) तक गर्मस्थिति की शक्ति रहती है, इस के पीछे वह शक्ति नही रहती है किन्दु फिर तो वह शक्ति तब ही उत्पन्न होगी कि जब पुनः दूसरी वार सम्भोग किया जायगा!

सन्मोग करने के पीछे गर्म में छड़के वा छड़की (को उत्पन्न होने को हो) का जीव शीष्र ही आ जाता है, परन्तु इस विषय में जो छोग ऐसा मानते हैं कि गर्मस्थिति के एक महीने वा दो महीने के पीछे जीव आता है वह उन का अममात्र है किन्तु जीव तो चौवीस घड़ी के मीतर २ ही आ जाता है तथा जीव गर्ममें आते ही पिता के बीर्य और माता के रुघिर का आहार छेकर अपने सूक्ष्म शरीर को (जिसे पूर्व भव से साथ जाया है तथा जिस के साथ में अनेक प्रकार की कर्म प्रकृति भी हैं) गर्भाश्य में डाल कर उसी के द्वारा स्थूल शरीर की रचना का प्रारंग करता है, क्योंकि जब जीव एक गति को छोड़कर दूसरी गति में आता है तब तैजस तथा कार्मणरूप सूक्ष्म शरीर उस के साथही में रहता है तथा पुण्य और पाप आदि कर्म भी उसी सूक्ष्म शरीर के साथ में लगे रहते हैं,

í

१-जैसा कि वैशक आदि प्रन्योंमें लिखा है कि-शुकार्तवसमान्छेणे बदैव खळ जायते ॥ जीवस्तर्दव विश्वति शुकाशुकार्तवान्तरम् ॥ १ ॥ सूर्योक्षोः सूर्यमणित उभयस्माशुताश्या ॥ बहिस्सजायते जीवस्त्रथा शुकार्तवाशुतात् ॥ २ ॥ अर्थात् जव वीर्ज और आर्तव का संयोग होता है-उसी समय जीव उन के साथ उस में प्रवेश करता है ॥ १ ॥ जैसे-सूर्य की किरण और सूर्यमणि के संयोग से अपि प्रकट होती है उसी प्रकार से शुक्र शोणित के सम्बन्ध से जीव सीग्रही उदर में प्रकट हो जाता है ॥ २ ॥

वस इसी प्रकार जबतक वह बीव संसार में अमण करता है तबतक उस के उक्त सूक्त शरीर का अमान नहीं होता है किन्तु जब वह गुक्त होकर शरीर रहित होता है तथा उस को जन्ममरण और शरीर आदि नहीं करने पड़ते है तथा जिस के राग देव और मोह आदि उपाधियां कम होती जाती हैं उस के पूर्व सिश्चत कर्म शीमही छूट जाते है, परन्त सारण रखना चाहिये कि-संसारके सब पदार्थों का और आत्मतत्त्व का यथार्थ ज्ञान होनेसेही राग द्वेष और मोह आदि उपाधियां कम होती हैं तथा यदि किसी वस्त्रमें ममता न रख कर सदमाव से तप किया जावे तो भी सब प्रकार के कर्मों की उपाधियां छट जाती हैं तथा जीव मुक्ति को पास हो जाता है, जबतक यह जीव कर्मकी उपाधियों से लिस है तवतक संसारी अर्थात् दुनियां दार हैं किन्तु कर्मकी उपाधियों से रहित होने पर तो वह जीव मक्त कहलाता है, यह जीव शरीर के संयोग और वियोग की अपेक्षा अनित्य है तथा आत्मधर्म की अपेक्षा नित्य है, जैसे दीपकका प्रकाश छोटे मकान में संकोच के साथ तथा बड़े मकान में विस्तार के साथ फैलता है उसी प्रकारसे यह आत्मा पूर्वकृत कमें के अनुसार छोटे बड़े शरीर में प्रकाशमान होता है, जब यह एक जन्म के आयुःकर्म की पूर्णता होनेपर दूसरे जन्म के आयुका उपार्जन कर पूर्व शरीर को छोड़ता है तब छोग कहते हैं कि-अग्रक पुरुष भर गया, परन्त्र जीव तो वास्तव में मरता नहीं है अर्थात उस का नाश नहीं होता है हां उस के साथ में जो स्थूल शरीर का संयोग है उस का नाश अवश्य होता है ॥

- १—गर्भ स्थिति के पीछे सात दिन में वह वीर्य और शोणित गर्भाशय में कुछ गाढा हो जाता है तथा सात दिन के पीछे वह पहिछे की अपेक्षा अधिकतर किन और पिण्डाकार होकर आमकी गुठली के समान हो जाता है और इसके पीछे वह पिण्ड किन मांसग्रन्थि बनकर महीने भर में बजन (तौल) में सोलह तोले हो जाता है, इस लिये प्रथम महीने में स्नीको मधुर शीत बीर्य और नरम आहार का विशेष उपयोग करना चाहिये कि जिससे गर्भ की बुद्धि में कुछ विकार न हो।
- र-दूसरे महीने में पूर्व महीने की अपेक्षा भी कुछ अधिक कठिन हो जाता है, इस लिये इस महीने में भी गर्भ की वृद्धि में किसी प्रकार की रुकावट न हो इस लिये कपर कहे हुए ही आहार का सेवन करना चाहिये।
- ३—तीसरे महीने में अन्य छोगोंको भी वह पिण्ड बड़ा हो जाने से गमीकृतिरूप मार्डम

१-जैसा कि सगवद्गीता में भी छिखा है कि-नैनं छिन्दन्ति श्रद्धाणि, नैन दहित पावकः ॥ न नैन, क्केदयन्द्यापो, न वोषयित मारुतः ॥ १-॥ अर्थात् इस जीवात्मा को न तो श्रद्ध काट सकते हैं, न अप्नि जला सकता है, न जल भिगो सकता है और न श्रद्ध इस का श्रीषण कर सकता है-तात्पर्य यह है कि-जीवात्मा निस्य और जिनाशी है ॥

पड़ने लगता है, इस मासमें ऊपर कहे हुए आहार के सिवाय दूधके साथ साठी चांवल खाना चाहिये ।

- 8-बौधे महीने में गर्भिणी का ऋरीर भारी पड़ जाता है, गर्भ स्थिर हो जाता है तथा उस के सब अंग कम २ से बढ़ने छगते हैं, जब गर्म के हृद्य उत्पन्न होता है तन गर्मिणी स्री के ये चिह्न होते हैं--अरुचि, शरीर का भारीपन, अन की इच्छा का न होना, कमी अच्छे वा बुरे पदार्थों की इच्छा का होना, सानों में दूव की उत्पत्ति, नेत्रों का शिथिल होना, ओठ और स्तनों के मुल का काला होना, पैरों में शोध, मुख में पानी का आना आदि. तथा प्रायः इसी महीने में गर्भवती के पूर्व कहा हुआ दोहद उत्पन्न होने लगता है अर्थात उस के कई प्रकार के इरादे पैदा होते हैं. मन को अच्छे लगनेवाले पदार्थों की इच्छा होती है, इस लिये उस समय में उस के अमीष्ट पदार्थ पूरे तौर से उसे देने चाहियें. क्योंकि ऐसा करने से नालक वीर्यनान और वडी आयुनाला होता है. इस दोहद के विषय में यह स्वामाविक नियम है कि-यदि प्रण्यात्मा जीव गर्म में आया हो तो गर्भिणी के अच्छे इरादे पैदा होते हैं तथा यदि पापी जीव गर्भ में आया हो तो उस के दुरे इरादे होते हैं, तात्पर्य यह है कि-गर्भिणी को जिन पदार्थी की इच्छा हो उन्हीं पदार्थों के गुणों से युक्त वालक होता है, यदि गर्भिणी की इच्छा के अनुसार उस को मन चाहे पदार्थ न दिये जावें तो बालक अनेक ब्रुटियों से युक्त होता है, लराब और नयंकर वस्तु के देखने से बालक भी लराब ब्रक्षणों से युक्त होता है. इस लिये यथा शक्य ऐसा प्रयक्त करना चाहिये कि गर्भिणी स्त्री के देखने में अच्छी २ वस्त यें ही आवें तथा अच्छी २ वस्तुओं पर ही उस की इच्छा चले क्योंकि विकारवाछे पदार्थ गर्भ को बहुत बाधा पहुंचाते है, इस छिये उन का त्याग करना चाहिये।
- ५—पांचवें महीने में हाथ पांव और मुख आदि पांचों इन्द्रियां तैयार हो जाती हैं, मांस और रुघिर की भी विशेषता होती है, इस छिये गर्मवती का शरीर उस दशा में बहुत दुवेछ हो जाता है, अतः उस समय में भी को धी और दूध के साथ अझ देते रहना चाहिये।
- ६ छठे महीने में पित्त खाँर रक्त (लोड़ू) बनने का आरम्म होता है तथा वालक के शरीर में बल और वर्ण का सञ्चार होता है, इस लिये गर्मवती के शरीर का वल और वर्ण कम हो जाता है, अतः उस समय में भी उस को घी और दूध का आहार ऊपर लिखे अनुसार देते रहना चाहिये।
- ७-सातर्वे महीने में छोटी बड़ी नसें तथा साढे तीन कोटि (करोड़) रोम भी वनते हैं और वालक के सब अंग अच्छे प्रकार से माद्धस पड़ने छगते हैं तथा उस का

शरीर पुष्ट हो जाता है परन्तु ऐसा होने से गर्भिणी दुर्ने होती जाती है, इस िंचे इस समय में भी गर्भिणी को ऊपर लिखे अनुसार ही आहार देते रहना चाहिये।

- ८—आठवें महीने में वालक का सम्पूर्ण शरीर तैयार हो जाता है, ओन धात िसर होता है, माता जो कुछ खाती पीती है उस आहार का रस गर्म के साथ सम्बन्ध रखने-वाली गाँड़ी के द्वारा पहुंच कर गर्म को ताकृत मिळती रहती है, अंधेरी कोठरी में पड़े हुए मनुष्य के समान प्रायः उस को तकलीफ ही उठानी पड़ती है, इस महीने में गर्म के साथ सम्बन्ध रखनेवाली उक्त नाड़ी के द्वारा माता तो गर्म का और गर्म माता का ओज वारंवार प्रहण करता है अर्थात् परस्पर में ओज का सञ्चार होता है इसिलिये गर्मिणी किसी समय तो हर्षयुक्त तथा किसी समय खेदयुक्त रहा करती है तथा ओज की स्थिरता न रहने के कारण इस मास में गर्म श्री को बहुत ही पीड़ा-युक्त करता है, इस लिये इस समय में गर्मवती को भात के साथ में बी तथा वृष्व मिला कर खाना चाहिये, किन्तु इस में (खुराक़ में) कभी चूकना नहीं चाहिये।
- ९ वा १०—नवें तथा दशवें महीने में गर्भाशय में स्थित बालक उदर (पेट) में ही ओब के सिहत स्थिर होकर उहरता है, इस लिये पुष्टि के लिये थी और दूध आदि उत्तम पदार्थ इन मासों में भी अवश्य खाने चाहियें, क्योंकि इस अकार के पौष्टिक आहारसे गर्भ की उत्तम रीति से बृद्धि होती है, इस प्रकार से वृद्धि पाकर तथा सब अंगोंसे युक्त होकर गर्भस्थ सन्तान पूर्व कूँत कर्मानुक्ल उदर में रहकर गर्भसे बाहर आता है अर्थात् उत्पक्ष होता है ॥

न्यार्भः समय में त्याग करने .योग्य विपरीत पदार्थः॥-

जो.पदार्थ त्याग करने के योग्य तथा विपरीत है उनका सेवन करने से गर्भ उदर में ही नष्ट हो जाता है अथवा बहुत दिनों में उत्पन्न होता है, ऐसा होने से कमी र गर्भिणी स्त्री के जीव की भी हानि हो जाती है, इसिल्ये गर्भिणी को हानि करनेवाले पदार्थ नहीं खाने चाहियें किन्तु जिन पदार्थों का ऊपर वर्णन कर चुके है उन्हीं पदार्थों को खाना चाहिये तथा गर्भवती स्त्री के विषय में जो वार्ते पहिले लिख चुके है उन का उस

१-क्योंकि गर्भिणी के ही रस सादि घातुओं से गर्भस्थ वालक पुष्टि को पाता है ॥

२-यह वही नाढ़ी है जो कि माता की नामि के नीचे वालक की नाढ़ी से लगी रहती है, जिस को नाल भी कहते हैं तथा जो बंतलक के पैदा होने के पीछे उस की नामि पर लगी रहती है ॥

३-इसी िलये आठवें महीने में उत्पन्न हुआ वालक प्रायः नहीं जीता है, क्योंकि ओज घाउँ के विना जीवन कदापि नहीं हो सकता है, क्योंकि जीवन का आधार ओज ही है-इस विषय का विशेष वर्णन वैवर्क प्रत्यों में वेखो ॥

^{&#}x27;४-अर्थात पूर्व किये हुए कमों का फल जबतक उदर में भोग्य है तबतक उस फल को उदर में भोग कर पीछे बाहर आता है (उदर में रहना भी तो कमें के फलों का ही भोग है)॥

को पूरा घ्यान रखना चाहियें, क्यों कि उन का पूरा २ घ्यान न रखने से न केवल गर्म को किन्तु गर्मिणी को भी बहुत हानि पहुँचती है, यद्यपि संक्षेप से इस निषय में कुछ ऊपर लिखा जा चुका है तथापि ऊपर लिखी वातों के सिवाय गर्भवती को और भी बहुत सी आवश्यक वातों की सम्भाल पहिले ही से (गर्भ की प्रारंमिक दशा से ही) रखनी चाहिये, इस लिये यहां पर गर्भवती के लिये कुछ आवश्यक वातों की शिक्षा लिखते हैं:—

र्गर्भवती स्त्री के लिये आवश्यक शिक्षायें ॥

दर्द पैदा करने वाले कारण विना गर्भ दशा में जितना असर करते हैं उस की अपेक्षा गर्भ रहने के पीछे वे कारण गर्भवती स्त्री पर दश गुणा असर करते है, न केवल इतना ही किन्त वे कारण गर्भवती स्त्री पर शीघ्र भी असर करते है, इस लिये गर्भवती स्त्री को अपनी तनदुरुसी कायम रखने में विशेष घ्यान रखना चाहिये, गर्भिणी की झुन्दर खच्छ हवा की बहुत ही आवश्यकता है इस लिये जिस प्रकार खच्छ हवा मिल सके ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये, अति संकीर्ण स्थान में न रह कर उस को स्वच्छ इवादार स्थान में रहना चाहिये, नित्य खुळी हवा में थोड़ा २ फिरने का अम्यास रखना चाहिये क्यों कि ऐसा करने से अंगों में मारीपन नहीं आता है किन्तु शरीर हलका रहता है और प्रसव समय में वालक भी छुख से पैदा हो जाता है, उस को घर में थोड़ा २ काम काज मी करना चाहिये किन्तु दिन भर आलस्य में ही नहीं विताना चाहिये क्योंकि आछस्य में पड़े रहने से प्रसन समय में बहुत वेदना होती है, परन्तु शक्ति से अधिक परिश्रम भी नहीं करना चाहिये क्योंकि इस से भी हानि होती है, बहुत देर तक शरीर को बांका (टेढ़ा वा तिरछा) कर हो सकने वाले काम को नहीं करना चाहिये, शरीर को बांका कर भारी वस्तु नहीं उठानी चाहिये, जिस से पेट पर दवाव पड़े ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिये, बोझ को नही उठाना चाहिये, घर में पड़े रहने से, कुछ कस-रत (परिश्रम) न करने से और स्वच्छ इवा का सेवन न करने से गर्भवती स्त्री के अनेक प्रकार का दर्द हो जाने का सम्भव होता है तथा कमी २ इन कारणों से रोगी तथा मरा हुआ मी बारूक उत्पन्न होता है, इस लिये इन नातों से गर्भनती को वचना चाहिये तथा उस को खाने पीने की बहुत सम्माळ रखनी चाहिये, मारी और अजीर्ण करने वाली खुराक कमी नहीं खानी चाहिये, वहुत पेट मर कर मिष्टान्न (मिठाई) नहीं लाना चाहिय, बहुत से मोछे छोग यह समझते है कि गर्भवती स्त्री के आहार का रस सन्तित को पुष्ट करता है इस लिये गर्मवती स्त्री को अपनी मात्रा से अधिक स्नाहार करना चाहिये, सो यह उन छोगों का विचार अत्यन्त अमयुक्त है, क्योंकि सन्तान की मी पुष्टि नियमित आहार के ही रस से हो सकती है किन्तु मात्रा से अधिक आहार से

नहीं हो सकती है, हां यह वेशक ठीक है कि आहार में कुछ पृत तथा दुग्ध आदि का उपयोग अवस्य करना चाहिये कि निस से गर्भ और गर्मिणी के दुर्वछता नहोंने पाने, परना मात्रा से अधिक आहार तो मूल कर भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि मात्रा से अधिक किया हुआ आहार न केवल गर्मिणी को ही हानि पहुंचाता है किन्तु गर्मस्य सन्तान को भी अनेक प्रकार की हानियां पहुंचाता है, इस के सिवाय अधिक आहार से गर्भीखात की पारम्मिक अवस्था में ही कभी २ स्त्री को ज्वर आने छगता है तथा वसन भी होने लगते हैं, यदि गर्भवती स्त्री गर्भावस्था में श्ररीर की अच्छी तरह से सम्माल रक्ते तो उस को प्रसव समय में अधिक वेदना नहीं होती है. मारी पदार्थों का मोजन करने से अविर्ध हो कर दस्त होने लगते हैं जिस से गर्भ को हानि पहुंचने की सन्भावना होती है, केवल इतना ही नहीं किन्तु असमय में प्रस्त होने का भी मय रहता है, गर्भवती को दंदी ख़राफ़ भी नहीं लानी चाहिये क्योंकि ठंढी ख़राफ़ से पेट में वायु उत्पन्न हो कर पीड़ा उठती है, तेलवाना तथा लान मिचीं से वधारा (क्वींका) हुना शाक भी नहीं साना चाहिये क्योंकि इस से खांसी हो जाती है और खांसी हो जाने से बहुत हानि पहुंचती है, अगर्भवती (विना गर्भवाली) स्त्री की अपेक्षा गर्भवती स्त्री को वीमार होने में देरी नहीं लगती है इस लिये जितने जाहारका पाचन ठीक रीति से हो सके उतना ही जाहार करना चाहिये. यद्यपि गर्भवती श्ली को पौष्टिक (पुष्टि करनेवाली) खुराक की बहुत आवश्यकता है इस लिये उस को पौष्टिक ख़राक लेनी चाहिये. परन्त जिस से पेट अधिक तन जावे और वह ठीक रीति से न पच सके इतनी अधिक ख़राक नहीं हेनी चाहिये, गर्भवती सी के उपवास करने से सी और बालक दोनों को हानि पहुंचती है अर्थात गर्भ को पोषण न मिलने से उसका फिरना बंद हो जाता है तथा वह सुख पढ़ जाता है तथा गर्भवती स्त्री जब आवश्यकता के अनुसार आहार किये हुए रहती है उस समय गर्भ जितना फिरता है उतना उपवास के दिन नहीं फिरता है क्यों कि वह पोषण के लिये वरू मारता है (बोर लगाता है) तथा थोड़ी देरतक वरू मारकर स्थिर हो वाता है, इस लिये गर्भवती स्त्री को उपवास नहीं करना चाहिये, ख़राकमें अनियमितः पन भी नहीं करना चाहिये, दोहद होने पर भी मन को कानू में रखना चाहिये वो पदार्थ हानिकारक न हो वही स्नाना चाहिये किन्तु जो अपने मनमें आवे वही स्ना छेने से हानि होती है, गर्भिणी को सदा हरूकी ख़राक छेनी चाहिये किन्तु जिस सी का शरीर जोरावर भौर युष्कल (पूरा, काफी) रुघिर से युक्त हो उस को तो यथार्शक्य कांजी, दूघ, धी और वनस्पति आदि के हलके आहार पर ही रहना चाहिये, गर्म ख़राक, सद्दा पदार्थ, कचा मेना, भति सारा, अति तीसा, रूसा, ठंढा, अति कहुआ, निगड़ा हुआ अर्थात् अमकृषा अथवा जला हुआ, दुर्गन्मयुक्त, बातल (बादी करनेवाला) पदार्थ, फफ़्ंदीवाला, सड़ा हुआ, सुपारी, मिट्टी, घूल, राख और कोयला आदि पदार्थ बहुत विकार करते हैं इस लिये यदि इन के खाने को मन चले तथापि मन को समझा कर (रोक कर) इन को नहीं खाना चाहिये, गर्भवती को तीक्ष्ण (तेज) जुलाब भी नहीं लेना चाहिये, यदि कभी कुछ दर्द हो बावे तो किसी अज्ञ (अजान, मूर्ख) वैद्य की दवा नहीं लेनी चाहिये किन्तु किसी चतुर वैद्य वा डाक्टर की सलाह लेकर दर्द मिटने का उपाय करना चाहिये किन्तु दर्द को बढने नहीं देना चाहिये।

गर्भवती को चाहिये कि-सर्वी और गीलेपन से शरीर को बचावे, जागरण न करे, जल्दी सोवे और सर्योदयसे पहिले उठे, मनको दुःखित करनेवाले चिन्ता और उदासी आदि कारणों को दर रक्खे, सयंकर खांग तथा चित्र आदि न देखे, अन्य गर्भिणी स्त्री के प्रसवसमय में उस के पास न जावे, अपनी प्रकृति को शान्त रक्ले, जो वार्ते नापसन्द हों उन को न करे, अच्छी २ बातों से मन को ख़ुश रक्खे, धर्म और नीति की वातें सन के मन को इद करे. यदि मन में साहस और उत्साह न हो तो उसमें साहस और उत्साह कावे (उत्पन्न करे), जिन बातों के सुनने से करूह अथवा मय उत्पन्न हो ऐसी वार्ते न सने, नियमानुसार रहे, अलंकार का धारण करे, सावधानता से पति के प्रिय कार्यों में प्रेम रक्खे, अपने धर्म में प्रीति रक्खे, पवित्रता से रहे, मधुरता के साथ धीमे स्तर से बोले, परमेश्वर की भक्ति में चित्त रक्खे, मनोवृत्ति को वर्म तथा नीतिकी ओर लाने के किये अच्छे २ प्रस्तक बांचे, प्रणों की माला पहरे, सगन्यत तथा चन्दन आदि पदार्थीका लेप करे. खच्छ घर में रहे, परोपकार और दान करे, सब जीवों पर दया रक्ले, साम्र इबग्रर तथा ग्ररुजन मादि की मर्यादा को स्थिर रक्से तथा उन की सेवा करे, कपाल (मस्तक) में कुंक्रम (रोरी या सेंदुर) का टीका (बिन्दु) तथा आंखों में कावल आदि : सौमाग्यदर्शक चिह्नों को घारण करे. कोमल और खच्छ बखसे आच्छादितः विस्तरपर सोवे तथा वैठे, अच्छी तथा गुणवाली वस्तुओं पर अपना माव रक्खे, धार्मिक, नीतिमान : परा-कभी और बिष्ठ आदि उत्तम गुणवान् स्त्री पुरुषों के चरित्र का मनन करे तथा ऐसा ही उत्तम गुणों से सम्पन्न और रूपवान मेरे भी सन्तान हो ऐसी मन में मावना रक्खे. उत्तम चरित्रों से प्रसिद्ध स्त्री पुरुषों के, मनोहर पशु और पक्षियों के तथा उत्तम २ वृक्षों के सुन्दर और सुशोमित चित्रों आदि से अपने सोने तथा बैठने के कमरे को मन की प्रस-घता के लिये अशोमित रक्खे, अन्दर और मनोरक्कन (मन को ख़श करनेवाले) गीत गाकर और झन कर मन को सदा आनन्द में रक्खे, जिस से अनायास (अचानक) ही मन में उद्वेग अथवा अधिक हर्ष और शोक उत्पन्न हो जावे ऐसा कोई पदार्थ न देखे. न ऐसी वात सुने और न ऐसे किसी कार्य को करे, किसी वात पर पश्चाताप (पछतावा) न करे तथा पश्चात्ताप को पैदा करने वाले आचरण (वर्त्ताव, व्यवहार) को यथाशक्य

(जहांतक होसके) न करे, मळीन न रहे, विवाद (झगड़े) का त्याग करे, दुर्गिन्ध से दूर रहे, छले, लंगड़े, काने; कुबड़े; बिहरे और गूंग आदि न्यूनांग का तथा रोगी आदि का स्पर्श न करे और उन को अच्छी तरह से चित लगाकर देखे, घर में निर्द्रन्द्र (कल्ह आदि से रिहत वा एकान्त) स्थान में रहे, विशेष द्वंद्रनाले स्थान में न रहे, श्मशान का आश्रय; क्रोध; कंचा चढ़ना; गाड़ी घोड़ा आदि वाहन (सवारी) पर बैठना; कंचे लर से बोलना; वेगसे चलना; दौड़ना; कूदना; दिन में सोना; मैथुन; जल में हुनकी मारना (गोता लगाना); शून्य घर में तथा वृक्ष के नीचे बैठना; क्लेश करना; अंग मरोड़ना; लोह निकालना; नख से पृथिवी को करोदना अथना लकीर करना; अमंगल और अपशब्द (बुरे वचन) बोलना; बहुत हँसना; खुले केश रहना; वैर, विरोध, द्वेष, छल, कपट, चोरी, जुआ, मिथ्यावाद, हिंसा और बैमनस्य, इन सब बाँतों का त्याग करे—क्योंकि—थे सब बातें गिमिणी स्नीको और गर्म को हानि पहुंचाती है।

सरण रहना चाहिये कि अच्छे या बुरे सन्तान का होना केवल गर्मिणी स्त्री के व्यव-हार पर ही निर्मर है इस लिये गर्भवती स्त्री को निरन्तर नियमानुसार ही वर्ताव करना चाहिये जो कि उस के लिये तथा उस के सन्तान के लिये श्रेयस्कर (कल्याणकारी) है॥

यह तृतीय अध्यायका--गर्भाषान नामक तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

चौथा प्रकरण-बालरक्षण ॥

इस में कोई सन्देह नहीं है कि—सन्तान का उत्पन्न होना पूर्वकृत परम पुण्यकाही प्रताप है, जब पति और पत्नी अत्यन्त प्रीति के बशीमृत होते है तब उन के अन्तर्भं किएण के तत्व की एक आनन्दमयी गांठ बँधती है, बस नहीं सैन्तान है, वास्तव में सन्तान भाता पिता के आनन्द और प्रस्त का सागर है, उस में भी माता के प्रेम का तो एक हुड़ बन्धन है. सन्तान ही सन्ताष और शान्ति का देनेवाला है, उसी के होने से बह

^{9—}स्योंकि बहुत से चेपी रोग होते हैं (जिनका वर्णन आगे करेंगे) अत: गर्भवती को किसी रोगी की भी स्पर्श नहीं करना चाहिये तथा रोगी और काने छुठे आदि न्यूनाग को घ्यान पूर्वक देखना मी वर्षा चाहिये क्यों कि इस का प्रमान वालक पर दुरा पड़ता है ॥

२—मैथुन करने से गर्मस्थ वालक के निकल पढ़ने का सम्मन होता है—इस के सिनाय मैथुन गर्माधान के लिये किया जाता है जब कि गर्म स्थित ही है तव मैथुन करने की क्या आवस्थकता है ॥

३-इन में से बहुत सी बातों की हानि तो पूर्व कह चुके है, शेव वार्तों के करने से उत्पन्न होनेवाठी हानियों को बुद्धिमान, सब्य विचार कें अथवा प्रन्थान्तरों में देख कें।

४-इसी लिये कहा गया है कि-"आत्मा वै जायते पुत्रः" इसादि ॥

संसार आनन्दमय रुगता है, घर और कुटुम्च शोमा को प्राप्त होता है, उसी से माता पिता के मुखपर धुख और आनन्द की आमा (रोशनी) झरूकती है उसी की कोमल प्रमा से खी पुरुष का जोड़ा रमणीक रुगता है, तात्पर्य यह है कि-आरोग्यावस्था में तथा हर्ष के समय में बालक को दो घड़ी खिलाने तथा उस के साथ चित्त विनोद के आनन्द के समान इस संसार में दूसरा आनंन्द नहीं है, परन्तु स्मरण रहना चाहिये कि-आरोग्य, धुशील, धुषड़ और उत्तम सन्तान का होना केवल माता पिता के आरोग्य और सदाचरण पर ही निर्भरें है अर्थात् यदि माता पिता अच्छे, धुशील; धुषड़ और नीरोग होंगे तो उन के सन्तान भी प्रायः वैसे ही होंगे, किन्तु यदि माता पिता अच्छे, धुशील, धुषड़ और नीरोग होंगे तो उन के सन्तान भी प्रायः वैसे ही होंगे, किन्तु यदि माता पिता अच्छे, धुशील, धुषड़ और नीरोग नहीं होंगे तो उन के सन्तान भी उक्त गुणों से युक्त नहीं होंगे।

यह भी बात स्मरण रखने के योग्य है कि—बालक के जीवन तथा उस की अरोगता के स्थिर होने का मूल (जड़) केवल बाल्यावस्था है अर्थात् यदि सन्तान की बाल्यावस्था नियमानुसार न्यतीत होगी तो वह सदा नीरोग रहेगा तथा उस का जीवन भी सुल से कटेगा, परन्तु यह सब ही जानते हैं कि—सन्तान की बाल्यावस्था का मुख्य मूल और आधार केवल माता ही है, क्योंकि जो माता अपने वालक को अच्छी तरह संमाल के सन्मार्ग पर चलाती है उस का बालक नीरोग और मुली रहता है तथा जो माता अपने सन्तान की बाल्यावस्था पर ठीक ध्यान न देकर उस की संमाल नहीं करती है और न उस को सन्मार्ग पर चलाती है उस का सन्तान सदा रोगी रहता है और उसको सुल की माप्ति नहीं होती है, सत्य तो यह है कि—बालक के जीवन और मरण का सब आधार तथा उस को अच्छे मार्ग पर चला कर बड़ा करना आदि सब कुछ मीता पर ही निर्मर है, इसलिये माता को चाहिये कि—बालक को शारीरिक मानसिक और नीति के नियमों के अनुसार चला कर बड़ा करे अर्थात् उसका पालन करे।

परन्तु अत्यन्त शोक के साथ िखना पड़ता है कि-इस समय इस आयीवर्त्त देश में उक्त नियमोंको भी मातायें विलक्षक नहीं जानती हैं और उक्त नियमों के न जानने से वे

१-क्योंकि नीतिशास्त्रों में लिखा है कि-"अपुत्रस्य गृह श्रून्यम्" अर्थात् पुत्ररहित पुरुष का घर श्रून्य है।। १-माता पिता और पुत्र का सम्बन्ध वास्तव में सरस वीख और वृक्ष के समान है, जैसे जो घुन

रान्ताता विता जार युत्र का सम्बन्ध वास्तव म सरस वाज जार वृक्ष क समान है, जस जा घुन गाबि जन्तुओं से न खाथा हुआ तथा सरस वीज होता है तो उससे मुन्दर; सरस और फूला फला हुआ वृक्ष उत्पन्न हो सकता है, इसी प्रकार से रोग आदि दूसणों से रहित तथा सदाचार आदि गुणों से युक्त माता पिता भी मुन्दर, बलिष्ठ; नीरोग और सदाचारवाळे सन्तान को उत्पन्न कर सकते है।

३-क्योंकि लिखा है कि-आहाराचारचेष्टामिर्यादशीमि समन्विती ॥ स्वीपुसी समुपेयाता तयो पुत्रोऽिप साहराः ॥ १ ॥ अर्थात् जिस प्रकार के आहार आचार और चेष्टाओं से युक्त माता पिता परस्पर सङ्गम करते हैं उन का पुत्र सी बैसा ही होता है ॥ १ ॥

४-इसी लिये पिता की अपेक्षा माता का दर्जा वडा माना गया है ॥

नियम विरुद्ध मनमानी रीति पर चला कर वालक का पालन पोषण करती हैं, इसी का फल वर्तमान में यह देखा जाता है कि—सहस्रों वालक असमय में ही ग्रत्युके आधीन हो जाते हैं और जो वेचारे अपने पुण्य के योग से ग्रत्युके आस से वचमी जाते हैं तो उन के शरीर के सब बन्धन निर्वल रहते हैं, उन की आकृति फीकी मुख और निस्तेल रहती है, उन में शारीरिक मानसिक और आसिक वल विलक्षल नहीं होता है।

देखो ! यह खाभाविक (कुदरती) नियम है कि—संसार में अपना और दूसरों का जीवन सफल करने के लिये अच्छे पाणी की आवश्यकता होती है, इसलिये यदि सम्पूर्ण प्रजा की उन्नति करना हो तो सन्तान को अच्छा प्राणी बनाना चाहिये, परन्तु वहे ही अफ़सोस की बात है कि—इस विषय में वर्तमान में अत्यन्त ही असावधानता (लापर-वाही) देखी जाती है।

हम देखते हैं कि—घोड़ा और बैळ आदि पशुओं के सन्तान को बिल हु; चाल कि; तेज़ और अच्छे लक्षणों से युक्त बनाने के लिये तो अनेक उपाय तन मन घन से किये जाते हैं; परन्तु अत्यन्त शोक का विषय है कि इस संसार में जो मनुष्य जाति सुख्यतया सुख और सन्तोष की देनेवाली है तथा जिसके सुधरने से सन्पूर्ण देश के कल्याण की सन्मावना

और जाशा है उस के सुवार पर कुछ भी व्यान नहीं दिया जाता है !

पाठकगण इस विषय को अच्छे प्रकार से जान सकते हैं और इतिहासों के द्वारा जानते भी होंगे कि—जिन देशों और जिन जातियों में सन्तान की वाल्यावस्था पर ठीक ध्यान दिया जाता है तथा नियमानुसार उसका पाठन पोषण कर उसको सन्मार्ग पर चलाया जाता है उन देशों और उन जातियों में प्रायः सन्तान अधम दशा में न रह कर उच्च दशाको प्राप्त हो जाता है अर्थात् शारीरिक मानसिक और आत्मिक आदि बळों से परिपूर्ण होता है, उदाहरण के लिये इंग्लेंड आदि देशों को और अंग्रेज तथा पारसी आदि जातियों में देख सकते है कि उन की सन्तित प्रायः दुर्ज्यसनों से रहित तथा ध्रशिक्षित होती है और वल वृद्धि आदि सव गुणों से युक्त होती है, क्योंकि—इन लोगों में प्रायः वहुत ही कम मूर्ख निर्गुणी और शारीरिक आदि वलों से हीन देखे जाते है, इसकं कारण केवल यही है कि—उन की वाल्यावस्था पर पूरा ध्यान दिया जाता है अर्थात नियमानुसार वाल्यावस्था में सन्तित का पाठन पोषण होता है और उस को श्रेष्ठ गिक्षा आदि दी जाती है।

यद्यपि पूर्व समय में इस सार्यावर्त देशमें भी माता पिता का ध्यान सन्तान को बलिष्ठ और सुयोग्य बनाने का पूरे तौर से या इसिल्ये यहां की आर्यसन्तित सब देशों की अपेक्षा सब बलों और सब गुणों में उन्नत थी और इसी लिये पूर्वसमयमें इस पवित्र भूमि में अनेक मारतरत्व हो चुके हैं, जिन के नाम और गुणों का सरण कर ही हम सब अपने

को कृतार्थ मान रहे हैं तथा उन्हीं के गोत्र में उत्पन्न होने का हम सब अभिमान कर रहे हैं, परन्तु जबसे इस पवित्र आर्थभूमि में अनिवाने अपना घर बनाया तथा माता पिता का ध्यान अपनी सन्तित के पाठन पोषण के नियमों से हीन हुआ अर्थात् माता पिता सन्तित के पाठन पोषण बादि के नियमों से अनिमज्ञ हुए तब ही से आर्थ जाति अत्यन्त अधोगति को पहुंचगई तथा इस पवित्र देश की वह दशा हो गई और हो रही है कि—जिसका वर्णन करने में अश्रुधारा वहने उगती है और ठेखनी आगे बदना नहीं चाहती है, यद्यपि अब कुछ छोगों का ध्यान इस ओर हुआ है और होता जाता है—जिससे इस देश में भी कहीं २ कुछ प्रधार हुआ है और होता जाता है, इस से कुछ सन्तोष होता है क्योंकि—इस आर्यवर्धन्तर्यत कोर होता जाता है, परन्तु हम को इस बात का वड़ा सारी होक है कि—इस मारवाड़ देश में हमारे माइयों का ध्यान अपनी सन्तित के सुधारका अभीतक तिनक भी नहीं उत्पन्न हुआ है और मारवाड़ी माई अभीतक गहरीं नींद में पड़े सो रहे है, यद्यपि यह हम सेक्क कुछ सकते है कि पूर्व सैमय में अन्य

१--हमने अपने परम पूज्य स्वर्गवासी गुरु जी महाराज श्री विश्वनचन्द्जी मुनि के श्रीमुख से कई बार इस बात को सुना था कि-पूर्व समय में मारवाड देश में भी छोगों का व्यान सन्तान के सुधार की ओर पूरा था, गुरुजी महाराज कहा करते ये कि 'हम ने देखा है कि-सारवाट के अन्दर क्रक वर्ष पहिछ धनाव्य परवों में सन्तानों के पालन और उनकी क्षिक्षा का क्रम इस समय की अपेक्षा लाख दर्जे अच्छा था अर्थात् उन के यहा सन्तानो के अगरक्षक प्रायः कुलीन और वृद्ध राजपुत्र रहते थे तथा प्रशीक गृहस्थों की क्षिया उन के घर के काम काख के छीये नौकर/रहती थीं, उन धनाव्य पुरुषों की क्षियां नित्य धर्में।पदेश धुना करती थीं, उन के वहां जब सन्तति होती थी तब उस का पालन अच्छे प्रकार से निय-मानुसार क्षियां करती थीं तथा उन बालको को उक्त कुलीन राजपुत्र ही खिलाते थे, क्योंकि 'विनसी राज-पुत्रेभ्यः', यह नीति का नाक्य है-अर्थात् राज्यत्रों से विनय का प्रहण करना चाहिये. इस कथन के अनुकृक्त व्यवहार करने से ही उन की कुळीनता सिद्ध होती है अर्थात बालको को बिनय और नमस्काराहि वे राजपुत्र ही सिखलाया करते थे; तथा जब बालक पीच वर्षका होता था तब उस को बति वा अन्य किसी पण्डित के पास निवास्त्रास करने के छिये भेजृती छुह करते थे, स्योकि यति वा पण्डितो ने बालको को पढ़ाने की तथा सदाचार सिख़ज़ाने की रीति सक्षेप से अच्छी नियमित कर (वाघ) रक्तकी थी अर्थात पहाडों से केकर सव हिसाव किंताव सामायिक प्रतिकामण आदि धर्मकृत्य और व्याकरण विषयक प्रयमसन्धि (जो कि इसी प्रन्थ में हमने शुद्ध लिखी है) और चाजका नीति आदि आवश्यक प्रन्थ ने बालको को अर्थ सहित अच्छे प्रकार से खिखला दिया करते थे, तथा उक्त अन्यों का ठीक बोघ हो जाने से ने गृहस्थों के सन्तान हिसाब में; वर्मकृष्य में और नीति ज्ञान आदि निषयों में पके हो जाते थे, यह तो सर्वसाधारण के लिये उन निद्वानों ने कम बांध रकूखाया किन्तु जिस बारुक की बुद्धि को वे (विद्वान्) अच्छी देखते थे तथा बालक के माता पिता की इच्छा विशेष पढाने के लिये होती थी तो वे (विद्वान्) उस बालक को तो सर्वे विषयों में पूरी शिक्षा देकर पूर्व विद्वान कर देते थे, इस्लादि, पाठक गण विचार की जिये कि-इस भारवाड देश में पूर्व काल में साधारण शिक्षा का कैसा अच्छा कम वेंघा हुआ था, और केवल यही कारण है कि उक्त शिक्षाकम के प्रमान से पूर्वकाल में इस मारवाड़ देश में भी अच्छे २ नामी और घर्मात्मा

पुरुष हो गये हैं, जिन में से कुछ सज्जनों के नाम यहां पर लिखे बिना लेखनी आगे नहीं बढती है-इस लिये कुछ नामों का निदर्शन करना ही पडता है, देखिये-पूर्वकाल में कखनकानिवासी लाला गिरधारी-खालजी, तथा मकसूदाबादनिवासी ईश्वरदासजी और राय वहादुर मेघराजजी कोठारी वहे नामी पुरुष हुए हैं और इन तीनों महोदयों का तो अभी थोड़े दिन पहले खर्मनास हुआ है, इन सलनों में एक वहां भारी विशेषता यह थी कि इन को जैन सिद्धान्त गुरूगम शैळी से पूर्णतया सम्यस्त था जो कि इस समय जैन गृहस्थों में तो क्या किन्तु उपदेशको मे भी दो ही चार में देखा जाता है. इसी प्रकार मारवाड देशसा. देशनोक के निवासी-सेठ श्री मगन मळजी झावक भी परमकीर्तिमान तथा धर्मात्मा हो गये हैं। किन्तु यह तो इस बड़े हर्ष के साथ लिख सकते हैं कि-हमारे जैन मतात्रयायी अनेक स्थानों के रहनेवाले अनेक द्यजन तो उत्तम शिक्षाको प्राप्तकर सदाचार में स्थित रहकर अपने नाम और कीर्ति को सचल कर गये है जैसे कि-रायपुर में गम्मीर मल जी डागा, नागपुर में हीरालाल जी जीहरी. राजनांद ग्राम में भासकरण जी राज्यदीवान आदि अनेक श्रावक कुछ दिन पहिले विश्वमान थे तथा कुछ प्रजन अव'भी अनेक स्थाने में विद्यमान हैं परन्तु अथ के वह जाने के मय से उन महोदयों के नाम अधिक नहीं लिख सकते हैं. इन महोदयों ने जो कुछ नाम: कीर्ति और यहा पाया वह सब इन के सुयोग्य माता पिता की श्रेष्ठ शिक्षा का ही प्रताप समझना नाहिये, देखिये वर्तमान में जैनसंत्र के अन्दर-जैन खेताम्बर कान्प्रेंस के जनमहाता श्रीयत ग्रकावचन्द्रश्री ब्हा एम. ए. आदि तथा अन्य मत मे भी इस समय पारसी दादामाई नौरोजी. वाल गगाधर तिलक, लाला लाजपतराय. बाब सरेंद्रनाय. गोखले और मदनमोहन जी मालवी आदि कई सजन कैसे २ विद्वान परोपकारी और देशहितैषी प्ररुष हैं-जिन को तमाम आर्यावर्त्तनिवासी जन भी प्रिक कर यदि करोडों धन्यवाद दें तो भी बोडा है. ये सब महोदय ऐसे परम सुयोग्य कैसे हो गये. इस प्रश्न का उत्तर केवल वही है कि-इन के सुयोग्य माता पिता की श्रेष्ठ शिक्षा का ही वह प्रताप है कि-जिस से ये सुयोग्य और परम कीर्तिमान हो गये हैं, इन महोदवों ने कई बार अपने सावणों में भी उक्त विषय का कथन किया है कि-सन्तान की बीस्यावस्था पर माता पिता को पूरा २ व्यान देना चाहिये अर्थाद नियमानसार बालक का पालन पोषण करना चाहिये तथा उस को उत्तम शिक्षा देनी चाहिये स्लाहि, जो लोग अखनारों को पहते हैं उन को यह बात अच्छे प्रकार से बिदित है, परन्तु वह शोक का विषय तो यह है कि बहुत से छोग ऐसे किसाहीन और प्रमादयुक्त है कि-ने अखवारों को नी नहीं पढते हैं जब यह दशा है तो मला उन को सत्प्रशो के भाषणों का विषय कैसे हात होसकता है ! बास्तव में ऐसे कोगों को मनुष्य नहीं किन्द्र पशुवद समझना चाहिये कि जो ऐसे २ देशहितैयी महोदयों के सदाचार और योग्यता को तो क्या किन्तु उन के नाम से भी अनिमन्न हैं! कहिये इस से बढ़कर और अन्वेर क्या हो गा 2 इस समय जब हम दृष्टि उठा कर अन्य देशों की तरफ देखते हैं तो झात होता है कि-अन्य देशों में कुछ न कुछ चालकों की रक्षा और शिक्षा के लिये आन्दोलन हो कर यथाञ्चक्ति उपाय किया जारहा है परन्त मारवाड देश में तो इस का नाम तक नहीं धुनाई देता है, ऊपर जो प्रणाठी (पूर्वकाल की सारवाद देश की) लिख चुके हैं कि-पूर्व काल में इस प्रकार से बालकों की रक्षा और शिक्षा की जाती थी-वह अब मारवाड देश में बिलकुल ही बदल गई, बालकों की रक्षा और शिक्षा तो बूर रही, मारवाब देश में तो यह दशा हो रही है कि-जब बालक चार पाच वर्ष का होता है, तब माता अति काट और प्रेम से अपने पुत्र से कहती है कि, "अरे बनिया। यारे वींदणी गोरी छानो के काली" (अरे वनिये। तेरे वास्ते गोरी दुलहिन लावें या काली लावें) इलादि, इसी अकार से वाप आदि बढ़े लोंगों को गाली देना मारना और वाल नोचना सादि अनेक कुत्सित शिक्षा ये वालकों को दी जाती हैं तथा कुछ बड़े होने पर कुसंग दोष के कारण उन्हें ऐसी युस्तकों के पढ़ने का अवसर दिया जाता है कि, जिन

देशों के समान इस देश में भी अपनी सन्तित की ओर पूरा २ घ्यान दिया जाता था, इसी लिये यहां भी पूर्वसमय में बहुत से नामी पुरुष हो गये हैं, परन्तु वर्त्तमान में तो इस देश की दशा उक्त विषय में अत्यन्त शोचनीय है क्योंकि—अन्य देशों में तो कुछ न कुछ

के पढ़ने से उन की मनोवृत्ति अल्यन्त चम्रक; रिसक और विषयविकारों से युक्त हो जाती है. फिर देखिये! कि, इव्य पात्रों के घरो में नौकर चाकर आदि प्रायः छह जाति के तथा छव्यसनी (युरी आदतवाले) रहा करते हैं-वे लोग अपनी खार्थितिह के लिये वालको को उसी रास्ते पर बालते हैं कि, जिस से उनकी खार्थतिहिं होती है, बालकों को विनय आदि की शिक्षा तो दर रही किन्त इस के बदले वे लोग भी मामा चाचा और हरेक पुरुष को गाठी देना सिखलाते हैं और उन बासकों के माता पिता ऐसे भोले होते हैं कि, ने इन्हीं वातों से वडे प्रसन्न होते हैं और उन्हें प्रसन्न होना ही चाहिये, जब कि वे खब शिक्षा और सदाचार से हीन हैं. इस प्रकार से क्रसंगति के कारण वे बालक विलक्कल विगड जाते हैं उन (वालको) को विद्वान; सदाचारी; धर्मारमा और स्वोक्य पुरुषों के पास बैठना भी नहीं सहाना है, किन्त्र उन्हें तो नाचरंग, उत्तम शरीर शवार: देखा आदि का त्रख, उस की तीखी नितवन; सांग आदि नशोका पीना; नाटक व खाग आदि का देखना: उपहास: उड्डा और गाळी आदि कुत्सित शब्दों का मुख से निकालना और सुनना जादि ही अच्छा कगता है, दुष्ट नौकरों के सहबास से उन वालकों में ऐसी २ दुरी आदर्ते पढ जाती है कि-जिन के लिखने में केखनी को भी कवा आती है, यह दो बिनय और सदाबार की दशा है. सव उन की शिक्षा के प्रवध को सुनिये-इन का पटना केवळ सी पहाडे और हिसाब किताब साज है, सो भी अन्य लोग पढावे हैं, माता पिता वह भी नहीं पढा सकते हैं, अब पढानेवाला की दशा स्तिये कि-पढानेवाले भी उक्त हिसाव किताव और पहाडों के सिवाय कुछ भी नहीं जानते है. उन को यह भी नहीं माळम है कि न्याकरण, नीति और धर्मशास्त्र आदि किस चिडिया का नाम है. क्षव जो व्याकरणानार्य कहलाते हैं जरा उन की भी दशा सुन लीजिये-उन्हों ने तो व्याकरण की जो रेड मारी है-उसके विषय में तो लिखते हुए लब्बा आती है-प्रथम तो वे पाणिनीय आदि व्याकरणों का नाम तक नहीं जानते हैं, केवल 'सिद्धो वर्णसमान्नायः,' की प्रथम सन्धिमात्र पहते हैं, परन्तु वह भी महाश्रद्ध जानते और सिखाते हैं (वे जो प्रथम क्षन्यको अश्रद्ध जानते और सिखाते हैं वह इसी प्रन्यके प्रथमाध्याय में लिखी गई है वहा देखकर बुद्धिमान् और विद्वान् पुरुष समझ सकते हैं कि-प्रथम सन्धि को उन्हों ने कैसा विगाड रक्सा है) उन पढानेवाओं ने अपने सार्थ के किये (कि हमारी पोल न खुल जाने) मोले प्राणियों को इस प्रकार वहका (भरमा) दिया है कि वालकों को चाणक्य नीति आदि प्रन्य नहीं पढ़ाने चाहियें क्योंकि-इनके पटते से बालक पागळ हो जाता है, बस यही वात सन के दिलों में घुस गई, कहिये पाठकगण । जहां निवा के पढ़ने से वालकों का पागल हो जाना समझते हैं उस देश के लिये हम क्या कहें ! किसी कविने सत्य कहा है कि-"अविद्या सर्व प्रकार की घट घट माहि अही । को काको समुसावही कूपहिं साग पढी" ॥ १ ॥ अर्थात् सब प्रकार की अविद्या जब प्रस्थेक पुरुष के दिल में घुस रही है तो कौन किस को समझा सकता है क्योंकि घट २ में अविद्या का द्वस जाना तो कुए में पड़ी हुई माग के समान है, (जिसे पीकर मानो सब ही वावले वन रहे हैं), अन्त में अब हमें यही कहना है कि-यदि मारवाडी माई ऐसे प्रकाश के समय में भी शीध नहीं जारेंगे तो कालान्तर में इस का परिणाम बहुत ही सवानक हो गा, इस लिये मारवाडी साहयो को अब भी सोते नहीं रहता चाहिये किन्तु शीघ्र ही उठ कर अपने को और अपने हृदय के ट्रकडे प्यारे बालकों को संमालना चाहिये-क्योंकि यही उन के लिये श्रेयस्कर है ॥

सुघार के उपाय सोचे और किये भी जा रहे हैं, परन्तु मारवाड़ तो इस समय में ऐसा हो रहा है कि मानों नशा पीकर गाफिल होकर घोर निद्रा के वशीमृत हो रहा हो, इस लिये वर्त्तमान में तो इस मारवाड़ देशकी सन्तित का सुधार होना खित कठिन प्रतीत होता है, भविष्यत् के लिये तो सर्वज्ञ जान सकता है कि क्या होगा, अस्तु ।

प्रिय पाठकगण ! वर्तमान में स्त्रियों में शिक्षा न होने से अत्यन्त हानि हो रही है अर्थात् गृहस्थसुर का नाश हो रहा है निद्या और वर्म आदि सद्गुणों का प्रचार रुक जाने से देशकी दशा विगड रही है तथा नियमानुसार बालकों का पालन पोषण और शिक्षा न होने से भविप्यत् में और भी विगाड़ तथा हानि की पूरी सम्मावना हो रही है, इस लिये आप लोगों का यह परम कर्तव्य है कि इस गयंकर हानि से वचने का परा प्रयत करें, जो अवतक हानि हो चुकी है उस के लिये तो कुछ भी प्रयत नहीं हो सकता है-इस लिये उस के लिये तो शोक करना भी व्यर्थ है, हां भविष्यत में जो हानि की संमावना है उस हानि के लिये हम सब को प्रयत करना अति आवश्यक है और उस के लिये यदि आप सब चाहें तो प्रयत्न भी हो सकता है और वह प्रयत्न केवल यही है कि--हम सब अपनी क्षियों वर्हिनों और पुत्रियों को वह शिक्षा देवें कि जिस से वे सन्तान रक्षाके नियमों को ठीर्क रीति से समझ जावें, क्योंकि जव क्षियों को सन्तानरक्षा के नियमों का ज्ञान ठीक रीति से हो जावेगा और वे वालकों की उन्ही नियमों के अनुसार रक्षा और शिक्षा करेंगी तब अवस्य बालक नीरोग; सुखी; चतुर; बलिष्ठ; कदाबर (बहे कद के:) तेजसी: पराक्रमी: शूर वीर और दीर्घायु होंगे और ऐसे सन्तानों के होने से शीघही कुटुम्ब; कुछ; प्राम और देशका उद्धार होकर कल्याण हो सकेगा इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

सन्तानरक्षा के नियम यद्यपि अनेक वैद्यक आदि अन्यों में वतलाये गये हैं—जिन्हें बहुत से सज्जन जानते भी होंगे तथापि प्रसंगवश्च हम यहां पर सन्तानरक्षा के कुछ सामान्य नियमों का वर्णन करना आवश्यक समझते है—उनमें से गर्मदशासम्बन्धी कुछ नियमों का तो संक्षेप से वर्णन पूर्व कर चुके है-अब सन्तान के उत्पत्ति समय से लेकर कुछ आवश्यक नियमों का वर्णन स्त्रियों के ज्ञान के लिये किया जाता है:—

१—मिलि—गर्भस्थान में बालक का पोषण नाल से ही होता है, जब बालक उत्पन्न होता है तब उस नालका एक सिरा (छोर वा किनारा) मीतर ओरतक लगा हुआ होता है इस लिये नाल को नामिसे ढाई वा तीन इस के अनन्तर (फासले) पर चारों तरफ से मुलायम कपड़े या रुई से लपेट कर एक मज़बूत डोरीसे कसकर बांघ लेना चाहिये फिर ओर तरफ का नाल का सिरा काट देना चाहिये, अब जो ढाई वा तीन इसका

नालका हुकड़ा शेष रहा उस को पेट पर रखकर उस पर मुलायम कपड़े की एक पट्टी बांध लेना चाहिये-क्योंकि मुलायम कपड़े की पट्टी बांध लेने से नाल की ठीक रक्षा (हिफाज़त) रहती है और वह पट्टी पेटपर रहती है इस लिये पेट में वायु भी नहीं बढ़ने पाता है तथा पेट को उस पट्टी से सहारा भी मिलता है, नाल के चारों तरफ कपड़ा लपेट कर जो डोरी बांधी जाती है उस का प्रयोजन यह है कि—बालक के शरीर में जो रुधिर धूमता है वह नालके द्वारा बाहर नहीं निकलने पाता है, क्योंकि डोरी बांधदेनेसे उस का बाहर निकलने से अवरोध (रुकावट) हो जाता है—क्योंकि रुधिर जो है वही बालक का प्राणरूप है, यदि वह (रुधिर) बाहर निकल जावे तो बालक शील ही मर जावे, यदि कभी धोले से नाल ढीला बंधा रह जावे और रुधिर कुल बाहर निकलता हुआ बालस होवे तो शील ही युक्ति से मुलायम हाथ से उस डोरी को कसकर बांध देना चाहिये, यदि नाल पर चोट लगने से कदाचित् रुधिर निकलता होवे तो उस के उपर करवे का बारीक चूर्ण अथवा चने का आटा बुरका देना चाहिये अथवा रुधिर निकलने के स्थान पर मकड़ी का जाला दाव देने से भी रुधिर का निकलना बंद हो जाता है।

बहुत से छोग नाल को बांघ कर उस की डोरी को बालक के गले में रक्खा करते हैं परन्तु ऐसा करना ठीक नहीं है— क्योंकि—ऐसा करने से कभी २ उस में बालक का हाथ इघर उघर होने में फँस जाता है तो उस को बहुत ही पीड़ा हो जाती है, उस का हाथ पक जाता है वा गिर पड़ता है और उस से कभी २ बालक मर भी जाता है, इस लिये गले में डोरी नहीं रखनी चाहिये किन्तु पेट पर नाल को पट्टी से ही बांघना उत्तम होता है।

नाल अपने आप ही पांच सात दिन में अथवा पांच सात दिन के बाद दो तीन दिन में ही गिर पड़ता है इसिल्ये उस को खींच कर नहीं निकालना चाहिये, जबतक वह नाल अपने आप ही न गिर पड़े तबतक उस को वैसा ही रहने देना चाहिये, यि नाल कदाचित पक जावे तो उस पर कर्ल्ड (सफेदा) लगा देना चाहिये, यि नालपर शोथ (स्जन) होवे तो अफीम को तेल में विसकर उसपर लगा देना चाहिये तथा उसपर अफीम के डोड़े का सेक मी करना चाहिये।

२ स्तान - ऊपर कही हुई रीति के अनुसार नाल का छेदन करने के पश्चात् यदि इंट हो तो बालक को फलालेन बनात अथवा कम्बल आदि गर्म कपड़ेपर छुलाना चाहिये और यदि उंट न हो तो चारपाई पर कोई हलका छुलायम वस्न बिल्लाकर उसपर वालक को छुलाना चाहिये, इस कार्य के करने के पीछे प्रथम बालक की माता की उचित हिफ़ाज़त करनी चाहिये, इस के पीछे वालक के शरीरपर यदि श्वेत चरवी के समान चिकना पदार्थ लगा हुआ होवे तो उस को साफ करने के लिये प्रथम वालक के शरीरपर तेल मसलना चाहिये तत्पश्चात् साबुन लगा-कर गुनगुने (कुछ गर्म) पानी से मुलायम हाथ से बालक को खान कराके साफ करना चाहिये, परन्तु खान कराते समय इस बात का पूरा ख़्याल रखना चाहिये कि उस की आंख में तेल साबुन वा पानी न चला जावे, प्रस्ति के समय में पास रहने वाली कोई चतुर ली वालक को खान करावे और इस के पीछे प्रतिदिन बालक की माता उस को खान करावे।

स्नान कराने के लिये प्रातःकालका समय उत्तम है— इस लिये यथाशक्य प्रातःकाल में ही स्नान करना चाहिये, स्नान कराने से पहिले बालक के थोड़ासा तेल लगाना चाहिये, पीछे मस्तकपर थोड़ासा पानी डाल कर मस्तक को मिगोकर उस को धोना चाहिये तस्पश्चात् शरीरपर साबुन लगा कर कमरतक पानी में उस को खड़ा करना वा विठलाना चाहिये अथवा लोटे से पानी डालकर मुलायम हाथ से उस के तमाम शरीर को धीरे २ मसलकर थोना चाहिये, स्नान के लिये पानी उतना ही गर्म लेना चाहिये कि जितनी बालक के शरीर में गर्मी हो ताकि वह उस का सहन कर सके, स्नान के लिये पानी को अधिक गर्म नहीं करना चाहिये और न अधिक गर्म कर के उस में ठंडा पानी मिलाना चाहिये किन्तु जितने गर्म पानी की आवश्यकता हो उतना ही गर्म कर के पिहले से ही रख लेना चाहिये और इसी प्रकार से स्नान कराने के लिये सदा करना चाहिये, स्नान कराने में इन वातों का भी ख़याल रहना चाहिये कि— शरीर की सन्धिओं आदि में कहीं भी मैल न रहने पावे।

माथे पर पानी की घारा डालने से मस्तक ठंडा रहता है तथा बुद्धि की वृद्धि होकर प्रकृति अच्छी रहती है, पायः मस्तक पर गर्म पानी नहीं डालना चाहिये क्योंकि मस्तक पर गर्म पानी नहीं डालना चाहिये क्योंकि मस्तक पर गर्म पानी डालने से नेत्रों को हानि पहुँचती है, इस लिये मस्तक पर तो ठंडा पानी ही डालना उत्तम है, हां यदि ठंडा पानी न सुहाने तो थोड़ा गर्म पानी डालना चाहिये, छोटे वालक को खान कराने में पांच मिनट का और नड़े बालक को खान कराने में दश रिमनट का समय लगाना चाहिये, खान कराने के पीछे वालक का शरीर वहुत समय तर्क गिरा हुआ नहीं रखना चाहिये किन्तु स्नान कराने के वाद शीघ्र ही मुलायम हाथ से इंग स्वच्छ वस्त से शरीर को शुप्क (सुखा) कर देना चाहिये, शुष्क करते समय से १ की त्वचा (चमड़ी) न घिस (रगड) जाने इस का ख्याल रखना चाहिये, शुष्क किर पीछे मी शरीर को खुला (उधाड़ा) नहीं रखना चाहिये किन्तु शीघ्र ही बालक

को कोई खच्छ वस पहना देना चाहिये क्योंकि शरीर को खुला रखने से तथा वस पह-नाने में देर करने से कभी २ सर्दी रूग कर खांसी आदि व्याधिके हो जाने का सम्भव होता है. बालक का शरीर नाजक और कोमल होता है इस लिये दूसरे मास में पानी में दो मुट्टी नमक डाळ कर उस की खान कराना चाहिये ऐसा करने से वाळक का वळ बढेगा. बालक को पवन वाले स्थान में खान नहीं कराना चाहिये किन्तु घर में जहां पवन न हो वहां खान कराना चाहिये. पुत्र के मस्तक के बाल प्रतिदिन और पुत्री के मस्तक के बाल सात आठ दिन में एक बार घोना चाहिये. बालक को खान कराते समय उलटा सलटा नहीं रखना चाहिये, जब बालक की अवस्था तीन चार वर्ष की हो जावे तब तो ठंढे पानी से ही स्नान कराना जामदायक है, जाड़े में, शरीर में व्याघि होने पर तथा ठंढा पानी अनुकुछ न आने पर तो कुछ गर्भ पानी से ही खान कराना ठीक है, यद्यपि शरीर गर्म पानी से अधिक खच्छ हो जाता है परन्तु गर्म पानी से स्नान कराने से शरीर में सफ़रणा और गर्मी बीझ नहीं जाती है तथा गर्म पानी से शरीर भी ढीला हो जाता है, किन्त ढंढे पानी से तो कान कराने से शरीर में शीव ही स्करणा और गर्मी आ जाती है; शक्ति बढ़ती है और शरीर इड़ (मजबूत) भी होता है, बालक को बालपन में खान कराने का अभ्यास रखने से वहे होने पर भी उस की वही बादत पर जाती है और उस से शरीरस्य अनेक प्रकार के रोग निवृत्त हो जाते हैं तथा शरीर अरोग होकर मज़बूत हो जाता है।।

१—बद्धा—बाळक को तीनों ऋतुओं के अनुसार यथोचित वस पहनाना चाहिये, शीत और वर्षा ऋतु में फळाळेन और जन आदि के कपड़ों का पहनाना लाम कारक है तथा गर्मी में स्तके कपड़े पहनाने चाहियें, यदि वाळक को ऋतुके अनुसार कपड़े न पहनाये जानें तो उस की तन दुरुसी विगड़ जाती है, वाळकको तंग कपड़े पहनाने से शरीर में रिषर की गति रुक नाती है और रुघिर की गति रुकने से शरीर में रोग होनाता है तथा तंग कपड़े पहनाने से शरीर के अवयनों का वढ़नायी रुक जाता है हसाळिये वाळक को डीळे कपड़े पहनाने चाहियें, कपड़े पहनाने में इस वातकामी खयाळ रसना चाहिये कि बाळकके सब अंग ढके रहें और किसी अझ में सर्दी वा गर्मी का प्रवेश न हो सके, यदि कपड़े अच्छे और पूरे (काफी) न हों अथवा फटे

१-ग्रुप्त के मस्तक के बाज प्रतिदिन और पुत्री के मस्तक के बाज सात आठ दिन में घोने का तारपर्य हैं कि-बाच्यावस्था से जैसी वालक की आदत बाजी जाती है वही वहे होते पर भी रहती है, अतः यदि पुत्री के बाज प्रतिदिन घोषे जावे तो वहे होने पर भी उस की वही आदत रहे सो यह (प्रतिदिन वालों का घोना) क्रियों की निम नहीं सकती है क्योंकि घोने के पद्मात् वालों का गूयना आदि भी अनेक झगड़े लियों को करने पहते हैं और प्रतिदिन यह काम करें तो आघा दिन इसी में बीत जाय-किन्तु पुत्र का तो हुई होनेपर भी यह कार्य प्रतिदिन निम सकता है।

हुए हों तो कुछ वखों को जोड़ कर ही तथा धोकर और स्वच्छ करके पहनाने चाहियें परन्तु मछीन वस्न कमी नहीं पहनाने चाहियें क्योंकि वालक के अरीर तथा उस के कपड़े की खच्छताद्वारा प्रत्येक पुरुष अनुमान कर सकेगा कि इस (वालक) की माता चतुर और सुघड़ है—किन्तु इस से विपरीत होने से तो सब ही यह अनुमान करेंगे कि—वालककी माता फूहड़ होगी, अन्य देशोंकी क्षियों की अपेक्षा दक्षिण की क्षियां सुघड़ और चतुर होती हैं और यह बात उन के वालकोंकी खच्छता के द्वारा ही जानी तथा देखी जा सकती है।

वालक को प्रायः वाहर हवा में भी घुमाने के लिये है जाना चाहिये परन्तु उस समय ' फलालेन आदि के गर्म कपड़े पहनाये रखने चाहियें क्योंकि फलालेन आदि का वस पह-नाये रखने से वाहर की ठंढी हवा लगने से सदीं नहीं व्यापती है तथा उस समय में उक्त वस्र पहनाये रखने से मीतरी गर्मी वाहर नहीं निकलने पाती है और न वाहर की सही भीतर जा सकती है, बालक को सदीं के दिनों में कानटोपी और पैरों में मोने पहनाये रखने चाहियें, यदि मोने न हों तो पैरों पर कपड़ा ही छपेट देना चाहिये, कानटोपी मी यदि ऊनकी हो तो बहुत ही लाभदायक होती है, मल मूत्र और लार से भीगे हुए कपड़े को शीब्रही बदल कर दूसरा स्वच्छ बस्न पहना देना चाहिये क्योंकि, ऐसा न करने से सर्दी होकर कफ होजाता है, शीत तथा वर्षा ऋतु में हवा में वाहर धुमाने के लिये है जावें तो आंख और मुंहके सिवाय सव शरीर को शाल या किसी गर्म कपड़े से ढक कर के जाना चाहिये, लार गिरती हो तो उस जगह पर रूमाल वा कोई कपड़ा रखना चाहिये, बालक के पैर: सीना (छाती) और पेट को सदा गर्भ रखना चाहिये किन्तु इन अंगोंको ठंढे नहीं होने देना चाहिये, वस ऊपर लिखी रीति के अनुसार बालक को खूब हिफाजत के साथ कपड़े पहनाने चाहियें क्योंकि ऐसा न करने से वहत हानि होती है, बारुक की इतने अधिक वस्त्र भी नहीं पहनाने चाहियें कि जिन से वह पसीना युक्त होकर धवडा जावे, इसी प्रकार गर्मा में भी बहुत कपड़े नहीं पहनाने चाहियें कि जिस से बारंबार पसीना निकलता रहे क्योंकि वहुत पसीना निकलने से शरीर वलहीन हो जाता है, इस लिये गर्मा में वारीक वस्त्र पहनाने चाहिये, वालक की त्वचा बहुत ही नाजुक और मुलायम होती है इस लिये उस को कपड़ेमी वहुत मुख्यम और ढीले पहनाने चाहियें, हरे रंग में सोमल का विप होता है इस लिये हरे वस्न नहीं पहनाने नाहियें क्योंकि वालक उस की मुंह में डाल ले तो हानि हो जाती है, इसी प्रकार वह रंग त्वचासे लगने से भी हानि पहुँचती है, यथाजनय (जहां तक हो सके) ममका और टाप टीय पर मोहित न हो कर वालक को सुखकारी कपड़े पहनाने चाहियें, वालकों को शीत ऋतु में खुला (उघाड़ा) नहीं रखना चाहिये और न वारीक वस्त्र पहना कर सथवा आपे खुळे शरीर से खुळे

मैदान में बाहर जाने देना चाहिये क्योंकि ऐसा होने से जीत लग जाने से वालक कद में छोटे और जुस्सा रहित हो बाते हैं इसी प्रकार गर्मी में ख़ुछे शरीर से मैदान में घूमने से काले हो बाते है, उन को ब छग बाती है और वीमार हो बाते है, एवं वर्षा ऋतु में भी ख़ुले फिरने से स्थाम हो जाते हैं और सदीं आदि भी लग जाती है तथा ऐसे वर्तान से अनेक प्रकार के रोगों का उन्हें शरण लेना पहला है, शील गर्मी और वर्षा ऋतु में बालकों को ख़ले (उघाड़े) घूमने देने से शरीर से मनवृत होने की आशा नष्ट हो जाती है क्योंकि ऐसा होने से उनके अवयवों में अनेक प्रकारकी श्रुटि हो जाती है और वे प्रायः रोगी हो जाते है, बालकों के शरीर पर सूर्य का कुछ तेज पड़ता रहे ऐसा उपाय करते रहना चाहिये, घर में उन की प्रायः गोद ही में नहीं रखना चाहिये, शरीर में उण्णता रखने के लिये परे कपड़ों का पहनाना मानो उतनी ख़राक उन के पेट में डालना है, शरीर पर पूरे कपड़े पहनाने से उष्णता कम जाती है और उष्णता के कायम रहने से सरोगता रहती है, बालकों को ऋतुके अनुकूल वस पहनाने में जो मा वाप द्रव्य का लोम करते है तथा बालकों को उघाडे फिरने देते है यह उनकी वही मूल है क्योंकि ऐसा होने से शरीर की गर्मी कम हो जाती है तथा गर्मी कम हो जाने से उस (गर्मी) को पूर्ण करने के लिये अधिक ख़ुराक खानी पड़ती है जब ऐसा करना पड़ा तो समझ लीजिये कि जितना कपड़े का खर्च बचा उतना ही ख़राक का खर्च बढ गया फिर छोमकरने से क्या लाम हुआ ! किन्तु ऐसे विपरीत लोमसे तो केवल शरीर को हानि ही पहुँचती है-इस-लिये बालक को ऋद्ध के अनुकूल वस्न पहनाना ही लामदायक है।

४—दूघिपिलाना—वालक के उत्पन्न होने पर शीघ्र ही उस को दूध नहीं पिलाना चाहिये अर्थात् वालक को माता का दूध तीन दिने तक नहीं पिलाना चाहिये क्योंकि

१-परन्तु इस निषय में किन्हीं छोगोका यह मत है कि-बालक के उत्पन्न होने के पीछे जब माता की धकावट दूर होजावे तब दीन या चार घण्टे के बाद से वालकको माता का ही दूभ पिछाना चाहिये, दे यह भी कहते है कि-"कोई छोग वालक को एक दो दिन तक माताका दूभ वहीं पिछाते हैं, किन्तु उस को गलधुठी चटाते हैं सो यह रीति ठीक नहीं है-क्योंकि बालक के लिये तो माता का दूभ पिछाने से यहत ही छाम होता है क्योंकि-माता के दूभ का प्रथम माग रेकक होता है इस लिये उस के पीने से गर्मस्थान में रहने के कारण वालक के पेट की हिट्टमों में छगा हुआ काला मछ दूर होजाता है और माता को पीछे से साने वाले वेग के कम होजाने से रक्त प्रवाह के होने का सम्मव कम रहता है, यदि वालक को एक दो दिन तक माताका दूभ व पिछाया जावे तो फिर वह (बालक) भाता का दूभ पीने नहीं छगता है और ऐसा होने से रक्त दूभसे मर जाने के कारण पक जाते है, इसलिये प्रथम से ही बालक को माता का ही दूभ पिछाना चाहिये, बालक को प्रथम से ही साता का दूभ पिछाना चाहिये, बालक को प्रथम से ही साता का दूभ पिछाना चाहिये, बालक को प्रथम से ही साता का दूभ पिछाना चाहिये। कि समित के सम्मति इस कथन से विपरीत है अर्थात उनकी सम्मति वही है जो कि हमने ऊपर लिखा है, अर्थात जन्म के पीछे तीन या चार दिन के बादसे बालक को माता का दूभ पिछाना चाहिये।

प्रस्तिक पश्चात् तीन दिन तक भाता के दूष में कई प्रकार के उज्जाता आदि के विकार रहते हैं. किन्तु तीन दिन के पश्चात् भी दूध की परीक्षा कर के पिछाना चाहिये, माता के दूध की परीक्षा यह है कि यदि दूध पानी में डालने से मिल जावे. फेन न दीखे, तन्तु सरीखे न पढ़ जानें, ऊपर तर न छगे, फटे नहीं, शीतल, निर्मेछ; स्वच्छ मौर शंख के समान सफेद होने, उस दूध को खच्छ समझना चाहिये, इस प्रकार से तीन दिन के पीछे दूषकी परीक्षा करके बालक की माता का दूष पिलाना चाहिये, यदि कदाचित् माता के स्तनों में दूघ न आवे तो गाय का दूघ और दूघ से आघा कुछ गर्म सा पानी (जैसा मा का दूघ गर्म होता है वैसा ही गर्म पानी हेना चाहिये) और कुछ मीठा हो जाने इतनी शक्तर, इन तीनों को मिला कर बालक को पिलाना चाहिये परन्तु इन तीनों नस्तुओं के मिलाने में ऐसा करना चाहिये कि-यहिले शकर और पानी मिलाना चाहिये तथा पीछे उस में दूध मिलाना चाहिये, यह मिला माता के दूघ के समान ही गुण करता है, यह (मिश्रण) बालक को दो दो बण्टे के पीछे थोड़ा २ पिछाना चाहिरे-परन्तु जब माता के स्तनों से दूध आने छगे तब इस (मिश्रण) का पिछाना वन्द कर माता का ही दूध पिछाना चाहिये तथा दोनों सतों से कमानसार द्रथ पिळाना चाहिये क्योंकि ऐसा न करने से द्रथ से भर जाने के कारण स्तन फूछ कर सूज जाता है ॥

५-दघ पिलाने का समय नालक को वार वार दूध नहीं पिलाना चाहिये किन्तु नियम के अनुसार पिठाना चाहिये क्योंकि नियम के विरुद्ध पिछाने से पहिले पिय हुए दुध का ठीक रीति से परिपाक न होने पर फिर पिछाने के द्वारा बालक को अजीर्ण हो जाता है और ऐसा होनेसे बालक रोगाधीन हो जाता है. इसी प्रकार एक बार में मात्रा से अधिक पिछा देनेसे वह पिया हुआ दूध कुदरती नियम के अनु-सार पेट में ठहरता नहीं है किन्तु वसन के द्वारा निकल जाता है. यदि कदाचित वमन के द्वारा न भी निकले तो वालक के पेट को भारी कर तान देता है. पेट में पीड़ा को उत्पन्न कर देता है और जब बालक उक्त पीड़ा के होने से रोता है तब मूर्ला स्त्रियां उस के रोने के कारण का विचार न कर फिर शीघ ही खन को बालक के सुँह में दे देती है तथा वालक नहीं पीता है तो भी बलात्कार से उसे पिलाती हैं, इस प्रकार बार वार पिळाने से बाळक को तो हानि पहुँचती ही है किन्तु माताको मी बहुत हानि पहुँचती है अर्थात् वार वार पिछाने से माता के खन से दूध नहीं उतरता है (जाता है) इस से बालक रोता है तथा उस के अधिक रोनेसे माता बहुत धव-ड़ाती है और ऐसा होने से दोनों (माता और वालक) निर्वल हो जाते है, वालक के मुँह में सान देकर उस की नींद नहीं छेने देना चाहिये और न माता को नींद लेना चाहिये क्योंकि उस से सान में तथा बालक के मंह में छाले पह जाते है।

बालक को पहिले महीने में डेड २ घण्टे, दूसरे महीने में दो २ घण्टे, तीसरे महीने में ढाई २ घण्टे और चौथे महीने में तीन २ घण्टे के पीछे दूध पिछाना चाहिये, इसी प्रकार से प्रत्येक महीने में आधे २ घण्टे का अन्तर बढ़ाने जाना चाहिये किन्तु जब वालक सात आठ महीने का हो जावे तब तीन चार घण्टे के पीछे दूध पिछाने का समय नियत कर लेना चाहिये।

बहुत सी स्त्रियां बारह वा चौदह महीने तक वालक को दूध पिलाती रहती हैं परन्तु ऐसा करना बालक को बहुत हानि पहुँचाता है क्योंकि जब बालक जन्मता है तन से छेकर सात आठ महीने तक स्त्री को ऋतुषर्म नहीं होता है इस लिये तव तक का ही द्घ बहुत पृष्टिकारक होता है किन्तु जब स्नी के ऋतुधर्म होने लगता है तब उस के द्ध में विकार उत्पन्न हो जाता है इस लिये स्त्रियों को केवल आठ नौ महीने तक ही बालकों को दूष पिलाना चाहिये किन्द्र आठ नौ महीने के पीछे दूष का पिलाना घीरे २ कम करके उसके साथ में अन्य ख़राक देते रहना चाहिये, दूध पिछाने के बाद स्तन की पोंछ कर खच्छ कर ठेने का नियम रखना चाहिये कि जिस से चाँदे (छाछे) न पड़ जावें ॥ ६-द्व पिलाने के समय हिफाज़त-नालक को दूध पिलाने के समय माता प्रथम अपने मन में धीरज; उत्साह; शान्ति और आनन्द रख के बालक को देखे. फिर उस को हँसा कर खिलावे और अपने खन में से थोड़ा सा दूध निकाल देवे. तत्पश्चात् बालक के मस्तक पर हाथ रखके उस को दूध पिलाने, बालक को दूध पिला-नेकी यही उत्तम रीति है, किन्तु बाल्क को मार कर, पटक कर, क्रोध में होकर. हरा कर अथवा तर्जना (डांट) देकर दृष नहीं पिळाना चाहिये क्योंकि जिस समय मन में शोक, मय, क्रोध और निराशा जादि दोष होते हैं उस समय माता का दूध विगडा हुआ होता है और वह दूष जब बालक के पीने में आता है तो वह दूध वालक को विष के समान हानि पहुँचाता है-इस लिये जब कभी उक्त वातों का प्रसंग होने उस समय बालक को दूध कमी नहीं पिलाना चाहिये किन्तु जब ऊपर लिखे अनुसार मन अत्यन्त आनन्दित हो उस समय पिछाना चाहिये, इसी तरह माता को अपनी रोगावस्थामें भी बालक को अपना दूघ नहीं पिलाना चाहिये क्योंकि वह दूघ भी बालक को हानि पहुँचाता है ॥

७-पूरा दूघ न होने पर कर्तव्य उपाय—बहां तक हो सके वहां तक तो वालक को माता के दूघ से ही रखना उत्तम है क्योंकि माता का स्नेह बालक पर अपूर्व होता

१-क्योंकि माता की उत्साह सान्ति, और आनन्द से मरी हुई दृष्टिको देखकर वालक मी हर्पित होगा ॥ १-क्योंकि दूध के अप्रभाग में दूध का विकार जमा रहता है इसलिये पिलाने से प्रथम स्तनमेंसे कुछ दूध निकालकर तब वालक को पिलाना चाहिये ॥

है इस लिये माता की स्थिति में घात्री (धाय) के द्वारा बालक का पोषण कराना ठीक नहीं है, हां यदि माता का शरीर दुर्वल हो अथवा दूघ न आता हो अथवा पूरा (काफी) दूघ न आता हो तो वेशक अन्य कुछ उपाय न होने से वालकको सात आठ महीने तक तो घाय के पास ही रख कर उसी के दूघ से वालक का पालन पोषण करना चाहिये क्योंकि सात आठ महीने तक तो दूघ के सिवाय वालक की और कोई ख़राक हो ही नहीं सकती है ॥

८-धाञ्ची के लक्ष्मण-जहां तक हो सके वात्री अपने ग्रामकी और अपनी जाति की ही रखना चाहिये तथा उस में ये लक्षण देखने चाहियें कि-वह अपने ही बालक के समान जीवित और नीरोग नालक वाली, मध्यम कद की, शान्त, सुशील, इट शरीर वाली, रोगरहित, सदाचारयुक्त तथा सद्गुणोंवाली होवे, यदि कदाचित् ऐसी धात्री न मिल सके तो सदा एक ही तनदुरुस्त गाय का ताजा दूध लेकर तथा दूध से लाधा कुछ गर्म पानी और शकर को पूर्व कही हुई रीति के अनुसार मिलाकर बालक को पिलाना चाहिये तथा इस को भी दूध पिलाने के समयके अनुकूल ही नियमानुः सार पिळाना चाहिये, दूष पिळाने में इस वात का भी खयाल रखना चाहिये कि वालक को तांवे और पीतल आदि धातु के वर्तन में दूध नहीं पिलाना चाहिये किन्तु मिट्टी अथवा काच के वर्तन में छेकर पिछाना चाहिये, किन्तु बालक के पीने के द्व को तो पहिले से ही उक्त वर्तन में ही रखना चाहिये, दूधको बहुत गर्म करके नही पिळाना चाहिये, बहुत सी क्षियां गाय भैस वा बकरी का दूव औट कर तथा उस में शकर इलायची और जायफल आदि ढाल कर पिलाया करती हैं-परन्तु ऐसा द्ष छोटे बालक को सारी होने के कारण पचता नहीं है. इस लिये ऐसा दूध नही पिछाना चाहिये, वास्तव में तो बालक के लिये माता के दूध के समान और कोई खुराफ नहीं है. इस लिये जन कोई उपाय न चले तब ही घाय रखनी चाहिये अथवा ऊपर लिसे अनुसार मिश्रण दूच का सहारा रखना चाहिये॥

९—खुरुक, नालक को ताजी; हलकी; कुछ गर्म; रुचिके अनुकूल तथा पैष्टिक खुराक देनी चाहिये तथा खुराक के साथ में हमेशा गाय का ताजा और खच्छ दूध सी देते रहना चाहिये, यदि अनाज की खुराक दी जावे तो उस में जरासा नमक डाल कर देनी चाहिये क्योंकि—ऐसा करने से खुराक स्वादिष्ठ हो जाती है और हज़म मी जल्दी हो जाती है तथा इस से पेट में कीड़े मी कम पड़ते है, यदि वालक की रुचि हो तो दूध में थोड़ी सी मिठास आजाने इतनी शकर वा बतासे डाल देना चाहिये परन्तु दूध को बहुत मीठा कर नहीं पिलाना चाहिये क्योंकि—यहुत मीठा कर पिलाने

से वृह् पाचन शक्ति को मन्द करता है।

जब बालक एक वर्ष का हो जावे और दाँत निकल आवें तब उसे कम र से चांवल; दाल; खिचड़ी; स्वच्छ दही और मलाई आदि देना चाहिये परन्तु अन्न के साथ गाय का द्ध देने में कभी नहीं चूकना चाहिये क्योंकि दूध में पोषण के सब आवश्यक पदार्थ स्थित हैं. इस लिये दूध के देने से बालक तनदुरुख और दृढ वन्धनोंवाला होता है, यदि दूध के देने से शोच ठीक न आवे तो उसमें थोड़ा सा पानी मिला कर देना चाहिये इस से शोच ठीक होता रहेगा।

ज्यों २ बाउक की अवस्था बढती जावे त्यों २ दूघ की ख़ुराक भी बढाते जाना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से वालक का तेज; बन्धान और वल बढ़ता रहता है, जब बालक करीब दो वर्ष का हो जावे तब दूध में पानी का मिलाना वन्द कर देना चाहिये, वालक को जो दूध दिया जाने वह ताजा और स्वच्छ देख के छेना चाहिये, दूध में पानी वा अन्य कुछ पदार्थ मिला हुआ नहीं होना चाहिये इस का पूरा खयाल रखना चाहिये क्यों कि खरान दूध वहुत हानि करता है, ज्यों २ वालक वड़ा होता जाने त्यों २ वह शाक तरकारी आदि ताने पदार्थोंको लावे इसका प्रयत करना चाहिये, धीरे २ शाक आदि पदार्थों में नमक और मसाला डालकर नालक को खिलाने चाहियें, कभी २ रुचि के अनुकूल कुछ मेवा भी देनी चाहिये, वालक को कबे फल, कोयले और मिट्ठी आदि हानि-कारक पदार्थ नहीं खाने देना चाहिये, वालक को दिन भर में तीन वार ख़ुराक देनी चाहिये परन्तु उसमें भी यह नियम रखना चाहिये कि प्रातःकाल में दूध और रोटी देना चाहिये, इस के बाद दूसरी वार चार घंटे के पीछे और तीसरी वार श्रामको आठ वजे के अन्दर २ कोई इलकी ख़ुराक देनी चाहिये किन्तु इन तीन समयों के सिवाय यदि वालक वीच २ में खाना चाहे तो उस को नहीं खाने देना चाहिये, एक वार की खाई हुई ख़राक जब पच जावे और मेदेको कुछ विश्रान्ति (आराम) मिछ जावे तव दूसरी वार खुराक देनी चाहिये, मूल से अधिक खून डॅट कर भी नहीं लाने देना चाहिये क्योंकि जो वालक मूल से अधिक खून डेंट कर तथा बार बार खाता है तो वह ख़ुराक ठीक रीति से हजम नहीं होती है और वालक रोगी हो जाता है, उसके हाथ पैर रस्तीके समान प्रतले और पेट मटकी के समान बड़ा हो जाता है, वालक को कमी २ अनार, द्राक्षा (दाख), सेव, वादाम, पिस्ते और केले आदि फलमी देते रहना चाहिये, उसको पानी स्वच्छ पीने को देना चाहिये, पीने के लिये प्रायः कुओं का पानी वहुत उत्तम होता है इसलिय वही पिलाना चाहिये, जिस पानी पर रवःकण (भूलके कण) तैरते हों अथवा जो अन्य बुरे पदार्थों से मिला हुआ हो वह पानी वालक को कमी नहीं पिलाना चाहिये क्योंकि इस पकार का पानी बड़ी अवस्था बाठों की अपेक्षा वाठक को अधिक हानि पहुँचाता है, स्वच्छ जल हो तो भी उसे दो तीन बार छान कर पीने के लिये देना चाहिये, शीत ऋतु में शरीर में गर्मी उत्पन्न करनेवाले पौष्टिक पदार्थ खाने को देना चाहिये क्योंकि उस समय शरीर में गर्मी पैदा करने की बहुत आवश्यकता है, उक्त ऋतु में यदि शरीर में गर्मी कम होवे तो तनदुरुस्ती विगढ़ जाती है इसिल्ये उक्त ऋतु में शरीर में उप्णता कायम रहने के लिये उपाय करना चाहिये, वालक की मूख को कमी मारना नहीं चाहिये क्योंकि मूख का समय विता देने से मन्दािंग आदि रोग हो जाते हैं, इसिल्ये यही उचित है कि नियम के अनुसार नियत किये हुए समय पर जितनी और जो हजम हो सके उत्ती और वही खूब परिपक्त (पक्ती हुई) खुराक खाने को देना चाहिये।

इस जीवनयात्रा के निर्वाह के लिये शरीर को जिन २ तत्वों की आवश्यकता है वे सव तत्त्व एक ही प्रकार की ख़राक में से नहीं मिल सकते हैं. इसलिये सर्वदा एक ही मकार की ख़राक न देकर मिक २ मकार की ख़ुराक देते रहना चाहिये, एक ही प्रकार की ख़राक देने से शरीर को आवश्यक तत्वमी नहीं मिछते है तथा पाचनशक्ति में भी खराबी पड़ जाती है, जिस ख़राक पर वालक की रुचि न हो उसके खाने के लिये आग्रह नहीं करना चाहिये, बालक को ख़राक देनेमें आधा घंटा लगाना चाहिये अर्थात बीरे २ चवा २ के उसे खिलाना चाहिये और धीरे २ चाव २ के लाने की उस की आदत भी ढालना चाहिये किन्तु शीव्रता से उसे नहीं खिलाना चाहिये और न खाने देना चाहिये. गर्मी वा धूप आदि में से आने के बाद अथवा यकने के बाद कुछ विश्राम हे हेवे तब उसे खाने को देना चाहिये. खाते समय उसे न तो हॅसने और न वातें करने देना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से कभी २ श्रास गर्छे में अटक कर बहुत हानि पहुँचाता है, सो उठने के पीछे तीन घण्टे के बाद और ऊँघने के पीछे एक घण्टे के बाद ख़राक देनी चाहिये, इसी प्रकार खानेके पीछे यदि आवश्यकता होतो एक घण्टे के पश्चात सोने देना चाहिये, ठंढी विगड़ी हुई और दर्गन्ययुक्त ख़राक नहीं साने देनी चाहिये, बहुत साना अथवा कमसाना, ये दोनों ही नुक्सान करते हैं इस लिये इन से वालक को बचाना चाहिये, मूख लगे विना आग्रह करके बालक की नहीं खिलाना चाहिये. बालक से कम वा अधिक खाने के लिये नहीं कहना चाहिय किन्तु उस को अपनी रुचि के अनुसार खाने देना चाहिये, खुराक के विषय में यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जो ख़राक जिस कदर प्रष्टिकारक हो वह उसी कदर तौलमें कम खाने को देना चाहिये तथा जिस कदर ख़राक कम पृष्टि कारक हो उसी कदर वह तौछ में अधिक खाने को देना चाहिये, तारपर्य यह है कि जहांतक हो सके वालकों को खुराक तौल में कम किन्तु पुष्टिकारक देना चाहिये क्योंकि ऐसा न करने से वालक का वल घटता है तथा भरीर भी नहीं बढ़ता है, यह संक्षेप से ख़ुराक के विषय में

१-क्योंकि पुष्टिकारक खराक तांखमें अभिक देने से अवीर्ण होकर विकार उत्पन्न होता है और अपुष्टि कारक अथवा कम पुष्टिकारक खराक तौखमें कम देने से वालक को दुर्वलता सताने रूनती है ॥

लिखा गया है, बाकी इस विषय को देश और काल के अनुसार चतुर माताओं को विचार लेना चाहिये ॥

१०-ह्वा—जिस उपाय से वालक को खुळी और खच्छ हवा मिलसके वही उपाय करना चाहिये, खच्छ हवा के मिलने के लिये हमेशा सुवह और शाम को समुद्र के तट पर मैदान में, पहाड़ी पर अथवा बाग में वालक को हवा खिलाने के लिये ले जाना चाहिये, क्योंकि खच्छ हवा के मिलने से बालक के शरीर में चेतनता आती है, रुघिर सुधरता है। और शरीर नीरोग रहता है, प्रत्येक प्राणी को श्वास लेने में आविसेजन वासु की अधिक आवश्यकता होती है इस लिये जिसकमरे में ताजी और स्वच्छ हवा आती हो उस प्रकार के ही खिड़की और किवाड़वाले कमरे में वालक को रखना चाहिये, किन्तु जस को अधेरे खान में, चूलहे की गर्मी से युक्त खानमें, नाली वा मोहरी की दुर्गन्य से युक्त खान में, संकीर्ण, अधेरी और दुर्गन्यवाली कोटरी में, बहुत से मनुष्यों के श्वास लेने से जहां कार्बोलिक हवा निकलती हो उस खान में और जहां अखण्ड दीपक रहता हो उस खान में कभी नहीं रखना चाहिये, क्योंकि—जहां गर्मी दुर्गन्य और पतली हवा होती है वहां आक्सिजन हवा बहुत थोड़ी होती है इसलिये ऐसी जगह पर रखने से वालक की तनदुरुस्ती विगड़ जाती है, अतः इन सब वातों का खयाल कर खच्छ और सुखदायक पवन से युक्त खान में वालक को रखने का प्रवन्य करना ही सर्वदा लामदायक है।

११—निद्रा—नालक को बड़े आदमी की अपेक्षा अधिक निद्रा लेने की शावश्यकता है क्योंकि—निद्रा लेने से वालक का शरीर पृष्ट और तनदुरुत्त होता है, वालक को कुल समय तक माता के पसवाड़े में भी सोनेकी आवश्यकता है क्योंकि—उस को दूसरे के शरीर की गर्मी की भी आवश्यकता है, इस लिये माता को चाहिये कि—कुल समय तक बालक को अपने पसवाड़े में भी मुलाया करे, परन्तु पसवाड़े में मुलाते समय इस बातका पूरा ध्यान रखना चाहिये कि—पसवाड़ा फेरते समय वालक कुचल न जावे अर्थात् वह रोकर पसवाड़े के नीचे न दन जावे, इस लिये माता को चाहिये कि—उस समयमें अपने और वालक के बीच में किसी कपड़े की तह बना कर रखले, सोते हुए वालक को कमी दूम नहीं पिलाना चाहिये क्योंकि—सोते हुए वालक को दूम पिलानो से कमी २ माता कंघ जाती है और वालक उलटा गिरके गुंगला के मर जाता है वालक को सोने का ऐसा अभ्यास कराना चाहिये कि—वह रात को आठ नौ बचे सो जावे और प्रातःकाल पांच वचे उठ वैठे, दिन में दो पहर के समय एक दो घण्टे और रात को अधिक से अधिक आठ घण्टे

१-आविसज्जन अर्थात् प्राणप्रद वासु ॥ २-कार्वेळिक इवा अर्थात् प्राणनाशक वासु ॥

तक बालक को नींद लेने देना चाहिये, तथा जागने के पीछे उसे विस्तर पर पहा की रहने देना चाहिये क्योंकि-ऐसा करने से नालक झस्त हो जाता है, इस लिये जागने के पीछे शीष्रही उठने की बादत डालनी चाहिये, नींद में सोते हुए वालक को जगाना नहीं चाहिये क्योंकि-नींद में सोते हुए बालक को बगाने से बहुत हानि होती है, बालक को स्वच्छ हवा और प्रकाशवाले कमरे में मुलाना चाहिये किन्तु खिड़की और किवाड़ बन्द किये हुए कमरे में नहीं सुलाना चाहिये, तथा दुर्गन्धवाले और छोटे कमरे में भी नहीं सुलाना चाहिये, बालकको निदा के समय में कुछ तक्लीफ होवे ऐसा कुछ मी वर्ताव नहीं होना चाहिये किन्त निद्रा के समयमें उस का मन अत्यन्त शान्त रहे ऐसा प्रबंध करना चाहिये. बालक को खराक की अपेक्षासे भी निद्वा की अधिक आवश्यकता है क्योंकि कम निद्रा से बावक दुर्वछ हो जाता है, बावक को गोद में धुलाने की आदत नहीं डालनी चाहिये तथा झुले वा पालने में भी बलाकार झला कर पीट कर दरा कर अथवा व्याकुल कर नहीं सलाना चाहिये और न बल-गुटिका वा अफीम आदि हानिकारक तथा विषेठी वस्त्र खिलाकर सुलाना चाहिये क्योंकि उस के खिलाने से बालक का शरीर बिगडकर निर्धल हो जाता है, उस के शरीर का बन्धान इड नहीं होता है, किन्तु जब उस को प्रकृति के नियमके अनुसार खामाविक नींद आने रूगे तबही सुलाना चाहिये. रात्रि को ख़राक देने के पक्षात दो वण्टे केबाद हँसाने खिळाने दौड़ाने और क़दाने आदि के द्वारा कुछ शारीरिक व्यायाम (कस-रत) कराके तथा मधुर गीतों के गाने आदि के द्वारा उस के मन का रखन करके स्रकाना चाहिये कि जिस से सखपूर्वक उसे गहरी नींद आजावे, इसी प्रकार से बाळक को पालने में भी हर्पित कर लिटा कर मधुर गीत गाकर धीरे २ घुला कर सकानेसे उस को उत्तम नींद आती है तथा काफी नींद के आजाने से उसका शरीर हलका (फ़र्तीला) और अच्छा हो जाता है, यदि किसी कारण से बालक को नींद न आती हो तो समझ छेना चाहिये कि इस के पेट में या तो कीड़े हो गये हैं या कोई दूसरा दर्द उत्पन्न हुआ है, इस की बांच कर के जो माल्स हो उस का उचित उपाय करना चाहिये, किन्तु जहां तक हो सके नींद के लिये औषघ नहीं खिलाना चाहिये, सोते समय कमानुसार पसवाड़ा बदलने की बालक की आदत डालना चौहिये। उस के सोने का विछीना न तो अत्यन्त मुलायम और न अत्यन्त सस्त होना चाहिये किन्तु साधारण होना चाहिये, झूले में मुलाने की अपेक्षा पालने में मुलाना उत्तम है क्योंकि झुळे में सुळाने से बाळक के कुनड़े हो जाने का सम्मद है और कुवड़ा हो जाने से वह ठीक रीति से चल नहीं सकता है किन्तु पालने में झुलाने से ऐसा नहीं होती

१-क्योंकि एक ही पसवाड़े से पडे रहने से आहार का परिपाक ठीक नहीं होता है।

है, वालक की नींद में भंग न हो जाने इस लिये सुले या पालने के आंकड़े (कड़े) नहीं वोलने देना चाहिये, वालक के सोते समय जोर से झोंका नहीं देना चाहिये, सोने के झूले वा विछीने के पास यदि श्रीत भी हो तो भी आग की सिगड़ी वा दीपक समीप में नहीं रखना चाहिये, जब वालक सो कर उठ वैठे तब शीष्रही विछीने को लिपट कर नहीं रख देना चाहिये किन्तु जब उस में कुछ हवा लग जाने तथा उस के भीतर की गन्दगी (दुर्गन्धि) उड़ जाने तब उस को उठा कर रखना चाहिये, सोते समय वालक को चांचड़, खटमल और जुए आदि न कार्टे, इस का प्रवंध रखना चाहिये, उस के सोने का विछीना घोया हुआ तथा साफ रखना चाहिये किन्तु उस को मलीन नहीं होने देना चाहिये, यदि विछीना वा झोला मलमूत्र से भीगा होने तो शीष्र उस को वदल कर उस के खान में दूसरे किसी खच्छ वस्न को विछा कर उस पर वालक को खलाना चाहिये कि जिस से उसे सदीं न रूप जाने ॥

१२-कसरत- गलक को ख़ुली हवा में कुछ शारीरिक कसरत मिल सके ऐसा प्रयक्त करना चाहिये नयोंकि आरीरिक कसरत से उस के अरीर का सीतरी कथिर नियमानु-सार सब नसों में बूम जाता है, खाये हुए अन का रस होकर तमाम शरीर को पोषण (पृष्टि) मिलता है, पाचनशक्ति बढ़ती है, आयु का सम्बलन होने से लोह मीतरी मळीन पदार्थों को पसीने के द्वारा वाहर निकाल देता है जिस से शरीरका बन्धान हट और नीरोग होता है, नींद अच्छी आती है तथा हिम्मत, चेतनता, चन्नळता और शरवीरता बढ़ती है, क्योंकि बालक की खामाविक चंचलता ही इस बात को बतलाती है कि-नालक की अरोगता रहने और वहा होने के लिये प्रकृति से ही उस को शारीरिक कसरत की आवश्यकता है, उत्पन्न होने के पीछे जब बालक कुछ मासों का हो जाने तव उस की सुबह शाम कपड़े पहना के अच्छी हवा में हे जाना चाहिये. कभी २ जमीन पर रजाई विछा के उसे धुलाना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से वह इधर उघर पछाडें मारेगा और उस को शारीरिक कसरत प्राप्त होगी. इसी प्रकार कमी २ हॅसाना. खिळाना. क़दाना और कोई वस्त्र फेंक कर उसे मंगवाना आदि व्यवहार श्री वालक के साथ करना चाहिये, क्योंकि इस व्यवहार में अति हँस कर वह हाथ पैर पछाड़ने, दौड़ने और इघर उघर फिरने के लिये चेष्टा करेगा और उस से उसे सहजरें ही शारीरिक कसरत मिल सकेगी।

जव वालक कुछ चलना फिरना सील बावे तव उसे घर में तथा घर के वाहर समीप में ही लेलने देना चाहिये किन्तु उसे घर में न विठला रखना चाहिये, परन्तु जिस लेल से शरीर के किसी माग को हानि पहुँचे तथा जिस खेलसे नीति में विगाड़ हो ऐसा खेल नहीं खेळने देना चाँहिये इसी प्रकार दुष्ट ळड़कों की संगति में भी बाळक न खेळने पाने इस की पूरी खनरदारी रखनी चाहिये, ज्यों २ बाळक उन्नमें बड़ा होता जाने त्यों २ उसं को नित्य झनह और शाम को खुळी हवामें नियमपूर्वक गेंद फेंकना, दौड़ना, चकरी, तीर फेंकना, खोदना, जोतना और काटना आदि मनपसन्द खेळ खेळने देना चाहिये परन्तु जिस और जितने खेळ से वह अत्यन्त यक जाने तथा शरीर मारी पड़ जाने वह और उतना खेळ नहीं खेळने देना चाहिये, जब कभी कोळेरा (हैजा) और ज्वर आदि रोग चळ रहा हो तो उस समय में कसरत नहीं कराना चाहिये, कसरत करने के पीछे जब उस की यकावट कम हो जाने तब उसे खाने और पीने देना चाहिये, इस नियम के अनुसार पुत्र और पुत्री से कसरत कराते रहें ॥

र दें तो की स्था जब बालक सात आठ महीने का होता है तब उस के दाँत कि क्ला प्रारम्म होता है, कमी र ऐसा भी होता है कि दाँत दो तीन मास विक्रम्म से भी निकलते है परन्तु ऐसी दशा में बालक को ज्वर, वमन, खांसी, चूंक झाड़ा और आंचकी आदि होने लगते है, जब बालक के दाँत निकलने लगते हैं उस समय उस का सभाव चिड़चिड़ा (चिढ़नेवाला) हो जाता है, उस को कहीं भी अच्छा नहीं लगता है, दाँतों की जड़ों में खाज (ख़ुजली) चलती है, वार वार दूष पीने की इच्छा होती है, अंगुली वा अंगूठे को मुस में डालता है क्योंकि उस से वाँतों की जड़ों के विसने से अच्छा लगता है, इस समय पर बालक अन्य किसी वस्तु को मुस में डालने की अपेक्षा तो अंगूठे को ही मुस में डालना ठीक है, परन्तु उस को हमेशा मुस में डालने की अपेक्षा तो अंगूठे को ही मुस में डालना ठीक है, परन्तु उस को हमेशा मुस में अंगूठा डालने की आदत न पड़ जावे इस का खयाल रसना चाहिये। यदि दांत निकलने के समय नित्य की अपेक्षा दो चार वार श्रीच अधिक लगे तो

यदि दात निकलन के समय नित्य का अपक्षा दा चार बार याचे आघक लग ता कोई चिन्ता की बात नहीं है परन्तु यदि दो चार बार से भी अधिक शौच लगने लगे तो उसका उचित उपाय करना चाहिये, यदि बालक को ज्वर वा वमन आदि हो जावे तो चतुर वैद्य वा डाक्टर की सलाह लेकर उस का शीम्रही उपाय करना चाहिये क्योंकि इस समय में उस की अच्छी तरह से हिफाज़त करनी चाहिये, यदि पहना हुआ कपड़ा लगर से मीग जावे तो शीम्र उस कपड़े को उतार कर दूसरा स्वच्छ कपड़ा पहना देना चाहिये क्योंकि ऐसा न करने से सर्दी लगजाती है, जब बालक बड़ा हो जावे तब दाँतों को मुख अथवा दाँतन के कूंचेसे विसने की उस की आदत डालनी चाहिये, उसके दांतों के मिल नहीं रहने देना चाहिये किन्तु पानी के कुछ़े करा के उस के ग्रंह और दांतों को साफ कराते रहना चाहिये ॥

१-जैसे ढींगला डींगली (गुड़ा और गुड़िया) का व्याह करना तथा उस से बालक जन्माना इसादि ॥

१४-चरणरक्षा-(पैरों की हिफाज़त) पैर ही तमाम शरीर की जड़ हैं इसिलेंबे उन की रक्षा करना अति आवश्यक है, अतः ऐसा प्रवंध करते रहना चाहिये कि जिस से बालक के पैर गर्स रहें, जब पैर ठंढे पड़ जावें तो उन को गर्म पानी में रख के गर्म कर देना चाहिये तथा पैरों में मोने पहना देना चाहिये. सोते समय भी पैर गर्म ही रहें ऐसा उपाय फरना चाहिये क्योंकि पैर ढंढे रहने से सदी लगकर व्याधि होने का सम्भव है, श्रीत ऋत में पैरों में मोने तथा मुलायम देशी जूते पहनाना चाहिये क्यों कि पैरों में जूते पहनाये रखने से ठंढ गर्मी और कांटों से पैरों की रक्षा होती है परन्त सँकड़े (कठिन) जूते नहीं पहनाना चाहिये क्योंकि सँकड़े जूते पहनाने से बालक के पैर का तलवा बढ़ता नहीं है, अंगुलियां सँकुच जाती है तथा पैर में छाले आदि पड जाते हैं, बालक को चलाने और खड़ा करने के लिये माता की त्वरा (भीव्रता) नहीं करनी चाहिये किन्तु जब बारुक अपने आप ही चलने और खडा होने की इच्छा और चेष्टा करे तब उस को सहारा देकर चलाना और खडा करना चाहिये क्योंकि वलात्कार चलाने और खड़ा करने से उस के कोमल पैरों में शक्ति न होने से वे (पर) शरीर का बोझ नहीं उठा सकते है, इस से वालक गिर जाता है तथा गिर जाने से उस के पैर टेढ़े और मुद्दे हुए हो जाते हैं, श्रुटने एक दूसरे से मिड़ जाते हैं और तलने चपटे हो जाते हैं इत्यादि अनेक दूषण पैरों में हो जाते है, नार्क्क को घर में खुळे (नंगे) पैर चलने फिरने देना चाहिये क्योंकि नंगे पैर चलने फिरने देने से उस के पैरों के तलने मज़बूत और सख्त हो जाते है तथा पैरों के पन्ने भी चौडे हो जाते हैं।।

१५—मस्तक चालक का मर्खंक सदा ठंडा रखना चाहिये, यदि मस्तक गर्म होजाने तो ठंडा करने के लिये उस पर शितल पानी की वारा डालनी चाहिये, पीछे उसे पोछ कर और साफ कर किसी वासित तेल का उस पर मर्दन करना चाहिये, क्यों कि मस्तक को घोने के पीछे यदि उस पर किसी वासित तेल का मर्दन न किया जाने तो मस्तक में पीड़ा होने लगती है, बालक के मस्तक से बाल नहीं उतारना चाहिये और न बड़ी शिखा तथा चोटला रखना चाहिये किन्तु केवल बाल कटाते जाना चाहिये, हां बालिकाओं का तो जब वे चार पांच वर्ष की हो जानें तव चोटला रखना चाहिये, वालक को खान कराते समय प्रथम मस्तक मिगोना चाहिये पीछे सब शरीर पर पानी डाल कर खान कराते समय प्रथम मस्तक मिगोना चीहिये पीछे सब शरीर

९-न केवल वालकका ही मस्तक ठडा रखना नाहिये किन्तु सब लोगो को अपना मस्तक सदा ठंडा रखना चाहिये क्योंकि मस्तक वा मगज़ को तरावटकी आवश्यकता रहती है ॥

मगज़ तर रहता है, मैस्तक पर गर्म किया हुआ पानी नहीं डालना चाहिये, वालों को सदा मैल काटने वाली चीजों से घोना चाहिये, पुत्र के बाल प्रतिदिन और पुत्री के बाल सात आठ दिन में एक बार घोकर साफ करना चाहिये, यदि मस्तक में जुयें और लीखें हो जावें तो उन को निकाल के वासित तेल में योड़ा सा कपूर मिला कर मस्तक पर मालिश्च करनी चाहिये क्योंकि ऐसा करने से जुयें कम पड़ती हैं तथा कपूर न मिला कर केवल वासित तेल का मर्दन करने से मगज़ तर रहता है, मस्तक पर नारियल के तेल का मर्दन करना भी अच्छा होता है क्योंकि—उस के लगाने से बाल साफ होकर बढ़ते और काले रहते हैं, बालों के बाहें छने में इस बात का खयाल रखना चाहिये कि—खोइँछते समय उस के बाल न तो खिँचे और न टूटें, क्योंकि बालों के खिँचने और टूटने से मगज़ में व्याधि हो जाती है तथा बाल भी गिर जाते हैं, इस लिये बारीक दाँल बाली कंबी से घीरे २ बालों को बोइँछना चाहिये, मस्तक में तेल सिर्फ इतना डालना चाहिये कि बालक के कपड़े न विगड़ने पानें, बालक के मस्तक पर मनमाना सखन तथा अर्क खींचा हुआ तेल नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि—ऐसा करने से बाल सफेद हो जाते हैं तथा मगज़ में व्याधि भी हो जाती है ॥

१६—लंग वा विवाह वालकपन में लग्न अर्थात् विवाह कर देने से बालक शीमही स्वपात के सम्बन्ध होने की चिनता से यथोचित विद्याभ्यास नहीं कर सकता हैं, इस से चढ़े होने पर संसारयात्रा के निर्वाह में मुसीवत पड़कर उस को संसार में अपना जीवन दुःख के साथ विताना पड़ता है, केवल यही नहीं फिन्तु कची अवस्था में अपक (न पका हुआ अर्थात् कचा) वीर्य निकल्जाने से शरीर का बन्धान टूट जाता है, शरीर दुईल, पतला, पीला, अशक्त और रोगी हो जाता है, आयु का क्षय होजाता है तथा उसकी जो प्रजा (सन्तित) होती है वह भी वैसी ही होती है, वह किसी कार्य को भी हिम्मत के साथ नहीं कर सकता है, इत्यादि अनेक हानियां वालविवाह से होती हैं, इसलिये पुत्र की अवस्था वीस वर्ष की होने के पीछे और पुत्री की अवस्था तेरह वा चौदह वर्ष की होने के पीछे विवाह करना ठीक है, क्योंकि जीवन में वीर्य का विशेष संरक्षण होता है वह हद, स्थूल, प्रष्ट, श्रद्ध वीर, पराक्रमी और नीरोग होता है तथा उस की प्रजा (सन्तित) भी सब प्रकार से उत्कृष्ट होती है, इस लिये पुत्र और पुत्री का उक्त अवस्था में ही विवाह करना परम श्रेष्ठ है ॥

^{9—}मस्तक पर गर्म पानी के डालने से बो हानि है वह नम्बर दो (झान विषय) में पूर्व लिख आने हैं॥ २—उस के अर्थात, वालक के ॥

१७—कर्णरक्षा—(कान की हिफाज़त), नालक के कान ठंढे नहीं होने देना चाहिये, यदि ठंढे होजांने तो कानटोपी पहना देना चाहिये, क्योंकि ऐसा न करने से सदीं लग कर कान पक जाते हैं और उन में पीड़ा होने लगती है, यदि कमी कान में दर्द होने लगे तो तेल को गर्म कर के कान के सीतर उस तेल की बूंदें जालनी चाहियें, यदि कान में बालनी चाहियें, कान में छिद्र (छेद) कराने की रीति नुकसान करती हैं, क्योंकि कान में छिद्र करके खलंकार (आस्पण, नेनर) पहनने से अनेक प्रकार के नुकसीन हो जाते हैं, इस लिये यह रीति ठीक नहीं है, कान को सलाई जादि से भी करोदना नहीं चाहिये किन्तु उस (कान) के मैल को अपने आप ही गिरने देना चाहिये क्योंकि कान के करोदने से वह कभी र एक जाता है और उस में पीड़ा होने लगती है।

१८—शितस्ता रोग से संरक्षा—शितला निकलने से कभी २ बालक अन्धे, खले, काने और बिहरे हो जाते हैं तथा उन के तमाम शरीर पर दाग पढ़ जाते हैं तथा दागों के पड़ने से चेहरा भी बिगड़ जाता है, इत्यादि अनेक सरावियां उत्पन्न हो जाती हैं, केवल इतना ही नहीं किन्तु कभी २ इस से बालक का मरण भी हो जाता है, सत्य तो यह है कि बालक के लिये इस के समान और कोई वड़ा भय नहीं है, यह रोग चे भी भी है इसलिये जिस समय यह रोग पचलित हो उस समय बालक को रोगवाली जगह पर नहीं ले जाना चाहिये, यदि बालक के टीका न लगवाया हो तो इस समय शीन्न ही लगवा देना चाहिये, क्योंकि टीका लगवा देने से ऊपर कहीं हुई सरावियों के उत्पन्न होने का मय नहीं रहता है, यदि बालक के दो बार टीका लगवा दिया जावे तो शीतला निकलती भी नहीं है और यदि कदाचित् निकलती भी है तो उस की प्रवल्ता (जोर) बिलकुल घट जाती है, इस लिये प्रथम छोटी अवस्था में एक वार टीका लगवा देना चाहिये, किन्तु प्रथम छोटी अवस्था में एक वार टीका लगवा देनो के बाद यदि सात सात वर्ष के पीछे दो तीन वार फिर लगवा दिया जावे तो और भी अधिक लग्भ होता है।

ľ

१-पाठकों ने देखा वा छुना होगा कि अनेक दुष्ट गहने के खोस से छोटे बचों की बहका कर हे जाते हैं तथा उन का जेवर हरण कर बच्चो को सार तक डाळते हैं॥

२-चेपी अर्थात् बायु के द्वारा उड़कर समनेवासा ॥

⁴⁻छोटी अवस्था में जितनी जस्द हो सके टीका रुगवा देना चाहिये-अर्थात् शिस बारुक को कोई रोग न हो तथा हृष्ट पुष्ट हो तो जन्म के १५ दिन के पीछे और तीन महीने के मीतर टीका रुगवा देना उचित है, परन्तु दुवंछ और रोगी वारुक के चब तक दाँत न निकर आवें तब तक टीका नहीं रुगवाना चाहिये, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि-टीका रुगवाने का सब से अच्छा समय जाहे की ऋतु है।

टीका लगवाने के समय इस बात का पूरा ख़याल रखना चाहिये कि—टीका लगाने के लिये जिस बालक का चेप लिया जावे वह बालक गुमड़े तथा ज्वर आदि रोगवाल नहीं होना चाहिये, किन्तु वह बालक नीरोग और दृढ़ बन्धान युक्त होना चाहिये, क्योंकि मीरोग बालक का चेप लेने से उस बालक को फायदा पहुँचता है और रोगी बालक का चेपलेने से बालक को श्रीष्ठही उसी प्रकार का रोग होजाता है।

जब बालक का शरीर बिलकुल तनदुरुख हो तब उस के टीका लगवाना चाहिये, टीका लगवाने के बाद नौ दस दिन में दाने मरजाते हैं और स्जन आ जाती है और पीड़ा भी होने लगती है, उस के बाद एक दो दिन में आराम होना शुरू हो जाता है, इससमयमें उस के आराम होने के लिये वालक को औषध देने का कुल काम नहीं है; हां बिद टीका लगाने का स्थान खिँचता हो और खिँचने से अधिक दुःस माख्म होतां हो तो उस पर केवल थी लगा देना चाहिये, क्योंकि बी के लगाने से चेप निकल कर गिर जाते हैं, दाने फूटने के बाद वारीक राख से उसे पोंलना भी ठीक है, परन्तु दानों को नोच कर नहीं उखाइना चाहिये क्योंकि नोच कर उखाइ देने से लाम नहीं होता है और फिर पक जाने का भी मय रहता है, यदि बालक दानों को नोचने लगे तो उस के हाथ पर कपड़ा लेयट देना चाहिये अर्थात् उस चेप (पपड़ी) को नोच कर नहीं उखाइना चाहिये किन्तु उसे अपने आप ही गिरने देना चाहिये ॥

१९—बाल्ग्यंटिका—बालक को बाल्ग्यंटिका देनी की रीति बहुत हानिकारक है, बाहें प्रत्यक्ष में इस से कुछ लाम भी माल्य पड़े परन्तु परिणाम में तो हानि ही पहुँ चती है, यह हमेशा देने से तो एक प्रकार से ख़राक के समान हो जाती है तथा ज्यसनी के ज्यसन के समान यह भी एक प्रकार से ज्यसनवत् ही हो जाती है, क्योंकि जब तक उस का नशा रहता है तब तक तो बालक को निद्रा आती है और वह टीक रहता है परन्तु नशा उतरने के बाद फिर ज्यों का त्यों रहता है, नशा करने से सामाविक नींद के समान अच्छी नींद भी नहीं आती है, इस के सिवाय इस बात की टीक जांच करली गई है कि—बालगुटिका में नाना प्रकार की बस्तुयें पड़ती हैं किन्तु उन में भी अफीम तो मुख्य होती है, उस गुटिका को पानी वा माता के दृष्में मिला के बलात्कार बालक के हाथ पैर एकड़ के उसे पिला देते है, यद्यपि उस गुटिका मिला के बलात्कार बालक के हाथ पैर एकड़ के उसे पिला देते है, यद्यपि उस गुटिका

१-क्योंकि राख से पोंछने से दाने जल्दी खुरू हो जाते हैं।

२-कपडा बांध देने से वालक दानों को नोन नहीं छकेगा ॥ ३-यह वालगुटिका वनोको खिलाने के लिये एक प्रकार की गोली है जिस में अफीम आदि कई प्रकार के ह्यानिकारक पदार्थ डाडकर वह बनाई जाती है-मूर्ख किया बालकों को सुलाने के लिये इस गोली को बालकों को खिला देती हैं कि बालक सो जाय और वे सुख से अपना सन कार्य करती रहें ॥

के पीने के समय वालक अत्यन्त रोता है तथापि उस के रोने पर निर्दय माता को कुछ भी दया नहीं जाती है, इस गुटिका के देनेकी रीति प्रायः एक दूसरी को देख कर कियों में चल जीती है, यह गुटिका भी एक प्रकार के व्यसन के समान वालक को दुवेंला, निर्वल और पीला कर देती है तथा इस से वालक के हाथ पैर रस्सीके समान पतले और पेट मटकी के समान बड़ा हो जाता है तथा इस गुटिका को देकर वालक को वलाकार सुलाना तो न सुलाने के ही समान है, इसलिये माता का यह कार्य तो वालक के साथ शत्रुता रखने के तुल्य होता है, वालक को सुलाने का सचा जपाय तो यही है कि—सोने से प्रथम वालक से पूरी शारीरिक कसरत कराना चाहिये, ऐसा करने से वालक को खयमेव उत्तम निद्रा आ जांवें गी, इसलिये निद्रा के लिये वालगुटिका के देने की रीति को विलक्षल ही वन्द कर देना चाहिये।।

२०-अगॅरल — जब बालक सो कर उठे तब कुछ देरें के पीछे उस की आंखों को ठंढे जल से घो देना चाहिये, आंखों के मैल आदि को खूब घोकर आंखों को साफ कर देना चाहिये, ठंढे पानी से हमेशा घोने से आंखों का तेज बढता है,ठंढक रहती है तथा आंख की गमीं कम हो जाती है, इत्यादि बहुत से लाम आंखों को ठंढे पानी से घोने से होते हैं, परन्तु आंखों को घोये विना वैसी ही रहने देने से नुकसान होता है, आंखों में हमेशा काजल अथवा ज्योति को बढ़ाने वाला अन्य कोई अक्षन आंजते (लगाते) रहना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से आंखें दुखनी नहीं आती हैं और तेज भी बढ़ता है। आंखें दुखनी आना एक प्रकार का चेपी रोग है, इस लिथे यदि किसी की आंखें

९-क्योंकि क्रियों में मुर्खता तो होती ही है एक इसरी को देख कर व्यवहार करने लगती हैं ॥

१-क्योंकि इस में अफीम आदि कई विषेठे पदार्थ डाले जाते हैं ॥

३-क्योंकि नहीं के ओर से जो निदा आती है वह स्वामानिक निदा का फल नहीं देसकती है ॥

४-क्योंकि शारीरिक थकावट के बाद निद्रा खब आया करती है।

५-सोकर उठने के बाद शीघ्र ही आंखों को वो देने से सर्दी गर्मी शेकर आखें दुखनी आजाती हैं॥

e—चेपी रोग उसे कहते हैं जोकि रोगी के स्पर्श करनेवाले तथा रोगी के पास में रहनेवाले पुरुष के भी वायु के द्वारा उब कर लगनाता है, यह (चेपी) रोग वड़ा मयकर होता है, इस लिये माता पिता को चाहिये कि—चेपी रोग से अपनी तथा अपने वालकों की सदा रक्षा करते रहें, यह भी जान लेना चाहिये कि—केवल आंखों का दुखनी आना ही चेपी रोग नहीं हैं किन्तु चेपीरोग बहुत से हैं, जैसे ओरी (शीतला का मेद), अलबड़ा (आकड़ा काकड़ा), शीतला (चेचक), गालपचीरिया (गालमें होने वाला रोगिवशिय), खलजुलिया, गलपुआ (गले में होने वाला एक रोग), दाद, आखों का दुखना, टाइफस ज्वर (ज्वर विशेष), कोलेश (विधूचिका वा हैजा), भोतीहरा, पानी झरा (ये शोनों राजपूताने में प्राय: होते हैं) इलादि, इन रोगों में से जब कोई रोग कहीं प्रचलित हो तो वहां वालक को लेकर नहीं रहना चाहिये किन्तु जब वह रोग मिट जाने तव वहां वालक को ले जाना चाहिये तथा यदि कोई पुरुष इन रोगों में से किसी रोग से प्रस्त हो तो उसके विलक्त को लक्षक लाराम हो जाने के पीले वालक को उस के पास जाने देना चाहिये, तात्पर्य यही है कि—चेपी रोगों से अपनी और-अपने वालकों की वही सावधानी के साथ रक्षा करनी चाहिये।

दुसती हों तो उस के पास बालक को, नहीं जाने देना चाहिये, यदि बालक की लांस दुसनी आदे तो उस का शीघ ही यथायोग्य उपाय करना चाहिये, क्योंकि उस में प्रमाद (गफलत) करने से आंस को बहुत हानि पहुँचती है।

इस प्रकार से ये कुछ संक्षित नियम बालरक्षा के विषय में दिखलाये गये हैं कि इन नियमों को जान कर खियां अपने बालकों की नियमानुसार रक्षा करें, क्योंकि जबतक उक्त नियमों के अनुसार बालकों की रक्षा नहीं की जायगी तबतक वे नीरोग, बलिष्ठ, इट बन्धान वाले, पराक्रमी और शूर वीर कदापि नहीं हो सकेंगे और वे उक्त गुणों से . युक्त न होने से न तो अपना कल्याण कर सकेंगे और न दूसरोंका कुछ उपकार कर सकेंगे, इस लिये माता पिता का सब से युख्य यही कर्तव्य है कि—वे अपने बालकों की रक्षा सदा नियम पूर्वक ही करें, क्योंकि ऐसा करने से ही उन बालकों का, बालकों के माता पिताओं का, कुटुम्ब का और तमाम संसार का भी उपकार और कल्याण हो सकता है ॥

यह तृतीय अध्याय का बालरक्षण नामक—चौथा प्रकरण समाप्त हुआ ॥ इति श्री जैनक्वेताम्बर—धर्मोपदेशक—यति प्राणाचार्य—विवेकल्रव्धि शिष्यशील-सौमाग्य निर्मितः, जैनसम्प्रदाय शिक्षायाः

तृतीयोऽध्यायः ॥

१-वालरक्षा के विस्तृत नियम नैयक आदि प्रन्यों में देखने चाहियें ॥ २-'स्वयमसिद: कथ परार्थान् सावित्त सकोति, । अर्थात् जो स्वयं (श्वद्)असिद्ध (सर्वे साधनों पे रहित अथवा असमयं) है. वह दूसरों के अर्थों को कैसे सिद्ध कर सकता है ॥

चतुर्थः अध्याय ॥

मङ्गलाचरण ॥

दोहा—श्री गुरु चैरण सरोज रज, निज मन मुंकुर सुधारि ॥
वैषु रक्षणके नियम अब, कहत सुनो चितधारि॥ १॥
प्रथम प्रकरण—वैद्यक शास्त्र की उपयोगिता॥

शरीर की रचना और उस की किया को ठीक र नियम में रखने के लिये शरीर संरक्षण के नियमों और उपयोग में आने वाले पदार्थों के गुण और अवगुण को जान लेना अति आवश्यक है, इसीलिये वैद्यक विद्या में इस विभाग को प्रथम श्रेणीमें गिना गया है, क्योंकि—शरीर संरक्षण के नियमों के न जानने से तथा पदार्थों के गुण और अवगुण को विना जाने उन को उपयोग में लाने से अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होजाती है, इस के सिवाय उक्त विषय का जानना इसलिये भी आवश्यक है कि—अपने र कारण से उत्पन्न हुए रोगों की दशा में उन की निवृत्ति के लिये यह अद्युत साधन रूप है, क्योंकि—रोगदशा में पदार्थों का यथायोग्य उपयोग करना ओषि के समान बरन उस से भी अधिक लामकारक होता है, इस लिये प्रतिदिन व्यवहार में आनेवाले वायु, जल और भोजन आदि पदार्थों के गुण और अवगुणों का तथा व्यायाम और निद्रा आदि शरीर संरक्षण के नियमों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रत्येक मनुष्यको अवश्य ही उद्यम करना चाहिये।

शरीरसंरक्षण के नियम-बहुधा दो भागों ने विभक्त (बँटे हुए) हैं अर्थात् रोग को न आने देना तथा आये हुए रोग को हटा देना, इस मत्येक भागों स्याद्वादमत के अनुसार उद्यम और कर्मगति का भी सन्नार रहा हुआ है, जैसे देखो-सर्वदा नीरोगता ही रहे, रोग न आने पाने, इस विषय के साधन को जान कर उस की प्राप्तिक लिये उद्यम करना तथा उस को प्राप्त कर उसी के अनुसार वर्ताव करना, इस में उद्यम की प्रवलता है, इस प्रकार का वर्ताव करते हुए भी यदि रोग उपस्थित हो जावे तो उस में कर्म गतिकी प्रवलता समझनी चाहिये, इसी प्रकार से कारणवश्च रोग की उत्यित्व होनेपर उसकी निवृत्तिके लिये अनेक उपायों का करना उद्यमक्ष्य है परन्तु उन उपायोंका सफल होना वा न होना कर्मगति पर निर्मर है।

१-चरण कमलोकी धृष्टि॥ २-दर्गण॥ १-क्ररीर-॥

इस विषय में यद्यपि अन्य आचारों में से बहुतों का मत यह है कि—उद्यम की अपेक्षा कर्मगति अर्थात् देव प्रधान है—परन्तु इस के विरुद्ध चिकित्साशास्त्र और उस (चिकित्साशास्त्र) के निर्माता आचारों की तो यही सम्मति है कि-मनुष्यका उद्यम ही प्रधान है, यदि उद्यम को प्रधान न मानकर कर्मगति को प्रधान माना जावे तो चिकित्साशास्त्र अवान्यस्यक हो जायगा, अतएव शरीर संरक्षण विषयमें चिकित्साशास्त्र के सिद्धान्त के बनुस्तार उद्यम को प्रधान मान कर शरीर संरक्षण के नियमों पर ध्यान देना मनुष्यमात्र का परम कत्त्रेच्य और प्रधान प्ररुपार्थ है, अब समझने की केवल यह बात है कि-यह उद्यम भी पूर्व लिखे अनुसार दो ही मागों में विभक्त है—अर्थात् रोग को समीप में आने न देना और आये हुए को हटा देना, इन दोनोंमें से पूर्व भाग का वर्णन इस अध्याय में कुछ विस्तार पूर्वक तथा उत्तर माग का वर्णन संक्षेंप से किया जायगा ॥

स्वारंध्य ब्रि. अंशिंग्यंता ॥

यद्यपि शरीर का नीरोग होना वा रहना पूर्व कृत कर्मों पर भी निर्मर है—अर्थात् जिस ने पूर्व जन्म में जीवदया का परिपालन किया है तथा मुखे प्यासे और दीन हीन प्राणीका जिसने सब प्रकार से पोषण किया है—वह प्राणी नीरोग शरीर वाला, दीर्घायु तथा उद्यम बल और बुद्धि आदि सर्व साधनोंसे युक्त होता है—तथापि चिकित्सा शास्त्र की सम्मति के अनुसार मनुष्य को केवल कर्मगति पर ही नहीं रहना चाहिये—िकन्तु पूर्ण उद्योग कर शरीर की नीरोगता प्राप्त करनी चाहिये, क्योंकि—जो पूर्ण उद्योग कर नीरोगता को प्राप्त नहीं करता है संसार में उसका जीवन व्यर्थ ही है, देखो । जगतमें जो सात सुख माने गये हैं उन में से मुख्य और सब से पहिला सुख नीरोगता ही है, क्योंकि यही (नीरोगता का सुख) अन्य शेष ६ सुखों का मुल कारण है, न केवल इतना ही किन्तु आरोग्यता ही वर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का भी मुल कारण है, जैसा कि—शासकारोंने कहा भी है कि—''धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मुलकारणम्' इसी प्रकार लोकोक्ति भी है कि ''काया राखे धर्म'' अर्थात् वर्म तब ही रह सकता वा किया जा सकता है जब कि शरीर नीरोग हो, क्योंकि—शरीर की आरोग्यता के विना मनुष्य को सांसारिक सुखों के सम में भी दर्शन नहीं होते है, फिर मला उस को पारमार्थिक सुख क्योंकर प्राप्त हो सम में भी दर्शन नहीं होते है, फिर मला उस को पारमार्थिक सुख क्योंकर प्राप्त हो

^{9-&}quot;आरोग्यता" यह शब्द वद्यपि संस्कृत मामा के नियम से अशुद्ध है अर्थात 'अरोगता, वा 'आरोग्य, शब्द ठीक है, परन्तु वर्त्तमान में इस 'आरोग्यता, शब्द का अधिक प्रचार हो रहा है, इसी किये हमने भी इसी का प्रयोग किया है ॥

२-पहिलो मुक्ख निरोगी काया । दूजो मुख घर में हो माया ॥ तीजो मुख पुथान वासा । चीयो मुख प्रतासमें पासा ॥ पॉचवों मुख कुलवन्ती नारी । छड़ो मुख मुत आज्ञाकारी ॥ सातमो मुख घम में में मती । घाल मुक्त गुरु पण्डित यती ॥ १ ॥

सकता है ! देखो ! आरोग्यता ही से मनुष्य का चित्त प्रसन्न रहता, बुद्धि तीन होती तथा मस्तक बलयुक्त बना रहता है कि-जिस से वह शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कार्यों को अच्छे प्रकार से कर सुखों को भोग अपने आत्मा का कल्याण कर सकता है, इस िये ऐसे उत्तम पदार्थ को खो देना मानो मनुष्य जीवन के उहेश्य का ही सत्यानाश करना है, क्योंकि-आरोग्यता से रहित पुरुष कदापि अपने जीवन की सफलता को प्राप्त नहीं कर सकता है, जीवन की सफलता का भार करना तो दूर रहा किन्तु जब आरोग्यता में अन्तर पड़ जाता है तो मनुष्य को अपने जीवन के दिन काटना भी अत्यन्त कठिन हो जाता है, सत्य तो यह है कि-एक मनुष्य सर्व गुणों से युक्त तथा अनुकूछ पुत्र, कलत्र और समृद्धि आदि से युक्त होने पर भी खास्य्यरहित होनेसे जैसा द:खित होता है दसरा मनुष्य उक्त सर्व साधनों से रहित होने पर भी नीरोगता युक्त होने पर वैसा दु:खित नहीं होता है, यद्यपि यह बात सत्य है कि-आरोग्यता की कदर नीरोग मनुष्य नहीं कर सकता है किन्दु आरोग्यता की कदर को तो ठीकं शीति से रोगी ही जानसकता है, परन्तु तथापि नीरोग मनुष्य को भी अपने कुटुम्न में माता, पिता, भाई, बेटा, बेटी तथा बहिन आदिके वीमार पड़नेपर नीरोगता का झुल और अनारोग्यता का दु:ल विदित हो सकता है, देली । कुडुम्ब में किसी के बीमार पड़ने पर नीरोग मनुष्य के भी हृदय में कैसी घोर चिन्ता उत्पन्न होती है, उसको इधर उधर वैद्य वा डाक्टरों के पास जाना पड़ता है, जीविका में हर्ज पड़ता है तथा दवा दाक्त में उपाजित धन का नाश होता है, यदि विद्याहीन यमदूत के सदृश मूर्ल वैद्य मिल जावे तो कुटुम्बी के नाश के द्वारा तद्वियोग जन्य (उसके वियोग से उत्पन्त) असब दुःखमी आकर उपस्थित होता है, फिर देखिये। यदि घर के काम काज की सँमालने वाली माता अथवा स्त्री आदि वीमार पढ़ जावे तो वाल वचों की सँमाल और रसोई आदि कामों में जो २ हानियां पहुँचती हैं वे किसी गृहस्य से छिपी नहीं है, फिर देखों ! यदि दैवयोग से घर का कमाने वाला ही नीमार हो जाने तो कहिये उस भर की क्या दशा होती है, एवं यदि प्रतिदिन कमा कर घर का खर्च चलाने वाला पुरुष बीमार पड़ जावे तो उस घर की क्या दशा होती है, इसपर मी यदि दुर्देव वश उस पुरुष को ऋण भी उधार न मिळ सके तो कहिये वीमारी के समय उस घर की विपत्ति का क्या ठिकाना है, इस लिये पिय मित्रो ! अनुभवी जनों का यह कथन विलक्कल ही सत्य है कि—"राज महल के अन्दर रहने वाला राजा भी यदि रोगी हो तो उसको दुःसी और श्लोपडी में रहनेवाला एक गरीव किसान भी यदि नीरोग हो तो उसको झुली समझना चाहिये" तात्पर्य यही है कि-आरोग्यता सब झुखों का और अनारोग्यता सब दु:खों का परम आश्रय है, सत्य तो यह है कि-रोगावस्था में मनुष्य को जितनी तकलीफ उठानी पड़तीहै उसे उस का हृदय ही जानता है, इस पर भी इस रोगावस्था में एक अतिदारुण

*

ř

!

1

;

विपत्ति का और भी सामना करना पड़ताहै-जिस का वर्णन करने में हृदय असंत कमा-यमान होता है तथा वह विपत्ति इस जमाने में और भी वढ़ रही है, वह यह है कि-इस वर्तमान समय में बहुत से अपठित मूर्ख वैद्य भी चिकित्सा का कार्य कर अपनी आजी-विका चला रहे हैं अर्थात् वैद्यक विद्या भी एक दकानदारी का रुजगार वन गई है, अन कहिये जब रोग के निवर्तक वैद्यों की यह दशा है तो रोगी को विश्राम कैसे प्राप्त होस-कता है ! शास्त्रों में लिखा है कि-वैद्य को परम दयाल तथा दीनोपकारक होना चाहिये. परन्तु वर्तमान में देखिये कि क्या वैद्य, क्या डाक्टर प्रायः दीन, हीन, महा इ.सी और परम गरीबों से भी रुपये के विना बात नहीं करते हैं अर्थात जो हाथ से हाथ मिळाताहै उसी की दाद फर्याद ख़नते और उसी से बात करते है, बैच वा डाक्टरों का तो दीनों के साथ यह वर्ताव होताहै. अब तनिक द्रव्य पात्रों की तरफ दृष्टि डालिये कि-वे इस विषय में दीनों के हित के लिये क्या कर रहे है, द्रव्य पात्र लोग तो अपनी २ धन में मस्त है, काफी द्रव्य होने के कारण उन लोगों को तो वीमारी के समय में वैद्य वा डाक्टरों की उपलिय सहज में हो सकने के कारण विशेष दुःख नहीं होता है, अपने को दुःख न होने के कारण ममाद में पड़े हुए उन कोगों की दृष्टि मला गरीवों की तरफ कैसे जा सकती है ! वे कव अपने द्रव्य का व्यय करके यह प्रवंध कर सकते हैं कि दीन जनों के छिये उत्तमीतम औपघालय आदि बनवा कर उन का उद्धार करें, यद्यपि गरीव जनों के इस महा दु:ख को विचार कर ही श्रीमती न्यायपरायणा गवर्नमेंट ने सर्वत्र औषधालव (शिफालाने) वनवाये हैं, परन्त तथापि उन में गरीवों की यथोचित खबर नही ली जाती है, इसलिये डाक्टर महोदयों का यह परम धर्म है कि-वे अपने हृदय में दया रख कर गरीबों का इलाज द्रव्य-पात्रों के समान ही करें, एवं हवा पानी और वनस्पति, ये तीनों क़ुदरती दवायें प्रथी पर खमान से ही उपस्थित है तथा परम क्रपाछ परमेश्वर श्री ऋषमदेनने इन के ग्रम योग और अग्रम योग के ज्ञान का भी अपने श्रीमुख से आत्रेय पुत्र आदि प्रजा को उपदेश द्वेकर आरोग्यता सिखरुाई है, इस विषय को विचार कर उक्त तीनों वस्तुओं का सुखदायी नेग जानना और दूसरों को बतलाना वैद्यों का परम धर्म है, क्योंकि ऐसा करने में कुछ भी खर्च नहीं छगता हैं, किन्तु जिस दवा के बनाने में खर्च भी छगता हो वह भी अपनी शक्ति के अनुसार वनाकर दीनोंको विना मूल्य देना चाहिये तथा जो खयं वाजार से औपिं को मोल लाकर बना सकते हैं उनको नुससा लिसकर देना चाहिये परन्तु नुससा लिखने में गलती नहीं करनी चाहिये, इसीप्रकार द्रव्यपात्रों को भी चाहिये कि-योग्य और विद्वान् वैद्यों को द्रव्य की सहायता देकर उन से गरीवों को ओषधि दिलावें-देखी ! श्रीमती वृटिश गवर्नमेंट ने भी केवल दो ही दानों को पसन्द किया है, जिन को हम सब लोग नेत्रों के द्वारा प्रत्यक्ष ही देख रहे है अर्थात् पहिला दान विधा दान है जो कि-पाठ- शालाओं के द्वारा हो रहा हैं तथा दूसरा ओषधिदान हैं जो कि-अस्पताल और शिफाखा-नोंके द्वारा किया जा रहा हैं।

पहिले कह जुके हैं कि-शरीर संरक्षण के नियम वहुघा दो भागों में विभक्त है जर्थात् रोग को अपने समीप में न आने देना तथा आये हुए रोगको हटा देना, इन दोनों में से वर्तमान समय में यदि चारों तरफ दृष्टि फैला कर देखा जाने तो लोगों का निशेष समुद्राय ऐमा देखा जाता है कि-जिस का घ्यान पिछले भागमें ही हैं, किन्तु पूर्व भाग की तरफ विलक्षल ध्यान नहीं है अर्थात् रोग के आने के पीछे उस की निवृत्ति के लिये इधर उघर दौड़धूप करना आदि उपाय करते हैं, परन्तु किस प्रकार का वर्ताव करने से रोग समीप में नहीं आ सकता है अर्थात् आरोग्यता बभी रह सकती है, इस बात को जनसमूह नहीं सोचताहै और इस तरफ यदि लोगों की दृष्टि है मी तो बहुत ही थोड़े लोगों की है और वे पायः आरोग्यता बनी रहने के नियमों को मी नहीं समझते है, बस यही अज्ञानता अनेक व्याधिजन्य दु:खों की जड़है, इसी अज्ञानता के कारण मनुष्य प्रायः अपने और दूसरे सनों के शरीर की खरावी किया करते हैं, ऐसे मनुष्यों को पशुओं से मी गया वीता समझना चाहिये, इसलिये प्रत्येक मनुष्य का यह सब से प्रथम कर्तव्य है कि—वह अपनी आरोग्यता के समस्त साधनों (जितने कि मनुष्य के आधीन हैं) के पालन का यत अवश्य करे अर्थात् आनेवाले रोग के मार्ग को प्रथम से ही बन्द कर दे, देसो ! यह निश्चय की हुई वात है कि—आरोग्यता के नियमों का जानने वाला मनुष्य

१-आरोग्यता के सब नियम मनुष्य के आधीन नहीं है, क्योंकि-बहुत से नियम तो देवाधीन अर्थात्-कर्मेखनाव वचा है, वहुत से राज्याधीन है, वहुत से छोकससुदायाधीन है और वहुत से नियम प्रखेक मत्राच्य के आधीन हैं, जैसे-देखो । एकदम ऋतुओं के परिवर्तन का होना, हैजा, मरी, विस्फोटक, अति-बृष्टि. अनाबृष्टि. अति शीत और अति उष्णता का होना आदि दैवाधीन (समुदायी कर्म के आधीन) कार्यो में मनुष्यका कुछ भी उपाय नहीं चल सकता है, नगर की यथायोग्य खच्छता आदि के न होने से दुर्गीन्य भादि के द्वारा रोगोत्पत्ति का होना आदि कई एक कार्य राज्याधीन हैं, छोकप्रया के अनुसार वालविवाह (कम अवस्था में विवाह) और जीमणवार आदि क्रवाडों से रोगोत्पत्ति होना आदि कार्य जाति वा समाज के आधीन हैं, क्योंकि इन कार्यों में भी एक मनुष्य का कुछ भी उपाय नहीं चल सकता है और प्रत्येक मनुष्य खान पान आदि की अज्ञानता से खब अपने शरीर में रोग उत्पन्न कर छेने अथवा बोग्य वर्ताव कर रोगोंसे बना रहे यह बात प्रत्येक मनुष्यके आधीन है, हा यह बात अवस्य है कि-यदि प्रत्येक मनुष्य को आरोग्यता के नियमों का यथोचित ज्ञान हो तब तो सामानिक तथाजातीय सुधार भी हो सकता है तथा सामाजिक सुघार होने से नगर की खच्छता होना आदि कार्यों में भी सुघार हो सकता है, इस प्रकार से प्रम्येक मनुष्य के आधीन जो कार्य नहीं हैं अर्थात् राज्याधीन वा जालाधीन हैं उनकाभी अधिकांशमें स्रधार हो सकता है. हां केवल दैवाधीन अश्वमें मनुष्य क्रल भी उपाय नहीं कर सकता है, क्योंकि-निका-नित कर्म वन्घन अति प्रवल है, इस का उदाहरण प्रलक्ष ही देख लो कि-द्वेग राश्वसी कितना कुछ पहुँचा रही है और उसकी निष्टित्त के लिये किये हए सब प्रयक्त व्यर्थ जा रहे है ॥

आरोग्यता के नियमों के अनुसार वर्ताव कर न केवल खयं उसका फल पाता है किन्तु अपने कुटुन्च और समझदार पड़ोसियों को भी आरोग्यता रूप फल दे सकता है।

श्चरीर संरक्षण का ज्ञान और उसके नियमों का पालन करना आदि बातों की शिक्षा किसी बड़े स्कूल वा कॉलेज में ही माप्त हो सकती है यह बात नहीं है, किन्तु मनुष्यके लिये घर और कुटुम्ब भी सामान्य ज्ञान की शिक्षा और आनुमविकी (अनुमव से उत्पन्न होने वाळी) विद्या सिखळाने के लिये एक पाठशाला ही है, क्योंकि-अन्य पाठशाल और कॉलेजों में आवश्यक शिक्षा के प्राप्त करने के पश्चात् मी घर की पाठ शाला का आवश्यक अभ्यास करना, समुचित नियमों का सीखना और उन्हीं के अनुसार वर्षांव करना आदि आवश्यक होता है, कुदुम्य के माता पिता आदि बृद्ध जन घर की पाठशाला के अध्यापक (मार्टर) हैं, क्योंकि-कुल्परम्परा से आया हुआ दया धर्म से युक्त लान पान और विचार पूर्वक बांधा हुआ सदाचार आदि कई आवश्यक बातें मनुष्यों को उक्त अध्यापकों से ही प्राप्त होती हैं अर्थाव् माता पिता आदि वृद्ध जन जैसा वर्ताव करते हैं उनके बालकभी प्रायः वैसा ही वर्चीव सीखते और उसी के अनुसार वर्ताव करते है, हां इस में भी प्रायः ऐसा होता है कि-माता पिता के सदाचार आदि उत्तम गुणोंको पुण्यवार् सुपुत्र ही सीखता है, क्योंकि-साँत व्यसनों में से कई व्यसन और दुराचार आदि अव-गुणोंको तो दूसरों की देखा देखी विना कहे ही बहुतसे बुद्धिहीन सीस लेतेहैं, इस का कारण केवल यही है कि-मिथ्या मोहनी कर्म के संग इस जीवात्मा का अनादि कालका परिचय है और उसी के कारण भविष्यत् में भी (आगामी को भी) उस को अनेक कृष्ट और आपत्तियां मोगनी हैं और फिर भी दुर्गति में तथा संसार में उस को अभण करना है, इस लिये वह कर्नोंकी आनुपूर्वी उस प्राणी को उस प्रकार की बुद्धि के द्वारा उसी तरफ को खींचती है, इसी लिये माता पिता और गुरु आदि की उत्तम सदाचार की शिक्षा को वह सिखळाने पर भी नहीं सीखता है किन्त बरे आचरण में शीघ ही निर लगाता है ।

यद्यपि उत्पर लिखे अनुसार कर्मनश ऐसा होताहै तथापि माता पिताकी चतुराई और उन के सदाचार का कुछ न कुछ प्रमान तो सन्तान पर पड़ता ही है, हां यह अवस्य होता है कि-उस प्रमान में कर्माधीन तारतम्य (न्यूनाधिकता) रहताहै, इस के विरुद्ध जिस घर में माता पिता आदि कुटुम्न के दृद्ध जन स्नान और दन्त धानन नहीं करते, कपड़े मैळे पहनते, पानी निना छाने पीते और नशा पीते हैं, इत्यादि अनेक कुत्सित

१-क्योंकि-मूर्ख पढोसी तो गगाजल में रहने वाली मछलीके समान समीपवर्ती योग्य पुरुष के गुण को ही नहीं समझ सकता है ॥

२-सात व्यसनोंका वर्णन आणे किया जायगा ॥

रीतियों में प्रवृत्त रहते हैं तो उन के बालक मी वैसा ही व्यवहार सीख लेते और वैसा ही वर्ताव करने लगते है, हां यह दूसरी बात है कि—माता पिता आदि का ऐसा अनुपयुक्त व्यवहार होने पर भी कोई र पुण्यवान् सन्तान सब कुटुम्ब वालों से छँट कर सत्सक्षति के द्वारा उत्तम क्रिया और सब उपयोगी नियमों को सीख लेते हैं और सद्वचवहार में ही प्रवृत्त रहते हैं तथा द्रव्यवान् विनयवान् और दानी निकल आते हैं, यह केवल साद्वाद है, किन्तु लोकव्यवहार के अनुसार तो मनुष्य को सर्वदा श्रेष्ठ कार्य और सद्गुणों के लिये उद्यम करना और उन को सीख कर उन्हीं के अनुसार वर्ताव करना ही परम उचित है।

बहुत से छोग ऐसे भी देखे जाते है कि-वे पथ्यापथ्य को न जानने के कारण नीमार हो जाते है, क्योंकि-यह तो निश्चय ही है कि-जान बूझ कर बीमार शायद कोई ही होता है किन्त अज्ञान से ही छोग रोगी बनते है, इस में कारण यही है कि-ज्ञान से चछने में जीव बळवान है और अज्ञान से चलने में कर्म बळवान है, इस लिये मनुष्यों को ज्ञान से ही सिद्धि प्राप्त होती है, देखो । सदाचरणरूप युखदायी योग को पथ्य और असदाचर-णरूप दु:खदायी योग को कुपथ्य कहते है, इन दोनों योगों को अच्छे प्रकार से समझ लेना यह तो ज्ञान है और उसी के अनुकूल चलना यह किया है, बस इन्हीं दोनों के योग से अर्थात ज्ञान और क्रिया के योग से मोक्ष (द:खकी निवृत्ति) होता है, यह विषय संसारपक्ष और मुक्तिपक्ष दोनों में समान ही समझना चाहिये, देखो । जिस पुरुष ने अपने आत्मा का मळा चाहा है उस ने मानो सब जगत् का मळा चाहा, इसी प्रकार जिस ने अपने शरीर के संरक्षण का नियम पाला मानो उस ने दूसरे को भी उसी नियम का पालन कराया, क्योंकि पहिले लिख चुके है कि-माता पिता आदि बृद्धजनों के मार्ग पर ही उन की सन्तित प्रायः चलती है, इस लिये प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि-अपनी और अपनी सन्तित की शरीरसंरक्षा के नियमों को वैद्यक शास आदि के द्वारा गली भाँति जान कर उन्हीं के अनुसार वर्चाव कर आरोग्य लागके द्वारा मनुष्यजन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चारों फर्जों को प्राप्त करे।।

यह चतुर्थ अध्याय का-वैद्यक शास्त्र की उपयोगिता नामक प्रथम प्रकरण समाप्त हुआ ॥

द्वितीय प्रकरण-वायुवर्णन ॥

इस संसार में हवा, पानी और ख़ुराक, येही तीन पदार्थ जीवन के मुख्य आधार रूप है, परन्तु इन में से भी पिछले र की अपेक्षा पूर्व र को वलवान समझना चाहिये, क्योंकि देखो । ख़ुराक के ख़ाये विना मनुष्य कई दिन तक जीवित रह सकता है, एवं पानी के पिये विना भी कई घण्टे तक जीवित रह सकता है, परन्तु हवा के विना थोड़ी देर तक मी जीवित रहना अति कठिन है, अति कठिन ही नहीं किन्तु असम्मव है, इस से सिद्ध है कि—उक्त तीनों पदार्थों में से हवा सब से अधिक उपयोगी पदार्थ है, उस से दूसरे दर्जे पर पानी है और तीसरे दर्जे पर ख़राक है, परन्तु इस विषय में यह भी स्मरण रहना चाहिये कि—इन तीनों में से यदि एक पदार्थ उपस्थित न हो तो शेष दो पदार्थों में से कोई मी उस पदार्थ का काम नहीं दे सकता है अर्थात् केवल हवा से वा केवल पानी से अथवा केवल ख़ुराक से अथवा इन तीनों में से किन्हीं मी दो पदार्थों से जीवन काम नहीं रह सकता है, तात्पर्य यह है कि—इन तीनों संगुक्तों से ही जीवन स्थिर रह सकता है तथा यह मी स्मरण रहना चाहिये कि—समय आने पर मृत्यु के साधन भी इन्हीं तीनों से प्रकट हो जाते हैं, क्योंकि देखों! जो पदार्थ अपने सामाविक रूप में रह कर शरीर के लिये उपयोगी (लामदायक) होता है वही पदार्थ विकृत होने पर अथवा आवश्यकता के परिमाण से न्यूनाधिक होने पर अथवा प्रकृति के अनुकूल न होने पर शरीर के लिये अनु-पयोगी और हानिकारक हो जाता है, इत्यादि अनेक बाबों का ज्ञान शरीर संरक्षण में ही अन्तर्गत है, इस लिये अब कम से इन का संक्षेप से वर्णन किया जाता है:—

उक्त तीनों पदार्थों में से सब से प्रथम तथा परम आवश्यक पदार्थ हवा है, यह पिहले ही लिख चुके हैं, अब इस के विषय में आवश्यक वातों का वर्णन करते हैं:—

जगत् में सब जीव आस पास की हवा छेते हैं, वह (हवा) जब बाहर निकछकर पुनः प्रवेश नहीं करती है—बस उसी को मृत्यु, मौत, देहान्त, प्राणान्त, अन्तकाल और अन्त किया आदि अनेक नामों से पुकारते है।

पहिले लिख जुके हैं कि—जीवन के आधार रूप तीनों पदार्थों में से जीवन के रक्षण का अरूय आधार हवा है, वह हवा यद्यपि अपनी दृष्टि से नहीं दीख पड़ती है तथा जब वह स्थिर हो जाती है तो उस का अरूय गुण स्पर्श भी नहीं माद्यम होता है परन्तु जब वह वेग से चलती है और वृक्षकम्पन आदि जो २ कार्य करती है वह सब कार्य नेत्रों के द्वारा भी स्पष्ट देखा जाता है—किन्तु उस का ज्ञान अरूयतया स्पर्श के द्वारा ही होता है।

देखो ! यह समस्त जगत् पवन महासागर से आच्छादित (हँका हुआ) है और उस पवन महासागर को डाक्टर तथा अर्वाचीन विद्वान् कम से कम सौ मील गम्भीर (गिहरा) मानते हैं, परन्तु प्राचीन आचार्य तो उस को चौदह राजलोक के आस पास घनोदिष, घनवात और तनुवात रूपमें मानते हैं अर्थात् उन का सिद्धान्त यह है कि हवा और पानी के ही आधार पर ये चौदह राजलोक स्थित हैं और इस सिद्धान्त का यह स्पष्ट अनुभव भी होता है कि ज्यों २ ऊपर को चढते जावें त्यों २ हवा अधिक स्थम माद्धम देती है, इस के सिवाय पदार्थविज्ञान के द्वारा यह तो सिद्ध हो ही चुका है कि हवा के स्थूल थर में आदमी टिक सकता है परन्तु स्टूम (पतले) थर में नहीं टिक सकता है,

इसी लिये बहुत ऊपर को चढ़ने में स्वास आने लगता है, नाक तथा मुख से रुधिर निकल्ना गुरू हो जाता है और मरण भी हो जाता है, यधिप पक्षी पतली हवा में उड़ते है परन्तु वे भी अधिक ऊँचाई पर नहीं जा सकते हैं, फ्रेंचदेश के गेल्युसाक और वीयोट नामक प्रसिद्ध विद्वान् सन् १८०४ ईस्ती में करीब चार मील ऊँचे चढ़े थे, उस स्थान में इतना श्रीत था कि—शीसी के भीतर की स्थाही उसी में ठँस कर जम गई तथा वहां की हवा मी इतनी पतली थी कि—उन्हों ने वहां पर एक पक्षी को उड़ाया तो वह उड़ नहीं सका, किन्तु परथर की तरह नीचे गिर पड़ा, इसी प्रकार काफी हवा न होने के कारण मनुष्यों को भी पतली हवाबाले ऊँचे प्रदेश में रहने से स्वास चलने लगता है और शरीर की नसें फूल कर फटने लगती है तथा नाक और मुंह से रक्त वहने लगता है, हिमालय और आल्प्स पर्वतों पर चढनेवाले लोगों को यह अनुमन प्रायः हो जुका है और होता जाता है।

- स्वेडिंग हैवा के तत्व ॥

सामान्य छोग मन में कदाचित् यह समझते होंगे कि-हवा एक ही पदार्थ की वनी हुई है परन्त विद्वानों ने इस बात का अच्छे प्रकार से निश्चय कर िखा है कि-हवा में मुख्य चार पदार्थ हैं और वे बहुत ही चतुराई और आश्चर्य के साथ एकत्रित होकर मिळे हुए है, वे चारों पदार्थ ये है--प्राणवायु (ऑक्सिजन), शुद्धवायु (नाइट्रोजन), मिश्रित वायु (कारवानिक एसिड ग्यास) और पानी के सुक्ष्म परमाण, देखों । अपने आस पास में तीन प्रकार के पदार्थ सर्वदा स्थित होते है-अर्थात् कई तो पत्थर और काष्ठ के समान कठिन है, कई पानी और दूघके समान पतले अर्थात प्रवाही है, बाकी कई एक हवा के समान ही वायुरूप में दीखते है जो कि (वायु) जल के सूक्ष्म परमाणुओं से बना हुआ है, हवा में मिश्रित जो एक प्राणवायु (ऑक्सिजन) है वही मुख्यतया प्राणों का आधार रूप है, यदि यह पाणवायु हवा में मिश्रित न होता तो दीपक भी कदापि जलता हुआ नहीं रह सकता, फिर यदि सब हवा प्राणवायु रूप ही होती तो भी जगत् में जीव किसी प्रकार से भी न तो जीते रह सकते और न चल फिर ही सकते किन्तु शीघ्र ही मर जाते, क्योंकि-जीवों को जितनी कठिन हवा की आवश्यकता है उस से अधिक वह हवा कठिन हो जाती, इसी लिये प्राणवायु के साथ दूसरी हवा कुद्रती मिली हुई है और वह हवा प्राण की आधारमूत नहीं है तथा उस हवामें जलता हुआ दीपक रखने से बुझ जाता है, इस लिये मिश्रित वायु ही से सब कार्य चलता है अर्थात इवास लेने में

१-यह चावलो के कोयलों के साथ प्राणवायु के मिलने से बनता है ॥

२-इस को भिन्न करने से इस का माप भी हो सकता है ॥

तथा दीपक आदि के जलाने के समय अपने २ परिमाण के अनुकूछ ये दोनों हक्यें मिली हुई काम देती हैं, जैसे मनुष्य के हाथ में एक अंगूठा और चार अंगुलियां है इसी प्रकार से यह समझना चाहिये कि हवा में एक माग पाण नायु का है और चार माग शुद्ध वायु (नाइट्रोजन) है तथा हवा इन दोनों से मिली हुई है, हवा के दूसरे हो सार भी इन्हीं में मिले हुए है और वे दोनों माग यद्यपि वहुत ही थोड़े है तथापि दोनों अत्यन्त उपयोगी हैं, कोयला क्या चीज है यह तो सब ही जानते है कि-जंगल जल का पृथ्वी में मिवष्ट (धँस) हो जाता है बस उसी के काले पत्थर के समान पृथ्वी में से बो पदार्थ निकलते हैं उन्हीं को कोयला कहते हैं और वे रेल के एख़िन आदि करों में जलाये जाते है, चांवलों में से भी एक प्रकार के कोयले हो सकते है और ये (चांवलोंके कीयले) कार्वन कहलाते हैं, पाणवाय और कीयलों के मिलने से एक प्रकार की हवा बनती है-उस को अंग्रेजी में कार्वीनिक एसिड ग्यंस कहते हैं. यही हवा में तीसरी बख है तथा यह बहुत मारी (वजनदार) होती है और यह कमी २ गहरे तथा खाली कुए के तले इकट्टी होकर रहा करती है, खते में और बहुत दिनों के बन्द मकान में भी रहा फरती है, इस हवा में जलती हुई बत्ती रखने से बुझजाती है तथा जो मनुष्य उस हवामें श्वास छेता है वह एकदम भैर जाता है, परन्तु यह हवा भी वनस्पतिका पोपण करती है अर्थात् इस हवा के विना वनस्पति न तो उग सकती है और न कायम रह सकती है, दिन को उस का माग वृक्ष की जड़ और वनस्पति चूस छेती है, यह भी जान छेना आवश्यक है कि-इस हवा के ढाई हजार भागों में केवल एक माग इस जहरीली हवा का रहता है, इसी लिये (इतना योडा सा माग होने हीसे) वह हवा प्राणी को कुछ वाषा नहीं पहुँचा सकती है, परन्तु हवा में पूर्व कहे हुए परिमाण की अपेक्षा यदि उस (ज़र-रीछी) हवा का थोड़ा सा भी भाग अधिक होजावे तो मनुष्य वीमार हो जाते हैं।

पहिले कह चुके हैं कि—हवा में चौथा माग पानी के परमाणुओं का है, इस का मलक्ष प्रमाण यह है कि-यदि थाली में थोड़ा सा पानी रख दिया जावे तो वह धीरे र उड़ जाता है, इस विषयमें अर्वाचीन विद्वानों तथा डाक्टरों का यह कथन है कि-सूर्य की गर्मी सदा पानी को परमाणुरूपसे खींचा करती है, परन्तु सर्वज्ञ के कहे हुए सूत्रों में यह लिखा है कि-जल वायुके योगसे सूक्ष्म होकर परमाणुरूप से आकाश में मिल जाता है तथा वह पीछे सदैव ओस हो हो कर झरता है, यद्यपि ओस आठों ही पहर झरा करती है परन्तु दो घड़ी पिछला दिन वाकी रहने से लेकर दो घड़ी दिन चढनेतक अधिक माद्यस देवी

^{9—}बहुत दिनों के चंद मकान में घुसने से बहुत से मज़ष्य आदि प्राणी सर चुके हैं, इस का कारण केवल जहरीजी हवा ही है, परन्तु बहुत से मोले लोग पदार्थ विद्या के न खानने से वह मकान में भूत प्रेत आदि का निवास तथा उसी के द्वारा बाबा पहुँचना मान लेते हैं, यह केवल उनकी अज्ञानता है।

है, क्योंकि दो घड़ी दिन चढ़ने के बाद वह सूर्व की किरणों की उप्मा के द्वारा सूल जिता है, वे ही कण सूक्ष्म परमाणुओं के स्यूल पुद्गल बंधकर अर्थात् बादल वन कर अथवा बुँजर होकर वरसते हैं, यदि हवा में पानी के परमाणु न होते तो सूर्व के तापकी गर्मी से माणियों के शरीर और बृक्ष वनस्पति आदि सव पदार्थ जल जाते और मनुष्य मर जाते, केवल यही कारण है कि—जहां जलकी नदी दिरयाव और वनस्पति बहुत हैं वहां वृष्टि भी प्रायः अधिक होती है तथा रेतीके देश में कम होती है।

यद्यपि यह दूसरी बात है कि-माणियों के पुण्य वा पाप की न्यूनाधिकता से कर्म आदि पांच समवायों के संयोगसे कमी २ रेतीली नमीन में भी बहुत बृष्टि होती है और जल तथा बृक्ष वनस्पति आदि से परिपूर्ण स्थान में कम होती वा नहीं भी होती है, परन्तु यह केवल स्याद्वाद मात्र है, किन्तु इस का नियम तो वही है जैसा कि—कपर लिख चुके है, यद्यपि हवा का वर्णन बहुत कुछ विस्तृत है—परन्तु अन्थविस्तार मयसे उस सब का लिखना अनावश्यक समझते है, इस के विषय में केवल इतना जान लेना चाहिये कि—योग्य परिमाण में ये चारों ही पदार्थ हवामें मिले हों तो उस हवा को खच्छ समझना चाहिये और उसी खच्छ इवासे आरोग्यता रह सकती है ॥

हवाको विगाड़नेवाले कारण ॥

स्वच्छ हवा किस रीति से विगड़ जाती है—इस बात का जानना बहुत ही आवश्यक है, यह सब ही जानते हैं कि-प्राणों की स्थिति के लिये हवा की अत्यन्त आवश्यकता है परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि-प्राणों की स्थिति के लिये केवल हवा की ही आवश्यकता नहीं है किन्तु खच्छ हवाकी आवश्यकता है, क्योंकि—विगड़ी हुई हवा विव से भी अधिक हानिकारक होती है, देखी! संसार में जितने विव हैं उन सब से भी अधिक हानिकारक विगड़ी हुई हवा है, क्योंकि इस (विगड़ी हुई) हवा से सहस्रों लक्षों मनुष्य एकदम मर जाते है, देखी! कुछ वर्ष हुए तब कलकत्ते के कारागृह की एक छोटी कोठरी में एक रात के लिये १४६ आदमियों को बंद किया गया था उस कोठरी में सिर्फ दो छोटी र खिड़की थी, जब सबेरा हुआ और कोठरी का दर्वाना खोला गया तो सिर्फ २३ मनुष्य जीते निकले, वाकी के सब मरे हुए थे, उन को किसने मारा! केवल खराब हवाने ही उन को मारा, क्योंकि हवा के कम आवागमन वाली वह छोटी सी कोठरी थी, उस में बहुत से मनुष्यों को मरदिया गया था, इस लिये उन के क्वास लेने के द्वारा उस कोठरी की

१-इस पर यदि कोई मजुष्य यह शका करे कि-सिर्फ २३ मजुष्य भी क्यो जीते निकले, तो इस का उत्तर यह है कि-१४६ आदिमियों के होने से द्वास छेनेके द्वारा उस कोठरीकी हवा विगव गई थी, जब उन में से १२३ मर गये, सिर्फ २३ आदमी वाकी रह यये, तब-२३ के वास्ते वह स्थान श्वास छेने के लिये काफी रह गया, इसलिये वे २३ आदमी वच गये॥

ı

हवा के बिगड़ जाने से उन का प्राणान्त होगया, इसी प्रकार से अखच्छ हवा के हारा अनेक स्थानों में अनेक दुर्घटनार्थे हो चुकी है, इस के अतिरिक्त हवा के. विकृत होने से अर्थात् खच्छ और ताजी हवा के न मिछने से बहुत से मनुष्य यावजीवन निर्वेठ और वीमार रहते हैं, इस छिये मनुष्यमात्र को उचित है कि हवा के विगाइनेवाछे कारणों के जान कर उन से बचाव रख कर सदा खच्छ हवा का ही सेवन करे जिस से आरोग्यता में अन्तर न पड़ने पावे. हवा को बिगाइने वाछे मुख्य कारण ये हैं:—

१-स्वास के मार्ग से निकलने वाली अशुद्ध हवा स्वच्छ हवा को विगाइती है, देखे। हम सब लोग सदा स्वास लेते हैं अर्थात् नासिका के द्वारा स्वच्छ वाय को खांच कर भीतर के जाते और भीतर की विकृत वायु को बाहर निकालते है, उसी निकली हुई विकृत वायु के संयोग से बाहर की स्वच्छ हवा बिगड़ जाती है और वही विगड़ी हैं हवा जब श्वास के द्वारा मीतर जाती है तब हानिकारक होती है अर्थात आरोग्यता को नष्ट करती है, यद्यपि मनुष्य अपनी आरोग्यता को स्थिर रखने के छिये प्रतिदिन शरीर की सफाई आदि करते है-अर्थात् रोज् नहाते है और मुख तथा हाय पैर आदि अंगों को खूब मल मल कर धोते हैं, परन्तु शरीर के भीतर की मलीनता का कुछ मी विचार नहीं करते हैं, यह अत्यन्त शोक का विषय है, देखों ! इवासोच्छास के द्वारा जो हवा हम लोग अपने मीतर ले जाते है वह हवा शरीर के भीतरी मांग को सफ करके मठीनता को बाहर के जाती है अर्थात द्वास के मार्ग से बाहर निकली हुई हवा अपने साथ तीन वस्तुओं को बाहर है जाती है. वे तीनों वस्तुयें ये है--१-का-वोंनिक एसिड ग्यंस, २-हवामें मिला हुआ पानी और तीसरा दुर्गन्धयुक्त मैल, इन में से जो पहिली वस्त (कार्वोनिक एसिड ग्यॅस) है वह स्वच्छ हवा में बहुत ही शोह परिमाण में होती है, परन्त जिस हवा को हम अपने श्वास के मार्ग से ग़ुँह में से वहर निकालते है उस में वह जहरीली हवा सौगुणा विशेष परिमाण में होती है परन्तु वह सक्ष्म होने से दीख़ती नहीं है, किन्तु जैसे-अग्नि में से बुँआ निकलता जाता है उसी प्रकार से हम सब भी उस को अपने में से बाहर निकालते जाते है तथा जैसे-एक सँकड़ी कोठरी में जलता हुआ चूल्हा रख दिया जाने तो वह कोठरी शीघ ही धुँए से व्याप्त हो जायगी और उस में स्वच्छ हवा का प्रवेश न हो सकेगा, इसी प्रकार यदि कोई किसी सँकड़ी कोठरी के मीतर सोवे तो उस के गुँह में से निकली हुई अलब्छ

⁹⁻इसी लिये योगनिया के तथा खरोदय ज्ञान के वेशा पुरुष इसी झास के द्वारा कोई २ नेती, धोती और वस्ति आदि कियाओं को करते हैं, किन्तु जिन को पूरा ज्ञान नहीं हुआ है-वे कभी २ इस किया है होनि भी उठाते हैं, परन्तु जिन को पूरा ज्ञान होगया है वे तो स्वासके द्वारा ही सब प्रकार के रोगों को भी मिटा देते हैं॥

हवा के संयोग से उस के आसपास की सब हवा भी अखच्छ हो जायगी और उस कोठरी में यदि स्वच्छ और ताज़ी हवाके आने जाने का खुलासा मार्ग न होगा तो उस के मुँह में से-निकली हुई वही ज़हरीली हवा फिर भी उसी के स्वास के मार्ग से शरीर में प्रविष्ट होगी और ऐसा होने से श्रीष्ट्रही मृत्यु को प्राप्त हो जायगा, अथवा उसके शरीर को अन्य किसी प्रकार की बहुत बड़ी हानि पहुँचेगी, परन्तु यदि मकान बड़ा हो तथा उस में खिड़कियां और बड़ा द्वार आदि हवा के आने जाने का मार्ग ठीक हो तो उस में सोने से मनुष्य को कोई हानि नहीं पहुँचती है, क्योंकि उन खिड़कियों और बड़े दर्वाज़े आदि से अस्वच्छ हवा बाहर निकल जाती और स्वच्छ हवा भीतर आ जाती है, इसीलिये वास्तु शासज़ (गृह विद्या के जानने वाले) जन सोने के मकानों में हवा के ठीक रीति से आने जाने के लिये खिड़की आदि रखते हैं। श्वास के मार्ग से बाहर निकलती हुई हवा का दूसरा पदार्थ आईता (गीलापन वा पानी) है, इस हवा में पानी का माग है या नहीं, इस का निश्चय करने के लिये स्लेट आदि पर अथवा राजस चाकू पर यदि स्वास छोड़ा जावे तो वह (स्लेट आदि) आईता से सुक्त हो जावेगी, इस से सिद्ध है कि—स्वास की हवा में पानी अवस्य है।

तीसरा पदार्थ उस इवा में दुर्गन्य युक्त मैल है अर्थात्—श्वास का जो पानी स्वच्छ नहीं होता है वह वर्षनों के घोवन के समान मैला और गन्दा होताहै उसी में सड़े हुए कई पदार्थ मिले रहते हैं, यदि उस को शरीर पर रहने दिया जावे तो वह रोगको उत्पक्ष करता है अर्थात् श्वास की हवा में स्थित वह मलीन पदार्थ हवा के समान ही सरावी करता है, देखो ! जो कई एक पेशे वाले लोग हरदम वस्त्र से अपने मुखको बांधे रहते है, वह (मुख का बांधना) रसायनिक योग से बहुत हानि करता है अर्थात्—गुँह पर दाग हो जाते है, गुँहके वाल उड़ जाते है, श्वास व कास रोग हो जाता है, हत्यादि अनेक सरावियां हो जाती है, इस का कारण केवल यही है कि—गुँह के बँघे रहने से विवेली हवा अच्छे प्रकार से बाहर नहीं निकलने पाती है ।

प्रायः देखा जाता है कि-दूसरे मनुष्य के मुँह से पिये हुए पानी के पीने में बहुत से मनुष्य गन्दगी और अपवित्रता समझते है और इसी से वे दूसरे के जूठे पानी को पिया भी नहीं करते है, सो यह वेशक बहुत अच्छी बात है, परन्तु वे छोग यह नहीं जानते हैं कि-दूसरे के पिये हुए जल के पीने में अपवित्रता क्यों रहती है और किस लिये उसे नहीं पीना चाहिये, इस में अपवित्रता केवल वही है कि-एक मनुष्य के पीते समय उस के रवास की हवा में स्थित दुर्गन्य युक्त मैल श्वास के मार्ग से निकल कर उस पानी में समा गया है, इसी प्रकार से सँकड़े कोठे आदि मकान में वहुत से मनुष्यों के इकट्टे होने से एक दूसरे के फेफसे से निकली हुई अग्रुद्ध हवा और गन्दे पदार्थों को वारंवार सव मनुष्य

अपने गुँह में स्वास के मार्ग से छेते है कि जिस से जूठे पानी की अपेक्षा भी इससे अधिक खराबी उत्पन्न हो जाती है, एवं गाय, बैछ, बकरे और कुत्ते आदि जानवर भी अपने ही समान स्वास के संग ज़हरीछी हवा को बाहर निकाछते हैं और ग्रुद्ध हवा को विगाड़ते हैं।

२-त्वचा में से छिद्रों के मार्ग से पसीने के रूप में मी परमाणु निकलते हैं वे भी हवा को विगाड़ते हैं ॥

३—वस्तुओं के जलाने की किया से मी हवा विगड़ती है, बहुत से लोग इस बात को युन के आश्चर्य करेंगे और कहेंगे कि जहां जलता हुआ दीपक रक्ला जाता है अथवा जलाने की किया होती है वहां की हवा तो उलटी शुद्ध हो जाती है वहां की हवा विगड़ कैसे जाती है क्योंकि—पाण वायु के विना तो अंगार खुलगेगा ही नहीं इत्यादि, परन्तु यह उन का अम है—क्योंकि—देखो दीपक को यदि एक सँकड़े वासन में रक्ला जाता है तो वह दीपक शीघ्र ही बुझ जाता है, क्योंकि—उस वासन का सब प्राणवायु नष्ट हो जाता है, इसी प्रकार सँकड़े घर में भी बहुत से दीपक जलाये जावें अथवा अधिक रोशनी की जावे तो वहां का प्राणवायु पूरा होकर कावोंनिक एसिड गम (जहरीली वायु) की विशेषता हो जाती है तथा उस घर में रहने वाले मनुष्यों की तबीयत को विगाइती है, परन्तु ऐसी बातें कुल कठिन होने के कारण सामान्य मनुष्योंकी समझ में नहीं जाती है और समझ में न आने से वे सामान्य बुद्धि के पुरुष हवा के विगड़ने के कारण को टीक रीति से नहीं जॉच सकते हैं और संकीर्ण सान में सिगड़ी और कोयले आदि जला कर प्राणवायु को नष्ट कर अनेक रोगों में फँस कर अनेक प्रकार के दु:खों को भोगा करते है ॥

सम्पूर्ण प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि—सड़ी हुई वस्तु से उड़ती हुई ज़हरीळी तथा दुर्गन्य युक्त हवा भी स्वच्छ हवा को विगाड़कर बहुत खरावी करती है, देखों! जब बुक्ष अथवा कोई प्राणी नष्ट हो जाता है तब वह शीष्र ही सड़ने छगता है तथा उस के सड़ने से बहुत ही हानिकारक हवा उड़ती है और उस के रजःकण पवन के द्वारा दूरतक फैंळ जाते है, इस पर यदि कोई यह कहे कि—सड़ी हुई बस्तु से निकल कर हवा के द्वारा कोसों तक फैळते हुए वे परमाणु दीखते क्यों नहीं हैं! तो इस का उत्तर यह है कि—यदि अपनी आँखें अपनी सूँघने की इन्द्रिय के समान ही तीक्षण होतीं तो सड़ते हुए पाणी में

१-प्रत्येक मनुष्य के शरीर में से २४ घण्टे में अनुमान से ३० औंस पसीने के परमाणु बाहर

२-इसी लिये जैन सूत्र कारों ने जिस घर में मुद्दी पढ़ा हो उस के संलग्न में सी हाय तक सूतक माना है, परन्तु यदि बीच में रास्ता पढ़ा हो तो सूतक नहीं मानाहै, क्योंकि-चीच में रास्ता होने से दुर्गन्य के परमाणु हवा से उड़ कर कीसों बूढ़ चड़े जाते हैं॥

से उड़ कर ऊँचे चढ़ते हुए और हवामें फैळते हुए संख्यावन्य नाना जन्तु अपने को अवस्य दीख पड़ते, परन्तु अपने नेत्र वैसे तीक्ष्ण नहीं है, इस ळिये वे अपने को नहीं दीखते हैं, हां ऐसी हवा में होकर जाते समय अपनी नाक के पास जो वास आती हुई माछ्म पड़ती है वह और कुळ नहीं है किन्तु सड़े हुए प्राणी आदि में से उड़ते हुए वे सूक्ष्म जन्तु अर्थात् छोटे २ जीव ही है, यह बात आधुनिक (वर्षमान) डाक्टर लोग फहते हैं तथा जैन पज्रवणा सूत्र में भी यही किखा है कि—दश स्थान ऐसे है जिन से दुर्गन्य युक्त हवा निकळती है, जैसे—गुर्दे, बीर्य, खून, पित्त, ख़ँखार, धूक, मोहरी तथा मळ मूत्र आदि स्थानों में सम्मूर्छिम अंगुळ के असंख्यातवें माग के समान छोटे २ जीव होते हैं, जिन को चर्म नेत्रवाळे नहीं देख सकते है किन्तु सर्वज्ञ ने केवळ ज्ञान के द्वारा जिन को देखा था, ऐसे असंख्य जीव अन्तर्ग्रह्ते के पीछे उरपन्न हो ते है, ये ही जन्तु क्वास के मार्ग से अपने शरीर में प्रवेश करते हैं, इसी प्रकार घर में शाक तरकारी का छिछका तथा कूड़ा कर्कट आदि आंगन में अथवा घर के पास फेंक २ कर जमा कर दिया जाता है तो वह भी हवा को विगाड़ता है, चमार, कसाई, रंगरेज़ तथा इसी प्रकार के दूसरे धन्वेवाळे अन्य छोग भी अपने २ घन्चे से हवा को विगाड़ते हैं, ऐसे खानों में हो कर निकळते समय नाक और सुँह आदि को वन्द कर के निकळना चौहिये॥

४-मुर्वों के दाबने और जलाने से मी हवा विगड़ती है, इस लिये मुर्दों के दाबने और जलाने का स्थान वस्ती से दूर रहना चाहिये, इस के सिवाय प्रथ्वी स्वयं भी वाफ अथवा सूक्ष्म परमाणुओं को बाहर निकालती है तथा उसमें थोड़ी बहुत हवा भी प्रविष्ट होती है और यह हवा ऊपर की हवा के साथ मिल कर उसको विगाड़ देती है, जब प्रथ्वी दरार वाली होती है तब उस में से सड़े हुए पदार्थों के परमाणु विशेष निकलकर अत्यन्त हानि पहुँचातेहैं।

सड़ता हुआ या भीगा हुआ माजी पाला बहुधा ज्वर के उपद्रव का मुख्य कारण होता है।

५-घर की मलीनता से भी खराव हवा उत्पन्न होती है और मलीनता के स्थान कुँए के

१-इस बात को प्राचीन जनों ने तो शास्त्र सम्मत होने से माना ही है-किन्सु अर्वाचीन विद्वान् डाक्ट-रोंने भी इस को प्रत्यक्ष प्रमाण रूपमें स्वीकार किया है ॥

२-देखो [!] विपाक सूत्र में-गीतम गणघर ने स्गा बोड़े की दुर्गन्मि के विषय में नाक और मुंह को सुखनक्षिका (जो हाथ में थी) से स्गारानी के कहने से ढंका था, यह लिखा है ॥

२-इस वात का हम ने मारवाड देज में प्रत्यक्ष अनुमव किया है कि-जब बहुत दृष्टि होकर ककड़ी मतीरे और टींडसे खादि की वेळे आदि सडती हैं तब जाट आदि प्रामीणों को शीतज्वर हो जाता है तथा जब ये चीजें शहर में आकर पड़ी र सड़ती हैं तब हवा में ज़हर फैल कर शहरवालों को शीतज्वर आदि रोग हवा के विगडने से हो जाते हैं ॥

पनघट, मोहरी, नाली, पनाले और पाखाना आदि है, इस लिये इन की नित्य साफ और सुथरे रखना चाहिये ॥

- ६—कोयले की खानें, लोह के कारखाने, रुई कन और रेशम बनने की मिलें तथा धातु और रंग बनाने के कारखाने खादि अनेक कार्यालयों सें भी हिंची विगेंड़ती है, यह तो प्रत्यक्ष ही देखा गया है कि—इस प्रकार के कारखानों में कोयलों, रुई और घातुओं के सूक्ष्म रज:कण उड़ २ कर काम करनेवालों के शरीर में जाकर बहुषा उन के श्वास की नली के, फेफड़े के और छाती के रोगों को उत्पन्न कर देते हैं ॥
- ७—चिलम, हुका और चुरटों के पीने से भी हवा विगड़ती है अर्थात्—यह जैसे पीनेवालों की छाती को हानि पहुँचाता है, उसी प्रकार से बाहर की हवा को भी विगाड़ता है, यद्यपि वर्तमान समय में इस का न्यसन इस आर्थावर्त देशमें प्रायः सर्वत्र फैल रहा है, किन्तु—दक्षिण, गुजरात और मारबाइमें तो यह अत्यन्त फैला हुआ है कि—जिस से वहां अनेक प्रकार की वीमारियां उत्यन्न हो रही हैं॥

इन कारणों के सिवाय हवा के विगड़ने के और भी बहुत से कारण हैं जिन को विसार के भय से नहीं लिख सकते, इन सव बातों को समझ कर इन से बचना मनुष्य को अत्या-वश्यक है और इन से बचना मनुष्य के खाधीन भी है, क्योंकि—देखों। अपने २ कर्मोंकी विचित्रता से जो बुद्धि मनुष्यों ने पाई है उस का ठीक रीति से उपयोग न कर पशुओं के समान जन्म को विताना तथा दैव का मरोसा रखना आदि अनेक वार्ते मनुष्यों को परिणाम में अत्यन्त हानि पहुँचाती है, इस लिये छुकों (समझदारों) का यह धर्म है कि—हानिकारक वार्तों से पहिछे ही से बच कर चलें और अपनी आरोग्यता को कायम रख कर मनुष्य जन्म के फल को प्राप्त करें, क्योंकि—हानिकारक बातों से बचकर जो मनुष्य नहीं चलते है उन को अपने किये हुए कुकमों का फल ऐसा मिलता है कि—उन को जन्ममर रोते ही वीतता है, इस प्रकार से अनेक कष्टरूप फल को मोगते २ वे अपने असूल्य मनुष्यजन्म को कास श्वास और क्षय आदि रोगों में ही विता कर आधी उम में ही इस संसार से चले जाकर अपनी खी और बाल वचों आदि को अनाथ छोड़ जाते है, देखो। इस बात को अनेक अनुमनी वैद्यों और डाक्टरों ने सिद्ध कर दिया है कि—गांना छलफें के पीने वाले सैकड़ों हजारों आदमी आधी उम में ही मरते है।

देखों ! जिस पुरुष ने इस संसार में आकर विद्या नहीं पदी, धन नहीं कमाया, देश जाति और कुटुम्न का सुधार नहीं किया और न परमव के साधन रूप ज्ञानसे युक्त जत

९ दैव का भरोसा रखने बाले अन यह नहीं विचारते हैं कि हमारे कमोंने आगे को विगाद होने के लिंगे ही हमारी समझमेंसे सद्भाय की दुद्धि को हर लिया है ॥

२-दश बारह युवा पुरुषों को तो हम ने अपने नेत्रों से प्रख्य ही महा दुर्दशा में भरते देखा है।

नियम आदि का पालन ही किया, उस मनुष्य ने जन्म छेकर पशुओं के समान ही प्रथिवी को भार युक्त किया और अपनी मौता के यौवनरूपी वन को काटने के लिये कुठार (कुरहाड़ा) कहलाने के सिवाय और कुछ भी नहीं किया ॥

स्वमावजन्य अर्थात् कुदरती नियम से होने वाली

प्रिय पाठक गण । पांचों समवायों के योग से प्रथम तो विगड़ती हुई हवा को बन्द करने में (रोक्षने में) मनुष्यों का उद्यम है, उसी प्रकार से काळ आदि चारों समवायों के मिळने से भी हवा को साफ करने का पूरा साधन उपस्थित है, यदि वह न होता तो सिंह में उत्पत्ति और स्थिति भी कदापि नहीं हो सकती।

जिस प्रकार से ये साधन इन ही समवायों से निगढ़ कर प्राणियों का प्रख्य करते हैं—
उसी प्रकार से ये ही पांचों समवाय परस्पर मिछने से निगढ़ी हुई हवा को साफ भी करते
है, फिन्हीं छोगों ने इन्हीं समवायों के सम्बंध को ईश्वर मान लिया है, अस्तु, हवा में
चळनसभाव रूप धर्म है उसी से वह निगड़ी हुई हवा को अपने झपटे से खीच कर ले
जाती है अर्थात् उस के झपटे से दुष्ट परमाणु छित्त भिक्त हो जाते हैं और ताज़ी हवा के
न मिछने से जितनी हानि पहुँचने को थी उतनी हानि नहीं पहुँचती है, क्योंकि—ऊपर
लिखी हुई वह हवा एक दूसरे के संग इस प्रकार से मिछ जाती है जैसे थोड़ा सा दूव
पानी में मिछानेसे निछकुछ एकमेक (तत्सरूप) हो जाता है तथा जिस प्रकार से पवन
का नेग होने पर चूत्हे का जुंआ छित्र मिल होकर थोड़ी देर पीछे नहीं दीखता है उसी
प्रकार श्वास आवि के लेने से निगड़ी हुई सव हवा भी उसी झपटे से छित्र मिल होकर
अधिक परिमाणवाळी सच्छ हवा में मिछकर पत्र हो जाती है इसी छित्र मिल होकर
शिक परिमाणवाळी सच्छ हवा में मिछकर पत्र हो जाती है इसी छित्र वह कम
हानि पहुँचाती है।

हवा किसी समय अधिक और किसी समय कम चलती है, क्योंकि-हवा में वैक्रिय शरीर के रचने का खमाव है, जिस समय मन को प्रसन्न करने वाली ताज़ी हवा चलती

१-शास्त्रों में लिखा है कि "प्रसूतान्ते यौवन गतम्" अर्थात की के सन्तान होने के पीछे उसका यौवन कला जाता है ॥

२-इस का उदाहरण यह है कि-जैसे देखो । कृष्णमहाराज एक थे परन्तु सब रानियों के महलों में नार-एजीने उनको देखाया, इस का कारण वहीं वा कि-ने वैकिय करीर की रचना कर छेते थे, यदि किमी को इस विषय में गंका हो तो वैकिय रचना के इस रहान्त से अका निश्चत हो सकती है कि-जैसे पुरुपयिन्द पढ़ी दशा में केवल दो अगुरू का होता है परन्तु देखो । वही तेज़ी की दशा में किनल वट जाता है, इसी प्रकार से वायु भी वैकिय गरीर की रचना करता है, अबवा दूसरा रहान्त यह भी है कि-जैसे किरडा जानवर अनेक प्रकार के रग बदलता है उसी प्रकार की वैकिय कारीर की भी झिका जाननी चाहिये॥

है तब उस के चलने से विगड़ी हुई हवा भी छिन्न भिन्न होकर नष्ट हो जाती है अर्थात् सब बायु खच्छ रहती है, उस समय पाणी मान्न श्वास लेते हैं तो पाणवायु को ही मीतर लेते हैं जोर कार्वोनिक एसिड ग्वॅस को बाहर निकालते हैं, परन्तु वृक्ष और वनस्पित आदि इस से विपरीत किया करते है अर्थात् वृक्ष और वनस्पित आदि दिन को कार्वन को अपने मीतर चूस लेते है तथा प्राणवायु को बाहर निकालते है, इस से भी वायु के आव-रण की हवा युद्ध रहती है अर्थात् दिन को कृक्षों की हवा साफ होती है और रात को उक्त वनस्पित आदि प्राणवायु को अपने मीतर खीचते है और कार्वोनिक एसिड ग्वॅस को बाहर निकालते है, परन्तु इस में भी इतना फर्क है कि—रात को जितनी प्राणवायु को वनस्पित आदि अपने मीतर खीचते है उस की अपेक्षा दिन में प्राणवायु को अधिक निकालते है, इस लिये रात को वृक्षों के नीचे कदािप नहीं सोना चाहिये, क्योंकि रात को वृक्षों के नीचे सोने से आरोग्यता का नाक्ष होतांहै।

इस प्रकार से ऊपर कही हुई हवा एक दूसरे के साथ मिलने से अर्थात् पवन और इसों से संग होने से साफ होती है, इस के सिवाय वरसात भी हवा को साफ करने में सहायता देती है।

इस मकार से इना की शुद्धि के सन कारणों को जानकर सर्वदा शुद्ध हना का ही सेनन करना चाहिये, क्योंकि—शुद्ध हना बहुत ही अस्ट्य वस्तु है, इसी लिये सद् वैद्यों का यह कथन है कि—"सी दवा और एक हवाँ" इस लिये खच्छ हना के मिलने का यस सदैन करना चाहिये।

वस्ती की हवा दबी हुई होती है, इस लिये—सदा थोड़े समय तक वाहर की ख़ुली हुई खच्छ हवा को खाने के लिये जाना चाहिये, क्योंकि इस से शरीर को बहुत ही लाम पहुँचता है तथा फिरने से शरीर के सब अवयवों को कसरत भी मिलती है, इसलिये ताजी हवा का खाना कसरत से भी अधिक फायदेमन्द है।

यधिप दिन में तो चलने फिरने आदि से मनुष्यों को ताज़ी हवा मिल सकती है परन्तु रात को घर में सोने के समय साफ हवा का मिलना इमारत बनाने वाले चतुर कारीगर और वास्तुशास्त्र की पढ़े हुए इस्तीनियरों के हाथ में है, इसलिये अच्छे २ चतुर इस्तीनियरों की मन्मति से सोने बैठने आदि के सब मकान हवादार बनवाने चाहियें, यदि

^{9—}देखो । जैनाचार्य श्री जिनवत्त्त्प्रिकृत निवेकनिकासादि श्रन्थों में रात को वृक्षों के नीचे सोने का असन्त ह्यू निवेध किसा है तथा इस बात को हमारे देश के निवासी श्रामीण पुरुष तक जानते है और कहते हैं कि—रात को वृक्षों के नीचे नहीं सोना चाहिये, इस का कारण क्या है. इस वात को विश्ले ही जानते हैं ॥

२-अर्थात् श्रद्ध हवा सौ दनाओ के तुल्य है॥

पूर्व समय के अनिमन्न कारीगरों के बनाये हुए मकान हों तो उन की सुधरा कर हवा दार कर छेना चाहिये।

यद्यपि उत्तम मकानों का बनवाना आदि कार्य द्रव्य पात्रों से निम सकता है, क्योंकि उत्तम मकानों के बनवाने में काफी द्रव्य की आवश्यकता होती है तथापि अपनी हैसियत और योग्यता के अनुसार तो यथाशक्य इस के लिये मनुष्यमात्र को प्रयत्न करना ही चाहिये, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि—मलीन कचरे और सड़ती हुई चीजों से उड़ती हुई मलीन हवा से प्राणी एकदम नहीं मरता है परन्तु उसी दशा में यदि बहुत समय तक रहा जावे तो अवश्य मर्रण होगा।

देलो। यह तो निश्चित ही बात है कि—बहुत से आदमी प्रायः रोग से ही मरते हैं, वह रोग क्यों होता है, इस बात का यदि पूरा २ निदान किया जावे तो अवस्य यही झात होगा कि—बहुत से रोगों का मुख्य कारण खराव हवा ही है, जिस प्रकार से अति कठिन विष पेट में जाता है तो प्राणी शीष्ठ ही मृत्यु को प्राप्त होता है और अफीम आदि विष बीरे २ सेवन किये हुए भी काळान्तर में हानि पहुँचाते हैं, इसी प्रकार से सदा सेवन की हुई थोड़ी २ खराब हवा का भी विष शरीर में प्रविष्ट होकर बड़ी हानि का कारण बन जाता है।

यह भी जान छेना चाहिये कि—वीमार आदमी के आस पास की हवा जल्दी विग-इती है, इस छिये वीमार आदमी के पास अच्छे प्रकार से साफ हवा आने देना चाहिये, जिस प्रकार से शरीर के बाहर ताज़ी हवा की आवश्यकता है उसी प्रकार शरीर के भीतर भी ताज़ी हवा छेने की सदा आवश्यकता रहती है, जैसे बादछी का अथवा कपड़े का हुकड़ा गुरुव्यम हाथ से पकड़ा हुआ हो तो वह बहुत पानी को चूसता है तथा दवा कर पकड़ा हुआ हो तो वह हुकड़ा कम पानी को चूसता है, बस यही हाल मीतरी फेफड़े का है अर्थात् यदि फेफड़ा थोड़ा दवा हुआ हो तो उस में अधिक हवा प्रवेश करती है और उस से खून अच्छी तरह से साफ होता है, इस लिये लिखने पढ़ने और वैठने आदि सब कामों के करते समय फेफड़ा बहुत दव बावे इस प्रकार से टेड़ा बांका हो कर नहीं वैठना चाहिये, इस बात को अवश्य घ्यान में रखना चाहिये, क्योंकि—फेफड़े पर दवाब पड़ने से उस के भीतर अधिक हवा नहीं बा सकती है और अधिक हवा के न जाने से अनेक वीमारियां हो जाती हैं॥

⁹⁻देखो। जैनसूत्रों में यह कहा है कि-उपक्रम कम कर प्राणी की आयु हटती है और उस (उपक्रम) के सुख्यतया साँ भेद हैं, किन्तु निवय मृत्यु एक ही है, उस उपक्रम के भी ऐसे २ कारण है कि जिन को अपने लोग प्रसक्ष नहीं देख सकते और न जान सकते हैं॥

२-यह नहीं समझना वाहिये कि-जफीम आदि विष घीरे २ तथा थोडा २ सेवन करने से हानि नहीं करते हैं किन्तु ने भी समय पाकर कठिन विष के समान ही असर करते हैं ॥

प्रति मर्नुष्य हवा की आवश्यकता॥

प्रत्येक मनुष्य २४ घण्टे में सामान्यतया ४०० घन फीट हवा श्वासीच्छ्वास में छेता है तथा शरीर के मीतर का हिसाब यह है कि—सात फीट छन्दी, सात फीट चौड़ी और सात फीट ऊंची एक कोठरी में जितनी हवा समा सके उतनी हवा एक आदमी हमेशा फेफड़े में छेता है, श्वासीच्छ्वास के द्वारा प्रहण की जाती हुई हवा में कार्वोनिक एसिड ग्यंस के (हानिकारक पदार्थ के) हज़ार माग साफ हवा में चार से दश तक माग रहते हैं, परन्तु जो हवा शरीर से बाहर निकल्ती है उस के हजार मागों में कार्वोनिक एसिड ग्यंस के ४० माग है अर्थात् ढाई हज़ार मागों में सौगुणा माग है, इस से सिद्ध हुआ कि—अपने चारों तरफ की हवा अपने ही श्वास से विगड़ती है, अब देखों। एक तरफ तो जहरीली हवा को वनस्पति चूस लेती है और दूसरी तरफ वातावरण की ताज़ी हवा उस हवा को खींच कर ले जाती है, परन्तु मकान में हवा के आने जाने का यदि मार्ग न हो तो खमाब से ही अनुकूल भी समवाय मतिकूल (उल्टे) हो जाते हैं, इस लिये प्रत्येक आदमी को ७ से १० फीट चौरस खान की अथवा खन की आवश्यकता है, यदि उतने ही खान में एक से अधिक आदमी बैठें या सोवें तो उस खान की हवा अवश्य विगड़ जावेगी।

अब यह भी जान छेना आवश्यक (ज़रूरी) है कि—हवा के गमनागमन पर खान के विस्तार का कितना आधार है, देखो। यदि हवा का अच्छे प्रकार से गमनागमन (आना जाना) हो तो संकीर्ण (सँकड़े) खान में भी अधिक मनुष्य भी छुल से रह सकते हैं, परन्तु यदि हवा के आने जाने का पूरा खुलासा मार्ग न हो तो बड़े मकान तथा खासे खण्ड में भी रहनेवाले मनुष्यों को आवश्यकता के अनुसार छुलकारक हवा नहीं मिल सकती है।

ताज़ी हवा के आवागमन का विशेष आधार घर की रचना और आस पास की हवाके जपर निर्मर है, घर में खिड़की और दर्बाजे आदि काफी तौर पर भी रक्खे हुए हों परन्तु यदि अपने घर के आस पास चारों तरफ दूसरे घर आगये हों तो घर में ताज़ी हवा और प्रकाश की रुकावट (अटकाव) होती है, इस लिये घर के आस पास से यदि हवा मिलने की पूरी अनुकूलता न हो तो घर के छप्परों में से ताज़ी हवा आ जा सके ऐसी युक्ति करनी चाहिये।

अपना मुख खच्छ होने पर भी दूसरों को उस (अपने मुख) से कुछ खराव बास निकलती हुई माळ्स पड़ती है, वह श्वासोच्छ्वास के द्वारा सीतर से बाहर को आती हुई खराव हवा की बास होती है, इसी खराब हवा से घर की हवा विगड़ती है तथा बहुत से मनुष्यों के इकड़े होने से जो घबड़ाहट होती है वह मी इसी हवा के कारण से हुआ करती है, इस का प्रत्यक्ष प्रसाण यही है कि उस जनसमूह के द्वारा विगड़ी हुई उस खराव हवा में से निकल कर जब बाहर ख़ुली हवा में जाते है तव वह धनड़ाहट दूर हो कर यन प्रफुद्धित होता है, इस बात का अनुसब अत्येक मनुष्य ने किया होगा तथा कर भी सकता है।

घर की हवा गुद्ध है अथवा विगड़ी हुई है, इस का निश्चय करने के लिये सहज उपाय यही है कि-वाहर की शुद्ध खुडी हुई हवा में से घर में जाने पर यदि कुछ मन को वह हवा अच्छी न लगे अर्थात मन को अच्छी न लगने वाली कुछ दुर्गनिवसी मारस पढ़े तो समझ लेना चाहिये कि-घर के मीतर की हवा चाहिये जैसी ग्रद्ध नहीं है; ग्रद्ध वातावरण की हवा के १००० मार्गों में 🚰 माग कार्वीनिक एसिड ग्यंस का है; यदि वर की हवा में यह परिमाण कुछ अधिक भी हो अर्थात् 🕏 तक हो तब तक आरोग्यता की हानि नहीं पहुँचती है परन्तु बदि इस परिमाण से एक अथवा इस से मी विशेष मारा बढ़ जाने तो उस इवावाले मकान में रहनेवाले मनुष्यों को हानि पहुँचती है, इस हानि-कारक हवा का अनुसान वाहर से घर में आने पर मन को अच्छी न लगनेवाली दुर्गन्यि आदि के द्वारा ही हो सकता है।।

यह चतुर्थ अध्याय का वायुवर्णन नामुक द्वितीय प्रकरण समाप्त हुआ ॥

तृतीय प्रकरण—जल वर्णन ॥ पानी की आवश्यकता ॥

जीवन की कायम रखने के लिये आवश्यक वस्तुओं में से दूसरी वस्तु पानी है, वह पानी जीवन के लिये अपने उसी प्रवाही रूप में आवश्यक है यह नहीं समझना चाहिये किन्त-साने पीने आदि के दूसरे पदार्थों में भी पानी के तत्व रहा करते है जो कि पानी की आवश्यकता को पूरा करते हैं, इस से यह बात और मी प्रमाणित होती है कि जीवन के लिये पानी वहत ही आवस्यक वस्तु है, देखी । छोटे बालकों का केवल दूध से ही पोषण होता है वह केवल इसी लिये होता है कि-दूप में भी पानी का अधिक भाग है, केवल यही कारण है कि-द्यसे पोषण पानेवाले उन छोटे वालकों को पानी की आव-श्यकता नहीं रहती है, इस के सिवाय अपने शारीर में स्थित रस रक्त और मांस आदि घातुओं में भी मुख्य माग पानी का है, देखो । मनुष्य के श्वरीर का सरासरी बज़न यदि ७५ सेर यिना जावे तो उस में ५६ सेर के क़रीन पानी नर्शात प्रवाही तत्त्व माना जायगा, इसी प्रकार जिस धान्य और बनस्पति से अपने श्वरीर का पोषण होता है वह भी

पानी से ही पका करती है, देखो ! मळीनता बहुत से रोगों का कारण है और उस मळी-नता को दूर करने के लिये भी सर्वोत्तम साधन पानी है !

पानी की अमूल्यता तथा उस की पूरी कदर तब ही माख्स होती है कि-जब आव-श्यकता होने पर उसकी प्राप्ति न होवे, देखो। जन मनुष्य को प्यास लगती है तथा थोड़ी देर तक पानी नहीं मिलता है तो पानी के विनि उस के प्राण तड़फने लगते हैं और फिर भी कुछसमय तक यदि पानी न मिछे तो प्राण चले जाते हैं, पानी के विना प्राण किस तर-हसे चले जाते हैं ! इसके विषय में यह समझना चाहिये कि-शरीर के सब अवयवों का पोपण प्रवाही रस से ही होता है, जैसे-एक वृक्ष की जड़ में पानी ढाला जाता है तो वह पानी रसरूप में होकर पहिले वही २ डालियों में, वही डालियों में से छोटी २ डालियों में और बहां से पत्तों के अन्दर पहुँच कर सब वृक्ष को हरा मरा और फूला फला रखता है. उसी प्रकार पिया हुआ पानी भी ख़राक को रस के रूप में बना कर शरीर के सब मागों में पहुँचा कर उन का पोषण करता है. परन्त जब प्यासे प्राणी को पानी कम मिलता है अथवा नहीं मिलता है तब शरीर का रस और लोह गाड़ा होने लगता है तथा गाडा होते २ आखिर को इतना गाढा हो जाता है कि-उस (रस और रक्त) की गति बन्द हो जाती है और उस से प्राणी की मृत्यु हो जाती है, क्योंकि छोड़ के फिरने की बहुत सी निल्यां वाल के समान पतली है, उन में काफी पानी के न पहुँचने से लोहू अपने लामा-विक गाढ़ेपन की अपेक्षा विशेष गाढ़ा हो जाता है और छोड़ के गाढ़े होजाने से वह (छोड़) सक्ष्म निषयों में गति नहीं कर सकता है।

यद्यि पानी बहुत ही आवश्यक पदार्थ है तथा काफी तौर से उस के मिलने की आवश्यकता है परन्तु इस के साथ यह भी समझ लेना चाहिये कि—जिस कदर पानी की आवश्यकता है उसी कदर निर्मल पानी का मिलना आवश्यक है, क्योंकि—यदि काफी तौर से भी पानी मिल जावे परन्तु वह निर्मल न हो अर्थात् मलीन'हो अथवा विगड़ा हुआ हो तो वही पानी आणरक्षा के बदले उलटा आणहर हो जाता है इस लिथे पानी के विषय में बहुत सी आवश्यक बातें समझने की हैं—जिन के समझने की अत्यन्त ही आवश्यकता है कि—जिस से खराब पानी से बचाब हो कर निर्मल पानी की आपि के द्वारा आरोग्यता में अन्तर न आने पाने, क्योंकि खराब पानी से कितनी वड़ी खराबी होती है और अच्छे पानी से कितना बड़ा लाम होता है—इस बात को बहुत से लोग अच्छे प्रकार से नहीं जानते हैं किन्तु सामान्यतया जानते हैं, क्योंकि—मुसाफरी में जब कोई बीमार पड़ जाता है तब उस के साथबाले शीघ ही यह कहने लगते हैं कि—पानी के बदलने से ऐसा हुआ है, परन्तु बहुत से लोग अपने घर में बैठे हुए मी खराब पानी से बीमार पड़ जाते हैं और इस बात को उन में से थोड़े ही समझते है कि-खराब पानी से यह बीमारी

हुई है, किन्तु विशेष जनसमूह इस बात को बिछकुछ नहीं समझता है कि—खराब पानी से यह रोगोत्पत्ति हुई है, इसिछिये वे उस रोग की निवृत्ति के छिये मूर्ल वैद्यों से उपाय कराते २ छाचार होकर बैठ रहेते हैं, इसी छिये वे असछी कारण को न विचार कर दूसरे उपाय करते २ थक कर जन्म सर तक अनेक दुःखों को मोगते है।

पानी के मेद ॥

पानी का खारा, मीठा, नमकीने, हिल्का, नारी, मैळा, साफ, गन्धयुक्त और गन्ध-रहित होना आदि पृथिवी की तासीर पर निर्मर है तथा आसपास के पदार्थी पर भी इस का कुछ आधार है, इस से यह बात सिद्ध होती है कि-आकाश के बादलों में से को पानी बरसता है वह सर्वोत्तम और पीने के कायक है किन्तु प्रथिवी पर गिरने के पीछे उस में अनेक प्रकार के पदार्थों का मिश्रण (मिलाव) होनेसे वह विगडनाता है. यद्यपि प्रिवीपर का और आकाश का पानी एक ही है तथापि उस में भिन्न २ पदार्थों के मिछ जाने से उस के गुण में अन्तर पड़ जाता है, देखो ! प्रतिवर्ष वृष्टि का बहुतसा पानी प्रस्वीपर गिरता है तथा प्रथिवी पर गिरा हुआ वह पानी बहुत सी नदियों के द्वारा समु-दों में जाताहै और ऐसा होनेपर भी ने समुद्र न तो भरते है और न छलकते ही हैं. इस का कारण सिर्फ यही है कि-जैसे प्रथिवीपर का पानी समुद्रों में जाता है उसी प्रकार समद्रों का पानी भी सक्ष्म परमाण रूप अर्थात माफ रूप में हो कर फिर आकाश में जाता है और वही भाफ बदल वन कर पुनः जल वर्फ अथवा ओले और ब्रॅंभर के रूप में हो बाती है. तालाव कुओं और निदयों का पानी भी भाफ रूपमें होकर ऊँचा चढ़ता है किन्त खास कर उप्ण ऋत में पानी में से वह भाफ अधिक वन कर बहुत ही ऊँची चढती है. इसिक्ये उक्त ऋत में बलाश्यों में पानी बहुत ही कम हो जाता है अथवा विलक्त ही सख जाता है।

जब देष्टि होती है तब उस (दृष्टि) का बहुत सा पानी बिदयों तथा तालावों में जाता है और बहुत सा पानी पृथिनी पर ही ठहर कर आस पास की पृथिनी को गीली कर देता है, केवल इतना ही नहीं किन्तु उस पृथिनी के समीपमें स्थित कुएँ और अरने आदि मी उस पानी से पोषण पाते हैं।

जहां ठंढ अधिक पड़ती है वहां बसीत का पहिला पानी बर्फ रूप में जम जाता है तथा

१-क्योंकि-उन मूर्ख वैद्यों को भी वह बात नहीं माद्यम होती है कि-पानी की खरावी से यह रोगोत्पत्ति हुई है॥

२-मृष्टि किस २ प्रकार से होती है इस का वर्णन श्रीमगवती स्थ्रमें किया है, वहा यह भी निरूपण है कि-जरू की उत्पत्ति, स्थिति और नास का जो अकार है वहीं प्रकार सब जब और चेतन पदायों का जान केना नाहिये, क्योंकि इन्य निरूप है तया ग्रुण भी निरूप है परन्तु पर्याय अनिरूप है ॥

गर्मी की ऋतु, में वह वर्फ पिघल कर निदयों के प्रवाह में बहने लगती है, इसी लिये गङ्गा जादि निदयों में चौमासे में खून पूर (बाढ़) जाती है तथा उस समय में तालाव और कुँओं का भी पानी ऊँचा चढ़ता है तथा अध्म में कम हो जाता है, इस प्रकार से पानी के कई रूपान्तर होते है।

वरसात का पानी निदयों के मार्ग से समुद्र में जाता है और वहां से माफ रूप में होकर ऊँचा चढता है तथा फिर वही पानी वरसात रूप में हो कर पृथिवी पर वरसता है, इस यही कम संसार में अनादि और अनन्त रूप से सदा होता रहता है।

पानी के यद्यपि सामान्यतया अनेक भेद माने गये हैं तथापि मुख्य मेद तो दो ही हैं अर्थात अन्तरिक्षज्ञ और मूमिजल, इन दोनों भेदों का अब संक्षेप से वर्णन किया जाता है:

जाता है: - जिल्हा कर के कहते हैं कि जो आकाश में स्थित बरसात का पानी अधर में ही छान कर किया जावे।।

मूमिजल वही बरसात का पानी पृथिबी पर गिरने के पीछे नदी कुवा और तालाब में ठहरता है, उसे भूमिजल कहते हैं॥

इन दोनों जलों में अन्तिरिक्षजल उत्तम होता है, फिन्तु अन्तिरिक्षजल में भी जो जल आश्विन मास में बरसता है उस को निशेष उत्तम समझना चाहिये, यद्यपि आकाश में भी बहुत से मलीन पदार्थ नायु के द्वारा घूमा करते हैं तथा उन के संयोग से आकाश के पानी में भी कुछ न कुछ विकार हो जाता है तथापि प्रथिवी पर पड़े हुए पानी की अपेक्षा तो आकाश का पानी कई दर्जे अच्छा ही होता है, तथा आश्विन (आसोज) मास में बरसा हुआ अन्तिरिक्षजल पहिली वरसात के द्वारा बरसे हुए अन्तिरिक्षजल से निशेष उत्तम गिना जाता है, परन्तु इस विपय में भी यह जान छेना आवश्यक है कि—अद्भु के विना वरसा हुआ महावट आदि का पानी यद्यपि अन्तिरिक्ष जल है तथापि वह अनेक विकारों से युक्त होने से काम का नहीं होता है।

आकाश से जो ओं हो गरते हैं उनका पानी अमृत के समान मीठा तथा बहुत ही

१-देखो । "जीवविचार प्रकरण" में इवा तथा पानी के अनेक मेद लिखे हैं ॥

२-इसी लिये उपासकद्शा सूत्र में वह लिखा है कि-आवन्द आवद में आसोज का अन्तरिक्ष जल ही जनमंत्रर पीने के लिये रक्का ॥

३-आरलेषा नक्षत्र का जल नहुत हानिकारक होता है, देखो । नालक का वचन है कि "वैदाँ घर वधा-वणा आरलेषा खुटाँ" इलादि, अर्थात् आरलेषा नक्षत्र में वरसे हुए जल का पीना मानों वैद्य के घर की वृद्धि करना है (वैद्य को घर में बुळाना है)॥

अच्छा होता है, इस के सिनाय यदि वरसात की घारा में गिरता हुआ पानी मोटे कपड़े की झोली बांघकर छान लिया जावे अथवा लच्छ की हुई प्रिथिवी पर गिर जाने के बाद उस को लच्छ वर्तन में मर लिया जावे तो वह मी अन्तरिक्षजळ कहलाता है तथा वह भी उपयोग में लाने के योग्य होता है।

पहिले कह जुके है कि-नरसात होकर आकाश से प्रियनी पर गिरने के नाद प्रियनी सम्बन्धी पानी को सूमि जल कहते है, इस सूमि जलके दो मेद है-जाइल और आनूप, इन दोनों का विवरण इस प्रकार है:--

जाइतल जल — जो देश शोड़े जलवाला, शोड़े पृक्षोंवाला तथा पीत और रक्त के विकार के उपद्रवों से युक्त हो, वह जांगल देश कहलाता है तथा उस देश की सूमि के सम्बन्ध में खित जल को जांगल जल कहते हैं।

अपन्प जल्ल — को देश बहुत जलवाला, बहुत दृक्षोंवाला तथा वायु और कफ के जपद्रवों से युक्त है, बहु अनूए देश कहलाता है तथा उस देश में स्थित जल को आनूए जल कहते हैं॥

इन दोनों प्रकार के जलों के गुण ये हैं कि—जांगल जल साद में सारा अथवा मल-भला, पाचन में इलका, पथ्य तथा अनेक विकारों का नाशक है, आनूपजल—मीठा और भारी होता है, इस लिये वह शर्दी और कफ के विकारों को उत्पन्न करता है।

इन के सिवाय साधारण देश का भी जल होता है, साधारण देश उसे कहते हैं कि— जिस में सदा अधिक जल न पड़ा रहता हो और न अधिक दुसों का ही झुण्ड हो अर्थात् जल और दूस साधारण (न अति न्यून और न अति अधिक) हों, इस प्रकार के देश में स्थित जल को साधारण देश जल कहते है, साधारण देशजल के गुण और दोष नीचे लिखे अनुसारं जानने चाहियें:—

नदीका जल मूमि बल के मिन २ बलाशयों में बहता हुआ नदी का पानी विशेष अच्छा गिना जाता है, उस में भी बदी २ निदयों का पानी अत्यन्त ही उत्तम होत है, यह भी जान लेना चाहिये कि पानी का खाद प्रथिवी के तलगाग के अनुसार प्रायः हुआ करता है अर्थात् प्रथिवी के तल भाग के गुण के अनुसार उस में खित पानी का खाद भी बदल जाता है अर्थात् यदि प्रथिवी का तला खारी होता है तो चाहे बढ़ी

१--परन्तु उस को वैंचा हुना (ओडेरूप में) साना तथा वैंथी हुई (जसी हुई) वर्ष को जाना जैन सूत्रों में निषिद्ध (माना) किसा है, अर्थात्-असस्य ठहराया है तथा जिन र वस्तुओं को सूत्रकारोंने अभस्य किसा है वे सब रोगकारी हैं, इस में सन्देह नहीं है, हाँ वेशक इन का गला हुआ जल कई रोगों में हितकारी है।

२-हैदराबाद, बागपुर, अमरावती तथा खानदेश आदि साधारण देश हैं॥

नदी भी हो तो भी उस का पानी खारी हो जाता है, वर्षा ऋतु में नदी के पानी में धूछ कूड़ा तथा अन्य भी बहुत से मैछे पदार्थ दूर से आकर इकट्टे हो जाते हैं, इस छिये उस समय वह बरसात का पानी विछकुछ पीने के योग्य नहीं होता है, किन्तु जब वह पानी दो तीन दिन तक स्थिर रहता है और निर्मेछ हो जाता है तब वह पीने के योग्य होता है।

झाड़ी में बहने वाली निर्देशों तथा नालों का पानी यद्यपि देखने में बहुत ही निर्मल माल्यम होता है तथा पीने में भी मीठा लगता है तथापि वृक्षों के मूल में होकर बहने के कारण उस पानी को बहुत खराब समझना चाहिये, क्योंकि—ऐसा पानी पीने से ज्वर की उत्पत्ति होती है, केवल यही नहीं किन्तु उस जल का स्पर्श कर चलने वाली हवा में रहने से भी हानि होती है, इसलिये ऐसे प्रदेश में जाकर रहने वाले लोगों को वहां के पानी को गर्म कर पीना चाहिये अर्थात् सेर मर का तीन पाव रहने पर (तीन उवाल देकर) ठंढा कर मोटे बक्क से लान कर पीना चाहिये।

बहुत सी निदयों छोटी २ होती हैं और उन का जरू धीमे २ चलता है तथा उस पर मनुष्यों की और जानवरों की गन्दगी और मैल भी चला आता है, इस लिये ऐसी निदयों का जरू पीने के लायक नहीं होता है, नरू लगने से पहिले कलकरे की गंगा नदी का जरू भी बहुत हानि करता था और इसका कारण वही था जो कि जभी कपर कह जुके है अर्थात उस में खान मैल आदिकी गन्दगी रहती थी तथा दूसरा कारण यह भी था कि—वंगाल देश में जरू में दाग देने की (दाहिक या करने की) प्रथा के होने से सुदें को गंगा में डाल देते थे, इस से भी पानी बहुत विगइता था, परन्तु जब से उस में नल लगा है तब से उस जल का उक्त विकार कुल कम प्रतीत होता है, परन्तु नरू के पानी में प्रायः अर्जीणता का दोष देखने में आता है और वह उस में इसी लिये है कि—उस में मलीन पदार्थ और निकृष्ट हवा का संसर्ग रहता है।

बहुत से नगरों तथा आमों में कुँए आदि जलाशय न होने के कारण पानी की तंगी होने से महा मलीन जलवाली नदियों के जल से निर्वाह करना पड़ता है, इस कारण वहां के निवासी तमाम बस्ती वाले लोगों की आरोग्यता में फर्क आ जाता है, अर्थात् देखो । पानी का प्रमाव इतना होता है कि—खुली हुई साफ हवा में रहकर महनत मजूरी कर

⁹⁻जैसे-शिखर गिरि "पार्श्वनायहिल और गिरनार नादि पर्वतो के नदी नालों के जल को पीनेवाले लोग जनर और तापतिली नादि रोगोंसे प्रायः दुःखी रहते हैं तथा यही हाल क्याल के पास सक्या देश का है, यहा जानेवाले लोगों को भी एकवार तो पानी अवस्य ही अपना प्रमाव दिखाता है, यही हाल रायपुर आदि की झाडियों के जल का भी है॥

२-जैसे दक्षिण हैदरागाद की मूसा नदी इसादि॥

शरीर को अच्छे प्रकार से कसरत देने वाले इन ग्राम के निवासियों को भी ज्वर सवाने लगता है, उन की वीमारी का मूल कारण केवल मलीन पानी ही समझना चाहिये।

इस के सिवाय-जिस खान में केवल एक ही तालाव आदि जलाशय होता है तो सब लोग उसी में झान करते हैं, मैले कपड़े घोते है, गाय; ऊंट; घोड़े; वकरी और मेंड़ आदि पशु भी उसी में पानी पीते है, पेशाव करते हैं तथा जानवरों को भी उसी में छान कराते हैं और वही जल बस्ती वाले लोगों के पीने में आता है, इस से भी बहुत हानि होती है, इस लिये श्रीमती सर्कार, राजे महाराजे तथा सेठ साहकारों को उचित है कि-जल की तंगी को मिटाने का तथा जल के सुधारने का पूरा प्रयंत्त करें तथा सामान्य प्रजा के लोगों को भी मिलकर इस निषयमें ध्यान देना चाहिये।

यदि ऊपर लिखे अनुसार किसी वस्ती में एक ही नदी वा जलाशय हो तो उस का ऐसा प्रवंध करना चाहिये कि—उस नदी के ऊपर की तरफ का बल पीने को लेना चाहिये तथा बस्ती के निकास की तरफ अर्थात् नीचे की तरफ खान करना, कपड़े घोना और जानवरों को पानी पिलाना आदि कार्य करने चाहियें, बहुत तड़के (गल्रदम) प्रायः जल

१-परम्यु शतश. बन्यवाद है उन परोपकारी विमल सन्त्री वस्तुपाल रोजपाल शादि जैनसावकों को जिन्हों ने प्रजाक इस महत् कह को दूर करने के लिये ह्वारों कुँए, नाववी, प्रकारिणी बीर तालाव वनवा दिये (यह विषय उन्हीं के हतिहास में लिखा है), देखों ! असलमेर के पास लोहनकुण्ड, रामदेहरें के पास वहनकुंड और अजमेर के पास पुष्करकुंड, वे तीनों अपाध जलवाले कुढ़ सिंधु देश के निवासी राजा उदाई की सीना से पानी की तथी होने से पदावती देवी ने (यह पद्मावती राजा उदाई की राजी बी, अब इस को नैराय जरफ हुआ तब इस ने अपने पित से दीका केनेकी आधा मायी, परन्तु राजा ने इस से यह कहा कि-चीझा लेने की आधा में दुम को तब दुम कव उत्तर इस वात को खीकार करों कि "तप के प्रमान से मर कर जब दुम को देवलोंक प्राप्त हो जाने तब विसी समय पंकट पढ़ने पर यह में तुम को पाद कर तब दुम मुझ को सहायता देखों" राजी ने इस वात को खीकार कर लिया और समय आने पर अपने कहे हुए बचन का पालन किया) जनवाने, एव राजा जशोकचन्द्र आदिने भी अपने चन्यापुरी आदि जल की तथी के स्थानों में वृद्ध, सक्क और जल की नहीं बनवाना छुट कियाया, इसी प्रंकार मुर्शिदावाद म अभी जो गया है उस को पहा नाम की वही नदी से नाले के रूपमें निकलवा कर जागत सेठ लाये थे, ये प्रथ वारों इतिहासों से विदित हो सकती है ॥

१—हम ऐसे अनसर पर श्रीमान् राजराजेश्वर, नरैन्द्रशिरोमणि, महाराजाविराज श्रीमान् श्री गङ्गासिह
है वहाद वीकानेर नरेश को अनेकानेक अन्यवाद दिये विना नहीं रह सकते हैं कि—जिन्हों ने इस समय
बा के हित और देश की आवादी के किये अपने राज्य में नहर के ठाने का पूरा प्रयक्तकर कार्यारम्म
त्या है, उक्त नरेशमें वहा प्रशस्तीय ग्रुण शह है कि—आप एक मिनट भी अपना समय व्ययं में न गमार सदैन प्रचा के हित के लिये सुविचारों को करके उन में उसत रहा करते हैं, इस का प्रसंस्म प्रमाण
है कि—इक्त वमें पहिले वीकानेर किस दशा में या और आंच करू उक्त नरेश के सुप्रताए और मेष्ठ
ान्य से किस उन्नति के विखार पर जा पहुँचा है, सिर्फ यही हेतु है कि—उक्त महाराज की निर्मल कीर्ति
ार सर में फैल रही है, यह सब उनकी उक्तम शिक्षा और उसम का ही फल है, इसी प्रकार से प्रचा
हित करना सब नरेशों का प्रस कर्तव्य है।

साफ रहता है इसिल्ये उस समय पीने के लिये जल मर लेना चाहिये, लोगों के सुल के लिये सकीर को यह भी उचित है कि—ऐसे जलखानों पर पहरा विठला देने कि—जिस से पहरेनाला पुरुष जलक्षय में नहाना, घोना, पशुओं को घोना और मरे आदमी की जलाई हुई राख आदि का डालना आदि नातों को न होनेदेने।

बहुत पानी वाली जो नदी होती है तथा जिस का पानी जोर से बहुता है उस का तो मैल और कचरा तले बैठ जाता है अथवा किनारे पर आकर इकट्टा हो जाता है परन्त्र जो नदी छोटी अशीत कम जलवाली होती है तथा धीरे २ वहंती है उस का सब मैल और कचरा आदि जल में ही मिला रहता है. एवं तालाव और कुँए आदि के पानी में भी प्रायः मैल और कचरा मिला ही रहता है. इस लिये छोटी नदी तालाव और कुए आदि के पानी की अपेक्षा बहुत जलवाली और जोर से बहुती हुई नदी का पानी अच्छा होता है. इस पानी के सुबरे रहने का उपाय जैनसूत्रों में यह छिला है कि उस जल में घुस के खान करना, दाँतीन करना, वस्र घोना, मुदें की राख डाळना तथा हाड (फूळ) डाळना आदि कार्य नहीं करने चाहिये. क्योंकि-उक्त कार्यों के करने से वहां का जल खराब होकर प्राणियों को रोगी कर देता है और यह वात (प्राणियों को रोगी करने के कार्यों का करना) वर्म के कायदे से अत्यन्त विरुद्ध है, अस्थि या अर्दे की राख से हवा और जल खराब न होने पाबे इस लिये उन (अस्थि और राख) को नीचे दवा कर ऊपर से स्तप (धम्म या छतरी) करा देनी चाहिये, यही जैनियों की परम्परा है, यह परम्परा वीका-नेर नगर में प्रायः सब ही हिन्दुओं में भी देखी जाती है और विचार कर देखा जावे तो यह प्रभा बहुत ही उत्तम है. क्योंकि-वे अस्य और राख आदि पदार्थ ऐसा करने से प्राण-यों को कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकते हैं, ज्ञात होता है कि-जब से भरत चक्री ने फैठास पर्वत पर अपने सौ माइयों की राख और हड़ियों पर स्तप करवाये थे तब ही से यह उत्तम प्रथा चली है।।

कुँएका पानी पिहिले कह चुके हैं कि पानी का खारा और मीठा होना आदि प्रियमी की तासीर पर ही निर्मर है इसिल्ये प्रियमी की तासीर का निश्चय कर के उत्तम तासीर वाली प्रियमी पर खित जल को उपयोग में लाना चाहिये, यह भी सारण रहे कि नाहरे कुँए का पानी छीलर (कम गहरे) कुँए के जल की अपेक्षा अच्छा होता है। जब कुँए के आस पास की प्रियमी पोली होती है और उस में कपड़े घोने से उन (कपड़ों) से छूटे हुए मैल का पानी खान का पानी और वरसात का गन्दा पानी कुँए में मरता है (प्रिवष्ट होता है) तो उस कुँए का जल निगड़ जाता है, परन्तु यदि कुँआ

१-जैसे बीकानेर में साठ पुरस के गहरे कुँए हैं, इसकिये उन का बख निहायत उमदा और साफ है।

गहरा होता है अर्थात् साठ पुरस का होता है तो उस कुँए के जरू तक उस मैले पानी का पहुँचना सम्भव नहीं होता है।

इसी प्रकार से जिन कुँखों पर वृक्षों के झुण्ड छगे रहते हैं वा झूमा करते है तो उन (कुँखों) के जल में उन वृक्षों के पचे गिरते रहते है तथा वृक्षों की आड़ रहने से सूर्य की गर्मी मी जलतक नहीं पहुँच सकती है, ऐसे कुँखों का जल प्रायः निगड़ जाता है।

इस के सिवाय—जिन कुँ ओं में से हमेशा पानी नहीं निकाला जाता है उन का पानी भी बन्द (वँघा) रहने से खराब हो जाता है जर्थाद पीने के लायक नहीं रहता है, इस-लिये जो कुँ आ मज़बूत वँघा हुआ हो, नहाने घोने के पानी का निकास जिस से दूर जाता हो, जिस के आस पास बृक्ष या मैलापन न हो और जिस की गार (कीचड़) बार २ निकाली जाती हो उस कुँ ए का, आस पास की प्रथिवी का मैला कचरा जिस के जल में न जाता हो उस का, बहुत गहरे कुँ ए का तथा खारी पनसे रहित प्रथिवी के कुँ ए का पानी साफ और गुणकारी होता है ॥

्कुण्ड का पानी - कुण्ड का पानी बरसात के पानी के समान गुणवाला होता है, परन्तु जिस छत से नल के द्वारा आकाशी पानी उस कुण्ड में लाया जाता है उस छत पर धूल, कचरा, कुचे विश्ली आदि जानवरों की वीट तथा पिक्षयों की विश्ला आदि मलीन पदार्थ मही रहने चाहिये, क्योंकि हन मलीन पदार्थों से मिश्रित होकर जो पानी कुण्ड में जायगा वह विकारयुक्त और खराब होगा, तथा उस का पीना अति हानिकारक ोगा, इस लिये मेल और कचरे आदि से रहित खच्छता के साथ कुण्ड में पानी लाना चाहिये, क्योंकि सच्छता के साथ कुण्ड में पानी लाना चाहिये, क्योंकि सच्छता के साथ कुण्ड में लाया हुआ पानी अन्तरिक्ष जल के समान बहुत गुणकारक होता है, परन्तु यह भी सारण रखना चाहिये कि यह जल भी सदा बन्द रहने से विगड़ जाता है, इस लिये हमेशा यह पीने के लायक नहीं रहता है।

कुण्ड का पानी लाद में मीठा और ठंढा होता है तथा पचने में सारी है।

पानी के गुणावगुण को न समझने बाले बहुत से लोग कई वर्षों तक कुण्ड को घोकर शफ नहीं करते हैं तथा उस के पानी को बड़ी तंगी के साथ खरचते हैं तथा पिछले बौमासे के बचे हुए जल में दूसरा नया बरसा हुआ पानी फिर उस में ले लेते हैं, वह नी बड़ा मारी जुकसान पहुँचाता है इस लिये कुण्डके पानी के सेवन में ऊपर कही हुई तों का अवस्य खयाल रखना चाहिये तथा एक बरसात के हो चुकने के बाद जब छत अप्पर और मोहरी आदि घुल कर साफ हो जानें तब दूसरी बरसात का पानी कुण्ड में ना चाहिये तथा जल को छान कर उस के जीवों को कुँए के बाहर कुण्डी आदि में

डलवा देना चाहिये कि-जिस से वे (जीवं) मर न जावें, क्योंकि-जीवदर्यों ही धर्म्भ का सूल है।

नल का पानी — जो पानी निदयों या तालावों में से छनने के वास्ते गहरे कुँए में लिया जाता है तथा वहां से छन कर नल में आता है वह पानी नदी के जल से अच्छा होता है, इस की प्रथा वादशाही तथा राजों की अमलदारी में भी थी अर्थात जस समय में भी नदी के इघर झरने बनाये जाते थे, उन में से जा आ कर जो जल जमा होता था वह जल उपयोग में लाया जाता था, क्योंकि—वह जल अच्छा होता था।

जाज कल के बहुत से पढ़े लिखे नई रोशनी बाले यह कहते है कि—''शहरों के बाहर तो दूर २ से पानी की नहरें राजाओं ने बनवाई थीं, इस का तो इतिहास है परन्तु नल किसी राजा ने भी नहीं लगवाया था, क्योंकि—इस का कोई सबूत नहीं मिलता है इत्यादि" परन्तु यह उन लोगों का बड़ा अस है क्योंकि—देखों! संसार में हर एक विद्या जनादि काल से चली आती है, यह दूसरी बात है कि—कोई विद्या किसी जमाने में छप्त हो जाती है और कोई मकट हो जाती है, इस समयमें सर्कार ने प्रजा के छल के लिये तथा अपने क्यांकि लिये नल बनवाने का प्रयत्न अच्छा किया है तथा और भी अनेक अतिलामदायक पदार्थ बनाये है जिन को देख कर उन के उद्यम और उन की बुद्धि की जितनी प्रशंसा की जावे वह थोड़ी है, परन्तु इस से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि—इन्हों ने जैसा किया है बैसा संसार में पहिले कभी किसी ने नहीं किया था, क्योंकि—हर एक विद्या जनादि है, हां समय

१-निवार कर देखा जाने तो आखिरकार तो इस दया का पूर्णतचा पास्त्र होना अति किन है, क्योंकि-विचारणीय विषय यह है कि-वे जीन यदि कुण्डी में बच्या दिये जानें और कुण्डी में पानी थोड़ा हो तो वे गर्मी से सूख कर मरते हैं, यदि अधिक जरू हो तो उन को पानी के साथ में जानवर पी जाते हैं, यदि बहुत दिनों तक पढ़े रहे तो गन्दगी के दर से कुँए का मालिक बोकर उन्हें जमीन पर फेंक देता है, इस के सिवाय जीवों के के जाने वाके भी अलाध्य में न पहुँचाकर मार्ग में ही गिरा देते हैं, तथा एक जरू के शिवाय जीवों के के जाने वाके भी अलाध्य में न पहुँचाकर मार्ग में ही गिरा देते हैं, तथा एक जरू के शिव को दूसरे कुँए के जरू में बाल जाने तो दोनों ही मर जाते हैं, वस विचार कर देखों तो आखिर को हिंसा का बदला देना ही होगा, ससार वास में इस का कोई उपाय नहीं है, देखों ! गीतम ने शीर मगवान से प्रश्न किया है कि "जीवे जीव जाहार, विना जीव जीवे नहीं । मगवत कहो विचार, दयाधर्म किस विभ पुरुं" ॥ १ ॥ इसका अर्थ सरव्ही है । इस पर मगवान ने यह उत्तर दिया है कि—"जीवे जीव आहार, जतना से वरतो सदा ॥ गीतम सुनो विचार, उक्ते जितनो ही डाकिये " ॥ १ ॥ इस का मी अर्थ सरक ही है ! वस इस से सिद्ध हुआ कि—हटवये जो करूमा का रखना है—वही दया धर्म है, यही जैनाममों में मी कहागया है, देखों । "जय चरे जय चिहे जय-आसे जय सवे ॥ अय मुनते जय मासन्तो पाव कम्म व वम्हें" ॥ १ ॥ अर्थात चलना, खडा होना, बैठना, सोना, खाना और वोलना आदि संव कियाओं को यतना (सावधानता) के साथ करना चाहिये कि जिस से पायकर्म न वेंचे ॥ १ ॥ अय इस ऊपर लिखी हुई सम्मति को विचार कर समयानुसार प्रत्येक किया में जीवदश्य का ध्यान रखना अपना काम है ॥

पाकर उस का रूपान्तर हो जाता है अथवा लुप्तप्राय हो जाती है, नल के विपय में जो उन लोगों का यह कथन है कि-इस का कोई सबृत वा इतिहास नहीं मिला है, सो वेजक उन लोगों को इस का सबत वा इतिहास नहीं मिला होगा परन्त देशाटन करनेवाले और प्राचीन इतिहासों के वेत्ता छोग तो इस का प्रमाण प्रत्यक्ष ही वतला सकते हैं, देखिये । श्रेणिक राजा के समय में मगघ देश में राजगृह नामक एक नगर था जो कि बहत ही रौनकपर था. उस नगर में श्रेणिक राजा के पुत्र अभयकुमार मन्त्री ने सन्पूर्ण नगर की प्रजा के हित के लिये ऐसी बुद्धिमानी से नल बनवाया या कि जिस को देखकर अच्छे २ बुद्धिमान छोगों की भी बुद्धि काम नहीं देती थी (आश्चर्य में पड़ जाती थी) अब भी उस राजगृह नगर के स्थान में एक छोटा सा श्राम है तथा उक्त मन्त्री की ब्रद्धि-मानी का चिह्न अभीतक वहां मीजूद है अर्थात् वहां वहुत से कुण्ड वने हुए है और उन में पहाड के मीतर से गर्म पानी सदा आता है, एक सातवारा का भी कुण्ड है और वे सातों घारायें सदा उस कुण्ड में गिरती रहती है, इस पर मी आश्चर्य यह है कि-उन कुण्डों में पानी उतने का उतना ही रहता है, इस स्थान का निशेष वर्णन क्या करें. क्योंकि-वहां की असली कैफियत तो वहां जाकर नेत्रों से देखने ही से ठीक रीति से माख्स हो सकती है, वहां की कैफियत को देख कर अंग्रेजों की भी अक्क हैरान हो गई है अर्थात आजतक अंग्रेजों को यह भी पता नहीं छगा है कि-यह पानी कहां से आता है ।

इसी प्रकार आगरे में भी ताज वीवी के रौजे में एक फुहारा ऐसा लगा हुआ था कि चह अह पहर (रात दिन) चला करता था और होद में पानी उतने का उतना ही रहता था उस की जांच करने के लिये अंग्रेजों ने उसे तोड़ा परन्तु उस का कुछ भी पता न लगा और फिर वैसा ही बनवाना चाहा लेकिन वैसा फिर वन भी न सका, इसलिये प्यारे मित्रो ! अपने ग्रुख से ऐसा कभी नहीं कहना चाहिये कि—पहिले ऐसा कार्य कभी नहीं हुआ था, क्योंकि—अपने लोग अभी क्षमण्डूक की गिनती में गिने जाते है इसलिये हम लोग सागर के विस्तार को कैसे जान सकते है, अस्तु।

जो लोग परिश्रम नहीं करते हैं किन्तु रातदिन गद्दी तिकयों के नौकर बने रहते हैं उन को नल का पानी वृथा पुष्ट और सत्त्वहीन कर देता है, किन्तु जो लोग परिश्रमी हैं उन के लिये यह (नल का पानी) लामदायक है, इस के सिवाय नल के जल से जो २ लाम पहुँचे हैं तथा पहुँच रहे है उनके वर्णन करने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उस के लाम प्रत्यक्ष ही दील रहे है।

सरीवर (जालाव) का पानी पृथिवी के निम्न (नीचे) मार्गो में जो वरसात के पानी का संग्रह हो जाता है उसको तालाव या सरोवर कहते हैं, वहुत से तालाव ऐसे भी होते हैं कि-जिन के भीतर पहाड़ की तलहिंदयों का झरना निरन्तर वहा करता है,

इस लिये उन में अट्ट पानी रहता है, परन्तु बहुत से तो प्रायः ऐसे ही होते हैं कि जो तालाव फेवल बरसात के ही पानी से भरा करते है और बरसात के न होने से सूख जाते है, बरसात का जो पानी आस पास के प्रदेशों से बह कर तालावों में आता है वह थोड़े दिनोंतफ स्थिर रह कर पीछे निर्मल हो जाता है, यदि तालाव के पानी में किसी मकार की मलीनता न होने पाने तो वह पानी अच्छा रहता है अर्थात् उस को पीने के उपयोग में ला सफते है, परन्तु जिस तालाव में लोग नहाते घोते हों तथा अन्य किसी प्रकार की मलीनता करते हों तो उम तालाव का पानी पीने के उपयोग में कभी नहीं लाना चाहिये।

अपने देश के छोग शरीरसंरक्षण के विषय में बहुत ही अब है इसिक्टिये नहाने घोने आदि की मळीनता से युक्त पानी के पीने से होनेवाळी हानियों को वे न जान कर मळीन पानी को भी अपने पीनेके उपयोग में के आते है यह बहुत ही शोक का विषय है।

तालाव का पानी मीठा, यारी, रुचिकर, त्रिदोर्षहर और शर्दी करनेवाला है, परन्तु वही जल मैला होने से अनेक रोगों को उत्पन्न करता है।

नदी के पानी के विगड़ने के जितने हेतु कह चुके है वे ही सब हेतु तालाब के पानी के विगड़ने के भी जानने चाहियें, हां इतनी विशेषता और भी है कि—नदी का पानी बहता रहता है और तालाब का पानी बँघा हुआ रहता है इसलिये नदी के विगड़े हुए पानी की अपेक्षा तालाब के विगड़े हुए पानी की अपेक्षा तालाब के विगड़े हुए पानी से अधिक हानि का संभव होता है ॥

्रैऋतु के अनुसार पानी का उपयोग ॥

हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में सरोवर और तालाव का पानी हितकारी है, वसन्त और श्रीष्म ऋतु में कुँप बावड़ी तथा पर्वत के करने का पानी उत्तम है, वर्षा ऋतु में अन्त-रिक्षजल अर्थात् बरसात की धारा से छान कर लिया हुआ अथवा कुँप का पानी प्रीने के लायक होता है तथा शरद् ऋतु में नदी का पानी और जिस जलाश्चय पर सब दिन सूर्य की उप्ण किरणें पड़ती हों तथा रात्रि में चन्द्रमा की शीवल किरणें पड़ती हों उस जलाश्चय का पानी हितकारक है, क्योंकि—शरद् ऋतु का ऐसा पानी अन्तरिक्षजल के समान ग्राणकारी, रसायनरूप, बलदाता, पवित्र, ठंडा, हलका और अग्नत के समान है।

वैद्यकशास्त्र के एक प्राचीन माननीय आचार्य का ऋतुओं में सरू के उपयोग के विषय में यह कथन है कि—पीष मास में सरीवर का, माषमास में तालाव का फागुन में कुँए का, चैत्र में पहाड़ी कुण्हों का, वैश्वास्त्र में झरनों का, जेठ में पृथिवी को भी अपने

१-ित्रदोषहर-मर्थाद् वात, पित्त और कफ को तथा इन से उत्पन्न हुए रोगों को बिटानेवाला ॥

प्रवरु प्रवाह से फाड़ कर वहनेवाले नालो का, आषाढ़ में क्वंप का श्रावण में अन्तरिक्ष का, भाद्रपद में क्वंपका, आश्विन में पहाड़ के कुण्डों का और कार्त्तिक तथा मार्गशीर्ष (मिस्सिर) में सब जलाशुर्यों का पानी पीने के योग्य होता है ॥

ख़ुराब पानी से होनेवाले उपद्रव ॥

खराब पानी से अनेक प्रकार के उपद्रव होते हैं. जिन का परिगणन करना कठिन ही नहीं किन्तु असंगव है, इस लिये उन में से कुछ मुख्य २ उपद्रवों का विवेचन करते है— इस बात को बहुत से लोग जानते हैं कि—कई एक रोग ऐसे है जो कि जन्तुओं से उत्पन्न होते है और जन्तुओं को उत्पन्न करनेवाला केवल खराब पानी ही है।

प्रियवी के योगसे पानी में लार मिलने से वह (पानी) मीठा और पाचनशक्तिका वर्षक (बढानेवाला) होता है, परन्तु यदि पानी में क्षार का परिमाण मात्रा से अधिक वढ़ जाता है तो वही पानी कई एक रोगों का उत्पादक हो जाता है, जब पानी में सड़ी हुई वनस्पति और मरे हुए जानवरों के दुर्गन्यवाले परमाणु मिल जाते है तो लच्छ जल भी विगड़ कर अनेक लरावियों को करता है, उस विगड़े हुए पानी से होनेवाले मुख्य २ ये. चुपूद्वव हैं:—

- १—इचर—ठंढ देकर आनेवाले ज्वर का, विषमज्वर का तथा मलेरिया नाम की हवा से उत्पन्न होनेवाले ज्वर का मुख्य कारण खराव पानी ही है, क्योंकि—देखो ! विक्रत पानी की आर्द्रता से पहिले हवा विगड़ती है और हवा के विगड़ने से मनुष्य की पाचनशक्ति मन्द पड़ कर ज्वर आने लगता है, ठंढ देकर आनेवाला ज्वर प्रायः आश्विन तथा कार्तिक मास में हुआ करता है, उस का कारण ठीक तीर से मलेरिया हवा ही मानी गई है, क्योंकि—उस समय में खेतों के अन्दर काकड़ी और मतीर आदि की वेलों के पचे अम जले हो जाते हैं और जय उन पर पानी गिरता है तब वे (पते) सड़ने लगते हैं, उन के सड़ने से मलेरिया हवा उत्पन्न होकर उस देश में सर्वत्र ज्वर को फैला देती है, तथा यह ज्वर किसी र को तो ऐसा दवाता है कि दो तीन महीनों तक पीछा नहीं छोड़ता है, परन्तु इस बात को ऐरे तौर पर हमारे देश-वासी विरले ही जानते हैं॥
- २-दस्त वा मरोड़ा; इस बात का ठीक निश्यय हो चुका है कि दस्तों तथा मरोड़े का रोग भी खरावपानी से ही उत्पन्न होता है, क्योंकि देखी। यह रोग चौमासे में विशेष होता है और चौमासे में नदी आदि के पानी में वरसात से वहकर आये हुए

[.] ९-यह मलेरिया से उत्पन्न होनेवाला ज्वर उत्ता मासो में मारवाड़ देशमें तो पाप. अवस्य ही होता है।।

मैळे पानी का मेळ होता है, इसिक्ये उस पानी के पीने से मरोड़ा और अतीसार का रोग उत्पृत्त हो जाता है ॥

३-ेअजीर्ण - भारी अन्न और खराब पानी से पाचनशक्ति मन्द पढ़ कर अजीर्ण रोग

उत्पन्न होता है ॥

- 8—कृति वा जन्तु सराव अर्थात् विगड़े हुए पानी से शरीर के मीतर अथवा शरीर के बाहर कृति के उत्पन्न होने का उपद्रव हो जाता है, यह भी जान लेना चाहिये कि— खच्छ पानी कृति से उत्पन्न होनेवाले त्वचा के ददों को मिटाता है और मैला पानी इसी कृति कृते फिर उत्पन्न कर देता है ॥
- ५-नहरू (बाला) -नहरूँ का दर्द बड़ा सर्यकर होता है, क्योंकि-इस के दर्द से बहुत से लोगों के पाणों की मी हानि हो जाने का समाचार छुना गया है, यह रोग खासकर खराब पानी के स्पर्श से तथा विना छने हुए पानी के पीने से होता है।
- ६—त्वचा (चमंद्री) के रोग—दाद लाज और गुमड़े आदि रोग होने के कारणों-मेंसे एंक कारण लराज पानी भी है तथा इस में प्रमाण यही है कि—जन्तुनाशक औष-घोंसे ये रोग मिट जाते है और जन्तुओं की उत्पत्ति विशेष कर खराब पानी ही से होती है।
- ७—विष्विका (हैजा) वहुत से आचार्य यह लिखते हैं कि—विष्विका की उत्पत्ति अजीण से होती है तथा कई आचार्यों का यह मत है कि—इस की उत्पत्ति पानी तथा हवा में रहनेवाले ज़हरीले जन्तुओं से होती है, परन्तु विचार कर देखा जावे तो इन दोनों मतों में कुछ मी मेद नहीं है, क्योंकि—अजीण से कृमि और कृमि से अजीण का होना सिद्ध ही है।
- ८ में अइमरी (पथरी) पथरी का रोग भी पानी के विकार से ही उत्पन्न होता है, छोग यह समझते है कि मोजन में पूछ अथवा कंकड़ों के आ जाने से पेट में जाकर पथरी बँध जाती है, परन्तु यह उन की मूळें है, क्योंकि पथरी का मुख्य हेतु खार-वाळा जल ही है अर्थात् खारवाळे जल के पीनेसे पथरी हो जाती है।।

१-इस वात का अनुभव तो बहुत से छोगों को प्राय हुआ ही होगा ॥

२-जांगल देश का पानी लगने से जो रोग होता है उस को "पानीलगा" कहते हैं ॥

३-सारवाड देश के आमों में वह रोग प्रायः देखा जाता है, जिस का कारण कपर किसा हुआ ही है।। ४-इस वात को गुजरात देशवाड़े बहुत से लोग समझते हैं।।

५-असल में यह बात माघवाचार्य के भी देखने में नहीं आहें, ऐसा प्रतीत होता है, किन्तु प्राचीन जैन सोमाचार्य ने जो बात लिखी है उसी को आधुनिक डाक्टर लोग भी मानते है ॥

६-पानी के विकार से होनेवाले ये कुछ सुख्य २ रोग लिखे गये हैं तथा ये अनुभवतिद्ध हैं, यदि इन में किसी को शंका हो तो परीक्षा कर निखय कर सकता है ॥

पानी की परीक्षा तथा स्वच्छ करने की युक्ति॥

अच्छा पानी रंग वास तथा स्वाद से रहित, निर्मे और पारदर्शक होता है, यदि पानी में सेवाल अथवा वनस्पति का मेल होता है तो पानी नीले रंग का होजाता है तथां यदि उस में प्राणियों के शरीर का कोई द्रव्य मिला होता है तो वह पील्रे रंग का हो जाता है।

यद्यपि पानी की परीक्षा कई प्रकार से हो सकती है तथापि उस की परीक्षा का सामान्य और सुगम उपाय यह है कि—पानी को पारदर्शक साफ काच के प्याले में भर दिया जाने तथा उस प्याले को प्रकाश (उजाले) में रक्खा जाने तो पानी का असली रंग तथा मैलापन माद्यम हो सकता है।

किसी २ पानी में नास होने पर भी अनेक नार पीने से अथना स्ंमने से नह एक-दम नहीं माख्स होती है परन्तु ऐसे भानी को उनाल कर उस की नास लेने से (यदि उस में कुछ नास हो तो) श्रीष्ठ ही माख्स हो जाती है।

यह जो पानी की परीक्षा ऊपर लिखी गई है वह जैन लोगों में प्रचलित प्राचीन परीक्षा है, परन्तु पानी की डाक्टरी (डाक्टरों के मत के अनुसार) परीक्षा इस प्रकार है कि— पानी को एक शीशी में भर कर उस को खूव हिलाना चाहिये, पीछे उस पानी को सूंघना चाहिये, इस के सिवाय दूसरी परीक्षा यह भी है कि—पानी में पोटास डालने से यदि वह वास देवे तो समझ लेना चाहिये कि—पानी अच्छा नहीं है।

यह भी जान छेना चाहिये कि—पानी में दो प्रकार के पदार्थों की मिलावट होती है— उन में से एक प्रकार के पदार्थ तो वे है जो कि पानी के साथ पिषल कर उस में मिले रहते है और दूसरे प्रकार के वे पदार्थ है जो कि—पानी से अलग होकर जानेवाले हैं -परन्तु किसी कारण से उस में मिल जाते हैं।

काच के प्याले में पानी भर कर थोड़ी देर तक स्थिर रखने से यदि तलमांग में कुछ पदार्थ बैठ जाने तो समझ लेना चाहिये कि-इस में दूसरे प्रकार के पदार्थों की मिलावट है।

पानी में क्षार आदि पदार्थों का कितना परिमाण है इस बात को जाननेके लिये यह उपाय करना नाहिये कि—शोड़े से पानी को तौल कर एक पतीली में डालकर आग पर चढ़ा कर उस को जलाना नाहिये, पानी के जल जाने पर पतीली के पेंदे में जो क्षार आदि पदार्थ रह जावें उन को कांटे से तौल लेना नाहिये, नस ऐसा करने से मालूस हो जायगा कि इतने पानी में क्षार का माग इतना है, यदि एक म्यालन (One gallon) पानी में क्षार आदि पदार्थों का परिमाण ३० ग्रीन (30 Gram) तक हो तव तक तो वह पानी पीने के लायक गिना जाता है तथा ज्यो र क्षार का परिमाण कम हो त्यों र

पानी को विशेष अच्छा समझना चाहिये, परन्तु जिस पानी में क्षार का भाग विलक्षण न हो वह पानी निर्मेख होने पर भी पीने में स्वाद नहीं देता है ॥

क्षार से मिला हुआ पानी केवल पीने में ही मीठा लगता हो यह बात नहीं है किन्तु क्षार से मिला हुआ पानी पाचनशक्ति को मी उत्तेजित करता है, परन्तु यदि पानी में ऊपर लिखे परिमाण से मी अधिक क्षार का परिमाण हो तो वह पानी पीने में खारी लगता है और खारी पानी हानि करता है।

यद्यपि पानी को खच्छ अर्थात् निर्मंड करने के बहुत से उपाय हैं तथापि उन समों में से सहज उपाय वही है कि—जो जैन डोगों में प्रसिद्ध है अर्थात् पानी को उवाड कर पीना, इस की किया इस प्रकार से है कि—सेर मर पानी को किसी खच्छ कर्ड् के वर्षन में अथवा पतीली में मर कर अप्रि पर चढ़ा देना चाहियेतथा बीमी आंच से उसे मेंदाना चाहिये, जब पानी का चतुर्थोश जल जाने अर्थात् सेर मर का तीन पान रह जाने तब उस को किसी मिट्टी के वर्षन में शीतल कर तथा छान कर पीना चाहिये, इस प्रकार से यह जल अति खच्छ गुणकारी और हलका हो जाता है तथा इस युक्ति से (उवालकर) शुद्ध किया हुआ पानी चाहे किसी भी देश का क्यों न पिया जाने कभी हानि नहीं कर सकता है।

पानी में थोड़ीसी फिटकड़ी अथवा निर्मली के डालने से भी वह शुद्ध हो जाता है अर्थात् उसके (फिटकड़ी वा निर्मली के) डालने से पानी में मिले हुए सूक्ष्म रजःकण नीचे बैठ जाते हैं।

पानी को विना छाने कभी नहीं पीना चाहिये क्योंकि—विना छना हुआ पानी पीने से उस में मिले हुए अनेक सूक्ष्म पदार्थ पेट में जाकर बहुत हानि करते हैं तथा पानी के छानने के लिये भी मोटा और मज़बूत बुना हुआ कपड़ा छेना चाहिये क्योंकि बारीक कपड़े से छानने से पानी में मिले हुए सूक्ष्म पदार्थ वक्ष में न रह कर पानी में ही मिले रह जाते हैं और पेट में जाकर हानि करते हैं।

डाक्टरी किंथा से भी पानी की शुद्धि हो सकती है और वह (किया) यहहै कि-एक मटकी की पेंदी में बारीक छिद्र (छेद वा सुराख़) कर उस में आधे भाग तक रेत तथा कोथलों का भुरका (चूरा) भर देना चाहिये और उस मटकी के ऊपर एक दूसरी मटकी पानी से भर कर रखना चाहिये तथा उस पानीवाली मटकी की पेंदी में भी एक छिद्र करके उसमें डोरा पोकर (पिरो कर) छटकता हुआ रखना चाहिये, इस डोरे के द्वारा पानी टफ २ कर रेत तथा कोयलेवाली नीचे की मटकी में गिरेगा, इस (रेत-

१-इस जल को कल्पसूत्र में भी छद्ध लिखा है।।

२-इस किया को फिल्टरिक्षमा कहते हैं ॥

तथा कोयलेवाली) सटकी के नीचे एक तीसरी सटकी और भी रखना चाहिये, क्योंकि— वीच की सटकी की पेंदी में स्थित वारीक छिद्रों के द्वारा छन कर खच्छ पानी उसी (सब से नीचेकी तीसरी) सटकी में जमा होगा, बस वहीं पानी पीने के उपयोग में लाना चौहिये।

पानी का औषघ रूप में उपयोग ॥

जैसे खराव पानी बहुत से रोगों को उत्पन्न करता है उसी प्रकार पानी बहुत से रोगों को मिटाने में औषध का भी काम देता है, अशुद्ध पानी से उत्पन्न होनेवाले कुछ रोगों को पहि के बतला चुके है, वे रोग पीने के पानी को शुद्ध कर उपयोग में छानेसे रुक सकते हैं, इसविषय में इस बात का जानना बहुत आवश्यक है कि—पानी का औषधरूप में उपयोग उस के शीत और उष्ण गुण के द्वारा होता है, इसका अब संक्षेप से वर्णन करते हैं:—

ठंढे पानी के गुण ये है कि-ठंढा पानी रक्तसम्मक है, दाहशामक है और संकोच कारक होनेसे गिरते हुए खून को बंद कर देता है, गर्मी को शान्त करता है तथा नसों का संकोच कर उन में शक्ति पहुँचाता है, इस छिये यह नीचे छिखे ददों में बहुत उपयोगी है:—

१-रक्तस्त्राच (खून का गिरना)—जब नकसीर गिरती हो तब ताछ पर ठंढे पानी की बारा के डांछने से रक्त का गिरना बंद हो जाता है, यदि ऐसा करने से रुविर का गिरना बंद न हो तो नाक में ठंढे पानी के छीटे अथवा पित्रकारी के मारने से उसी बख्त बन्द हो जाता है।

धान से गिरते हुए रुधिर पर ठंढे पानी से मिगो कर वस्त्र की पट्टी बांध देने से रुधिर का गिरना एकदम नन्द हो जाता है, इस छिये तछवार आदि के घान में भीगी हुई पट्टी बांध देने से बहुत छाम होता है, अतः जब धान वा ज़ल्म से छोह गिरंता हो तो उसकी बंद करने के छिये उस (धान वा ज़ल्म) पर मीगी हुई पट्टी हर दम रलनी चौहिये।

१--रेड में यात्रा करते समय बहुत से लोगों ने स्टेशनों पर एक तिपाईपर रक्खे हुए तीन घटों को प्रायः देखा होगा नह वही किया है॥

२-बीत गुण के द्वारा जो पानी का मौजघरूप में उपयोग होता है-उसे शीतोपनार कहते हैं तथा उच्च गुण के द्वारा जो उस का मौपघरूम में उपयोग होता है उसे उच्चोपनार कहते हैं ॥

३-देसो । जब हाय में चाकू सादि कोई हथियार लगकाता है तब प्रायः पानी से मिगोकर वस्न की पद्मी बांध देते हैं, सो यह रीति बहुत उत्तम है ॥

४-कमी २ ऐसा भी होता है कि-चोट मादि के उमने पर खून नहीं निकलता है किन्तु खून के जमजाने से यह स्थान नीला पढ़ जाता है, ऐसी दशा में भी उस पर असका मीगा हुआ वस्त्र बांधे रखने से जमा हुआ खून निकर जाता है तथा पूर्व भिट जाता है ॥

५-यह भी स्मरण रखना चाहिये कि-मान के लगने पर ठडे पानी का उपयोग तब ही फायदे मन्द होता है जन कि वह बीध्र ही किया जाने, क्योंकि बहुत देर के बाद उसका उपयोग करने से फायदा होने का संमन कम रहता है।।

प्रसृति आदि के समय में जब छोहू का साव हो तब गर्माशय में ठंढा। पानी डालने से अथवा उस पर वर्फका दुकड़ा रखने से छोहू का साव वन्द हो जाता है, ऐसे समय में पेडू सांथल तथा उत्पत्त्यवयव (थोनि) पर भी ठढे पानी से भीगी हुई पट्टी के रखने से लाम होता है।

जब गर्मिणी स्त्री के लोह का साव होने लगे और गर्मपात होने के चिह्न माख्स पर्ड़े तो शीघ्रही पेट पेड़ तथा जननेन्द्रिय (योनि) पर ठंढे पानीसे मीगी हुई पट्टी रखना चाहिये, ऐसा करने से उस समय गर्मपात का होना रुक जाता है।

खियों के मासिक धर्म के समय में यदि परिमाण से (जितना होना चाहिये उस से) अधिक रक्तसाव हो तब भी ठंढे पानी का उपयोग करना चाहिये।

इसी प्रकार मुर्च्छो खगी और उन्माद (हिस्टीरिया) आदि रोगों में तथा मेस्मेरिजम से वेहोशी आदि की दशा में आंस तथा शिरआदि अंगों पर ठंढे पानी के छीटे देने से शीघ़ ही जाग्रदवस्था हो जाती है।।

रें संकोचन - ठंड पानी सायु का संकोच न करता है इस लिये जब हुषणों (अण्ड-कोशों) में अन्ति हिया उतर कर बहुत पीड़ा करें तब हुषणों पर ठंडे पानीसे भीगी हुई पट्टी अथवा बर्फ रखना चाहिये, क्यों कि ऐसा करने से अन्ति हियां संकुचित हो कर उपर को चढ़ जांबेंगी।

क्षियों के मदर नामक एक रोग हो जाता है जिस के होने से जननेन्द्रिय से सफेद छाल तथा मिश्रित रंगके पानी का तथा रक्त का लाव होता है, यह ठंढे पानी की पिच-कारी के लगाने से अथवा ठंढे पानी के छीटे देने से बन्द हो जाता है।

प्वं कभी २ स्त्रियों के ढील (फूँदा) और निर्वेख वाल कों के काँच निकल आती है वह भी ठंढे पानी के मक्षालन (धोने) से संकोच पाकर बैठ जाती है।

किन्हीं २ खियों के मूत्र मार्ग में बैठ ते उठ ते समय शब्द हुआ करता है तथा कुछ दर्द भी होता है उस में भी ठंढे पानी के छीटे देनेसे लग्म होता है।

एवं पुरुष के वीर्य साब में अथवा रात्रि में खप्त के द्वारा वीर्यका साव होने पर सोते समय पेड्र तथा कमर पर पानी के छीटे देने चाहियें ऐसा करने से वीर्य की गर्मी कम पड़ जाती है तथा वीर्यवाहिनी नाड़ियां (वीर्य को छे जानेवाछी नरेंसे) हढ़ हो कर संकुचित हो जाती है तथा ऐसा होने से वीर्यसाव की अधिकांश में रुकावट हो सकती है ॥

१-यह नियम की वात है कि-कार्दी बसुओं का सकोच और उष्णता बसुओं का फैलाब करती है ॥

३ दाहरामन ठंढा पानी शरीर के मीतर के और उत्पर के दाह को , शान्त करता है तथा तुर्वा (प्यास) को भी शान्त करता है।

ठंढे पानी से आंखों की गर्मी शीघ्र ही शान्त हो जाती है अर्थात यदि खून से आंख लाल हो जाने तो गुँह में ठंढा पानी मर छेना चाहिये और प्रतिदिन दो तीन वार ठंढे पानी के छींटे आंख पर देने चाहिये, ऐसा करने से शीघ्र ही लाम होगा।

सख्त ज्वर में भी माथे पर ठंढे पानी से भीगा हुआ कपड़ा रखने से फायदा होता है अर्थात ऐसा करने से ज्वर की गर्मी मगज़ में नहीं चढ़ने पाती है।

उष्ण पानी के गुण ये हैं कि नार्म पानी बादी और कफ के बहुत से रोगोंमें फायदा करता है, यह मायः देखा गया है कि नादी और कफजन्य रोग ही मायः प्राणियों को होते हैं इस लिये उष्ण पानी का उपयोग ओषिक्स में अनेक रीति से हो सकता है, जैसे नेसक, बफारा अथवा नस्य देना, पिचकारी लगाना, कुरला करना, पानी में बैठना और प्रक्षालन आदि, इन सब का संक्षेप से वर्णन करते है:—

१ सेक स्वारित पर होनेवाली गाठें गुमड़े और शोध (सूजन) आदि रोगों में प्रायः पुलटिस (आंटे आदि की रूपरी) बांबने की चाल है परन्तु गर्मे पानी का सेक पुलटिस से भी अधिक फायदेमन्द है, क्यों कि होते हुए दर्द में पानी का सेक दर्द को दबा देता है अर्थात् उस की प्रवलता को घटा कर उस की पीड़ा को कम कर देता है और खास कर गुमड़ोंपर तो गर्म पानी का सेक करना बहुत ही लाभदायक है, क्यों कि यह गुमड़ों को जल्दी पका कर फोड़ देता है जिस से पीड़ा शान्त हो जाती है।

पेट का दर्द, गुर्दे का वरम, शोथ, पसुली और छाती आदि का ग्रूल तथा लोहू का जमाद आदि दर्दों में भी उण्ण पानी का सेक बहुत फायदा करता है।

गर्भ पानी का सेक करने की यह रीति है कि—गर्भ पानी में फलालेन अथवा जन आदि का कोई गर्भ कपड़ा भिगो कर तथा निचोड़ कर दर्दपर बारंवार रखना चाहिये क्यों कि उस भीगे हुए कपड़े रखने से उस की आफ का सेक अच्छे मकार असर करता है, अथवा इस की दूसरी रीति यह मी है कि—सिगड़ी (वरोसी) पर पानी की पतीली रख कर उस के ऊपर चालनी को रखना .चाहिये और उस (चालनी) में गर्भ कपड़ा रख कर उस से आठी ढांक देनी चाहिये, ऐसा करने से पानी की आफ कपड़े में आ जाती है, उसी कपडे से सेक करना चाहिये, क्यों कि—उस कपड़े से किया हुआ सेक बहुत लामदायक होता है।

⁹⁻शीतल पानी के द्वारा तृपा के सिटने का अनुभव तो सवही को है।

२-ज्वर की गर्मा जब मगज़ पर चढ़ जाती है तो प्राणों की शीघ्र ही हाले हो जाती है ॥

योनिपाक, इन्द्रियपाक तथा वृषणकोथ (अण्डकोश की स्जन) पर गर्भ पानी का सेक करने से वह स्थान नरम पड़ जाता है तथा पीड़ा शान्त हो जाती है, एवं पेहुपर गुर्फ़-पानी का सेक करने से भूत्र खुलासा उतरता है ॥

र नस्य देना जब गरीर भारी हो अथवा कई रोगों में पसीना ठाकर शरीर हळका करने की आवश्यकता हो तो गर्म पानी की नस्य अथवा भाफ के छेने से शरी में पसीना आकर शरीर हळका हो जाता है, कई बार ऐसा भी होता है कि पीने की दवा-ओं से पसीना नहीं आता है उस समय यही भाफ पसीना छाती है अर्थात् इस भाफ के छेने से शीघ्र ही पसीना आ जाता है और ज्वर आदि रोग शान्त पढ़जाते है, इसी प्रकार शर्दी छगने के कारण मस्तक तथा छाती आदि में दर्द होने पर भी यह नस्य छेना छामदायक है।

३- पिचकारी लगाना-कठिन बद्ध कोष्ठ में तथा जीर्ण दर्द आदि में जब किसी दवा से भी दक्त न आता हो तब गर्भ पानी की पिचकारी लगाना चाहिये, क्यों कि ऐसा करने से दक्त आकर मलग्रुद्धि हो कर कोठा साफ हो जाता है, पिचकारी लगाने में बदि विशेष आवश्यकता हो तो गर्म पानी में एरंड का तेल आदि कोई दूसरा रेचक पदार्थ भी डाल कर पिचकारी लगाना चाहिये॥

रें क्रिर्ला करना मुख के छाले तथा दाँत की पीड़ा आदि मुख के रोगों में और दाँतों के निकल्वान के पीले होनेवाले दर्द के समय में गर्म पानी के कुरले करने से बहुत

फायदा होता है ॥

५—पानी में बैठना—हिचकी, धनुर्वात (मनुष्य को कमान के समान टेड़ा करने-वाला बातजन्य एक रोग) और मूत्रकृष्ट्य बादि रोगों में गर्म पानी में बैठने से बहुत ही फायदा होता है. गर्म पानी में बैठने की रीति यह है कि—एक बड़े बासन में सब्स (जितना सहन हो सके उतना) गर्म पानी मर कर उस में कमर तक बैठना चाहिये परन्तु यह किया मकान के मीतर होनी चाहिये, क्योंकि बाहर खुळी हवा में इस किया के करने से बहुत हानि होती है।

श्वियों के आर्चव सम्बंधी रोगों में अर्थात् ऋतुषर्भ का बन्द हो जाना अथवा पीड़ा होकर ऋतुषर्भ का आना आदि रोगोंमें घुटनों तक पैरों को गर्भ पानी में रखने से बहुत फायदा होता है ॥

यह चतुर्थ अध्याय का जलवर्णन नामक तृतीय प्रकरण समाप्त हुआ ॥

١

⁹⁻को लोग खुळे स्थान में गर्स पानी से झान करते हैं अथवा गर्स पानी में ठढा पानी मिला कर उस पानी से जान करते हैं इस से बहुत हानि होती है ॥

चतुर्थ प्रकरण-आहार वंर्णन् ॥

खुरौक की आवश्यकता॥

मनुष्य का शरीर एक चलते हुए यन्त्र के सहश है तथा एजिन का दृष्टान्त इस पर ठीक रीति से घटता है, देखो । जिस प्रकार एजिन के चलने के लिये लकड़ी हवा और पानी की आवश्यकता होती है उसी प्रकार से शरीररूपी पश्चिन के चलने के लिये खराक पानी और हवा की आवश्यकता है, जैसे एक्षिन को हांकनेवाला वैतनिक (वेतन पानेवाला) खाइवर होता है उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में कर्म बद्ध और खमाब शक्ति सिद्ध जीव उस (शरीर) का चलानेवाला है, जैसे-एखिन की निगड़ी हुई कलों को कारीगर सुधारते है उसी मकार वैद्य और डाक्टर शरीर की विगड़ी हुई कलों के सुधारने-बाले हैं, जैसे पुलिन अपनी किया में प्रवृत्त रहता है अर्थात लकड़ी हवा और पानी को पाकर उन के सार माग का अहण कर ठेता है और सार माग का अहण कर धुआँ तथा राख आदि निकम्मे पदार्थों को बाहर फेंक देता है उसी प्रकार यह शरीर भी अपनी किया में प्रवृत्त रहकर चमडी, फेफडा, मलाशय और मुत्राशय आदि के द्वारा पसीना मल तथा पेशाव आदि निरर्थक पदार्थों को बाहर फेंक देता है, हां एजिन से इतनी विशेषता शरीर में अवस्य है कि-एंक्रिन तो जिन लकड़ी हवा और पानी का प्रहण कर तथा उन के सार माग का प्रहण कर चलता है वे लकड़ी आदि पदार्थ एक्षिन से प्रथक्छप में ही रहते हैं अर्थात ने एक्षिनरूप नहीं बन जाते हैं परन्तु यह शरीर जिन ख़राक आदि पदार्थी (खुराक हवा और पानी) को महण करता है उन को वह अपने ख़रूप में कर छेता है अर्थात ने ख़राक आदि पदार्थ क्षय को प्राप्त होने से पहिले ही शरीर के संग मिल जाते हैं अर्थात उन वस्तुओं का पोषणकारक भाग क्षरीर में मिल जाता है और निरर्थेक भाग ऊपर लिखे मार्गों से बाहर निकल जाता है, यह भी समझ लेना आवज्यक है कि-मल मूत्र तथा पसीने के रूप में जो पदार्थ शरीर में से जाता है वह शरीर का क्षय कहलाता है और यह इमेशा होता रहता है, इस लिये इस क्षय का बदला खुराक हवा और पानी है अर्थात ख़राफ आदि से उस क्षय की पूर्ति होती है, देखो । पाणी ज्यों २ महनत का काम अधिक करता है त्यों २ पसीने आदि के द्वारा शरीर का अधिक क्षय होता है और ज्यों र अधिक क्षय होगा त्यों र उस को पोपणकारक पदार्थी की अविक आवश्यकता होगी, देखो ! चलने, बोलने और बांचने आदि कार्यों में तथा आंख

२-खराक में खाने और पीने के पदार्थों का समावेश होता है।।

१-इसलिये बाहर की गति की उस को आवश्यकता नहीं है ॥

मटकाने आदि छोटी से छोटी कियाओंतक में भी शरीर के परमाण प्रतिसमय अरते हैं (खर्च होते हैं) तथा उन के स्थान में नये परमाण आते जाते हैं, इस विपय में विद्वानों ने गणना कर यह भी निश्चय किया है कि-प्रति सप्ताब्दी में (सात २ वर्षों में) शरीर का परा ढांचा नया ही तैयार होता है अर्थात पूर्व समय में (सात वर्ष पहिले) शरीर में जों हाड मांस और खन आदि पदार्थ थे वे सब झरते २ झर जाते है और उन के स्थान में क्रम २ से आनेवाले नथे २ परमाणुओं से शरीर का वह माग नया ही वन जाता है, सांप को अपनी केंचुड़ी गिराते हुए तो सब मनुष्यों ने प्रायः देखा ही होगा परन्त्र वह तो बहुत समय के पश्चात् अपनी केंचुळी छोड़ता है परन्तु मनुष्य आदि सर्व जीवगण तो मितसमय अपनी २ केंचुळी गिराते हैं और नई धारण करते हैं (मितसमय पुराने पर-माणुओं छोड़ते जाते है और नये परमाणुओं का शहण करते जाते हैं), इस से सिद्ध हुआ कि-शरीर में से प्रतिसमय एक बड़ा परमाणुसमूह नाश की प्राप्त होता जाता है तथा उसके खान में नया गरती होता जाता है अर्थात प्रतिसमय शरीर के छिद्र मठाशय मुत्राक्षय और श्वास आदि के द्वारा शरीर का प्राचीन भाग नप्र होकर नवीन भाग बनता जाता है. देखी ! हम छोग इस बात को प्रत्यक्ष भी देखते और अनुमव करतेहै कि-प्रा-चीन नख तथा बाल गिरते जाते हैं और उन के स्थान में दूसरे आते जाते हैं, इस पर यदि कोई यह शंका करे कि-नख और बालों के समान शरीर के दसरे परमाण गिरते हुए तथा उन के स्थानमें दूसरे आते हुए क्यों नहीं दीखते हैं ? तो इसका उत्तर यह है कि-शरीर में से जो लाखीं रजःकण उड़ते है और उन के स्थान में दूसरे आते है वे अत्यन्त सूक्ष्म है इसिक्टिये वे दृष्टिगत नहीं हो सकते है, हां अनुमान के द्वारा वे अवश्य जाने जा सकते है और वह अनुमान यही है कि-प्रतिसमय में नष्ट होनेवाले प्राचीन परमाणुओं के स्थान में यद्धि नवीन परमाणु भरती न होते तो माणी सूख कर शीघ ही मर जाता, देलो ! जब क्षर्य आदि रोगों में श्वरीर का विशेष माग नष्ट होता है तथा उस के स्थान में बहुत ही थीड़ा भाग बनता है तब बोडे समय के पश्चात मनुष्य मर ही जाते हैं ।

देखों ! उत्पत्ति स्थिति श्रीर नाश का होना सृष्टि का सामाविक नियम ही है उसी नियम का कम अपने शरीर में भी सदा होता रहता है, इस (नियम) को घ्यान में छाने से प्रवाहद्वारा सृष्टि की नित्यानित्यता मी समझ में आ जाती है, अस्त ।

से प्रवाहद्वारा सृष्टि की नित्वानित्यता भी समझ में आ जाती है, अस्तु । उक्त नियम के अनुसार शरीर के प्राचीन हुए हुए माग जब बृद्ध मनुष्य के समान अपना काम नहीं कर सकते हैं तब वे नष्ट हो जाते है और उन के खान में नये पर्याय लगजाते है यही कुदरती नियम है और इसी नियम को अमल में लाने के लिये सामाविक

१-इसी लिये जैनसूत्रकार बारीर को पुर्गल कहते हैं।

नियम से ही क्षुधावेदनी कर्म अर्थात् मूख नामक दूत है जो कि समयानुसार शरीर के मानों की अपूर्णता को पूरी करने के लिये अन और पानी की याचना करता है, यदि उस की बात पर घ्यान न देकर उसकी इस -याचना का अनादर कर दिया जाने अथवा याच- नाकी पूर्ति में विलम्ब किया जाने तो उस का सहायक अशात नामक वेदनी कर्म अपना बल दिखा कर उस माणी के नाश को अथवा अधिक परमाणुओं के विखेरने को कर देता है, जिसको कोई नहीं रोक सकता है, वीमारी का हो जाना उस वेदनी कर्म का मत्यक्ष प्रमाण है, क्योंकि शरीर के जितने रजःकणों की पूर्ति न होने से व्याधि हो जाती है, जैसे—दीपक के पोषण के लिये जितने तेल की आवश्यकता है यदि उतना तेल न डाला जाने तो दीपक बुझ जाता है, इसी प्रकार शरीर के परमाणु मागों के नाश के द्वारा कमी को पूरा करने के लिये कुछ थाहरी तत्नों की आवश्यकता होती है, इन्हीं तत्नों का नाम पोषण मोजन अथवा खुराक है।

शरीर के पोषण के छिये खुराक की बहुत ही आवश्यकता है परन्तु यदि वहीं खुराक मात्रा से अधिक अथया प्रकृति के विरुद्ध छी जावे तो रोगों को उत्पन्न करनेवाछी हो जाती है, किन्तु यह भी सरण रखना चाहिये कि—खुराक की मात्रा आदि का नियम सब के छिये एक नहीं हो सकता है, क्योंकि—खुराक की मात्रा आदि शरीर के कत, बन्धान, प्रकृति और व्यायाम अथवा अस आदि पर निर्भर है, इस छिये यद्यपि प्रत्येक मनुष्य अपनी खुराक की मात्रा आदि का निश्चय और नियम जैसा खुद कर सकता है बैसा निश्चय और नियम उस के छिये दूसरा कदापि नहीं कर सकता है तथापि अज्ञान और साधारण मनुष्यों को वारंबार दूसरे चतुर मनुष्यों की इस विषय में भी सछाह छेने की आवश्यकता पड़ती है, हां वेशक उचित तो यही है कि—प्रत्येक मनुष्य अपनी खुराक आदि का खुद ही निश्चय और नियम करे, क्योंकि—सर्व साधारण के छिये यही नियम छामदायक है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी नियमित खुराक का कोई परिमाण अर्थात् मात्रा आदि का हिसाव स्वयमेव निर्धारितकर उसीके अनुसार खुराक छेने का अभ्यास रक्षे।

शरीर के पोषणके लिये प्रतिदिन कम से कम ४० रुपये यर खुराक की आवश्यकता है और अधिक से अधिक ८० से १०० रुपये भर तक समझना चौहिये।

यह भी सरण रहे कि—यह कुछ नियम नहीं है कि—कम खुराक खानेवाले लोग शरीर से रोगी और दुवेल रहते हों और अधिक खुराक खानेवाले नीरोग रहते हों, क्योंकि—यह तो हम सब लोग प्रत्यक्ष ही देखते हैं कि—बहुत से गृहस्य लोग योड़ा खाने-

१-इसविषय में वैद्य तथा डाक्टर चतुर मनुष्य कहे जा सकते हैं ॥

२-परन्तु मधुरा के चीवे, पहछवान् तथा कई एक दूसरे सी परिमाणरहित छराक को खानेवाले लोगों के लिये यह नियम नहीं हो सकता है, क्योंकि-उन की खराक क्षनियमित होती है ॥

वाले है और वे नीरोग देखे जाते है तथा बहुत से अधिक ख़ुराक खानेवाले हैं और वे रोगी देखे जाते है, इसलिये इस का सामान्य नियम यही है कि—श्रीर के कद और श्रम के परिमाण में ख़ुराक का भी परिमाण होना चाहिये, देखो । बढ़े एक्षिन में बढ़ा बायलर (Bailer) होता है और वह विशेष कोयला खाता है तथा छोटे एक्षिन में छोटा वायलर लर होता है और वह कम कोयला लेता है, परन्तु चलते दोनों ही है और दोनों ही अपना र काम कर सकते हैं, सिर्फ शक्ति (Power) न्यूनािक होती है, बस यही नियम मनुष्यों में भी घट सकता है।

खुराक की मात्रा प्रकृतिपर भी निर्भर होती है, देखो । समान अवस्था, समान वांधे (शरीर का ढांचा) तथा समान कद के भी दो मनुष्यों में से एक की प्रकृति जन्म से कफ की होने से वह अधिक खुराक नहीं खा सकता है और दूसरे की प्रकृति पित्त की होने से वह अधिक खासकता है।

प्रायः देसा जाता है कि—अस्पाहारी छोग अधिकाहारी की निन्दा करते हैं और अधिकाहारी भी अस्पाहारी की हँसी किया करते हैं परन्तु यह (ऐसा करना) दोनों की भूछ है, क्योंकि—इड़ और कदावर (बड़े कदवाछा) शरीर, भवछ जठरामि तथा पुष्कल आहार, ये सब पूर्व किये हुए मुक्कत तथा पुण्य के चिह्न है और छोटा शरीर, मन्द अभि तथा नाजुक (अस्प) आहार, ये सब पूर्व किये हुए अपकृत्य तथा पाप के चिह्न हैं, अस्पाहारी नृाजुक छोग अधिकाहारी की निन्दा तो चाहै भले ही करें परन्तु थोड़ा खाना और नाजुक वनना यह कुछ मरदुमी (पुरुषत्व) का काम नहीं है, अब दूसरी तरफ देसो ! यदि अधिकाहारी छोग अपना शरीर वटा कर अमरहित होकर हाथ पर हाथ रक्से बैठे रहें तो बेशक वे छोग निन्दा के ही पात्र हो सकते है !

श्रीर तथा मनोमाग के प्राचीन परमाणुओं की हानि होने पर जो ख़ुराक छेने की इच्छा होती है उसे क्षुधा (मूख) कहते हैं, इस छिये मूख के छगने पर उसी के परिमाण से प्रत्येक मनुष्य को ख़ुराक छेनी चाहिये, क्योंकि—सूख से कम ख़ुराक छेने से यथायोग्य पोषण नहीं मिळता है और मूख से अधिक ख़ुराक छेने से उस का यथायोग्य पाचन नहीं होता है और ऐसा होने से उक्त दोनों कारणों से शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते है ॥

९-देखो । समान कदवार्ट मी दो पुरुषों में से अम करनेवाका अधिक खुराक खा सकता है ॥

२-इस वर्ग में आछसी तथा मिक्षुकों का भी समावेश हो सकता है, क्योंकि-मांग कर खाना उन्हीं को शोभा वेता है, जो संसार की ममता का खाग कर परमेश्वर की मिक्क में ही खीन हैं (इस लिये साधु तथा परमहंस आदि आत्माधियों नो मीख मांगनेवाला नहीं समझना चाहियें) किन्तु जो संसार के मोहजाल में फैंसे हुए है तथा शरीर से हृष्ट पुष्ट है खीर धारिश्रम न हो सकने के कारण भीख मांग कर खाते हैं उन को भीख मांगकर खाना शोभा नहीं वेता है।

खुराक का वर्ग ॥

वैनस्त्रों में लिला है कि साह के प्रवाह के प्रवाह के प्रवाह ते साथ प्रवापित अर्थम जगदीश्वर ने शरीर के लिये हितकारी वनस्पित की खुराक चलाई, इस लिये सब से प्रथम वनस्पित की खुराक हुई, इस के प्रश्चात समय पर (खावश्यकता के समय) अन्नादि की खुराक न मिलने से मनुज्यों ने वृसरी खुराक मांस की शुरू की, अब साढ़े अठारह हजार वर्ष वीतने के बाद भारतवर्ष की समस्त प्रजा केवल मांसाहार से ही निर्वाह करेगी, असि मसी और कृषि, इन तीनों कर्मों का प्रलय हो जायगा और उस समय वनस्पित नहीं मिलेगी, ऐसा अननतों बार हो चुका और होता रहेगा, परन्तु मनुज्य को सिद्धचार और बुद्धि प्राप्त हुई है इसलिये उसको चाहिये कि हितकारी खुराक को लावे और अहितकारी खुराक का लावे और अहितकारी खुराक का लावे कीर अहितकारी खुराक का लावे कीर अवहितकारी खुराक का लावे कीर अवहितकारी खुराक का लावे कीर अवहितकारी खुराक का लावे की साह करे अर्थात् सदा सुखदायक सद्यवहार करे।

विचार कर देखने से ज्ञात होता है कि-जपर कही हुई दोनों खुराकों में से प्रजा-छोगों में मांसकी ख़राक का अधिक प्रचार है अर्थात मांसाहारियों का समूह अधिक है. परन्त यदि इन दोनों प्रकारों के समूहों का सूक्ष्म दृष्टि से विचार कर मांसाहारी जंगली लोगों को निकाल दिया जावे तो शेष अवरी हुई प्रजा के समुदाय में बनस्पति की ख़राक से निर्वाह करनेवाले लोगों की संख्या अधिक माख्य पढ़ती है. क्योंकि-जो वेजेटेरियन हैं (मांस न खानेनाले है) वे तो सिर्फ वनस्पति से डी जीते हैं और जो मांसाहारी हैं उनकी ख़राक में भी अधिक भाग वनस्पति का ही है, इस से यह बात सिद्ध है कि-वन-स्पति के आहार से बहुत छोग जी रहे है, यदापि ऊपर लिखे अनुसार मनुष्यों का निर्वाह तो उक्त दोनों खराकों से हो सकता है तथापि विचार कर देखने से तथा मनुष्य शरीर की रचना की ओर ध्यान देने से यह बात विदित होती है कि-मनुष्य के खाने योग्य पौष्टिक तथा हितकारी ख़राक तो वनस्पति की ही है, क्योंकि जो उपयोगी तत्व वनस्पति में रहे हुए हैं उन में से बहुत ही थोड़े तत्व मांस में है, यद्यपि मांसाहारी पश अनेक प्रकार के मांस के खाने से ही जीवित रहते है तथापि यह नहीं समझ छेना चाहिये कि-उन २ (उन अनेक प्रकार के) मांसों में भी उन्हीं के उपयोगी तत्व स्थित है, किन्त उन २ मांसों में भी मुख्यतया वनस्पति के ही उपयोगी तत्व स्थित है, इसीलिये मांसा-हार से भी उन का निर्वाह होता है, क्योंकि-दनस्पति के ही तत्व नीवन के लिये उप-योगी है, देखों । ग्रुज्यतया वनस्पति के खानेवाले वकरी, मेड़, गाय, ग्रुव्यर, हरिण और भैंसे आदि जो पशु हैं वे केवल मांस लानेवाले सिंह चीता और शृगाल आदि का मांस लाकर कभी जीवित नहीं रह सकते है, इस से सिद्ध है कि सर्व प्रजा के लिये केवल

वनस्पति के ही आहार की आवश्यकता है, इस के सिवाय नीचे लिखे हेतुओं से भी मनुष्यों को वनस्पति का ही आहार उपयोग में लाना चाहिये:—

- १—इस भारतवर्ष में अनेक प्रकार के अज फड फूड और वनस्पित की अत्यन्त ही बहुता-यत है, अत एव उपज के लिये इस धूमि के समान कोई भी दूसरी भूमि नहीं है, इस लिये यहां के निवासियों को हिंसा से सिद्ध होनेवाड़े मांस आदि अमध्य पदार्थ नहीं खाने चाहियें, जब कि उन के लिये खतः सिद्ध, ग्रुद्ध, पुष्टिकारक, सुस्वाद् और परम उपयोगी वनस्पित की खुराक मिठ सर्कती है ॥
- २—मनुष्य जाति का शरीर समाव से ही मांसाहार के योग्य नहीं है, इसविषय का निर्णय जैन, वैद्यक और आयुर्जानार्णव आदि अन्यों में अच्छे प्रकार से कर दिया गया है, यद्यपि डाक्टर लोगों में परस्पर इस विषय में बहुत ही विवाद है अर्थात् कोई लोग मांसाहार को और कोई लोग वनस्पति के आहार को उत्तम बतलाते हैं तथापि दीर्घ हिष्टे से वेखने पर और एतहेश के मनुष्यों के अन्यास, प्रकृति और जल वायु आदि का विचार करने पर यही निश्चय होता है कि—इस आर्यावर्च के लोगों की होजरी (अध्याशय) मांस को बिलकुल नहीं पचा सकती है और इस बात का अनुमव आदि के द्वारा मी खूब निश्चय हो चुका है ॥
- ३—जन्म से अभ्यास पढ़ जाने के कारण इस देश के निवासी भी मांसाहारी लोग मांसाहार करते हैं और कावुल से आगे श्रीतकिटिबंध के वहुत से लोग मांसाहार यथारुचि
 करते हैं यह उन के हमेशा के अभ्यास और शरीर के भीतर की गर्मी के कारण ऐसी
 द्यारहित खुराक को चाहे मले ही उन की होजरी धारण करती होगी परन्तु हमारे
 देश का थोड़ा सा भाग उष्ण कटिबंध में है बाकी का सब माग समशीतोष्ण कटिबंध
 में है, इस लिये उक्त भाग के निवासियों की होजरी विलक्षल ही मांस के पचाने की
 योग्य नहीं है, हां अभ्यास खाल कर उस का हज़म कर जाना दूसरी बात है, यों तो
 अभ्यास से लोग सोमल (संखिया) और अफीम की भी मात्रा को घीरे २ बढ़ा लेते
 हैं परन्तु आखिर को उन की दशा भी विगड़ती है और इस का अनुमव सब को
 अस्थि ही है की

४-मांसाहारी की मी बनस्पति के आहार के विना निर्वाह नहीं हो सकता है और वनस्पति का शाहार करनेवाओं के छिये मांसाहार के विना कोई भी अड़चळ नहीं आ सकती है, यह स्माध्य भी वनस्पति के आहार की ही पृष्टि करता है।

⁹⁻जैसा कि नीतिशाक्ष में लिखा है कि "खच्छन्दननचार्तन, साकेनापि अपूर्वते ॥ अस्य दरमोदरसार्थे, कः कुर्याद पातकं महत् ॥ १ ॥" अर्थाद खुद वखुद वन में पैदा हुए आकादि से मी यह (पेट) मरा जा सकता है, फिर इस पापी पेट के किये कौन मनुष्य बना पाप (हिसाक्ष्प) करे ॥ १ ॥

- ५-वनस्पति के आहार से श्वरीर को जितनी हानि पहुँचने का सम्भव है उस की अपेक्षा मांसाहार से विशेष हानि पहुँचने का सम्भव है, क्योंकि-वनस्पति की अपेक्षा मांस जल्दी विगड़ जाता है, इस के सिवाय यह बात मी है कि वनस्पति की अच्छाई और खराबी की परीक्षा आँखों से देखने से ही शीघ हो जाती है परन्तु मांस रोगी जानवर का है अथवा नीरोग का है इस की परीक्षा जाँच करने से मी नहीं होसकती है, फिर देखो । वनस्पति के अजीर्ण से जितनी हानि होती है उस की अपेक्षा मांस के अजीर्ण से बहुत बड़ी हानि और खराबी होती है, इस के सिवाय सृष्टि के इस अनादि नियम को भी ध्यान में रखना चाहिये कि जिस में थोड़ा मय हो वही वस्तु विशेष पसन्द के योग्य होती है ॥
- ६—नित्य मांसका आहार करनेवाले मांसाहारी लोगों को भी बहुत से रोगों में मांस की खुराक का त्याग करने और वनस्पति की खुराक का आश्रय लेने की आवश्यकता होती है, क्योंकि वनस्पति की खुराक विशेष पथ्य अर्थात् मानव प्रकृति के अनुकूल है, इसीलिये बहुत से डाक्टर लोग भी वनस्पति के आहार की ही प्रशंसा करते और उसी का खाना पसन्द करते हैं।
- 9-जो छोग वनस्पित की अपेक्षा मांस में अधिक शक्ति का होना वतलाते हैं यह उन की बड़ी भारी मूंछ है और इस में प्रमाण तथा दृष्टान्त यही है कि—देलो । मांसाहारी सिंह, चीता, श्रुगाछ, कौआ और चीछ आदि जानवर महाआठसी, वेकाम, क्रूप्रकृति, प्रजापाती और महाशठ आदि होते हैं, इसके विरुद्ध वनस्पितिक खानेवाछे—पृथिवी के जीतने में समर्थ और महा शरू वीर घोड़े, प्रजा के जीवन के मुख्य आधार वैछ, महाशक्तिमान हाथी (कि जिस जाति की स्त्री जाति होकर भी सिखछाई हुई हथिनी नाहर को छोहे के छहू से मार डाछती है) और श्रीष्ठगतिवाछे हरिण आदि कैसे २ जन्तु हैं, इसी से विचार छेना चाहिये कि वनस्पित में वास जैसी हलकी से हलकी ख़राक खानेवाछे कैसे २ उद्यमी, साहसी, वल्यारी और सरल बुद्धिवाछे जीव होते हैं, इस से बुद्धिमान समझ छेंगे कि मांस में कितनी ताकत है ॥
- ८—मनुष्य के रुघिर में एक हजार आगों में केवल तीन माग फीब्रिन नामक तत्व के होने की आवश्यकता है, उस तत्व का ठीक परिमाण वनस्पति की खुराक से बरावर बना रहता है परन्तु मांस मे फीब्रिन का तत्व विशेष है इस लिये मांसाहारियों के रुघिर में फीब्रिन का परिमाण ऊपर लिखी मात्रा से अधिक बढ़ कर अनेक समयों में कई रोगों का कारण हो जाता है ॥

१-देखो । वैंयकप्रन्यों ने ही ्लिया है कि-"मांसादष्टगुणं घृतम्" अर्थात् मांस की अपेक्षा घृत आठ गुना वरुदायक है ॥

९—डाक्टर पार्क नामक एक यूरोपियन विद्वान् प्राणिजन्य और वनस्पतिजन्य- आहार के विषय में लिख कर यह स्चित करता है कि—उत्तम मांस में उष्णता और उत्साह को उत्पन्न करनेवाला तत्त्व १०० मार्गों में २ मार्ग है और गेहूँ चाँवल तथा फिल्यों के अन्न में यह तत्व १०० मार्गों में २५ से लेकर ८० मार्गतक होता है, इसी प्रकार एडमिस नामक एक यूरोपियन विद्वान् वेल्य आफ नेशन्स (Wealth of nations.) अर्थात् "प्रजाओं की दौलत" नामक अन्य में लिखता है कि—मांस के विना खाये भी केवल अन्न, घी, दूष और दूसरी वनस्पतियों से शारीरिक और मानसिक शक्ति, पृष्टि और बहुत ही अच्छी तनदुरुती रह सकती है; इसी प्रकार अन्य मी बहुत से विद्वान् डाक्टर लोगों ने भी वनस्पति की ही खुराक को विशेष पसंद किया है ॥

१०-वैद्यक शास्त्र के विचार घर्म शास्त्रों से बहुत ही सम्बंध रखते हैं और धर्म शास्त्रों का सारांश विचार कर देखने से यही विदित होता है कि—मनुष्य को मांस कदाि नहीं खाना चािहये अर्थात् घर्मशास्त्रों में मांस के खाने की सखत मनाई की गैई है, क्योंकि "अिंहसा परमो धर्मः" यह सब ही धर्मशास्त्रों का सम्मत है अर्थात् आर्य वेद, स्पृति, पुराण आदि शास्त्रों का तो क्या कहना है किन्द्र बाइविल कुरान और अवस्ता आदि अन्यों का मी यही सिद्धान्त है कि—मांस कभी नहीं खाना चौहिये॥

, जीवन के लिये आवश्यक खुराक ॥[†]

जीवन को कायम रखने के लिये जिस की निरन्तर आवश्यकता होती है उस खुराक के मुख्य पांच तत्व है—पैष्टिक (पुष्टिकारक), चरबीवाला, आटे के सत्ववालों, क्षार और पानी, देखी। अपने शरीरमें जितने प्रकार के तत्व हैं उन सब का पोषण खुराक में स्थित इन्हीं पांचों तत्वों से होता है, इस लिये वही खुराक नित्य लेनी चाहिये कि—जिस में ये पांचों प्रकार के तत्व स्थित हों, अब इन का सक्षेप से क्रम से कुछ वर्णन किया जाता है:—

⁹⁻देखो । जैन सूत्रों में जगह २ मांस भक्षण का अखन्त निषेध किया है ॥

२--यद्यपि किन्हीं २ अन्यों में अद्यत्ति भी भानी है तथापि निवृत्ति में अधिक फल लिखा है परन्तु जैन अन्यों में तो हिंसा का अखन्त निषेध ही किया है तथा दथा को धर्म का मूल कहा है, इसीलिये संसार में दया की नारीकी जैनधर्म की विख्यात है, देखों। किसी ने कहा है कि--दोहा--शिवमकी अरु जिन दया, भुसलमीन व्यक्तिर्म तीन वात इकडी करो, उतरे बेडा पार ॥ १॥ अर्थ इसका सरलही है ॥

३-इस का कामेजी में नाइट्रोजन बाला कहते है ॥

४-इस को अप्रेजी में स्टावीं कहते हैं ॥

५-शेष छोटे .२ तत्वों का समावेश इन्हीं पांच प्रकार के तत्वों में हो जाता है ॥

पी कि तम्ब के शारिर के पोषण तथा बृद्धि के लिये पौष्टिक खुराक का लेना आव-रयक है, बहुत से अलों में पौष्टिक तन्त्र न्यूनाधिक परिमाण में रहता है अर्थात् किन्हीं में कम और किन्हीं में विशेष रहता है, इस विषयमें विद्वानों ने यह निश्चय किया है कि— खुराक सम्बंधी नित्य के उपयोगी पदार्थों में से घी, मक्खन, शकर और साबूदाना, इन चार पदार्थों में पौष्टिक तत्व विलकुल नहीं है, क्योंकि इनमें से पहिले दो पदार्थों में मुख्य माग चरवीका है और दूसरे दोनों में मुख्य माग आटे के सत्व का है, तथा ये नारों पदार्थ शरीर की गर्मी को कायम रखने का काम करते हैं॥

चर्बीवाले तस्व कि वर्षीवाले तत्वों से ग्रुक्त पदार्थी में ग्रुक्य पदार्थ-धी, मक्खन और तेल आदि हैं तथा इन के सिवाय अजों में भी यह तत्व न्यूनाधिक रहता है, परन्तु सब अजों में से गेहूँ में इस तत्व का भाग सब से कम है अर्थात् १०० मागों में केवल एक भाग इस तत्व का है तथा मकई (मका वा मका) में इस तत्व का माग सब अनों की अपेक्षा अधिक है अर्थात् १०० मागों में ६ माग इस तत्व के हैं, शीत ऋदुमें चरबीवाले पदार्थों का लाना वहुत लामदायक होता है ॥

'आरे के सत्ववार तत्व आरे के सत्ववार तत्वों से गुरूप पदार्थ शंकर; लांड, गुड़, चाँवल और दूसरे धान्य मी है, शरीर में श्वासीच्छ्नास की जो किया होती है वह कार्वन नामक एक पदार्थ से होती है और वह (कार्वन) इस तत्व-वार्छ तथा चरवीवार्छ तत्वों से गुक्त ख़ुराक से उत्पन्न होता है, गर्भ देशों में तथा गर्मी की ऋतु में इस तत्ववार्छ पदार्थ विशेष अनुकूळ आते हैं॥

क्षार—शरीर का प्रत्येक माग क्षार के मेळ से बना हुआ है, दूधमें तथा छोहू में भी क्षार का भाग है, यह क्षार भी ख़राक सम्बन्धी सब पदार्थों में न्यूनाधिक परिमाण में स्थित है तथा ख़ुराक के द्वारा उदर (पेट) में आकर शरीर के सब मागों को बनाता और पुष्ट रखता है, यद्यपि शरीर के सब मागों की रचना में क्षार उपयोगी है तथापि हिड़ुयों का बन्धान तो अख्यतया क्षार का ही है, इसीळिये हाड़ों के पोषण के ळिये क्षार की अत्यन्त आवश्यकता है अशीत काफी क्षार के न मिळने से सब हाड़ निर्वेठ और खुले से होकर दूरजानेवाले जैसे हो जाते है, बेलो ! छोटे वालकों का पोषण अकेले दूध से होता है उस का हेतु यही है कि—दूधमें सामाविक नियमानुसार समावसिद्ध क्षार मीजूद है, शरीर के सब मागों की रचना और उन की पुष्टि क्षार से ही होती है इसळिये शरीर के लिये जितने क्षार की आवश्यकता है उतना क्षार खुराक के साथ अवश्य लेना चाहिये, क्या पाठकगण नही जानते है कि—शाक में छुत, मिर्च, धनिया, जीरा और हींग आदि सब

१-सक्त शब्द से वहां मिश्री का ग्रहण करना चाहिये।।

मसाले अच्छी तरह से डाले जावें परन्तु क्षार (नमक) न डाला जावे तो वह शाक खाने के लायक नहीं बनता है ॥

पानी शरीर के पोषण के लिये पानी के समान प्रवाही पदार्थ की भी बहुत ही आवश्यकता है, क्योंकि जिस लोहू के नियमित फिरने पर जीवन का आधार है वह लोहू प्रवाही पानी से ही फिर सकता है, यदि शरीर में प्रवाही भाग कम हो जावे तो लोहू गाड़ा हो जावे और उस का फिरना बन्द होजावे, शरीर को यह प्रवाही तत्व जैसे पानी में से मिलता है उसी प्रकार दूसरे खाने के प्रत्येक पदार्थ में से भी मिल सकता है, देखी। हम सब लोग गेहूँ बाजरी और चाँवल आदि खाते हैं उन में भी पानी का भाग है, एवं शाक तरकारी और फलादि से भी पानी का अधिक भाग शरीर को मास होता है।

इस बात का जान छेना भी बहुत आवश्यक है कि—इन पांच प्रकार के तत्वों में से प्रत्येक का कितना २ परिमाण शरीर के पोषण के छिवे नित्य आवश्यक है, यद्यपि शरीर की रचना, अभ्यास, प्रकृति, देश के जल बायु और अवस्था के अनुसार आवश्यक तत्वों से युक्त न्यूनाधिक खुराक ली जाती है तथापि सामान्यत्या प्रतिदिन कीन २ से तत्वों से युक्त कितनी खुराक लेनी चाहिये उसका परिमाण नीचे लिखा जाता है:—

संख्या	प्रत्येक तत्ववाला पदार्थ ॥	परिमाण ॥ १० रुपयेमर ॥		
8	पौष्टिक तत्क्वाला खुराक ॥			
२	चरबीवाके तत्वसे युक्त खुराक ॥	٠, ,,		
Ą	आटेके सत्ववाळे तत्व से युक्त खुराक ॥	३० ,, ,,		
8	क्षार ॥	8 ,, ,,		
لع	पानी ॥	1 840 ,, ,,		

कपर कह चुके हैं कि—पानी अर्थात् भनाही तत्व चरवीवाछे तत्वों से युक्त पदार्थों के सिवाय प्रत्येक जाति के पदार्थ में मौजूद है, इस कोष्ठ में प्रथम चार प्रकार की खुराक का जो परिमाण िखा है कस में भवाही तत्व शामिछ वहीं है अर्थात् प्रवाही तत्व को छोड़ कर उक्त परिमाण िखा गया है, यदि इन चार प्रकार की खुराकों में उनके भवाही तत्व को भी शामिछ कर िखा जावे तो छगमग द्विगुण (दुगुणा) परिमाण हो जावेगा, तात्पर्य यह है कि कपर ५२ रुपये मर का जो खुराक का मध्यम परिमाण छिखा है उस के साथ पानी के तत्व को शामिछ करने से प्रत्येक मनुष्य के छिये १०० रुपये मर का खुराक का परिमाण आवश्यक होता है, इस परिमाण में १५० रुपये मर पानी का परिमाण प्रथक् सम-झना चाहिये ॥

बतुर्व अध्याय ||

खुराक के मुख्य २ पदार्थों में उक्त पांचों तत्वों के परिमाण का वीधक कोष्टक ॥

संख्या	खुराका का पदार्थ ॥	पौष्टिक सत्त्व ॥	चरबीषाला सत्त्व ॥	आटेके सत्त्व वाळा तत्त्व॥	क्षारका तत्त्व॥	पानी वा प्रवाही तत्त्व ॥
8	चाँवरू	bq.	III	८३।	n	१०
2	साबूदाना	0	. 0	८२	•	१८
3	गेहुँ	8811	' १	६९	211	\$8
8	जुसार	१२॥	8	90	211	१२
Lq.	बावरा	१०	8//	७१।	રા	११॥
8	चना	रंश	3	. 43	२	88
હ	उड़द	२शा	81	4011	3	१२॥
6	अरहर	२२	8	ं ६२	ं ह	१०
٩	मटर	२२	२	५३	, २	१५
१०	मसूर	२५	श	ξo	२	११॥
११	यव (जौं)	१३	२	\ \ \ \ \	1 2	१५
१२	मका (मकई)	१०	६॥।	६१॥	? II	१३॥
१३	कुलभी	र ३।	र॥	: ५९।	३।	१२
\$8	भारत	\$11	१११०	' २३॥	8	ଓଷ
84		1 i	u	411	j m	. 68
१६	1	11		اا>	ıu	24
१७	1	0		૧ ૬॥	j u	8
१८		8	રાા	1 4	u	८६॥
१०		1	98	, a	२॥	Ę
२०		1 0	१००	0	0	0

इस कोष्ठ से विदित होता है कि—खुराक के सुख्य २ पदार्थों में पौष्टिक तस्व तथा चरवीवाला तस्व अधिक है, एवं आटे के सत्ववाला तस्व चरवी वाले तस्वसे युक्त और आटे के सत्ववाले तस्व से युक्त पदार्थों में कारवन अधिक है तथा क्षार और पानी इन दोनों का परिमाण प्रत्येक खुराक के पदार्थ में प्रति सैकड़े अलग २ दिखाया ही गया है।

्रासायन शास्त्र के ज्ञाता विद्वान् छोगोंने रसायनिक प्रयोग के द्वारा ख़ुराक के वहुत से यदार्थों के सन अवयवों को प्रथक् २ कर के उक्त पांचों तत्वों की जाँच कर प्रत्येक तत्व का परिमाण अलग २ दिखला दिया है उन्हीं के उक्त परिश्रम से वर्चमान में हम सव लोग इस बात को अच्छे प्रकार से जान सकते हैं कि—ख़ुराक के अग्रुक पदार्थ में उक्त पांचों तत्वों में से प्रत्येक तत्व का इतना २ माग मीजूद है तथा इस के जानने से बड़ा

भारी लाम यह है कि-प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक पदार्थ के गुण और उस में स्थित तत्वों की जान कर उस पदार्थ की सुलकारिणी योजना की दूसरे पदार्थों के साथ कर सकता है।

गुण के अनुसार ख़राक के दो भेद है-अर्थात पुष्टिकारक और गर्मी छानेवाली, इन में से जो ख़ुराक शरीर के नष्ट हुए परमाणुओं की कमी को पूरा करती है उस को पृष्टि-कारक कहते है। तथा जो ख़राक शरीर की गर्मी को ठीक रीति से कायम रखती है उस को गर्मी लानेवाली कहते है, यद्यपि पृष्टिकारक खुराक के पदार्थ बहुत से है तथापि उन का प्रत्येक का भीतरी पौष्टिक तत्वों का गुण एक दूसरे से मिलता हुआ ही होता है. रसायनिक प्रयोगके वेत्ता विद्वानों ने यह निश्चय किया है कि-पौष्टिक खुराक में नाइट्रो-जन नामक एक विशेष सत्व है और गर्मी छानेवाली ख़राक में कार्वन नामक एक विशेष तत्व है, गर्मी छानेवाळी खुराक से शरीर की गर्मी कायम रहती है अर्थात बाय तथा ऋत आदि का परिवर्त्तन होने पर भी उक्त ख़राक से शरीर की गर्मी का परिवर्त्तन नहीं होताहै अर्थात् गर्मी प्रायः समान ही रहती है और शरीर में गर्मी के ठीक रीति से कायम रहने से ही जीवन के सब कार्यों का निर्वाह होता है, यदि शरीर में ठीक रीति से गर्मी कायम न रहे तो जीवन का एक कार्य भी सिद्ध न हो सके, देखो । बाहरी हवा में चाहें जैसा परिवर्त्तन होजावे तथापि गर्मी लानेवाली ख़राक के लेने से शरीर की गर्मी बराबर बनी रहती है, ठंढे देशों में (जहां अधिक शीत के कारण पानी का वर्फ जम जाता है और पारेकी बड़ी में पारा ३२ डिग्री से भी नीचे चला जाता है वहां) और गर्म देशों में (जहां अधिक गर्मी के कारण उक्त घडी का पारा १२५ डिग्री से भी ऊँचा चढ जाता है वहा) भी अंग की गर्मी ९० से १०० डिग्री तक सदा रहा करती है ।

श्रीर में गर्मी को कायम रखनेवाळी ख़ुराक में मुख्यतया कार्वन और हाइड्रोजन नामक दो तत्व है और वे दोनों तत्व माणवायु (आक्सिजन) के साथ रसायनिक संयोग के द्वारा मिळते हैं अर्थात् गर्मी उत्पन्न होती है तथा यह संयोग प्रत्येक पळमें जारी रहता है, परन्तु जब किसी व्याधि के होने पर इस संयोग में फर्क था जाता है तब शरीर की गर्मी मी न्यूनाधिक हो जाती है।

पौष्टिक ख़राक के अधिक खाने से छोहू में लामाविक शक्ति न रहकर विशेष शिक्त उत्पन्न हो जाती है और ऐसा होने से उस (छोहू) का जमाव कलेजे और मगज़ आदि अवयवों में बहुत हो जाता है इस लिये वे सब अवयव मोटे हो जाते है इसलिये पृष्टि-कारक ख़राक को अधिक खानेवाले छोगों को चाहिये कि उस पृष्टिकारक ख़राक के

⁹⁻लोहू का अधिक जमान होने से कमी २ कळेजे का रोग हो जाता है और कमी २ मगज पर भी लोहू का जोश घट जाता है, इस से अधिक पुष्टिकारक खुराक के खानेवाळे छोगों को बहुत मय में गिरना पड़ता है ॥

अनुकूल ही शरीर को श्रम देवें क्योंकि ऐसा करने से अधिक हानि का संभव नहीं रहता है, परन्तु यह भी सरण रखना चाहिये कि—सदा एक ही प्रकार की खुराक को खातें रहना भी अति हानिकारक होता है।

खुराक ऐसी लानी चाहिये कि—जिस में शरीर के पोषण के सब तत्व यथायोग्य मौजूद हों, अपने लोगों की खुराक सामान्य रीति से इन सब तत्वों से युक्त होती है क्योंकि शुद्ध अन्न और दाल आदि पदार्थों में शरीर के पोषण के आवश्यक तत्व मौजूद रहते हैं, परन्तु प्राणिजन्य खुराक अर्थात् घी मक्सन और मांस आदि पदार्थों में आटे के सत्ववाला तत्व अर्थात् गर्मी को कायम रखनेवाला तत्व विलक्तल नहीं होता है, हां इस प्रकार की (प्राणिजन्य) खुराक में केवल दूष ही सब तत्वों से युक्त है, इसी लिये अकेले दूष से भी बहुत दिनों तक मनुष्य का निर्वाह होसकता है।

धी में केवल चरवीवाला तत्व है, परन्तु उस में पौष्टिक आट के सत्ववाला तथा क्षार का तत्व विलक्षल नहीं है, चाँवलों में बहुत सा माग आटे के सत्वका है और पौष्टिक तत्व प्रति तैकड़े पाच रुपये गर ही है, इसी लिये अपने लोगों में मात के साथ दाल तथा धी खाने का आम (सामान्यतया) मचौर है।

वालकों के लिये चरवीवाले तत्व से युक्त तथा अति पौष्टिक तत्व से युक्त खुराक उपयोगी नहीं है, किन्तु उन के लिये तो चॉवल दूध और सिश्री आदि की खुराक बहुत अनुकूल हो सकती है, क्योंकि—इन सब पदार्थों में पौष्टिक तत्व बहुत कम है और गर्मी लानेवाला तत्व विशेप है और वालकों को ऐसी ही खुराक की आवश्यकता है, गेहूँ में चरबी का भाग बहुत कम हैं इस लिये गेहूँ की रोटी में अच्छी तरह श्री डाल कर खाना चाहिये, वालरी तथा ज्वार में यदापि चरवी का भाग आवश्यकता के अनुसार मौजूद है तथा पौष्टिक तत्व गेहूं की अपेक्षा कम है तथापि इन दोनों पदार्थों से पोषण का काम चल सकता है, अनों में उड़द सब से अधिक पौष्टिक है इसलिये शीत ऋतु में पौष्टिक तत्ववाले उड़द के आटे के साथ गर्मा देनेवाला थी तथा मिश्री का योग कर खाना बहुत गुणकारक है, गर्म देश में ताज़ी शाक तरकारी फायदा करती है, अपना देश गर्म है इस लिये यहां के निवासियों को ताज़ी वनस्पति फायदा करती है, इसी कारण से शीत ऋतु की अपेक्षा उपण ऋतु में उस (ताज़ी वनस्पति) के विशेप सेवन करने की आवश्यकता होती है, चरवीवाले और चिकनासवाले मोजन में नीवू की खटाई और योड़ा बहुत मसाला अवश्य डालना चाहिये।

⁹⁻यह बहुत ही उत्तम प्रचार है क्योंकि-दाल से पीष्टिक तत्व पूरा हो जाता है और दाल में नमक कें होने से वॉवलों में बार की जो न्यूनता है वह भी पूरी हो जाती है और घी से चरवीवाला तत्व भी मिल सकता है।

यद्यपि देश, काल, समाव, श्रम, श्ररीर की रचना और अवस्था आदि के अनेक मेदों से खुराक के भी अनेक मेद हो सकते हैं तथापि इन सब का वर्णन करने में अन्थविद्यार का मय विचार कर उनका वर्णन नहीं करते हैं किन्तु मुख्यतया यही समझना चाहिये कि खुराक का मेद केवल एक ही है अर्थात् जिस से मूख और प्यास की निष्टति हो उसे खुराक कहते हैं, उस खुराक की उत्पत्ति के मुख्य दो हेतु हैं—स्थावर और जङ्गम, स्थावरों में तमाम वनस्पति और जङ्गम में प्राणिजन्य दूध, दही, मक्खन और छाछ (मट्टा) आदि खुराक जान लेनी चाहिये।

जैनस्त्रों में उस आहार वा ख़ुराक के चार मेद छिले हैं—अशन, पान, ख़ादिम और स्रादिम, इनमें से ख़ाने के पदार्थ अशन, पीने के पदार्थ पान, चाव कर ख़ाने के पदार्थ स्रादिम और चाट कर ख़ाने के पदार्थ स्रादिम कहलाते हैं।

यद्यपि आहार के बहुत से प्रकार अर्थात् भेद हैं तथापि गुणों के अनुसार उक्त आहार के सुख्य आठ भेद हैं—मारी, चिकना, ठंढा, कोमल, हलका, रूझ (रूखा), गर्म और तीक्ष्ण (तेज़), इन में से पहिले चार गुणोंवाला आहार श्रीतवीर्य है और पिछले चार गुणोंवाला आहार उण्णवीर्य है ॥

आहार में खित जो रस है उसके छः मेद है—मधुर (मीठा), अन्छ (खट्टा), छवण (खारा), फड़ (तीखा), तिक्त (फड़ुआ) और कवाय (कवेंग), इन छः रसों के प्रमान्वसे आहार के है भेद हैं—पथ्य, अपथ्य और पथ्यापथ्य, इन में से हितकारक आहार को पथ्य, अहितकारक (हानिकारक) को अपथ्य और हित तथा अहित (दोनों) के करने वाले आहार को पथ्यापथ्य कहते हैं, इन तीनों प्रकारों के आहार का वर्णन विखार पूर्वक आगे किया जावेगा।

इस प्रकार आहार के पदार्थों के अनेक सूक्ष्म भेद हैं परन्तु सर्व साधारण के लिये वे विशेष उपयोगी नहीं हैं, इस लिये सूक्ष्म भेदों का विवेचन कर उनका वर्णन करना अना- वश्यक है, हां वेशक छः रस और पध्यापध्य पदार्थ सम्बंधी आवश्यक विषयका जान लेना सर्व साधारण के लिये हितकारक है, क्योंकि निस ख़ुराक को हम सब खाते पीते हैं उसके जुदे २ पदार्थों में जुदा २ रस होने से कौन २ सा रस क्या २ गुण रखता है, क्या २ किया करता है और मात्रा से अधिक खाने से किस २ विकार की उत्पन्न करता है और हमारी ख़ुराक के पदार्थों में कौन २ से पदार्थ पध्य है तथा कौन २ से अपध्य हैं, इन सब बातों का जानना सर्व साधारण को आवश्यक है, इसिंखिये इनके विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है:—

१-देखो । पध्यापध्य वर्णननासक छठा प्रकरण ॥

कः रैस ॥

पहिले कह जुके है कि—आहार में खित जो रस है उस के छः मेद है—अर्थात् मीठा, खद्या, खारा, तीखा, कडुआ और कपैला, इनकी उत्पत्ति का कम इस प्रकार है कि—पृथ्वी तथा पानी के गुण की अधिकता से मीठा रस उत्पन्न होता है, पृथ्वी तथा अभि के गुण की अधिकता से खद्या रस उत्पन्न होता है, पानी तथा अभि के गुण की अधिकता से खारा रस उत्पन्न होता है, वायु तथा अभि के गुण की अधिकता से तीखा रस उत्पन्न होता है, वायु तथा आकाश के गुण की अधिकता से कडुआ रस उत्पन्न होता है और पृथ्वी तथा वायु के गुण की अधिकता से कपैला रस उत्पन्न होता है ॥

छओं रसों के मिश्रित गुण ॥

मीठा खड़ा और खारा, ये तीनों रस वातनाशक है ॥ मीठा कड़ुआ और कपैछा, ये तीनों रस पित्तनाशक हैं ॥ तीखा कड़ुआ और कपैछा, ये तीनों रस कफनाशक है ॥ कपैछा रस वायु के समान गुण और छक्षणवाछा है ॥ तीखा रस पित्त के समान गुण और छक्षणवाछा है ॥ मीठा रस कफ के समान गुण और छक्षणवाछा है ॥

छओं रसों के पृथक् २ गुण ॥

मीठा रस-छोहू, मांस, मेद, अस्य (हाड़) मज्जा, ओज, वीर्य तथा सानों के दूघ को वदाताहै, आँख के छिये हितकारी है, वाळों तथा वर्ण को खच्छ करता है, वळ-वर्धक है, टूटे हुए हाड़ों को जोड़ता है, वाळक बृद्ध तथा जलम से क्षीण हुओं के छिये हितकारी है, तृषा मुच्छी तथा दाह को शान्त करता है सब इन्द्रियों को मसन्न करता है और कृमि तथा कफ को बदाता है।

इस के अति सेवन से यह—खांसी, श्वास, आलस्य, वमन, ग्रुखमाधुर्य (ग्रुख-की मिठास), कण्ठिविकार, कृमिरोग, कण्ठमाला, अर्बुद, श्रीपद, विद्यारोग (मधुप्रमेह आदि मूत्र के रोग) तथा अमिज्यन्द आदि रोगों को उत्पन्न करता है ॥

खद्दा रस- आहार, वातादि दोप, श्लोश तथा आम की पचाता है, वादी का नाश करता है, वायु मळ तथा मूत्र की छुड़ाता है, पेटमें अप्रिको करता है, लेप करने से ठंढक करता है तथा हृदयको हितकारी है।

१-दोहा-मधुर सम्छ अर छवण पुनि, बहुक क्रपैका चोग ॥ भार तिक्त चण बहुत हैं, पट् रस बानो सोय ॥ १ ॥ २६

इस के अति सेवन से यह—दन्तहर्ष (दाँतों का जकड़ जाना), नेत्रवन्य (जाँखोंका मिचना), रोमहर्ष (रोंगटों का खड़ा होना), कफ का नाम्न तथा शरीरशैथिस्य (शरीर का ढीला होना), को करता है, एवं कण्ठ छाती तथा इदय में दाह को करता है ॥

खारा रस- मलगुद्धि को करता है, खराव वण (गुमड़े) को साफ करता है, खुराक को पचाता है, शरीर में शिथिलता करता है, गर्मी करता तथा अवयवों को कोमल (गुलायम) रखता है।

इस के अति सेवन से यह खुजली, कोढ, शोष तथा श्रेथरको करता है, चमड़ी के रंग को निगाइता है, पुरुषार्थ का नाश करता है, आंख आदि इन्द्रियों के व्यवहार को मन्द करता है, मुखपाक (मुँह का पकजाना) को करता है, नेत्रव्यथा, रक्तिपत्त, वातरक तथा खट्टी डकार आदि दुष्ट रोगों को उत्पन्न करता है।

तीखा रस अप्रि दीपन, पाचन तथा मूत्र और मल का शोधक (शुद्ध करने-वाला) है, शरीर की स्थूलता (मोठापन),आलस्य, कफ, क्रमि, विषजन्य (जहर से पैदा होनेवाले) रोग, कोट तथा खुजली आदि रोगों को नष्ट करता है, सांधों को ढीला करता है, उत्साह को कम करता है तथा खन का दूध, वीर्य और मेद इन का नाशक है ।

इस के अति सेवन से यह—अम, मद, कण्ठशोष (गर्छ का स्खना), ताछशोष (ताछ का स्खना), जोष्ठशोष (जोठों का स्खना), शरीर में गर्मी, बलक्षय, कम्प और पीड़ा आदि रोगों को उत्पन्न करता है तथा हाथ पैर और पीठ में वादी को करके शूल को उत्पन्न करता है।

कडुआ रसं खुजली, खाब, पित्त, तृषा, मूर्च्छा तथा ज्वर आदि रोगों की शान्त करता है, सन के दूधको ठीक रखता है तथा मल, मूत्र, मेद, चरवी और प्रणविकार (पीप) आदि को सुखाता है।

इस के अति सेवन से यह—गर्दन की नसों का जकड़ना, नाड़ियों का खिँचना, शरीर में व्यथा का होना, अम का होना, शरीर का टूटना, कम्पन का होना तथा मूल में किन का कुम होना आदि विकारों को करता है ॥

'क्षेत्रा रस-दस्त को रोकता है, शरीर के गात्रों को इट करता है, त्रण तथा प्रमेह आदि को शोधन (शुद्धि) करता है, त्रण आदि में प्रवेश कर उस के दोष को निका-छता है तथा क्केट अर्थात् गाढ़े पदार्थ पके हुए पीपका स्नोषण करता है।

इस के अति सेवन से यह—हृदय पीड़ा, मुखशोष (मुखका सूखना), आघ्मान (अफरा), नर्सों का जकड़ना, शरीर स्फुरण (शरीर का फड़कना), कम्पन तथा शरी-रका संकोच आदि विकारोंको करता है।

यद्यपि खाने के पदार्थों में प्रायः छओं रसोंका प्रतिदिन उपयोग होता है तथापि कड़ुआ और कषेळा रस खानेके पदार्थों में स्पष्टतथा (साफ तौर से) देखने में नहीं आता है, क्योंकि—ये दोनों रस बहुत से पदार्थों में अव्यक्त (छिपे हुए) रहते हैं, शेष चार रस (मीठा, खद्दा, खारा और तीखा) प्रतिदिन विशेष उपयोग में आते हैं॥

यह चतुर्थ अध्यायका आहारवर्णन नामक चतुर्थ प्रकरण समास हुआ ॥ .

- पाँचवां प्रकरणं - वैद्युक-माग निषण्ड ॥

घान्यवर्ग ॥

्रेचाचर्ल- मधुर, अमिदीपक, बलवर्धक, कान्तिकर, वातुवर्धक, त्रिदोषहर और पेशाय छानेबाला हैं।।

. उपयोग — यथि वावलों की बहुत सी जातियां है तथािष सामान्य रीति से कमोद के चावल खांद में उत्तम होते है और उस में भी दाऊदसानी चावल बहुत ही तारीफ के लायक हैं, गुण में सब चावलों में सौठी चावल उत्तम होते हैं, परन्तु वे बहुत लाल तथा मोटे होने से काम में बहुत नहीं लाये जाते है, मायः देखा गया है कि-झौकीन लोग खाने में भी गुणको न देख कर शीक को ही पसन्द करते हैं, बस चावलों के विषय में भी यही हाल है।

चावलों में पौष्टिक और चरवीवाला अर्थात् चिकना तत्व बहुत ही कम है, इस लिये चावल पचने में बहुत ही हलका है, इसी लिये वालकों और रोगियों के लिये चावलों की खुराक विशेष अनुकूल होती है।

साबूदाना यद्यपि चावलों की जाति में नहीं है परन्तु गुण में चावलों से भी हलका है, इसलिये छोटे बालकों और रोगियों को साबूदाने की ही खुराक प्रायः दी जाती है।

यद्यपि डाक्टर लोग कई समयों में चावलों की खुराक का निषेध (मनाई) करते हैं परन्तु उसका कारण यही माछम होता है कि हमारे यहां के लोग चावलों को ठीक रीति से पकाना नहीं जानते है, क्योंकि मायः देखा जाता है कि बहुतसे लोग जावलों को अधिक आंच देकर जल्दी ही उतार लेते हैं, ऐसा करने से चावल ठीक तौर से नहीं पक

१-स्मरण रहना चाहिये कि-स्थिप वे सब रस प्रतिदिन भोजन में उपयोग में आदे हैं परन्तु इनके अखन्त सेवन से तो हानि ही होती है, जिस को पाठक गण कपर के छेखसे जान सकते हैं, देखों ! इन समृ रसों में मीठा रस यदापि विशेष उपयोगी है तथापि अखन्त सेवन से नह भी -बहुत हानि करता है, इसिलेये इन के अखन्त सेवन से सदैव बचना चाहिये ॥

२-इन को गुजरात में बरीना चोखा भी कहते हैं॥

सकते हैं और इस प्रकार पके हुए चावल हानि ही करते हैं, चावलों के पकाने की सवेंतम रीति यह है कि—पतीली में पहिले अधिक पानी चढ़ाया जावे, जब पानी गर्म होजावे
तब उस में चावलों को घोकर हाल दिया जावे तथा घीमी २ आंच जलाई जावे, जब
चावलों के दो कण सीज जावें तब पतीली के मुंह पर कपड़ा वांध कर पतीलीको आँघा
कर (उलट कर) सब मांड निकाल दिया जावे, पीछे उस में थोड़ा सा घी ढाल कर
पतीली को अंगारों पर रख कर ढक दिया जावे, थोड़ी देर में ही भाफ के द्वारा तीसरा
कण भी सीज जायगा तथा चावल फूल कर मात तैयार हो जावेगा, इस के ठीक २ पक
जाने की परीक्षा यह है कि—थाली में डालते समय ठनाठन आवान करने के बदले फूल
के समान हलके होकर गिरें और हाथ से भसलने पर मक्खन के समान मुलायम मालस
हों तो जान लेना चाहिये कि चावल ठीक पक गये हैं, इस के सिवाय यह भी परीक्षा है
कि—यदि चावल खाते समय जितने दवा २ कर खाने पढ़ें उतना ही उनको कच्चा समअना चाहिये।

बहुत से छोग चावछों को बहुत वादी करनेवाछा समझ कर उन के साने से ढरते हैं परन्तु जितना वे छोग चावछों को वादी करनेवाछे समझते हैं चावछ उतने वादी करनेवाछे नहीं है, हां वेशक यह वात ठीक है कि—घटिया चावछ कुछ वादी करनेवाछे होते हैं किन्तु दूसरे चावछ तो पकने की कमी के कारण विशेष वादी करते हैं, सो यह दीप सब ही अनों में है अर्थात् ठीक रीति से न पके हुए सब ही अन्न वादी करते हैं।

नये चावलों की अपेक्षा दो एक वर्ष के पुराने चावल विशेष गुणकारी होते हैं तथा दाल के साथ चावलों के सानेसे उन का वायु गुण कम हो जाता है और पीष्टिक गुण वढ़ जाता है, चावल और दाल को अलग २ पका कर पीछे साथ मिला कर खाने से उन का अक्दी पाचन हो जाता है किन्तु दोनों को मिलाकर पकाने से खिचड़ी होती है वह कुछ मारी हो जाती है, सिचड़ी पाय: चावलों के साथ मूंग और अरहर (तुर) की दाल मिलाकर वर्नाई जाती है।

े शिहूँ - पुष्टिकारक, धातुवर्धक, बलवर्षक, मधुर, ठंढा, भारी, रुचिकर, ट्रटे हुए हाड़ीं को जोड़नेवाला, त्रण को मिटानेवाला तथा दस्त को साफ लानेवाला है॥

उपयोग नीहूँ की ग्रस्य दो जाति है काठा और वानिया, इन में पुनः दो भेद हैं न्वेत और ठाळ, श्वेत गेहूँ से ठाळ अधिक पुष्ट होता है, गेहूँ में पौष्टिक तथा गर्मी ळानेवाळा तत्त्व मौजूद है, इस छिये दूसरे अन्नों की अपेक्षा यह विशेष उपयोगी और उत्तम पोषण की एक अपूर्व वस्तु है।

गेहूं में खार तथा चरवी का माग वहुत कम है इसी कारण गेहूं के आटे में नमंक ढारू कर रोटी बनाई जाती है, द्रव्यानुसार घी मक्खन और मरूई आदि पदार्थों के साथ गेहूँ का यथायोग्य खाना अधिक लामदायक है, गेहूँ की मैदा पचने में मारी होती है इसलिये मन्दाग्निवाले लोगों को मैदे की रोटी तथा पूड़ी नहीं खानी चौहिये, गेहूँ के आटे से बहुत से पदार्थ बनते है, गेहूँ की राव तथा पतली वाट पचने में हलकी होती है अर्थात् वाट की अपेक्षा रोटी मारी होती है, एवं पूड़ी, हल्ला (शीरा), लडू, मगघ और गुलपएड़ी, इन पदार्थों में पूर्व २ की अपेक्षा उत्तरोत्तर पचने में मारी होते है, वी के साथ खाने से गेहूँ वादी नहीं करता है।

बाजरी—गर्म, रूक्ष, पृष्ट, इदय को हितकारी, खियों के काम को वदानेवाली, पचने में भारी और वीर्य को हानि पहुँचानेवाली है ॥

उपयोग — बाजरी गर्म होने से पित्त को खराब करती है, इसिलेये पित्त प्रकृतिवाले लोगों को इससे बचना चाहिये, रूझ होने से यह कुछ वायु को भी करती है, जिन २ देशों में बाजरी की उत्पत्ति अधिक होती है तथा दूसरे अन्न कम पैदा होते हैं वहां के लोगों को नित्य के अभ्यास से बाजरी ही पथ्य हो जीती है।

यद्यपि पोषण का तत्त्व वाजरी में भी गेहूँ के ही छगमग है तथापि गेहूँ की अपेक्षा चरबी का तत्व इस में विशेष है इस छिये घी के विना इस का खाना हानि करता है ॥

ज़्बार ं ठंढी, मीठी, हलकी, रूक और पुष्ट है ॥

'ज्ययोगां ज्वार में बाजरी के समान ही पोषण का तत्व है तथा चरबी का भाग भी बाजरी के ही समान है, ज्वार करड़ी और रूक्ष है इस लिये वह वायु करती है परन्तु नित्य का अभ्यास होने से मरहठे, कुणबी तथा गुजरात और काठियाबाड़ आदि देशों के निवासी गरीव लोग प्रायः ज्वार और अरहर (तूर) की दाल से ही अपना निवाह करते है।

' मूंग — ठंडा, माही, हरूका, लादिष्ट, कफ पित्त को मिटानेवाला और आंखों को हितकारी है परन्तु कुछ वायु करता है ॥

उपयोग — दाल की सब जातियों में मूंग की दाल उत्तम होती है, क्योंकि मूंग की दाल तथा उस का जल प्रायः सब ही रोगों में पथ्य है और दूघ की गर्ज (आवश्यकतां) को पूर्ण करता है किन्दु विचार कर देखा जावे तो यह दूघ की अपेक्षा भी अधिक गुण-

⁹⁻शुर्शिदावादी ओधवाल लोगों के यहा प्रतिदिन खराक में भैदा का उपयोग होता है और दाल तथा शाकादिने वहा वाले अमजुर वहुत बालते हैं जिस से पित्त बढता है—सख तो यह है कि-ये दोनों खराकें निर्वेलता की हेत्र है परन्तु उन लोगों में प्रातःकाल प्राय दूध और वादाम की कतली के खाने की चाल है इस लिये उन के जीवन का आवश्यक तत्व कायम रहता है तथापि उत्पर कही हुई दोनों वस्तुयें अपना प्रसाव विखलाती रहती हैं॥

र-जैसे वीकानेर के राज्य में वाबरी की ही विशेष खपत है, सौठ, वाजरी और मतीरे जैसे इस जमीन में होते हैं वैसे और कही भी नहीं होते हैं॥

कारक है, क्योंकि नये सिजपात ज्वर में दूघ की मनाई है परन्तु उस में भी मूंग की दाल का पानी हितकारी है, एवं बहुत दिनों के उपवास के पारने में भी यही पानी हितकारी है. सावत मूंग बायु करता है, यदि मूंग की दाल को कोरे तवे पर कुछ सेक कर फिर विधिपूर्वक सिना कर बनाया जाने तो वह विलक्ष्य निर्दोष होनाती है यहां तक कि पूर्व और दक्षिण के देशों में तथा किसी भी वीमारी में वह वायु नहीं करती है, यद्याप मूंग की बहुत सी जातियां हैं परन्तु उन सब में हरे रंग का मूंग गुणकारी है ॥

्रिअरहर मीठी, भारी, रुचिकर, ग्राही, ठंढी और त्रिदोपहर है, परन्तु कुछ वायु करती है ॥

उपयोग- रक्तविकार, अर्श (मस्सा), ज्वर और गोले के रोग में फायदेमन्द है। दिक्षिण और पूर्व के देशों में इस की दाल का बहुत उपयोग होता है और उन्हीं देशों में इस की उत्पित्त मी होती है, अरहर की दाल और थी मिलाकर चावलों के खाने से वे वायु नहीं करते हैं, गुजरातवाले इस की दाल में कोकम और इमली आदि की खटाई डाल कर बनाते है तथा कोई लोग दही और गर्म मसाला भी डालते हैं इस से वह बायु को नहीं करती है, दाल से बनी हुई वस्तु में कचा दही और छाछ मिला कर खाने से यूक के स्पर्शस दो इन्द्रियवाले जीव उत्पन्न होते हैं इसलिये वह अमस्य है और अमस्य वस्तु रोग कची होती है, इस लिये द्विदंल पदार्थों की कड़ी और राइता आदि बनावा हो तो पहिले गोरस (दही वा छाछ आदि) को बाफ निकलने तक गर्म कर के फिर उस में बेसन आदि द्विदल अन्न मिलाना चाहिये तथा दही खिचड़ी भी इसी प्रकार से बना कर खानी चाहिये जिस से कि वह रोगकची न हो।

पाकविद्या का ज्ञान न होने से बहुत से छोग गर्म किये विना ही दही और छाछ के साथ खिन्न हो तथा खीन हा खा छेते हैं वह उन के शरीर को बहुत हानि पहुँचाता है, इस छिये जैनाचार्योंने रोग कर्ता होने के कारण २२ वहुत बड़े अमस्य बतला कर उन का निवेध किया है तथा उन का नाम अतीनार सूत्र में छिख बतलाया है उसका हेतु केवल यही प्रतीत होता है कि उन का स्मरण सदा सब को बना रहे, परन्तु वड़े शोक का विषय है कि इस समय में हमारे बहुत से प्रिय जैन बन्धु इस बातको विलक्षक नहीं समझते हैं !!

डुंड्- अत्यन्त पुष्ट, बीर्यवर्षक, मधुर, तृप्तिकारक, मूत्रल (पेज्ञाव लानेवाला), मरुमेदक (मल को तोड़नेवाला), खानों में दूष को वढानेवाला, मांस और मेदे की

१-विस अन की दो फांकें हों उस अन को द्विदल कहते हैं, ऐसे अन्न को गोरस अर्थात् दही और छाछ आदि के साथ गर्म किये विना खाना जैनागम में निविद्ध है अर्थात् इस को अन्नक्य लिखा है ॥

वृद्धि करनेवाला, शक्तिपद (ताकत देनेवाला), वायुनाशक और पित्त कफ को वढाने-बौला है ॥

उपयोगं श्वास, श्रान्ति, अर्दित नायु (जिस में ग्रुँह टेढा हो जाता है) तथा अन्य भी कई नायु के रोगों में यह पथ्य है, श्रीत ऋतु में तथा नादी की तासीरवाले पुरुषों के लिये यह फायदेमन्द है, पचने के नाद उड़द गर्म और खट्टे रस को उत्पन्न करता है इस लिये पित्त और कफ की मकृतिवालों को तथा इन दोनों दोषों से उत्पन्न हुए रोगनालों को हानि पहुँचाता है।

चुना — इलका, ठंढा, रूस, रुचिकर, वर्णशोधक (रंग को सुधारनेवाला) और शक्ति-दायक (ताकत देनेवाला) है ॥

उपयोग— कफ तथा पित्त के रोगों में फायदेमन्द है, कुछ ज्वर को भी मिटाता है परन्तु बाँदी कत्ती, कबज़ी करनेवाला अथवा अधिक दक्त लगानेवाला है, ख़ुराक में काम देनेवाली चने की बहुत सी चींजें बनती है क्यों—िक यह साबत, आटा (वेसन) और दाल, इन तीनों तरह से काम में लाया जाता है, मोतीचूर का ताजा लब्बू पिती के रोग को शीघ्र ही मिटाता है, चने में चरबी का माग कम है इस लिये इस में धी और तेल आदि किएव पदार्थ अधिक डालना चाँहिये, यह तासीर के अनुसार परिमित खाने से हानि नहीं करता है, भी के कम डालने से चने के सब पदार्थ हानि करते है।

मीठ- रुचिकर, पुष्टिकारक, मीठा, रूझ, ब्राही, वलवर्षक, इलका, कफ तथा पित्त को मिंटानेवाला और वायकारक है ॥

उपयोग — यह रक्तिपत्त के रोग, ज्वर, दाह, क्रिम और उन्माद रोग में पथ्य है ॥ अविवला निर्माठा, मारी, दस्त लानेवाला, रूस, वायुक्तर्या, रुचिकर, स्तन में दूध को बढानेवाला, वीर्य को विगाइनेवाला और गर्म है ॥

उपयोगं—यह अत्यन्त बायुकत्ती है इस लिये इस को अधिक कभी नहीं लाना चाहिये, यह लाने में मीठा तथा पचने के बाद खट्टे रस को उत्पन्न करता है, शक्तिदायक है परन्तु रूक्ष और मारी होने से पेट में गुरुता को उत्पन्न कर बायु को करता है, गर्म, दाहकारी और शरीरशोषक (शरीर को सुलानेवाला) है, शरीर के विष का त्यूग आंखों के तेज का नाशक है ॥

१-दिश्ली के चारों तरफ पञान तक इस की दाल को हमेगा खाते हैं तथा काठियानाडवाले इस के हुट्टू शीत काल में पुष्टि के लिये बहुत खाते हैं॥

२-गुजरातवाछे तेळ के साथ चने का उपयोग करते हैं॥

्रिमटर कित्रकर, मीठा, पुष्टिकर, रूख, शाही, शक्तिवर्धक (ताकत को बढानेवाला), हलका, पित्र कफ को मिटानेवाला और वायुकर्ती है।

किल के है वे सब मुख्यतया बनाने की किया में तो रहते ही हैं यह तो एक सामान्य बात है परन्तु संस्कार के अदल बदल (फेरफार) से भी गुणों में अदल बदल हो जाता है, उदाहरण के लिये पाठक गण समझ सकते है कि—पुराने चावलों का पकाया हुआ भात हलका होता है परन्तु उन्हीं के चुरमुरे आदि बहुत भारी हो जाते है, इसी प्रकार उन्हीं की बनी हुई खिचड़ी भारी, कफ पित्त कों उत्पन्न करनेवाली, कठिनता से पचनेवाली, वृद्धि में बाधा ढालनेवाली तथा दस्त और पेशाब को बढानेवाली है, एवं थोड़े जल में उन्हीं चावलों का पकाया हुआ मात शीम नहीं पचता है किन्तु उन्हीं चावलों का अच्ली तरह धोकर पँचगुने पानीमें खूब सिजा कर तथा मांड निकाल कर मात बनाने से वह बहुत ही गुणकारी होता है, इसी पकार खिचड़ी भी धीमी २ आंच से बहुत देरतक पका कर बनाई जाने से ऊपर लिखे दोषों से रहित हो जाती है।

चने चॅबले और मीठ आदि जो २ अन बातकत्ती है तथा जो २ दूसरे अन्न दुष्पान (कठिनता से पचनेवाले) है वे भी घी के साथ खाये जाने से उक्त दोवों से रहित हो जाते है अर्थात् वायु को कम उत्पन्न करते और जल्दी पच जाते है।

मारवाड़ देश के बीकानेर और फलोधी आदि नगरों में सब लोग आखातीज (अक्षय तृतीया अर्थात् वैकाखपुदि तीज) के दिन ज्वार का खीचड़ा और उस के साथ ' बहुत वी खाकर ऊपर से इमली का शैर्यत पीते है क्योंकि आखातीज को नया दिन समझ कर उस दिन वे लोग इसी ख़ुराक का खाना शुम और लामदायक समझते है, सो यद्यपि यह ख़ुराक प्रत्यक्ष में हानिकारक ही प्रतीत होती है तथापि वह प्रकृति और देश की तासीर के अनुकूल होने से श्रीष्म ऋतु में भी उन को पचजाती है परन्तु इस में यह एक बड़ी सरावी की बात है कि बहुत से अज्ञ लोग इस दिन को नया दिन समझ कर रोगी मनुष्य को भी वही ख़ुराक खाने को दे देते हैं जिस से उस बेचारे रोगी को बहुत हानि पहुँचती है इस लिये उन लोगों को उचित है कि—रोगी मनुष्य को वह (उक्त) ख़ुराक मूल कर भी न देवें ।।

१-इस धान्यवर्ग में बहुत बोढे आवश्यक बान्यों का वर्णन किया गया है, श्लेष धान्यों का तथा उन से बने हुए पदार्थों का वर्णन वृहिष्टिषण्ड राजाकर आदि प्रन्यों में देख छेना चाहिये ॥

२-इस को वीकानेरनिवासी समलवाणी कहते हैं॥

^{₹-}श्री ऋपसदेवजी ने तो इस दिन साठे अर्थात् ऊख का रस पिया था जिस रस को श्रेयास नामक पडणोते ने वर्ष भर के भूखे को सुपात्र दान देकर अक्ष्य सुरा का उपार्जन किया था, उसी दिन से इस का नाम अक्षयत्त्वीया हुआ।

शाक वर्ग ॥

नित्य की ख़ुराक के लिये शाक (तरकारी) बहुत कम उपयोगी है, क्योंकि—सब शाक दस्त को रोकनेवाले, पचने में मारी, रूझ, अधिक मठ को पैदा करनेवाले, पवन को बढ़ानेवाले, शरीर के हाड़ों के भेदक, आंख के तेज को घटानेवाले, शरीर के रंग खून तथा कान्ति को घटानेवाले, बुद्धि का क्षय करनेवाले, वालों को खेत करनेवाले तथा सरणशक्ति और गित को कम करनेवाले है, इसी लिये वैधकशाखों का सिद्धान्त है कि—सब शाकों में रोग का निवास है और रोग ही शरीर का नाश करता है, इस लिये विवेकी लोगों को उचित है कि—पतिदिन ख़ुराक में शाक का मक्षण न कैरें, जो २ दोप खड़े पदार्थों में कह चुके हैं पायः उन्हीं के समान सब दोष शाकों में भी हैं, यह तो सामान्यतया शास्त्र का अभित्राय कहा गया है परन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने तो यह निध्य किया है कि—ताज़े फल और शाक तरकारी विलक्षल न खाने से स्कर्वी अर्थात् रक्तिपत्त का रोग हो जाता है।

यह रोग पहिले फीम में, बेलों में, जहांनों में तथा दूसरे लोगों में भी बहुत बढ़ गया था, सना जाता है कि-आतसन नामक एक अंग्रेज ने ९०० आदिमियों को साथ लेकर जहाज पर सवार होकर सब प्रथिवी की प्रदक्षिणा का प्रारन्म किया था, उस यात्रा में ९०० आदमियों में से ६०० आदमी इसी स्कर्वी के रोग से इस संसार से विदा होगये तथा शेष बचे हर ३०० में से भी आधे (१५०) उसी रोग से प्रस्त होगये थे, इस का कारण यही था कि वनस्पति की ख़राक का उपयोग उन में नहीं था. इस के पश्चात केप्टिन क्रके ने पृथ्वी की प्रदक्षिणा का प्रारम्भ कर उसी में तीन वर्ष व्यतीत किये. उन के साथ ११८ आदमी थे परन्तु उन में से एक भी स्कर्वी के रोग से नहीं मरा, क्योंकि केप्टिन को माइस था कि ख़राक में वनस्पति का उपयोग करने से तथा नीव का रस लाने से यह रोग नहीं होता है, आखिरकार धीरे २ यह बात कई विद्वानों को माछम होगई और इसके माल्स हो जाने से यह नियम कर दिया गया कि-जितने जहाज यात्रा के छिये निकलें उन में मनुष्यों की संख्या के परिमाण से नींबू का रस साथ रखना चाहिये और उस का सेवन प्रतिदिन करना चाहिये, तब से छेकर यही नियम सर्कारी फीज तथा जेळलानों के लिये भी सकीर के द्वारा कर दिया गया अर्थात् उन लोगों को भी महीने में एक दो वार वनस्पति की ख़राक दी जाती है, ऐसा होने से इस स्कर्वी (रक्तवित्त) रोग से जो हानि होती थी वह वहुत कम हो गई है।

१-जैसा कि लिखा है कि-"सर्वेषु शाकेषु क्सन्ति रोगाः" इत्यादि ॥

२-परन्तु मेरी सम्मति मे उत्तम पळादि का विलकुल खाग भी नहीं कर डेना चाहिये ॥

ऊपर के लेख को पढ़ कर पाठकों को यह नहीं समझ लेना चाहिये कि—इस (रक्ष-पिच) रोग के कारण को डाक्टरों ने ही खोज कर बतलाया है क्योंकि—पूर्व समय के जैन श्रावक लोग भी इस बात को अच्छी तरह से जानते थे, देखो । उपासकदशास्त्र में आनन्दश्रावक के बारह ब्रतों के प्रहण करने के अधिकार में यह वर्णन है कि—आनन्द-श्रावक ने एक क्षीरामल फल (खीरा ककड़ी) को रखकर और सब वनस्पतियों का लाग किया, इस वर्णन से यह सिद्ध होता है कि—आनन्दश्रावक को इस विद्या की विज्ञता थी, क्योंकि उस ने क्षीरामल फल को यही विचार कर खुला रक्सा था कि यदि एक भी उत्तम फल को मैं खुला न रक्खूंगा तो स्कर्वी (रक्तपिच) का रोग हो जावेगा और शरीर में रोग के होजाने से धर्मध्यानादि कुछ भी न बन सकेगा।

परन्तु बड़े ही शोक का विषय है कि—वर्त्तमान समय में हमारे बहुत से मोले जैन बन्धु एकदम मुक्ति में जाने के लिये बिल्कुल ही वनस्पित की ख़ुराक का त्याग कर देते हैं, जिस का फल उन को इसी मन में मिलजाता है कि ने बनस्पित की ख़ुराक का बिल-कुल त्याग करने से अनेक रोगों में फँस जाते है तथापि ने ज़रा भी उन (रोगों) के कारणोंकीओर ध्यान नहीं देते है।

इस विद्या का यथार्थ ज्ञान होने से मनुष्य अपना करुयाण अच्छी तरह से कर सकता है, इस लिये सब जैन वन्धुओं को इस विद्या का ज्ञान कराने के लिये यहां पर संक्षेप से हम ने इस विद्या करने के लिये यहां पर संक्षेप से हम ने इस विद्या है, इस बात का निश्चय करने के लिये यदि प्रयक्त किया जाये तो सैकड़ों ऐसे प्रत्यक्ष उदाहरण मिल सकते है जिन से यही सिद्ध होता है कि—वनस्पति की ख़ुराक का बिल्कुल त्याग कर देने से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते है, देखों! जिन लोगों ने एकदम बनस्पति की ख़ुराक को बन्द कर दिया है उनकी गुदा और मुख से प्रायः खून गिरने अगता है अर्थात् किसी २ के महीने में दो चार बार गिरता है और किसी २ के दो चार बार से भी अधिक गिरता है तथा मुख में छाले आदि भी हो जाते हैं इत्यादि बार्ते जब आंखों से दीखती है तो उन के लिये दूसरे प्रमाण की क्या आव- इयकेंता है!

हाक्टरों का कथन है कि—उपयोग के लिये शाक और फल आदि उत्तम होने चाहियें चाहें वे थोड़े भी मिलें, और विचार कर देखने से यह बात विलकुल ठीक भी माल्स होती है, क्योंकि—थोड़े भेरि शाक और फल आदि हों परन्तु उत्तम हों तो उन से विशेष लाम होता है और बाज़ार में कई दिन तक पड़े रहने के कारण सुखे और सड़े हुए शाक

१-इस प्रन्थ का अनुवाद अप्रेजी भाषां, मे भी छप चुना है ॥

२-जैसा कि न्याय का सिद्धान्त है कि "अस्यक्षे कि अमाणम्" अर्थात् अस्यक्ष में व्सरे प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है॥

और फल आदि चाहें अधिक भी हों तो भी उन से कुछ लाम नहीं होता है किन्तु उन से अनेक प्रकार की हानियां ही होती है, ताल्पर्य यह है कि हरी चीजों का बहुत ही सावधानी के साथ यथाशक्य थोड़ा ही उपयोग करना परन्तु उत्तमों का उपयोग करना बुद्धि-मानों का काम है और यही अभिप्राय सब वैश्वक अन्थों का भी है, परन्तु वर्तमान समय में हमारे देश के जिह्वालोल्जय लोगों में शाकादि का उपयोग बहुत ही देखा जाता है और उस में भी गुजराती, भाटिये, वैज्यव और श्रेव सम्प्रदायी आदि बहुत से लोगों में तो इस का वेपरिमाण उपयोग देखा जाता है तथा वस्तु की उत्तमता और अधमता पर एवं उस के गुण और दोष पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता है, इस से बड़ी हानियां हो रही है, इसलिये बुद्धमानों का यह कर्चन्य है कि—इस हानिकारक वर्षाय से अवस्य बचावें!

वनस्पति की खुराक के विषय में आखीय सिद्धान्त यह है कि जिस बनस्पति में शक्तिदायक तथा उष्णतामद (गर्मी छानेवाला) भाग थोड़ा हो और पानी का भाग विशेष हो इस प्रकार की तानी बनस्पति थोड़ी ही खानी चाहिये।

पत्ते, फूछ, फूछ और कन्द आदि कई प्रकार के शाक होते है-हन में अनुक्रम से पूर्व र की अपेक्षा उत्तर र का भारी होता है अर्थात् पत्तों का शाक सब से हलका है और कन्द का शाक सब से मौरी है।

हमारे देश के बहुत से ठोग वैद्यकविद्या और पाककाश्च के न जानने से शाकादि पदार्थों के ग्रुण दोष तथा उन की गुरुता छद्दता आदि को मी विलक्षक नहीं जानते हैं, इसिलिये वे अपने शरीर के लिये उपयोगी और अनुपयोगी शाकादि को नहीं जानते हैं अतः कुछ शाकों के ग्रुण आदि का वर्णन करते हैं:—

'चैंद्छिया (चौलाई) इंछका, ठंढा, रूक्ष, मल मूत्र को उतारनेवाला, रुचिक्षी, लंगिदीपक, विवनाशक और पित्त कफ तथा रक्त के विकारको मिटानेवाला है, इस का शाक प्रायः सब रोगों में पथ्य और सवों की प्रकृति के अनुकूल है, यह जैसे सब शाकों में पथ्य है उसी प्रकार क्षीके प्रदर में इस की जड़, वालकों के दल और अलीणता में इस के उवाले हुए पत्ते और जड़ पथ्य है, कोट, वातरक्त, रक्तविकार, रक्तपित्त और खाज दाद तथा फ़ुनसी लादि चर्म रोगों में भी विना लाल मिर्चका इस का शाक खाने से बहुत लाम होता है, वदा और पेशाव को साफ लाता है, पेशाव की गर्मी को शान्त करता है, वस्त और पेशाव को साफ लाता है, पेशाव की गर्मी को शान्त करता है, खून को शुद्ध करता है, पित्त के विकार को मिटाता है, यदि किसी विकृत दवा की गर्मी

[.] १-जिस शाक को जैन सूत्रों में जगह २ पर 'अनन्तकाय' के नाम से छिसा है वह शाक महागरिष्ट, रोगकर्ता और कष्ट से पत्रनेवाला समझना चाहिये ॥

अथवा किसी विष का प्रभाव हो रहा हो तो इस के पत्तों को उवाल कर तथा उन का रस निकाल कर उस रस को शहद वा मिश्री ढाल कर पीने से तथा इस का शाक खाने से दवा की गर्मी और विष का असर दख्त और पेशाव के मार्गसे निकल जाता है, इस को जिस कदर अधिक सिजाया जांवे उसी कदर यह अधिक खादिष्ठ और गुणकारी हो जाता है, मद, रक्तपित्त, पीनस, त्रिदोक्जवर, कफ, खांसी और दख्त की वीमारी में भी यह बहुत फायदोमन्द है।

्रिपालक अभिदीपक, पाचक, मलशुद्धिकारक, रुचिकर तथा शीतल है, शोध, विष-दोष, हरस तथा मन्दामि में हितकारक है ॥

बशुआ; - बशुए का जाक पाचक, रुचिकर, हलका और दस्त की साफ लानेताला है, तापतिल्ली, रक्तविकार, पित्त, हरस, क्रमि और त्रिदोष में फायनेमन्द है ॥

'पानगोभी - फूछ गोभी की चार किस्मों से यह (पानगोभी) अलग होती है, यह भारी, ब्राही, मधुर और रुचिकर है, वातादि तीनों दोषोंमें पथ्य, सन के दूध और वीर्य को बढ़ानेवाली है।।

पानमधी यह पित्तकारक तथा त्राही है, परन्तु कफ, वायु और कृमि का नाश

करती है, रुज़िक्स और पाचक होती है ॥

अरुई के पत्ते अरुई के पत्तों का शाक रक्तिपत्त में अच्छा है, परन्तु वस्त की कच्ची कर बाय की क्रिया की का का का क्रिया की क्रिया की क्रिया की का क्रिया की क्रिया की क्

मोगरी तीक्ष्ण तथा उप्ण है और कफ बायु की प्रकृतिबाछ के छिये अच्छी हैं ॥
मूली के पुरते मूली के ताने पत्तों का शाक-पावक, हलका, रुविकर और गर्म
है, मूली के पत्तों को बीकानेर गुजरात और काठियावाड़ के छोग तेल में पकाते है तथा
उन के शाक को तीनों दोषों में लामदायक समझते है, इस के कच्चे पत्ते पित्त और कफ
को दिगाइते है ॥

परवल इदय को हितकर, वलवर्षक, पाचक, उच्चा, रुचिकर, कामवर्षक, हलका और चिकना है, लांसी, रक्तिपत्त, ज्वर, त्रिदोषज सिन्निपात और कृमि आदि रोगों में बहुत फायदेमन्द है, फलों के सब शाकों में सर्वोत्तम शाक परवल का ही है ॥

भीठा तुंबा मीठा, घातुवर्धक, वलवर्षक, पैष्टिक, श्रीतल और रुचिकर है, परन्तु पचने में भारी, कफकारक, दस्त को बन्द करनेवाला और गर्म को सुखानेवाला है, इस को कहूं, लवा और दूधी भी कहते हैं तथा इस का शीरा भी बनाया जाता है।

१-पूर्व के देशों में अरुई को बुद्या कहते है ॥

२--यदापि जैसलमेर के रावल जीने ऐसा कहा है कि--'भूकीमूल न खाय, जी प्रख नाहे जीव रो" परन्तु यह कथन एकदेशी है, क्योंकि कची भूली भी बहुत से रोगों में पथ्ये भानी गई हैं॥

कोला, पेटा इस की दो किस्में हैं—एक तो पीला और लाल होता है उस को कोला कहते है, उस का शांक बनाया जाता है और दूसरा सफेद होता है उस को पेटा, कहते है, उस का गुरल्या बनता है, यह बहुत मीठा, ठंढा, रुविकर, तृतिकर, पृष्टिकारक और वीर्यवर्षक है, ज्ञान्ति और अकावट को दूर करता है, पित्त, रक्तविकार, दाह और वायु को मिटाता है, छोटा कोला ठंढा होता है इस लिये वह पित्त को शान्त करता है, मध्यम कद का कोला कफ करता है और बड़े कद का कोला बहुत ठंढा नहीं है, मीठा है, खारवाला, अग्निदीपक, हलका, मूत्राशय का शोधक और पित्त के रोगों को मिटाने-वालों है ॥

ं चेंगन — वेंगन की दो किस्में हैं — काला और सफेद, इन में से काला वेंगन नींद लाने वाला, रुचिकारक, भारी तथा पौष्टिक है, और सफेद वैगन दाह तथा चमडी के रोग को उत्पन्न करता है, सामान्यतया दोनों प्रकार के वैगन गर्भ, वायुहर तथा पाचक होते है, एक दूंसरी तरह का भी नींचू जैसा वैगन होता है तथा उसे गोल काचर कहते है, यह कफ तथा वायु की प्रकृतिवाले के लिये अच्छा है तथा खुजली, वातरक्त, उवर, कामला और अरुचि रोगवाले के लिये भी हितकारी है, परंतु जैनस्त्रों में वैगन को वहुतं सूक्ष्म वीज होने से अमक्ष्य लिखा है।

चिया तोरई— साविष्ट, मीठी, वात पित्त को मिटानेवाली और ज्वर के रोगी के लिये भी अच्छी है ॥

तोरी — बातल, ठंढी और मीठी है, कफ करती है, परन्तु पित्त, दमा, श्वास, कास, ज्वर और क्वमिरोगों में हितकारक है ॥

करेला—कडुआ, गर्म, रुचिकारक, हलका और अग्निदीपक है, यदि यह परिमित (परिमाण से) खाया जाने तो सन प्रकृतिवालों के लिये अनुकृल है, अरुचि, कृमि और ज्वर आदि रोगों में भी पथ्य है॥

क्ति हो — इस की बहुत सी किस्में है — उन में से खीरा नाम की जो ककड़ी है वह कची ठंढी, रूक्ष, दस्त को रोकनेवाली, भीठी, भारी, रुचिकर और पितनाशक है, तथा

१-इसे पूर्व में काशीफल, सीताफल, गगाफल और लांका भी कहते हैं ॥

२-इस को कुम्हेडा भी कहते हैं ॥

३-इसका आगरे में पेठामी बहुत उमदा बनता है जिसको सुशिदाबादवाले हेमब्री व्हिन हे और व्यवाह आदि में बहुत उमदा बनावी जाती हैं॥

४-िक्सी अनुभवी वैद्य ने कहा है कि-"वंगन कोमल पथ्य है, कोला कया जहर है, हरडे कथी और पक्षी सदा पथ्य है, बोर (वेर) क्या पक्षा सदा कुपथ्य है"॥

५-इम को आनन्द शावक ने तुका रक्षाया, यह परिते कह तुके हैं, यह धर्मान्मा धाउक महाशिर सामी के समय में हुआ है, (देखो-उपातक दशा सृष्ठ)॥

वहीं पक्की ककड़ी अग्नि और पित्त को बढाती है, मारवाड़ की ककेंड़ी तीनों दोषों को कुपित करती है इसिल्ये वह खाने और शाक के लायक विलक्तल नहीं है, हां यदि खूब पकी हुई हो और उस की एक या दो फांकें काली मिर्च और सेंधानमक लगा कर खाई जावें तो वह अधिक नुकसान नहीं करती है परन्तु इस का अधिक उपयोग करने से हानि ही होती है।

्रेकालिन्द ("मैंतीरा) — कफकारक और वायुकारक है, लोग कहते हैं कि यह पित्र की प्रकृति वाले के लिये अच्छा है परन्तु इस का अधिक सेवन करने से क्षय की वीमारी हो जाती है, वास्तव में तो ककड़ी और मतीरा तीनो दोषों में अवस्य विकार को पैदा करते हैं इस लिये ये उपयोग के योग्य नहीं है।

बीकानेर के निवासी छोग कन्ने मतीरे का शाक करते हैं तथा पके हुए मतीरे को हेमंत ऋतु में खाते है सो यह अत्यन्त हानिकारक है, मारवाड़ के जाट छोग और किसान आदि कन्नी बाजरी के मोरड़ को खाकर ऊपर से मतीरे को खा छेते है इस से उन को अभ्यास होने से यद्यपि किसी अंश में कम नुकसान होता है तथापि महिनों तक उस का सेवन करने से श्रीत दाह जनर का साद उन्हें भी चलना ही पड़ता है ॥

सम की फली—मीटी है, ठंढी और मारी होने से बातळ है, पित्त को मिटाती है तथा ताक्षत देती है ॥

खनार फली─रूक्ष, आरी, कफकारक, अग्निदीपक, सारक (दस्तावर) और पित-हर है, परन्तु वायु को बहुत फरती है ॥

सहजने की फली मीठी, कफहर, पिचहर और अत्यन्त अमिदीपक है, रूढ़, कोढ़, क्षय, श्वास तथा गोले के रोग में बहुत पथ्य है, सहजने की फली के सिवाय बाकी सब फलियां वातल है।

्रसूरण कैन्द् अभिदीपक, रूस, हरूका, पाचक, पित्तकर्चा, तीक्षण, मरुसस्भक्ष और रुचिकर है, हरस, शूळ, गोला, कृमि, कफ, मेद, वायु, अरुचि, श्वास, तिल्ली और सांसी, इन सब रोगों में फायदेमन्द है, परन्तु दाद, कोढ़ और रक्तपित्त के रोगी के लिये अपथ्य है, हरस की वीमारी में इस का शाक तथा इसी की रोटी पूड़ी और शीरा आदि वनाकर खाने से दवा का काम करता है, कन्दशाकों में सूरण का शाक सब से श्रेष्ठ है परन्तु इस को अच्छीतरह पका कर तथा घृत डाककर खाना चाहिये॥

⁹⁻इस को गुजरात में चीमडा कहते हैं तथा इसी का नाम संस्कृत में चिमेटी है।। २-इस को पूर्व वेदा में तरवृज कहते हैं और वहां वह गर्मी की ऋत में उत्पन्न होता है।।

३-इस में अरुई की तरह काटे होते हैं।

्रें अरेस्ट्र - ठंढा, मीठा, रूक्ष, मूत्र तथा मल को रोकनेवाला, पोषणकारक, बलवर्षक, स्तन के दूध तथा बीर्य को बढ़ानेवाला, रक्तिपत्त का नाशक और कुछ वायुकत्ती है परन्तु अधिक धी के साथ खाने से वायु नहीं करता है, अंगार में मून कर अधवा धी में तलकर छोटे बालकों को खिलाने से उन का अच्छी तरह पोषण करता है तथा हाड़ों को बढ़ाता है।।

रतालु तथा सकरकन्द्—पृष्टिकारक, मीठा, मलको रोक्ते वाला और कफ-कारी है।।

सूछी— भारी मल को रोकने वाली, तीसी, उप्णताकारक, अमिदीपक और रुचिकर है, हरस, गुल्म, श्वास, कफ, ज्वर, वायु और नाक के रोगों में हितकारी है, कची मूली तीनो मकृति वाले लोगों के लिये हितकारक है, पकी हुई तथा बड़ी मूलियों को मूले कहते है—वे (मूले) क्रक, अति गर्म और कुपथ्य है, मूले के ऊपर के लिलके मारी और तीसे होते है इसलिये वे अच्छे नहीं है, मूले को गर्म जल में अच्छी तरह से सिजा कर पीछे अधिक भी या तेल में तल कर खाने से वह तीनों प्रकृति वालों के लिये अनुकूल हो जाता है।

गाजर—मीठी, रुचिकर तथा प्राही है, खुबली और रक्तविकार के रोगों में हानि करती है, परन्तु अन्य बहुत से रोगों में हितकारी है, यह वीर्य को विगाड़ती है इसलिये इस को समझदार लोग नहीं खाँते हैं॥

्कॉॅंद्रा—बलवर्षक, तीखा, मारी, मीठा, रुचिकर, बीर्यवर्षक तथा कफ और नीद को पैदा करने वाला है, क्षय, क्षीणता, रक्तपित्त, वमन, विष्ट्चिका (हैज़ा), क्रमि, अरुचि, पसीना, शोथ और खून के सब रोगों में हितकारी है, इस का शाक सुरब्बा और पाक आदि भी बनता है।

रांघने की युक्ति और दूसरे पदार्थों के संयोग से शाक तरकारी के गुणों में भी अन्तर हो जाता है अर्थात् जो शाक वायुकर्चा होता है वह भी बहुत घी तथा तेल के संयोग से बनाने पर वायुकर्चा नहीं रहता है, इसी प्रकार सूरण और आब्द आदि जो शाक पचने में मारी है उस को पहिले खूब जल में सिजाकर फिर घी था तेल में छौका जावे तो वह हानि नहीं करता है क्योंकि ऐसा करने से उस का मारीपन नष्ट हो जाता है।

१-इसीलिये-जैन बालों में जगह २ कन्द के खाने का निषेष किया है तथा अन्यत्र भी इस का सर्वत्र निषेष हैं। किया है, इस लिये कन्द का कोई भी खाक दवा के सिवाय जैनी तथा वैष्णवों को भी नहीं खाना चाहिये, क्योंकि-जैन सूत्रों में कन्द को 'अनन्तकाय, के नाम से वतलाकर इस के खाने का निषेष किया है तथा वैष्णव और शैव सम्प्रदाय वालों के धर्मप्रन्यों में भी कन्दमूल का खाना निषिद्ध हैं, इस का प्रमाण सात व्यसन तथा राजिमोजन के वर्णन में आगे हिस्केंगे॥

शाकों के विषय में यह भी स्नरण रखना चाहिये कि—आकों में बहुत छाछ मिर्च तथा दूसरे मसाछे ढाल कर नहीं खाने चाहियें, क्योंकि अधिक छाल मिर्च और मसाछे ढाल कर शाकों के खाने से पाचनअक्ति कम होकर दस्त, संग्रहणी, अम्लपिच, रक्तपिच और कुछ आदि रक्तविकारजन्य रोग हो जाँते हैं ॥

दुग्ध वर्ग ॥

द्ध का सामान्य गुण यह है कि-द्ध मीठा, ठंढा, पिचहर, पोपण कत्ती, दन्त साफ हाने वाला, बीर्य को जल्दी उत्पन्न करने बाला, बलबुद्धि वर्षक, मैथुन शक्ति वर्षक, अवस्था को स्थिर करने वाला, वयोवर्षक (आयु को बढ़ाने वाला), रसायन ऋष, इटे हुए हाडों को जोड़ने वाला, मुखे को वालक को और वृद्ध की तृप्ति देनेवाला, स्त्रीमोगादि से क्षीण को तथा जलम बाले को हित है, एवं जीर्णज्वर, अम, मूर्छा, मनःसम्बन्धी गेग, शोष, हरस, गुरुम, उदररोग, पाण्डु, मृत्ररोग, रक्तपित्त, श्रान्ति, तृपा, दाह, उरोरोग (छाती के रोग,) शूल, आध्मान (अफरा), अतीसार और गर्भन्नाव में दूव अत्यन्त पथ्य है, न केवल इन्हीं में किन्तु प्रायः सब ही रोगों में दुव पथ्य है: परन्तु सिनपात, · नवीन ज्वर, वातरक्त और कुछ आदि कई एक रोगों में दूब का निषेत्र है, यद्यपि नवीन जबर में तो कोनैन पर डाक्टर छोग दूध पिछा भी देते हैं परन्त सिन्नपातकी अवस्था में तो द्ध विष के तुल्य है यह निश्चित सिद्धान्त है, एवं मुज़क (फ़िरंग) रोग की तर-णावस्था में भी दूष हानिकारक है, जो छोग दूष की छस्सी बना कर पीते हैं वह गाँठिया हो जाने का मूळ कारण है, दूष में यह एक बढ़ा ही अपूर्व गुण है कि-यह अति शीष्र षातु की दृद्धि करता है अर्थात् नितनी जल्दी दूध से बातु की दृद्धि होती है उतनी जरूदी अन्य किसी भी वस्तु से नहीं हो सकती है, देखों। किसी ने कहा भी है कि-"बीर्य वड़ावन वरुकरण, जो मोहि पूछो कोय ॥ पय समान तिहुँ छोक में, अपर न औपघ होय" ॥ १ ॥

गाय के दूध में ऊपर लिखे अनुसार सब गुण हैं परन्तु गाय के वर्णमेद से दूध के गुणों में भी कुछ अन्तर होता है बिस का संक्षेप से वर्णन यह है कि:—

काली गाय-का-दूध—वायुहर्ता और अधिक गुणकारी है ॥ टाल गांच का दूध—वातहर और पित्तहर होता है ॥ सफेद गाय-का दूध—कुछ कफकारी होता है ॥ तुरत की ज्याई हुई गाय का दूध—तीनों होगों को उत्पन्न करता है ॥

१-व्ह संक्षेप से कुछ शाकों का वर्णन किया गया है, श्रेष आबसे का वर्णन वृहिन्नघण्टु रजाकर शादि प्रन्थों में देखना चाहिने ॥

विना बछ है की गाय का दूघ — यह भी तीनों दोशों को उत्पन्न करेता है ॥
भेंस का दूघ — यथि भैस का दूघ गुण में कई दर्जे गाय के दूघ से मिलता हुआ
ही है तथापि गाय के दूघ की अपेक्षा इस का दूघ अधिक मीठा, अधिक गाड़ा, भारी,
अधिक वीर्यवर्धक, कफकारी और नीद को बढ़ानेवाला है, वीमार के लिये गाय का दूध
जितना पथ्य है उतना भैस का दूघ पथ्य नहीं है ॥

चकरी का दूध—मीठा, ठंढा और हलका है, रक्तपित्त, अतीसार, क्षय, कास और ज्वर की जीर्णावस्था आदि रोगों में पथ्य है ॥

भेड़ का दूध— खारा, मीठा, गर्म, पथरी को मिटानेवाला, वीर्थ, पित्त और कफ की पैदा करनेवाला, वायु को मिटानेवाला, खट्टा और इलका है ॥

उँदनी का दूध — हलका, मीठा, खारा, अभिदीपक और दसा लानेवाला है, कृति, कोद, कफ, पेटका अफरा, शोध और बलोदर आदि पेट के रोगों को मिटाता है। किता किता दूध — हलका, ठंढा और अभिदीपक है, बायु, पित्त, नेत्ररोग, शूल और बमन को मिटाता है।

भारोषण दूध—शक्तिमद, हलका, ठंढा, अभिदीपक और त्रिदोनहर है। इस की वैचक शास में बहुत ही मशंसा लिखी है तथा बहुत से अनुभवी पुरुष भी इस की अत्यन्त मशंसा करते हैं—इस लिये यदि इस की मासि हो सके तो इस के सेवन का अभ्यास अवस्य रखना चाहिये क्योंकि यह दूध बालक से लेकर बृद्धतक के लिये दितकारी है तथा सब अवस्थाओं में पथ्य है।

दुहने के पीछे जब दूध ठंढा पड़ जावे तो उस को गर्म करके उपयोग में छाना चाहिये, क्योंकि कचा दूध वादी करता है इस छिये कचा नहीं पीना चाहिये, गाय तथा मैंस के दूध के सिवाय और सब पशुओं का कचा दूध शर्दी तथा आम को उत्पन्न करता है, इस छिये कुपथ्य है, गर्म किया हुआ दूध वायु कफ की प्रकृतिवाछे को छुहाता हुआ गर्म पीने से फायदा करता है, अधिक गर्म दूध का पीना पिचमकृतिवाछे को हानि पहुँ-चाता है तथा गर्म दूध के पीने से मुख में छाछे भी पड़ जाती हैं इस छिये गर्म दूध को ठंढा कर के पीना चाहिये, दूध के बज़न से आधा बज़न पानी डाल कर उस को औदाना चाहिये जब पानी जल जावे केवल दूध मात्र शेष रह जावे तब उस को उतार कर ठंढा करके कुछ मिश्री आदि मीठा डाल कर पीना चाहिये। यह दूध बहुत हलका तीनों प्रकृति-वालों के छिये अनुकूल तथा वीमार के छिये भी पथ्य है, औदाने के द्वारा बहुत गादा

१—सामान्यतया वाखडी गाय का (जिस को ज्याये हुए दो चार महीने वीत गये हैं उस गाय का) दूख उत्तम होता है, इस के सिवाय जैसी खुराक गाय को खाने को दी जाने उसी के अनुसार उस के दूध में भी गुण और दोप रहा करता है।।

हुआ दृष भारी हो जाता है इसिल्ये यह दूब नहीं पीना चाहिये किन्तु वीमारों को तथा मन्द्रपाचन अक्तिवालों को दूष में ढाले हुए पानी के तीन हिस्से जल जानें तथा एक हिस्सा रह जाने उस दूष का पीना फायदेमन्द होता है, औटाने के द्वारा अविक गादा किया हुआ दूब वहुत ही भारी तथा अक्तिमद है परन्तु वह केवल पूरी पाचनशक्ति-वालों को तथा कसग्ती जवानों को ही पच सकता है।

श्वराय दूध—जिस दूध का रंग और लाद बदल गया हो, सहा पड़ गया हो, हुर्गनिय आने लगी हो और उस के ऊपर फेन सा वॅथ गया हो उस दूध को खराव हो गया समझ लेना चाहिये, ऐसा दूध कभी नहीं पीना चाहिये क्योंकि ऐसा दूध हानि करता है, दुहने के तीन घड़ी के पीछे मी यदि दूध को गर्म न किया जाने तो वह हानिकारक हो जाता है इस दूध को वासा दूध भी माना गया है, यदि दुहा हुआ दूध दुहने के पीछे पांच घड़ी तक कचा ही पड़ा रहे और पीछे लाया जाने तो वह अवश्य विकार करता है अर्थात् वह अनेक प्रकार के रोगों का हेत्र हो जाता है, दूध के विषय में एक आचार्य का यह भी कथन है कि—'गर्म किया हुआ भी दूध दश घड़ी के बाद विगड़ जाता है, इसी प्रकार जैन मध्यामक्य निर्णयकार ने भी कहा है कि—'दुहने के सात घण्टे के बाद दूध (चाहे वह गर्म भी कर लिया गया हो तयापि) अमध्य हो जाता है, और विचार कर देखने से यह बात टीक भी प्रतीत होती है क्योंकि सात घण्टे के बाद दूध अवश्य लहा हो जाता है, इस लिये दुहने के पीछे या गर्म करने के पीछे बहुत देर तक दूध को नहीं पड़ा रखना चाहिये।

प्रातःकाल का दूष सार्थकाल के दूष से कुछ भारी होता है, इस का कारण यह है कि रात को पशु चलते किरते नहीं हैं इस लिये उन को परिश्रम नहीं मिलता है और रात ठंढी होती है इसलिये पातःकाल का दूष मारी होता है तथा सार्थकाल का दूष प्रातःकाल के दूष से हलका होने का कारण यह है कि दिन को सूर्य की गर्मी के होने से और पशुओं को चलने किरने के द्वारा परिश्रम प्राप्त होने से सार्थकाल का दूष हलका होता है, इस से यह भी सिद्ध होता है कि—सदा वैधे रहनेवाले पशुओं का दूष मारी और चलने किरनेवाले पशुओं का दूष हलका तथा कायदेगन्द होता है, इस के सिवाय जिन की वायु तथा कफ की प्रकृति है उन लोगों को तो सार्थकाल का दूव ही अधिक अनुकृत लाता है।

^{9—}सर्वत के बचनामृत भिद्धान्त में दुहने से दो बड़ी के बाद कमें दूध को असहय किया है तथा जिन का रंग, खराबू, खाट और रूप बदल गया हो ऐसी खाने पीने की सब ही चीजों को असहय कहा है, इस्रिक्टिये कपर कही हुई बात का स्वयाल सब बस्तुओं में रखना चाहिये, इस्योंकि ऐसी असहय बस्तुये अवस्य ही रोग का कारण होती हैं॥

पोषण के सब पदार्थों में दूध , बहुत उत्तम पदार्थ है क्योंकि-उस में पोपण के सब तत्त्व मीज़द है, केवल यही हेत है कि-बीमार सिद्ध और योगी लोग वरसों तक दूध के द्वारा ही अपना निर्वाह कर आरोग्यता के साथ अपना जीवन विताते हैं, बहुत से लोगों को दय पीने से दस्त लग जाते हैं और बहुतों को कब्जी हो बाती है, इस का हेत्र केवल यही है कि-उन को दथ पीने का अभ्यास नहीं होता है परन्त ऐसा होने पर भी उन के लिये दध हानिकारक कमी नहीं समझना चाहिये, क्योंकि केवल पांच सात दिनतक उक्त अहचल रह कर पीछे वह आप ही ज्ञान्त हो जाती है और उन का दूध पीने का अभ्यास पह जाता है जिस से आगे की उन की आरोग्यता कायम रह सकती है, यह विलक्क परीक्षा की हुई बात है इस लिये अहांतक हो सके दूव का सेवन सदा करते रहना चाहिये. देखो । पारसी और अंग्रेज आदि श्रीमान् लोग दूघ और उस में से निकाले हुए मक्खन मलाई और पनीर आदि पदार्थों का प्रतिदिन उपयोग करते हैं परन्तु आर्य जाति के श्रीमान और मान्यवान लोग तो शाक राइता और लाल मिर्च आदि के मसालों आदि के शौक में पढ़े हुए है. अब साधारण गरीब छोगों की तो बात ही क्या कहें ! इस का असली कारण सिर्फ यही है कि-आर्य जातिके लोग इस विचा को विलक्षल नहीं समझते है इसी प्रकार से दूप की ख़राक के विषय में मारवाड़ी प्रजा भी विलक्कल मूली हुई है, जब यह दशा है तो कहिये शरीर की स्थिति कैसे अधर सकती है 2 इस लिये इस देश के माग्यवानों को उचित है कि-किस्से कहानी की पुस्तकों के पदने तथा इधर उधर की निकम्मी गप्पों के द्वारा अपने समय को व्यर्थ में न गंवा कर उत्तमोत्तम वैद्यक शास्त्र और पाकविचा के प्रन्थों को वण्टे दो वण्टे सदा पढ़ा करें तथा घर में रसोइया भी उसी की रक्लें जो इस विद्या का जाननेवाळा हो तथा जिस प्रकार गाडी घोडे आदि सब सामान रखते हैं उसी प्रकार गाय और भैस आदि उपयोगी पशुओं को रखना उचित है, बल्कि गाही घोडे आदि के लर्च को कम करके इन उपयोगी पशुओं के रखने में अधिक लर्च फरना चाहिये. क्योंकि गाड़ी घोड़ों से उतनी भाग्यवानी नहीं ठहर सकती है जितनी कि गायों और भैंसो से ठहर सर्कती है, क्योंकि इन पशुओं की पालना कर इन के वृध ही और मक्खन आदि बद्धिवर्धक उत्तमोत्तम पदार्थों के खाने से उन की और उन के लड़कों की बुद्धि स्थिर होकर बढेगी तथा बुद्धि के बढने से श्रीमन्त (श्रीमन्ताई वा भाग्यवानी) अवस्य बनी रहेगी, इस के सिवाय यह भी वात है कि-जितनी गार्थे और भैंसें पृथिवी पर अधिक होंगी उतना ही दच और घी अधिक सस्ता होगा।

१-डेखो उपायक दशा सूत्र में दश बढ़े श्रीमान् थावकों का अधिकार है, उस में यह लिखा है कि---कामदेव जी के ८० हज़ार गायें श्री तथा आनन्द जी के ४० हज़ार गायें श्री, इस प्रकार से दशों के गोकुल था॥

विचार कर देखने से प्रतीत होता है कि-इन पशुओं से देश को बहुत ही लाम पहुँ-चता है अर्थात क्या गरीब और क्या अमीर सब का निर्वाह इन्हीं पशुओं से होता है; इस लिये इन पशुओं की प्री सार सम्भाल और रक्षा कर अपनी आरोग्यता को कायम रखना और देश का हित करना सर्व साधारण का मुख्य कर्तव्य है, देखों! जब यह आर्यावर्त्त देश पूर्णतया उन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ था तब इस देश में इन पशु-ओंकी असंख्य कोटियां थीं परन्तु जब से दुर्माम्य वश्च इस पवित्र देश की वह दशा न रही और मांसाहारी यवनों का इस पर अधिकार हुआ तब से मांसाहारियों ने इन पशुओं को मार २ कर इस देश को सब तरह से लानते हैं कि अधिकार में है और इस समय जानते है कि वर्त्तमान समय श्रीमती बृटिश गवर्नमेंट के अधिकार में है और इस समय कोई किसी के साथ अत्याचार और अनुचित वर्त्ताव नहीं कर सकता है और न कोई किसी पर किसी तरह का दबाव ही डाल मकता है इस लिये इस सुघरे हुए समय में तो आर्य श्रीमन्तों को अपने हिताहित का विचार कर प्राचीन सन्मार्ग पर ध्यान देना ही चाहिये।

दूष में लार तथा खटाई का जितना तत्व मौजूद है उस से अधिक जब लार और खटाई का योग हो जाता है तब बह हानि करता है अर्थात् उस का गुणकारी घर्म नष्ट होजाता है इसिटिये विवेक के साथ दूष का उपयोग करना चाहिये।

दूध के विषय में और मी कई बातें समझने की हैं जिन का समझ छेना सर्व साधारण को उचित है, वे थे हैं कि—जैसे दूध में खार तथा खटाई के मिछने से वह फट जाता है (इस बात को प्रायः सब ही जानते हैं) उसी प्रकार यदि खार तथा खटाई के साथ दूध खाया जाने तो वह अवश्य हानि करता है, वैचक प्रन्थों का कथन है कि—यदि दूध को मोजन के समय खाना हो तो भोजन के सब पदार्थों को खा कर पीछे से दूध पीना चाहिये अथवा भोजन के पीछे भात के साथ दूध को खाना चाहिये, हां यदि मोजन में दूध के विरोधी खटाई, मिर्च, तेछ, पापड़ और गुड़ आदि पदार्थ न हों तो भोजन के साथ ही में दूध को सा छोना चाहिये।

दूध के साथ खाने में बहुत से पदार्थ मित्र का काम करते है और बहुत से पदार्थ शत्रु का काम करते हैं, इस का कुछ संक्षिप्त वर्णन किया जाता है:—

दृष्ट के कि कि च्या में छः रस हैं इसिंखे इन छः मों रसों के समान समाववाले (छः मों रसों के समान के तुस्य समाववाले) पदार्थ दूष के अनुकूछ अर्थात् मित्रवत् होते है, देखो । दूष में सद्दा रस है उस सटाई का मित्र आँवला है, दूष में मीठा रस है उस मीठे रस का मित्र बूरा या मिश्री है, दूष में कडुआ रस है उस कडुए रस का मित्र परवल है, दूष में तीखा रस है उस तीसे रस का मित्र सोंठ तथा अदरल है, दूष में

कवैठा रस है उस कवें हे रस का मित्र हरड़ है तथा दूध में खारा रस है उस खारे रस का मित्र सेंघानमक है, इन के सिवाय गेहूं के पदार्थ अर्थात् पूरी और रोटी आदि, चावळ, घी, मक्खन, दाख, शहद, मीठे आम के फळ, पीपळ, काळी मिर्च, तथा पाकों में जिन का उपयोग होता है वे पुष्टि और दीपन के सब पदार्थ मी दूध के मित्र वर्ग में हैं!!

कृष के अमित्र (दाञ्च) सेंचे नमक को छोड़ कर वाकी के सब प्रकार के खार दूध के गुण को विगाड़ डालते हैं, इसी प्रकार ऑवले के सिवाय सब तरह की खटाई, गुड़, मूँग, मूली, शाक, मद्य, मछली, और मांस दूध के सङ्ग मिल कर शत्रु का काम करते है, देखो ! दूध के सङ्ग नमक वा खार, गुड़, मूंग, मौठ, मछली और मांस के खाने से कोड आदि चमरोग हो जाते है, दूध के साथ शाक, मद्य और आसव के खाने से पित्त के रोग होकर मरण हो जाता है ॥

कपर लिखी हुई बस्तुओं को दूध के साथ खाने पीने से जो अवगुण होता है यद्यपि उस की खबर खानेवाले को शीघ ही नहीं माछम पड़ती है तथापि कालान्तर में तो वह अवगुण प्रवलक्ष्म से प्रकट होता ही है, क्योंकि सर्वज्ञ परमात्मा ने मक्ष्यामक्ष्य निर्णय में जो कुछ कथन किया है तथा उन्हीं के कथन के अनुसार जैनाचार्य उमाखाति वाचक आदि के बनाये हुए अन्थों में तथा जैनाचार्य श्री जिनदत्त सूरि जी महाराज के बनाये हुए 'विवेकविलास, चर्चरी, आदि अन्थों में जो कुछ लिखा है वह अन्यथा कभी नहीं हो सकता है, क्योंकि उक्त महात्माओं का कथन तीन कारू में भी अवाधित तथा युक्ति जीर प्रमाणों से सिद्ध है, इस लिये ऐसे महानुभाव और परम परोपकारी विद्वानों के बचनों पर सदा प्रतीति रख कर सर्व जीवहितकारक परम पुरुष की आज्ञा के अनुसार चलना ही मनुष्य के लिये कल्याणकारी है, क्योंकि उन का सत्य वचन सदा पथ्य और सब के लिये हितकारी है।

वेसी ! सैकड़ों मनुष्य ऊपर जिसे खान पान को ठीक तीर से न समझ कर जब अनेक रोगों के झपाटे में आ जाते है तब उन को आधार्य होता है कि अरे यह क्या हो गया ! इस ने तो कोई कुपध्य नहीं किया था फिर यह रोग कैसे उत्पन्न हो गया ! इस प्रकार से आधार्य में पढ़ कर वे रोग के कारण की खोज करते है तो भी उन को रोग का कारण नहीं माछम पढ़ता है, क्योंकि रोग के दूरवर्ती कारण का पता छगाना बहुत कठिन बात है, तारपर्य यह है कि बहुत दिनों पहिछे जो इस प्रकार के विरुद्ध खान पान किये हुए होते है वे ही अनेक रोगों के दूरवर्ती कारण होते है अर्थात् उन का असर अरीर में विष के तुल्य होता है और उन का पता छगना भी कठिन होता है, इस छिये मनुष्यों को जनममर दुःख में ही निर्वाह करना पड़ता है, इस छिये सर्व साधारण को उचित है कि संयोगविरुद्ध मोजनों को जान कर उन का विष के तुल्य त्याग कर देवें,

क्योंकि देखों ! सदा पथ्य और परिमित (परिमाण के अनुकूछ) आहार करनेवालों को भी जो अकस्मात् रोग हो जाता है उस का कारण भी वही अज्ञानता के कारण पूर्व समय में किया हुआ संयोग विरुद्ध आहार ही होता है, क्योंकि वही (पूर्व समयमें किया हुआ संयोगविरुद्ध आहार ही) समय पाकर अपने समबायों के साथ मिलकर झट मनुष्यको रोगी कर देता है, संयोगविरुद्ध आहार के वहुत से भेद हैं—उन में से कुछ भेदों का वर्णन समयानुसार कम से आगे किया जायेगा ॥

घृत वर्ग ॥

धी के सामान्य गुणं भी रसायन, मघुर, नेत्रों को हितकर, अग्निदीपक, शितवीर्यवाल, बुद्धिवर्धक, जीवनदाता, श्ररीर को कोमल करनेवाला, वल कान्त और वीर्य
को वढानेवाला, मलनि सारक (मल को निकालनेवाला), भोजन में मिठास देनेवाला,
वायुवाले पदार्थों के साथ खाने से उन (पदार्थों) के वायु को मिटानेवाला, गुमड़ों को
मिटानेवाला, गृलमी को वल देनेवाला, कण्ठ तथा खर का जोषक (शुद्ध करनेवाला),
मेद और कफ को वढानेवाला तथा अग्निदग्व (आग से जले हुए) को लागदायक है,
वातरक, अजीर्ण, नसा, शूल, गोला, दाह, शोध (स्वन), क्षय और कर्ण (कान) तथा
मस्तक के रक्तविकार आदि रोगों में फायदेमन्द है, परन्तु साम ज्वर (आम के सहित
बुखार) में और सिनपात के ज्वर में कुपध्य (हानिकारक) है, सादे ज्वर में वारह दिन
वीतने के वाद कुपध्य नहीं है, वालक और वृद्ध के लिये गतिक्ल है, बढा हुआ क्षय
रोग, कफ का रोग, आमवात का रोग, ज्वर, हैज़ा, मलबन्व, बहुत मिदरा के पीने से
उत्पन्न हुआ मदात्यय रोग और मन्दािश, इन रोगों में वृत हानि करता है, साधारण
मनुष्यों के मितिदिन के मोजन में, यकावट में, क्षीणता में, पाण्हरोग में और आंख के
रोग में ताना थी फायदेमन्द है, मुर्छा, कोढ़, विष, उन्माद, वादी तथा तिमिर रोग में
पक्त वर्ष का पुराना थी फायदेमन्द है।

श्वास रोग वाले को वकरी का पुराना थी अधिक फायदेमन्द है।

गाय और भैस आदि के दूध के गुणों में जो २ अन्तर कह चुके हैं वही अन्तर उन के धी में भी समझ छेना चौडिये !

^{े-}बह दूझ का तथा सबीगनिरुद्ध बाहार का (असंगवश) कुछ वर्णन किया है तथा कुछ वर्णन संयोग-विरुद्ध शहार का (कपर छिखी प्रतिज्ञा के अनुसार) आने किया जावगा, इन दोनों का होय वर्णन वैद्यक प्रत्यों में देखना चोहिये ॥

२-भी को तपा कर तथा छान कर खाने के उपयोग ने छाना चाहिये ॥

[·] ३—इस के लिवाय जिस २ पशुके दूषमें जो २ गुण कहे हैं देही गुण उस पशु के घी में भी जानने चाहियें ॥

सब तरह के मल्हमों में पुराना थी गुण करता है किन्तु केवल पुराने थी में भी मल्हम के सब गुण है।

् भी को शास्त्रकारों ने रत्न कहा है किन्तु विचार कर देखा जावे तो यह रत्न से भी अधिक गुणकारी है परन्तु वर्त्तमान समय में शुद्ध और उत्तम भी भाग्यवानों के सिवाय साधारण पुरुषों को मिलना कठिन सा होगया है, इस का कारण केवल उपकारी गाय मैंस आदि पश्चों की न्यूनता ही है ॥

गाय का सक्खन — नवीन निकाला हुआ गाय का मक्खन हितकारी है, वलवर्षक है, रंग को सुधारता है, अग्नि का दीपन करता है तथा दख को रोकता है, बायु, पित्त, रक्तविकार, क्षय, हरस, अर्दित बायु तथा खांसी के रोग में फायदा करता है, प्रातःकाल मिश्री के साथ खाने से यह विशेष कर शिर और नेत्रों को लाम देता है तथा बालकों के लिये तो यह अमृतरूप है ॥

अंस का मक्खन मैस का मक्खन बायु तथा कफ की करता है, सारी है, दाह

वासा मक्खन खारा तीखा और खट्टा होजानेसे वमन, हरस, कोट, कफ तथा मेद को उत्पन्न करता है।।

द्धिवर्ग ॥

-द्हीं के सामान्य गुण — दही - गर्म, अमिदीपक, सारी, पचनेपर सष्टा तथा दस्त को रोकनेवाका है, पित, रक्तविकार, शोथ, मेद और कफ को उत्पन्न करता है, पीनस, जुसाम, विषम ज्वर (ठंढ का तप), अतीसार, अरुचि, मूत्रक्रुच्छू और क्रशता (दुर्वकता) को दूर करता है, इस को सदा युक्ति के साथ साना चाहिये।

दही मुख्यतया पांच मकार का होता है—मन्द, लादु, लाद्वम्ल, अम्ल और अत्यम्ल, इन के लरूप और गुणों का संक्षेप से वर्णन किया जाता है:—

मन्द्—जो दही कुछ गावा हो तथा मिश्रित (कुछ दूध की तरह तथा कुछ दही की तरह) सादनाला हो उस को मन्द दही कहते हैं, यह—मल मूत्र की मन्दित को, तीनों दोषों को और दाह को उत्पन्न करता है ॥

. स्वादु — नो दही खून जम गया हो, जिस का खाद अच्छी तरह माख्म होता हो, मीठे रसवाठा हो तथा अन्यक्त अम्छ रसवाठा (जिस का अम्छ रस प्रकट में न माछ्म

१-रोप पशुओं के मक्खन के गुणों का वर्णन अनावत्यक समझ कर नहीं किया ॥

र-यह घृत का सक्षेप से वर्णन किया गया है, इस का विशेष वर्णन बूसरे वैद्यक प्रन्यों में टेखना चाहिये॥

३-वैसे देखा जावे तो मीठा और सद्ध, ये दो ही मेद प्रतीत होते हैं ॥

पड़ता हो) हो वह स्वादु दही फहलाता है, यह-श्वर्दी मेद तथा कफ को पैदा फरता है परन्तु वायु को हरता है, रक्तपित्त में भी फायदा करता है ॥

स्वाहरूल — जो दही खट्टा और मीठा हो, खूब जमा हुआ हो, लाने में थोड़ी सी हुसी देता हो उस को लाहरूल दही कहते है, यह—मध्यम गुणवाला है ॥

अम्ल-जिस दही में मिठासं बिलकुल न हो तथा खट्टा खाद प्रकट माद्धम देता हो उस को अम्ल दही कहते हैं, यह-यद्यपि अमि को तो प्रदीप्त करता है परन्तु पित्त कफ और खून को बढाता है और बिगाडता है ॥

अत्यक्त — जिस दही के खाने से दाँत वँघ से जार्ने (खट्टे पड़ जाने के कारण जिन से रोटी आदि भी टीक रीति से न खाई जा सके ऐसे हो जानें), रोमाश्च होने छगे (रोगटे खड़े हो जानें) अत्यन्त ही खट्टा हो, कण्ठ में जलन हो जाने उस को अत्यन्त ही कहते है, यह दही भी यद्यपि अग्नि को प्रदीप्त करता है परन्तु पित और रक्त को बहुत ही विगाइता है।

इन पांचों प्रकार के दिहयों में से खाद्धम्छ दही सब से अच्छा होता है ॥

उपयोग-गर्भ किये हुए दूध में जाँवन देकर जो दही बनता है वह कच्चे दूध के जमाये हुए दही की अपेक्षा अधिक गुणकारी है, क्योंकि वह दही रुचिकर्ता पित्त और वायु को मिटानेवाला तथा धातुओं को ताकत देनेवाला है।

मलाई निकाला हुआ दही दस्त को रोकता है, ठंढा है, बायु को उत्पन्न करता है, हलका है, प्राही है और अभि को प्रदीप्त करता है, इसिल्ये ऐसा दही पुराने मरोड़े, प्रहणी और दस्त के रोग में हितकारी है।

कपड़े से छाना हुआ दही बहुत किन्य, वायुहत्ती, कफ का उत्पन्न करनेवाला, भारी, शक्तिदायक पुष्टिकारक और रुचिकारक है तथा मीठा होने से यह पित्त को भी अधिक नहीं बढ़ाता है, यह गुण उस दही का है जिसे कपड़े में बांध कर उस का पानी टपका दिया गया हो, ऐसे (पानी टपकाये हुए) दही को मिश्री मिला कर खाने से वह प्यास, पित्त, रक्तविकार तथा दाह को मिटाता है।

गुड़ डाळकर खाया हुआ दही वायु को मिटाता है, पुष्टिकर्त्ता तथा भारी है।

वैद्यक शास्त्र और घर्मशास्त्र रात्रि को यद्यपि सब ही मोजनों की मनाई करते हैं परन्छ उस में भी दही साने की तो विच्छुन ही मनाई की है क्योंकि उपयोगी पदार्थों को साथ में मिला कर भी रात्रि को दही के साने से अनेक प्रकार के महा मयंकर रोग उत्पन्न होते हैं, इस लिये रात्रि को दही का मोजन कभी नहीं करना चाहिये तथा जिन २ ऋतुओं में दही का साना निषद्ध है उन २ ऋतुओं में भी दही नहीं साना चाहिये।

हेमन्त शिशिर और वर्षा ऋतु में दही का खाना उत्तम है तथा शरद् (आश्विन और कार्त्तिक) श्रीष्म (ज्येष्ठ और आषाड़) और वसन्त (चैत्र और वैशाख) ऋतु में दही का खाना मना है ।

बहुत से छोग ऋतु आदि का भी कुछ विचार न करके प्रतिदिन दही का सेवन करेंते हैं यह महा हानिकारक वात है, क्योंकि ऐसा करने से रक्तविकार, पित्त, वातरक्त, कोढ़, पाण्डु, अम, मयंकर कामछा (पीछिये का रोग), आछस्य, श्रोध, बुढापे में खांसी, निद्रा का नाश, पुरुषार्थ का नाश और अल्पायु का होना आदि बहुत सी हानियां हो जाती है।

क्षय, बादी, पीनस और कफ के रोगियों को साठी दही यूठ कर मी कभी नहीं साना चाहिये, हां यदि उपयोगी पदार्थों को मिठाकर साया जावे तो कोई हानि की बात नहीं है किन्तु उपयोगी पदार्थों को मिठाकर साने से छाम होता है, जैसे—गुड़ और काठी मिर्च को दही में मिठा कर साने से प्रायः पीनस रोग मिट जाता है इत्यादि ॥

्द्ही के सिम्न नमक, लार, घी, शकर, ब्रा, मिश्री, शहद, जीरा, काळी मिर्च, आँवळे, ये सब दही के मित्र है इस लिये इन में से किसी चीज के साथ दही को लाना जिंते है, हां इस विषय में यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि दोप तथा प्रकृति को विचार कर इन वस्तुओं का योग करना चाहिये, इन वस्तुओं के योग का कुछ वर्णन भी करते हैं—धी के साथ दही वायु को हरता है, आंवळे के साथ कफ को हरता है, शहद के साथ पाचनशक्ति को बढ़ाता है परन्तु ऐसा करने से कुछ विगाइ यी करता है, मिश्री ब्रा और कंद के साथ दाह, जून, पिच तथा प्यास को मिटाता है, गुड़ के साथ ताकत को देता है, वायु को दूर करता है, तृप्ति करता है, नमक जीरा और जल डाल कर लाने से विशेष हानि नहीं करता है परन्तु जिन रोगों में दही का लाना मना है उन रोगों में तो नमक जीरा और जल मिला कर भी लाने से हानि ही करती है ॥

तकवर्ग ॥

छोंछ की जाति और गुण निम्न लिखित है:---

१-घोल-विना पानी डाले तथा दही की थर (मलाई) विना निकाले जो विलोया

⁹⁻बीकानेर के स्रोसवाल लोग लपनी इच्छातुसार प्रतिदिन सनसाना दही का सेवन करते हैं ओसवाल लोग ही क्या किन्तु उक्त नगर के प्राय: सब ही खोग प्रात-काल दही मोल लेकर उस के साथ उडी रोटी से सिरावणी हमेक्स किया करते हैं, यह उन के लिये अति हानिकारक बात है ॥

२-परन्तु स्मरण रहे कि-बहुत गर्म करके दही को खाना विष के समान असर करता है।

१-यह वहीं का संक्षेप से वर्णन किया गया, इस का मिलेष वर्णन दूसरे वैद्यक प्रन्यों में देख छेना चाहिये॥ ४-इसे छाछ, मठा, महा तथा तक भी कहते हैं॥

५-अधिक पानी डाली हुई, कम पानी टाली हुई तथा विना पानी की छाछ के गुणों में अन्तर होता है ॥

. जावे उसे घोल कहते है, इस में मीठा डाल कर खाने से यह कचे आम के रस के समान गुण करता है॥

२- प्रस्थित---थर निकालकर जो विलोया जावे उसे मथित कहते है, यह वायु पित और कफ का हरनेवाला तथा हुद्ध (हृदय को प्यारा लगनेवाला) है ॥

र--- जदस्वित्---- आधा दही तथा आधा जल डाल कर जो विलोया जावे उसे उद-खित् कहते है, यह कफ करता है, ताकत को बढ़ाता है और आम को मिटाता है ॥

४-छिछिका (छाछ)—जिस में पानी अधिक डाला जाने तथा निलो कर जिस का मक्खन निलकुल निकाल लिया जाने उसे छिछका या छाछ कहते हैं, यह इलकी है, पित्त, थकावट और प्यास को मिटाती है, बातनाशक तथा कफ को करनेनाली है, नमक डाल कर इस का उपयोग करने से यह अग्नि को प्रदीष्ठ करती है तथा कफ को कम करती है।

५—तिक्र—वहीं के सेर भर परिमाण में पान भर पानी डाल कर जो विलोग जाने उसे तक कहते है, यह दस्त को रोकता है, पचने के समय मीठा है इसिलेये पित्त को नहीं करता है, कुछ खट्टा होने से यह उष्णवीर्य है तथा कक्ष होने से कफ को नष्ट करता है, योगचिन्तामणि तथा श्रीआयुर्जानार्णन महासंहिता में श्री हेमचन्द्राचार्य ने लिखा है कि—तक का यथायोग्य सेवन करनेवाला पुरुष कभी व्यवहार नय से रोगी नहीं होता है और तक से दग्ध हुए (जले हुए वा नष्ट हुए) रोग फिर कभी नहीं होते हैं, जैसे खर्ग के देवताओं को अग्रत युख देता है उसी प्रकार मृत्युलोक में मनुष्यों के लिये तक अग्रत के समान युखदायकं है ।

तक में जितने गुण होते हैं वे सब उस के आधार रूप दही में से ही आते हैं अर्थात् जिस २ प्रकार के दही में जो २ गुण कहे है उस २ प्रकार के दही से उत्पन्न हुए तक में भी वे ही गुण समझने चौहियें॥

त्तकसेवनविधि—वायु की प्रकृतिवाले को तथा वायु के रोगी को खट्टी छाछ में सेंघा नमक डाल कर पीने से लाम होता है, पित्त की प्रकृतिवाले को तथा पित्त के रोगी को मिश्री डाल कर मीठी छाछ के पीने से लाम होता है तथा कफ की प्रकृतिवाले को जीर कफ के रोगी को सञ्चल नमक, सोंठ, मिर्च जीर पीपल का चूर्ण मिला कर छाल के पीने से बहुत लाम होता है।

१-यथा च श्लोक.-'न तकसेवी व्यथते कदाचित्, न तकद्ग्धाः प्रमवन्ति रोगाः॥ वथा पुराणाममृत प्रस्ताय, तथा नराणा मुवि तकमाहुः॥ १॥१ इस का अर्थ कपर क्रिक्षे खनुसार ही है॥

२-यदि दही खराव हो तो उस का तक भी औगुणकारी होता है ॥

शीतकाल, अग्निमान्य (अग्नि की मन्दता), कफसम्बन्धी रोग, मलमूत्र का साफ न उतरना, जठराग्नि के विकार, उदररोग, गुल्म और हरस, इन रोगों में छाछ बहुत ही लाभदायक है।

अफेली छाछ का ही ऐसा प्रयोग है कि—उस से असाध्य संग्रहणी तथा हरस जैसे भयंकर रोग भी अच्छे हो जाते है, परन्तु पूर्ण विद्वान् वैद्य की सम्मति से इन रोगों में छाछ छेने की युक्ति को समझ कर उस का उपयोग करना चाहिये, क्योंकि अम्लिपेच और संग्रहणी ये दोनों रोग प्रायः समान ही माख्म पड़ते है तथा इन दोनों को अलग र पहिचान लेना मूर्ख वैद्य को तो क्या किन्तु साधारण शास्त्रज्ञानवाले वैद्य को भी कठिन पड़ता है, तात्पर्य यह है कि इन दोनों की ठीक तौर से परीक्षा तो पूर्ण वैद्य ही कर सकता है, इस लिये पूर्ण वैद्य के द्वारा रोग की परीक्षा होकर यदि संग्रहणी का रोग सिद्ध हो जावे तो छाछ को पीना चाहिये, परन्तु यदि अच्लिपच रोग का निश्चय हो तो छाछ को कदापि नही पीना चाहिये, क्योंकि संग्रहणी रोग में छाछ अमृत के तुल्य और अच्लिपच रोग में विद्य के तल्य असर करती है ॥

त्रमुस्युव्यानिषेष - निस के चोट लगी हो उसे, बावबाले को, मल से उत्पक्ष हुए शोथ रोगबाले को, श्वास के रोगी को, जिस का शरीर स्व कर दुर्वल हो गया हो उस को, मूर्जी अम उन्माद और प्यास के रोगी को, रक्तिपत्तवाले को, राजयक्मा तथा उरक्षत के रोगी को, तरुण ज्वर और सिलपात व्वरवाले को तथा वैशाख जेठ आश्विन और कार्तिक मास में छाछ नहीं पीनी चाहिये, क्योंकि उक्त रोगों में छाछ के पीने से दूसरे अनेक रोगों के उत्पन्न होने का संभव होता है तथा उक्त मासों में भी छाछ के पीने से रोगोत्पत्ति की सम्मावना रहेंथी है।

१-प्रिय पाठकगण । वैय की पूरी बुद्धिमत्ता रोग की पूरी परीक्षा कर डेने में ही जानी आती है, परन्तु वर्श-मान समय में उदरार्थी अपिठत तथा अर्घदग्ध मूर्च वैय बहुत से देखे जाते है, ऐसे होग रोग की परीक्षा कभी नहीं कर सकते हैं, ऐसे छोग तो अतिदिन के अभ्यास से केवल दो बार ही रोगों को तथा उन की ओषि को जाना करते हैं, इसिलये समान छक्षणवाछे अथवा कठिन रोगों का अवसर आ पड़ने पर इन छोगों से अनर्थ के सिवाय और कुछ भी नहीं बन पड़ता है, देखों । ऊपर छिखे अनुसार अम्किपित और सम्म्रहणी प्राय समान छक्षणवाछे रोग हैं, अब विचारिये कि-सम्म्रहणी के लिये तो छाछ अद्वितीय ओपिव है और अम्किपित पर वह घोर विच के तुल्य हैं, यदि छक्षणों का ठीक निष्यं न कर अम्किपित पर छाछ दे दी जावे तो रोगी की क्या दशा होगी, इसी प्रकार से समान छक्षणवाछे बहुत से रोग हैं जिनका वर्णन प्रम्य के विखार के भय से नहीं करना चाहते हैं और न उन के वर्णन का यहा प्रसंग ही है, केवल छाछ के प्रसंग से यह एक उदाहरण पाठकों को बतलाया है, इस छिये प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि-प्रथम योग्य उपार्शों से वैय की पूरी परीक्षा करके फिर उससे रोग की परीक्षा करावे ॥

र-यह तक का सक्षेप से वर्णन किया गया, इस का विशेष वर्णन दूसरे वैद्यक अन्यों में टेखना चाहिये॥

फलवर्ग ॥

इस देश के नियासी लोग जिन २ फलों का उपयोग करते हैं उन सन में मुख्य आब्र (आंम) का फल है तथा यह फल अन्य फलों की अपेक्षा प्रायः हितकारी भी है, इस के सिवाय और भी बहुत से फल है जो कि अनेक देशों में ऋतु के अनुसार उत्पन्न होते तथा लोगों के उपयोग में आते हैं परन्तु फलों के उपयोग के विषय में भी हमारे बहुत से प्रिय बन्धु उन के (फलों के) गुण और अवगुण से विलक्कल अनिमज्ञ हैं, इस लिये कुछ आवश्यक उपयोग में आनेवाले फलों के गुणों को लिखते हैं:—

कचे अोम—गर्भ, खट्टे, रुचिकर तथा बाही हैं, पित्त, बायु, कफ तथा खुन में विकार उत्पन्न करते हैं, परन्तु कण्ठ के रोग, वायु के प्रमेह, योनिदोष, व्रण (बाब) और अतीसार में कामदायक (फायदेमन्द) हैं ॥

पके आम — वीर्यवर्धक, कान्तिकारक, वृप्तिकारक तथा मांस और बल की बढ़ाने-बाले हैं, कुछ कफकारी हैं इस लिये इन के रस में बोड़ी सी सोंठ डालकर उपयोग में लाना चाहिये।

आमों की बहुत सी जातियां है तथा जाति भेद से इनके खाद और गुणों में भी योड़ा बहुत अन्तर होता है किन्तु सामान्य गुण तो (जो कि ऊपर लिखे है) प्रायः सब में समान ही है।

जा मुन — प्राही (मल को रोकनेवाले), मीटे, कफनाशक, रुचिकर्ता, वायुनाशक जीर प्रमेह को मिटानेवाले है, उदर विकार में इन का रस अथवा सिरका लामदायक है अर्थात् अर्जीण और मन्दाग्नि को मिटाता है ॥

- चेर — वेर यद्यपि अनेक जाति के होते हैं परन्तु मुख्यतया उन के दो ही मेव हैं । अर्थात् मीठे और खट्टे, वेर कफकारी तथा बुखार और खांसी को उत्पन्न करते हैं, वैद्यक शास्त्रमें कहा है कि—''हरीतकी सदा पथ्यं, कुपथ्यं बदरीफरूम्' अर्थात् हरड़ सदा पथ्य है और वेर सदा कुपथ्य है,।

इस के संस्कृत में आम्र, रसाख, सहकार, अतिसौरम और कामाग आदि अनेक नाम हैं, इसे भाषा में आम कहते हैं तथा मारवाड में आंवा कहते हैं।

२-इन को मारनाड में केरी अथवा कवी केरी कहते है ॥

३—मुर्शिदाबाद में एक प्रकार के कने मीठे आम होते हैं तथा इन को बहांबाले कनमीठे आम कहते हैं। बनारस में एक प्रकर का लंगडा आम बहुत उत्तम होता है तथा फर्वसाबाद में आम अनेक प्रकार के होते हैं जैसे—बम्बई, मालदह, टिकारी, तीचा, बादबाहप्सन्द, वेलबम्बई, अतनासी और गोपालमोग आदि, यदापि ये साने में सब ही उत्तम होते हैं परन्तु टिकारी और गोपालमोग ये दो प्रकार के आम तो अति प्रशंसनीय होते हैं, उक्त नगर में आम बहुतायत से उत्पन्न होता है अतः सस्ता भी बहुत मिलता है ॥

वेरों में प्राय: जन्तु भी पड़ जाते हैं इसिख्ये इस प्रकार के तुच्छ फर्लों को जैनस्त्र कारने अमक्ष्य किसा है, अतः इन का साना उचित नहीं है ॥

अनार—यह सर्वोत्तम फल है, इस की मुख्य दो जातियां हैं—मीठी और खट्टी, इन में से मीठी जाति का अनार त्रिदोषनाशक है तथा अतीसार के रोग में फायदेमन्द है, खट्टी जाति का अनार वादी तथा कफ को दूर करता है, काबुल का अनार सब से उत्तम होता है तथा कन्धार पेशावर जोषपुर और पूना आदि के मी अनार खाने में अच्छे होते हैं, इस के शर्वत का उष्णकाल में सेवन करने से बहुत लाम होता है।

केला—स्वाद, कषेठा, कुछ ठंढा, वलदायक, रुचिकर, वीर्यवर्धक, तृप्तिकारक, मांस-वर्धक, पित्तनाशक तथा कफकत्ती है, परन्तु दुर्जर अर्थात् पचने में भारी होता है, प्यास, ग्छानि, पित्त, रक्तविकार, प्रमेह, मूल, रक्तपित्त और नेत्ररोग को मिटाता है, असंकरोग में इस का फल बहुत ही फायदेमन्द है ॥

े अँ विस्ता — ईपन्मधुर (कुछ मीठा), खद्दा, चरपरा, कपैळा, कहुआ, वस्तावर, नेत्रों को हितकारी, वळवुद्धिदायक, वीर्यकोषक, स्ट्रितिदाता, पुष्टिकारक तथा त्रिदोपनाशक है, सब फळों में आँवळे का फछ सर्वेतिम तथा रसायन है—अर्थात् खट्टा होने के कारण वादी को दूर करता है, मीठा तथा ठंढा होने से पित्तनाशक है, रूझ तथा कवैं छोने से कफ को दूर करता है।

ये जो गुण है वे गीछे (हरे) आँवले के हैं, क्योंकि—सूखे आँवले में इतने गुण नहीं होते हैं, इसलिये जहांतक हरा ऑवला मिल सके वहांतक वाजार में विकता हुना सूखा ऑवला नहीं लेना चाहिये।

विल्ली तथा बनारस आदि नगरों में इस का ग्रुरव्या और अचार भी बनता है परन्तु ग्रुरव्या जैसा अच्छा बनारस में बनता है वैसा और जगह का नहीं होता है, बहुां के आँवले बहुत बड़े होते है जो कि सेर मर में आठ तुलते है।

सूखे ऑवले में काली मिर्च मिलाकर चैत्र तथा आधिन मास में मोजन के पीले उस की फॅकी बीकानेर आदि के निवासी मारवाड़ी लोग प्रायः हरेक रोग में लेते हैं परन्तु उन लोगों को वह अधिक गुण नहीं करता है इस का कारण यह है कि उन लोगों में तेल और लाल मिर्चका उपयोग बहुत ही है किन्तु कभी २ उलटी हानि हो जाती है, यदि हरे अथवा सूखे ऑवलों का सेवन युक्ति से किया जावे तो इस के समान दूसरी कोई

१-जिस में मनुष्य कितना ही खाने परन्तु उसकी भोजन से तृति नहीं होती है उस को मस्मक रोग कहते हैं ॥

२-वहा के कोग मिर्च इतनी बालते हैं कि काक और दालम केवल मिर्च ही दृष्टिगत होती है तथा कमी २ मिर्चकाही शाक बना लेते हैं॥

स्रोषि नहीं है, लॉवर्ल के सेवन की यद्यपि अनेक युक्तियां है परन्तु उन में से केवल एक युक्ति को लिखते है, वह युक्ति यह है कि—सूले ऑवर्ल को हरे ऑवर्ल के रस की अथवा सूले ऑवर्ल के कार्यकी एक सौ वार मावना देकर युखाते रहना चाहिये, इसके बाद उस का सेवन कर ऊपर से दूध पीना चाहिये, ऐसा करने से वह अकथनीय लाम करता है अर्थात् इस के गुणों की संख्या का वर्णन करने में लेखनी भी समर्थ नहीं है, इस के सेवन से सब रोग नष्ट हो जाते हैं तथा बुढ़ापा विलक्ष्त नहीं सताता है, इस का सेवन करने के समय में गेहूँ, घी, बूरा, चावल और मूंग की दाल को लाना चाहिये।

इस के कचे फल भी हानि नहीं करते हैं तथा इस का मुरव्या आदि सदा खाया जावे तो भी अति लामकारी ही है ॥

नार्रङ्गी (असन्तरा)— मधुर, रुचिकर, शीतल, पुष्टिकारक, बृण्य, जठराभिष-दीपक, इदय को हितकारी, त्रिदोधनाशक और शूल तथा क्रमि का नाशक है, मन्दाभि, श्वास, बायु, पित्त, कफ, क्षय, शोष, अरुचि और वमन आदि रोगों में पथ्य है, इस का शर्वत गर्मी में प्रातःकाल पीने से तरावट बनी रहती है तथा अधिक प्यास नहीं लगती है।

नारंगी की मुख्य दो जातियां है—खट्टी और मीठी, उन में से खट्टी नारंगी को नहीं खाना चाहिये, इस के सिवाय इस की जैंभीरी आदि भी कई जातियां हैं, नागपुर (दक्षिण) का सन्तरा अख्युत्तम होता है ॥

दाख वा अंगर —गीठी दाख खट्टी और मीठी होती है तथा इस की काठी और सफेद दो जातियां है, वन्बई नगर के काफर्ड मार्केट में यह हमेशा मनों मिळती है तथा क्षीर भी स्थानों में अंग्र की पेटियां बिकती है, खट्टी दाख खाने से अवगुण करती है, इस छिये उसे नहीं खाना चाहिये, हरी दाख कफ करती है इस छिये थोड़ा सा सैंधानमक छगा कर उसे खाना चाहिये, सब भेवाओं में दाख भी एक उत्तम मेवा है, सूखी सुनका अर्थात् काठी दाख सब प्रकार की प्रकृतिवाले पुरुषों के अनुकूछ और सब रोगों में पथ्य है, वैच लोग वीमार को इस के खाने का निषेध नहीं करते है, यह मीठी, एिंड कारक, नेत्रों को हितकारी, ठंढी, अमनाशक, सारक (दस्तावर) तथा पृष्टिकारक है, रफिन्वकार, दाह, शोष, मूर्छा, ज्वर, श्वास, खांसी, मद्य पीने से उत्पन्न हुए रोग, बमन, शोध और वातरक आदि रोगों में फायदेमन्द है।।

नीं बू — नीबू खट्टे और मीठे दो प्रकार के होते हैं — इन में से मीठा नीबू पूर्व में बहुत होता है, जिस में बड़े को चकोतरा कहते है, एफीका देशके अंगवहार सहर में भी मीठे नीबू होते है उन को बहांबाले मचूंगा कहते है, वहां के वे मीठे नीबू बहुत ही मीठे होते

१~जहातक होसके हरे आँवले के रस की ही माधना देनी चाहिये, क्योंकि सूखे ऑवले के काय की भावना की अपेक्षा यह (हरे ऑवले के रस की भावना) अधिक लामदायक है।

है जिनके सामने नागपुर के सन्तरे भी कुछ नहीं हैं, इन के अधिक मीठे गुण के कारण ही डाक्टर लोग पिचज्बर में वहां बहुत देते है, फलों में मीठे नींवू की ही गिनती है किन्तु खट्टे नींबू की नहीं है क्योंकि खट्टे नींबू को वैसे (केवल) कोई नहीं खाता है किन्तु शाक और दाल आदि में इस का रस डाल कर खाया जाता है तथा डाक्टर लोग सूजन में मस्डे के दर्द में तथा गुख से खून गिरने में इसे जुसाया करते हैं तथा इस की सिकक्षिवी को भी जल में डालकर पिलाते है, इस के सिवाय यह अचार और चटनी आदि के भी काम में आता है।

नींबू में बहुत से गुण है परन्तु इस के गुणों को लोग बहुत ही कम जानते है अन्य पदाओं के साथ सयोग कर खाने से यह (खट्टा नींबू) बहुत फायदा करता है ॥

सीठा नींचू साद, मीठा, तृप्तिकर्चा, अतिरुचिकारक और हलका है, कफ, वायु, वमन, खांसी, कण्ठरोग, क्षय, पिच, शूल, त्रिदोष, मलस्तुम्म (मलका रुकना), हैना, आमवात, गुल्म (गोला), कृमि और उदरस्य कीडों का नाशक है, पेट के जकड़ जाने-पर, दस्त बंद होकर बद्ध गुदोदर होने पर, खाने पीनेकी अरुचि होनेपर, पेट में वायु तथा शूल का रोग होने पर, शरीर में किसी प्रकार के विष के चढ जाने पर तथा मूच्छी होने पर नीचू बहुत फायदा करता है।

बहुत से लोग नीवू के खड़ेपन से डर कर उस को काम में नहीं छाते हैं परन्तु यह अज्ञानता की बात है, क्योंकि नीवू बहुत गुणकारक पदार्थ है, उस का सेवन खड़ेपन से डर कर न करना बहुत मूळ की बात है, देखो । ज्वर जैसे तीवरोग में भी युक्ति से सेवन करने से यह कुळ भी हानि नहीं करता है किन्तु फायदा ही करता है।

नींवू की चार फांकें कर के एक फांक में सोंठ और सेंधानमक, दूसरी में काडी मिर्च, तीसरी में मिश्री और चौथी फांक में डीका माली भर कर चुसाने से जी मचलाना, वमन, वदहनमी और ज्वर आदि रोग मिट जाते है, यदि प्रातःकाल में सदा गर्म पानी में एक नीवू का रस डालकर पीने का अभ्यास किया जाने तो आरोग्यता बनी रहती है तथा उस में बूरा या मिश्री मिला कर पीने से यक्कत् अर्थात् लीवर भी अच्छा बना रहता है।

बहुत से लोग मातःकाल चाह (चाय) आदि पीते है उस के स्थान में यदि इस के पीने का अभ्यास किया जावे तो बहुत लाम हो सकता है, क्योंकि चाह आदि की अपेक्षा यह सौ गुणा फायदा पहुँचाता है॥

नींचू का घाहिरी उपयोग-नहाने के पानी में दो तीन नींबुओं का रस निचीड कर उस पानी से नहाने से शरीर अच्छा रहता है अर्थात् चमड़ी के छिट्ट में से से बंद नहीं होते हैं, यदि बन्द भी हों तो मैल दूर होकर छिद्र ख़ुल जाते हैं तथा ऐसा करने से दाद खाज और फ़ुन्सी आदि चमड़ी के रोग भी नहीं होते है ।

प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि—दाल और शाक सादि नित्य की खुराक में तथा उस के अतिरिक्त भी नींबू को काम में लाया करे, क्योंकि यह अधिक गुणकारी पदार्थ है और सेवन करने से आरोग्यता को रखता है ॥

. स्तुजुर—पुष्टिकारक, खादिष्ठ, मीठी, ठंढी, ब्राही, रक्तशोषक, हृदय को हितकारी और त्रिदोषहर है, श्वास, बकावट, क्षय, विष, प्यास, शोष (श्वरीर का सूखना) और अम्छपित जैसे महामयंकर रोगों में पथ्य और हितकारक है, इस में अवगुण केवल हतना है कि—यह पचने में भारी है और कृमि को पैदा करती है इस लिये छोटे बाल कों को किसी प्रकार की मी खजूर को नहीं खाने देना चाहिये।

लजूर को वी में तलकर लाने से उक्त दोनों दोन कुछ कम हो जाते हैं।

गर्भी की ऋतु में खजूर का पानी कर तथा उस में थोड़ा सा अमिली (इमली) का खटा पानी डाळ कर शर्वत की तरह बनाकर यदि पिया जाने तो फायदा करता है।

पिण्ड खजूर और स्ती लारक (छुहारा) भी एक प्रकार की खजूर ही है परन्तु उस के गुण में थोड़ासा फर्क है ॥

फालसा, पीळू और करोंदे के फल ये तीनों पित्त तथा आमवात के नाशक हैं, सब प्रकार के प्रमेह रोग में फायदेमन्द है, उष्ण काल में फालसे का शर्वत सेवन करने से बहुत लाम होता है, कचे फालसे को नहीं खाना चाहिये क्योंकि वह पित्त को उत्पन्न करता है ॥

सीताफरु मधुर, ठंढा और पुष्टिकारक है परन्तु कफ और वायु को उत्पन करता है।

-जामफरें - खादिष्ठ, ठंढा, वृष्य, रुचिकर, वीर्यवर्षक और त्रिदोषहर है परन्तु तीक्ष्ण और भारी है, कफ और बायु को उत्पन्न करता है किन्तु उन्माद रोगी (पागल) के लिये अच्छा है।

सकरकन्द् मधुर, रुचिकर, हृदय को हितकारी, शीतल, श्राही और पिचहर है, अतीसार रोगी को फायदेमन्द है, इस का गुरुव्या भी उत्तम होता है ॥

' अझीर-ंडी और मारी है, रक्तविकार, दाह, वायु तथा पित्त की नष्ट करती है,

१-इस को पूर्व में सफडी तथा अमरूद भी कहते है, सब से अच्छा अमरूद प्रयाग (इलाहाबाद) का होता है, क्योंकि वहा का अमरूद मीठा, खादिष्ठ, अल्प बीजोंबाका और बहुत बढ़ा होता है ॥

देशी अझीर की गूलर कहते हैं, यह प्रमेह को मिटाता है परन्तु इस में छोटे २ जीव होते है इस लिये-इस को-नहीं खाना चौहिये ॥

असली अझीर काबुल में होती है तथा उस को मुसलमान हकीम वीमारों को बहुत सिलाया करते है ॥

- इमेली - कची इमली के फल अभस्य है इसलिये उन को कभी उपयोग में नहीं लाना चाहिये क्योंकि उपयोग में काने से वे पेट में दाह रक्तिपत्त और आम आदि अनेक रोगों को उत्पन्न करते हैं।

पकी इसली—वायु रोग में और शूल रोग में फायदेमन्द है, यह बहुत ठंढी होने के कारण शरीर के सांघों (सन्धियों) को जकड़ देती है, नसों को ढील कर देती है इस लिये इस को सदा नहीं खाना चाहिये।

चीनापट्टन, द्रविड़, कर्णाटक तथा तैलंग देशवासी लोग इस के रस में मिर्च, मसाला, अरहर (तूर) की दाल का पानी और चांवलों का मांड डाल कर उस को गर्म कर (उबाल कर) मात के साथ नित्य दोनों क्क्त साते है, इसी प्रकार अम्यास पड़ जाने से गर्म देशों में और गर्म ऋतु में भी बहुत से लोग तथा गुजराती लोग मी दाल और शाकादि में इस को डाल कर खाते है तथा गुजराती लोग गुड़ डाल कर हमेशा इस की कड़ी बना कर भी खाते हैं, हैदराबाद आदि नगरों में चीमार लोग भी इमली का कट़ खाते हैं, इसी प्रकार पूर्व देशवाले लोग अमचुर की खटाई डाल कर मांडिया बना कर सलोनी दाल और मात के साथ खाते हैं परन्तु निर्मय होकर अविक इमली और अमचुर आदि खटाई खाना अच्छा नहीं है किन्तु ऋतु तासीर रोग और अनुपान का विचार कर इस का उपयोग करना उचित है क्योंकि अधिक खटाई हानि करेंती है।

नई इमठी की अपेक्षा एक वर्ष की पुरानी इमठी अच्छी होती है उस के नमक छगा कर रखना चाहिये जिस से वह खराव न हो।

इमली के शर्वत को मारवाड़ आदि देशों में अक्षयतृतीया के दिन बहुत से लोग • बनाकर काम में लाते हैं यह ऋतु के अनुकूल है।

इमली को मिगोकर उस के गूदे में नमक डाल कर पैरों के तलवों और हथेलियों में मसलने से लगी हुई क श्रीव ही मिट जाती है।

⁹⁻इसी प्रकार वड और पीपछ खादि वृक्षों के फळ मी जैनसिद्धान्त में समस्य ळिखे हैं, क्योंकि इन के फळों में भी जन्तु होते हैं, यदि इस प्रकार के फळों का सेवन किया जावे तो वे पेट में जाकर सनेक रोगों के कारण हो जाते हैं॥

२-इस को अमली, ऑवली तथा पूर्व में विया और ककोना भी कहते हैं ॥

२-देखों किसी का बचन है कि-"गया मर्द को खाय खटाई। गई नारि जो खाय मिठाई॥ गई हाट जॅह मॅडी हथाई, गया दक्ष जॅह बगुका वैठा, गया गेह जॅह मोडा (घूर्त साध) पैठा ॥ १॥

ःनारियलः —बहुत मीठा, चिकना, हृदय को हितकारी, पुष्ट, विस्तिशोधक और रक्त-पित्तनाशक है, पारेआदि की गर्मी में तथा अन्छिपित में इस का पानी तथा नालिकेर-खण्डपाक बहुत फायदेमन्द है और वीर्थवर्धक है।

कई देशों में बहुत से छोग नारियल के पानी को उष्ण ऋतु में पीते हैं यह वेशक फायदेमन्द होता है परन्तु इतना अवस्य खयाल रखना चाहिये कि निरन्न (निन्ने, खाली अर्थात् अन्न खाये विना) कलेंने तथा दिन को निद्रा लेकर उठने के पीले एक घण्टेतक इस को नहीं पीना चाहिये जो इस बात का खयाल नहीं रक्सेगा उस को जन्म भर पछ-ताना पहेगा ॥

. 'खरवूजा तथा मीटि खंदे काचर ये भी ककड़ी ही की एक जाति हैं, जो नदी की बाद्ध में पकता है उस को खरवूजा कहते हैं, यह खाद में मीठा होता है, उख- मऊ के खरवूजे बहुत मीठे होते है जोग इस का पना बना कर भी खाते हैं, यह गर्म होता है जिन दिनों में हैना चलता हो उन दिनों में खरवूजा बिलकुल नहीं खाना चाहिये।

जो ज़मीन तथा खेतों में पके उसे ककड़ी और काचर कहते हैं, ककड़ी और काचर मारवाड़ आदि देशों में बहुत उत्पन्न होते हैं, ककड़ी को छुखा कर उस का सूखा शाक भी बनाते हैं उस को खेळरा कहते है तथा काचर को छुखाकर उस का जो सूखा शाक बनाते हैं उस को काचरी कहते हैं, इस को वाळ वा शाक में डाळते हैं, यह खाने में खादिछ तो होता है तथा छोग इसे प्रायः खाते भी हैं परन्तु गुणों में तो सब फलों की खाये हा हलके दर्जे के (अल्प गुणवाळे) तथा हानिकारक फळ ये ही (ककड़ी और काचर) है, क्योंकि ये तीनों दोवों को विगाइते हैं, ये कच्चे—वायु और कफ को करते हैं किन्दु पकने के बाद तो विशेष (पहिळे की खपेका अधिक) कफ तथा वायु को विगाइते हैं।

न्कालिन्द (मतीरा वा तरबूज़)—इस के गुण शाक्षवर्ग में पूर्व लिखचुके हैं विशेष कर यह भी गुणों में ककड़ी और काचर के समान ही है॥

अत्रक, पारदमस्म (पारे की मस्म) और सर्णभस्म, इन तीनों की मात्रा हैते समय ककाराष्ट्रक (ककारादि नामवाले आठ पदार्थ) वर्जित हैं, क्योंकि उक्त मात्राओं के लेते समय ककाराष्ट्रक का सेवन करने से वे उक्त मात्राओं के गुणों को खराब कर देते हैं, ककाराष्ट्रक ये है—कोला, केले का कन्द, करोंदा, कांजी, कैर, करेला, ककड़ी और कल्प्दि (मतीरा), इस लिये इन आठों वस्तुओं का उपयोग उक्त बातुओं की मात्रा को खाने वाले को नहीं करना चाहिये !!

१~सुना है कि खरवूने का पना और चानळ खारी समय यदि गुनळका आ जाने तो प्राणी अनदस मर ही जाता है, नयोंकि इस का कुछ भी इलाज नहीं है ॥

चादाम, चिरोंजी और पिस्ता—ये तीनों मेने बहुत हितकारी हैं, इन को सन प्रकार के पाकों और उड़्डु आदि में डाल कर माग्यनान लोग खाते है।

वादाम-मगज़ को तरावट देता और उसे पुष्ट करता है, इस का तेल एंघने से भी मगज़ में तरावट पहुँचती है और पीनसरोग मिट जाता है।

ये गुण मीठे वादाम के हैं किन्तु कहुआ बादाम तो विष के समान असर करता है, यदि किसी प्रकार बालक तीन चार कहुए वादामों को लालेबे तो उस के शरीर में विषके द्वाल्य पूरा असर होकर पाणों की हानि हो जा सकती है, इस लिये चाल २ कर बादामों का लयं उपयोग करना और बालकों को कराना चाहिये, वादाम पचने में भारी है तथा कोरा (केवल) बादाम लाने से वह बहुत गर्मी करती है।

इक्षुवर्ग ॥

-- इक्कु (-ईर्स्व) — रक्तपिचनाशकं, वलकारक, वृष्य, कफजनकं, खादुपाकी, क्षिग्ध, भारी, मूत्रकारक और शीरळ है।

ईस ग्रस्थतया बारह जाति की होती है—पौड़क, भीरुक, वंशक, शतपोरक, कान्तार, तापसेक्षु, काण्डेक्षु, सूचीपत्र, नैपाल, दीर्घपत्र, नीलपोर और कोशक, अब इन के गुणों को कम से कहते हैं:—

पौँड्रक तथा भीरक सफेद पैंडा और भीरक पौंडा वातिपत्तनाशक, रस और पाक में मधुर, शीतल, इंहण और बलकत्ती है ॥

कोशक कंशक पौढा नारी, शीतल, रक्तिपत्तनाशक तथा क्षयनाशक है ॥ कान्तार—कान्तार (काले रंग का पौडा) भारी, कृष्य, कफकारी, बृंहण और दस्तावर है ॥

दीर्घ पौर तथा वंदाक दीर्घ गीर संज्ञक ईस्त कठिन और वंशर्क ईस्त कारयुक्त होती है॥

१-फ़ और बनस्पित की यथिप अनेक जातिया हैं परन्तु यहा पर प्रसिद्ध और विशेष खान पान में आनेवाले आवस्पक पदायों के ही गुणदीप सक्षेप से बतलाये हैं, क्योंकि इतने पदायों के भी गुणदीप को जो पुरुप अच्छे प्रकार से जान लेगा उस की बुद्धि अन्य भी अनेक पदायों के खुण दोगों को जान सकेगी, सब फल और वनस्पतियों के विषय में यह एक वात भी अनश्य व्यानमें रसनी चाहिये कि- अवात, कीजों से खाया हुआ, जिस के पकने का समय बीत गया हो, बिना काल में उस्पन्न हुआ हो, जिस का रस नष्ट हो (सूख) गया हो, जिस में किंदित भी हुगैन्य आती हो और अपक (विना पका हुआ), इस सब फलों को कभी नहीं खाना चाहिये ॥

२-इस को गना साठा तथा उत्तव भी कहते हैं ॥

३-रीर्घ पौरसङ्गक अधीत् वड़ी २ गांठोंबाला पींडा II

४-इस को धनवई ईख कहते हैं॥

्र शतपोर्रक — इस के गुण कोशक ईख के समान हैं, विशेषता इस में केवल इतनी है कि—यह किश्चित् उष्ण क्षारयुक्त और वातनाशक है ॥

्रतापृस्तेक्षु - मृद्, मधुर, कफ को कुपित करनेवाला, तृप्तिकारक, रुचिप्रद, वृष्य

और वलकारक है ॥

काण्डेक्षु - इस के गुण तापसेक्षु के समान हैं, केवल इस में इतनी विशेषता है कि यह वायु को कुपित करता है ॥

सूर्चीपत्र, नीलपीर, नेपाल ओर दीर्घपत्रक-ये नारों पकार के पौडे वात-

कर्ता. कफपितनाशक, कवेले और दाहकारी हैं ॥

इस के सिवाय अवस्थाभेद से भी ईल के गुणों में भेद होता है अर्थात् वाल (छोटी) ईल-कफकारी, मेदबर्धक तथा प्रमेहनाशक है, युवा (जवान) ईल-वायुनाशक, खादु, कुछ तीरूण और पित्तनाशक है, तथा बृद्ध (पुरानी) ईल-रुधिरनाशक, वणनाशक, बल-कत्ती और वीयोत्पादक है।

ईल का मूळमाग अत्यन्त मघुर रसयुक्त, मध्यमाग मीठा तथा ऊपरी भाग चुनलरा

(नमकीनरस से युक्त) होता है।

दाँतों से चवा कर चूसी हुई ईस्त का रक्तिपत्तनाशक, खांड़ के समान वीर्यवाला,

अविदाही (दाह को न करनेवाला) तथा कफकारी है ।

सर्वमाग से युक्त कोरह में दबाई हुई ईख का रस जन्तु और मैळ आदि के संसर्ग से विक्कत होता है, एवं उक्त रस बहुत काळ पर्यन्त रक्खा रहने से अत्यन्त विक्कत हो जाता है इस लिये उस को उपयोगमें नहीं लाना चाहिये क्योंकि उपयोग में लाया हुना वह रस दाह करता है, मळ और मूत्र को रोकता है सथा पचनेमें भी मारी होता है।

ईस का वासा रस भी विगड़ जाता है, यह रस स्नाद में खड़ा, वातनाशक, भारी, पित्त-कफकारक, ध्रस्नानेवाला, दस्तावर तथा मूत्रकारक होता है।

अभिपर पकाया हुआ ईल का रस भारी, खिन्छ, तीक्ष्ण, वातकफनाशक, गोला-

नाशक और कुछ पित्तकारक होता है।

इक्षुविकार अर्थात् गुड़ आदि पदार्थ मारी, मधुर, वलकारक, क्षिग्म, वातनाशक, दस्तावर, वृष्य, मोहनाशक, श्रीतल, वृंहण और विषनाशक होते हैं, इक्षुविकारों का सेवन करने से तृषा, दाह, मुच्छी और रक्तिपत्त नष्ट हो जाते है।

१-शतपोरक अर्थात् वहुत गार्शेवाला ॥

२-इस को चिनियायम्बई कहते हैं ॥

३-सूचीपत्र उस को कहते हैं जिस के पत्ते बहुत वारीक होते हैं, नीलपीर उस को कहते हैं जिस की गाठें नील रंग की होती हैं, नेपाल उस को कहते हैं जो नेपाल देश में उत्पन्न होता है तथा दीर्घपत्र उसे कहते हैं जिस के पत्ते बहुत उसने होते हैं ॥

अब इक्षुविकारों का पृथक् २ संक्षेप से वर्णन करते हैं:---

फाणित—कुछ २ गाढ़ा और अधिक माग जिस का पतला हो ऐसे ईल के पके हुए रस को फाणित अर्थात् राव कहते हैं, यह—मारी, अभिष्यन्दी, बृंहण, कफकर्चा तथा शुक्र को उत्पन्न करता है, इस का सेवन करने से वात, पित्त, आम, मूत्र के विकार और विस्तिदोष शान्त हो जाते हैं॥

मत्स्यण्डी—किश्चित् द्रवयुक्त पक तथा गाढ़े ईखके रस को मत्स्यण्डी कहते हैं, यह—मेदक, वलकारक, हलकी, वातिपत्तनाशक, मधुर, वृंहण, वृष्य और रक्तदोष-नाशक है।।

गुड़े—नया गुड़ गर्म तथा भारी होता है, रक्तविकार तथा पिचिविकार में हानि करता है, पुराना गुड़ (एक वर्ष के पीछ से तीने वर्ष तक का) बहुत अच्छा होता है, क्योंकि यह हलका अमिदीपक और रसायनरूप है, फीकेपन, पाण्डुरोग, पिच, त्रिदोष और प्रमेह को मिटाता है तथा बरूकारक है, दवाओं में पुराना गुड़ ही काम में आता है, शहद के न होने पर उस के बदले में पुराना गुड़ ही काम दे जाता है, तीन वर्ष के पुराने गुड़ के साथ अदरख के खाने से कफ का रोग मिट जाता है, हरड़ के साथ इसे खाने से पिच का रोग मिटता है, सीठ के साथ खाने से वायु का नाश करता है।

तीन वर्ष का पुराना गुड़ गुरुम (गीला), बवासीर, अरुचि, क्षय, कास (सांसी), छासी का वाब, सीणता और पाण्डु आदि रोगों में मिस्र र अनुपानों के साथ सेवन करने से फायदा करता है, परन्तु ऊपर लिले रोगों पर नये गुड़ का सेवन करने से वह कफ, श्वास, खांसी, कृमि तथा वाह को पैदा करता है।

- पिच की प्रकृतिवाले को नया गुड़ कमी नहीं खाना चाहिये।

चूरमा छापसी और सीरा आदि के बनाने में प्रामीण छोग गुड़ का बहुत उपयोग करते हैं, एवं मजूर छोग भी अपनी अकावट उतारने के छिये रोटी आदि के साथ हमेजा गुड़ स्ताया करते हैं, परन्तु यह गुड़ कम से कम एक वर्ष का तो पुराना अवस्य होना ही चाहिये नहीं तो आरोग्यता में बाधा पहुँचाये विना कदापि न रहेगा।

गुड़ के जुरमा और छापसी आदि पदार्थों में भी के अधिक होने से गुड़ अधिक गर्मी नहीं करता है।

⁹⁻देखो इस भारतमूमि में ईख (सांठा) भी एक व्यतिश्रेष्ठ पदार्थ है-जिस के रस से हदयविकार दूर होकर तथा यक्तत् का सबोधन होकर पाचनशक्ति की ग्रन्थ होती है, फिर देखों ! इसी के रस से गुढ़ बनता है जो कि अखन्त उपयोगी पदार्थ है, क्योंकि गुड़ ही के सहारे से सब प्रकार के मधुर पदार्थ बनाये जाते हैं ॥

२-तीन वर्ष के पीछे गुड़ का गुण कम हो जाता है।

दुर्वल शरीरवाला, शोब रोगी, जिस के ज्ञलम हो वा चोट लगी हो, ववासीर श्वास और मूर्ला का रोगी, मार्ग में चलने से थका हुआ, जिस ने वहुत परिश्रम का काम किया हो, जो गिरने से ज्याकुल हो, जिस को किसी ने किसी प्रकार का उपालम्म (उलाहना वा ताना आदि) दिया हो इस से उस के मन में चिन्ता हो, जिस को किसी प्रकार का नशा या विष चढ़ा हो, जिस को मूत्रकुच्लू वा पथरी का रोग हो, इन मनुष्यों के लिये प्रशान गुड़ अति लाभदायक है, इसी प्रकार जीर्ण ज्वर से क्षीण तथा विषम ज्वरवाले पुरुव को पीपल हरड़ सोंठ और अजमोद, इन चारों के साथ अथवा इन में से किसी एक के साथ पुराने गुड़ को देने से उक्त दोनों प्रकार के ज्वर मिट जाते हैं, रक्तपित और दाह के रोगी को इस का शर्वत कर पिलाना चाहिये, क्षय और रक्तविकार में गिलोय को घोट कर उस के रस के साथ पुराना गुड़ मिला कर देने से बहुत लाम पहुँचाता है।

नास्तव में तो पुराना गुड़ ऊपर छिसे रोगों में तथा इन के सिवाय दूसरे भी बहुत से रोगों में बड़ा ही गुणकारी है और अन्य ओविषयों के साथ इस का अनुपान जल्दी ही असर करता है।

गुड़ के समान एक वर्ष के पीछे से तीन वर्ष तक का पुराना शरद भी गुणकारी सम-झना चाहिये !!

्यांड़—पित्तनाशक ठंढी और वल देनेवाली है, बनारसी खांड़ आंखों के लिये बहुत फायदेमन्द और वीर्यवर्षक है, खांड़ कफ को करती है इसलिये कफ के रोगों में, रसविकार से उत्पन्न हुए शोथ में, ज्वर में और आमवात आदि कई रोगों में हानि करती है, खाने के उपयोग में खांड़ को न लेकर बूरा को लेना चाहिये ॥

मिश्री और कन्द्—नेत्रों को हितकारी, खिग्म, घातुवर्धक, ग्रुखपिय, मधुर, शीतळ, वीर्यवर्धक, बळकारक, सारक (दसावर), इन्द्रियों को तृप्त कर्चा, हळके और तृपानाशक है, प्वं क्षत, क्षय, रक्तपिच, गोह, मूच्छी, कफ, वात, पिच, दाह और शोम को मिटाते है।

ये दोनों पदार्थ वहुत ही साफ किये जाते हैं अर्थात् इन में मैल विलकुल नहीं रहता है इस लिये समझदार लोगों को दूघ आदि पदार्थों में सदा इन्हीं का उपयोग करना चाहिये।

यद्यपि कालपी की मिश्री को लोग अच्छी वतलाया करते है परन्तु मरुखल देश के वीकानेर नगर में हलवाई लोग अति उज्ज्वल (उजली, साफ) मिश्री का कूँजा बनाते है इस लिये हमारी समझ में ऐसी मिश्री अन्यत्र कहीं भी नहीं बनती है ॥

्र <u>विद्रोष</u> चक्तव्य-पिय मित्रो ! पूर्वकाल में शर्करा (चीनी) इस देश में इतनी बहुतायत से बनती थी कि भारतवासी लोग उस का मनमाना उपयोग करते थे तो भी परदेशों में हजारों मन जाती थी, देखों ! सन् १८२६ ई० तक मितवर्ष दो करोड़ रुपये की चीनी यहां से परदेश को गई है, ईसवी चौदहवीं श्वताव्दी (शदी) तक युरोप में इस का नाम निशान तक नहीं था इस के पीछे गुड़ चीनी और मिश्री यहां से वहां को जाने छगी।

पूर्व समय में यहां हजारों ईल के खेत बोये जाते थे, छकड़ी के चरले से ईल का रस निकाला जाता या और पिनत्रता से उस का पाक बन कर मधुर शर्करा बनती थी, ठौर २ शर्करा बनाने के कारखाने थे तथा मोले माले किसान अत्यन्त अमपूर्वक शर्करा बना कर अपने २ इष्ट देव को प्रथम अपीण कर पीछे उस का विक्रय करते थे, अहाहा ! क्या ही छुन्दर वह समय था कि जिस में इस देश के निवासी उस पिनत्र मधुर और रसमयी शर्करा का छुलाद यथेच्छ छद्रते थे और क्या ही अनुकूल वह समय था कि जिस में इस देश की उत्तमी उकरा का छुलाद यथेच्छ छद्रते थे और क्या ही अनुकूल वह समय था कि जिस में इस देश की छक्सी लक्ष्म क्लिप छिता उस पिनत्र मधुर और रसमयी शर्करा के उत्तमी- चम पदार्थ बना कर अपने पित और पुत्रों आदि को आदर सिहत अपीण करती थी, परन्तु हा। अब तो न वह शुम समय ही रहा और न वह पित्र मधुर रसमयी आयुव- विक और पौष्टिक शर्करा ही रही !!!

आज से हज़ार बारह सो वर्ष पहिले इस अमागे मारत पर यद्यपि यवनादिकों का असद्य आक्रमण होता रहा तयापि अपवित्र परदेशी वस्तुओं का महां प्रचार नहीं हुआ, यद्यपि यवन लोग यहां से करोड़ों का धन लेगये परन्तु अपने देश की वस्तुओं की यहां मरमार नहीं कर गये किन्तु यहीं से अच्छी २ चीकें बनवा कर अपने देश को लेगये परन्तु जब से यह देश खातह्य प्रिय न्यायक्षील बृदिश गवर्नमेंट के हाथ में गया तब से उन के देशों की तथा अन्य देशों की असंख्य मनोहर सुन्दर और सक्ती चीकें यहां आकर यह देश उन से ज्यास होगया, वनी बनाई सुन्दर और सक्ती चीकों के मिलते ही हमारे देश के लोग अविकता से उन को खरीदने लगे और धीरे २ अपने देश की चीकों का अनादर होने लगा, जिस को देख कर बेचारे किसान कारीगर और ज्यापारी लोग हतो-त्साह होकर उद्योगहीन होगये और देशमर में परदेशी वस्तुओं का प्रचार होगया।

यद्यपि हमारी न्यायशीका दृष्टिश गवर्नमेंट ने ऐसी दशा में इस देश के कारीगरों को उपेजन देने के लिये तथा देश का ज्यापार बढ़ने के लिये सर्कारी दफ्तरों में और प्रत्येक सर्कारी काम में देशी बस्तु के प्रचार करने की आजा देकर इस देश के सौमाग्य को पुनः वहाना चाहा जिस के लिये हम सर्वों को उक्त न्यायशीला गवर्नमेंट को अनेकानेक धन्य-वाद शुद्ध अन्तःकरण से देने चाहियें, परन्तु क्या किया जावे हमारे देश के लोग दारिद्य से ज्यास होकर हतोत्साह बनने के कारण उस से कुछ भी लाग न उठा सके।

कारीगरी और व्यापार की वस्तुयें तो दूर रहीं किन्तु हमारे खानपान की चीनें भी पर-देश कीही पसन्द होने छगीं और बना बनाया पकाल दुग्घ और शर्करा भी परदेश की छेकर सब छोग निर्वाह करने छगे, देखों ! जब मोरस की खांड़ प्रथम यहां थोड़ी २ आने छगी तब उस को देशी चीनी से खच्छ और सस्ती देख कर छोग उस पर मोहित होने छगे, आखिरकार समस्त देश उस से व्याप्त हो गया और देशी शकर कम २ से नामशेष होती गई, नतीजा यह हुआ कि—अब केवल ओष्धिमात्र के छिये ही उस का प्रचार होता है।

इस बात को प्रायः सब ही जान सकते हैं कि—विकायती खांड़ ईख के रस से नहीं बनती है, क्योंकि वहां ईख की खेती ही नहीं है किन्तु बीट नामक कन्द और जुवार की जाति के टटेकों से अथवा इसी प्रकार के अन्य पदार्थों में से उन का सत्व निकाल कर वहां खांड़ बनाई जाती है, उस को साफ करने की रीति "एन्साक्कोपेडिया ब्रिटानिका" के ६२७ प्रष्ठ में इस प्रकार लिखी है—

एक सौ चाठीस या एक सौ अड़सठ मन चीनी छोहे की एक बड़ी डेग में डालकर गलाई जाती है. चीनी गलाने के लिये हेग में एक यन्त्र लगा रहता है, साथही गर्म भाफ के कुछ पाइप भी डेग में छगे रहते हैं, जिस से निरन्तर गर्भ पानी डेग में गिरता है. यह रस का शीरा नियमित दर्जे तक औटाया जाता है, जब बहुत मैछी चीनी साफ की जाती है तब वह खून से साफ होती है, गर्म शीरा रुई और सन की जालीवार शैलियों से छाना जाता है, वे शैलियां बीच २ में साफ की जाती है, फिर वह शीरा जान-वरों की हिद्वियों की राख की ३० से ४० पुटतक गहरी तह से छन कर नीचे रक्ले हुए वर्चन में आता है, इस तरह छनने से शीरे का रंग बहुत साफ और सफेद हो जाता है, ऊपर लिखे अनुसार शीरा बनकर तथा साफ होने के अनन्तर उस की दसरी वार सफाई इस तरह से की जाती है कि एक चतुष्कोण (चौकोनी) तांबे की डेग में .कुछ चूने के पानी के साथ चीनी रक्ली जाती है (जिस में थोड़ा सा बैल का खून डाला जाता है). और प्रति सैकड़े में ५ से २० तक हड़ी के कोयलों का चुरा डाला जाता है इत्यादि, देखो ! यह सब विषय अंभेजों ने अपनी बनाई हुई किताबों में छिखा है, बहुत से हाक्टर लोग किलते हैं कि-इस चीनी के खाने से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं इस पर यदि कोई पुरुष यह शंका करे कि-विलायत के लोग इसी चीनी को खाते है फिर उन को कोई दीमारी क्यों नहीं होती है ? और वहां क्षेग जैसे अयंकर रोग क्यों नहीं उत्पन्न होते है ! तो इस का उत्तर यह है कि-वर्तमान समय में विलायत के लोग संसारमर में सब से अधिक विज्ञान वेत्ता और अधिकत्तर विद्वान हैं (यह बात प्राय: सब को विदित ही है) वे लोग इस शकर को छूवे भी नहीं है किन्तु वहां के लोगों के लिये तो इतनी

उमदा और सफाई के साथ चीनी बनाई जाती है कि उस का यहां एक दाना भी नहीं आता है क्योंकि वह एक प्रकार की मिश्री होती है और वहां पर वह इतनी महँगी विकती है कि उस के यहां आने में. गुझाइश ही नहीं है, इस के सिवाय यह वात भी है कि यदि वहां के लोग इस चीनी का सेवन भी करें तो भी उन को इस से कुछ भी हानि नहीं पहुँच सकती है, क्योंकि—विलायत की हवा इतनी शर्द है कि वहां मच आदि अत्युप्ण पदार्थों का विशेष सेवन करने पर भी उन (मच आदि) की गर्मी का कुछ भी असर नहीं होता है तो भला वहां चीनी की गर्मी का क्या असर हो सकता है, किन्तु भारत वर्ष के समान तो वहां चीनी का सेवन लोग करते भी नहीं है, केवल चाय आदि में ही उस का उपयोग होता है, खाली चीनी का या उस के बने हुए पदार्थों का जिसप्रकांर मारतवर्षीय लोग सेवन करते है उस प्रकार वहां के लोग नहीं करते हैं और न उन का यह प्रतिदिन का खाच और पैष्टिक पदार्थ ही है, इसल्ये इस का वहां करेई परिणाम नहीं होता है, यदि भारतवर्ष के समान इस का बुरा परिणाम वहां मी होता तो अवश्य अवतक वहां इस के कारलाने बंद हो गये होते, वहां छेग भी इसी लिये नहीं होते है कि वह देश यहां के शहर और गाँव की अपेक्षा बहुत खच्छ और हवादार है, वहां के लोग एकचित्त हैं, परस्पर सहायक हैं, देशहितैषी है तथा श्रीमान हैं।

इस बात का अनुभव तो प्रायः सव को होही चुका है कि—हिन्दुस्तान में हेग से वृषित स्थान में रहने पर भी कोई भी यूरोपियन आजतक नहीं मरा, इसी प्रकार श्रीमान् छोग भी प्रायः नहीं मरते हैं, परन्तु हिन्दुस्थान के सामान्य छोग विविधित्तत, परस्पर निः-सहाय और देश के अहित हैं, इसिछिये आजक्छ जितने बुरे पदार्थ, बुरे प्रचार और बुरी बातें है उन सवों ने ही इस अमागे भारत पर ही आक्रमण किया है।

अब अन्त में हम को सिर्फ इतना ही कहना है कि—अपने हित का विचार प्रत्येक भारतवासी को करके अपने धर्म और शरीर का संरक्षण करना चाहिये, यह अपवित्र चीनी आयों के साने योग्य नहीं है, इसल्यि इस का त्याग करना चाहिये, देखो! सरल समाव और मांस मध के त्यागी को आर्य कहते है तथा उन (आर्यों) के रहने के स्थान को आर्यावर्च कहते है, इस मरतक्षेत्र में साड़े पचीस देश आर्यों के है, गंगा सिन्धुके वीच में—उत्तर में पिशोर, दक्षिण में समुद्र कांठा तक २४ वीथेकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ वलदेव, ९ प्रतिनारायण, ११ रुद्र और ९ नारद आदि उत्तम पुरुष इसी आर्यावर्च में जन्म लेते हैं, इसल्येय पेसे पवित्र देश के निवासी महर्षियों के सन्तान आर्य

१-मुक्ति को तो सब ही मतुष्य क्षेत्रों से प्राणी जाता है, रुम्दन सौर अमेरिका तक सूत्रकार के क्यन से भरतक्षेत्र माना जा सकता है, देखों ! अमेरिका जैन सस्कृत रामायण (रामचरित्र) के कथनानुसार पाताल लका ही है, यह विद्याधरों की वस्ती थी तथा रावण ने वहीं जन्म लिया था ॥

छोगों को सदा उसी मार्ग पर चलना उचित है जिसपर चलने से उनके घर्म, यश, सुल, आरोग्यता, पवित्रता और प्राचीन मर्यादा का नाश न हो, क्योंकि इन सब का संरक्षण कर मनुष्य जन्म के फल को प्राप्त करना ही वास्तवर्मे मनुष्यत्व है ॥

-- तैलवर्ग ॥

तैल यद्यपि कई प्रकार का होता है—परन्तु विशेषकर मारवाड़ में तिली का और वंगाल तथा गुजरात आदि में सरसों का तेल खाने आदि के काम में आता है, तेल खाने की अपेक्षा जलाने में तथा शरीर के मर्दन आदि में विशेष उपयोग में आता है, क्योंकि उत्तम खान पान के करने वाले लोग तेल को विलकुल नहीं खाते हैं और वाखव में वृत जैसे उत्तम पदार्थ को छोड़कर बुद्धि को कम करनेवाले तेल को खाना मी उचित नहीं है, हां यह दूसरी वात है कि तेल सखा है तथा मीठ गुवारफली और चना आदि वातल (वातकारक) पदार्थ मिर्च मसाला डाल कर तेल में तैलने से झुखाद (लज्ज़तदार) हो जाते हैं तथा वादी भी नहीं करते हैं, इतने अंश में यदि तैल खाया जावे तो यह मिष्ठ व्यत है परन्तु वृतादि के समान इस का उपयोग करना उचित नहीं है जैसा कि गुजरात में लोग मिठाई तक तेल की बनी हुई खाते है और बंगालियों का तो तेल जीवन ही वन रहा है, हां अलवत्ता जोधपुर मेवाड़ नागीर और मेड़ता आदि कई एक राज्यस्थानों में लोग तेल को बहुत कम खाते हैं।

· गृहस्य के प्रतिदिन के आवश्यक पदार्थों में से तेल भी एक पदार्थ है तथा इस का जपयोग भी प्रायः प्रत्येक मनुष्य को करना पड़ता है इस लिये इस की जातियों तथा गुण दोषों का जान लेना प्रत्येक मनुष्य को अत्यावश्यक है अतः इस की जातियों तथा गुण दोषों का संक्षेप से वर्णन करते है:—

तिल का तैल यह तैल शरीर को इट करनेवाला, वलवर्धक, त्वचा के वर्ण को अच्छा करनेवाला, वातनाशक, पुष्टिकारक, अग्निदीपक, शरीर में शीघ ही प्रवेश करनेवाला और कृमि को दूर करनेवाला है, कान की, योनि की और शिर की शूल को मिटाता है, शरीर को हलका करता है, टूटे हुए, कुचले हुए, दवे हुए और कटे हुए हाड़ को तथा अग्नि से जले हुए को फायदेगन्द है।

तेल के मर्दन में जो २ गुण कल्पस्त्र में लिखे है वे किसी ओपिष के साथ पके हुए तेल के समझने चाहियें किन्तु खाली तेल में उतने गुण नहीं है।

⁹⁻ चैसे कि मीठ के भुनिये (सेव) बीकानेर में तेल में तलकर बहुत ही अच्छे बनते हैं और वहां के लोग उन्हें वही शीक से खाते हैं, चने और मीठ के सेव प्रायः सब ही देशों में तेल में ही बनते हैं और उन्हें गरीब अमीर प्रायः सब ही खाते हैं ॥

जिन औषघों के साथ तेल पकाया जावे उन औषघों का उपयोग इस प्रकार करना चाहिये कि—गर्मी अर्थात् पित्त की प्रकृतिवाले के लिये ठंढी और खून को साफ करने-वाली औषघों का तथा कफ और वायु की प्रकृतिवाले के लिये उपण और कफ को काटने-वाली औषघों का उपयोग करना चाहिये, नारायण, लक्ष्मीविलास, पड्विन्दु, चन्दनादि, लाश्चादि, श्वतपक और सहस्रपक आदि अनेक प्रकार के तैल इसी तिल के तेल से बनाये चाते है जो प्रायः अनेक रोगों को नष्ट करते है, तथा वहुत ही गुणकारक होते है।

यह तैल पिचकारी लगाने के और पीने के काम में भी आता है तथा गरीव लोग इस को खाने तलने और बचारने आदि अनेक कार्यों में वर्तते है, यह कान तथा नाक में भी ढाला जाता है।

परन्तु इस में ये अवगुण हैं कि-यह सन्धियों को ढीला कर घातुओं को नर्भ कर डालता है, रक्तिपत्त रोग को उत्पन्न करता है किन्तु अरीर में मर्दन करने से फायदा करता है, इस के सिवाय शरीर, वाल, चमड़ी तथा आंखों के लिये भी फायदेमन्द है, परन्तु तिली का या सरसों का खाली तेल खाने से इन चारों को (शरीर आदि को) हानि पहुँचाता है, हेमन्त और शिशिर ऋतु में वायु की प्रकृति वाले को यह सदा पथ्य है।

सरसों का तेल — दीपन तथा पाक में कह है, इस का रस हलका है, लेखन, स्पर्श और वीर्थ में खण्ण, तीक्ष्ण, पित और रुधिर को दूषित करनेवाला, कफ, मेदा, वादी, बवासीर, शिरःपीड़ा, कान के रोग, खुजली, कोढ, कृमि, श्वेत कुछ और दुष्ट कृमि को नष्ट करता है ॥

राई का लेख—काठी और ठाछ राई के तेल में भी सरसों के तेल के समान ही गुण है किन्तु इस में केवल इतनी विशेषता है कि—यह मूत्रक्रच्छ को उत्पन्न करता है ॥ तुचरी का लेख—तुवरी अर्थात तोरई के वीजों का तेल—तीक्ष्ण, उप्ण, हलका, शाही, कम और रुधिर का नाशक तथा अभिकत्ती है, एवं विप, खुजली, कोट, चकते और कृमि को नष्ट करता है, मेददोष और त्रण की सूजन में भी फायदेमन्द है ॥

अलंसी का तेल अधिकर्चा, खिग्ध, उष्ण, कफिपतकारक, कटुपाकी, नेत्रों को अहित, नलकर्चा, नायुक्चां, मारी, मलकारक, रस में खादिष्ठ, ग्राही, त्वचा के दोगों का नायक तथा गाटा है, इसे विस्तिकर्म, तैलपान, मालिस, नस्य, कर्णपूरण और अनुपान विधि में वायु की शान्ति के लिये देना चाहिये ॥

कुसुम्भ का लेख-कप्प के बीजों का तेख-खद्दा, उप्ण, मारी, दाहकारक, नेत्रों को अहित, बखकारी, रक्तपित्तकारक तथा कफकारी है ॥ ् खंसखंस का लेख- बलकर्चा, वृष्य, मारी, वातकफहरणकर्चा, शीतल तथा रस और पाक में खादिष्ठ है ॥

अण्डी का तेल — तीक्ष्ण, उष्ण, दीपन, गिलगिला, भारी, वृष्य, त्वचा को सुधारने धाला, अवस्था का स्थापक, मेघाकारक, कान्तिपद, बलवर्द्धक, कपेले रसवाला, सूक्ष्म, योनि तथा शुक्र का शोधक, आमगन्धवाला, रस और पाक में सादिष्ठ, कडुआ, चरपरा तथा दस्तावर है, विषमज्वर, हृद्यरोग, गुल्म, पृष्ठशूल, गुष्कुशूल, वादी, उदररोग, अफरा, अष्ठीला, कमर का रह जाना, वातरक्त, मलसंग्रह, बद, सूजन, और विद्रिष्ठ को दूर करता है, शरीर रूपी वन में विचरनेवाले आमवात रूपी गजेन्द्र के लिये तो यह तेल सिंहरूप ही है।

राल का तेल विस्फोटक, बाव, कोट, खुनली, क्रमि और वातकफन रोगों को दूर करती है ॥

क्षार वर्ग ॥

खानों या जमीन में पैदा हुए खार को छोग सदा खाते हैं, दक्षिण मान्त देश तक के . छोग जिस नमक को खाते हैं वह समुद्र के खारी जल से जमाया जाता है, राजपूताने की सांगर झीछ में भी छाखों मन नमक पैदा होता है, उस झीछ की यह तासीर है कि-जो वस्तु उस में पढ़ जाती है वही नमक वन जाती है, उंक शील में क्यारियां जमाई जाती है, पँचमदरे में भी नमक उत्पन्न होता है तथा वह दूसरे सब नमकों से श्रेष्ठ होता है, वीकानेर की रियासत छं, णकरणसर में भी नमक होता है, इस के अतिरिक्त अन्य भी कई स्थान मारवाड़ में है जिन में नमक की उत्पत्ति होती है परन्तु सिन्य आदि देशों में जुमीन में नमक की खानें है जिन में से खोद कर नमक को निकालते हैं वह सेंघा नमक कहळाता है, साद और गुण में यह नमक प्रायः सब ही नमकों से उत्तम होता है इसीलिये वैद्य लोग बीमारों को इसी का सेवन कराते हैं तथा घातु आदि रसों के व्यवहार में भी प्रायः इसी का प्रयोग किया जाता है, इस के गुणों को समझनेवाले बुद्धिमान् छीप् सदा खानपान के पदार्थों में इसी नमक को खाते हैं, इंग्लैंड से छीवर पुळ सॉस्ट नामके जो नमक आता है उस को डाक्टर छोग वहुत अच्छा बतलाते हैं, खुराक की चीजों में न्मक बड़ा ही जरूरी पदार्थ है इस के डालने से मोजन का खाद तो वढ ही जाता है तथा योजन पचमी बल्दी जाता है किन्तु इस के अतिरिक्त यह भी निश्चय हो चुका है कि नमक के विना खाये आदमी का जीवन बहुत समय तक नहीं रह

⁹⁻यह सक्षेप से कुछ तैलों के गुणों का वर्णन किया गया है, क्षेप तैलों के गुण उन की योगि के समान जानने चाहिये अर्थात् जो तेल जिस पदार्थ से उरपन होता है उस तैल में उसी पदार्थ के समान गुण रहते हैं, इस का विस्तार से वर्णन दूसरे वैद्यक्यन्यों में देखना चाहिये ॥

सकता है, देखो ! जो लोग दूध से वर्षो तक निर्वाह कर लेते हैं उस का कारण यही है कि-दूध में यथावश्यक खार का भाग मौजूद है, खान पान में नमक खाद और रुचि को पैदा करता है तथा हाड़ों को मनबूत करता है।

नमक में यह अवगुण भी है कि नमक तथा खार का खमाव वस्तु के सड़ाने अथवा गठाने का है, इसिटिये परिमाण से अधिक नमक का सेवन करने से वह शारीर के धातु-ओंको गठा कर विगाड़ देता है, बहुत से मनुष्यों को यह शौक पड़ जाता है कि वे भोजन की सब चीजों में नमक अधिक खाते हैं परन्तु अन्त में इस से हानि होती है।

गहूँ बाजरी और दूष थादि चीजों में यथावश्यक योड़ा २ खार कुदरती होता है और दाल तथा शाक आदि पदार्थों में ऊपर से डाळने से नमक का यथावश्यक माग पूरा होता है।

हम सब छोगों में झार बाके पदार्थ सदा अधिक खाये जाते हैं जैसे—दाल, शाक, चटनी, राइता, पापड़, लीचिया और अचार आदि, इन सब पदार्थों में नमक होता है इस छिये सब का योड़ा २ भाग मिल कर यथावश्यक माग पूरा हो जाता है, लार वा नमक के अधिक खाने से शरीरमें गर्मी, शरीर का ट्रटना और धातु का गिरना आदि विकार माख्य होने छैगते हैं।

नमक वा खार को भेदक (तोड़नेवाला) जानकर बहुत से मूर्स वैद्य तापतिल्ली आदि पेट की गांठ को मिटाने के लिये वीमारों को अधिक खार खिला देते हैं उस का नतीजा आगे बहुत दुरा होता है, प्रायः पुरुषों का पुरुषत्व जो नष्ट होता है उस में मुख्य हेतु बहुधा खार का अधिक सेवन ही सिद्ध होता है, इस लिये यह बात सदा खयाल में रखनी चाहिये कि अधिक खार का सेवन वीर्य को नष्ट कर देता है, अतः सब को परिमित ही खार का सेवन करना चाहिये॥

अब संक्षेप से सब प्रकार के खार और नमकों के गुण दिखलाये जाते है:---

सेंघा नमक — मीठा, अग्निदीपक, पाचन, छच्च, खिग्ध, रोचक, शीतल, बलकारक, सूक्ष्म, नेत्रों को हितकारी और त्रिदोधनाशक है ॥

सांभर नमेक हलका, वातनाशक, अतिउण्ण, भेदक, विचकारक, तीक्णोण्ण, सूक्ष्म और अभिज्यन्दी है तथा पचने के समय चरपरा है ॥

समुद्र नमैक --- पाक में मन्नुर, कुछ कटु, -मन्नुर, मारी, दीपन, मेदी अविदाही, कफ्तिर्घक, वायुनाशक, तिक्क, अरुक्ष और अत्यन्त श्रीतोण्ण नहीं है ॥

१-अलन्त सेवन करने से नमक मनुष्य को अन्या कर देता है ॥

र-यह राजपूताने की सामर श्रीछ से पैदा होता है इसी लिये इस का यह नाम पड़ा है ॥

रे-यह नमक समुद्र के जल से बनाया जाता है।

विड नमक सारगुणयुक्त, दीपन, इलका, तीरण, उप्ण, रूक्ष, रोचक और व्यवायी है, यह कफ और वादी के अनुकोमन है अर्थात् कफ को ऊपर की तरफ से तथा नादी को नीचे की तरफ से निकालता है, एवं निवन्ध, अफरा, निष्टंग और शरीर गौरव (देह के भारीपन) को मिटाता है।।

सौचर्चल (काला) नर्मक-रोचक, भेदक, अप्रीदीपक, अत्यन्तपाचक, होह-यक्त, वायनाश्रक, विशद, हलका, सुक्ष्म, ढकार की शुद्धि करनेवाला तथा पित्र की कम वहानेवाला है, एवं विवंध, अफरा और शूल रोग का नामक है ॥

' रेह-का नमंक-शारगुण युक्त, भारी, कट्ट, खिन्य, शीवल और वायनाशक है।। कचिया नमक रिचकारी, कुछ खारा, पित्तकती, दाहकारी, कपनातनाशक, दीपन, गुरुमनाशक तथा शूलहत्ती है ॥

द्वीणी नमंद-पाक में कमगर्म, कमदाहकारी, मेदन, कुछ क्षिम, शूलनाशक तथा अल्प पित्तकर्ता है ॥

खरीपर नयक लारी, कड़ुआ, वातकफनाशक, दाहकर्ता, पित्रकारी, आही तथा मूत्रशोपक (मूत्र का छुलानेवाला) है ॥

चनारवार-अत्यन्त उप्ण, अग्निदीपक तथा दांतों में हर्प करनेवाला है, इस का खाद खड़ा और नमकीन है तथा यह शुरू अजीर्ण और विवन्ध को नप्ट करता है।।

जवाखार-हरुका, क्षिम, अतिसूक्ष्म तथा अग्निदीपक है, यह शूरू, वादी, आम, कफ, श्वास, गुल्म, गलेका रोग, पाण्डुरोग, बवासीर, संग्रहणी, अफरा, श्रीहा और हृदय-रोग को दर करता है ॥

सजीखार-सजीलार जवालार की अपेक्षा अल्प गुणवाला है, परन्तु शूल, और

गुरुमरोग में अधिक गुण करता है ॥

-सोर्ग-इस में प्रायः सब्बी के समान गुण है, परन्तु इस में इतनी विशेषता है कि यह मुत्रकृच्छ को दूर करता है तथा जल को शीतल करता है ॥

नीसार्टर-यह भी एक प्रकार का तीन खार है तथा इस मे खारों के समान ही प्रायः सब गुण है ॥

१-यह नमक हिमालय पर्वत के सक्षार (खार के सहित) जल से बनाया जाता है।।

१-यह नमक खारी जमीन में से साय ही प्रकट होता है ॥

३-यह नमक खार लगाने से मिट्टी के वर्त्तनों में प्रकट होता है ॥

४-यह नमक ऊपर भूमि में उत्पन्न होता है ॥

५-सनी भी एक प्रकार खार ही है, इस को सरहत में सर्विका, कापीत और मुखवर्चक कहते है ॥

६-यह भी सजी का ही एक सेट हैं॥

७-छंट, भैन अथवा गांव के गोवर की मस्म को पाकविधि के साथ पर्वार्त से नौसादर प्रकट होता है, परन्तु एक नीसादर मनुष्य और शुकर की बिग्रा के द्वारा पत्नाचे में से निकर्लता है ॥

सुहागा—अग्निकर्ता, रूक्ष कफनाशक, वातिपत्तकर्ता, कासनाशक, बलवर्धक, क्षियों के पुष्प को प्रकट करनेवाला, जणनाशक, रेचक तथा मृद् गर्भ की निकालने वाला है।।

मिश्रवर्ग ॥

दास्त अपेर शाक के मसाले कुसंग दोष तथा अविद्या से ज्यों २ प्राणियों की विषयवासना बढ़ती गई त्यों २ उस (विषयवासना) को शान्त करने के लिये धातुपृष्टि तथा विर्यक्तमन की औपधों का अन्वेषण करते हुए मूर्स वैद्यों आदि के पक्षे में फँस कर अनेक हानिकारक तथा परिणाम में दु:खदाथक औषधों का प्रहण कर मन मीने उल्टे सीधेमार्ग पर चलने लगे, यह व्यवहार यहां तक बढ़ा और बढ़ता जाता है कि लोग मद्य, अफीम, मांग, माजूम, गाँजा और चरस आदि अनेक महाहानिकारक विषेली चीजों को खाने लगे और खाते जाते है परन्तु विचार कर देखा जावे तो यह सब व्यवहार जीवन की खरावी का ही चिह्न है।

जगर कहे हुए पदाशों के सिवाय लोगों ने उसी आशा से प्रतिदिन की ख़ुराक में भी कई प्रकार के उत्तेजक ख़ादिछ मसालों का भी अत्यन्त सेवन करना प्रारम्भ कर दिया कि जिस से भी अनेक प्रकार की हानियां होजुकी हैं तथा होती जाती है।

प्राचीन समय के विचारवाले लोग कहते हैं कि जगत् के वार्तमानिक सुधार और कला कैशिक्य ने लोगों को दुर्बल, निःसत्व और विलक्षल गरीन कर डाला है, देशान्तर के लोग प्रज्ञ लिये जा रहे है, प्राणियों का शारीरिक वल अत्यंत घट गया, इत्यादि, विचार कर देखने से यह वात सत्य भी माल्य होती है।

वर्षमान समय के खानपान की तरफ ही दृष्टि ढाल कर देखों कि खानपान में खादि-छता का विचार और वेहद शौकीनपन आदि कितनी खरावियों को कर रहा है और कर चुका है, यद्यपि प्राचीन विद्वानों तथा आधुनिक वैद्य और डाक्टरों ने भी सांधारण खराक की प्रशंसा की है परन्तु उन के कथन पर बहुत ही कमलोगीं का घ्यान है, देखों। मनुज्यों की प्रतिदिन की साधारण खुराक यही है कि—चावल, धी, गेहूँ, वालरी और ज्वार आदि की रोटी, मूंग, मीठ और अरहर आदि की दाल,

⁹⁻जहा क्षारद्वय कहे गये हैं वहा सर्जीखार और जवाखार छेने चाहियें, इन में घुहागा के मिछने से स्नारत्त्रय कहाते हैं, ये मिछे हुए भी अपने २ गुण को करते हैं किन्तु मिछने से गुरूप रोग को शीघ्र ही नष्ट करते हैं, पलाश, शहर, ओगा (निरमिरा), इमछी, आक और तिलनालका खार तथा सज्जीखार और जवा-रखार ये आठों मिळने से क्षाराष्ट्रक कहलाते हैं, ये आठों खार अभि के तुल्य दाहक हैं तथा ग्रूल और गुल्य-रोग को समूल नष्ट करते हैं॥

र-जब नैसिक तथा सामान्य खानपान मे अखन्त शोकीनी वह रही है तो मला नैमित्तिक तथा विशेष व्यवहारों में तो कहना ही क्या है ॥

सामान्य और उपयोगी श्वाक तथा धनियां, हरूदी, जीरा और नमक आदि मसाहे, इन सब पदार्थों का परिमित उपयोग किया जावे, परन्तु व्यसन खाद और शोक थोड़ा सा सहारा मिलने से बेहद बढ कर परिणाम में अनेक हानियों को करते हैं अर्थात् व्यसनी और शोकीन को सब तरह से नष्ट अष्ट कर देते हैं, देखो । इन से चार बातों की हानि तो प्रत्यक्ष ही दीखती है अर्थात् धन का नाश होता है, शरीर विगड़ता है, प्रतिष्ठा जाती रहती है और अमूल्य समय नष्ट होता है।

उक्त व्यसन खाद और शौफ वर्तमान समय में मसाठों के सेवन में भी अत्यन्त बढे हुए है अर्थात होग दाल और शाक आदि में वेपरिमाण मसाले डाल कर खाते हैं तथा उस से यह जाम समझते हैं कि ये मसाले गर्म होने के कारण जठरामि को प्रदीस फरेंगे जिस से पाचनशक्ति बढेगी और खराक अच्छी तरह से तथा अधिक खाई जावेगी तथा बीब में भी गर्मी पहुँचने से उत्तेजन शक्ति बढेगी इत्यादि, परन्तु यह सब उन लोगों का अत्यन्त अम है, क्योंकि-प्रथम तो मसाठों में जितनी वस्त्यें ढाठी जाती हैं वे सब ही सब प्रकृतिवालों के लिये तथा सर्वदा अनुकूल होकर शरीर की आरोग्यता को बनायें रक्लें बह कभी नहीं हो सकता है, दूसरे-मसालों में बहुत से पदार्थ ऐसे हैं जो कि इन्द्रियों को बहकानेवाले तथा इन्द्रियों के उत्तेजक होकर मी शरीर के कई अवयवी में बाधा .पहुँचाते हैं, तीसरे-मसालो में बहुत से ऐसे पदार्थ है जो कि श्ररीर की वीमारी में दवा के तीर पर दिये जाते हैं, जैसे-छोटी बड़ी हलायची, लोंग, सफेद जीरा, स्वाह जीरा, वाल-चीनी, तेजपात और काली मिर्च आदि, अब यदि प्रतिदिन उन्हीं पदार्थों का अधिक सेवन किया जावे तो वे दवा के समय अपना असर नहीं कैरते हैं, चौथे--- ख़राक में सदा गर्म मसालों का खाना अच्छा भी नहीं है, क्योंकि खामाविक जठरामि की दसरे मसाकों की बनावटी गर्मी से बढ़ा कर अधिक ख़ुराक का खाना अच्छा नहीं है क्योंकि यह परिणाम में हानि करता है, देखों ! एक विद्वान का कथन है कि-"इलाज क्षीर ख़राक दे ही अच्छे है जिन का परिणाम अच्छा हो अर्थात जिन से परिणाम में किसी प्रकार की हानि न हो" आहा ! यह कैसा अच्छा उपदेशदायक वाक्य है, क्या यह वाक्य सामान्य प्रजा के सदा याद रखने का नहीं है ? इसिक्ये गर्म मसालों तथा अखन्त तीक्ष्ण मसालेदार चटनी आदि सन पदार्थों को प्रतिदिन नहीं खाना चाहिये, क्योंकि इन का सदा सेवन करना सब मनुष्यों के लिये कभी एक सहश्च हितकारक नहीं होसकता है, यद्यपि यह ठीक है कि गर्म मसाले वा मसालेदार पदार्थ रुचि को अधिक जागृत करते हैं तथा जठरामि को भी अधिक तेन करते हैं जिस से खाना अधिक खाया जाता है परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि स्वामाविक जठरामि के समान मसालों की गर्मीसे उत्पन्न हुई

१-क्योंकि वे खराक के तौर पर हो जाते हैं॥

कृत्रिम मि पदार्थों को यथावस्थित (ठीक तौर से) कभी नहीं पचा सकती है, जैसे पि सिन में बायलर को अधिक ज़ोर मिलने से वह गाड़ियों को जोर से तो चलाता है परन्तु वायलर के माप और परिमाण से गर्मी के अधिक बढ जाने से अधिक भार को सींचता हुआ वह कभी फट भी जाता है, जैसे अधिक मार को सींचने के लिये वायलर को अधिक गर्मी की आवश्यकता हो यह नियम नहीं है किन्तु अधिक भार को सींचने के लिये वहे पि बिन और बड़े ही वायलर की आवश्यकता है इसीप्रकार जन्म से छोटे कद बाला आदमी दिल में यदि ऐसा विचार करे कि मैं गर्म मसालों या गर्म दना से अधि को तीव कर अधिक खुराक को साकर कृद और ताकत में. बढ़ जार्ज तो यह उसकी महामूल है, क्योंकि ऐसा विचार कर यदि वह तदनुसार वर्चाव करेगा तो अपनी असली ताकत को भी सो वैठेगा, क्योंकि जैसे अधिक जोर के काम करने के लिये वड़े पि सि सवैंचम दवा के उपयोग, ब्रह्मचर्य वत के पालन और उचित वर्चाव से चलने आदि की आवश्यकता है अर्थात् इस व्यवहार से लामाविक शक्ति वर्त्यक होती है और खामाविक शक्तिवाल पुरुष महाशक्ति सम्पन्न तथा बड़े कदवाले सन्तान को उरपन्न कर सकता है, ऐसे मनुष्यको नकली उपचार करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती है।

भिय पाठकराण ! क्या आपने इतिहास में नहीं पढ़ा है कि हमारे इस देश के राठौर आदि राजा छोग वारह २ वर्ष तक दिख्ली में वादशाह के पास रह कर ब्रह्मचर्य ब्रत का पाछन करते थे और जब वे छोग ब्रद्ध के समय अपनी पत्नी में गमन करते थे तब उन के अमोध (निष्फल न जानेवाले) वीर्य से केशरीसिह, पद्मसिंह, जयसिंह कच्छावा और प्रतापसिंह सिसोदिया जैसे पुरुष सिंह उत्पन्न होतेथे, यद्यपि ख़ुराक उन की साधारण ही थी परन्तु वर्षाव अत्युक्तम था।

बहुत से अज्ञ लोग इस कथनसे यह न समझ जावें कि शास्त्रकारों ने गर्म मसालों की भारत निन्दा की है इसलिये इन को कमी नहीं खाना चाहिये, इस लेख का तात्पर्य फेवल यही है कि—देश काल और प्रकृति के द्वारा अपने हिताहित का विचार कर प्रत्येक वस्तु का उपयोग करना चाहिये, क्योंकि जिस को अपने हिताहित का विचार हो जाता है वह पुरुष कभी धोले में नहीं आता है, तात्पर्य यह है कि गर्म मसालों का निषेध जिस विषय में किया है उसी विषय में उन का निषेध समझना चाहिये तथा जिस विषय में उन का अंगीकार करना चाहिये, जैसे—देलो ! जिस मनुष्य की अत्यन्त वायु की तासीर हो तो वायु को अरीर में वरावर रखने के लिये खुराक के साथ उस को परिमित गर्म मसाला लेना चाहिये, इसीप्रकार जब मिठाई

१-स्माहादपक्ष-याय के देखने से मतुष्य को किसी प्रकार की शहूत नहीं प्राप्त होती है ॥

आदि गरिष्ठ पदार्थ खाने हों तब उन के साथ भी गर्म मसाले और चटनी आदि खाने चाहियें, किन्तु साधारण खुराक में गर्म मसालों का विशेष उपयोग करना आवश्यक नहीं है, यह भी सरण रखना चाहिये कि—गरिष्ठ पदार्थों के पचाने के लिये जो गर्म मसाले मिर्च और चटनी आदि खाये जावें वे भी परिमित्त ही खाये जावें, किन्तु उचित तो यह है कि—यथाशक्य गरिष्ठ पदार्थों का सेवन ही न किया जावे और यदि किया भी जावे तो खुराक की मात्रा से कम किया जावें।

वर्चमान समय में इस देश में शाक और दाल आदि में बहुत मिर्च, इमली, अचार, चटनी और गर्म मसालों के खाने का रिवाज़ बहुत ही बढ़ता जाता है, यह बड़ी हानिकारक बात है, इस लिये इस को श्रीष्ठ ही रोकना चाहिये, देखों । इस हानिकारक व्यव-हार का उपयोग करने से शरीर का रस विगड़ता है, खून गर्म हो जाता है और पिर विगड़ कर अपना मार्ग छोड़ देता है, इसी से तरह २ के रोगों का जन्म होता है जिन का वर्णन कहां तक किया जावे।

गर्म प्रकृतिवाले पुरुष को गर्म मसालों का सेवन कभी नहीं करना चाहिये क्यों—िक ऐसा करने से उस को बहुत हानि पहुँचेगी, यदि गर्म मसालों की ओर चिच चलायमान भी हो तो धनियां जीरा और सेंधानमक, इस मसाले का उपयोग करले क्योंकि यह साधारण मसाला है तथा सब के लिये अनुकूल आ सकता है, यदि चरपरी वस्तु के खाने की इच्छा हो तो काली मिर्च का सेवन कर लेना चाहिये किन्तु लाल मिर्च को कभी नहीं खाना चाहिये।

वर्त्तमान समय में छोगों में छाछ मिर्च के खाने का भी प्रचार बहुत बढ गया है, यह

1

1

۲

٧

4

's\

^{9—}बहुत से बुसुकित जाहाणो आदि को जब मिष्टाज खाने को मिलता है तब वे औघडो की भाति घर की सदा की खराक की अपेक्षा हुगुना तथा तिगुना माल खा जाते है और ऊरर से चमचमाहड करते हुए शाक, वाल, अचार और चटनी आदि पदार्थों को भी उदर दरी मे पशराते है, यह बडी भूल की बात है, क्योंकि—इस से बहुत हानि होती है अर्थात् ऐसा करने से पाचनशक्ति का समान रहना अतिकठिन है, यदि कोई पेटार्थी ऐसा हिसाब लगाने कि मैं आघ सेर अल अथवा तर माल का खानेनाला हूँ किन्तु भे एक उपये भर गर्भ मसाला खाकर से एम समाल को हजम कर खुगा, दसी प्रकार पाचक्पये भर गर्भ मसाले से पाच सेर नहीं तो तीन सेर तो अवस्थ ही हजम कर खुगा, तो उस का यह जिराशिक (जिराशिका हिसाब) खुराक के विषय में कम में नहीं सावेगा और यदि वह उक्त हिसाब को लगा कर वैसा करेगा तो अजीर्थ होकर उसे अवस्थ मरना पढ़ेगा।

२-वीकानेर के ओसवाल और तैलग देशवाले लोग जितनी छाल मिर्च खाते है उतनी मिर्च शायद ही कही कोई खाता होगा, यवपि इत्यपात्र बोसवालों के यहा मिर्च के साथ घत (घी) भी अधिक टालक्र खाते हैं जिस से मिर्च की गर्भी कुछ कम हो जाती है परन्तु वर्षमान में इस (बीकानेर) नगर में ओसवालों में सामान्यतया तिलोक चद जी (तैल) ही का वर्षोव बहुत है, इसी प्रकार तैलग कोग चावल और इमली मिर्च की चटनी को रूखी (विना घत के) ही खाते हैं, मलेवारवाले लोग कचे नारियल और अधि सी मिर्च की चटनी वना कर मात के साथ खाते हैं, भी मिर्च की गर्मी को शान्त करने बाला है परन्तु वर्षमान में उस के विषय में तो यह कहावत चितार्य होने समी है कि घी का और खुदा का मुँह किस ने देशा है।

भी अत्यन्त हानिकारक है, बहुत से छोग यह कहते हैं कि—जितना चरपरापन छाछ मिर्च में है उतना दूसरी किसी चीज़ में नहीं है इस छिये चरपरी चीज के खाने की इच्छा से यह (छाछ मिर्च) खानी ही पड़ती है इत्यादि, यह उन छोगों का कथन विछक्तछ मूछ का है, क्योंकि चरपरी चीज़ के खाने की इच्छावाछे छोगों के छिये छाछ मिर्च के सिवाय बहुत सी ऐसी चीज़ें हैं कि जिन से उन की इच्छा पूर्ण हो सकती है, देखो! अदरख काछी मिर्च, सोंठ और पीपछ आदि बहुत से चरपरे पदार्थ है तथा गुणकारक मी हैं इस छिये जब चरपरे पदार्थ के खाने की इच्छा हो तब इन (अदरख आदि) बस्तुओं का सेवन कर छेना चाहिये, यदि विशेष अभ्यास पड़ जाने के कारण किसी से छाछ मिर्च के विना रहा ही न जावे अथवा छाछ मिर्च का जिन को बहुत ही शौक पड़ गया हो उन छोगों को चाहिये कि जयपुर निले की छाछ मिर्च के बीजों को निकांछ कर रात को एक वा दो मिर्च जछ में मिगो कर प्रातःकाछ पीसकर तथा घी मे सेक कर थोड़ी सी ला छेवें। यह भी सरण रखना चाहिये कि—खड़े रस का तोड़ (दाउन या उतार) नमक है

यह भी सरण रखना चाहिये कि—खट्टे रस का तोड़ (दाउन या उतार) नमक है और नमक का तोड़ खट्टा रस है।

वधार देने के लिये जीरा, हींग, राई और मेथी मुख्य वस्तुयें हैं तथा वायु और कफ की प्रकृतिवालों के लिये थे लामदायक भी है ॥

अजार और राइता अचार और राइता पाचनशक्ति को तेज करता है परन्तु सरण रखना चाहिये कि जो २ पदार्थ पाचनशक्ति को बढ़ाते हैं और तेज है यदि उन का परिमाण बढ जावे तो वे पाचनशक्ति को उलटा विगाइ देते हैं, बहुत से लोग अचार, राहता, तेल, राई, नमक और मिर्चशादि तेज पदार्थों से जीम को तहदूव कर देते हैं सो यह ठीक नहीं है, ये चीजें हमेशह कम खानी चाहियें, यदि ये खाई भी जावें तो मिठाई आदि तर माल के साथ खानी चाहियें अर्थात् सदा नहीं खानी चाहियें क्योंकि इन चीजों के सेवन से खून विगइ जाता है और खून के बिगड़ने से मन्दाम होकर शरीर में अनेक रोग हो जाते है, इस लिये इन चीजों से सदा वचकर रहना चाहिये, देखों। मारवाड़ के निवासी और गुजराती आदि लोग इन्हीं के कारण प्रायः वीमार होने

१-लाल मिर्च के वीजों को खानेसे वीर्य को वड़ा मारी जुकसान पहुँचता है, इसलिये बीजों को विलक्षल नहीं साना चाहिये॥

२-पेटे रस में नीवू अमचुर और कोकम खाने के योग्य है, परन्तु यदि प्रकृतिके अनुकूल हों तो खाना चाहिये॥

रे-अचार और रायता कई प्रकार का बनता है-उस के ग्रण उस के उत्पादक पदार्थ के समान जानने चाहियें तथा इन में मसाठों के होने से उन के तीर्वणता आदि ग्रण तो रहते ही है ॥ -

४-विवेकहीन लोग इस बात को नहीं समझते हैं, देखी ! इन्हीं चीओं से तो पावनकृति विगडती है और इन्हीं चीजों दा सेवन पावनकृतिक के सुधार के लिये लोग करते हैं ॥

है, आगरे तथा दिल्ली से छेकर ब्रह्मा के देश तक छोग छाछ मिर्च को नहीं खाते हैं बदि खाते भी हैं तो बहुत ही युक्ति के साथ खाते है ॥

''खांद्री—वर्त्तमान समय में नाय का बहुत ही प्रचार है अर्थात् घर २ में लोग इस को पीते हैं, हमारे देश में पहिले चीन से चाय आती थी परन्तु अन बहुत वर्षों से नीलिगिर और आसाम के जिले में भी चाय पैदा होकर यहां आने लगी है, इस देश में को चाय बाज़ारों में बिकती है वह बहुत ही घटिया होती है, चीन जैसी चाय किसी मुल्क में नहीं पैदा होती है अर्थात् आठ आने से लेकर सौ रुपये तक वहां एक रतल की कीमत होती है किन्तु इस से भी अधिक होती है, वैसी अव्वल दर्जे की चाय बाज़ारों में विकती हुई यहां कभी नहीं देखी गई और न उस चाय का यहां कोई प्राहक ही दीख पड़ता है क्योंकि यहां तो 'सखा दाम और चोखा माल, का विचार प्रत्येक के हृदय में वस रहा है।

चाय दक्ष के सुखाये हुए पत्ते है, स्त जाने के वाद इन पत्तों को कड़ाहों में गर्भ करते है तब उन में सुगन्धि और खाद अच्छा हो जाता है, यह एक थोड़े ही नसे की चीज है इस लिये सदा पीने से अफीम, गांजा, सुलफा, तमाखू, मद्य, मांग और घतूरे आदि दूसरी नसीली चीजों की तरह अधिक हानि नहीं करती है।

चाय में प्रतिसैकड़े के हिसाब से गुण करनेवाला भाग एक से छः माग सक होता है जबात सब से हलकी (घटिया) चाय में एक और सब से बढिया चाय में प्रति सैकड़े में छः गुण कारी माग है, इस में पौष्टिक तत्व प्रतिसैकड़े में १५ भाग है और कठनी करनेवाला तत्व बहुत ही बोड़ा है।

काली और हरी चाय एक ही वृक्ष की होती है और पीछे बनावट के द्वारा इस के रंग में परिवर्त्तन होता है, चाय के ताज़े पत्तों को गर्म कदाई में चढाने से अथवा पानी की भाफ से मुखाकर गर्म करने से वह रंग में काली अथवा हरी हो जाती है परन्तु हरी चाय को रंग देने के लिये नीला थोथा अथवा प्रश्यनल्जू नामक जहरीली वस्तु का जो कुछ अंश किसी समय लोग देते है उस का असर बहुत खराब होता है।

चाय बज़न में बहुत बोड़ी सी पीने से शरीर में झस्ती पैदा करती है और बोड़ी नींद लाती है परन्तु बज़न में अधिक पीने से अंग में गर्भी और फुर्ची आती है तथा नींद का लाना बंद हो जाता है।

बहुत से लोग नींद को रोकने के लिये रात को चाय पीते है उस से यद्यपि नींद तो नही आती है परन्तु वे चैनी पैदा होती है, जो लोग नींद को रोकने के लिये रात को बार २ चाय पीते है और नींद को रोकते हैं इस से उन के मगज़ को बहुत हानि पहुँ चती है, जो आदमी अच्छा और पुष्टिकारक खुराक ठीक समय पर खाते है वे लोग यदि

१-इस को चा और चाह भी कहते हैं।

परिमाण के अनुसार चाय पीवें तो कुछ हानि नहीं है परन्तु हलका और थोड़ा भोजनकरने बाले तथा गरीव आदिमियों को थोड़ीसी तेन चाय पीनी चाहिये क्योंकि हरूकी ख़राक खानेवाले लोगों को थोड़ी सी तेज चाय नुकसान नहीं करती है, बहुत चाय के पीने से मगज में तथा मगज़ के तन्तुओं में शिथिखता हो जाती है, निर्वछता में अधिक चाय के पीने से ब्रान्ति और मूळने का रोग हो जाता है, लोग यह भी कहते है कि-चाय खून को जला देती है यह बात कुछ सत्यभी माल्डम होती है, क्योंकि-चाय अत्यन्त गर्म होती है इसलिये उस से खुन का जलना संमव है, चाय को सदा दूध के साथ ही पीना चाहिये क्योंकि दूधके साथ पीनेसे चाय का नशा कम होताहै, पोषण मिळता है तथा वह गर्मी भी कम करती है, बहुत से लोग भोजन के साथ चाय को पीते है सो यह हानिकारक है, क्योंकि उससे पाचनशक्ति में अत्यन्त बाघा पहुँचती है इसलिये मोजन के पीछे तीन चार **घण्टे** बीत जानेपर चाय को पीना चाहिये. देखो ! चाय पित्त को वढानेवाली है इसलिये मोजन से तीन चार घण्टे के बाद जो मोजन का माग पचना बाकी रह गया हो वह भी उस चाय के द्वारा उत्पन्न हुए पित्त से पचकर नीचे उतर जाता है, चाय में थोडा सा गुण यह भी है कि-वह पकाश्य (होजरी) को तेज करती है, पाचनशक्ति तथा रुचि की पैदा करती है, चमड़ी तथा मुत्राज्ञय पर असर कर पसीने तथा पेशाव को खुलासा लाती है जिस से खून पर कुछ अच्छा असर होता है, शरीर के मागों की शिथिलता और यकावट को दूर कर उन में चेतनता छाती है, परन्तु चाय में नशा होता है इससे वह तनदुरुस्ती मे बाबा पहुँचाती है, ज्यों २ चाय को अधिक देर तक उबाल कर पत्तों का अधिक कस निकाल कर पिया जावे त्यों २ वह अधिक हानि करती है, इस लिये चाय को इस मकार बनाना चाहिये कि पतीली में जल को चुरुहे पर चढ़ादिया जावे जब वह (पानी) खूब गर्म होकर उबळने लगे तब चाय के पत्तों को डाल कर कलईदार दक्कन से दक देना चाहिये और सिर्फ दो तीन मिनट तक उसे चूल्हेपर चढ़ाये रखना चाहिये, पीछे उतार कर छान कर दूध तथा मीठा मिलाकर पीना चाहिये, अधिक देर तक उदा-छने से चाय का खाद और गुण दोनों जाते रहते है, चाय में खांड़ या मिश्री आदि मीठा भी परिमाण से ही डालना चाहिये क्योंकि अधिक मीठा डालने से पेट विगडता है, बहुत लोग चाय में नीजू का भी कुछ खाद दैते है उस की रीति यह है कि-कलई या काचके वर्त्तन में नींबू की फांक रख कर ऊपर से चाय का गर्म पानी डाल देना चाहिये, चार पांच मिनट तक वैसा ही रख कर पीछे दूसरे वर्त्तन में छान लेना चाहिये !

चाय में यद्यपि बहुत फायदा नहीं है परन्तु संसार में श्रोक्तीनपने की हवा घर २ में फैलगई है इसलिये चाय का तो सब को एक व्यसन सा होगया है अर्थात् एक दूसरे की देखादेखी सब ही पीने लगे हैं परन्तु इस से बड़ा नुकसान है क्योंकि लोग चाय में जो

विशेष गुण समझते हैं वे उस में विलक्षक नहीं हैं इसिल्ये आवश्यकता के समय में दूंध और बूरा आदि के साथ इस को थोड़ा सा पीना चाहिये, प्रतिदिन चाय का पीना तो तर माल लानेवाले अंप्रेज और पारसी आदि लोगों के लिये अनुकूल हो सकता है किन्तु जो लोग प्रतिदिन घी का दर्शन तक नहीं कर सकते हैं सिर्फ त्योहार आदि को जिन को बी का दर्शन होता है उन के लिये प्रतिदिन चाय का पीना महा हानिकारक है, चाय के पीने की अपेक्षा तो यथाशक्य आरोग्यता को कायम रखने के लिये प्रतिदिन खयं दूध पीना चाहिये तथा बच्चों को पिलाना चाहिये॥

माफी चाय के समान एक दूसरी वस्तु काफी है जो कि अरव खान से यहां आती है, चाय और काफी दोनों का गुण प्रायः मिलता हुआ सा है, यह एक इक्ष का बीज है इस को बूंद दाना भी कहते हैं, बहुत से लोग इस के दानों को सेक कर रख छोड़ते है और मोजन करने के पीले झुपारी की तरह चाव कर मुँह को साफ करते है, इस के दानों को सेकने से उन में झुगन्य हो जाती है और वे एक मसालेदार चीज के समान बन जाते है, इस के दानों में सिर्फ एक माग गुणकारी है, एक माग खट्टा है, वाकी का सबमाग कड़ुआ और कड़ी करनेवाला है, इस के कड़े दाने बहुत दिनों तक रह सकते है अर्थात् बिगड़ते नहीं हैं परन्तु सेके हुए अथवा दले हुए दानों को बहुत दिनों तक रखने से उन की झुगन्य तथा खाद जाता रहता है।

चाय की अपेक्षा काफी अधिक पै। शिक तथा शक्तिदायक है परन्तु वह भारी है इस लिये निर्वेळ और बीमार आदमी को नहीं पचती है, काफी से शरीर में गर्मी और चेत-नता आती है शीत ऋतु में तथा शीत देशों में यात्रा करते समय यदि काफी पी जावे तो शरीर में गर्मी रहसकती है।

काफी के चूर्ण की बैठी बना कर पतीली के उबलते हुए जल में डाल कर पांच सात मिनट तक उसी में रख कर पीछे उतारने से काफी तैयार होजाती है, चाय तथा काफी में बहुत मीठा डाल कर पीने से निर्वल कोठे वाले को अवस्य हानि पहुँचती है इस लिये इन दोनों में बोड़ा सा ही मीठा डाल कर पीना चाहिये।

काफी के पानी में नौथा भाग दूध ढालना चाहिये, इन दोनों चीजों को बहुत गर्म पीने से पाचनशक्ति कम पड़ती है तथा घातु में भी हानि पहुँचती है, इस गर्मे देश में काफी गर्मी पैदा कर नींद का नास करती है इसलिये इसे रात को नहीं पीना चाहिये किन्तु आवश्यकता हो तब इसे पातःकाल में ही पीना चाहिये, हां यदि किसी कारण से किसी को रात्रि में निदा से बचना हो तो मले ही उसे रात में काफी पी लेनी चाहिये, जैसे—किसी ने विष खाया हो तो उस को रात्रि में नींद से बचाने के लिये अर्थात् जागृत (जागता हुआ) रखने के लिये वार र काफी पिलाया करते है। बहुत स्थूल शरीर वाले तथा बहुत खाने वाले के लिये चाय और काफी का पीना अच्छा है, दुवले तथा निर्वल आदमीको यथाशक्य चाय और काफी को नहीं पीना चाहिये तथा बहुत तेज भी नहीं पीना चाहिये किन्तु अच्छीतरह दूध मिलाकर पीना चाहिये, हलकी रूझ और सूखी-हुई ख़ुराक के लानेवालों को तथा उपवास, खांविल, एकाशन और कनोदरी आदि तपस्या करने वालों को चाय और काफी को नहीं पीना चाहिये यदि पियं भी तो बहुत ही थोड़ी सी पीनी चाहिये, प्रातःकाल में पूड़ी आदि नास्ते के साथ चाय और काफी का पीना अच्छा है, पेट मर मोजन करने के बाद चार पांच घटे वीते विना इन को नहीं पीना चाहिये, निर्वल कोठे वाले को बहुत मीठी बहुत सस्त उवाली हुई तथा बहुत गर्म नहीं पीनी चाहिये किन्तु थोड़ा सा मीठा और दूध डालकर कुए के जल के समान गर्म पीनी चाहिये, इन दोनों के पीने में अपनी प्रकृति, देश, काल और आव-श्यकता आदि वातों का भी खयाल रखना चाहिये, वास्तव में तो इन दोनों का भी पीना क्यसन के ही तुस्य है इस लिये जहांतक हो सके इन से भी मनुष्य को अवश्य बचना चाहिये॥

अम्नेसाधन समवाय हेतु में जो २ गुण है वे ही गुण उस समवायी कार्य में जानने चाहियें अर्थात् जो २ गुण गेहूँ, चना, मंग, उइद, मिश्री, गुइ, दूध और वूरा आदि पदार्थों में है वे ही गुण उन पदार्थों से बने हुए छड़ू, पेड़े, पूड़ी, कचौरी, मठरी, रवड़ी, जलेवी और माळपुए आदि पदार्थों में जानने चाहियें, हां यह वात अवश्य है कि—किसी २ वस्तु में संस्कार भेद से गुण भेद हो जाता है, जैसे पुराने चांवलों का मात हळका होता है परन्तु उन्हीं शालि चावलों के बने हुए चिर वे (संस्कार भेद से) मारी होते हैं, इसी प्रकार कोई २ द्रव्य योग प्रभाव से अपने गुणों को त्याग कर दूसरे गुणों को घारण करता है, जैसे—दुष्ट अन्न मारी होता है परन्तु वही बीके योग से बनने से हळका और हितकारी हो जाता है।

यथि प्रथम कुछ आवश्यक अनों के गुण िल्स चुके है तथा उन से बने हुए पदा-भों में भी प्रायः वे ही गुण होते है तथािप संस्कार भेद आदि के द्वारा बने हुए तज्जन्य पदाओं के तथा कुछ अन्य भी आवश्यक पदार्थों का वर्णन यहां संक्षेप से करते है:—

"भारत-- अग्निकर्चा, पथ्य, तृप्तिकर्चा, रोचक और हरूका है, परन्तु विना धुरुं चावरुं। का मात और विना औटे हुए जरू में चांवरुं। को डाल कर पकाया हुआ मात शीतल, मारी, रुचिकर्चा और कफकारी है।

द्मरु-विधंभकारी, रूक्ष तथा श्रीतल है, परन्तु भाड़ में मुनी हुई दाल के छिलकों को दूर करके बनाई जाने तो वह अत्यन्त हुलकी हो जाती है ॥

१-इस के बनाने की विधि पूर्व छिस्त चुके है ॥

-- न्विच ही-- वीर्यदाता, वटकर्ती, सारी, पितकप्रकर्ती, देर में पचनेवाकी, बुढिकर्ती, सुत्रकारक तथा विष्टंस और सट को उत्पन्न करने वाटी है ॥

क्तिर[्] देर ने पचने वाकी, इंहपी तथा वलवर्द्धक़ है ॥

स्मेर्मई—माञ्जों की तृति करने वाली, नडकारी, मारी, निच और वात को नष्ट । करने वाली, ब्राही, सन्त्रि कर्चा तथा रुचिकारी है ॥

पुरी चृंहण, मृत्य, मलकारी, रुचिकची, पाक में ममुर, आही और त्रिदीप नासक हैं ॥

रुप्सी (सीरा)—बृंहण, बृन्य, बलकारक, बातपितनाशक, खिन्त्र, क्रफ्कारी, भारी, रुविकर्ची और अत्यन्त तृति कर्चा हैं॥

रोटी—बल्जारी, रुविकर्जा, बृंहगी (पुष्टि कर्जा), रस और रक्त कारि बातुओं को नदाने वाली, वातनाशक, कनकर्जा, सारी और प्रदीष्ठ अधिवालों के लिये हित-कर्जी है।

बारी चूंहणी, गुरुक्तो, हरुकी, दीपनकर्ती, कफकारी तथा बरुक्ती है, एवं पीनम, खास बीर कास रोग की दूर करती है।

जों की रोटी—रुविकर्ण, नधुर, विशद और हलकी है, नल, शुरू और वादी को करती है तथा कक के रोगों को नट करती है ॥

ब्लुड़ की रोटी-- ऋफ्षित नाग्रक तथा कुछ वायुकारक है ॥

चने की रोटी—रुश्न. कप पित और रुविर के विकारों की दूर करनेवाणी, नारी, ऐट की पुरुष्ते वाली, नेत्रों के लिये अहित तथा सोवक है ॥

बेह्हू — बल्कारी, इ.च, त्विकृती, बातनाश्चक, उप्यता की बढ़ाने वाळी, सारी, ब् बृंहुणी और शुक्र को प्रकट करनेवाओं है, नृत्र तथा नठ का नेदन करती है, सानसंक्रमी बृग्न, नेद्र, पित और क्रफ की करती है नया गुद्ध का नस्सा, उक्रवा, बात, खास और परिणान शुक्र को दूर करती हैं ॥

पापड़—गरन विकारी, दीपन, पाचन, करू सीर कुछ २ सारी हैं, परन्तु चूंप के पाएड इनके और परय होते हैं ॥

कचोरी— उंच की कचोरी-रचिकर, खाहु, चारी, क्षिम, इटकारी, रच्चित को कुरित करने वाली, नेजों के तेव का मेदन करनेवालो, पाक में गर्न तथा वातनाशक है। परन्तु थी की बनी हुई कचोरी नेजों को हितकीरक तथा रक्तवित की नामक होती हैं॥

१-वे पूर्विय देशों में आदन नास से बहुत बनाई साली हैं ग

बरा और मँगोरा—ये दोनों—बलकारक, वृंहण, वीर्यवर्धक, वातरोगहर्ता, रुचि-कारी, अदिंत वायु (लकवा) के नाशक, मलमेदक, कफकारी तथा प्रदीप्तामिवालों के लिये हितकारक है, यदि गाढे दही में मुना हुआ जीरा, हींग, मिर्च और नमक को मिला-कर वरे और मँगोरों को मिगो दिया जावे तो वे दही वड़े और दही की पकोड़ी कहलाती है, ये दोनों—वीर्यकर्ता, बलकारी, रोचक, मारी, विवन्य को दूर कर्ता, दाहकारी, कफ-कर्ता और वातनाशक होते हैं ॥

उद्धद-की-बद्धी-इन में बरे के समान गुण है तथा अत्यन्त रोचक है।

पेठे की चड़ी—इन में भी पूर्वीक बड़ियों के समान गुण है परन्तु इन में इतनी निशेषता है कि ये रक्तपित्तनाशक तथा हलकी है ॥

सूंग की बड़ी-पथ्य, रुचिकारी, हरूकी और मूंग की दाल के तुल्य गुण-वाली है।

कड़ी—पाचक, रुचिकारी, इलकी, अभिदीपक, कफ और वादी के विवंध को तोड़ने-वाली तथा कुछ २ पित्तकोपक है ॥

-मीठी मठरी — बृंहण, बृज्य, बळकारी, मधुर, भारी, पित्तवातनाशक तथा रुचिकारी है, यह प्रदीप्तामिवालों के लिये हितकारक है, इसी प्रकार मैदा खांड़ और वी से बने हुए पदार्थों (बालसाई, मैदा के लक्क् और मगद तथा सकर पारे आदि) के गुण मीठी मठरी के समान ही जानने चाहियें ॥

ं बूंदी के लड्डू हरुके, माही, त्रिदोषनाशक, खादु, शीतरु, रुचिदायक, नेत्रों के रिवेश हितकारक, ज्वरहत्ती, बरुकारी तथा धातुओं की तृष्टिकारक है, ये मूंग की बूंदी बार्ड रुड्डुओं के गुण जानने चाहियें।

मोतीचूर के उन्हरू — बलकर्चा, हलके, शीवल, किञ्चित् वातकर्चा, विष्टम्मी, ज्वर-नाशक, रक्तिपत्तनाशक तथा कफहर्ची हैं॥

ं जिलेंबी—पृष्टिकत्ती, कान्तिकत्ती, वलदायक, रस आदि धातुओं को बढानेवाली, कृष्ण, रुचिकारी और तत्काल घातुओं की तृप्तिकारक है ॥

शिखरन (रसाला-)—शुक्रकर्चा, वलकारक, रुचिकारी, वातिपत्त को जीतने-वाली, दीपनी, चूंहणी, क्षिम्ब, मधुर, ज्ञीतल और दखावर है, यह रक्तिपत्त, प्यास, दाह और सरेकमा को नष्ट करती है ॥

दार्वतं - वीर्य प्रकटकर्ता, शीतल, दस्तावर, चलकारी, रुचिकर्ता, हलका, सादिष्ठ, बातपित्तनाशक तथा मूर्छो, वमन, तुषा, दाह और ज्वर का नाशक है ॥ आर्मि का पना - तत्काल रुचिकर्ता, वलकारी तथा शीव्र ही इन्द्रियों की तृति कारी है ॥

इमली का पना—वातनाशक, किञ्चित् पित्तकफकर्ता, रुनिकारी तथा अग्नि-दीपक है ॥

नींबू का पना अत्यन्त खट्टा, वातनाशक, अधिदीपक, रुचिकारी तथा सम्पूर्ण किये हुए आहार का पाचक है ॥

धॅनिये का पना- यह पित्त के उपद्रवों को सान्त करता है ॥

जीं का संन्तुं—शीतल, दीपन, हलका, दसावर, कफिपत्तनाशक, रूझ और लेखन (दुर्वलकरनेवाला) है, इस का पीना बलदायक, बृष्य, बृंहण, भेदक, तृष्ठिकत्ती, मधुर, रुचिकारी तथा अन्त में बलनाशक है, यह कफ, पित्त, परिश्रम, मूस, प्यास, अण्डबृद्धि और नेत्ररोग को नष्ट करता है तथा दाह से ज्याकुल और ज्यायाम से आन्त (अके हुए) पुरुषों के लिये हितकारी है ॥

ज्ञना और जों का सन्तू यह कुछ वातकारक है इसिछेये इस में बूरा और धी डाल कर इसे खाना चाहिये ॥

दाालिसन्तू अप्रिवर्षक, हलका, शीतल, मधुर, ब्राही, रुचिकर्ता, पथ्य, वल-कारक, ग्रुकजनक और तृप्तिकारक है ॥

बहुँरी--दुर्जर (कठिनता से पचनेवाला), रूक्ष, तृथा लगानेवाली तथा भारी है, परन्त प्रमेह कफ और वसन को नष्ट करती है॥

-स्वील (लार्जा) — मधुर, श्रीतल, हलकी, अधिदीपक, अल्पमूत्रकर्ता, रूक्ष, बल-कर्ता तथा पित्तनाशक है, यह, कफ, वमन, अतीसार, दाह, रुघिरविकार, प्रमेह, मेद रोग और तृपा को दूर करती है ॥

चिउरें -(चिरमुरा) — भारी, बातनाशक तथा कफकर्ता हैं, बिंद इन को दूध के साथ खाया जावे तो ये बुंहण, बृज्य, बठकारी और दस्त को ठानेवाले होते हैं।

^{9—}इस को मारवाह में सातू कहते हैं, इस के खाने में सात नियमों को ज्यान में रखना चाहिये कि— भोजन कर के इस को न खाने, दॉर्तों से रोंधकर न खाने, रात्रि में न खाने, बहुत न खाने, एक जल में दूसरे प्रकार का जल मिलाकर न खाने, मिठाई आदि के बिना (केवल सत्तू) न खाने, गर्म कर के तथा दूस के साथ न खाने॥

२-इस को पूर्व में मुजिया का सत्तू कहते है तथा यह शालि चावला का बनावा जाता है।

३-सुपरहित भुने हुए जाँओं को बहुरी कहते हैं।

४-यह धानों के भूनने से बनती है ॥

५-तुबरहित हरे शालि चावलों को भून कर विना खिले हुओ को गर्म ही ओखली में डालकर कूटने है ये तैयार होते हैं !!

ं तिरुक्ति। मलकर्ता, वृष्य, वातनाशक, कफपित्तकर्ता, बृंहण, भारी, स्निग्ध तथा अधिक मूत्र के उतरने का नाशक है ॥

होलो — जिस धान (अज) का होला हो उस में उसी घान के समान गुण होते हैं, जैसे—चने के होले चने के समान गुणवाले हैं, इसी प्रकार से अन्य धान्यों के होलों का भी गुण जान लेना चाहिये॥

जम्बी--फफकर्चा, बलकारी, हलकी और पित्तकफनाशक है ॥

जॉली—जीम के जकड़ने को दूर करनेवाली तथा कण्ठ को शुद्ध करनेवाली है, यदि इस को धीरे २ पिया जावे तो यह रुचि को करती है तथा अग्नि को प्रदीप्त करती है ॥ जुड़ क्रिपिक़ों—बलकारी, वातिपत्तनाशक, बुल्य, शीतल, मारी, वीर्यकर्ता, बृंहणी, रुचिकारी, देहपीषक तथा नेत्रतेजोवर्षक है ॥

ताहिरी—वलकारी, वृष्य, कफकारी, बृंहणी, तृप्तिकर्ता, रुचिकारी और पित्तनाशक है।।
नारियल की देविर—खिम्ब, श्रीतल, अतिपुष्टिकर्ता, भारी, मधुर और वृष्य है
तया रक्तपित और वादी को दूर करती है।।

ं मण्डर्कः—बृंहण, बृष्य, वलकारी, अतिरुचिकारक, पाक में मधुर, श्राही, इलके और त्रिदोष नाशक है ॥

१-तिलों में गुढ़ या शक्तर डालकर कूट डालने से यह तयार होता है, पूर्व के देशों में यह संकटचतुर्या (सक्तट नीय) को प्रायः प्रतिग्रह में बनाया जाता है ॥

१-फिट्यों के घान्य आये मुने हुए हों तथा उन का तृण जल गया हो उन को होला कहते हैं ॥

२-गेहूं की अभपकी वाल को यो तिनकों की अप्तिमें भूत छेवे, उसे उम्बी कहते हैं।।

४-क्षे आमों को पीस कर उन में राई सेबानमक और भुनी हींग को मिला कर जल में घोर ठेने इस को जाती कहते हैं।

५-मानलों का चूर्ण कर उस में गाढा माना (स्रोहा) मिला कर कुम्मी से बना छेतें, फिर उन की भी में छोड़ कर पकार्ते, फिर उन को निकाल कर बीच में छेद कर मिश्री मिला हुआ गाडा तूथ भर देवे और शहरूसे मुख बद करके फिर भी में पकार्ते, जब पीले रंग की होआर्दे तब भीने से निकालकर कपूर मिली मासनी में तल छेते, इसको दुग्वकृषिका कहते हैं।

६-इल्दी मिले घी में प्रथम उद्द की बिह्मों को तथा इन्हीं के साथ घुले हुए खच्छ चावलो को लेपे, फिर बितने में ये दोनों सिद्ध हो जावें उत्तमा जल चढाकर एकावें तथा नमक अदरख और हीग को अनु-मान माफिक डाले तो यह ताहरी सिद्ध होती है ॥

७-नारियल की गिरी को चाकू से बारीक कतर कर अथवा वियाकस पर बारीक रगड़ कर दूध में पांड और गाय का घी डाल कर मन्दानि से औंटांबे तो नारियल की खीर तैयार हो जाती है।।

८—सफेद गेहुजों को जल में घोकर बोखाओं में बालकर मूसल से कूट खेले, फिर इन को घूप में सुखा-कर चकी से पीसकर मैदा छानने की चालनी में छानकर मैदा कर ठेवे, फिर इस मैदा को जल में कोमल उसन कर खुब मर्दन करें, फिर श्व से छोई को वहा कर पूढ़ी के समान बेल छेवे, फिर चूल्हें पर औधे सुख के खपड़े पर इस को ढाल कर मन्दाग्रि से सेके, ये सिके हुए मण्डक कहलाते हैं।

-कंजि: वरें। - रुचिकारी, वातनाशक, कफकारक, शीतल तथा शुलनाशक हैं, एवं दाह और अजीर्ण को दूर करते हैं, परन्तु नेत्ररोगी के लिये अहित है !!

इमली के बेरे - रुचिकारी, अमिदीपक तथा पूर्व कहे हुए वरों के समान गुण-

्रमूंग वरा-- मूंग के बरे (बड़े) छाछ में परिपक करके तैयार किये जावें तो वे हरुके और शीतल है तथा ये संस्कार के प्रभाव से त्रिदोषनाशक और प्रथ्य हो जाते हैं॥

अलीक मर्स्य — खाने में सादिष्ठ तथा रुचिकारी हैं, इन को बधुआ के शाक से अथवा रायते से साना चाहिये ॥

्**म्ंग अद्र**ख्**की बाँड्रीं** रिचिकारक, हळकी, बळकारी, दीपन, बाहुओं की तृप्ति करनेवाळी, पथ्य और त्रिदोषनाशक है ॥

प्यकेरि - रुचिकारी, विष्टम्मकर्ता, वलकारी और पुष्टिकारक हैं ॥
सुद्धा चा सुद्धियाँ - वलकारक, बृंहण तथा रुचिकारी है ॥

9-एक मिद्दी का घडा छेकर उस के भीतर कड़ुआ तेल चुपड देवे, फिर उस में खच्छ जल भर कर उस में राई, जीरा, नमक, हींग, सोठ और हलदी, इन का चूर्ण डाल कर उसद के वहां को उस जल में भिगो देने और उस चड़े के मुख को नद कर किसी एकान्त स्थान में धर देवे, बस ३ दिन के बाद ख़ेट होने पर उन्हें काम में लावे ॥

र-पकी इसकी को भौटा कर जरू में ही उसे खूब भीजे, फिर किसी कपड़े में डालकर उसे छान छेने तथा उसमें नमक, मिर्च, जीरा आदि यथायोग्य मिळाकर भंगीड़ियों को मिगो देवे, ये इसली के वरे कह-छाते हैं।

३—उच्च की पिड़ी में बड़े साबत पानों को रूपेट कर बुक्ति से कबाई में सेके, फिर उन को उतार कर चाकू से कतर रेवे पीछे उन को तेरुमें तरू छेवे इन को अठीक सरस्य कहते हैं ॥

४-मूग से वनी हुई बढियों को तेळ में तळकर हाथ से चूर्ण कर डाठे, इसमें भुनी हींग, छोटे २ अद-रखके दुकड़े, मिर्च, जीरा, नींबू का रस और अजमायन, इन सब को युक्ति से मिला कर उस पिड़ी को कढाई में अथवा तने पर फैलादे, फिर इस के गोळे बनाकर मीतर मसाला भर के उन गोलों को तेल में रिद्ध करे, जब सिक जाने तब उतार कर कडी में डाल देने ॥

५-चने की विनी छनी दाल को नकी से पीस कर बेसन बना लेने, उस बेसन को उसन कर तथा नमक आदि डाल कर विद्या बनाकर घी या तेल में कडाई में पकाने, इन को पकोडी कहते हैं, इन को कडी में भी डालते हैं।

६—मैदा स्वीर भी को सिलाकर पापनी बनाकर घी में सेक छने, जब सिक जानें तब निकाल कर कूट डाले, फिर बारीक नालनी में डालकर छान छने, इस मं सफेद बूरा मिला कर एकजीव कर के तथा इलायनीयाने, लोंग, काली मिर्च नारियल की गिरी और निरींची आदि बाल देने, फिर मोमन (मोवन) दी हुई मेदा की मोटी और नहीं रोटी सी बेल कर उस के मीतर इस कूर को भरे और फिर इस की गुन्निया बना कर किनारों को गूथ देने, फिर कहाई में घी देके इन को सेक छने, इन को गूबा या शुक्तिया कहते हैं, ये होली के स्वीहार पर प्राय: पूर्व में बनाये जाते हैं।

कपूरेनोली—इस में गुझिया वा गृझा के समान गुण है ॥ केनी—बंहण, वृष्य, वलकारी, अत्यन्त रुचिकारी, पाक में भी मघुर, ब्राही, और त्रिदोषनाशक है तथा हलकी भी है ॥

- मैदा की पूँड़ी-इन में भी फेनी के समान सब गुण हैं।

-सेब के लडूँ - इन में भी सब गुण फेनी के समान ही हैं ॥

यह संक्षेप से मिश्रवर्ग का कथन किया गया है, बुद्धिमान तथा श्रीमानों को उचित है कि-निक्रमे तथा हानिकारक पदार्थों का सेवन न कर के इस वर्ग में कहे हुए उपयोगी पदार्थों का सदैव सेवन किया करें जिस से उन का सदैव शारीरिक और मानसिक वल बखता रहे !!

यह बतुर्थ अध्याय का वैधकमाग निषण्डनामक पांचवां प्रकरण समाप्त हुआ ।।

१-मोबन दी हुई मैदा को उसन कर लम्बा सम्युट बनावे, उस में लैंग भीमसेनी कपूर तथा खाड को मिला कर मर देवे, फिर मुख को बंद करके घी में सेक केवे, इस को वर्ष्रवालिका कहते हैं ॥

२-प्रथम मैदा को सान कर उस में थी डाडकर छम्बी २ वसी थी बनावें, फिर दन को रूपेट कर पुनः कम्बी बसी करें, इस के बाद उन को बेठन से वेठकर पापडी बना जेवें, फिर इन को बाकू से कतर पुनः वेठें, फिर इन पर सहक का छेपकरें (बावलों का चून भी और खल, इन सब को सिवा कर हवेली से मध बालें, इस की सहक कहते हैं) अर्थात सहक से लोई को रूपेट कर वेज छेवे अर्थात उसे गोल चन्त्रमा के आकार कर छेवें, फिर इनकी थी में सेकें, भी में सेकने से उन में अनेक सार २ से हो बावेंगे, फिर उनकी बादनी में पाग छेवें, अथवा धुगन्त्रित जूरे में रूपेट छेवे इन को फेनी कहते हैं।

र-भोदन बाबी हुई मैदा को उसन के ओई करे, फिर उन को पतली २ वेककर वी में छोड देवे, जब रिक बावे तब उतार के॥

Y-भोवन बाकी हुएँ मैदा के सेव तैयार करके भी में सेक केवे, फिर इन के टुकडे कर के खाड में पाग कर करू बनाकेदे ॥

[.] भ-इस मिश्रवर्ग में कुछ आवश्यक कोडे से ही पदायों का वर्णन किया गया है तथा उन्हों में से कुछ पदायों के बनाने की विधि भी नोट में छिसी गई हैं, केष पदायों का वर्णन तथा उन के बन मिले आदि थी विधि, एव उन के गुण दूसरे वैद्यक प्रन्थों से तथा पाकशास्त्र में देखना चाहिये, यहा विस्र्यात के भय से उन सब का वर्णन नहीं किया गया है॥

-छठा प्रकरण--पथ्यापथ्यवर्णन

पथ्यापथ्य का विवरण ॥

१—सानपान के कुछ पदार्थ ऐसे है जो कि नीरोग मनुष्यों के लिये सर्व ऋतुओं और सब देशों में अनुकूल जाते है।

२-कुछ पदार्थ ऐसे मी है जों कि कुछ मनुष्यों के अनुकूछ और कुछ मनुष्यों के प्रतिकूछ आते हैं, एवं एक ऋतु में अनुकूछ और दूसरी ऋतु में प्रतिकूछ आते हैं, इसी प्रकार एक देश में अनुकूछ और दूसरे देश में प्रतिकूछ होते है।

३ - कुछ पदार्थ ऐसे भी है जो कि - सब प्रकार की प्रकृतिवालों के लिये सब ऋतुओं में खीर सब देशों में सदा हानि डी करते है।

इन तीनों प्रकार के पदार्थों में से प्रथम संख्या में कहे हुए पदार्थ पथ्य (सब के लिये हितकारी) दूसरी संख्या में कहे हुए पदार्थ पथ्यापथ्य (हितकारी नाहितकारी मर्थात् किसी के लिये महितकारी) और तीसरी संख्या में कहे हुए पदार्थ कुपथ्य अथवा अपथ्य (सब के लिये महितकारी) कहलाते हैं।

अब इन (तीनों प्रकार के पदार्थों) का कम से वर्णन पूर्वाचार्यों के लेख तथा अपने अनुसब के विचारों के अनुसार संक्षेप से करते है:---

पथ्यपदार्थ ॥

- असाजों में - चावल, गेहूँ, जौ, सूंग, अरहर (तूर), चना, मौठ, मस्र और मटर, ये सब साधारणतया सब के हितकारी हैं अर्थात् ये सब सदा खाये जावें तो किसी प्रकार की भी हानि नहीं करते है, हां इस बात का स्मरण अवस्य रखना चाहिये कि इन सब अनाजों में जुदे २ गुण है इस लिये इन के गुणों का और अपनी प्रकृति का विचार कर इन का यथायोग्य उपयोग करना चाहिये।

चनों को यहां पर बद्यपि पथ्य पदाशों में गिनाया है तथापि इन के अधिक साने से पेट में वायु भर कर पेट फूळ जाता है इस छिये इन को कम खाना चाहिये, चावल एक वर्ष के पुराने अच्छे होते है, अरहर (तूर) की दाल को घी डाल कर खाने से निल्कुल प्यू को नहीं करती है, सूंग यद्यपि वायु को करती है परन्तु उस की दाल का पानी फिर वाप्य और मौयंकर रोग में भी पथ्य है, इस के सिवाय मिन्न र देशवाले लोगों को होंग, काली ही जिन पदार्थों का अभ्यास हो जाता है उन के लिये वे ही पदार्थ पथ्य मोटी और वहां

के सीहार पर मेर्न विशेष किसी के लिये कुछ हानिकारक हो उस की गणना इस में नहीं है ॥

शाकों में —चँदिलये के पत्ते, परवल, पालक, वशुआ, पोथी की भाँजी, सूरणकन्द, मेथी के पत्ते, तोरई, मिण्डी और कहू आदि पथ्य है।

दूसरे आवद्यक पदार्थी में — गाय का दूध, गाय का घी, गाय की मीठी छाछ, मिश्री, अदरल, आँवले, सेंघानमक, मीठा अनार, मुनका, मीठी दाल और वादाम, ये भी सब पथ्य पदार्थ है।

दूसरी रीति से पदार्थी की उत्तमता इस प्रकार समझनी चाहिये कि-चावलों में लाल, साठी तथा कमोद पथ्य है, अनाजों में गेहूँ और जी, दालों में मूंग और अरहर की दाल, मीठे में मिश्री, पत्तों के शाक में चॅदलिया, फलों के शाक में परवल, कन्दशाक में सरण, नमकों में सेंघा नमक, खटाई में ऑवले, दूघों में गाय का दूघ, पानी में बरसात का अधर िंचा हुआ पानी, फलों में विलायती अनार तथा मीठी दाल, मसाले में अदरल, धनिया और जीरा पथ्य है, अर्थात् ये सब पदार्थ साधारण प्रकृतिवालों के लिये सब ऋतुओं में जीर सब देशों में सदा पथ्य हैं किन्तु किसी २ ही रोग में इन में की कोई २ ही वस्तु कुपय्य होती है, जैसे-नये ज्वर में बारह दिन तक घी. और इक्षीस दिन तक दूव कुपध्य होता है इत्यादि, ये सब वार्ते पूर्वाचार्यों के बनाये हुए अन्यों से विदित हो सकती है किन्दु जो लोग अज्ञानता के कारण उन (पूर्वाचार्यो) के कथन पर ध्यान न देकर निषिद्ध वस्तुओं का सेवन कर बैठते है उन को महाकष्ट होता है तथा प्राणान्त भी हो जाता है, देखो ! केवल वातज्वर के पूर्वरूप में वृतपान करना लिखा है परन्तु पूर्णतया निदान कर सकने वाला वैद्य वर्तमान समय में पुण्यवानों को ही मिलता है, साधारण वैद्य रोग का ठीक निदान नहीं कर सकते है, पायः देखा गया है कि-वातज्वर का पूर्वरूप समझ कर नवीन ज्वर वाळों को वृत पिछाया गया है और वे वेचारे इस व्यवहार से पानीझरा और मोतीझरा जैसे महामयंकर रोगों में फंस चुके है, क्योंकि उक्त रोग ऐसे ही व्यवहार से होते है, इसलिये नैद्यों और प्रजा के सामान्य लोगों को चाहिये कि-कम से कम ग्रुख्य २ रोगों में तो विहित और निषिद्ध पदार्थों का सदा ध्यान रक्खें ।

साधारण कोगों के जानने के लिये उन में से कुछ मुख्य २ बार्ते यहां सूचित करते है:—

मये ज्वर में चिकने पदार्थ का खाना, आते हुए पसीने में और ज्वर में ठंढी तथा मलीन हवा का लेना, मैला पानी पीना तथा मलीन खुराक का खाना, मलज्वर के सिवाय नये ज्वर में बारह दिन से पहिले जुलाव सम्बन्धी हरड़ आदि दवा वा कुटकी चिरायता आदि कडुई कपैली दवा का देना निपिद्ध है, यदि उक्त समय में उक्त निपिद्ध

१-इस की पूर्व में अलता कहते हैं, यह एक प्रकार का रग होता है।

पदार्थों का सेवन किया जावे तो सिलिपात तथा मरणतक हानि पहुँचती है, रोग समय में निषिद्ध पदार्थों का सेवन कर के भी बच जाना तो अग्नि विष और शस्त्र से बच जाने के तुल्य दैवाधीन ही समझना चाहिये।

वैद्यक शास्त्र में निषेष होने पर मी नये ज्वर में जो पश्चिमीय विद्वान् (डाक्टर छोग) दूभ पिछाते हैं इस बात का निश्चय अद्याविष (आजतक) ठीक तौर से नहीं हुआ है, हमारी समझ में वह (दूभ का पिछाना) औषष विशेष का (जिस का वे छोग प्रयोग करते हैं) अनुपान समझना चाहिये, परन्तु यह एक विचारणीय विषय है।

इसी प्रकार से फफ के रोगी को तथा प्रस्ता की को मिश्री आदि पदार्थ हानि पहुँचाते है।

पध्यापध्य पदार्थ ॥

बाजरी, उड़द, चँवला, कुलबी, गुड़, सांड़, मनस्तन, दही, छाछ, मैस का तूघ, घी, आछ, तोरई, काँदा, करेला, कँकोड़ा, गुवार फली, दूधी, लवा, कोला, मेथी, मोगरी, मूला, गाजर, काचर, ककड़ी, गोभी, विया, तोरई, केला, अनमास, आम, जाग्रन, करैंदि, अझीर, नारंगी, नींबू, अमरूद, सकरकन्द, पीछ, गूदा और तरबूज आदि बहुत से पदार्थों का लोग प्रायः उपयोग करते हैं परन्तु प्रकृति और ऋतु आदि का विचार कर हम का सेवन करना चाहिये, क्योंकि वे पदार्थ किसी प्रकृति वाले के लिये अनुकूल तथा किसी प्रकृतिवाले के लिये प्रतिकृत एवं किसी ऋतु में अनुकूल और किसी ऋतु में प्रतिकृत एवं किसी ऋतु में मिश्री के साथ खाने से ही फायदा करता होती है, जैसे दही शरद ऋतु में शश्रु का काम करता है, वर्षा और हेमन्त ऋतु में हित-कर है, गर्मी में अर्थात् केट वैशास के महीने में मिश्री के साथ खाने से ही फायदा करता है, एवं ज्वर वाले को कुपध्य है और अतीसार वाले को प्रथ्य है, इस प्रकार मत्येक वस्तु के खनाव को तथा ऋतु के अनुसार प्रथापथ्य को समझ कर और समझदार पूर्ण वैध की या इसी अन्य की सम्मति लेकर प्रत्येक वस्तु का सेवन करने से कभी हानि नहीं हो सकती है।

पथ्यापथ्य के विषय में इस चौपाई को सदा घ्यान में रखना चाहिये— चैते गुड़ वैश्वाले तेल । जेठे पन्य अषाढे बेल ॥ सावन दूध न मादौं मही । कार करेला न कातिक दही ॥ सगहन जीरो पूसे धना । माहे मिश्री फागुन चना ॥ जो यह बारह देय बचाय । ता घर वैध कब हुँ न जाये ॥ १ ॥

१-इस का अर्थ स्पष्ट ही है इस किये नहीं किसा है ॥

कुपथ्य पदार्थ ॥

दाह करनेवाले, जलानेवाले, गलानेवाले, सड़ाने के समाववाले और ज़हर का गुण करनेवाले पदार्थ को कुमध्य कहते हैं, यथि इन पांचों प्रकार के पदार्थों में से कोई पदार्थ बुद्धिपूर्वक उपयोग में लाने से सम्भव है कि कुछ फायदा भी करे तथापि ये सब पदार्थ सामान्यतया शरीर को हानि पहुँचानेवाले ही है, क्योंकि ऐसी चीज़ें जब कभी किसी एक रोग को मिटाती भी है तो दूसरे रोग को पैदा कर देती हैं, जैसे देखों। खार अर्थात् नमक के अधिक खाने से वह पेट की वायु गोला और गांठ को गला देता है परन्तु शरीर के धातु को बिगाड़ कर पौरुष में बाधा पहुँचाता है।

इन पाचों प्रकार के पदार्थों में से वाहकारक पदार्थ पित्त को बिगाड़ कर अनेक प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं, इमली आदि अति खट्टे पदार्थ शरीर को गला कर सन्धियों को ढीका कर पौरुष को कम कर देते हैं।

इस प्रकार के पदार्थों से यद्यपि एक दम हानि नहीं देखी जाती है परन्त बहुत दिनों-तक निरन्तर सेवन करने से ये पदार्थ प्रकृतिको इस प्रकार विकृत कर देते है कि यह भरीर अनेक रोगों का गृह बन जाता है इस लिये पहले पथ्य पदार्थों में जो २ पदार्थ लिस जुके है उन्हीं का सदा सेवन करना चाहिये तथा जो पदार्थ पथ्यापथ्य में लिसे है उन का ऋतु और प्रकृति के अनुसार कम वर्चाव रखना चाहिये और जो क्रपथ्य पदार्थ फहें हैं उन का उपयोग तो बहुत ही आवश्यकता होने पर रोगविशेष में औषध के समान फरना चाहिये अर्थात प्रतिदिन की खुराक में उन (कुपथ्य) पदार्थों का कभी उपयोग नहीं करना चाहिये, इस विषय में यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जो पथ्यापथ्य पदार्थ है वे भी उन पुरुषों को कभी हानि नहीं पहुँचाते है जिन का मतिदिन का अभ्यास जन्म से ही उन पदार्थों के लाने का पड़ जांता है, जैसे-बाजरी, गुड़, उड़द, छाछ और दही बादि पदार्थ, क्यों-कि ये चीजें ऋत और प्रकृति के अनुसार जैसे पथ्य है वैसे कुपथ्य मी है परन्तु मारवाइ देश में इन चारों चीजों का उपयोग प्रायः वहां के लोग सदा करते है और उन को कुछ नुकसान नहीं होता है, इसी मकार पञ्जाबवाले उड़द का रुपयोग सदा करते है परन्तु उन को कुछ नुकसान नहीं करता है, इस का कारण सिर्फ अभ्यास ही है, इसी प्रकार हानिकारक पदार्थ भी अल्प परिमाण में खाये जाने से कम हानि करते है तथा नहीं भी करते है, दूव यद्यपि पथ्य है तो भी किसी २ के अनुकूछ नहीं आता है अर्थात दस्त लग जाते हैं इस से यही सिद्ध होता है कि-खान पान के पदार्थ अपनी प्रकृति, श्वरीर का बन्धान, नित्य का अभ्यास, ऋतु और रोग की परीक्षा

आदि सब बातों का विचार कर उपयोग में आने से हानि नहीं करते हैं, क्योंकि देखो ! एक ही पदार्थ में प्रकृति और ऋतु के मेद से पथ्य और कुपथ्य दोनों गुण रहते है, इस के सिवाय यह देखा जाता है कि—एक ही पदार्थ रसायनिक संयोग के द्वारा अर्थात् दूसरी चीज़ों के मिलने से (जिस को तन्त्र कहते है उस से) मित्र गुणवाला हो जाता है धर्यात् उक्त संयोग से पदार्थों का धर्म बदल कर पथ्य और कुपथ्य के सिवाय एक तीसरा ही गुण प्रकृट हो जाता है इसल्ये जिन लोगों को पदार्थों के हानिकारक होने वा न होने का ठीक ज्ञान नहीं है उन के लिये सीघा और अच्ला गार्ग यही है कि वैधक विधा की आज्ञा के अनुसार चल कर पदार्थों को उपयोग में लावें, देखो ! शहद अच्ला पदार्थ है अर्थात् त्रिदोष को हरता है परन्तु बही गर्भ पानी के साथ या किसी अत्युष्ण वस्तु के साथ या गर्म तासीरवाली वस्तु के साथ अथवा सित्रपात ज्वर में देने से हानि करता है, एवं समान परिमाण में घृत के साथ मिलने से विष के समान असर करता है, दूष पथ्य पदार्थ है तो भी मूली, मूंग, कार, नमक तथा एरण्ड के सिवाय बाकी तेलों के साथ खाया जाने से अवक्य नुक्सान करता है।

वर्तनों के योग से भी वस्तुओं के गुणों में अन्तर हो जाता है, जैसे—तांवे और पीतल के वर्तन सें खटाई तथा खीर का गुण बदल जाता है, कांसे के वर्तन में घी का गुण बदल जाता है अर्थात् थोड़ी देर तक ही कांसे के वर्तन में रहने से घी नुकसान करता है, यदि सात दिन तक घी कांसे के वर्तन में पड़ा रहे और वह खाया जाये तो वह माणी को माणान्ततक कष्ट पहुँचाता है।

दूध के साथ खट्टे फल, गुड़, दही और खिचड़ी आदि के खाने से मी नुक्सान होता है।

प्रिय पाठक गण । थोड़ा सा विचार करो । सर्वज्ञ मगवान् ने संयोगी विषों का वर्णन वैद्यक शास्त्र में किया है उस (शास्त्र) के पढ़ने और सुनने के विना मनुष्यों को इन सब बातों का ज्ञान कैसे हो सकता है ! यही वर्णन सूत्र प्रकीणों में भी किया गया है तथा यहां कुपथ्य पदार्थों को ही अमक्ष्य टहराया है।

कपर कहे हुए कुपथ्यों का फल शीघ नहीं मिलता है किन्तु जब अपने २ कारणों को पाकर बहुत से दोष इकट्टे हो जाते है तब वह कुपथ्य दूसरे ही रूप में दिखाई देता है अर्थात् पूर्वकृत कुपथ्य से उत्पन्न हुए फल के कारण को उस समय लोग नहीं समझ सकते है, इस लिये कुपथ्य तथा संयोग विरुद्ध पदार्थों से सदा बचना चाहिये, क्योंकि इन के सेवन से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते है।

सामान्य पथ्यापथ्य आहार ॥

पध्यआहार ॥

कुपध्यआहार ॥

पुराने चावल, जो, रोहूँ, मूंग, अरहर (त्र्) चना और देशी बाजरी, (गर्म बाजरी थोड़ी), घी, दूघ, मक्खन, छाछ, शहद, मिश्री, ब्रा, बतासा, सरसों का तेल, गोम्त्र, आकाश का पानी, कुए का पानी और हॅसोदक जल, परवल, स्रण, चॅदलिया, बयुआ, मेथी, मामाळणी, मूली, मोगरी, कह्, घियातोरई, तोरई, करेला, कॅकेड़ा, मिण्डी, गोमी, (वालोल थोड़ी) और कचे केले का शाक ॥

दास, अनार, अदरस, ऑवला, नींवू, विजोरा, कवीठ, इलदी, चिनथे के पर्ते, पोदीना, द्वीग, सोंठ, काली मिर्च, पीपर, घ-निया, जीरा और सेंधा नमक ॥

हरड़, लायची, केशर, जायफल, तज, सोंफ, नागरवेल के पान, करवे की गोली, धनियां, गेहूँ के आटे की रोटी, पूड़ी, भात, मीठामात, बूंदिया, मोतीचूर के लड्डू, जलेवी, चूरमा, दिलखुशाल, प्रणपूड़ी, रवड़ी, दूषपाक (खीर), श्रीखण्ड (शिखरन), मैदेका सीरा, दाल के लड्डू, बेवर, सकरपारे, बादाम की कतली, धी में तले हुए मीठ के मुजिये (थोड़े), दूष और धी ढाले हुए सेव, रसगुछा, गुलावनामुन, कलाकन्द,

चड़द, चॅंवला, वाल, मौठ, मटर, ज्वार, मका, ककड़ी, काचर, खरबूजा, गुवारफली, कोला, मूली के पत्ते, अमरूद, सीताफल, कटहल, करोंदा, गूँदा, गरमर, अक्षीर, जासुन, वेर, इमली और तरबूज ॥

मैस का दूध, दही, तेल, नयागुड़, दृक्षों के झुण्ड का पानी, एकदम अधिक पानी का पीना, निराहार ठंढा पानी पीना और मैशुन कर के पानी पीना ॥

वासा अन, छाछ और दही के साथ सिचड़ी और सीचड़ा आदि दाल मिले हुए पदार्थों का साना, सूर्य के प्रकाश के हुए विनाखाना, अचार, समयविरुद्ध भोजन क-रना और सब प्रकार के विषों का सेवन ॥

ठंदी सीर चासनी और सोवे (मावे) के पदार्थों के सिवाय दूघ के सब बासे पदार्थ, गुजरात के चेंटिया रुक्क, केले के लक्क, रा-यण के लक्क, गुलपपड़ी, तीन मिलावटों की तथा पाच मिलावटों की दालें, कड़े कचे और गरिष्ठ पदार्थ, मैदे की पूडी, सन्, पेड़ा, वरफी, चावलो का चिड़वा, रात्रि का मोजन, दस्त को बन्द करनेवाली चीज, अरुष्ण अन्नपान, वमन, पिचकारी दे दे कर दस्त कराना, चवेने का चावना, पांच वण्टेसे पूर्व ही मोजनपर भोजन करना, बहुत मुखे रहना, मूँस के समय में जलका

¹⁻यशिप इम बात को आधुनिक डाक्टर कोग पसन्द करते हैं तथापि हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने सला-है से पेशान तथा नसी (पिनकारी) से दस्त कराना पसन्द नहीं किया है और इसका अभ्यास भी अच्छा नहीं है, हा कोई सास करणा हो तो दूसरी वात है॥

हेसमी (को छेका पेठा), गुरुकन्द, शर्वत, मुरव्या, चिरोंजी, पिस्ता, दाखों का मीठा तथा चरपरा राइता, पापह, मूंग और मौठ की वडी और सब प्रकार की दाल ॥

मकृति ऋत और देश आदि को वि-चार कर किया हुआ भोजन तथा रुचि के जन के अन्त में अधिक जल का पीना, भो-अनुसार किया हुआ मोजन प्रायः पथ्य जन तथा प्यास की इच्छा का रोकना, स्-(हितकारी) होता है इसलिये प्रकृति आदि का विचार रखना चाहिये इत्यादि ॥

पीना, प्यास के समय में भोजन करना. मात्रा से अधिक मोजन करना, विषमासन से बैठ कर मोजन करना, निद्रा से उठकर तत्काल मोजन करना या जल का पीना, व्यायाम के पीछे शीघडी जलका पीना, वा-हर से आकर शीघडी जल का पीना. भी-र्योदय से ३ वण्टे पूर्व ही भोजन करना तथा अरुचि के पतार्शों का खाना आदि ॥

पध्यविहार ॥

१-भोबे हुए साफ वस्त्रों का पहरना और शक्ति के अनुसार अतर गुलाव जल और के-वडा जल आदि से वस्त्रों को स्रवासित रखना. उप्ण ऋतु में पनड़ी और खस आदि के अंतर का तथा शीतकाल में हिना और मसाले आदि का उपयोग करना चाहिये।

२-विछौना और पर्लंग आदि साधनों को साक और सघड रखना चाहिये।

३-दक्षिण की हवा का सेवन करना चाहिये।

४-हाथ, पैर, कान, नाक, मुख और गुप्तस्थान आदि शरीर के अवयवों में मैल का जमाव नहीं होने देना चाहिये।

५--गर्मी की ऋत में महीन कपड़े पहरना तथा शीतकाल में गर्म कपेंडे पहरना चाहिये।

६-पांच २ दिन के बाद क्षीर कर्म (हजामत) कराना चाहिये।

७-प्रतिदिन शक्ति के अनुसार दण्ड बैठक और घोड़े की सेवारी आदि कर कुछ न कुछ कसरत करना तथा साफ हवा को खाना चाहिये।

८-हरू के बजन के हार कुण्डल और अंगूठी आदि गहनों की पहरना चाहिये।

९-मुल्मूत्र के बेग को नही रोकना चाहिये तथा बलपूर्वक उन के बेग को उत्पन्न नहीं करना चाहिये।

२-वे गर्म कपडे धजन में ज्यो कम हों स्रो अच्छे होते हैं॥

⁹⁻दक्षिण की हवा आरोग्यता को स्थिर रखती है इसिकेये इसीका सेवन करना चाहिये॥

३-हजामत कराने से वारीर और दिसाग में नये खून का सम्रार होता है तथा दरिए उतर कर निर्त प्रसन्न होता है ॥

४-यदि घोडे की सवारी का आभ्यास हो तो उसे करना नाहिये ॥

५-देखो । आनन्द श्रावक ने कुण्डल और अगूठी, इन दो ही मूवणों का पहरना रक्खाथा ॥

- १०-मूत्र तथा दस्तआदि का वेग होनेपर स्त्रीगमन नहीं करना चाहिये।
- ११-स्त्री संग का वहुत नियम रखना चाहिये।
- १२-चित्त की वृत्ति में सतोगुण और आनंद के रखने के लिये सतोगुणनाला मोजन क-रना चाहिये !
- १३—दो घड़ी प्रभात में तथा दो घड़ी सन्ध्या समय में सब बीवोंपर समता परिणाम रखना चाहिये।
- १९-यथायोग्य समय निकालकर घड़ी दो घड़ी सद्गुणियों की मण्डली में बैठकर निर्दोप षातों को तथा व्याल्यानों को अनना चाहिये।
- १५-यह संसार अनित्य है अर्थात् इस के समस्त धनादि पदार्थ क्षणमहुर हैं इत्यादि वै-राग्य का विचार करना चाहिये।
- १६—जिस वर्जाब से रोग हो, प्रतिष्ठा और धन का नाश हो तथा आगामी में धन की आमद एक जावे, ऐसे वर्जावको कुपथ्य (हानिकारक) समझ कर छोड़ देना चा-हिये, क्योंकि ऐसे ही निपिद्ध वर्जाव के करने से यह भव और परभव भी विगड़ता है।
- १७-परनिन्दा तथा देवगुरु द्वेष से सदैव बचना चाहिये।
- १८-उस व्यवहार को कदापि नहीं करना चाहिये जो दूसरे के छिये हानि करें।
- १९-देव, गुरु, विद्वान्, माता, पिता तथा धर्म में सदैव मक्ति रखनी चाहिये।
- २०-यथाशक्य क्रोध, मान, माया और छोमआदि दुर्गुणोंसे बचना चाहिये।

यह पथ्यापथ्य का विचार विवेक विलास आदि अन्थों से उद्भृत कर संक्षेप मात्र में दिसलाया गया है, जो मनुष्य इसपर ध्यान देकर इसी के अनुसार वर्ताय करेगा वह इस मन और परमव में सदा सुखी रहेगा ॥

दुर्बल मनुष्य के खाने योग्य खुराक ॥

वहुत से मनुष्य देखने में यद्यिप पतले और इकहरी हुद्धी के दीखते है परन्तु शक्ति-मान् होते है तथा बहुत से मनुष्य पुष्ट और स्थूल होकर मी शक्तिहीन होते हैं, शरीर की प्रशंसा प्रायः सामान्य (न अति दुर्वल और न अति स्थूल) की की गई है, क्योंकि शरीर का को अत्यन्त स्थूलपन तथा दुर्वलपन है उसे आरोग्यता नहीं समझनी चाहिये, क्योंकि बहुत दुर्वलपन और बहुत स्थूलपन प्रायः नाताकती का चिन्ह है और इन दोनों के होने से शरीर बेडील भी दीखता है, इस लिये सब मनुष्यों को उचित है कि—योग्य आहार विहार और यथोचित उपायों के द्वारा शरीर को मध्यम दशा में रक्सें, क्योंकि योग्य आहार विहार और यथोचित उपायों के द्वारा दुर्वल मनुष्य भी मोटे ताने और पुष्ट हो सकते हैं तथा चरनी के वढ जाने से स्थूल हुए पुरुष भी पतले हो सकते हैं, अब इस विषय में संक्षेप से कुछ वर्णन किया जाता है:---

दुर्बेल मनुष्यों की पुष्टि के बास्ते उपाय — दुर्बेल मनुष्य को लपनी पुष्टि के वास्ते ये उपाय करने चाहियें कि—मिश्री मिला कर थोड़ा २ दूस दिन में कई वार पीना चाहिये, प्रातःकाल तथा सायंकाल में शक्ति के अनुसार दण्ड बैठक और मुद्गर (मोगरी) फेरना आदि कसरत कर पाचन शक्ति के अनुकूल परिमित दूस पीना चाहिये, यदि कसरत का निर्वाह न हो सके तो प्रातःकाल तथा सन्ध्या को ठंढे समय में कुछ न कुल परिश्रम का काम करना चाहिये अथवा सन्छ्य हवा में दो चार मील तक चूमना चाहिये कि जिससे कसरत हो कर दूस हज़म हो जाने तथा हमारे विवेकलिंब शिलसीमाग्य कार्यालय का गुद्ध वनस्पतियों का बना हुआ पृष्टिकारक चूर्ण दो महीनेतक सेवन करना चाहिये क्योंकि इस के सेवन करने से शरीर में पृष्टि और बहुत शक्ति उत्पन्न होती है, इस के अतिरिक्त—गेहूँ, जी, मका, चावल और दाल आदि पदार्थों में अधिक पृष्टिकारक तत्व मौजूद है इसलिये ये सब पदार्थ दुर्बेल मनुष्य के लिये उपयोगी हैं, एवं आढ़, केला, आम, सकरकन्द और पनीर, इन सब पृष्टिकारक वस्तुओं का भी सेवन समयानुसार थोड़ा २ करना योग्य है।

कपर लिखे हुए पुष्टिकारक पदार्थ दुर्वल मनुष्य को बद्यपि बलवान कर देते हैं परन्तु इन के सेवन के समय इन के पचाने के लिये परिश्रम अवश्य करना चाहिये क्योंकि पुष्टि-कारक पदार्थों के सेवन के समय उन के पचाने के लिये यदि परिश्रम अथवा व्यायाम न किया जावे तो चरवी बढ कर शरीर स्थूल पड़ जाता है और अशक्त हो जाता है।

जब ऊपर लिखे पदार्थों के सेवन से शरीर दृढ और पृष्ट हो जावे तब ख़ुराक की धीरे २ बदल दैना चाहिये अर्थात् शरीर की सिर्फ आरोग्यता बनी रहे ऐसी ख़ुराक खाते रहना चाहिये, इस विषय में यह भी स्मरण रखना चाहिये कि इतनी पुष्टिकारक ख़ुराक भी नहीं खानी चाहिये कि जिस से पाचनशक्ति मन्द पढ़ कर रोग उत्पन्न हो जावे और न इतना परिश्रम ही करना चाहिये कि जिस से शरीर शिक्षल पढ़ कर रोगों का आश्रय बन जावे !

यदि शरीर में कोई रोग हो तो उस समय में पृष्टिकारक ख़ुराक नही खानी चाहिये किन्तु औषध आदि के द्वारा जब रोग मिट जाबे तथा मन्दामि भी न रहे तब पृष्टिकारक ख़ुराक खानी चाहिये॥

१-इस के सेवन की निधि का पत्र इस के साथ में ही मेजा जाता है तथा दो महीनो तक सेवन करने योग्य इस (पुष्टिकारक) चूर्ण का मूल्य केवल ५) रुपये मात्र है ॥

J. W. W. W.

रथूल मनुष्य के खाने योग्य खुराक ॥

सब स्थूळ मनुष्य शायः श्रक्तिमान् नहीं होते है किन्तु अधिक रुधिर वाला पुष्ट मनुष्य हढ शरीरवाला तथा वलवान् होता है और केवल मेद चरवी तथा मेद वायु से जिन का शरीर फूल जाता है वे मनुष्य अञ्चक्त होते है, जो मनुष्य धी दूध मक्खन मलाई मीठा और मिश्री आदि बहुत पुष्टिकारक ख़ुराक सदा खाते है और परिश्रम बिलकुल नहीं करते हैं अर्थात् गद्दी तिकयों के दास धन कर एक जगह बैठे रहते है वे लोग ऐसे वृथा (शक्तिहीन) पुष्ट होजाते है।

बी और मक्खन आदि पुष्टिकारक पदार्थ जो शरीर की गर्मी कायम रखने और पुष्टि के लिये खाये जाते हैं वे परिमित्त ही खाने चाहियें क्योंकि अधिक खाने से वे पदार्थ पचते नहीं है और शरीर में चरवी इकट्ठी हो जाती है, शरीर वेडील हो जाता है, आयु आदि चरवी से रुक कर शरीर अशक्त हो जाता है और चर वी के पढ़त पर पड़त चढ जाता है।

स्थूल होकर जो श्रक्तिमान् हो उस की परीक्षा यह है कि-ऐसे पुरुष का श्ररीर (रक्त के विशेष होने के कारण) ठाल, हद, कठिन, गँठा हुआ और स्थितिस्थापक स्नायुओं के दुकड़ों से युक्त होता है तथा उस पर चरवी का बहुत हलका अस्तर लगा रहता है, किन्तु जो पुरुष स्थूल होकर भी शक्ति हीन होते हैं उन में ये लक्षण नहीं दीखते हैं, उन में थोथी चरवी का माग अधिक बढ जाता है जिस से उन को परिश्रम करने में चड़ी कठिनता पड़ती है, वह बढी हुई चरवी तब काम देती है जब कि बह खुराक की तंगी अथवा उपवास के द्वारा न्यून हो जाती है, सत्य तो यह है कि शरीर को खूब सूरत और खुडील रखना चरवी ही का काम है, वदी हुई चरवी से बहुत स्थूलता और श्वास का रोग हो जाता है तथा आखिर कार इस से प्राणान्त तक भी हो जाता है।

मीठा और आटे के सत्व बाला पदार्थ भी परिश्रम न करने वाले मनुष्य के शरीर में चरनी के भाग को बढ़ाता है, इस में बड़ी हानि की बात यह है कि अधिक मेद और चरनी वाले पुरुष को रोग के समय दवा भी बहुत ही कम फायदा करती है और करती मी है तो माग्ययोग से ही करती है।

साधारण ख़ुराक के उपयोग और शक्त्यनुसार कसरत के अभ्यास से शरीर की स्थूलता मिट जाती है अर्थात् चरवी का वज़न कम हो जाता है।

अति स्थूल शरीर वाले मनुप्य को खाने आदि के विषय में जिन २ वार्तों का खयाल रखना चाहिये उन का संक्षेप से वर्णन करते है:----

ì

स्थूल मनुष्यों के पतले होने के उपाय-स्थूल मनुष्यों को वी मन्सन और खांड आदि चरवी वाले पदार्थ तथा आटे के सत्व बाले पदार्थ बहुत ही थोड़े खाने चाहिये, पृष्टिवाले पदार्थ अधिक खाने चाहिये, गेहूँ सलगम और नारंगी आदि फल खाने चाहियें, घी, मक्लन, मलाई, तेल, खांड़, चरवी वाले अज, सावृदाना, चावल, मका, पूरणपोली, कोकम, आम, दाल, केला, बादाम, पिखा, नेजा और चिरौजी आदि मेचे, आद्ध, सरण, सकरकन्द और अरनी आदि पदार्थ नहीं खाने चाहियें, अथना बहुत ही कम खाने चाहिये दूध थोड़ा खाना चाहिये, यदि चाय और काफी के पीने का अभ्यास हो तो उस में दूध बहुत ही थोडा सा डालना चाहिये अथवा नीवू से सुवासित कर के पीता चाहिये ॥

मगज़ के मज्जा तन्तुओं को दृढ़ करने वाली खुराक॥

जिस खुराक में आङ्ग्युमीन नामक तत्व अधिक होता है वह मगज़ के मजा तन्तुओं का पोपण करती है, पौष्टिक तत्ववाली खुराक में आल्ब्युमीन का कुछ २ अंग्र होता है परन्तु सतावर आदि कईएक वनस्पतियों में इस का अंश बहुत ही होता है इस छिये सतावर आदि वनस्पतियों का पाक तथा गुरव्या बना कर खाना चाहिये, मगन तथा नीर्य की दृढता के लिये वैद्यकशास्त्र में बहुत सी उत्तम वनस्पतियों का खाना वतलाया है उन का उचित विधि से उपयोग करने पर वे पूरा गुण करती है, उन में से कुछ बन-स्पतियां थे है- मुकोला, शतावर, असगॅध, गोखुरू, कोंच के बीज, ऑवला और शंखा-हुली, इन के सिवाय और भी बहुत सी वनस्पतियां हैं जो कि अत्यन्त गुणवाली हैं, जिन का मुरठवा अथवा छड्डू बना कर खाने से अथवा अवलेह बनाकर चाटने से मगज़ के मजातन्तु इट और पुष्ट होते है, वल बुद्धि और वीर्य बदता है तथा मनसम्बंधी व्यवसा और अस्थिरता दूर होती है, इन के सिवाय हमारे विवेक्छिटिष शीलसीमाग्य कार्यालय का बना हुआ पुष्टिकारेक चूर्ण दूध के साथ छेने से गर्मी आदि मगज़ के विकारों की दूर कर ताकत देता है तथा विर्थ के बढाने में यह सर्वोत्तम वस्तु है। मगज की निर्वळता के समय-नोहूँ, चना, मटर, प्याज, करेला, अरवी, सफरजन्द,

अनार और आम आदि पदार्थ पथ्य है ॥

स्मरणंशक्ति तेथा बुद्धि को बढ़ाने वाली खुराक ॥

सरणशक्ति तथा बुद्धि मगन्रेसे सम्बंध रखती है और उस की शक्ति का मुख्य आधार मन का प्रफुछित होना तथा नीरोगता ही है, इसलिये सब से प्रथम तो स्मरण-शक्ति तथा बुद्धि के बढ़ाने का यही उपाय है कि-सदा मन को प्रसन्न रखना चाहिये तथा यथायोग्य आहार और विहार के द्वारा नीरोगता को कायम रखना चाहिये, इन

दोनों के होते हुए स्मरणशक्ति तथा बुद्धि के वढ़ाने के छिये दूसरा उपाय करने की कोई आवश्यकता नहीं है, हां दूसरा उपाय तब अवश्य करना चाहिये जब कि रोग आदि किसी कारण से इन में बुटि पढ़ गई हो तथा वह उपाय भी तभी होना चाहिये कि जब शरीर से रोग विलक्षल निवृत्त हो गया हो, इस के लिये कुछ सतावर आदि बुद्धिवर्षक पदार्थों का वर्णन प्रथम कर चुके हैं तथा कुछ यहां भी करतेहै:—

दूध, धी, मक्सन, मलाई और आँबले के पाक वा मुरव्ने को दवा की रीति से थोड़ा र साना चाहिये, अथवा बादाम, पिस्ता, जायफल और चोपचीनी, इन चीजों में से किसी चीज़ का पाक बना कर वी बूरे के साथ थोड़ा र साना चाहिये, अथवा बादाम की कतली लब्द और शीरा आंदि बनाकर मी पाचनशक्ति के अनुसार प्रातः वा सन्ध्या को साना चाहिये, इन का सेवन करने से बुद्धि तथा स्मरणशक्ति अस्यन्त बढ़ती है, अथवा हमारा बनाया हुआ पुष्टिकारक चूर्ण बुद्धिशक्ति को बहुत ही बढाता है उस का सेवन करना चाहिये, अथवा बाह्मी १ मासा, पीपल १ मासा, मिश्री १ मासे और आँबला १ मासा, इन को पीस तथा छान कर दोनों समय खाना चाहिये, २१ वा ११ दिन तक इस का सेवन करना चाहिये तथा पथ्य के लिये दूध मात और मिश्री का मोजन करना चाहिये, इन के सिवाय दो देशी साधारण देवायें वैचक में कही है जो कि मगज़ की शक्ति, स्मरणशक्ति तथा बुद्धि के बढ़ाने के लिये अस्यन्त उपयोगी प्रतीत होती है, वे थे है:—

१-एक तोका ब्राष्ट्री का दूध के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिये या धी के साथ चाटना चाहिये अथवा ब्राब्सी का घी बना कर पान में या खुराक के साथ खाना चाहिये।

२-कोरी मालकांगनी को वा उस के तेल को ऊपर लिखे अनुसार लेना चाहिये, मालकांगनी के तेल के निकालने की यह रीति है कि-२॥ रुपये मर मालकांगनी को लेकर उस को ऐसा कूटना चाहिये कि एक एक बीज के दो दो वा तीन तीन फाड़ हो जावें, पीछे एक या दो मिनटतक तवेपर सेकना (भूनना) चाहिये, इस के बाद शीझ ही सन के कपड़े में डालकर दवाने के सांचे में देकर दवाना चाहिये, वस तेल निकल आवेगा, इस तेल की दो तीन बूंदें नागरवेल के कोरे (कत्ये और चूने के विना) पान पर रखकर खानी चाहियें, इस का सेवन दिन में तीन वार करना चाहिये, यदि तेल न निकल सके तो पांच २ वीज ही पान के साथ खाने चाहियें।

फासफर्स से मिली हुई हर एक डाक्टरी दवा भी बुद्धि तथा मगज़ के लिये फायदे-मन्द होती है ॥

रोगी के खाने योग्य खुराक॥

पश्चिमीय विद्वानों ने इस सिद्धान्त का निश्चय, किया है कि—सन प्रकार की ख़राक की अपेक्षा साबूदाना, आराह्य और टापीओ का, वे तीन चीनें सन से हरुकी और सहन में पचनेवाली है अर्थात् जिस रोगमें पाचनशक्ति विगड़ गई हो उस में इन तीनों वस्तुओं में से किसी वस्तु का खाना बहुत ही फायदेमन्द है।

साबूदाना को पानी वा दूध में सिजा कर तथा आवश्यकता हो तो थोड़ी सी मिश्री ढाल कर रोगी को पिलाना चाहिये, इस के बनाने की उत्तम रीति यह है कि-लावे दूध और पानी को पतीली या किसी कलईदार वर्तन में डाल कर चूल्हे पर चढ़ा देना चाहिये, जब वह अदहन के समान उवलने लगे तब उस में साबूदाना को डालकर ढक देना चाहिये, जब पानी का माग जल जावे सिर्फ दूध मात्र शेष रह जावे तब उतार कर थोड़ी-सी मिश्री डालकर खाना चाहिये।

साबूदाना की अपेक्षा नावल यद्यपि पचने में दूसरे दर्जे परे है परन्तु साबूदाना की अपेक्षा पोषण का तस्य नावलों में अधिक है इसलिये रुचि के अनुसार नीमार को वर्ष के पीछे से तीन वर्ष के भीतर का पुराना नावल देना नाहिये अर्थात् वर्षमर के मीतर का और तीन वर्ष के नाव का (पांच छः वर्षों का) भी नावल नहीं देना नाहिये।

जाने दूध तथा जाने पानी में सिजाया हुआ भात बहुत पुष्टिकारक होता है, यजिय केवल दूध में सिजायाहुआ भात पूर्व की अपेक्षा भी अधिक पुष्टिकारक तो होता है परन्छ वह बीमार और निर्वल आदमी को पचता नहीं है इस लिये बीमार को दूध में सिजाया हुआ भात नहीं देना चाहिये, बुखार, दख, मरोड़ा और अजीर्फ में चावल देना चाहिये, क्योंकि—इन रोगों में चावल फायदा करता है, बहुत पानी में रांचे हुए चावल तथा उन का निकाला हुआ मांड ठंडा और पोषण कारक होता है।

इंग्लेंड आदि दूसरे देशों में हैने की नीमारी में सूप और बाब देते हैं, उस की लपेक्षा इस देश में उक्त रोगी के लिये अनुकूल होने से चावलों का मांड बहुत फायदा करता है, इस बात का निश्चय ठीक रीति से हो चुका है, इस के सिवाय अतीसार अर्थात् दस्तों की सामान्य नीमारी में चावलों का ओसामण दवा का काम देता है अर्थात् दस्तों को बंद कर देता है।

रोगी के लिये विधिपूर्वक बनाई हुई दाल मी बहुत फायदा करेती है तथा दालों की

^{9—}अयीत साधूदाना की अपेक्षा चानल देर में इजम होते हैं ॥
२—दाल तो आर्य लोगों की नैस्पिक तथा आवश्यक खराक हैं, न केवल नैस्पिक ही किन्तु यह नैमित्तिक
श्मी है, देखों ! ऐसा भी जीमणवार (ब्योंनार) शायद ही कोई होता होगा जिस में दाल न होती हो,
विचार कर देखने से यह भी हात होता है कि-दाल का उपयोग लासकारक भी बहुत ही है, भ्योंकिदाल पोषणकारक पदार्थ है अर्थात् इस में पुष्टिका तत्य अधिक है, यहातक कि कई एक दालों में मांस
से भी अधिक पौष्टिक तत्त्व है ॥

यद्यपि अनेक जातियां हैं परन्तु उन सन में मुख्य मूंग की दाँछ है, क्योंकि—यह रोगी तथा साधारण मक्कतिवाले पुरुषों के लिये मायः अनुकूळ होती है, मसूर की दाल भी हलकी होने से मायः पथ्य है, इसलिये इन दोनों में से किसी दाल को अच्छी तरह सिजा कर तथा उस में सेंधानमक, हींग, धनिया, जीरा और धनिये के पत्ते हाल कर पतली दाल अथना उसका नितरा हुआ जल रोगी तथा अत्यन्त निर्वरू मनुष्य को देना चाहिये, क्योंकि उक्त दाल अथना उस का नितरा हुआ जल पृष्टि करता है तथा दना का काम देता है।

वीमार के लिये दूध भी अच्छी ख़ुराकें है, क्योंकि—वह पुष्टि करता है तथा पेट में वहुत भार भी नहीं करता है परन्तु दूध को बहुत उबाल कर रोगी को नहीं देना चाहिये, क्योंकि—बहुत उबालने से वह पचने में भारी हो जाता है तथा उस के भीतर का पौष्टिक . तत्व भी कम हो जाता है, इसलिये दुहे हुए दूध में से बायु को निकालने के लिये अधवा दूध में कोई हानिकारक वस्तु हो उस को निकालने के लिये अनुमान ५ मिनट तक थोड़ासा गर्म कर रोगी को दे देना चाहिये, परन्तु मन्दामियाले को दूध से आधा पानी दूध में डालकर उसे गर्म करना चाहिये, जब बल का तीसरा भाग शेप रह जावे तब ही उतार कर पिलाना चाँहिये, बहुतसे लोग जलमिश्रित दूध के पीने में हानि होना समझते हैं परन्तु यह उन की मूल है, क्योंकि जलमिश्रित दूध किसी प्रकार की हानि नहीं करता है।

हाक्टर लोग निर्वेक आदिमयों को कॉडलीवर ऑइल नामक एक दवा देते हैं अर्थात् जिस रोग में उन को ताकतवर दवा वा ख़ुराक के देने की आवश्यकता होती है उस में वे लोग प्राय: उक्त दवा को ही देते है, इस के सिवाय क्षय रोग, मूख के द्वारा उत्पन्न हुआ रोग, कण्ठमाला, जिस रोग में कान और नाक से पीप बहता है वह रोग, फेफसे का शोथ (न्यूमोनिया), कास, श्वास (ब्रोनकाइटीस,), फेफसे के पड़त का बाब, खुल खुलिया अर्थात् वच्चे का बड़ा खांस और निर्वेकता आदि रोगों में यी वे लोग इस दवा को देते हैं, इस दवा में मूल्य के भेद से गुण में भी कुल भेद रहता है तथा अल्पयूल्य

१-मूग की दाल सर्वोपुरि है तथा अरहर (तूर) की दाल मी दूसरे नम्बर पर है, यह पहिले लिस ही चुके हैं अत: यदि रोगी की रुचि हो तो अरहर की दाल भी थोड़ी सी देना चाहिये॥

२-परन्द्व यह किसी २ के अनुकूछ नहीं खाता है जतः जिसके अनुकूछ न हो उस को नहीं देना चाहिये परन्द्र ऐसी प्रकृतिवाछे (जिन को दूस अनुकूछ नहीं खाता हो) रोगी प्रायः बहुत ही कम होते हैं॥

र-मा की अनुपरियति में अथवा मा के दूष न होने पर वने को भी ऐसा ही (जलवाला) दूष पिलाना चाहिये, यह पहिले तृतीयाच्याय में लिख भी चुके हैं ॥

४-इस दवा को पुष्ट समझकर उन (कावडर) कोगों ने इसे रोग की खुराक में दाखिल किया है ॥

वाली इस दना में दुर्गनिष भी होती है परन्तु बढ़िया में नहीं होती है, इस दना की बनी हुई टिकियां भी मिळती हैं जो कि गर्भ पानी या दूघ के साथ सहज में लाई जा सकती है।

इस (ऊपर कही हुई) दवा के ही समान माल्टा नामक भी एक दवा है जो कि अत्यन्त पुष्टिकारक तथा गुणकारी है तथा वह इन्हीं (साधारण) जो ओं से और जो-ओं के सदश ओट नामक अनाज से बनाई जाती है।

कांडलीवर ऑइल वीमार आदमी के लिये खुराक का काम देता है तथा हन्म भी जल्दी ही हो जाता है।

उक्त दोनों पुष्टिकारक दवाओं में से कॉडलीवर ऑइल जो दवा है वह आर्य लोगों के लेने योग्य नहीं है, क्योंकि उस दवा का लेना मानो धर्म को तिलाझलि देनों हैं॥

वीमार के पीने योग्य जल यद्यपि साफ और निर्मल पानी का पीना तो नीरोग पुरुष को भी सदा उचित है परन्तु वीमार को तो अवश्य ही ख़च्छ जल पीना चाहिय, क्योंकि रोग के समय में मलीन जल के पीने से अन्य भी दूसरे प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, इस लिये जल को खच्छ करने की युक्तियों से खून खच्छ कर अथवा अंभेजों की रीतिसे अर्थात् दिस्टील्ड के द्वारा खच्छ कर के अथवा पहिले लिखे अनुसार पानी में तीन उवाला देकर ठंढाकर के रोगी को पिलाना चौहिये, डाक्टर लोग भी हैने में तथा सख्त बुखार की प्यास में ऐसे ही (खच्छ किये हुए ही) जल में थोड़ा २ वर्फ मिला कर पिछाते है।

नीं जू का पानक बहुत से बुखारों में नीं जू का पानक भी दिया जाता है, इस के बनाने की यह रीति है कि नीं जू की फांकें कर तथा मिश्री पीसकर एक काच या पत्थर के वर्तन में दोनों को रख कर उसपर उवलता हुआ पानी डालना चाहिये तथा जब वह ठंडा हो जाने तब उसे उपयोग में लाना चाहिये ॥

गोंद का पानी —गोंद का पानी २॥ तोले तथा मिश्री १। तोला, इन दोनों को एक पात्र में रखकर उस पर उनलता हुआ पानी ढालकर ठंडा हो जाने पर पीने से खेज्म अर्थात कफ हांफनी और कण्ठ नेल का रोग मिट जाता है ॥

जों का पानी—छरे हुए (कूटे हुए) जो एक बड़े चमचे मर (करीब १ छटांक), बूरा दो तीन चिमची मर (करीब १॥ छटांक) तथा थोड़ी सी नींबू की छाल, इन सब

१--क्यों कि यह (कॉडलीवर ऑइल) जो दवा है सो मछली का तेल है-॥

२—देखो ! ज्ञातासूत्र में लिखा है कि गन्दीखाई का जल प्रयुद्धि मन्त्री ने ऐसा स्वच्छ कर राजा जितशत्रु को पिछाया था कि जिस को देख कर और पीकर राजा वका आवर्ष में हो गया था, इस से निदित होता है कि पूर्व समय मे भी जल के खच्छ करने की अनेक उत्तमोत्तम रीतिया थीं तथा खच्छ करने ही जल का उपयोग किया जाता था।

को एक वर्त्तन में रख कर ऊपर से उनलता हुआ पानी खाल कर ठंढा हो जाने के बाद लान कर पीने से बुखार, छाती का दर्द और अमृझणी (घनराहट) दूर हो जाती है !!

यह चतुर्थ अध्याय का पथ्यापथ्यवर्णन नामक छठा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

सातवां प्रकरण-ऋतुचर्यावर्णन ॥

ऋतुचर्या अर्थात् ऋतु के अनुकूल आहार विहार ॥

जैसे रोग के होने के बहुत से कारण व्यवहार नय से मनुष्यकृत है उसी प्रकार निश्चय नय से दैवकृत अर्थात् समावजन्य कर्मकृत मी हैं, तरसम्बन्धी पांच समवायों में से काल प्रधान समवाय है तथा इसी में ऋतुओं के परिवर्षन का भी समावेश होता है, देखे। । बहुत गर्मी और बहुत ठंढ, ये दोनों कालधर्म के सामाविक कृत्य हैं अर्थात् इन दोनों को मनुष्य किसी तरह नहीं रोक सकता है, यद्यपि अन्यान्य वस्तुओं के संयोग से अर्थात् रसायनिक प्रयोगों से कई एक सामाविक विषयों के परि वर्षन में भी मनुष्य यत् किश्चित् विजय को पा सकते है परन्तु वह परिवर्षन ठीक रीति से अपना कार्य न कर सकने के कारण व्यर्थ रूपसाही होता है किन्तु जो (परिवर्षन) कालसमाव वश्च सामाविक नियम से होता रहता है वही सब प्राणियों के हित का सम्पादन करने से यथार्थ और उत्तम है इस लिये मनुष्य का उद्यम इस विषय में व्यर्थ है।

ऋतु के लाभाविक परिवर्तन से हवा में परिवर्तन होकर शरीर के मीतर की गर्मी शर्दी में भी परिवर्तन होता है इसल्यि ऋतु के परिवर्तन में हवा के खच्छ रखने का तथा शरीर पर मलीन हवा का असर न होसके इस का उपाय करना मनुष्य का मुख्य काम है।

वर्षमर की मिन्न २ ऋतुओं में गर्मी और ठंड के द्वारा अपने आसपास की हवा में तथा हवा के योग से अपने श्वरीर में जो २ परिवर्चन होता है उस को समझ कर उसी के अनुसार आहारविहार के नियम के रखने को ऋत्चर्या कहते है।

हवा में गर्मी और ठंढ, ये दो गुण मुख्यतया रहते है परन्तु इन दोनों का परिमाण सदा एकसहश नहीं होता है, क्योंकि—द्रव्य, क्षेत्र, काल और माव के द्वारा उन में (गर्मी और ठंढ में) परिवर्तन देखा जाता है, देखो। मरतक्षेत्र की पृथ्वी के उत्तर

१-यह पम्यापम्य का वर्णन सक्षेप से किया गया है, इस का अंप वर्णन वैद्यकसम्बर्धा अन्य प्रन्थों में देखना चाहिये, क्योंकि प्रन्य के विस्तार के शय से यहा अनावश्यक विषय का वर्णन नहीं किया है ॥ २-जैसे विना ऋत के ब्रष्टिका बरसा टेना आटि ॥

और दक्षिण के किनारे पर स्थित प्रदेशों में अत्यन्त ठंड पड़ती है. इसी पृथ्वी के गोले की मध्य रेखा के आस पास के प्रदेशों में बहुत गर्मी पड़ती है तथा दोनों गोलार्घ के बीच के प्रदेशों में गर्मी और ठंड बराबर रहती है, इस रीति से क्षेत्र का विचार करें तो उत्तर भ्रव के जासपास के प्रदेशों में अर्थात् सेवेरिया आदि देशों में ठंड वहुत पड़ती है, उस के नीचे के तातार, टीवेट (तिब्बत) और इस हिन्दुस्तान के उत्तरीय मागों में गर्मी और ठंढ वरावर रहती है तथा उस से भी नीचे विष्युवट्टत के आसपास के देशों में अर्थात दक्षिण हिन्दस्तान और सीछोन (छड्डा) में गर्मी अधिक पहती है. एवं ऋत के परि-वर्चन से वहां परिवर्चन भी होता है अर्थात् वारह मास तक एक सदश ठंढ या गर्मी नहीं रहती है, क्योंकि ऋतुके अनुसार प्रियवी पर ठंड और गर्मी का पडना सर्य की गति-पर निर्भर है, देखी! भरत क्षेत्र के उत्तर तथा दक्षिण के किनारेपर स्थित देशों में सर्थ कभी सिरे पर सीवी लकीरपर नहीं आता है अर्थात छः महीने तक वहां सर्व दिखाई भी नहीं देता है, शेष छः महीनों में इस देश में उदय होते हुए तथा अस होते हुए सूर्य के प्रकाश के समान वहां भी सर्थ का कुछ प्रकाश दिखाई देता है, इस का कारण यह है कि-सूर्य के उगने (उदय होने) के १८४ मण्डले हैं उन में से कुछ मण्डल तो प्रथिवी के ऊपर आकाशप्रदेश में मेरु के पास से शुरू हुए है, कुछ मण्डल लवणसमुद्र में है, सममृतल मेरु के पास है. वहां से ७९० योजन ऊपर आकाश में तारामण्डल शुरू हुआ है. ११० योजन में सब नक्षत्र तारामण्डल है तथा पृथिबी से ९०० योजन पर इस का अन्त है, सूर्य की विमान प्रथिवी से चन्द्र की विमान प्रथिवी ८० योजन ऊंची है, सब सारे मेरु की प्रदक्षिणा करते है और सप्तर्षि (सात ऋषि) के तारे स्वादि ख़ब की प्रद-क्षिणा करते हैं।

देगों की ठंढ या गर्मी सदा समान नहीं रहती है किन्तु उस में परिवर्तन होता रहता है, देखों । जिस हिमालय के पास वर्तमान में बर्फ गिर कर ठंढा देश वन रहा है वही देश किसी काल में गर्म थाँ, इस में बड़ा मारी प्रमाण यह है कि—गर्मी के कारण जब वर्फ गल जाती है तब नीचे से मरे हुए हाथी निकलते हैं, इस बात को सब ही जानते हैं कि—हाथी गर्म देश के विना नहीं रह सकते हैं, इस से सिद्ध है कि—पहिले वह स्थान गर्म था किन्तु जब ऊपर अचानक वर्फ गिर कर जम गया तब उस की ठंढ से हाथी मर कर नीचे दब गैंथे तथा वर्फ के गलकर पानी हो जाने पर वे उस में उतराने लगे, यदि

१-इन का वर्णन जम्बूद्वीप प्रकृतिसूत्र में विस्तारपूर्वक किया गया है ॥

२-यह वात अनेक युक्तियों और प्रमाणों से सिद्ध हो जुकी है।

३-वर्फ में दवी हुई वस्तु वहुत समय तक विगडती नहीं है, इस लिये कुछ समय तक तो वे हाथी उसमें जीते रहे परन्तु पीछे खाने को न मिछने से मर गये परन्तु वर्फ में दवे रहने से उन का शरीर नहीं विगढा और न सबा ॥

यह मान भी लिया जावे कि—वहां सदा ही से बर्फ था तथा उसी में हाथी भी रहते थे तो यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि बर्फ में हाथी क्या खाते थे ! क्यों कि वर्फ को तो खा ही नहीं सकते हैं और न वर्फ पर उन के खाने योग्य दूसरी कोई वस्तु ही हो सकती है ! इस का कुछ भी जवाब नहीं हो सकता है, इस से स्पष्ट है कि वह स्थान किसी समय में गर्म था तथा हाथियों के रहनेलायक बनरूप में था, अब भी मध्य हिन्दुस्तान के सम-शीतोष्ण देशों में भी सूर्य के समीप होने से अथवा दूर होने से न्यूनाधिक रूप से गर्मी और ठंड पड़ती है, इसी लिये ऋतुपरिवर्तन से वर्ष के उत्तरायण और दक्षिणायन, ये दो अथव गिने जाते हैं, उत्तरायण उष्णकाल को तथा दक्षिणायन शीतकाल को कहते हैं।

पृथिवी के गो के का एक नाम नियत कर उस के वीच में पूर्व पश्चिमसम्बन्धिनी एक जिमीर की कल्पना कर उस का नाम पश्चिमीय विद्वानों ने विष्ठवन्नुत्त रक्खा है, इसी जिमीर के उत्तर की तरफ के सूर्य छः महीने तक उप्ण कटिवन्ध में फिरता है तथा छः महीने तक इस के दक्षिण की तरफ के उष्ण कटिवन्ध में फिरता है, जब सूर्य उत्तर की

१-सर्वत्र कथित जैनसिद्धान्त में प्रथिवी का वर्णन इस प्रकार है कि-पृथिवी गोल बाल की शकल में है, उस के नारों तरफ असली दरियान खाई के समान है तया जानूद्वीप वीन मे है, जिस का निस्तार ठाख योजन का है इस्मादि, परन्तु पश्चिमीय विद्वानोंने गेंद या नारगी के समान प्रथिवी की गोलाई मानी है, प्रिषिवी के विस्तार को उन्हों ने सिर्फ पन्नीस इजार मील के घेरे में माना है, उन का कपन है कि-तमाम प्रियमी की परिक्रमा ८२ दिन में रेळ या बोट के द्वारा दे सकते हैं, उन्हों ने जो कुछ देख कर या दर्यारफ कर कपन किया या माना है वह आयद कथियत सरा हो परन्त हमारी समझ मे वह बात नहीं आती है किन्दु हमारी समझ में तो यह बात आई हुई है कि-पृथिवी बहुत अम्बी बीबी है, सगर चकवत्तीं के समय में दक्षिण की तरफ से दरियान खुडी पृथिवी में आया या जिस से बहुत सी पृथिवी जरू में चली गई तथा दरियान ने उत्तर मे भी इवर से ही नकर खाया था, ऋषभवेद के समय मे जो नकशा जम्बू-हीप भरतक्षेत्र का था वह अब बिगड गया है अर्थात उस की और री शक्छ दीखने छगी है, दरियाव के आये हुए जल में वर्फ जम गई है इस लिये सब उस से आगे नहीं जा सकते हैं, इग्लिशमैन इसी लिये कह देते हैं कि पृथिवी इसनी ही है परन्त वर्मशास के कथनानुसार पृथिवी बहुत है तथा देशविभाग के कारण उस के मालिक राजे भी बहुत है, वर्तमान समय मे बुद्धिमान् अग्रेव भी पृथिवी की सीमा का खोज करने के लिये फिरते हूं परन्त से भी सर्फ के कारण जाने नहीं जा सकते हैं, देखो । खोज करते २ जिस अकार अमेरिका नई दुनिया का पता लगा, उसी प्रकार कालान्तर में भी खोब करनेवाले बुद्धिमान् उद्यमी छोगों को फिर भी कई स्थानों के पते मिलेंगे, इस छिये सर्वष्ठ तीर्यंकर ने जो केवल ज्ञान के द्वारा देख कर प्रकाशित किया है वह सब यथार्थ है. क्योंकि इस के सिवाय बाकी के सब पदायों का निर्णय जो उन्हों ने कीया है तथा निर्णय कर उन का कथन किया है जब ने सन पदार्थ सलारूप में दील रहे हैं तथा सला है तो यह निषय कैसे सत्स नहीं होगा, जो वात हमारी समझ में न आने वह हमारी मूल है इस में आप्त वकाओं का कोई दोष नहीं है, अला सोचो तो सही कि-इतनी सी पृथ्वी में पृथ्वी की गोलाई का मानना प्रमाण से कैसे सिद्ध हो सकता है. हा नैशक भरतक्षेत्र की मोलाई से इस हिसान को हम न्यायपूर्वक स्तीकार करते हैं ॥

तरफ फिरता है तब उत्तर की तरफ के उच्ण कटिबन्ध के प्रदेशों पर उत्तरीय सर्थ की किरणों सीघी पड़ती हैं इससे उन अदेशों में सख्त ताप पड़ता है, इसी प्रकार जब सर्थ दक्षिण की तरफ फिरता है तब दक्षिण की तरफ के उच्चा कटिवन्त्र के प्रदेशों पर दक्षिण में स्थित सूर्य की किरणें सीघी पड़ती हैं इस से उन प्रदेशों में भी पूर्व लिखे अनुसार सस्त ताप पड़ता है, यह हिन्दस्तान देश विद्यववृत्त अर्थात मध्यरेखा के उत्तर की तरफ में स्थित है अर्थात् केवल दक्षिण हिन्दस्तान उच्च कटिबन्च में है शेष सब उत्तर हिन्द-स्तान समशीतोष्ण कटिवन्य में है, उक्त रीति के अनुसार जब सूर्य छ: मास तक उत्तरा-यण होता है तब उत्तर की तरफ ताप अधिक पढ़ता है और दक्षिण की तरफ कम पड़ता है तथा जब सूर्य छः मासतक दक्षिणायन होता है तब दक्षिण की तरफ गर्मी अधिक पहती है और उत्तर की तरफ कम पहती है, उत्तरायण के छ महीने ये है---फा-गुन. चैत. वैशास. जेठ, अवाह और आवण, तथा दक्षिणायन के छःमहीने ये है----माइ-पद, आश्विन, कार्चिक, सुगशिर, पौष और माघ, उत्तरायण के छः महीने क्रम से शक्ति को घटाते है और दक्षिणायन के छः महीने कम से शक्ति को बढाते है, वर्ष भर में सूर्य बारह राशियों पर फिरता है, दो २ राशियों से ऋत बदलती है इसी लिये एक वर्ष की छः ऋत खामाविक होती हैं. यचिप मिन्न २ क्षेत्रों में उक्त ऋतु एक ही समय में नहीं छगती हैं तथापि इस आर्यावर्च (हिन्दुस्तान) के देशों में तो प्रायः सामान्यतया इस कमें से ऋत्यें गिनी जाती है:-

वसन्त ऋतु—फागुन और चैत, ग्रीष्म ऋतु—वैशाल और जेठ, ग्राष्ट् ऋतु—आषाढ़ और श्रावण, वर्षा ऋतु—माद्रपद और आश्रिन, शरद् ऋतु—कार्तिक और सगिशिर, हेमंतिशिशिर ऋतु—पीष और गाय।

बहां वसन्त ऋतु का मारम्भ यद्यपि फागुन में गिना है परन्तु जैनाचार्यों ने चिन्ता-मणि आदि प्रन्थों में सङ्कान्ति के अनुसार ऋतुओं को माना है तथा शार्क्कघर आदि अन्य आचार्यों ने भी सङ्कान्ति के ही हिसाब से ऋतुओं को माना है और यह ठीक भी है, उन के मतानुसार ऋतुयें इस प्रकार से समझनी चाहियें:—

> ऋतु श्रीषम मेषरु वृष जानो । मिथुन कर्क प्रावृट ऋतु सानो ॥ वर्षा सिंहरु कन्या जानो । शरद ऋतू तुळ वृक्षिक मानो ॥ धनरु मकर हेमन्त जु होय । शिशिर शीत जरु वरसै तोय ॥ ऋतु वसन्त है कुम्मरु मीन । यहि विधि ऋतु निर्धारन कीन ॥ १ ॥

१-इसी को संक्रान्ति कहते हैं ॥ २-ऋतुओं का कम अनेक आचार्यों ने अनेक प्रकार से माना है, वह प्रन्थान्तरों से हात हो सकता है ॥

दोहा—ऋतू लगन में आठ दिन, जब होबे उपचार ॥ त्यागि पूर्व ऋतु को अगिल, बरते ऋतु अनुसार ॥ २ ॥

अर्थात् मेष और वृष की सङ्कान्ति में श्रीष्म ऋतु, मिश्रुन और कर्क की सङ्कान्ति में श्रावट्ट ऋतु, सिंह और कन्या की संक्रान्ति में वर्षा ऋतु, तुला और वृश्चिक की सङ्कान्ति में शरद् ऋतु, धन और मकर की सङ्कान्ति में हेमन्त ऋतु, (हेमन्त ऋतु में जब मेघ बरसे और ओले गिरें तथा शीत अधिक पड़े तो वही हेमन्त ऋतु शिशिर ऋतु कहलाती है) तथा कुन्म और मीन की सङ्कान्ति में वसन्त ऋतु होती है ॥ १ ॥

जन दूसरी ऋतु के छगने में आठ दिन वाकी रहें तन ही से पिछली (गत) ऋतु की चर्या (ज्यवहार) को घीरे २ छोड़ना और अगली (आगामी) ऋतु की चर्या की प्रहण करना चाहिये ॥ २ ॥

बद्यपि ऋतु में करने योग्य कुछं आवश्यक आहार विहार को ऋतु खयमेव मनुष्य से करा छेती है, जैसे-देखो । जब ठंड पड़ती है तब मनुष्य को लबं ही गर्भ बस्त आदि वस्तओं की इच्छा हो जाती है, इसी प्रकार जब गर्मी पहती है तब महीन वस और ठंढे वल आदि वस्तुओंकी इच्छा माणी सतः ही करता है, इस के अतिरिक्त इंग्लेंड और काबुछ आदि ठंढे देशों में (जहां ठंढ सदा ही अधिक रहती है) उन्हीं देशों के अनुकूछ सब साधन प्राणी को सबं करने पड़ते है, इस हिन्दुस्थान में श्रीप्म ऋतु में भी क्षेत्र की तासीर से चार पहाड़ बहुत ठंढे रहते हैं -- उत्तर में विजयीर्ध, दक्षिण में नीलगिरि, पश्चिम में आवृताज और पूर्व में दार्जिलिंग, इन पहाड़ों पर रहने के समय गर्मी की ऋत में भी मनुष्यों को शीत ऋतु के समान सब साधनों का सम्पादन करना पड़ता है, इस से सिद्ध है कि-ऋतु सम्बंधी कुछ आवश्यक वातों के उपयोग को तो ऋतु सबं मनुष्य से करा केती है तथा ऋतसम्बन्धी कुछ आवस्थक वातों को सामान्य लोग भी थोडा वहत समझते ही हैं, क्योंकि यदि समझते न होते तो वैसा व्यवहार कभी नहीं कर सकते थे. बैसे देखो । हवा के गर्म से ऋर्द तथा ऋर्द से गर्म होने रूप परिवर्त्तन को प्रायः सामान्य कोग भी थोड़ा बहुत समझते है तथा जितना समझते है उसी के अनुसार यथाञ्चक्ति उपाय भी करते हैं परन्तु ऋतुओं के शीत और उष्णह्मप परिवर्तन से शरीर में क्या र परिवर्तन होता है नीर छःओं ऋतुयें दो २ मास तक वातावरण में किस २ प्रकार का परिवर्तन करती है, उस का अपने शरीर पर कैसा असर होता है तथा उस के छिये क्या र उपयोगी वर्ताव (आहार विहार आदि) करना चाहिये, इन वातों को वहुत ही कम छोग

१-६स पर्वत को इस समय छोग हिमालय कहते हैं ॥

र-कालान्तर में इन पर्वतो की यदि तासीर वदळ जावे तो कुछ आधर्य नहीं है ॥

समझते है इस िलये छःओं ऋतुओं के आहार विहार आदि का संक्षेपे से यहां वर्णन करते हैं, इस के अनुसार वर्षाव करने से शरीर की रक्षा तथा नीरोगता अवस्य रह सकेगी:—

हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में (श्रीत काल में) लाये हुए पदार्थों से शरीर में रस अर्थात कफ का सम्रह होता है, वसन्त ऋतु के लगने पर गर्भी पहने का प्रारम्भ होता है इस लिये उस गर्मी से शरीर के भीतर का कफ पिघळने छगता है, यदि उस का शमन (शान्ति का उपाय वा इलाज) न किया जावे तो खांसी कफज्वर और मरोहा आदि रोग उत्पन्न होजाते हैं, वसन्त में फफकी शान्ति के होने के पीछे श्रीष्म के सख्त ताप से शरीर के भीतर का आवश्यकरूप में स्थित कफ जलने अर्थात् क्षीण होने लगता है, उस समय में शरीर में वाय अपकटरूप से इकड़ा होने रुगता है, इसलिये वर्षा ऋतु की हवा के चलते ही दस्त, वमन, बुखार, वायुज सन्निपातादि कीप, अग्रिमान्य और रक्त-विकारादि वायुजन्य रोग उत्पन्न होते हैं उस वायु को मिटाने के छिये गर्म इलाज अथवा अज्ञानता से गर्म खान पान आदि के करने से पित्त का सम्बय होता है, उस के बाद शरद ऋतु के लगते ही सूर्य की किरणें तुला संकान्ति में सोलह सौ (एक हजार छः सौ) होने से सक्त ताप पढ़ता है, उस ताप के बोग से पित्त का कोप होकर पित का बुखार, मोती झरा, पानीझरा, पैतिक सन्निपात और वमन आदि अनेक उपद्रव होते है, इस के बाद ठंढे इलाजों से अथवा हेमन्त ऋतु की ठंढी हवा से अथवा शिशिर ऋड़ की तेज ठंढ से पित्त शांत होता है परन्त उस हेमन्त की ठंढ से खान पान में आये हुए पौष्टिक तत्त्व के द्वारा कफ का संग्रह होता है वह वसन्त ऋत में कीप करता है, तात्पर्य यह है कि-हेमन्त में कफ का सम्बय और वसन्त में कोप होता है, अप्मि में वायु का सञ्चय और प्रावृद्ध में कीप होता है. वर्षा में पित्त का सञ्चय और शरद में कीप होता है. यही कारण है कि नसन्त, वर्षा और शरद, इन तीनों ही ऋतुओं में रोग की अधिक उत्पत्ति होती है, यद्यपि निपरीत आहार निहार से बायु पित्त और कफ निगड़ कर सब ही ऋतुओं में रोगों को उत्पन्न करते हैं परन्तु तो भी अपनी २ ऋतु में इन का अधिक कोम होता है और इस में भी उस र प्रकार की प्रकृतिवालों पर उस र दोष का अधिक कोप होता है, जैसे वसन्त ऋतु में कफ सबों के लिये उपद्रव करता है परन्तु कफ की प्रकृतिवाले के लिये अधिक उपद्रव करता है, इसी प्रकार से शेष दोनों दोषों का सी उपद्रव समझ छेना चाहिये ॥

१-इस का विस्तारपूर्वक वर्णन इसरे वैवक प्रन्थों में देख छेना चाहिये॥

२-इतनी किरणें और किसी सकान्ति में नहीं होती हैं, यह वात कल्मसूत्र की लक्ष्मीवहमी टीका में लिखी है, इसके सिवाय लोकोक्ति भी है कि-"आसोकों की धूप में, जोगी हो गये जाट ॥ त्राह्मणा हो गये सेवहें, कर से वन गये साट '॥ १॥

वसन्त ऋतु का पथ्यापथ्य ॥

पहिले कह चुके हैं कि—शीत काल में जो चिकनी और पुष्ट ख़ुराक खाई जाती है उस से कफ का संग्रह होता है अर्थात् श्रीत के कारण कफ श्वरीर में अच्छे प्रकार से जम-कर ख़ित होता है, इस के बाद बसन्त की घूप पड़ने से वह कफ पिघलने लगता है, कफ प्रायः मगज़ छाती और साँघों में रहता है इस लिये शिर का कफ पिघल कर गले में उत्तरता है जिस से जुख़ाम कफ और खांसी का रोग होता है, छाती का कफ पिघलकर होजरी में जाता है जिस से अप्रि मन्द होती है और मरोड़ा होता है, इस लिये बसन्त ऋतु के लगते ही उस कफ का यह करना चाहिये, इस के मुख्य इलाज दो तीन हैं—इस लिये इन में से जो प्रकृति के अनुकूल हो वही इलाज कर लेना चाहिये:—

१—आहार विद्यार के द्वारा अथवा वमन और विरेचन की ओषि के द्वारा कफ को निकाल कर शान्ति करनी चाहिये।

र-जिस को कफ की अत्यन्त तकलीफ हो और शरीर में शक्ति हो उस को तो यही उचित है कि-वमन और विरेचन के द्वारा कफ को निकाल डाले परन्तु वालक बुद्ध और शक्तिहीन को वमन और विरेचन नहीं लेना चाहिये, हां सोल्ह वर्षतक की अवस्थावाले बालक को रोग के समय हरड़ और रेवतचीनी का सत आदि सामान्य विरेचन देने में कोई हानि नहीं है परन्तु तेज विरेचन नहीं देना चाहिये।

वसन्त ऋतु में रखने योग्य नियम ॥

१-भारी तथा ठंढा अल, दिन में नींद, चिकना तथा मीठा पदार्थ, नया अल, इन सन का त्याग करना चाहिये।

२—एक साल का पुराना अज, शहद, कसरत, जंगल में फिरना, तैलमर्दन और पैर द्वाना आदि उपाय कफ की शान्ति करते हैं, अर्थात् पुराना अल कफ को कम करता है, शहद कफ को तोड़ता है, कसरत, तेल का मर्दन और दवाना, ये तीनों कार्य शरीर के कफ की जगह को छुड़ा देते हैं, इसलिये इन सब का सेवन करना चाहिये।

र-रूली रोटी लाकर मेहनत मजूरी करनेवाले गरीवों का यह मौसम कुछ मी विगाड़ नहीं करता है, किन्तु माल खाकर एक जगह वैठनेवालों को हानि पहुँचाता है, इसी लिये प्राचीन समय में पूर्ण वैद्यों की सलाह से मदनमहोत्सव, रागरंग, गुलाव जल का डालना, अवीर गुलाल जादि का परस्पर लगाना और वगीचों में जाना आदि वातें इस मौसम में नियत की गई थीं कि इन के द्वारा इस ऋतु में मनुष्यों को कसरत प्राप्त हो,

१-संवत् १९५८ से सबत् १९६३ तफ मैंने बहुत से देशों में असण (देशाटन) किया था जिस में इस ऋहु में यदापि अनेक नगरों में अनेक प्रकार के उत्सव साहि हेखने में आये थे परस्तु स्थिताबाद

जैसा इस ऋत में हितकारी और परमव श्रुखकारी महोत्सव कहीं भी नहीं देखा. वहा के लोग फालान हाक में प्राय. १५ दिन तक मगवान का रयमहोत्सव प्रतिवर्ध किया करते हैं अर्थात मगवान के रथ को निकाला करते हैं, रास्तेमें स्तवन गाते हुने तथा केगर आदि उत्तम पदार्थों के जल से भरी हुई चांदी की पिचकारियां चलाते हुने बगीचों में जाते हैं, नहापर आत्र पूजादि मक्ति करते है तथा प्रतिदिन शास को सेर होती है इत्यादि. उक्त धर्मी पुरुषों का इस ऋतु में ऐसा महोत्सव करना अत्यन्त ही प्रशास के बीग्य है. इस महोत्सव का उपदेश करनेवाले हमारे प्राचीन यति प्राणाचार्यही हुए है. उन्हीं का इस सब तथा परभव में हितकारी यह उपदेश जाजतक चल रहा है, इस बात की वहत ही हमें खशी है तथा हम उन पुरुषों को अत्यन्त ही घन्यवाद देते हैं जो आजतक उक्त उपदेश को मान कर उसी के अनुसार वर्ताव कर अपने जन्म को सफल कर रहे हैं, क्योंकि इस काल के लोग परमव का खगाल बहुत कम करते हैं, प्राचीन समय में जो आचार्य लोगों ने इस ऋद में अनेक महोत्सव नियत किये थे उन का तारपर्य केवल बड़ी था कि मनुष्यों का परभव भी अधरे तथा इस भव में भी ऋत के अनुसार उत्सवादि मे परिश्रम करने से आरोज्यता आदि बातों की प्राप्ति हो, यदापि ने उत्सव रूपान्तर में अव मी देखे जाते हैं परन्त स्रोग उन के तस्य को विलक्षक नहीं सोचते हैं और मनमाना वर्तान करते हैं, देखी। पानी प्रका होली तथा गीर अर्थात महनमहोत्सव (होली तथा गौर की उत्पत्ति का हाल प्रन्य वह जाने के नग से यहा नहीं किसवा बाहते हैं फिर किसी समय इन का बुत्तान्त पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जावेगा) में कैसा २ वर्तांव करने क्षेत हैं. इस महोत्सव में वे होग बदापि दालिये और वह आदि कफ़ोच्छेदक प्वाभी को जाते है तथा खेत समाजा आदि करने के बहाने रात को जागना आदि परिश्रम भी करते हैं जिस से कफ घटता है परन्तु होली के सहोत्सव में वे लोग कैसे २ महा असम्बद्ध वचन बोलते हैं, यह बहुत ही खराव प्रधा पड गई ई, द्विद्धमानों को नाहिये कि इस हानिकारक तथा आंडों की सी मेछा को अवस्थ छोड दें, क्योंकि इन महा असम्बद्ध वचनों के बकने से मजातन्त कम जोर होकर शरीर में तथा ब्रद्धि में खरावी होती है, वह प्राचीन प्रथा नहीं है किन्तु अञ्चमान ढाई हज़ार वर्ष से यह भाट चेष्टा वाससागी (कूण्डा पन्थी) छोगो के सता-ध्यक्षों ने जलाई है तथा सोले लोगों ने इस को सङ्गलकारी सान रक्खा है, क्योंकि उन को इस बात की विलक्षण खबर नहीं है कि वह महा असम्बद्ध वचनों का वकना कहा पन्थियों का मुख्य मजन है, यह दुरचेष्टा भारवाड के लोगों में वहुत ही प्रचलित हो रही है, इस से यथि वहा के लोग अनेक बार अनेक हातियों को उठा चुके हैं परन्तु अवतक नहीं संसकते हैं, यह केवल सनिया देनी का प्रसाद है कि-नर्त-मान समय में ऋतु के विपरीत अनेक मन.कल्पित व्यवहार प्रचलित हो गये हैं तथा एक इसरे की देखा देखी और भी प्रचलित होते जाते हैं, अब तो सचमुच कुए में माग गिरने की कहावत हो गई है, यथा-"अविवाऽनेक प्रकार की, घट घट मॉहि अर्डी । को काको समुझावही, कूए माय पड़ी" ॥ १ ॥ जिस में भी मारवाड की दशा को तो कुछ भी न पूछिये, यहा तो सारवाधी साथा की यह कहावत विलक्ष ही स्त्य होगई है कि-"म्हानें तो रातींघो आमे जी ने मज छोई राम" अर्घात कोई २ मर्द छोग तो इन वाता को रोकना भी नाहते हैं परन्तु वर की धणियानियों (खामिनियों) के सामने निम्नी से नूहे की तरह उन क्यारों को डरना ही पडता है, देखो । वसन्त ऋतु में ठडा खाना बहुत ही झांने करता है परन्तु यहा शीछ सातम (शीतला सप्तमी) को सब ही लोग ठढा खाते हैं, शुड भी इस ऋतु में महा हानिकारक है उस के भी शीलसातम के दिन खाने के लिये एक दिन पहिले ही से गुलरान, गुलपपड़ी और तेलपपडी आदि

इस लिये इस ऋतु के प्राचीन उत्सवों का प्रचार कर उन में प्रवृत्त होना परम आवश्यक है, क्योंकि इन उत्सवों से शरीर नीरोग रहता है तथा चित्त को प्रसन्नता भी प्राप्त होती है।

पदार्थ बना कर अवस्य ही इस भौसम में खाते हैं, यह बाखाब में तो अविद्या देवी का प्रसाद है परन्त श्रीतला देवी के नाम का बहाना है, हे कुळवती ग्रह्लिक्सेशो ! जरा विचार तो करो कि-दया धर्म से विरुद्ध और श्रीर को हानि पहेंचानेबाळे खर्यात इस भव और परमब को विगाडनेबाळे इस प्रकार के खान पान से क्या काम है ⁸ जिस शीतका देवी को पूजते २ तुम्हारी पीढियां तक गुजर गई परन्त आज तक शीतला देवी ने तुम पर कृपा नहीं की अर्थात आज तक तुम्हारे वसे इसी शीतला देवी के प्रभाव से काने अन्थे, कुरूप, खुछे और कॅगडे हो रहे हैं और हजारों मर रहे हैं, फिर ऐसी देवी को पूजने से तुम्हें क्या लाम हुआ ⁹ इस लिये इस की पूजा को छोडकर उन प्रसाह अप्रेज देवों को पूजो कि जिन्हों ने इस देशी को माता के दूध का विकार समझ कर उस को स्रोव कर (टीके की चाल को प्रचलित कर) निकाल ढाला और वालकों को महा संकट से बचाया है, देखो ! वे लोग ऐसे २ उपकारों के करने से ही भाज साहिब के नाम से विख्यात है. देखी ! अन्धपरम्परा पर न चळकर तत्त्व का विचार करना ब्रह्मिमानों का काम है, कितने अफसोस की जात है कि-कोई र किया तीन र दिन तक का ठडा (वासा) अब खाती हैं. भला कहिये इस से हानि के सिवाय और क्या मतलब निकलता है, स्मरण रक्खो कि ठढा खाना सदा ही अनेक हानियों को करता है अर्थात इस से बुद्धि कम हो जाती है तथा बरीर में अनेक रोग हो जाते हैं, जब इस बीकानेर की तरफ देखते हैं तो बहा भी वडी ही अन्धपरम्परा दृष्टिगत होती है कि-यहा के कोग तो सबेरे की सिरावणी में प्राय. बालक से छेकर बृद्धपर्यन्त दही और बाजरी की अथवा गेहूं की बासी रोटी खाते हैं जिस का फल भी हम प्रलक्ष ही नेत्रों से देख रहे हैं कि वहा के लोग उत्साह दृद्धि और संद्विचार आदि गुणों से द्वीन दीस पडते हैं, अब अन्त में इसें इस पवित्र देश की कुलवित्यों से नहीं कहना है कि-हे कुछवती क्रियो । शीवला रोग की तो समस्त हानियो को उपकारी बाक्टरों ने विलक्कल ही कम कर दिया है अब तुम इस इन्तिसत प्रथा को क्यों तिलाजिल नहीं देती हो ? देखी । ऐसा अतीत होता हैं कि-प्राचीन समय में इस ऋतु में कफ की और बुष्कमों की निवृत्ति के प्रयोजन से किसी महापुरूप ने सप्तमी वा अष्टमी को शीलवत पाठने और चुल्हे को न मुख्याने के छिये अर्थात् उपवास करने के छिये कहा होगा परन्तु पीछे से उस कथन के असली तात्पर्य को न समझ कर मिध्यात्व वश किसी धूर्त ने यह कीतका का दंग हारू कर दिया और वह कम २ से पनघट के घाघरे के समान बढता २ इस मारनाक मे तया अन्य देशों में मी सर्वत्र फैल गया (पनघट के घाघरे का बत्तान्त इस प्रकार है कि-किसी समय दिली में पनघट पर किसी स्त्री का बाधरा खुळ गया, उसे देखकर छोगों ने कहा कि "घाघरा पड़ गया रे, भाषरा पढ गया" उन कोगों का कथन दर खडे हुए लोगों को ऐसा सुनाई दिया कि-'आगरा जरु गया रै, आगरा जल गया, इस के बाद यह बात कर्णपरम्परा के द्वारा तमाय दिल्ली मे फैल गई और बादशाह तक के कानों तक पहुँच गई कि 'आगरा जल गया रे, आगरा जल गया, परन्तु जब बादगाहने इस वात की तहकी कात भी तो माद्धम हुआ कि आगरा नहीं जल गया किन्तु पनघट की स्त्री का घाघरा खुल गया हैं) हैं परममित्रो । देखों । संसार का तो ऐसा हग है इसलिये सुद्ध पुरुषों को उक्त हानिकारक वातो पर अवस्य ध्यान देकर उन का सुधार करना चाहिये॥

४-वसन्तऋतु की हवा बहुत फायदेमन्द मानी गई है इसी लिये आसकारों का कथन है कि "वसन्ते असणं पथ्यम्" अर्थात् वसन्तऋतु में असण करना पथ्य है, इस लिये इस ऋतु में प्रातःकाल तथा सायंकाल को वायु के सेवन के लिये दो चार मील तक अवस्य जाना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से वायु का सेवन मी हो जाता है तथा जाने आने के परिश्रम के द्वारा कसरत भी हो जाती है, देखों। किसी बुद्धिमान् का कथन है कि—"सौ दवा और एक हवा" यह वात वहुत ही ठीक है इसलिये आरोग्यता रखने की इच्छावालों को उचित है कि अवस्थमेव प्रातःकाल सदैव दो चार मील तक फिरा करें॥

प्रीष्म ऋतु का पथ्यापथ्य ॥·

मीप्प ऋतु में शरीर का कफ स्सने लगता है तथा उस कफ की लाली जगह में हवा मरने लगती है, इस ऋतु में सूर्य का ताप जैसा ज़मीन पर स्थित रस को लीच लेता है उसी प्रकार मनुष्यों के श्वरीर के भीतर के फफरूप प्रवाही (बहनेवाले) पदार्थों का शोषण करता है इस लिये सावधानता के साथ गरीव और अमीर सब ही को अपनी २ शक्ति के अनुसार इस का उपाय अवश्य करना चाहिये, इस ऋतु में जितने गर्म पदार्थों हैं वे सब अपथ्य है यदि उन का उपयोग किया जावे तो शरीर को बड़ी हानि पहुँचती है, इस लिये इस ऋतु में जिन पदार्थों के सेवन से रस न घटने पावे अर्थात जितना रस सूखे उतना ही फिर उत्पन्न हो जावे और वायु को जगह न मिलसके ऐसे पदार्थों का सेवन करना चाहिये, इस ऋतुमें मधुर रसवाले पदार्थों के सेवन की आवश्य- कता है और वे खामाविक नियम से इस ऋतु में प्रायः मिलते भी है जैसे—पके आम, फालसे, सन्तरे, नारंगी, इमली, नेचू जाग्नन और गुलावजाग्रन आदि, इस लिये खामा- , विक नियम से आवश्यकतानुसार उत्पन्न हुए इन पदार्थों का सेवन इस ऋतु में अवश्य करना चाहिये।

मीठे, ठंढे, इलके और रसवाले पदार्थ इस ऋतु में अधिक खाने चाहियें जिन से सीण

होनेवाले रस की कमी पूरी हो जावे ।

भेहूं, चावल, मिश्री, दूष, शकर, जल झरा हुआ तथा मिश्री मिलाया हुआ दहीं और श्रीलंड आदि पदार्थ लाने चाहिये, ठंढा पानी पीना चाहिये, गुलाब तथा केवड़े के जल का उपयोग करना चाहिये, गुलाब, केवड़ा, लस और मोतिये का अतर सूंघना चाहिये।

प्रातःकाल में सफेद और हलका सूती वस्त, दश से पांच बने तक सूती जीन वा गजी का कोई मोटा वस्त तथा पांच बने के पश्चात् महीन वस्त पहरना चाहिये, वर्फ

१-श्रीखण्ड के ग्रुण इसी अध्याय के पाचवें प्रकरण में कह चुके हैं, इस के बनाने की विधि मानप्रकाश आदि वैद्यक प्रन्थों में अथवा पाकश्चाक्र में देख छेनी चाहिये ॥

का जल पीना चाहिये, दिन में तहखाने में वा पटे हुए मकान में और रात को ओस में सोना उत्तम है।

बॉवला, सेव और ईस का मुख्या भी इन दिनों में लामकारी है, मैदा का शीरा जिस में मिश्री और घी अच्छे प्रकार से डाला गया हो प्रातःकाल में खाने से बहुत लास पहुँचाता है और दिन मर प्यास नहीं सताती है ।

श्रीष्म ऋतु आम की तो फसल ही है सब का दिल चाहता है कि आम खावें परन्तु अकेला आम या उस का रस बहुत गर्मी करता है इस लिये आम के रस में भी दूघ और काली मिर्च ढाल कर सेवन करना चाहिये ऐसा करने से वह गर्मी नहीं करता है तथा शरीर को अपने रंग जैसा बना देता है।

थ्रीप्म ऋत में क्या गरीब और क्या अमीर सब ही छोग शर्वत को पीना चाहते है और पीते भी है तथा शर्वत का पीना इस ऋतु में छामकारी भी बहुत है परन्त वह (शर्वत) गुद्ध और अच्छा होना चाहिये, अचार छोग वो केवळ मिश्री की चासनी बना कर शीक्षियों में भर कर बाजार में वेंचते है वह शर्वत ठीक नहीं होता है अर्थात उस के पीने से कोई लाम नहीं हो सकता है इस लिये असली चिकिरसा प्रणाली से बना हुआ गर्वत व्यवहार में लाना चाहिये किन्त जिन को प्रमेह आदि या गर्मी की वीमारी कमी हुई हो उन लोंगों को चन्दन गुलाव केवडे वा खस का शर्वत इन दिनों में अवस्थ पीना चाहिये, चन्दन का शर्वत बहुत ठंढा होता है और पीने से तवीयत को ख़ुश करता है, दक्त को साफ छ। कर दिल को ताकत पहुँचाता है, कफ प्यास पित्त और लोह के विकारों को दूर करता है तथा दाह को मिटाता है, दो तीले चन्दन का शर्वत दश तीले पानी के साथ पीना चाहिये तथा गुलाव वा केवड़े का शर्वत भी इसी रीति से पीना अच्छा है इस के पीने से गर्मी शान्त होकर कलेजा तर रहता है, यदि दो तोले नींव का धर्नेत दश तोले जल में डाल कर पिया जावे तो भी गर्मी शान्त हो जाती है और भूख भी दुगुनी लगती है, चालीस तीले मिश्री की चासनी में बीस नीवुओं के रस को डाल कर बनाने से नींबू का अर्वत अच्छा बन सकता है, चार तोले मर अनार का शर्वत बीस तों हो पानी में डालकर पीने से वह नज़ले को मिटा कर दिमाग को ताकत पहुँचाता है, इसी रीति से सन्तरा तथा नेचू का शर्वत मी पीने से इन दिनों में बहुत फायदा करता है।

निस स्थान में असली शर्वत न मिल सके और गर्मी का अधिक ज़ोर दिखाई देता हो तो यह उपाय करना चाहिये कि—पचीस नादामों की गिरी निकाल कर उन्हें एक धण्टेतक पानी में भीगने दे, पीछे उन का लाल छिलका दूर कर तथा उन्हें घोट कर

१-परन्तु मन्दाप्तिवाले प्रकृषों को इसे नहीं खाना चाहिये ॥

एक गिलास भर जल बनावे और उस में मिश्री डाल कर पी जावे, ऐसा करने से गर्मी विलकुल न सतावेगी और दिमाग को तरी भी पहुँचेगी।

गरीन और साधारण लोग ऊपर कहे हुए श्वर्वतों की एवज़ में इमली का पानी कर उस में खजूर अथवा पुराना गुड़ मिला कर पी सकते हैं, यद्यपि इमली सदा खाने के योग्य वस्तु नहीं है तो भी यदि प्रकृति के अनुकृत्व हो तो गर्मी की सख्त ऋतु में एक वर्ष की पुरानी इमली का श्वर्वत पीने में कोई हानि नहीं है किन्तु फायदा ही करता है, गेहूँ के फुलकों (पतली २ रोटियों) को इस के श्वर्वत में मींज कर (मिगो कर) खाने से भी फायदा होता है, दाह से पीड़ित तथा बर लगे हुए पुरुष के इमली के मीगे हुए गूदे में नमक मिला कर पैरों के तलवों और हथेलियों में मलने से तत्काल फायदा पहुँ- चता है अर्थात् दाह और बर की गर्मी शान्त हो जाती है।

इस ऋतु में लिके हुए सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की माला का धारण करना वा उन की सूंघना तथा सफेद चन्दन का लेप करना भी श्रेष्ठ है।

चन्दन, केवड़ा, गुलाब, हिना, खस, मोतिया, जुही और पनड़ी थादि के अतरों से बनाये हुए साबुन भी (लगाने से) गर्मी के दिनों में दिल को ख़ुश तथा तर रखते हैं इस लिये इन साबुनों को भी प्रायः तमाम शरीर में खान करते समय लगाना चौहिये। इस ऋतु में लीगमन १५ दिन में एक वार करना उचित है, क्योंकि इस ऋतु में खमाब से ही शरीर में शक्ति कम होजाती है।

१-परन्तु ये सब ऋतु के अनुकूछ पदार्थ उन्ही पुरुषों को प्राप्त हो सकते हैं जिन्हों ने पूर्व अब में देव गुरु और धर्म की सेवा की हैं, इस मच ने जिन पुरुषों का मन धर्म में खगा हुआ है और जो उदार खमार हैं तथा वास्तव में उन्हीं का जन्म प्रशसा के बोरय है. क्योंकि-देखों ! शास और दुशांके आदि उत्तमोत्तम वहा, कडे और कण्ठी आदि भूपण, सब प्रकार के बाहन और सोतियों के हार आदि सब पदार्थ धर्म की ही बदीलत लोगों को मिळे हैं और मिल सकते हैं. परन्त अफसोस है कि इस समय उस (धर्म) को मनुष्य विलक्षक भूके हुए हैं, इस समय में तो ऐसी व्यवस्था हो रहीं है कि-धनवान लोग धन के नहीं में पढ़ कर धर्म को बिलकुल ही छोड बैठे हैं, वे छोग कहते हैं कि-हमें किसी की क्या परवाह है, हमारे पास धन है इसलिये हम जो चाहें सो कर सकते हैं इस्मादि, परन्तु यह उनकी महामूल है, उन को अहा-नता के कारण यह नहीं मालूम होता है कि-जिस से हम ने ये सब फल पाये हैं उस को हमे नमते रहना चाहिये और आगे के लिये पर लोक का मार्ग साफ करना चाहिये. देखो ! जो धनवान और धर्मवान होता है उस की दोनो लोकों में प्रशासा होती है. जिन्हों ने पूर्वभव में धर्म किया है उन्ही को मोजन और वस्त्र आदि की तंगी नहीं रहती है अर्थात पुण्यवानों को ही खान पान आदि सव वातों का सुबरहता है, देखों ! ससार में व<u>ह</u>त से लोग ऐसे भी हैं जिन को खानपान का भी सुख नहीं है, कहिये संसार में इस से क्षधिक और क्या तकलीफ होगी सर्यात उन के दुःख का क्या अन्त हो सकता है कि जिन के लिये रोटी-तक का भी ठिकाना नहीं है, आदमी अन्य सब प्रकार के दु स अगत सकता है परन्त रोटी का दु स किसी से नहीं सहा जाता है, इसी लिये कहा जाता है कि हे माझ्यो ! घर्म पर सदा प्रेम रक्खो, वहीं तुम्हारा सन्ता मित्र है ॥

इस ऋतु में अपध्या— सिरका, खारी तीले खट्टे और रूझ पदार्थों का सेवन, कसरत, घूप में फिरना और अग्नि के पास बैठना आदि कार्थ रस को अखाकर गर्मी को बढाते हैं इस लिये इस ऋतु में इन का सेवन नहीं करना चाहिये, इसी प्रकार गर्म मसाला, चटनियां, लाल मिर्च और तेल आदि पदार्थ सदा ही बहुत खाने से हानि करते हैं परन्तु इस ऋतु में तो थे (सेवन करने से) अकथनीय हानि करते है इस लिये इस ऋतु में इन सब का अवश्य ही त्याग करना चाहिये।

वर्षा और प्रावृद् ऋतु का पथ्यापथ्य ॥

चार महीने बरसात के होते हैं, मारवाइ तथा पूर्व के देशों में आर्द्रा नक्षत्र से तथा दिक्षण के देशों में ख्राशिर नक्षत्र से वर्षा की हवा का प्रारम्भ होता है, पूर्व वीते हुए श्रीप्म में वायु का संजय हो जुका है, रस के स्रस्त जाने से झिक्त घट जुकी है तथा जठ-राम्नि मन्द हो गई है, इस दशा में जब जठकणों के सिहत बरसाती हवा चळती है तथा में ह बरसता है तब पुराने जल में नया जल मिळता है, ठंढे पानी के बरसने से शरीर की गर्मी माफ रूप होकर पित्त को विगाइती है, ज्मीन की माफ और खटासवाला पाक पित्त को वड़ा कर वायु तथा कफ को दवाने का भयल करता है तथा बरसात का मैळा पानी कफ को बढ़ा कर वायु और पित्त को दवाता है, इस शकार से इस ऋतु में तीनों दोषों का आपस में विरोध रहता है, इस लिये इस ऋतु में तीनों दोषों की शान्ति के लिये युक्ति-पूर्वक आहार विहार करना चाहिये, इस का संक्षेप से वर्णन करते है:—

१-जठरामि को मदीस करनेवाले तथा सब दोषों को बरावर रखनेवाले खान पान का उपयोग करना चाहिये अर्थात सब रस खाने चाहिये।

र-यदि हो सके तो ऋतु के लगते ही हलका सा जुलाव के लेना चाहिये।

३-खुराक में वर्षमर का पुराना अन्न वर्चना चाहिये।

8—मूंग और अरहर की दाल का ओसावण बना कर उस में छाछ डाल कर पीना चाहिये, यह इक्क ऋतु में फायदेमन्द है।

५-दही में सञ्चल, रेंघा या सादा नमक डाल कर खाना बहुत अच्छा है, क्योंकि इस प्रकार से खाया हुआ दही इस ऋतु में बायु को शान्त करता है, अग्नि को प्रदीप्त करता है तथा इस प्रकार से खाया हुआ दही हेमन्त ऋतु में भी पथ्य है।

⁹⁻बहुत से लोग मूर्खता के कारण गर्मी की ऋतु में दही खाना अच्छा समझते हैं, सो यह ठीक नहीं है, यशि उक्त ऋतु में वह खाते समय तो ठंबा माल्यम होता है परन्तु पचने के समय पित्त को वढ़ा कर कर उल्कि उल्ली अधिक गर्मी करता है, हा यदि इस ऋतु में दही खाया भी बावे तो मिथी डाल कर युक्ति-पूर्वक खाने से पित्त को शान्त करता है, किन्तु युक्ति के बिना तो खाया हुआ दही सब ही ऋतुओं में हानि करता है।

६-छाछ, नींनू और कचे आम आदि खट्टे पदार्थ मी अन्य ऋतुओं की अपेक्षा इस ऋतु में अधिक पथ्य है।

७—इन वस्तुओं का उपयोग मी प्रकृति के अनुसार तथा परिमाण मूजव करने से लाम होता है अन्यथा हानि होती है।

८—नदी तालाव और कुए के पानी में वरसात का मैला पानी मिल जाने से इन का जल पीने योग्य नहीं रहता है, इस लिये जिस कुए में वा कुण्ड में वरसाती पानी न' मिलता हो उस का जल पीना चाहिये।

९-वरसात के दिनों में पापड़, काचरी और अचार आदि क्षारवाले पदार्थ तथा अजिथे, बड़े, चीळड़े, बेड़ई, कचोड़ी आदि खेहवाले पदार्थ अधिक फायदेगन्द हैं, इस लिये इन का सेवन करना चाहिये।

१०-इस ऋतु में नमक अधिक खाना चाहिये ॥

इस ऋतु में अपथ्य—तल्घर में बैठना, नदी या तालाद का गाँदला कल पीना, दिन में सोना, चूप का सेवन और ऋरीर पर मिट्टी लगाकर कसरत करना, इन सब नातों से बचना चाहिये।

इस ऋतु में रूख पदार्थ नहीं लाने चाहियें, क्योंकि रूख पदार्थ वायु को बढ़ाते हैं, ठंढी हवा नहीं लेनी चाहिये, कीचड़ और भीगी हुई प्रथिवी पर नंगे पैर नहीं फिरना चाहिये, भीगे हुए कपड़े नहीं पहरने चाहियें, हवा और जल की बूंदों के सामने नहीं बैठना चाहिये, घर के सामने कीचड़ और मैलापन नहीं होने देना चाहिये, बरसात का जल नहीं पीना चाहिये और न उस में नहाना चाहिये, यदि नहाने की इच्छा हो तो शारीर में तैल की मालिस कर नहाना चाहिये, इस प्रकार से आरोग्यता की इच्छा रखने वालों को इन चार मासतक (प्रावृद्ध और वर्षा ऋतु में) वर्ताव करना उचित है।

शरद् ऋतु का पथ्यापथ्य ॥

सव ऋतुओं में शरद ऋतु रोगों के उपद्रव की जड़ है, देखों! वैदिकशास्त्रकारों का कृथन है कि—"रोगाणां शारदी माता पिता दु कुछुमाकरः" अर्थात् शरद ऋतु रोगों को पैदा करनेवाली माता है और वसन्त ऋतु रोगों को पैदा कर पालनेवाला पिता है, यह सब ही जानते हैं कि—सब रोगों में ज्वर राजा है और ज्वर ही इस ऋतु का गुल्य उप-द्रव है, इसलिये इस ऋतु में बहुत ही सँमल कर चलना चाहिये, वर्षा ऋतु में सिंखत हुआ पित्त इस ऋतु के ताप की गर्मी से शरीर में कृपित होकर बुलार को करता है तथा बरसात के कारण ज़मीन मीगी हुई होती है इसलिये उस से भी घूप के द्वारा जल की

१-यह फल्पसूत्र की टीका में किसा है ॥

भाफ उठ कर हवा को विंगाइती है, विशेष कर जो देश नीचे है अर्थात् जहां वरसात का पानी भरा रहता है वहां माफ के अधिक उठने के कारण हवा अधिक विगड़ती है, वस यही ज़र्रेरीळी हवा ज्वर को मैदा करने वाली है, इस लिये शीतज्वर, एकान्तर, तिजारी और चौथिया आदि विषम ज्वरों की यही खास ऋतु है, ये सब ज्वर केवल पिच के कुषित होने से होते है, बहुत से मनुष्यों की सेवा में तो ये ज्वर प्रतिवर्ष आकर हाजिरी देते है और बहुत से लोगों की सेवा को तो ये मुद्दततक उठाया करते है, जो ज्वर खरीर में मुद्दततक रहता है वह छोड़ता मी नहीं है किन्तु शरीर को मिट्टी में मिला कर ही पीछा छोड़ता है तथा रहने के समय में भी अनेक कप्ट देता है अर्थात् तिल्ली बढ़ जाती है, रोगी कुरूप हो जाता है तथा जब ज्वर जीर्गरूप से शरीर में निवास करता है तब वह बारंवार वापिस आता और जाता है अर्थात् पीछा नहीं छोड़ता है, इस लिये इस ऋतुमें बहुत ही सावधानता के साथ अपनी प्रकृति तथा ऋतु के अनुकृल आहार विहार करना चाहिये, इस का संक्षेप से वर्णन इस प्रकार से है कि:—

१—इस ऋतु में यथाशक्य पित्त को शान्त करने का उपाय करना चाहिये, पित्त को जीतने वा शान्त करने के मुख्य तीन उपाय है:—

- (▲)-पित्त के शमन करनेवाले खान पान से और दवा से पित्त को दवाना चाहिये।
- (B) वमन और विरेचन के द्वारा पित्त को निकाल डालना चाहिये।
- (C) फरत खुळवा कर या जोंक छगवा कर खून को निकछवाना चाँहिये।
- २-वायु की प्रकृतिवाछे को शरद् ऋतु में घी पीकर पित्त की शान्ति करनी चाहिये। २-पित्त की प्रकृतिवाछे को कहुए पदार्थ खानेपीने चाहिये, कहुए पदार्थों में नीम पर की गिलोय, नीम की मीतरी छाल, पित्तपापड़ा और चिरायता आदि उत्तम और गुण-

१-इस इबा को अंग्रेजी में मलेरिया कहते हैं तथा इस से जत्यम हुए ज्वर को मलेरिया फीवर कहते हैं॥ २-बहुत से प्रमादी क्षेग इस ऋतु में जवरादि रोगों से प्रस्त होने पर भी अज्ञानता के कारण आहार विद्यार का नियम नहीं रखते हैं, वस इसी मुर्खता से वे अख्यन्त शुगत २ कर मरणान्त कष्ट पाते हैं॥

रे-यदि बेसेच और बिरेचन का सेबन किया जाने तो उसे पथ्य से करना उचित है, क्योंकि पुरुष का विरेचन (जुलाव) खेरीर श्री का जापा (प्रसृतिसमय) समान होता है इसिल्ये पूर्ण नैय की सम्मिति से अपना आगे इमी अन्य में लिखी हुई विरेचन की विधि के अनुसार निरेचन लेना ठीक है, हा इतना अवस्य स्मरण रखना चाहिये कि—जब विरेचन लेना हो तब शरीर में छत की मालिस करा ने तथा भी पीकर तीन पाच सा सात दिनतक पहिले कमन कर फिर तीन दिन ठहर कर पीछे विरेचन लेना चाहिये, भी पीने की मात्रा निख की दो तोले से लेकर चार तीलेतक की काफी है, इन सब बार्तों का वर्णन आगे किया जायगा॥

४-यह तीसरा उपाय तो विरक्षे कोगों से ही मान्ययोग से वन पडता है, क्योंकि पहिले जो हो उपाय हैं ने तो सहज और सब से हो सकने योग्य है परन्तु तीसरा उपाय कठिन अर्थात् सब से हो सकने योग्य नहीं है।

कारी पदार्थ हैं, इसिल्ये इन में से किसी एक चीन की फूँकी के लेना चाहिये, अश्वा रात को मिगो कर प्रातःकाल उस का काथ कर (उनाल कर) छान कर तथा ठंड़ा कर मिश्री डालकर पीना चाहिये, इस दवा की मात्रा एक रुपये भर है, इस से ज्वर नहीं आता है और यदि ज्वर हो तो भी चला जाता है, क्योंकि इस दवा से पित की शान्ति ो जाती है।

४-- पित्त की प्रकृतिवाले के लिये दूसरा इलाज यह भी है कि वह दूघ और मिश्री के साथ चावलों को खावे, क्योंकि इस के खानेसे भी पित्त शान्त हो जाता है।

५—िपत्त की प्रकृतिवाले को पित्तशामक जुलाव भी ले लेना चाहिये, उस से भी पित्त निकल कर शान्त हो जावेगा, वह जुलाव यह है कि—अग्रतसर की हरहें अथवा छोटी हरहें अथवा निसोतकी छाल, इन तीनों चीजों में से किसी एक चीज़ की फंकी बूरा मिला कर लेनी चाहिये तथा दाल भात या कोई पतला पदार्थ पथ्य में लेना चाहिये, ये सब साधारण दस्त लानेवाली चीज़ें हैं।

६ --इस ऋतु में मिश्री, बूरा, कन्द, कमोद वा साठी चावल, दूष, उन्ल, सेंघा नमक (थोड़ा), गेहू, जी और मूंग पथ्य हैं, इस लिये इन को लावा चाहिये।

७--जिस पर दिन में सूर्य की किरणें पहें और रात को चन्द्रमा की किरणें पहें, ऐसा नदी तथा तालाब का पानी पीना पथ्य है।

८—चन्दन, चन्द्रमा की किरणें, फूटों की माठायें और सफेद वस्न, ये भी शरद

९—वैद्यकशास्त्र कहता है कि-मीष्म ऋतु में दिन को सोना, हेमन्त ऋतु में गर्म और पुष्टिकारक ख़ुराक का खाना और श्वरद् ऋतु में दूष में मिश्री मिला कर पीना चाहिये, इस मकार वर्चान करने से माणी नीरोग और दीषीयु होता है।

१०-रक्तपित्त के लिये जो २ पथ्य कहा है वह २ इस ऋतु में सी पथ्य है ॥

इस ऋतु में अपथ्य - ओसं, पूर्व की हवा, बारं, पेर्ट गर मोजन, हुई।, खिनहीं, तेल कि, खटाई, सींठ और मिर्च आदि तीले पदार्थ, हिंग, खारे पदार्थ, अधिक चरवीवाले पदार्थ, सूर्य तथा अपि का ताप, गरमागरम रसोई, दिन में सोना और मारी ख़ुराक इन सब का त्योग करना चाहिये॥

अमा नाजा मरता ए वर नम ज नाज पान पान पान है । २-ज्ञारीर की नीरोगता के लिये उक्त वार्तों का जो त्याग है वह भी तप है, क्योंकि इच्छा का जो रोधन

करना (रोकना) है उसी का नाम सप है।

⁹⁻इस ऋतु में पेट भर खाने से बहुत हानि होती है, वैद्यकशास्त्र में कार्तिक वदि क्षष्टमी से छेकर भृगशिर के आठ दिन वाकी रहने तक दिनों को समदाब कहा गया है, जो पुरुष इन दिनों में शोबा और हरूका भोजन करता है वहीं यम की दाव से बचता है ॥

हेमन्त और शिशिर ऋतु का पथ्यापथ्य ॥

जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु मनुष्यों की ताकत को सींच छेती है उसी प्रकार हेमन्त और शिश्चर ऋतु ताकत की दृद्धि कर देती है, क्योंकि सूर्य पदार्थों की ताकत को खींचने वाला और चन्द्रमा ताकत को देने वाला है, छरद् ऋतु के लगते ही सूर्य दक्षिणायन हो जाता है तथा हेमन्त में चन्द्रमा की शीतलता के वढ जाने से मनुष्यों में ताकत का बढ़ना प्रारंभ हो जाता है, सूर्य का उदय दिखाव में होता है इसलिये बाहर ठंढ के रहने से मीतर की जठरामि तेन होने से इस ऋतु में खुराक अधिक हन्म होने लगती है, गर्मी में जो मुस्ती और शीतकाल में तेन् रहती है उस का भी यही कारण है, इस ऋतु के आहार विहार का संक्षेप से वर्णन इस प्रकार है:—

१ जिस की जठरामि तेज हो उस को इस ऋतु में पौष्टिक ख़राक खानी चाहिये तथा मन्दाभिवाल को हलकी और बोड़ी ख़ुराक खानी चाहिये, यदि तेज अभिवाला पुरुष पूरी और पुष्टिकारक ख़ुराक को न खावे तो वह अभि उस के शरीर के रस और रुधिर आदि को सुखा डालती है, परन्तु मन्दाभिवालों को पुष्टिकारक ख़ुराक के खाने से हानि पहुँचती है, क्योंकि ऐसा करने से अभि और भी मन्द हो जाती है तथा अनेक रोग उरमक हो जाते ह ।

२-इस ऋतु में मीठे खट्टे और खारी पदार्थ खाने चाहियें, क्योंकि मीठे रस से जब कफ बढ़ता है तब ही वह प्रवळ जठरामि शरीर का ठीक १ पोषण करती है, मीठे रस के साथ रुचि को पैदा करने के ळिये खट्टे और खारी रस मी अवस्य खाने चाहियें।

३-इन तीनों रसों का सेवन अनुक्रम से भी करने का विधान है, क्योंकि ऐसा लिखा है-हेमन्त ऋदु के साठ दिनों में से पहिले नीस दिन तक मीठा रस अधिक खाना चाहिये, बीच के बीस दिनों में खट्टा रस अधिक खाना चाहिये तथा अन्त के बीस दिनों में खारा रस अधिक खाना चाहिये, क्या अन्त को बीस दिनों में खारा रस अधिक खाना चाहिये, इसी प्रकार खाते समय मीठे रस का ग्रास पहिले लेना चाहिये, पिछे नींनू, 'क्रेकम, दाल, शाक, राइता, कडी और अचार आदि का ग्रास लेना चाहिये, इस के बाद चटनी, पापड़ और खीचिया आदि पदार्थ (अन्त में) खाने चाहिये, यदि इस कम से न खाकर उलट पुलट कर उक्त रस खाये बावें तो हानि होती है, क्योंकि शरद ऋदु के पिच का कुछ अंश हेमन्त ऋदु के पिहले पक्षतक में शरीर में रहता है इस लिये पहिले खट्टे और खारे रस के खाने से पिच कुपित होकर हानि होती है, इस लिये इस का अवश्य स्मरण रखना चाहिये।

४-अच्छे प्रकार पोषण करनेवाळी (पुष्टिकारक) खुराक खानी चाहिये। ५-स्री सेवन, तेळ की माळिञ्च, कसरत, पुष्टिकारक दवा, पौष्टिक खुराक, पाक, धूप का सेवन, कन आदि का गर्म कपड़ा, अँगीठी (सिगड़ी) से मकान को गर्म रखना आदि वार्ते इस ऋतु में पथ्य है ॥

हेमन्त और शिशिर ऋतु का प्रायः एक सा ही वक्तीन है, ये दोनों ऋतुयें वीर्य को सुधारने के छिये बहुत अच्छी है, क्योंकि इन ऋतुओं में को वीर्य और शरीर को पोपण दिया जाता है वह बाकी के आठ महीने तक ताकत रखता है अर्थात् वीर्य पुष्ट रहता है।

यद्यपि सबही ऋतुओं में आहार और विहार के नियमों का पालन करने से शरीर का सुधार होता है परन्तु यह सब ही जानते हैं कि वीर्य के सुधार के विना शरीर का सुधार कुछ मी नहीं हो सकता है, इस लिये वीर्य का सुधार अवश्य करना चाहिये और वीर्य के सुधारने के लिये शीत ऋतु, जीतल मकृति और शीतल देश विशेष अनुकूल होता है, देलो ! ठंढी तासीर, ठंढी मौसम और ठंढे देश के बसने बालों का बीर्य अधिक हव होता है।

यद्यपि यह तीनों प्रकार की अनुकूळता इस देश के निवासियों को पूरे तौर से प्राप्त नहीं है, क्योंकि यह देश सम श्रीतोष्ण है तथापि प्रकृति और ऋतु की अनुकूळता तो इस देश के भी निवासियों के भी आधीन ही है, क्योंकि अपनी प्रकृति को ठंढी अर्थात् हड़ता और सत्वगुण से युक्त रखना यह वात खाधीन ही है, इसी प्रकार वीर्य को छुधारने के लिये तथा गर्भाधान करने के लिये शीतकाल को पसन्द करना भी इन के खाधीन ही है, इसलिये इस ऋतु में अच्छे वैद्य वा डाक्टर की सलाह से पौष्टिक दवा, पाक अथवा ख़राक के खाने से बहुत ही फायदा होता है।

जायफल, जावित्री, छीग, बादाम की गिरी और केशर को मिलाकर गर्म किये हुए तूच का पीना भी बहुत फायदा करता है।

वादाम की कतली वा बादाम की रोटी का खाना वीर्थ पुष्टि के लिये बहुत ही फायदे मन्द है।

इन ऋतुओं में अपध्य — जुलान का लेना, एक समय मोजन करना, बासी रसोई का खाना, तीखे और तुर्स पदार्थों का अधिक सेवन करना, खुली जगह में सोना, ठंढे पानी से नहाना और दिनमें सोना, ये सन नातें इन ऋतुओं में अपध्य हैं, इसिलये इन का त्याग करना चाहिये॥

यह जो ऊपर छःओं ऋतुओं का पथ्यापथ्य लिखा गया है वह नीरोग प्रकृतिवालों के लिये समझना चाहिये, किन्तु रोगी का पथ्यापथ्य तो रोग के अनुसार होता है, वह संक्षेप से आगे लिखेंगे। पध्यापथ्य के विषय में यह अवश्य सरण रखना चाहिये कि—देश और अपनी प्रकृति को पहचान कर पथ्य का सेवन करना चाहिये तथा अपथ्य का त्याग करना चाहिये, इस विषय में यदि किसी विशेष जात का विवेचन करना हो तो चतुर वैध तथा डाक्टरों की सलाह से कर लेना चाहिये, यह विषय बहुत गहन (कठिन) है, इस लिये जो इस विधा के जानकार हों उन की संगति अवश्य करनी चाहिये कि जिस से शरीर की आरोग्यता के नियमों का ठीक र ज्ञान होने से सदा आरोग्यता बनी रहे तथा समयानुसार दूसरों का भी कुछ उपकार हो सके, वैसे भी बुद्धिमानों की संगति करने से अनेक लाम ही होते है।

यह चतुर्थ अध्याय का ऋतुचर्यावर्णन नामक सातनां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

आठवां प्रकरण-दिनचर्या वर्णन ॥

प्रातःकाल का उठना ॥

यह बात तो स्पष्टतया प्रकट ही है कि-खाभाविक नियम के अनुसार सोने के छिये रात और कार्य करने के लिये दिन नियत है, परन्त यह मी सारण रहे कि-प्रातःकाल जब चार घड़ी रात बाकी रहे तब ही नीद को छोंडकर जागृत हो जाना अब्बल दर्जे का काम है, यदि उस समय अधिक निद्रा आती हो अथवा उठने में कुछ अड़चरू माद्रम होती हो तो दूसरा दर्जा यह है कि दो घडी रात रहने पर उठना चाहिये और तीसरा दर्जी सूर्य चढे वाद उठने का है, परन्त वह दर्जी निकृष्ट और हानिकारक है, इसिछये आयु की रक्षा के लिये मनुष्यों को रात्रि के चौथे पहर में आलस्य को त्याग कर अवश्य उठना चाहिये, क्योंकि जल्दी उठने से मन उत्साह में रहता है. दिन में काम काज अच्छी तरह होता है, बुद्धि निर्मल रहती है और स्मरणशक्ति तेज रहती है, पढनेवालों के लिये भी यही (प्रात:काल का) समय बहुत श्रेष्ठ है, अधिक क्या कहें इस विषय के लागों के वर्णन करने में बड़े २ ज्ञानी पूर्वाचार्य तत्त्ववेत्ताओं ने अपने २ अन्यों में लेखनी को खूव ही दौड़ाया है, इस लिये चार घड़ी के तड़के उठने का सब मनुष्यों की अवश्य अभ्यास ढालना चाहिये परन्तु यह भी स्मरण रहे कि विना जरुदी सोये मनुष्य प्रात:-कारु चार वंबे कमी नहीं उठ सकता है, यदि कोई जल्दी सीये उक्त समय में उठ भी नावे तो इस से नाना प्रकार की हानियां होती हैं अर्थात् शरीर दुर्वछ होजाता है, शरीर में आलस जान पड़ता है, आंखों में जलन सी रहती है, शिर में दर्द रहता है तथा भोजन पर भी ठीक रुचि नहीं रहती है, इम लिये रात को नौ वा दश वने पर अवस्य

सो रहना चाहिये कि जिस से पातःकाल में विना दिक्षत के उठ सके, क्योंकि प्राणी मात्र को कम से कम छः घण्टे अवश्य सोना चाहिये, इस से कम सोने में मस्तक का रोग आदि अनेक विकार उत्पन्न होनाते हैं, परन्तु आठ घण्टे से अधिक भी नहीं सोना चाहिये क्योंकि आठ घंटे से अधिक सोने से शरीर में आलस्य वा मारीपन जान पड़ता है और कार्यों में भी हानि होने से दिखता घर लेती है, इसलिये उचित तो यही है कि रात को नौ या अधिक से अधिक दश बने पर अवश्य सो रहना चाहिये तथा प्रातःकाल चार घड़ी के तड़के अवश्य उठना चाहिये, यदि कारणवश्च चार घड़ी के तड़के का उठना कदाचित् न निभसके तो दो घड़ी के तड़के तो अवश्य उठना ही चाहिये।

मातःकाल उठते ही पहिले खरोदय का विचार करना चाहिये, यदि चन्द्र स्वर चलता हो तो वांयां पांव और सूर्य खर चलता हो तो दाहिना पांव ज़मीन पर रख कर थोड़ी देरतक विना ओठ हिलाये परमेष्ठी का स्मरण करना चाहिये, परन्तु यदि द्युप्ता स्वर चलता हो तो पलँग पर ही बैठे रहकर परमेष्ठी का ध्यान करना ठीक है क्योंकि यही समय योगाम्यास तथा ईश्वराराधन अथवा कठिन से कठिन विषयों के विचारने के लिये नियत है, देखो ! जितने द्युजन और ज्ञानी लोग आजतक हुए है वे सव ही पातःकाल उठते थे परन्तु कैसे पश्चात्ताप का विषय है कि इन सव अकथनीय लागों का कुछ भी विचार न कर भारतवासी जन करवटें ही लेते २ नी बजा देते हैं इसी का यह फल है कि वे नाना प्रकार के क्षेत्रों में सदा फँसे रहते है ॥

प्रातःकाल का वायुसेवन ॥

प्रातःकाल के वायु का सेवन करने से मनुष्य दृष्ट पुष्ट बना रहता है, दीर्घायु और चतुर होता है, उस की बुद्धि ऐसी तीक्ष्ण हो जाती है कि कठिन से कठिन आशय कोभी सहज में ही जान लेता है और सदा नीरोग बना रहता है, इसी (प्रातःकाल के) समय बस्ती के बाहर बागों की शोमा के देखने में बड़ा जानंद मिलता है, क्योंकि इसी समय वृक्षों से जो नवीन और खच्छ प्राणप्रद बायु निकलता है वह हवा के सेवन के लिये बाहर जाने वालों की श्वास के साथ उन के शरीर के भीतर जाता है जिस के प्रमाव से मन कली की मांति खिल जाता और शरीर प्रफुल्लित हो जाता है, इसलिये हे प्यारे आतु-गणों। हे सुजनो! और हे घर की लिसमयो! प्रातःकाल तड़के जागकर खच्छ वायु के सेवन का अभ्यास करों कि जिस से तुम को व्याधिजन्य क्षेत्र न सहने पढ़ें और सदा तुम्हारा मन प्रफुल्लित और शरीर नीरोग रहे, देखों। उक्त समय में बुद्धि भी निर्मल

[े] १-स्त्ररोदय के विषय में इसी अन्य के पाचर्वे अध्याय में वर्णन किया जावेगा, बहा इस का सम्पूर्ण विषय टेस छेना चाहिये ॥

रहती है इसिल्ये उसके द्वारा उभय लोकसम्बंधी कार्यों का विचार कर तुम अपने समय को लैकिक तथा पारलैकिक कार्यों में व्यय कर सफल कर सकते हो।

देखो ! प्रातःकाल चिड़ियां भी कैसी चुहचुहातीं, कोयलें भी कू कू करतीं मैना तोता आदि सब पक्षी भी मानु उस परमेष्ठी परमेश्वर के स्मरण में चिच लगाते और मनुष्यों को जगाते है, फिर कैसे शोक की बातहै कि-हम मनुष्य लोग सब से उत्तम होकर भी पक्षी पखेळ आदि से भी निषद्ध कार्य करें और उन के बगाने पर भी नैतन्य न हों।

प्रातःकाल का जलपान ॥

कपर कहे हुए लागों के अतिरिक्त प्रातःकाल के उठने से एक यह भी बड़ा लाभ हो सकता है कि—प्रातःकाल उठकर सूर्य के उदय से प्रथम थोड़ा सा शीतल जल पीने से बबासीर और प्रहणी लादि रोग नष्ट हो जाते है।

वैद्यक शास्त्रों में इस (प्रातःकाल के) समय में नार्क से जल पीने के लिये आज्ञा दी है क्योंकि नाक से जल पीने से बुद्धि तथा दृष्टि की वृद्धि होती है तथा पीनस आदि रोग जाते रहते हैं।

शौच अर्थात् मलमूत्र का लाग ॥

प्रातःकाल जागकर आधे मील की दूरी पर मैदान में मल का त्याग करने के लिये जाना चाहिये, देखो ! किसी अनुमवी ने कहा है कि—"ओढे सोवे ताजा खावे, पाव कोस मैदान में जावे ! तिस घर वैद्य कभी निर्दे आवे" इस लिये मैदान में जाकर निर्जीव साफ ज़मीनपर मस्तक को ढांक कर मल का त्याग करना चाहिये, दूसरे के किये हुए मलसूत्र पर मल मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से दाद खाज और धुज़ाख आदि रोगों के हो जाने का सम्भव है, मलमूत्र का त्याग करते समय वोलना नहीं

१-इस की यह विधि है कि-अगर लिखे अनुसार वाग्रत होकर तथा परमेष्ठी का ब्यान कर आठ अजलि, अर्थात आष सेर पानी नाक से निख्य पीना चाहिये, यदि नाक से न पिया आसके तो मुँह से ही पीना चाहिये, फिर आध घण्टे तक बार्चे कर बट से कैट जाना चाहिये परन्तु निद्रा नहीं लेनी चाहिये, फिर सल मूत्र के लाग के लिये जाना चाहिये, इस (जलपान) का गुण वैयक शाख़ों में वहुत ही अच्छा लिखा है अर्थात इस के सेनन से आयु बढ़ता है तथा हरस, शोष, दस्त, जीण ज्वर, पेट का रोग, कोड़, मेद, मृत्र का रोग, रक्तिकार, पित्तिकार तथा कान आंख गले और शिर का रोग मिटता है, पानी यथिप सामान्य परार्थ है अर्थात सव ही की प्रकृति के लिये अनुकूछ है परन्तु जो लोग समय विताकर अर्थात देरी कर उटते हैं उन लोगों के लिये तथा रात्रि में सानपान के लागी पुरुषों के लिये एव कफ और वायु के रोगों में सिमात में तथा ज्वर से प्रात.काल में जलपान नहीं करना चाहिये, रात्रि में जो खान पान के लागी पुरुष हैं उन को यह मी स्मरण रखना चाहिये कि जो आम रात्रि में सानपान के लाग में हैं उस लामका हजार वा माग भी प्रात काल के जलपान में नहीं हैं, इसलिये जो रात के खान पान के लागी नहीं हैं उन को उपापान (प्रात काल से जलपीना) कर्त्तन्य है।

चाहिये, क्योंकि इस समय बोलने से दुर्गन्धि मुख में प्रविष्ट होकर रोगों का कारण होती है तथा दूसरी तरफ घ्यान होने से मलादि की शुद्धि मी ठीक रीतिसे नहीं होती है, मलमूत्र का त्याग बहुत वल करके नहीं करना चाहिये।

मरु का त्याग करने के पश्चात् गुदा और र्लंग आदि अंगों को जल से खूब धोकर साफं करना चाहिये।

जो मनुष्य स्वोंदय के पीछे (दिन चढने पर) पाखाने जाते है उन की बुद्धि मलीन भीर मस्तक न्यून बलवाला हो जाता है तथा शरीर में भी नाना प्रकार के रोग हो जाते है।

बहुत से मूर्ख मनुष्य आलस्य आदि में फँस कर मल मूत्र आदि के वेग को रोक लेते हैं, यह बड़ी हानिकारक वात है, क्योंकि-इस से मूत्रकृच्ळ् शिरोरोग तथा पेह पीठ और पेट आदि में दर्द होने लगता है, केवल इतना ही नहीं किन्तु मल के रोकने से अनेक खावर आदि रोगों की उत्पत्ति होती है, इस लिये मल और मूत्र के वेग को मूल कर भी नहीं रोकना चाहिये, इसी प्रकार छींक डकार हिचकी और अपान वायु औदि के वेग को भी नहीं रोकना चाहिये, क्योंकि इन के वेग को रोकने से भी अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है।

मलमूत्र के त्याग करने के पीछे मिट्टी और जल से हाथ और पांनों को भी खूब स्वच्छता के साथ घोकर शुद्ध कर लेना चाहिये ॥

्र मुखशुद्धि ॥

यदि पत्याख्यान हो तो उस की समाप्ति होने पर गुख की गुद्धि के लिये नीम, खैर, बब्ल, आक, पियानांस, आमळा, सिरोहा, करक्ष, बट, महुआ और मौलसिरी आदि दूष बाले हुशों की दाँतीन करे, दाँतीन एक बालिख लंबी और अंगुली के बरावर मोटी होनी चाहिये, उसे की छाल में कीड़ा या कोई विकार नहीं होना चाहिये तथा वह गाँठ दार भी नहीं होनी चाहिये, दाँतीन करने के पीछे सैंबानमक, सोंठ और अना हुआ जीरा, इन तीनोंको पीस तथा कपड़ छान कर रक्से हुए मझन से दाँतों को माँजना चाहिये, क्योंकि जो मनुज्य दाँतीन नहीं करते है उन् के ग्रुह में दुर्गन्य आने लगती है और जो प्रतिदिन

१-सूर्य का उदय हो जाने से पेट मे गर्मी समाकर मल शुष्क हो जाता है उसके शुष्क होने से मगज में खुरकी और गर्मी पहुँचती है, इसलिये मस्तक न्यून चलवाला होवाता है ॥

२-भूख, प्यास, छीक, हकार, मल का बेग, भूत्र का वेग, अपानवायुका वेग, जम्मा (जमुहाई) श्रांसू, वमन, चीर्य (कामेच्छा), श्रांस और निव्नं, वे १३ वेग क्षरीर में खामाविक उत्पन्न होते हैं, इसिल्ये इन के वेग को रोकना नहीं चाहियें, क्योंकि इन वेगों के रोकने से उदावर्त्त आदि अनेक रोग होते हैं, (देखो वैद्यक प्रन्यों में उदावर्त्त रोग का अकरण)॥

मझन नहीं लगाते है उन के दाँतों में नाना प्रकार के रोग हो जाते है अर्थात् कभी २ वादी के कारण मसूढे फूल जाते हैं, कभी २ रुघिर निकलने लगता है और कभी २ दाँतों में दर्द भी होता है, दाँतों के मलीन होने से मुख की छिन निगड़ जाती है तथा मुख में दुर्गन्य आने से सम्य मण्डली में (नैठने से) निन्दा होती है, इस लिये दाँतोन तथा मझन का सर्वदा सेनन करना चाहिये, तत्पश्चात् खच्छ जल से मुख को अच्छे प्रकार से साफ करना चाहिये परन्तु नेत्रों को गर्म जल से कभी नहीं घोना चाहिये क्योंकि गर्म जल नेत्रों को हानि पहुँचाता है।

द्राँतीन करने का निपेध — अजीर्ण, वमन, दमा, ज्वर, लक्षवा, अधिक प्यास, मुखपाक, इदयरोग, शीर्थ रोग, कर्णरोग, कंठरोग, ओष्ठरोग, जिह्नारोग, हिचकी और खांसी की वीभारीवाले को तथा नशे में दाँतोन नहीं करना चाहिये॥

दाँतों के लिये हानिकारक कार्य — गर्म पानी से कुछे करना, अधिक गर्म रोटी को खाना, अधिक वर्फ का खाना या जल के साथ पीना और गर्म- चीन खाकर शीव ही ठंडी चीज़ का खाना या पीना, ये सब कार्य दांतों को शीव ही विगाइ देते है तथा कमज़ोर कर देते है इस लिये इन से बचना चाहिये॥

व्यायाम अंथीत् कसरत ॥

न्यायाम भी आरोग्यता के रखने में एक आवश्यक कार्य है, परन्तु शोक वा पश्चात्ताप का विषय है कि भारत से इस की प्रथा बहुत कुछ तो उठ गई तथा उठती चली जाती है, उस में भी हमारे मारवाड़ देश में अर्थात् मारवाड़ के निवासी जनसमूह में तो इस की प्रथा विलक्क ही जाती रही।

आजकल देखा जाता है कि सद्ग पुरुप तो इस का नामतक नहीं लेते है किन्तु ने ऐसे (व्यायाम करनेवाले) जनों को असम्य (नाशाइस्तह) बतलाते और उन्हें तुच्छ हिए से देखते हैं, केवल यही कारण है कि—जिस से मितिदिन इस का प्रचार कम ही होता चला जाता है, देखो ! एक समय इस आर्यावर्ष देश में ऐसा या कि जिस में महानिर के पिता सिद्धार्थ राजा जैसे पुरुष भी इस अमृतरूप व्यायाम का सेवन करते ये अर्थात् उस समय में यह आरोग्यता के सर्व उपायों में प्रधान और शिरोमणि उपाय गिना जाता या और उस समय के लोग "एक तन दुरुस्ती हजार नियामत" इस वाक्य के तत्त्व को अच्छे प्रकार से समझते थे।

विचार कर देखों तो माछम होगा कि मनुष्य के शरीर की वनावट घड़ी अथवा दूसरे यन्त्रों के समान है, यदि घड़ी को असावघानी से पड़ी रहने दें, कभी न झाड़ें फूंकें और

१-इस विपय का पूरा वर्णन करपसूत्र की खक्मीवक्षभी टीका में किया गया है, वहा देख ठेना चाहिये॥

न उस के पुर्जों को साफ करावें तो बोड़े ही दिनों में वह बहुमूल्य घड़ी निकम्मी हो जावेगी, उस के सब पुर्जे विगड़ जावेंगे और जिस प्रयोजन के लिये वह बनाई गई है वह कदापि सिद्ध न होगा, बस ठीक बही दशा मनुष्य के शरीर की भी है, देखों! यदि शरीर को खच्छ और सुबरा बनाये रहें, उस को उमंग और साहस में नियुक्त रक्खें तथा खास्थ्य रक्षा पर घ्यान देते रहें तो सम्पूर्ण शरीर का बल यथावत बना रहेगा और शरीरस्थ प्रत्येक वस्तु जिस कार्य के लिये बनी हुई है उस से वह कार्य ठीक रीति से होता रहेगा परन्तु बदि उपर लिखी बातों का सेवन न किया जावे तो शरीरस्थ सब वस्तुयें निकम्मी हो जावेंगी और खामाविक नियमानुकूछ रचना के प्रतिकृत्र फल दीखने छगेगा अर्थात् जिन कार्यों के लिये यह मनुष्य का शरीर बना है वे कार्य उस से कदापि सिद्ध नहीं होंगे।

घड़ी के पुनों में तेल के पहुँचने के समान शरीर के पुनों में (अवयवों में) रक्त (खून) पहुँचने की आवश्यकता है, अर्थात् मनुष्य का जीवन रक्त के चलने फिरने पर निर्मर है, जिस प्रकार कूर्चिका (कुची) आदि के द्वारा घड़ी के पुनों में तेल पहुँचाया जाता है उसी प्रकार ज्यायाम के द्वारा शरीर के सब अवयवों में रक्त पहुँचाया जाता है अर्थात् ज्यायाम ही एक ऐसी बस्तु है कि जो रक्त की चाल को तेन बना कर सब अवयवों में यथावत् रक्त को पहुँचा देती है।

जिस मकार पानी किसी ऐसे इक्ष को भी जो शीष्ट सुल जानेवाळा है फिर हरा मरा कर देता है उसी मकार शारीरिक ज्यायाम भी अरीर को हरा मरा रखता है अर्थात शारीर के किसी माग को निकन्मा नहीं होने देता है, इसिल्ये सिद्ध है कि—शारीरिक वल और उस की हटता के रहने के लिये ज्यायाम की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि रुधिर की चाल को ठीक रखनेवाला केवल ज्यायाम है और मनुष्य के शरीर में रुधिर की चाल उस नहर के पानी के समान है जो कि किसी बाग में हर पटरी में होकर निकलता हुआ सम्पूर्ण हक्षों की जहों में पहुँच कर तमाम बाग को सींच कर प्रकुलित करता है, मिय पाठक गण! देखों! उस बाग में जितने हरे मरे इक्ष और रंग विरंगे पुष्प अपनी छिव को दिखलाते है और नाना माँति के कल अपनी र झन्दरता से मन को मोहित करते हैं वह सब उसी पानी की महिमा है, यदि उस की नालियां न खोली जातीं तो सम्पूर्ण वाग के इस और बेल बूटे झरझा जाते तथा फूल फल झम्हलाकर शुष्क हो जाते कि जिस से उस आनंदवाग में उदासी बरसने लगती और मनुष्यों के नेत्रों को जो उन के विलोकन करने अर्थात देखने से तरावट व झल मिलता है उस के खम में भी दर्शन नही होते, ठीक यही दशा शरीररूपी बाग की रुधिररूपी पानी के साथ में समझनी चाहिये, झजनो ! सोचो तो सही कि—इसी ज्यायाम के वल से पाचीन भारतवासी पुरुष नीरोग, झजनो ! सोचो तो सही कि—इसी ज्यायाम के वल से पाचीन भारतवासी पुरुष नीरोग,

सुडोल, वलवात् और योद्धा हो गये है कि जिन की कीर्ति आजतक गाई जाती है, क्या किसी ने श्रीकृष्ण, राँम, हनुमान्, मीमसेन, अर्जुन और वालि आदि योद्धाओं का नाम नहीं सुना है कि—जिन की ललकार से सिंह भी काँसों दूर भागते थे, केवल इसी न्यायाम का प्रताप था कि भारतवासियों ने समस्त मूमण्डल को अपने आधीन कर लिया था परन्तु वर्तमान समय में इस अभागे भारत में उस वीरशक्ति का केवल नाम ही रह गया है।

बहत से लोग यह कहते हैं कि-हमें क्या योद्धा वन कर किसी देश को जीतना है वा पहलवान बन कर किसी से मल्लयुद्ध (कुक्ती) करना है जो हम व्यायाम के परिश्रम को उठावें इत्यादि, परन्त यह उन की बही मारी मूळ है क्योंकि देखी! न्यायाम केवल इसी लिये नहीं किया जाता है कि-मनुष्य योद्धा वा पहलवान बने, किन्तु अभी कह चुके है कि-इस से रुधिर की गति के ठीक रहने से आरोग्यता वनी रहती है और भारोग्यता की अभिलाषा मनुष्यमात्र को क्या किन्ता आणिमात्र को होती है, यदि इस में आरोग्यता का गुण न होता तो प्राचीन बन इस का इतना आदर कभी न करते जितंना कि उन्होंने किया है, सत्य पूछो तो ज्यायाम ही मनुष्य का जीवन रूप है अर्थात् व्यायाम के विना मनुष्य का जीवन कदापि सस्थिर दशा में नहीं रह सकता है, क्योंकि देखी ! इस के अभ्यास से ही अन शीघ्र पच जाता है, मूख अच्छे प्रकार से लगती है, मनुष्य शर्दी गर्भी का सहन कर सकता है, वीर्य सम्पूर्ण शरीर में रम जाता है जिससे शरीर शोमायमान और बल्युक्त हो जाता है. इन बातों के सिवाय इस के अस्यास से ये भी लाम होते है कि-शरीर में जो मेद की बृद्धि और स्थलता हो जाती है वह सब जाती रहती है, दुर्वे मनुष्य किसी कदर मोटा हो जाता है, कसरती मनुष्य के शरीर में प्रति-समय उत्साह बना रहता है और वह निर्भय हो जाता है अर्थात उस को किसी स्थान में भी जाने में मय नहीं लगता है, देखो ! व्यायामी पुरुष पहाड़, खोह, दुर्ग, जंगल और संप्रामादि भयंकर स्थानों में बेखटके चले जाते है और अपने मन के मनोरशों को सिद्ध कर दिखराते और गृहकार्यों को सगमता से कर हेते है और चोर आदि को घर में नहीं धाने देते है, बल्कि सत्य तो यह है कि-चोर उस मार्ग होकर नहीं निकलते हैं जहां व्यायामी पुरुष रहता है, इस के अभ्यासी पुरुष को शीघ बुढापा तथा रोगादि नहीं होते हैं। इस के करने से क़रूप मनुष्य भी अच्छे और सडील जान पड़ते है, परन्त जो मनुष्य दिन में सोते, ज्यायाम नहीं करते तथा दिनसर आरूस्य में पढ़े रहते है उन को अवश्य भेमेह आदि रोग हो जाते हैं. इस लिये इन सब बातों को विचार कर सब मनुष्यों को

¹⁻इन महात्मा का वर्णन देखना हो तो कल्किकाल सर्वज्ञ जैनाचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिकृत सरकृत रामायण को देखो ॥

अवस्य खर्य व्यायाम करना चाहिये तथा अपने सन्तानों को भी प्रतिदिन व्यायाम का अभ्यास कराना चाहिये जिस से इस भारत में पूर्ववत् वीरशक्ति पुनः आ जावे।

व्यायाम करने में सदा देश काल और श्वरीर का बल भी देखना उचित है क्योंकि इस से विपरीत दश्चामें रोग हो जाते हैं।

कसरत करने के पीछे तुरंत पानी नहीं पीना चाहिये, किन्तु एक दो घण्टे के पीछे कुछ बलदायक मोजन का करना आवश्यक है जैसे—मिश्रीसंयुक्त गायका दूघ वा बादाम की कतली आदि, अथवा अन्य किसी प्रकार के पुष्टिकारक छड्डू आदि जो कि देश काल और प्रकृति के अनुकूल हों खाने चाहियें।

ज्यायास का निषेध — मिश्रित वातिषत्त रोगी, बालक, वृद्ध और अजीणीं मनु-ण्यों को कसरत नहीं करनी चाहिये, शीतकाल और वसन्तऋतु में अच्छे प्रकार से तथा अन्य ऋतुओं में थोड़ा ज्यायाम करना योग्य है, अति ज्यायाम मी नहीं करना चाहिये क्योंकि अत्यन्त ज्यायाम के करने से तृषा, क्षय, तमक, श्वास, रक्तिपत्त, श्रम, ग्लॉन, कास, ज्वर और छोदें आदि रोग हो जाते हैं॥

तैलमर्दन ॥

तेल का मर्दन करना भी एक प्रकार की कसरत है तथा लामदायक भी है इसलिये प्रतिदिन प्रातःकाल में खान करने से पहिले तेल की मालिश करानी चाहिये, यदि कसरत करने वाला पुरुष कसरत करने के एक घंटे पीछे शरीर में तेल का मर्दन कर वाया करे तो इस के गुणों का पार नहीं है, तेल के मर्दन के समय में इस बात का भी स्मरण रहना चाहिये कि—तेल की मालिश सब से अधिक पैरों में करानी चाहिये, क्योंकि पैरों में तेल की अच्छी तरह से मालिश कराने से शरीर में अधिक वल आता है, तेल के मर्दन के गुण इस प्रकार हैं:—

१-तेल की मालिश नीरोगता और दीघीयु की करने वाली तथा ताकत को बढाने

वाली है।

२—इस से चमड़ी छहावनी हो जाती है तथा चमड़ी का रूखापन खोर खसरा जाता रहता है तथा जन्य भी चमड़ी के नाना प्रकार के रोग जाते रहते हैं और चमड़ी में नया रोग पैदा नहीं होने पाता है।

३-शरीर के साथे नरम और मज़बूत हो जाते हैं।

8-रस और खून के बंद हुए मार्ग खुळ जाते है।

५-जमा हुआ खून गतिमान् होकर श्ररीर में फिरने छगता है।

६-खून में मिछी हुई बायु के दूर हो जाने से बहुत से आनेवाछे रोग रुक जाते हैं।

⁹⁻थोड़े दिनों तक निरन्तर चेल की मालिश कराने से उस का पश्चदा आप ही माखम होने लगता है।

७-जीर्णज्वर तथा ताने खून से तपाहुआ शरीर ठंढा पड़ जाता है।

८-हवा में उड़ते हुए ज़हरीले तथा चेपी (उड़कर लगनेवाले) रोगोंके जन्तु तथा उन के परमाणु शरीर में असर नहीं कर सकते है।

९-नित्य कसरत और तेल का मर्दन करनेवाले पुरुष की ताकत और कान्ति बढ़ती है अर्थात् पुरुषार्थ का शाप्त होता है।

१०—ऋतु तथा अपनी प्रकृति के अनुसार तेल में मसाले डालकर तैयार करके उस तेल की मालिश कराई जावे तो बहुत ही फायदा होता है, तेल के बनाने की मुख्य चार रीतियां हैं, उन में से प्रथम रीति यह है कि—पावालयंत्र से लौंग मिलीवा और जमालगोटे का रसनिकाल कर तेल में डाल कर वह तेल पकाया जावे, दूसरी रीति यह है कि—तेल में डालने की यथोचित दवाहयों को उकाल कर उन का रस निकालकर तेल में डाल के वह (तेल) पकाया जावे, तीसरी रीति यह है कि—घाणी में डालकर फूलों की पुट देकर चमेली और मोगरे आदि का तेल बनाया जावे तथा चौथी रीति यह है कि—स्ते ससालों को कूट कर जल में आई (गीला) कर तेल में डाल कर मिट्टी के वर्तन का मुख वंव कर दिन में धूप में रक्खे तथा रात को अन्दर रक्खे तथा एक महीने के बाद छान कर काम में लावे।

वैद्यक ज्ञालों में दबाइयों के साथ में सब रोगों को मिटाने के लिये न्यारे २ तैल और घी के बनाने की विधिया लिखी है, वे सब विधियां आवश्यकता के अनुसार उन्हीं प्रन्थों में देख लेनी चाहियें, प्रन्थ के विस्तार के भय से बहां उन का वर्णन नहीं करते हैं।

तेलमर्दन की प्रथा मलवारदेश तथा वंगदेश (पूर्व) में अभीतक जारी है परन्तु अन्य देशों में इस की प्रथा बहुत ही कम दीखती है यह बड़े शोक की बात है, इस लिये छजन पुरुषों को इस विषय में अवस्थ ध्यान देना चाहिये।

दना का जो तेळ बनाया जाता है उस का असर केवळ चार महीने तक रहता है पीछे वह हीनसत्त्व होजाताहै अर्थात् शास्त्र में कहा हुआ उस का वह गुण नही रहता है।

सामान्यतया तिली का सादा तेल सब के लिये फायदेमन्द होता है तथा शीतकाल में सरसों का तेल फायदेमन्द है।

शरीर में मर्दन कराने के सिवाय तेल को शिर में डाल कर तालुए में रमाना तथा कान में और नाक में भी डालना नुरूरी है, यदि सब शरीर की मालिश प्रतिदिन न बन

१-परन्तु मिलाने आदि वस्तुओं का तेल निकालते समय पूरी होशियारी रखनी चाहिये ॥

रे-छलसा शाविका के चरित्र में छक्षपाक तैछ का वर्णन आया है तथा कल्पसूत्र की टीका में राजा सिद्धार्थ की माछिश के विषय में शतपाक सहस्रपाक और छक्षपाक तैलों का वर्णन आया है तथा उन का ग्रण भी वर्णन किया गया है ॥

सके तो पैरों की पींडियों और हाथ पैरों के तलवों में तो अवस्य मसलाना चाहिये तथा शिर और कान में डालना तथा मसलाना चाहिये, यदि प्रतिदिन तेल का मर्दन न बन सके तो अठवाड़े में तो एकवार अवस्य मर्दन करवाना चाहिये और यदि यह भी न बन सके तो शीतकाल में तो अवस्य इस का मर्दन कर वाना ही चाहिये।

तेल का मर्दन कराने के बाद चने के आटे से अथवा आंवले के चूर्ण से चिकनाहट

को दूर कर देना चाहिये॥

सुगन्धित तैलों के गुण॥

चमेली का तेल-इस की वासीर उंदी और तर है।

हिने का तेल-यह गर्भ होता है, इस लिये जिन की वादीकी प्रकृति होवे इस को लगाया करें, चौमासेमें भी इस का लगाना लाभदायक है।

अरगजे का तेल —यह गर्भ होता है तथा उप्रगन्य होता है अर्थात् इस की खुशबू तीन दिनतक केशों में बनी रहती है।

गुलाय का तेल --- यह ठंढा होता है तथा जितनी अगन्य इस में होती है जतनी दूसरे में नहीं होती है, इस की खुशबू ठंढी और तर होती है।

केवड़े का तेल-यह बहुत उत्तम हृदयमिय और ठंढा होता है।

मोगरे का तेल-यह ठंडा और तर है।

नीं बूका लेल-यह ठंढा होता है तथा पित्तकी मक्कतिबालों के लिये फायदे-मन्दें है ॥

स्नान ॥

तैलादि के मर्दन के पीछे खान करना चाहिये, खान करने से गर्मी का रोग, इदय का ताप, क्षिर का कोप और श्ररीर की दुर्गन्य दूर होकर कान्ति तेल बल और प्रकाश बढ़ता है, क्षुधा अच्छे प्रकार से लगती है, बुद्धि चैतन्य हो जाती है, आयु की बृद्धि होती है, सम्पूर्ण शरीर को आराम माळम पड़ता है, निर्वलता तथा मार्ग का खेद दूर होता है और

⁹⁻इन सब तैलों को उत्तम बनाने की रीति को वे ही जानते हैं जो प्रतिसमय इन को बनाया करते हैं, क्योंकि तिलों मे फूलों को बसा कर नड़े परिश्रम से फुलेला बनाया जाता है, दो रुपये सेर के मावका छुग-नियत तैल साधारण होता है, तीन बार पाच सात और दश रुपये सेर के माव का भी लेगा चाहो तो मिल सकता है, परन्तु उस की ठीक पहिचान का करना प्रत्येक पुरुष का काम नही है अर्थात बहुत कठिन हैं. यदि सेरमर चमेली के तेल में एक तीले भर केमड़े का अतर हाल दिया जावे तो वह तेल बहुत खशबू दार हो जावेगा तथा उस से सारा मकान महंक उठेगा, इसी प्रकार सेरमर चमेली के तेल में एक तीले भर चमेली का अतर, हिने के तेल में हिने का अतर अरगले के तेल में अरगले का अतर, प्रलाव के तेल में गुळाव का अतर और मोगरे के तेल में मोगरे का अतर हाल दिया जावे तो वे तेल असन्त ही खश-बूदार हो जावेगे॥

आलस्य पास तक नहीं आने पाता है, देखों ! इस बात को तो सन ही लोग जानते हैं कि—शरीर में सहसों छिद्र हैं जिन में रोम जमे हुए है और ने निष्प्रयोजन नहीं है किन्तु सार्थक हैं अर्थीत इन्हीं छिद्रों में से शरीर के मीतर का पानी (पसीना) तथा दुर्गन्यित वायु निकलता है और वाहर से उत्तम वायु शरीर के मीतर जाता है, इस लिये जब मनुष्य सान करता रहता है तब ने सन छिद्र खुंळे और साफ रहते हैं परन्तु स्नान न करने से मैल आदि के द्वारा जन ये सन छिद्र बंद हो जाते है तन ऊपर कही हुई किया भी नहीं होती है, इस किया के वंद हो जाने से दाद, खान, फोड़ा और फ़ंसी आदि रोग होकर अनेक मकार का क्रेश देते हैं, इस लिये शरीर के खच्छ रहने के लिये मितिदन खयं खान करना योग्य है तथा अपने वालकों को सी नित्य सान कराना उचित है।

स्नान करने में निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखना चाहिये:---

१-शिर पर बहुत गर्म पानी कभी नहीं डाङना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से नेत्रोंको हानि पहुँचती है।

र-नीमार आदमी को तथा उंचर के जाने के बाद जबतक शरीर में ताकत न आवे तबंतक सान नहीं करना चाहिये, उस में भी ठंढे जल से तो मूल कर भी सान नहीं करना चाहिये।

१—पीमार और निर्वेळपुरुष को मुखे पेट नहीं नहाना चाहिये अर्थात् चाह और दूष जादि का नास्ता कर एक घंटे के पीछे नहाना चाहिये ।

8-शिर पर ठंढा जल अथवा कुए के जल के समान गुनगुना जल, शिर के नीचे के भड़ पर सामान्य गर्म जल और कमर के नीचे के भाग पर झहाता हुआ तेज़ गर्म जल ढालना चाहिये।

५-पित की प्रकृतिवाले जवान आदमी को उंदे पानी से नहाना हानि नहीं करता है किन्तु लाम करता है।

६—सामान्यतया बोड़े गर्म जल से खान करना प्रायः सब ही के अनुकूल आता है। ७—यदि गर्म पानी से खान करना हो तो जहां बाहर की हवा न लगे ऐसे बंद मकानमें कन्धों से खान करना उत्तम है, परन्तु इस बात का ठीक २ प्रवन्न करना सामान्य बनों के लिये प्रायः असम्प्रवसा है, इस लिये साधारण पुरुषों को यही उचित है कि—सदा ग्रीतल जल से ही खान करने का अम्यास डालें।

८-जहांतक हो सके स्नान के छिये ताना जल छेना चाहिये क्योंकि ताने जल से स्नान करने से बहुत लाग होता है परन्तु वह ताना जल भी स्वच्छ होना चाहिये।

९-कान के निषय में यह अवश्य घ्यान में रखना चाहिये कि तरुण तथा नीरोग पुरुषों को शीतळ जळ से तथा बुद्दे दुर्वळ और रोगी जनों को गुनगुने जळ से स्नान करना चाहिये।

- १०-श्ररीर की पीठी उबटन वा सार्बुन लगा कर रगड़ र के खूव घोना चाहिये पीछे सान करना चाहिये।
- . १९—सान करने के पृथ्वात् मोटे निर्मेळ कपेंड़े से शरीर को खूव पोंछना चाहिथे कि जिस से सम्पूर्ण शरीर के किसी अंग में तरी न रहे।
 - १२-गर्मिणी स्त्री को तेल लगाकर स्नान नहीं करना चाहिये।
- १२-नेत्ररोग, मुखरोग, कर्णरोग, अतीसार, पीनस तथा ज्वर आदि रोगवालों को ज्ञान नहीं करना चाहिये।
- १४—सान करने से प्रथम अथवा प्रातःकाछ में नेत्रों में ठंढे पानी के छीटे देकर घोना बहुत लामदायक है।

१५—सान करने के बाद घंटे दो घण्टेतक द्रव्यमान से ईश्वर की भक्ति को ध्यान छगांकर करना चाहिये, यदि अधिक न बन सके तो एक सामायिक को तो शास्त्रोक्त नियमानुसार गृहस्यों को अवश्य करना ही चाहिये, क्योंकि को पुरुष इतना भी नहीं करता है वह गृहस्थाश्रम की पद्धिमें नहीं गिना जा सकता है अर्थात् वह गृहस्थ नहीं है किन्तु उसे इस (गृहस्थ) आश्रम से भी अष्ट और पतित समझना चाहिये॥

पैर धोना ॥

पैरों के घोने से थकावट जाती रहती है, पैरों का मैक निकल जाने से स्वच्छती था जाती है, नेत्रों को तरावट तथा मन को आनंद प्राप्त होता है, इस फारण जब कहीं से चलकर आया हो वा जब आवश्यकता हो तब पैरों को घोकर पोंछ डालना चाहिये, यि सोते समय पैर घोकर अथन करे तो नींद अच्छे प्रकार से आजाती है।।

भोजन ॥

. प्यारे मित्रो ! यह सब ही जानते है कि—अब के ही सोजन से प्राणी बढ़ते और जीवित रहते हैं इस के विना न तो प्राणी जीवित ही रह सकते हैं और न कुछ कर ही सकते हैं, इसी छिये चतुर पुरुषों ने कहा है कि—प्राण अन्नमय है यद्यपि मोजन का रिवाज मिन्न २ देशों के मिन्न २ पुरुषों का मिन्न २ है इसिछिये यहां पर उस के छिखने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है तथापि यहां पर संक्षेप से शासीय नियम के अनुसार सामान्यतया सर्व हितकारी जो मोजन है उस का वर्णन किया जाता है:—

१—इस वस को अंगोछा कहते हैं, क्योंकि इस से अंग पोंछा जाता है अंगोछा प्रायः गजी का अच्छा

होता है ॥

^{9—}स्राजकल बहुत से शौकीन लोग चर्चा से वने हुए सुशब्दार साबुन को लगा कर लान करते हैं परन्तु चर्म से अष्ट होने की तरफ विलक्षल ख्याल नहीं करते हैं, यदि साबुन लगाकर नहाना हो तो उत्तम देशी साबुन लगाकर नहाना चाहिये, क्योंकि देशी साबुन में चर्चा नहीं होती है ॥

जो मोजन खच्छ और शास्त्रीय नियम से बना हुआ हो, वळ बुद्धि आरोग्यता और आयु का बढ़ानेवाळा तथा सात्त्रिकी (सतो गुण से युक्त) हो, वही मोजन करना चाहिये, जो लोग ऐसा करते है वे इस जन्म और पर जन्म में धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप मनुष्य जन्म के चारों फलों को प्राप्त कर लेते है और वास्त्रव में जो पदार्थ उक्त-गुणों से युक्त है उन्ही पदार्थों को मक्ष्य भी कहा गया है, परन्तु जिस मोजन से मन बुद्धि शरीर और धातुओं में विषमता हो उस को अमक्ष्य कहते है, इसी कारण अमक्ष्य मोजन की आजा शास्त्रकारों ने नहीं दी है।

मोनन मुख्यतया तीन प्रकार का होता है निस का वर्णन इस प्रकार है:---

· १—जो मोजन अवस्थां, चित्त की स्थिरता, वीर्य, उत्साह, वळ, आरोग्यता और उप-श्रमात्मक (श्रान्तिस्क्ष्य) युख का बढ़ाने वाळा, रसयुक्त, कोमळ और तर हो, जिस का रस चिरकाळतक ठहरनेवाळा हो तथा जिस के देखने से मन प्रसन्न हो, उस मोजन को सात्त्विक मोजन कहते हैं अर्थात् इस प्रकार के मोजन के खाने से सात्त्विक माव उत्पन्न होता है।

२-जो मोजन अति चर्परा, खद्दा, खारी, गर्म, तीक्ष्ण, रूख और दाहकारी है, उस को राजसी मोजन कहते हैं अर्थात् इस प्रकार के मोजन के खाने से राजसी भाव उत्पन्न होता है।

े १ — जो भोजन बहुत काल का बना हुआ हो, अतिठंडा, रूखा, दुर्गनिव युक्त, वांसा तथा जूंठा हो, उस भोजन को तामसी भोजन कहा है अर्थात् इस प्रकार के भोजन के साने से तमोगुणी भाव उत्पन्न होता है, इस प्रकार के भोजन को शाखों में अमस्य कहा है, इस प्रकार के निषिद्ध भोजन के सेवन से विश्वविका आदि रोग भी हो जाते है ॥

मोजन के नियम ॥

१—मोजन बनाने का खान (रसोईघर) हमेशा साफ रहना चाहिये तथा यह खान जन्य खानों से अलग होना चाहिये अर्थात् मोजन बनाने की जगह, मोजन करने की जगह, बाटा दाल आदि सामान रखने की जगह, पानी रखने की जगह, सोने की जगह, बैठने की जगह, धर्मध्यान करने की जगह तथा खान करने की जगह, ये सब खान अलग २ होने चाहिये तथा इन खानों में चांदनी भी बांधना चाहिये कि जिस से मकड़ी और गिलहरी आदि जहरीले जानवरों की लार और मल मूत्र आदि के गिरने से पैदा होनेवाले अनेक रोगों से रक्षा रहे।

र-रसोई बनाने के सब बर्तन साफ रहने चाहियें, पीतल और तांने आदि धातु के वासन में सटाई की चीन विलक्षल नहीं बनानी चाहिये और न रसनी चाहिये, मिट्टी का वार्सन सब से उत्तम होता है, क्योंकि इस में सटाई आदि किसी प्रकार की कोई वस्तु कभी नहीं विगड़ती है।

२—भोजन का बनानेवाला (रसोइया) वैद्यक शास्त्र के नियमों का जाननेवाला तथा उसी नियम से भोजन के सब पदार्थों का बनानेवाला होना चाहिये, सामान्यतया रसोई बनाने का कार्य गृहस्यों में खियों के ही आधीन होता है इसलिये खियों को भोजन बनाने का ज्ञान अच्छे प्रकार से होना आवश्यक है।

9—भोजन करने का स्थान भोजन बनाने के स्थान से अलग और हवादार होना चाहिये, उस को अच्छे प्रकार से सफेदी से पुतवाते रहना चाहिये तथा उस में नाना प्रकार की प्रगन्धित मनोहर और अनोखी वस्तुयें रक्खी रहनी चाहियें जिन के देखने से नेत्रों को आनंद तथा मन को हर्ष प्राप्त होने ।

५—मोजन बनाने के सब पदार्थ (आटा दाल और मसाले आदि) अच्छी तरह चुने बीने (साफ किये हुए) हों तथा ऋतु के अनुकूल हों और उन पदार्थों को ऐसा पकाना चाहिये कि न तो अधकचे रहें और न विशेष जलने पानें, क्योंकि अधकचा तथा जला हुआ भोजन बहुत हानि करता है, उस में भी मन्दाभिवालों के लिये तो उक्त (अध कचा तथा जलाहुआ) भोजन विष के समान है।

६—मोजन सवा नियत समय पर फरना उचित है, क्योंकि ऐसा फरने से मोजन ठीक समय पर पचकर भूख को उगाता है, मोजन फरने के बाद पांच बंटे तक फिर मोजन नहीं करना चाहिये, एवं अघूरी मूख में तथा अजीर्थ में भी मोजन नहीं करना चाहिये, इस के सिवाय हैजा और सिक्षपात में तो दोष के पके बिना (जबतक वातादि दोष पक नजावें तबतक) मोजन करना मानो मौत की निशानी है, अच्छी तरह से भूख उगने के बाद भूख को मारना भी नहीं चौहिये, क्योंकि भूख उगने के बाद न खाने से विना ईंचन की अग्नि के समान शरीर की अग्नि बुझ जाती है, इस लिये मितिदन नियमित समय पर ही मोजन करना अविज्यम है।

७—मोजन करने के समय मन प्रसन्न रहे ऐसा यह करना चाहिये अर्थात् मन में लेद ग्लानि और कोध आदि विकार किसी प्रकार नहीं होने चौहियें, चारों ओर से गोल तथा एक गज़ लम्बी और एक बालिक्त ऊंची एक चौकी को सामने रख कर उस के ऊपर यथायोग्य सम्पूर्ण पदार्थों से सिज्जित बाल को रख कर मुनि को देने की भावना भावे, पश्चात् आनंदपूर्वक मोजन करे, मोजन में प्रथम सेंघा नमक लगा कर अदरल के दश शीस टुकड़े खाना बहुत अच्छा है, भोजन भी सीचे आसन से बैठ कर करना चाहिये

१--कपर कही हुई दोनों बातों में सावघान रहना चाहिये नहीं तो अवस्य हानि होती है ॥

२—जैसे किसी करुड़ीमें कमी हुई अभि को जब बूसरी अकडी नहीं मिलती है तब वह अभि उस करुडी को जला कर हुझ जाती है, इसी प्रकार से आहार के न मिलने से धारीर की अभि हुझ जाती है।

३-खेद आदि को उत्पन्न करनेवाली वस्तु को नहीं देखना चाहिये और न कोई ऐसी वात सुननी वा करनी चाडिये ॥

भर्यात् झुक कर नहीं करना चाहिये, क्योंकि झुक कर मोजन करने से पेठ के दवे रहने के कारण पकाशय की घमनी निर्वे हो जाती है और उस के निर्वे होने से भोजन ठीक समय पर नहीं पचता है इस छिये सदा छाती को उठा कर मोजन करना चाहिये।

८—मोजन करते समय न तो श्रांत निलम्ब और न श्रांत शीघता ही करनी चाहिये सर्थात् अच्छी तरह से धीरे २ चना २ कर खाना चाहिये, क्यों कि अच्छी तरह से धीरे २ चना २ कर खाना चाहिये, क्यों कि अच्छी तरह से धीरे २ चना २ कर न खाने से मोजन के पचने में देरी लगती है तथा वह हानि भी करता है, मोजन के चनाने के विषय में डाक्टरों का यह सिद्धान्त है कि जितने समय में २५ की गिनती गिनी जा सके उतने समय तक एक आस को चना कर पीछे निगलना चाहिये।

९-मोजन करने के समय माता, पिता, माई, पाककर्ता, वैद्य, मित्र, पुत्र तथा खजनों (सम्यन्धियों) को समीप में रखना उचित है, इन के सिवाय किसी मित्र पुरुष को मोजन करने के समय समीप में नहीं रहने देना चाहिये, क्योंकि किसी र मनुष्य की दृष्टि महाखरान होती है, मोजन करने के समय में वार्तालाप करना भी अनुचित है, क्योंकि एक इन्द्रिय से एक समय में दो कार्य ठीक रीति से नहीं हो सकते है, किन्तु दोनों अधूरे ही रह जाते है, अतः एक समय में एक इन्द्रिय से एक ही काम केना योग्य है, हां मित्र आदि छोग मोजन समय में उत्तम प्रसक्त करने वाली तथा प्रीतिकारक वार्तों को धुनाते जार्वे तो अच्छी वात है, यह भी सारण रहे कि-मोजन करने में जो रस अधिक होता है उसी के तुल्य दूसरे रस भी बन जाते है, मोजन करते समय रोटी और रोट आदि कड़े पदार्थों को प्रथम घी से खाना चाहिये पीछे दाल और शाक आदि के साथ खाना चाहिये, पित्त तथा वायु की प्रकृतिवाले पुरुष को मीठे पदार्थ मोजन के मध्य

१-यहुत से लोग इस कहानत पर आहळ हैं कि—''श्री का नहाना और प्रक्ष का खाना" तथा इस का धर्य ऐसा करते हैं कि झी जैसे फ़ुर्ती से नहा केती है नैसे ही पुरुष को फ़ुर्ती के साथ मोजन कर लेना चाहिये, परन्तु नास्त्रय में इस कहानत का यह अर्थ नहीं है जैसा कि ने समझ रहे हैं, क्योंकि आजकल की मूर्ती कियां जो लान करती हैं वह नास्त्रन में लान ही नहीं है, आनकल की क्षियों का तो लान यह है कि उन्होंने नम होकर शरीर पर पानी डाला और तत्काल चाचरा पहना, बस लान हो गया, अव अनिवा देवी के उपासकों ने यह समझ लिया कि जी का नहाना और पुरुष का खाना समान समय में होना चाहिये, परन्तु उन को कुल तो अक्ष से भी खुदा को पहनानता चाहिये (कुल तो वुद्धि से भी सोचना चाहिये, परन्तु उन को कुल तो अक्ष से भी खुदा को पहनानना चाहिये (कुल तो वुद्धि से भी सोचना चाहिये) देखो ! प्रथम लिख आये हैं कि—लान केवल शरीर के मैल को साफ करने के लिये किया जाता है तो यह लान (कि झी ने शरीर पर पानी डाला और तत्काल घाचरा पहना) क्या नास्त्रम में लान कहा जा सकता है ! कमी नहीं, क्योंकि कहिये इस लान से क्या लाम है ! इस लिये यदिप यह कहानत तो ठीक है परन्तु अनिवा देनी के उपासकों ने इस का अर्थ उलटा कर लिया है, इस का असली मतलव यह है कि—जैसे झी एकान्त में नैठकर धीरे र महाती है सर्थात सम्पूर्ण श्वरीर का मैल दूर करती है उसी प्रकार से पुरुष भी एकान्त में नैठकर धीरे र महाती है सर्थात सम्पूर्ण श्वरीर का मैल दूर करती है उसी प्रकार से पुरुष भी एकान्त में नैठ कर स्थिरता के साथ अर्थात खुल नवा र कर मोलन करे।

में लाने चाहियें, पीछे दाल मात आदि नरम पदार्थों को खाकर अन्त में दूघ या छाछ आदि पतले पदार्थों को खाना चाहिये, मन्दामिनाले के लिये उड़द आदि पदार्थ खमान से ही मारी होते है तथा मूंग, मौठ, चना और अरहर, ये सन परिमाण से अधिक खाये जाने से मारी होते है, मिस्से की पूड़ी वा रोटी भी मन्दामिनाले को बहुत हानि पहुंचाती है अर्थात् पेट में मल और वायु को बढाती है तथा इस के सिनाय अतीसार और संम्रहणी के भी होने में कोई आश्चर्य नहीं होता है, दलाहुआ अन बनाने के फेर फार से भारी हो जाता है, जैसे गेहूँ का दलिया रांघा जाने तो वह वैसा भारी नहीं होता है नैसी कि छापसी भारी अर्थात् गरिष्ठ होती है।

१०—मोजन के समय में पहिले पानी के पीने से अग्नि मंद होजाती है, बीच २ में थोड़ा २ एकाव बार जल पीने से वह (जल) घी के समान फायदा करता है, मोजन के अन्त में आचमनमात्र (तीन चूंट) जल पीना चाहिये, इस के बाद जन प्यास लगे तव जल पीना चाहिये, ऐसा करने से भोजन अच्छीतरह पच जाता है, मोजन के अन्त में अधिक जल पीने से अच हज़म नहीं होता है, मोजन को खून पेटमर कर (गलेतक) कभी नहीं करना चौहिये, देखों । शार्क्षघर का कथन है कि जन मोजन अच्छी तरह से पचता है तव तो उस का रस हो जाता है तथा यह (रस) शरीर का पोषण करने में अमृत के जुल्य होता है और जब मोजन अच्छी तरह से नहीं पचता है तब रस नहीं करना है जाता है और जब मोजन अच्छी तरह से नहीं पचता है तब रस नहीं करना है का स्वास है के जुल्य होता है इस लिये मनुज्यों को अग्नि के वल के अनुसार मोजन करना चौहिये।

११-श्रहुत से पदार्थ अत्यन्त गुण कारी हैं परन्तु दूसरी चीन के साथ मिलने से वे हानिकारी हो जाते है तथा उन की हानि मनुष्यों को एकदम नहीं माछूम होती है किन्तु उस के बीज शरीर में लिपे हुए अवस्य रहते हैं, जैसे श्रीष्म ऋतु में जंगल के अन्दर ज़मीन में देखा जावे तो कुछ भी नहीं दीखता है परन्तु जल के बरसने पर नाना भकार के बीजों के अहुर निकल आते है, इसी भकार कपर कहेहुए पदार्थों के खाने से एकदम हानि नहीं माछूम होती है किंतु वे इकट्टे होकर किसी समय एकदम अपना ज़ोर दिखा देते हैं, जो २ पदार्थ दूव के साथ में मिलने से विरोधी हो जाते है उन को

१-देखो लिखा है कि-"अद्धमसणस्त सन्नं जणस्य कुनादनस्य दो मागे, वाउ पविकारणहा छनाय कणग कुना ॥ १ ॥ अर्थात् बुद्धि के द्वारा कल्पना कर के अपने उदर के छ माग करने चाहियें, उन में से तीन मागों को तो अन से अरना चाहिये, दो मागों को पानी से सरना चाहिये तथा एक माग को खाठी रखना चाहिये कि निस से उच्छास और नि शास सुखपूर्वक आता जाता रहे ॥

२—बहुत से लोग जीमण जुठण में दो दिन की करार एक ही वस्त में निकास लेते हैं, यह अविद्या देवी की कृपा है, इस का फूछ उन को अवस्य ही मिलता है ॥

तो हम दूघ के प्रकरण में पहिले लिख चुके है, शेष कुछ पदार्थों को यहां लिखते है— केला और छाछ, केला और दही, दही और उण्ण पदार्थ, भी और शेहद समान मागमें तथा शहद और पानी वरावर बज़न में, ये सब पदार्थ सक्कदोष से अत्यन्त हानिकारक हो जाते हैं अर्थात् विष के तुल्य होजाते हैं, एवं बासा अज फिर गर्म करने से अत्यन्त हानि करता है, इस के सिवाय—गर्म पदार्थ और वर्षा के जल के साथ शहद, खिचड़ी के साथ खीर, बेल के फल के साथ केला, कांसे के पात्र में दशदिनतक रक्खा रहा हुआ भी, जल के साथ भी और तेल, तथा पुनः गर्म किया हुआ काला, ये सब ही पदार्थ हानि कारक हैं, इसलिये इन का त्याग करना चाहिये।

१२-सायंकाल का मोजन दो वडी दिन शेष रहने पर ही कर लेना चाहिये तथा शाम को हलका भोजन करना चाहिये किन्त रात्रि में भोजन कभी नहीं करना चाहिये; क्योंकि जैन सिद्धान्त में तथा वैश्वक शास्तों में रात्रिमोजन का अत्यंत निषेध किया है, इस का कारण सिर्फ यही है कि-रात्रि को भोजन करने में भोजन के साथ छोटे २ जन्तओं के पेट मे चले जाने के द्वारा अनेक हानियों की सन्भावना रहती है. देखी! रात्रि में मोजन के अन्दर यदि लाल तथा काली चीटियां खाने में आजावें तो बुद्धि अष्ट होकर पागलपन होता है, जुर्ये से जलोदर, कांटे तथा केश से खरमंग तथा मकड़ी से पित्ती के ददोड़े, दाह, वमन और दक्त आदि होते है, इसी प्रकार अनेक अन्तुओं से वदह असी आदि अनेक रोगों के होने की सन्भावना रहती है, इस लिये रात्रि का मोजन अन्धे के मोजन के समान होता है, (प्रश्न) बहुत से महेश्वरी वैश्यों से सुना है कि हमारे शास्त्रों में एक सूर्य में दो बार मोजन का करना मना है इसलिये दूसरे समय का मोजन रात्रि में ही करना उचित है, (उत्तर) माछ्म होता है कि-उन (वैश्यों) को उन के पोप और सार्थी गुरुओं ने अपने खार्थ के छिये ऐसा बहका दिया है और बेचारे भोड़े माले महे-श्वरी वैश्यों ने अपने शास्तों को तो देखा नहीं, न देखने की उन में शक्ति है इस लिये पोप लोगों से सुन कर उन्हों ने रात्रि में भोजन करने का प्रारम्भ कर दिया. देखो ! हम चन्हीं के शास्त्रों का प्रमाण रात्रिमोजन के निषेघ में देते है-यदि अपने शास्त्रों पर विश्वास हो तो उन महेश्वरी वैदयों को इस मन और पर मन में दःखकारी रात्रिमोजन को त्याग देना चाहिये---

१- शेष संयोग विरुद्ध पदार्थों का वर्णन इसरे वैद्यक प्रन्थों में देखना चाहिये ॥

२-यदापि घी और शहद तथा शहद और जल प्रायः दवा आदि के काम में लिया जाता है और वह बहुत फायदेसन्द भी है परन्तु बराबर होने से हानि करता है, इस लिये इन दोनों को समान माग में कमी वहीं जेना चाहिये॥

देलो ! महा भारत ग्रन्थ में लिखा है कि— मद्यमांसादानं रात्री, भोजनं कन्द्रभक्षणम् ॥ ये कुर्वन्ति षृथा तेषां, तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥ १ ॥

अर्थात् जो पुरुष मध पीते हैं, गांस खाते हैं, रात्रि में भोजन करते हैं और कंदे को खाते हैं उन की तीर्थयात्रा, जप और तप सब दृथा है ॥ १॥ मार्कण्डेयपुराण का बचन है कि—

अस्तंगते दिवानाथे, आपो रुधिरमुच्यते ॥ अन्नं मांससमं प्रोक्तं, मार्कण्डेयमहर्षिणा ॥ १ ॥

धर्यात् दिवानाय (सूर्य) के अस्त होने के पीछे जल रुघिर के समान और अन्न मांस के समान कहा है, यह बचन मार्कण्डेय ऋषि का है ॥ १ ॥ इसी प्रकार महाभारत प्रन्य में पुनः कहा गया है कि—

चत्वारि नरकहारं, प्रथमं रात्रिभोजनम् ॥
परस्री गमनं चैव, सन्धानानन्तकायकम् ॥ १ ॥
चे रात्रौ सर्वदाहारं, वर्जयन्ति सुमेधसः ॥
तेषां पक्षोपवासस्य, फलं मासेन जायते ॥ २ ॥
नोदकमपि पातच्यं, रात्रावत्र युधिष्ठिर ॥
तपस्विनां विद्योषेण, गृहिणां ज्ञानसम्पदाम् ॥ ३ ॥

अर्थात्— चार कार्य नरक के द्वाररूप हैं—प्रथम—रात्रि में भोजन करना, दूसरा—पर-क्षी में गमन करना, तीसरा—संघाना (आचार) खाना और चौथा—अनन्त काय अर्थात् अनन्त जीववाले कन्द मूळ आदि वस्तुओं को खाना ॥ १ ॥ जो बुद्धिमान् पुरुष एक महीनेतक निरन्तर रात्रिमोजन का त्याग करते हैं उन को एक पक्ष के उपवास का फल प्राप्त होता है ॥ २ ॥ इस लिये हे युचिष्ठर ! ज्ञानी गृहस्य को और विशेष कर तपसी को रात्रि में पानी भी नहीं पीना चाहिये ॥ ३ ॥ इसी प्रकार से सब शाखों में रात्रिमो-जन का निवेध किया है परन्तु प्रन्थ के विस्तार के भय से अब विशेष प्रमाणों को नहीं लिखते हैं, इसलिये बुद्धिमानों को उचित है कि—सब प्रकार के खाने पीने के पदार्थों का कभी भी रात्रि में उपयोग न करें, यदि कभी वैद्य कठिन रोगादि में भी कोई दवा या खुराक को रात्रि में उपयोग के लिये बतलावे तो भी यथा शक्य उसे रात्रि में नहीं लेना चाहिये किन्तु सोने से दो तीन घण्टे पहिले ही के लेना चाहिये, क्योंकि घन्य पुरुष वे ही है जो कि सूर्य की साक्षी से ही खान पान करके अपने त्रत का निर्वाह करते हैं ।

१-पृथिवी के नीचे को वस्तु उत्पन्न होती है उसे कद कहते है, जैसे-आड, मूठी, कांदा और गावर आदि ॥

१३-एक थाली वा पत्तल में अधिक मनुष्यों को भोजन करना योग्य नहीं है. क्योंकि-प्रत्येक मनुष्य का समाव पृथक २ होता है, देसो ! कोई चाहता है कि मै दाल गात को मिछा कर खाऊँ, किसी की रुचि इस के विरुद्ध होती है, इसी प्रकार अन्य जनों का भी अन्य प्रकार का ही खमान होता है तो इस दशा में साथ में खानेवाले सव ही लोगों को अरुचि से भोजन करना पहला है और मोजन में अरुचि होने से अन अच्छे प्रकार से नहीं पचता है, साथ में खाने के द्वारा अरुचि के उत्पन्न होने से बहुधा मनुष्य मुखे भी उठ बैठते है और बहुतों को नाना प्रकार के रोग भी हो जाते है. इस के सिवाय प्रत्येक पुरुष के हाथ वारंबार मुँह में लगते हैं फिर भोजनों में लगते हैं. इस कारण एक के रोग दूसरे में प्रवेश कर जाते है, इस के अतिरिक्त यह भी एक वडी ही विचारणीय वात है कि यदि कुटुम्ब का दूरदेशस्थ (जो दूर देश में रहता है वह) कोई एक सम्बंधी पुरुष गुप्तरूप से मद्य वा मांस का सेवन करता है अथवा व्यभिचार में िस है तो एक साथ खाने पीने से अन्य मनुप्यों की भी पवित्रता में घटना लग जाता है, शास्त्रों में जुठे मोजन का करना महापाप भी कहा है और यह सत्य भी है क्योंिक इस से केवल शारीरिक रोग ही उत्पन्न नहीं होते है किन्त्र यह बुद्धि को अग्रद्ध कर उस के सम्पूर्ण वरू का भी नाश कर देता है, प्रत्यक्ष में ही देख कीजिये कि—जो मनुष्य जूठा भोजन खाते है उन के मस्तक गन्दे (मठीन) होते है कि जिस से उन में सोच विचार फरने का समाव विलक्तल ही नहीं रहता है, इस का कारण यही है कि जुठा मोजन करने से सच्छता का नाम होता है और जहां सच्छता वा ग्रद्धता नहीं है वहां मला गुद्दुद्धि का क्या काम है, जूठा खाने वालों की दुद्धि गोटी हो जाने से उन में सम्यता मी नहीं देखी जाती है, इन्हीं कारणों से धर्मशास्त्रों में भी जुठाखाने का अत्यन्त निवेध किया है, इसलिये आर्थ पुरुषों का यही धर्म है कि-बाहें अपना छड़का ही क्यों न हो उस को भी जूठा मोजन न दें और न उस का जूठा आप खार्ने, सत्य तो यह है कि जूंठ और सूंठ, इन दोनों का बाल्यावस्था से ही त्याग कर देना उचित है अर्थात नचपन से ही शूंठ वचन और जुंठे मोजन से घुणा करना उचित है, बहुघा देखा जाता है कि-हमारे खदेशीय बन्धु (जो न तो घर्मशास्त्रों का ही अवलोकन करते है और न कमी उन को किसी विद्वान से सुनते है वे) अपने छोटे २ वचों को अपने साथ में मोजन कराने में उन का जूठा आप खाने में तथा अपना पिया हुआ पानी उन्हें पिलाने में बड़ा ही लाइ समझते है, यह अत्यंत ही शोक का विषय है कि वे महानिन्दित कर्म को लाड प्यार वा अपना धर्म कार्य समझें तथा उन (वचों) की बुद्धि का नाश मार कर उन के

१-सिर्फ यही हेतु है कि कोडी को कोई भी अपने साथ में मोजन नहीं कराता है।।

२-नयोकि सभ्यता शुद्धबुद्धि का फल हैं, उन की बुद्धि शुद्ध न होने से उन के पास सभ्यता कहा ?

सर्वस्य का सत्यानाश कर दें और तिस पर मी उन के परम हितैथी कहलांचें, हा शोक! हा शोक!! हा शोक!!!!

१४—भोजन करने के बाद मुख को पानी के कुठें कर साफ कर छेना चाहिये तथा दाँतों की चिमटी आदि से दांतों और मस्डों में से जूठन को बिछकुछ निकाल ढालना चाहिये, क्योंकि खुराक का अंग्र मस्डों में वा दाँतों की जड़ में रह जाने से मुख में दुर्गीन्य आने छगती है तथा दाँतों का और मुख का रोग भी उत्पन्न हो जाता है।

१५-भोजन करने के पीछे सौ कदम टहलना चाहिये, क्योंिक ऐसा करने से अल पचता और आयु की बृद्धि होती है, इस के पीछे थोड़ी देर तक पलंग पर लेटना चाहिये, इस से अंग पृष्ट होता है, परन्तु लेटकर नींद नहीं लेनी चाहिये, क्योंिक नीद के लेने से रोग उत्पन्न होते है, इस विषय में यह भी स्मरण रहे कि मातःकाल को भोजन करने के पश्चात् पलंगपर वांये और दिहने करवट से लेटना चाहिये परन्तु नींद नहीं लेनी चाहिये तथा सायंकाल को भोजन करने के पश्चात् टहलना परम लामदायक है।

१६-मोजन करने के पश्चात् ब्रेश्च, स्टूछ, तिपाई और कुर्सी आदि पर बैठने, नींव छेने, आग के सन्मुख बैठने, भूप में चलने, दौड़ने, घोड़े वा ऊंट आदि की सवारी पर चढ़ने तथा कसरत करने आदि से नाना प्रकार के दोष उत्पन्न होते है, इसलिये मोजन के पश्चात् एक षण्टे वा इस से भी कुछ अधिक समयतक ऐसे काम नहीं करने चाहियें।

१७—मोजन के पाचन के लिये किसी चूर्ण को खाना वा शर्वत आदि को पीना उचित नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से वैसा ही अभ्यास पड़ जाता है और वैसा अभ्यास पड़ जाने पर चूर्ण आदि के सेवन किये विना अल का पाचन ही नहीं होता है, कुछ सँमयतक ऐसा अभ्यास रहने से जठराभि की खामाविक तेजीन रहने से आरोग्यता में अन्तर पड़ जाता है।

१८—मोजन के समय में अत्यंत पानी का पीना, बिना पचे मोजन पर मोजन करना, विना मुख के खाना, मुख का मारना, आधिसर के स्थान में सेर भर खाना तथा अत्यंत न्यून खाना आदि कारणों से अजीर्ण तथा मन्दाग्नि आदि रोग उत्पन्न हो जाते है, इस-् ि छिये इन बातों से बचते रहना चाहिये।

१९-पथ्यापथ्य वर्णन में तथा ऋतुचर्या वर्णन में जो कुछ भोजन के विषय में लिखा गया है उस का सत्देव ख्याल रखना चौहिये॥

4-सोजन का विशेष वर्णन मोजन-नाग्विकास आदि प्रन्यों में किया गया है, वहा देख लेना चाहिये ॥

^{9—}हा मारत ! तेरे पिनश्र यश्च में नाना प्रकार के घटने छग गये है, क्योंकि—हस देश में वहुधा ऐसे सत चळ गये हैं कि—किन में गृहस्य पुरुषों और कियो को ग्रुरु का जुठा खाना भी धर्म का अश माना शया है और वितर के सहावार्य पुरु घटन का जुठा परसाद (प्रसाद) वा जुठा पानी भी अग्रुत के समान मान कर बेचारे भोडे की पुरुष पीते हैं, हे मित्रपण ! मला अब तो सोनो समझो और सावधान हो ! तुम इस अविशाकी गाढ़ निवा में कवतक पढ़े सोते रहोगे !

मुख सुगन्ध ॥

प्रहिले कह चुके हैं कि मोजन के पश्चात् पानी के कुलें करके मुख को साफ कर लेना नाहिये तथा दाँतों और मस्डों को भी खूब गुद्ध कर लेना नाहिये, आजकल इस देश में मोजन के पश्चात् मुख मुगन्ध के लिये अनेक वस्तुओं का उपयोग किया जाता है, सो यदि मुख को पानी आदि के द्वारा ही बिलकुल साफ कर लिया जावे तो दूसरी वस्तु के उपयोग की कोई आवश्यकता नहीं रहती है, क्योंकि मुखसुगन्ध का प्रयोजन केवल मुख को साफ रखने का है, जब जलादि के द्वारा मुख और दाँत आदि बिलकुल साफ हो गये तो मुपारी तथा पान चवाने आदि की कोई आवश्यकता नहीं है, हां यदि कभी विशेष रुचि वा आवश्यकता हो तो वस्तुविशेष का भी उपयोग कर लेना चाहिये परन्तु उस की आदत नहीं हालनी चाहिये।

गुलसुगन्य के लिये अपने देश में सुपारी पान और इलायची आदि मुख्य पदार्थ है, परन्तु इस समय में तो घर घर (प्रति गृह) चिलम हुका और सिगरेट ही प्रधानता के साय वर्त्तीव में आते हुए देखे जाते हैं, पूर्व समय में इस देशवाले पुरुष इन में बड़ा पेव समझते थे, परन्तु भव तो विछीने से उठते ही यही हरिमजनरूप बन गया है तथा इसी को अविद्या देवी के उपासकों ने मुखवासक भी ठहरा रक्खा है, यह उन की महा अज्ञानता है, देखो ! मुखनास का प्रयोजन तो केवल इतना ही है कि ढाढों तथा दाँतों में यदि कोई अन का अंश रह गया हो तो किसी चानने की चीज के चावने से उस के साय में वह अन्न का अंश भी चावा जाकर साफ हो जावे तथा वह (चावने की) चीज खुशबूदार और फायदेमन्द हो तो ग्रँह अवासित भी हो जावे तथा थुक को पैदा करने वाली हो तो वह थूक होजरी में जाकर खाये हुए पदार्थ के पचाने में भी सहायक हो बाने, इसी लिये तो उक्त गुणों से युक्त नागर बेल के पान, कत्या, चूना, केसर, कस्तूरी, धुपारी, इलायची और भीमसेनी कपूर आदि पदार्थ उपयोग में लिये जाते है, परन्तु तमालू, गांजा, ग्रळफा और चंद्रके से ग्रस की जैसी ग्रुवास होती है वह तो संसार से छिपी नहीं है, यद्यपि तमाखू में थूक की पैदा करने का खमान तो है परन्तु वह थूक ऐसा निक्ट होता है कि भीतर पहुँचते ही भीतर स्थित तमाम खाये पिये को उसीवरूत निकाङ कर वाहर के आता है, इस के विषय में जो बुद्धिमानों का यह कथन है कि-"इस को लावे उसका घर और मुँह अष्ट, इस को पिये उसका जन्म और मुँह अष्ट, इस को सूंघे उस के कपड़े अहँ" सो यह बात बिळकुल ही सत्य है तथा इस का अनुभव भी प्रायः

१-प्रसास्थान (पचनसाण) माध्य की टीका में द्विनिधाहार (दुविहार) के निर्णय में मुखबास का भी वर्णन है ॥

२-चहूल अर्थात् चण्ह् (कहना तो इसे चण्ह्ल ही चाहिये)॥

र-विक्षण के लोग पान के साथ तमाज खाते हैं, उन का भी यही हाल है ॥

सब ही को होगा, तमाखू के कदरदान (कदर करनेवाछे) बड़े आदमी तमाखू का रस थूकने के लिये पीक दान रखते है परन्तु हम को वड़ा आश्चर्य होता है कि जिस तमाखू के थूक को वे जठरामि का उपयोगी समझते है उस को निरर्थक क्यों जाने देते हैं !

अब जो लोग मुखनास के लिये पायः सुपारी का सेवन करते हैं उस के विषय में भी संक्षेप से लिख कर पाठकगण को उस के हानि लाभ दिखलाते हैं:---

सुपारी मुखवास के लिये एक अच्छी चीज़ है परन्तु इसे बहुत ही थोड़ा खाना चाहिये, क्योंकि इस का अधिक खाना हानि करता है, पूर्व तथा दक्षिण में की पुरुष छालियों को तथा बीकानेर आदि मारवाड़ देशस्त नगरों में कत्थे में उवाली हुई चिकनी सुपारियों को सेरों खा जाते है, इस से परिणाम में हानि होती है, यद्यपि इस का सेवन खियों के लिये तो फिर भी कुछ अच्छा है परन्तु पुरुषों को तो नुक्सान ही करता है, सुपारी में शरीर के सांघों को तथा बातु को ढीला करने का समाव है, इस लिये खास-फर पुरुषों को इस का अधिक खाना कभी भी उचित नहीं है, इस लिये आवश्यकता के समय मोजन करने के बाद इस का ज़रा सा दुकड़ा मुख में बालकर चावना चाहिये तथा उस का थूक निगळ जाना चाहिये परन्तु मुख में बचाहुआ उस का कूजट (गुट्टा) थूक देना चाहिये, सुपारी का ज़ादा दुकड़ा फंठ को विगाइता है।

पान का सेवन यदि किया जावे तो वह ताजा और मुँह में गर्मी व करे ऐसा होना चौहिये, किन्तु ज्यसनी वन कर जैसा मिले वैसा ही चाव लेने से उलटी हानि होती है तथा सब दिन पानों को चावते रहना जंगलीपन भी समझा जाता है, बहुत पान खाने से वह आंख और शरीर का तेज, बाल, दाँत, जठरामि, कान, रूप और ताकत को नुकसान पहुँचाता है, इसलिये थोड़ा खाना ठीक है !

पानों के साथ में जो कत्थे और चूने का उपयोग किया जाता है उस में भी किसी तरह की दूसरी चीज़की मिळावट नहीं होनी चाहिये तथा इन दोनों को पानों में ठीक र (न्यनाधिक नहीं) छगाना चौहिये।

पान और धुपारी के सिवाय—इलॉयची, लौग और तब भी मुख धुगन्धि की चीज़ें हैं, इन में से इलायची तर गर्भ है और फायदेमन्द होती है परन्तु इसे भी अधिक नहीं खाना चाहिये, तब और लौग वायु और कफ की मक्कतिवाले को बोडी र खानी चाहिये।

१-पान और सन्तरे नागपुर के उत्तम होते है ॥

२-बीतकाल में वॅगला पान फायदा करता है ॥

३-पान खानेनाओं को यदि इन सन वार्तों का श्री झान न हो तो उन को पान खाने का अभ्यास रखना ही व्यर्थ है।

४-जाने मे छोटी (सपेद) इब्लयनी का उपयोग करना चाहिने ॥

मुखसुगन्यि की सब चीजों में से घनियां और सोंफ, ये दो चीजें अधिक छाभदायक मानी गेई है, क्योंकि ये दीपन पाचन है, खादिष्ट है, कंठ को सुधारती है और किसी प्रकार का विकार नहीं करती है!

इस प्रकार मोजन किया से निवृत्त होकर तथा थोड़ी देर तक विना निद्रा के विश्राम कंकर मनुष्य को अपने जीवन निर्वाह के उद्यम में प्रवृत्त होना चाहिये परन्तु वह उद्यम भी न्याय और घर्म के अनुकूछ होना चाहिये अर्थात् उस उद्यम के द्वारा परापमान तथा पर हानि आदि कभी नहीं होना चाहिये, इस के सिनाय मनुष्य को दिन मर में कोध आदि दुर्गुणों का त्याग कर मन और इन्द्रियों को प्रसन्न करनेनाले रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आदि विषयों का सेवन करना चौहिये, दिन में कदापि स्त्री सेवन नहीं करना चौहिये, दिन के चार वा पांच बने (ऋतु के अनुसार) व्यावहारिक कार्यों से निवृत्त होकर थोड़ी देर तक विश्राम लेकर शौच ऑदि से निवृत्त हो जाने, पीले यथायोग्य मोजन आदि कोर्य करे मोजन के पश्चात् मील दो मील तक (समयानुसार) बायु सेवन के लिये अवस्थ जाने, वायु के सेवन से लीट कर सायंकाल सम्बंधी यथावस्यक घर्म प्यान आदि कार्य करे इस से निवृत्त होने के पश्चात् दिनचर्या का कोई कार्य अवशिष्ट नहीं रहता है किन्तु केवल निदाल्य कार्य शेष शेष रहता है।

जीवन की स्थिरता तथा नीरोगता के छिये निद्रा भी एक बहुत हो आवश्यक पदार्थ है इस छिये अब निद्रा वा श्रयन के विषय में छिखते है:—

शयन वा निद्रा॥

मनुष्य की आरोग्यता के लिये अच्छी तरह से नींद का आना भी एक मुख्य कारण है परन्तु अच्छी तरह से नींद के आने का सहज उपाय केवल परिश्रम है, देखी! जो लोग दिन में परिश्रम नहीं करते हैं किन्तु आलसी होकर पड़े रहते हैं उन को रात्रि में अच्छी तरह

१-इन दोनों के सिवाय जो भुख मुगन्ति के लिये इसरी बीजों का सेवन किया जाता है उन में देश काल और प्रकृति के विचार से कुछ न कुछ दोष अवस्य रहता है, उन में भी तमाख् आदि कई पदार्थ तो महाहानिकारक हैं, इस लिये उन से अवस्य बचना चाहिये, हा आवस्यकता हो तो ऊपर लिखे सुपारी आदि पदार्थों का उपयोग अपनी प्रकृति और देश काल आदि का विचार कर अल्प मात्रा में कर लेना चाहिये।

१-मन और इन्द्रियों को प्रसन्न करनेवाळे रूपादि विषयों के सेवन से मोजन का परिपाक ठीक होने से आरोग्युर्ता बनी रहती है ॥

रे-दिन में स्त्री सेवन से आयु घटती है तथा दुद्धि मळीन हो जाती है।।

४ जीन आदि में प्रात काल के लिये कहे हुए नियमों का ही सेवन करे ॥

५ रात्रिभोजन का निषेष तो सभी लिख ही चुके हैं॥

[्]री-इस कार्य का मुख्य सम्बध रात्रिचर्या से है किन्तु रात्रिचर्यारूप यही कार्य है परन्तु वहां रात्रिचर्या विषयक् न लिखकर दिनचर्या में ही उस का समावेश कर दिया गया है ॥

से 'नींद नहीं आती है, इस के अतिरिक्त परिमित तथा प्रकृति के अनुकूछ आहार विहार से भी नींदका घनिष्ठ (बहुत बड़ा) सम्बंध है, देखों! जो छोग शाम को अधिक मोजन करते हैं उन को प्रायः खप्त आया करते हैं अर्थात् पक्षी नींद का नाश होता है, क्योंकि मगुज्य को खप्त तब ही आते हैं जब कि उस के मगुज़ में आछ जंजाछ रहते हैं और मगुज़ को पूरा विश्राम नहीं मिछता है-इसिछ्ये मनुज्यमात्र को उचित है कि अपनी शिक्त के अनुसार शारीरिक तथा मानसिक परिश्रमों को करे और अपने आहार विहार को भी अपनी प्रकृति तथा देश काछ आदि का विचार कर करता रहे जिस से निद्रा में विधात न होने क्योंकि निद्रा के विधात से भी काछान्तर में अनेक मयंकर हानियां होती है निद्रा में विधात न होने क्योंक क्योंत् ठीक नींद आने का छक्षण यही है कि मनुज्य को श्रयनावस्था में स्वम न आवें क्योंकि स्वम व्या में चित्त की स्थिरता नहीं होती है किन्तु चश्चिलता रहती है।

स्तरों के विषय में नर्थात् किस प्रकार का स्त्र कन जाता है और क्यों आता है इस विषय में मिल २ शासों तथा मिल २ आचारों की मिल २ सम्मित है एवं स्तरों के फल के विषय में भी पृथक् २ सम्मित है, इन के विषय का प्रतिपादक एक स्त्रशाँक भी है जिस में स्तरों का शुमाशुम आदि बहुतसा फल लिखा है, उक्त शास के अनुसार वैद्यक प्रन्थों में भी स्तरों का शुमाशुम फल माना है, देसो ! ब्राग्मष्ट ने रोगप्रकरण में शकुन और स्तरों का फल एक जलग प्रकरण में रोग के साध्यासाध्य के जानने के लिये लिखा है, उस विषय को अन्थ के बढ़ जाने के मय से अधिक नहीं लिख सकते हैं, परन्तु प्रसंगवश पाठकों के ज्ञानार्थ संक्षेप से इस का वर्णन करते हैं:—

~स्वभविचार्॥

१—अनुभूत वस्तु का जो स्तम आता है, उसे असत्य समझना चाहिये अर्थात् उस का कुछ फल नहीं होता है।

२-सुनी हुई बात का भी खम असत्य ही होता है।

३-देखी हुई वस्तु का जो स्वम आता है वह भी असत्य है।

8-शोक और चिन्ता से आया हुआ मी स्वम असत्य होता है।

५-प्रकृति के विकार से भी खम आता है जैसे-पित्त प्रकृति वाला मनुष्य पानी, फूल, धान, मोजन और रहों को खम में देखता है तथा हरे पीले और लाल रंग की वस्तुओं

९-जिन तिद्धान्त में खभावतिद्ध दर्शनावरणी कर्मचन्य नींद को अच्छी नींद साना है ॥

२-निदाविधातजन्य शनियों का वर्णन अनेक प्रन्थों में किया गया है इस लिये यहा पर उन हानियों का वर्णन नहीं करते हैं ॥

३-इस शास्त्रं को निमित्त शास्त्र कहते हैं ॥

को अधिक देखता है, तमाम रात सैकड़ों नाग नगीचों और फ़हारों की शैर करता रहता है, परन्तु इसे भी असत्य समझना चाहिये, क्योंकि प्रकृति के निकार से उत्पन्न होने के कारण यह कुछ भी लाम और हानि को नहीं कर सकता है।

दे—बायु की प्रकृतिवाला मनुष्य खम में पहाड़ पर चढता है, दृक्षों के शिखर पर जा बैठता है और मकान के ठीक ऊपर जाकर सरक जाता है, कूदना, फांदना, सवारी पर घट कर हवा खाने को जाना और आकाश में उड़ना आदि कार्य उस को खम में अधिक दिखलाई देते है, इसे भी पूर्ववत् असत्य समझना चाहिये, क्योंकि प्रकृति के विकार से उसक होने से इस का भी कुछ फलाफल नहीं होता है।

् ७—सप्त वह सचा होता है जो कि घर्म और कर्म के प्रमाव से आया हो, वह चाहे शुम हो अथवा अशुम हो, उस का फल अवस्य होता है।

८-रात्रि के प्रथम प्रहर में देखा हुआ खप्त बारह महीने में फल देता है, वूसरे प्रहर में देखा हुआ खप्त नौ महीने में फल देता है, तीसरे प्रहर में देखा हुआ खप्त छः महीने में फल देता है और चौथे प्रहर में देखा हुआ खप्त तीन महीने में फल देता है, दो घड़ी रात बाकी रहने पर देखा हुआ खप्त दश दिन में और स्थोदय के समय में देखा हुआ खप्त उसी दिन अपना फल देता है।

९—दिन में सोते हुए पुरुष को जो स्वप्न आता है वह भी असत्य होता है अर्थात् उस का कुछ फल नहीं होता है।

१०-अच्छा स्वस देखने के बाद यदि नीद खुल जाने तो फिर नहीं सोना चाहिये किन्तु धर्मध्यान करते हुए जागते रहना चौहिये।

११-बुरा स्वम देखने के वाद यदि नींद खुळ जावे और रात अधिक बाकी हो तो फिर सो जाना अच्छा है।

१२-पिहरें अच्छा स्वम देखा हो और पीछे बुरा स्वम देखा हो तो अच्छे स्वम का फरू मारा बाता है (नहीं होता है), किन्तु बुरे स्वम का फरू होता है, क्योंकि बुरा स्वम पीछे आयाहै।

१३—पिहले बुरा स्वम देखा हो और पीछे अच्छा स्वम देखा हो तो पिछला ही स्वम फल देता है अर्थात् अच्छा फल होता है, क्योंकि पिछला अच्छा स्वम पहिले बुरे स्वम के फल को नष्ट कर देता है।

१-अच्छा स्तप्त देखने के नाद जागते रहने की इस हेतु आहा है कि सो जाने पर फिर कोई बुरा स्तप्त आकर पहिले अच्छे स्तप्त के फल को न विगाद हाले ॥

१-परन्तु अफसोस तो इस बात का है कि मळे वा बुरे खग्न की पहचान मी तो सब लोगों को नहीं होती है ॥

यह स्वमों का संक्षेप से वर्णन किया गर्या, अत्र प्रसंगानुसार निद्रा के विषय में कुछ आवश्यक नियमों का वर्णन किया जाता है:---

१-पूर्व अथवा दक्षिण की तरफ सिर करके सोना चाहिये।

२—सोने की जगह साफ एकान्त में अर्थात् गड़बड़ वा शब्द से रहित और हवादार होनी चाहिये।

२—सोने के विछोने भी साफ होने चाहियें, क्योंकि मलीन जगह और मलीन विछोने पर सोने से माकड़ आदि अनेक जन्तु सताते हैं जिस से नींद में वाघा पहुँचती है और मलीनता के कारण अनेक रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं।

४—चौमासे में ज़मीन पर नहीं सोना चाहिये, क्योंकि इस से शर्दी आदि के अनेक विकार होते है और जीवजन्तु के काटने आदि का मी मय रहता है।

५-चूने के गछ पर सोना वायु और कफ की प्रकृतिवाले को हानि करता है।

६-परूँग आदि पर सदा मुखायम विछोने विछा कर सोना चौहिये।

७—केवल उष्ण तासीर वाले को खुली जगह में ब्रीब्स ऋतु में ही सोना चाहिये परन्तु जिन देशों में जोस गिरती है उन में तो खुली जगह में वा खुली चांदनीमें नहीं सोना चाहिये, एवं जिस खान में सोने से शरीर पर हवा का अधिक झपाटा (झकोरा) सामने से लगता हो उस स्थान में नहीं सोना चाहिये।

८—सोने के कमरे के दर्बाने तथा खिड़कियों को बिलकुल बंद कर के कमी नहीं सोना चाहिये, किन्तु एक या दो खिड़कियां अवस्य खुली रखनी चाहियें जिस से ताज़ी हवा आती रहे।

९—बहुत पढ़ने आदि के अभ्यास से, बहुत विचार से, नशा आदि के पीने से, अथवा अन्य किसी कारण से यदि मन उचका हुआ (अस्थिर) हो तो तुर्त नहीं सोना चाहिये!

१०—सोने के पहिले शिर को ठंढा रखना चाहिये, बदि गर्भ हो तो ठंढे जल से घो डालना चाहिये।

११-पैरों को सोने के समय सदा गर्भ रखना चाहिये, यदि पैर ठंढे हों तो तल्वों को तेल से मलंबा कर गर्भ पानी में रख कर गर्भ कर लेना चौहिये।

१--खप्रों का पूरा वर्णन देखना हो तो हमारे बनाये हुए अष्टाङ्ग निमित्त रक्षाकर नामक श्रंय मे देखों, उस का मूल्य १) रुपया मात्र है ॥

१—देखो । ज्ञायरों ने कहा है कि—"सावण सूचे साधरे, माह उघाडे खाट ॥ विन मारे मर जायगा, जो जेठ चलेगा वाट ॥ १ ॥

३-इमेशह ही (सोने के अतिरिक्त भी) शिर को ठडा और ऐरों को गर्म रसना चाहिये ॥

१२-बहुत देर से तथा बहुत देरतक नहीं सोना चाहिये, किन्तु जल्दी सोना चाहिये तथा जल्दी उठना चाँहिये।

१३-बहुत पेटभर खाकर तुर्त नही सोना चाहिये।

१8—संसार की सब चिन्ता को छोड़ कर चार शरणा लेकर चारों आहारों का त्याग करना चाहिये और यह सोचना चाहिये कि जीता रहा तो स्थोंदय के बाद खाना पीना बहुत है, चौरासी छाख जीवयोनि से अपने अपराघ की माफी मांग कर सोना चाहिये।

१५-सात घंटे की नींद काफी होती है, इस से अधिक सोना दरिट्रों का काम है। इस प्रकार रात्रि के व्यवीत होने पर प्रातःकाल चार बजे उठकर पुनः पूर्व लिखे अनुसार सब बचीब करना चैहिये॥

यह चतुर्थ अध्याय का दिनचर्यावर्णन नामक आठवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

नवां प्रकर्ण-सदौचारवर्णन ॥

सदाचार का खरूप ॥

यद्यपि सिद्धचार और सदाचार, ये दोनों ही कार्य मनुप्य को दोनों भवों में छुल देते है परन्तु विचार कर देखने से ज्ञात होता है कि इन दोनों में सदाचार ही प्रवल है, क्योंकि सिद्धचार सदाचार के आंथीन है, देखो सदाचार करनेवाले (सदाचारी) पुण्यवान पुरुष को अच्छे ही विचार उत्पन्न होते हैं और दुराचार करनेवाले (दुराचारी) दुष्ट पापी पुरुष को दुरे ही विचार उत्पन्न होते है, इसी लिये सत्य शास्त्रों में सदाचार की बहुत ही प्रशंसा की है तथा इस को सवींपिर माना है, सदाचार का अर्थ यह है कि—
मनुष्य दान, श्रील, त्रत, नियम, मलाई, परोपकार दया, क्षमा, धीरज और सन्तोप के साथ अपने सर्व व्यापारों को कर के अपने जीवन का निर्वाह करेरे।

१-इस के हानि लाम पूर्व इस प्रकरण की आदि में लिख जुके हैं ॥

र-यह दिनचर्या का वर्णन सक्षेप से किया गया है, इस का विस्तारपूर्वक ओर अधिक वर्णन देखना हो तो वेंचक के दूसरे प्रत्यों में देख छेना चाहिये, इस दिनचर्या में की प्रसग का वर्णन प्रत्य के विस्तार के भय से नहीं छिदा गया है तथा इस के आवश्यक नियम पूर्व छिख भी चुके हैं अतः पुनः यहा पर उन का वर्णन करना अनावश्यक समझ कर भी नहीं छिखा है ॥

रे-हरा प्रन्य के इसी अध्याय के छठे प्रकरण में छिखे हुए पृथ्य विहार का भी समावेश इसी प्रकरण में ही सकता है ॥

४-द्र्यों ि "बुद्धिः कर्मानुसारिणी" सर्थात् बुद्धि और विचार, ये दोनो कर्म के अनुसार होते हे अर्थान् मनुष्य जैसे मन्ने वा तुरे कार्य करेगा वैसे ही उस के युद्धि और विचार भी मन्ने वा तुरे होंगे, यही शार्शा-परिदान्त है ॥ ५-इमी प्रकार के वर्तांव का माम श्रावकव्यवहार भी है ॥

सदाचारपूर्वक वर्तान करनेवाले पुरुष के दोनों लोक सुधरते हैं तथा मनुष्य में जो सर्वोत्तम गुण ज्ञान है उस का फल भी यही है कि सदाचारपूर्वक हो वर्तान किया जावे, इस लिये ज्ञान को प्राप्तकर यथाशक्य इसी मार्गपर चलना चाहिये, हां यदि कर्मनक्ष इस मार्ग पर चलने में असमर्थ हो तो इस मार्गपर चलने के लिये प्रयक्त तो अवस्य ही करते रहना चाहिये तथा अपने इरादे को सदा अच्छा रखना चाहिये क्योंकि यदि मनुष्य ज्ञान को पाकर भी ऐसा न करे तो ज्ञानका मिलना ही न्यर्थ है।

परन्तु महान् शोक का विषय है कि—वर्त्तमान में आर्य छोगों की बुद्धि और विवेक प्रायः सदाचार से रहित होने के कारण नएप्राय होगये हैं, देखो ! माग्यवान् (श्रीमान्) पुरुष तो प्रायः अपने पास छुचे, बदमास, महाश्रीकीन, विषयी, चुगुळलोर और नीच जातिवाळे पुरुषों को रखते हैं, वे न तो अच्छे र पुस्तकों को देखते हैं और न अच्छे जनों की संगति ही करते हैं तब किहये उन के हृदय में सदाचार और सिद्धचार कहां से उरपन्न हो सकता है! सिर्फ इसी कारण से वर्त्तमान में यथायोग्य आचार सिद्धचार और सत्संगति विळकुळ ही उठ गई, इन छोगों के छुघरने का अब केवळ यही उपाय है कि ये छोग कुसंगको छोड़ कर नीति और धर्मशास्त्र आदि प्रन्थों को देखें, तत्संग करें, अष्टाचारों से बचें और सदाचार को उभयलोक का छुखद समझें, देखों! अष्टाचारों की छुख्य जड़ कुव्यसनादि है क्योंकि उन्हीं से बुद्धि अष्ट होकर सदाचार नष्ट हो जाता है परन्तु बड़े ही खेद का विषय है कि—इस ज़माने में कुव्यसनों के फंदे से विरक्ते ही बचे हुए होंगे, इस का कारण सिर्फ यही है कि—हमारे देश के बहुत से आता व्यसनों के यथार्थ स्वरूप से तथा उनसे परिणाम में होनेवाली हानि से विरक्ति ही अनिकार ही अनिकार ही अनिकार ही सिर्क के वहत से आता व्यसनों के वथार्थ स्वरूप से तथा उनसे परिणाम में होनेवाली हानि से विरक्ति ही अनिकार ही अनिकार ही सिर्क के वहत से आता व्यसनों के वथार्थ स्वरूप से तथा उनसे परिणाम में होनेवाली हानि से विरक्तिल ही अनिकार ही अनिकार ही सिर्क के वहत से

जैन सूत्रों में सात व्यसैन कहे हैं जो कि इस भव और परभव दोनों को विगाड़ देते हैं, उन का विवरण संक्षेप से इस प्रकार है:---

१ जुआ- यह सब से प्रथम नम्बर में है अर्थात् यह सातों व्यसनों का राजा है, इस के व्यसन से बहुत लोग फकीर हो चुके है और हो रहे है।

१-जो चाणक्य नीतिसार दोहावळी इसी अन्य में दी गई है उस को ध्यानपूर्वक देखना चाहिये और पहिले जो ऋतुसम्बंधी तथा नैखिक नियमों के पालन की विधि लिख चुके हैं उस के अनुसार वर्तना चाहिये ॥

२—सात महाव्यक्षनों का वर्णन यहा पर प्रसम्बर्ग पाठको को इघर ध्यान देने के बास्ते प्रन्य-यह जाने के भय से बहुत ही सक्षेप से किया है, यह गुणग्राही पुरुप इतने ही वर्णन से इन के दोगों को समझ जावेंगे, हम अपने मिन्नो से वह भी अनुरोध किये विना नहीं रह सकते हैं कि-हे त्रियमिन्नो यदि आप में कुसंग दोष आदि से कोई महाव्यसन पढ गया हो तो आप उस को छोडने की अवस्य कोशिश करें ऐसा करने से आप को उस का फल सब्यं ही प्राप्त हो जायगा।

रे चोरि -- दूसरा व्यसन चोरी है, इस व्यसनवाले का कोई भी विश्वास नहीं करता है और उस को बेल्खाना अवस्य देखना पड़ता है जिस (बेल्खाने) को इस भव का नरक कहने में कोई हर्ज नहीं है।

रे परस्त्रीगमन तीसरा व्यसन परस्तीगमन है, यह भी महाभयानक व्यसन है, देलो ! इसी व्यसन से रावण जैसे प्रतापी शूर वीर राजा का भी सत्यानाश हो गया तो दूसरों की तो क्या गिनती है, इस समय भी जो छोग इस व्यसन में संख्या हैं उन को कैसी र कठिन तकछों कें उठानी पड़ती हैं जिन को वे ही छोग जान सकते है ।

४ वेद्यागमन नौथा व्यसन वेदयागमन है, इस के सेवन से भी हनारों छाखों चर्वाद होगये और होते हुए दीख पड़ते है, देखों! संसार में तन धन और मितछा, ये तीन पदार्थ अमूल्य समझे जाते है परन्तु इस महाव्यसन से उक्त तीनों पदार्थों का नाश होता है, आहा! श्रीमैंर्नृहरि महाराज ने कैसा अच्छा कहा है कि—"यह वेदया तो

१-इन का इतिहास इस प्रकार है कि-उअधिनी नगरी में सकतियानियुण और परम कर राजा मर्जुइरि राज्य करता था, उस के दो साई थे, जिन में से एक का नाम निक्रम था (सनत् इसी निक्रम राजा का चल रहा है) और इसरे का नाम समय नीर्य था, इन दो भाइयों के सिनाय तीसरी एक छोटी वहिन भी थी जिसका सम्बद्ध गाँड (बगाल) देश के सार्वभीम राजा त्रेकोक्यचन्त्र के साथ हुआ था. इस मर्त्तहरि राजा का प्रश्न गोपीयद नाम से ससार में प्रसिद्ध है, यह भर्त्तहरि राजा प्रथम युवावस्था में स्रति विषयकस्पट था, उस की यह व्यवस्था थी कि उस को एक निमेप भी की के विना एक वर्ष के समान माखूम होता था. उस के ऐसे विषयासका होने के कारण बसपि राज्य का सब कार्य युवा राजा विकम ही चलाता था परन्तु यह मर्नुहरि अखन्त दयाशीख था और अपनी समस्त प्रजा में पूर्ण अनुराग रखता वा, इसी लिये प्रजा भी इस में पितृतस्य प्रेम रखती थी, एक दिन का जिक है कि-उस की प्रजा का एक विद्वान प्राह्मण जगल में गया और वहां जाकर उस ने एक ऋषि से मुलाकात की तथा ऋषि ने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मण को एक अमृतफल दिया और कहा कि इस फल को जो कोई खावेगा उसे जरा नहीं प्राप्त होगी क्षर्यात् उसे बुढापा कसी नहीं सतावेगा और शरीर में शक्ति बनी रहेगी, ब्राह्मण उस फळ को छेकर अपने घर आया और विचारने लगा कि यदि मैं इस फल को खाक तो मुझे यद्यपि जरा (बुद्धा-वस्था) तो प्राप्त नहीं होगी परन्त भै महादरिक हू यदि मैं इस फल को खाक तो दरिदता से और भी बहुत समयतक महा कष्ट उठाना पढेगा और निर्वन होने से मुझ से परोपकार भी कुछ नहीं वन सकेगा. इस लिये जिस के हाथ से अनेक प्राणियों की पालना होती है उस मर्त्तेहरि राजा को यह फल देना चाहिये कि जिस से वह वहत दिनोंतक राज्य कर प्रजा को सुखी करता रहे, यह विचार कर उस ने राजससा में जाकर उस उत्तम फल को राजा को अर्पण कर दिया और उस के गुण भी राजा को कह छनाये. राजा उस फल को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और ब्राह्मण को बहुत सा ब्रन्य और सम्मान देकर विदा किया. तदनन्तर भी में अत्यन्त श्रीति होने के कारण राजा ने यह विचार किया कि यह फल अपनी परस प्यारी भी को देऊ तो ठीक हो क्योंकि वह इस को खाकर सदा यौवनवती और ळावण्ययुक्त रहेगी. यह विचार कर वह फूल राजा ने अपनी श्ली को दे दिया, रानी ने अपने मन में निचार किया कि में रानी ह युस को किसी वात की तकलीफ नहीं है फिर मुझ को बुढापा क्या तकलीफ दे सकता है, ऐसा विचार कर उस ने उस फल को अपने गार कोतवाल को दे दिया (क्योंकि उस की कोतवाल से गारी थी) उस

सुन्दरता रूपी इन्चन से प्रचण्ड रूप घारण किये हुए जळती हुई कामाप्ति है और कामी पुरुष उस में अपने यौवन और घन की आहुति देते हैं" पुनः भी उक्त महात्मा ने कहा है कि—"वेश्या का अधरपछन यदि सुन्दर हो तो भी उस का चुम्बन कुळीन पुरुष को नहीं करना चाहिये, क्योंकि वह (वेश्या का अधरपछन) तो ठग, चोर, दास, नट और जारों के थुकने का पात्र है" इसके विषयमें वैद्यक शास्त्र का कथन है कि—वेश्या की योनि सुजाल और गर्मी आदि चेपी रोगों का जन्मस्थान है, और विचार कर देखा जावे तो यह बात बिळकुळ सत्य है और इस की प्रमाणता में ठाखों उदाहरण प्रत्यक्ष ही दीख पड़ते हैं कि—वेश्यागमन करनेवाळों के ऊपर कहे हुए रोग प्रायः हो ही जाते हैं जिनकी परसादी उन की विवाहिता स्त्री और उन के सन्तानींतक को मिळती है, इसका कुळ वर्णन आगे किया जायगा।

. दि मधापान पांचवां व्यसन मधापान है, वह भी व्यसन महाहानिकारक है, मध के पीने से मनुष्य बेस्रुष हो जाता है और अनेक प्रकार के रोग भी इस से हो जाते हैं, डाक्टर लोग भी इस की मनाई करते हैं—उनका कथन है कि—मद्य पीनेवालों के

फल को छेकर कोतवाल ने विचारा कि-मेरे हाथ मे राग की रानी है और सब प्रकार का माल मैं साता हं मेरा बृद्धावस्था क्या कर सकेगी, इसलिये अपंनी प्यारी चन्त्रकला वेश्या को गृह फल दे हूं. ऐसा विचार कर कोतवाल ने वह अस्तफल उसी वेश्या को जाकर दे दिया. वह चहकला वेश्या भी विचार करने लगी कि मझ को अच्छे २ पदार्थ खाने को मिलते हैं, नगर का कोतवाल मेरे हाव में है, मेरा बुढापा क्या कर सकता है, इस लिये इस उत्तम फल को मैं भर्तृहरि राजा को मेंट कर बू तो अच्छा है, ऐसा विचार कर उस ने द्वीर में जाकर वह फल राजा को मेंट किया और उस फल के पूर्वोक्त ग्रुण कहे, राजा फल की देख अत्यन्त आबर्थ करने लगा और मन में विचार ने लगा कि इस फल को तो मैं ने अपनी रानी की विया था यह फल इस देश्या के पास कैसे पहुँचा ! आखिरकार तलाक कर ने पर राजा को सब हाल भारतम हो गया और उस के मासूम होनेसे राजा को उसी समय अखन्त वैराग्य प्राप्त हुआ जिस से वह क्षी और राज्यलक्ष्मी आदि सब कुछ छोडकर बन में बला गया. देखी । उस समय उस ने यह क्लोक कहा है कि-या विन्तयामि सतत मिंब सा विरक्ता । साप्यन्यमिच्छति जन स जनोऽन्यसक्तः ॥ असत्कृते च परितन्त्रविकानिदन्या। पिकृता चत च मदन च इमाब माख ॥ १ ॥ इस ऋोक का अर्थ यह है कि-जिस त्रियतमा अपनी स्त्री को मैं निरन्तर प्राणों से मी अधिक त्रिय मानता हू वह मुझ से विरक्त हो कर अन्य पुरुष की इच्छा करती है और वह (अन्य पुरुष) बूसरी स्नीपर आसक्त है तथा पह (अन्य खी) मुझ से प्रसन्त है, इस लिये मेरी प्रिया को (जो अन्य पुरुष से प्रीति रखती है) धिकार है, उस अन्य पुरुष को (जो ऐसी रानी को पाकर भी अन्य श्री अर्थात, वेश्या पर आसक्त है) धिकार है, इस अन्य की को (जो मुझ से प्रसन्न है) विकार है तथा मुझ को और इस कामदेव को भी विकार है ॥ १ ॥ यह राजा बढा पण्डित था, इस ने मर्त्तहरिशतक नामक अन्य बनाया और उस के प्रारम्भ में ऊपर विसा हुआ स्टोक रख्वा है, इस प्रन्य के तीन कतक हैं अर्थांत् पहिला नीतिशतक, दूसरा ग्रंगारशतक और तीसरा वैराग्यशतक है. यह प्रन्य देखने के बीग्य है. इस में जो ग्रातारशतक है वह लोगों को विषय जाल में फॅसाने के लिये नहीं है किन्त वह शुगार के जाल का ययार्थ खरूप दिखलाता है जिस से उस में कोई न फॅससके, ऐसे राजाओं को धन्य है ॥

करेले में चारुनी के समान छिद्र हो जाते हैं और वे छोग आधी उम्र में ही प्राण त्याग करते हैं, इस के सिवाय घर्मशास्त्र ने भी इस को दुर्गित का प्रधान कारण कहा है।

६ सांस खाना छठा व्यसन गांसमक्षण है, यह नरफ का देनेबाला है, इस के मक्षण से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, देखों ! इस की हानियों को विचार कर अब यूरोप आदि देशों में भी गांस न खाने की एक सभा हुई है उस सभा के डाक्टरों ने और सभ्यों ने बनस्पित का खाना पसन्द किया है तथा प्रत्येक स्थान में वह समा (बेजेटरियन सुसाइटी) गांस मक्षण के दोषों और बनस्पित के गुणों का उपदेश कर रही है।

७ शिकार स्वेद्धना—सातवां महा ज्यसन शिकार खेळना है, इस के विषय में धर्मप्राक्षों में लिखा है कि— इस के फन्दे में पड़ कर अनेक राजे महाराजों ने नरकादि
दु:खों को पाया है, वर्चमान समय में वहुत से कुळीन राजे महाराजे भी इस दुर्ज्यसन
में संक्ष्म हो रहे हैं, यह बड़े ही जोक की बात है, देखों ! राजाओं का मुख्य धर्म तो
यह है कि सब प्राणियों की रक्षा करें अर्थात् यदि शत्रु भी हो और शरण में आ जावे
तो उस को न मारें, अब विचारना चाहिये कि वेचारे छग आदि जीव एण खाकर अपना
जीवन विताते हैं उन अनाय और निरपराध पशुओं पर शक्ष का चलाना और उन को
मरण जन्य असब दु:ख का देना कौन सी बहादुरी का काम है ! अलवत्ता प्राचीन समयके आर्थ राजा लोग सिंहकी शिकार किया करते थे जैसा कि कल्पसूत्र की टीका में
वर्णन है कि—त्रिपृष्ठ बांसुदेव जंगल में गया और वहां सिंह को देखकर मन में विचारने
लगा कि न तो यह रथपर चढा हुआ है, न इस के पास शक्ष है और न शरीर पर

१-मनु जी ने अपने बनाये हुए घमैशाक्स (मनुस्मृति) में मासभक्षण के निषेष प्रकरण में मास घन्द का वह अर्थ विचलाया है कि जिस जन्तु को मैदस जन्ममे खाता हूं वही जन्तु मुझ को पर जन्म में खावेगा, दक्त महान्मा के इस शब्दार्थ से मासमक्षकों को शिक्षा लेनी चाहिये॥

२-नायुरेव के वरू का परिमाण इस प्रकार समझना नाहिये कि बारह आदिमियों का वरू एक बैक में होता है, वर्ग वंगों का वरू एक चिक्र में होता है, पान सी मैसों का वरू एक हाथी में होता है, पान सी सैसों का वरू एक हाथी में होता है, पान सी हियों का वरू एक सिंह में होता है, दो सी सिंहों का वरू एक क्षापद (जन्तुनिशेष) में होता है, दो सी सामार का वरू एक वरुदेव में होता है, दो वरुदेवों का वरू एक वरुदेव में होता है, दो वरुदेवों का वरू एक वरुदेव में होता है, दो वरुदेवों का वरू एक वरुदेव में होता है, दन लाख वक्तवियों का वरू एक इन्द्र में होता है, दन लाख वक्तवियों का वरु एक इन्द्र में होता है और तीन काल के स्ट्रों का वरू एक शिहन्त में होता है, प्रकृत वर्तमाल समय में ऐसे वरुपारी नहीं हैं, जो अपने वरू का कम्पद करते हैं वह उन की मूल है, पूर्व समय में आदिमियों में और पशुओं में जैसी ताकत होती थी कर वह नहीं होती है, पूर्व काल के राजे भी ऐसे वरुपान् होते थे कि यदि तमाम प्रजा भी वदल जावे हो वरुरे ही उस को वस में छा सकते थे, देखों! ससार में शिक्त भी एक वड़ी अपूर्व वस्तु है जो कि दर्वपुष्प में ही प्राप्त होती है।

कवच ही है, इस लिये मुझको भी उचित है कि मैं भी रथ से उतर कर शक्ष छोड़ कर और कवच को उतार कर इस के साथ युद्ध कर इसे जी तूं, इस मकार मन में विचार कर रथ से उतर पड़ा और शक्ष तथा कवच का त्याग कर सिंह को दूर से ठठकारा, जब सिंह नज़दीक आया तब दोनों हाथों से उस के दोनों ओठों को पकड़ कर बीर्ण वस्त्र की तरह चीर कर ज़मीन पर गिरा दिया परन्तु इतना करने पर भी सिंह का जीव शरीर से न निकला तब राजा के सारिथ ने सिंह से कहा कि—हे सिंह! जैसे तू मृग-राज है उसी मकार तुझ को मारनेवाला यह नरराज है, यह कोई साधारण पुरुष नहीं है, इस लिये अब तू अपनी वीरता के साहस को छोड़ है, सारिथ के इस वचन को छुन कर सिंह के माण चले गये!

वर्तमान समय में जो राजा आदि छोग सिंह का शिकार करते हैं वे भी अनेक छछ बळ कर तथा अपनी रक्षा का पूरा प्रबंध कर छिपकर शिकार करते हैं, विना शक्ष के तो सिंह की शिकार करना दूर रहा किन्तु समक्ष में छळकार कर तळवार या गोड़ी के चळानेवाळे भी आर्यावर्त्त मर में दो चार ही नरेश होंगे।

धर्मशासों का सिद्धान्त है कि जो राजे महाराबे अनाथ पशुओं की हत्या करते है उन के राज्य में प्रायः दुर्भिक्ष होता है, रोग होता है तथा वे सन्तानरहित होते हैं, इत्यादि अनेक कष्ट इस भव में ही उन को प्राप्त होते हैं और पर भव में नरक में जाना पहता है. विचार करने की बात है कि- बित हमको इसरा कोई मारे तो हमारे बीव को कैसी तकलीफ माल्यम होती है, उसी प्रकार हम भी जब किसी पाणी को मारें तो उस को भी वैसा ही दु:ल होता है, इसलिये राजे महाराजों का यही मुख्य धर्म है कि अपने र राज्य में प्राणियों को सारना बंद कर दें और खबं भी उक्त व्यसन को छोड़ कर पुत्रवत सब प्राणियों की तन मन धन से रक्षा करें, इस संसार में जो पुरुष इन बढ़े सात व्यसनों से बचे हुए हैं उन को घन्य है और मनुष्यजन्म का पाना मी उन्हीं का सफल समझना चाहिये. और भी बहुत से हानिकारक छोटे २ व्यसन इन्हीं सात व्यसनों के अन्तर्गत है, जैसे-१-कीडियों से तो जुए को न खेळना परन्तु अनेक प्रकार का फाटका (चांदी आदिका सट्टा) करना, २-नई चीजों में पुरानी और नकली चीनों का बेंचना, कम तौलना, दगाबानी करना, ठगाई करना (यह सब चोरी ही है), ३-अनेक प्रकार का नशा करना, ४-घर का असनाव चाहें निक ही जाने परन्तु मोछ मँगाकर नित्य मिठाई खाये विना नहीं रहना, ५-रात्रि को विना खाये चैन का न पड़ना, ६-इधर उधर की चुगळी करना, ७-सत्य न बोळना आदि, इस प्रकार अनेक तरह के व्यसन हैं, जिन के फन्दे में पढ़ कर उन से पिण्ड छुड़ाना कठिन हो जाता है, जैसा कि किसी कवि ने कहा है कि-"डांकण मन्त्र अफीम रस । तस्कर ने जूआ ॥ पर घर रीझी

का मणी, ये छूटती सूआ" ॥ १ ॥ यद्यपि किन का यह कथन निलकुल सत्य है कि ये नातें मरने पर ही छूटती है तथापि इन की हानि को समझकर जो पुरुप सचे मन से छोड़ना चाहे नह अनश्य छोड़ सकता है, इस लिये व्यसनी पुरुप को चाहिये कि यथाशक्य व्यसन को धीरे २ कम करता जाने, यही उस (व्यसन) के छूटने का एक सहज उपाय है तथा यदि आप व्यसन में पड़ कर उस से निकलने में असमर्थ हो जाने तो अपनी सन्तित का तो उस से अनश्य नचान रक्से जिस से मानी में नह तो दुर्द-शा में न पड़े।

इन पूर्व कहे हुए सात महा व्यसनों के अतिरिक्त और भी बहुत से कुव्यसन है जिन से बचना बुद्धिमानों का परम धर्म है, हे पाठक गणो ! यदि आप को अपनी शारीरिक उन्नित का, झुखपूर्वक धन को प्राप्त करने का तथा उस की रक्षा का ध्यान है, एवं धर्म के पाछन करने की, नाना आपत्तियों से बचने की तथा देश और जाति को आनन्द मंगल में देखने की अभिलाश है तो सदा अफीम, चण्डू, गांजा, चरस, धतूरा और मांग आदि निक्कष्ट पदार्थों से बचिये, क्योंकि ये पदार्थ परिणाम में बहुत ही हानि करते हैं, इसी लिये धर्मशाक्षों में इन के त्याग के लिये अनेकशः आज्ञा दी गई है, यद्यपि इन पदार्थों के सेवन करने वालोंकी दुर्दशा को बुद्धिमानोंने देखा ही होगा तथापि सर्व साधारण के जानने के लिये इन पदार्थों के सेवन से उत्पन्न होनेवाली हानियों का संक्षेप से वर्णन करते हैं:—

अप्रिम अफीम के खाने से बुद्धि कम हो जाती है तथा मगज़ में ख़ुश्की वढ़ जाती है, मनुष्य न्यूनवळ तथा छुत हो जाता है, मुख का प्रकाश कम हो जाता है, छुत्वपर स्याही जा जाती है, मांस स्तूल जाता है तथा खाळ छुरझा जाती है, विर्यका वळ कम हो जाता है, इस का सेवन करनेवाळे पुरुष बंटोंतक पीनक में पड़े रहते हैं, उन को रात्रि में नीद नहीं जाती है जीर प्रातःकाळ में दिन चढने तक सोते है जिस से आछु कम हो जाती है, दो पहर को शीच के लिये जाकर वहां (शीचस्थान में) घण्टों तक वैठे रहते हैं, समय पर यदि अफीम खाने को न मिळे तो आंखों में जळन पड़ती है तथा हाथ पैर पेंठने ठगते है, जाड़े के दिनों में उनको पानी से ऐसा डर ठगता है कि वे जानतक नहीं करते है इस से उन के शरीर में दुर्गय आने ळगती है, उन का रंग पीला पड़ जाता है तथा खांसी आदि अनेक प्रकार के रोग हो जाते है।

ंचिण्डू—इस के नशे से भी ऊपर लिखी हुई सब हानियां होती है, हां इस में इतनी विशेषता और भी है कि इस के पीने से हृदय में भैल जम जाता है जिस

१-पीनक में पड़ने पर उन छोगों को यह भी छुछ बुध नहीं रहती है कि हम कहा है, संसार कियर है और सतार में क्या हो रहा है ॥

से हृदयसम्बंधी अनेक महामयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं तथा हृदय निर्नेष्ठ हो जाता है।

गांजा, चरस, घतुरा और भांग इन चारों पदार्थों के भी सेवन से सांसी और दमा आदि अनेक हृदय रोग हो जाते हैं, मगज़ में निश्चिमता को स्थान मिळता है, विचारशक्ति, सारणशक्ति और वृद्धि का नाश होता है, इन का सेवन करनेवाला पुरुष सम्य मण्डली में बैठने योग्य नहीं रहता है तथा अनेक रोगों के उत्पन्न होने से इन का सेवन करनेवालों को आधी उम्रमें ही मरना पड़ता है।

तमाखू — मान्यवरो ! वैद्यक अन्थों के देखने से यह स्पष्ट अकट होता है कि तमालू संखिया से भी अधिक नशेदार और हानिकारक पदार्थ है अर्थात् किसी वनस्पति में इस के समान वा इस से अधिक नशा नहीं है।

डाक्टर टेलर साहब का कथन है कि—" जो मनुष्य तमालू के कारलानों में काम करते हैं उन के शरीरमें नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं अर्थात् थोड़े ही दिनों में उन के शिर में दर्द होने लगता है, जी मचलाने लगता है, वल घट जाता है, सुसी घेरे रहती है, मूल कम हो जाती है और काम करने की शक्ति नहीं रहती है" इत्यादि।

बहुत से वैद्यों और डाक्टरोंने इस वातको सिद्ध कर दिया है कि इस के धुएँ में ज़हर होता है इसिलये इस का धुआं भी शरीर की आरोग्यता को हानि पहुँचाता है अर्थात् जो मनुज्य तमाखू पीते है उन का जी मचलाने लगता है, कब होने लगती है, हिचकी उत्पन्न हो जाती है, श्वास कठिनता से लिया जाता है और नाड़ी की चाल धीमी पड़ जाती है, परन्तु जब मनुज्य को इस का अभ्यास हो जाता है तब वे सब बातें सेवन के समय में कम माद्धम पड़ती है परन्तु परिणाम में अत्यन्त हानि होती है।

डाक्टर सिथ का कथन है कि तमाख़ू के पीने से दिल की चाल पहिले तेज़ और

फिर घीरे २ कम हो जाती है।

वैद्यक अन्यों से यह स्पष्ट अकाशित है कि—तमाखू बहुत ही ज़हरीली (विषेली) वस्तु है, क्योंकि इस में नेकोशिया कार्वोनिक एसिड और मगनेशिया आदि वस्तुयें मिली रहती हैं जो कि मनुष्य के दिल को निर्वल कर देती है कि जिस से खांसी और दम आदि नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, आरोग्यता में अन्तर पड़ जाता है, दिल पर कीट अर्थात् मैल जम जाता है, तिल्ली का रोग उत्पन्न होकर चिरकालतक ठहरता है तथा प्रतिसमय में जी मचलाता रहता है और ग्रस्त में दुर्गन्य बनी रहती है, अब बुद्धि, से विचारने की यह बात है कि लोग ग्रसलमान तथा ईसाई आदि से तो बड़ा ही परहेन करते है परन्तु बाह री तमाखू । तेरी प्रीति में लोग धर्म कर्म की भी कुछ ग्रम और परवाह न कर सब ही से परहेन को तोड़ देते है, देखो । तमालू के बनाने

वाले मुसलमान लोग अपने ही वर्तनों में उसे बनाते हैं और अपने ही घड़ों का पानी है। जिसे है उसी को सब लोग मने से पीते है, इस के अतिरिक्त एक ही चिलम को हिन्दू मुसलमान और ईसाई आदि सब ही लोग पीते हैं कि निस से आपस में अंवखरात (परमाणु) अदल बदल हो जाते हैं तो अब कहिये कि हिन्दू तथा मुसलमान या ईसा- इयों में क्या अन्तरें रहा, क्या इसी का नाम शीच वा पवित्रता है?

प्रिय सुजनो ! केवल पदार्शविद्या के न जानने तथा वैद्यकशास्त्र पर ध्यान न देने के कारण इस प्रकार की अनेक मिथ्या वार्तों में फँसे हुए लोग चले जाते है जिस से सब के धर्म कर्म तथा आरोग्यता आदि में अन्तर पड़ गया और प्रतिदिन पड़ता जाता है, अतः अब आप को इन सब हानिकारक बार्तों का पूरा २ प्रवन्ध करना योग्य है कि जिस से आप के भविष्यत् (होनेवाले) सन्तानों को पूर्ण सुख तथा आनन्द प्राप्त हो !

है विद्वान पुरुषो । और है प्यारे विद्यार्थियो । आपने स्कूलों में पदार्थविद्या को अच्छे प्रकार से पढ़ा है इसलिये आप को यह बात अच्छे प्रकार से माद्धम है और हो सकती है कि तमाखू में कैसे २ विषेठे पदार्थ मिश्रित है और आप छोगों को इस के पीने से उत्पन्न होनेवाले दोप भी अच्छे प्रकार से प्रकट हैं अतः आप छोगों का परम कर्चव्य है कि इस महानिकृष्ट हुके के पीने का स्वयं त्याग कर अपने माइयों को भी इस से बचावें क्योंकि सत्य विद्याका फल परोपैकार ही है।

इस के अतिरिक्त यह भी सोचने की बात है कि तमाखू आदि के पीने की आज़ा किसी सत्यशास्त्र में नहीं पाई जाती है किन्तु इस का निषेध ही सर्व शास्त्रों में देखा जाता है, देखों—

> तमाखुपत्रं राजेन्द्र, भज माज्ञानदायकम् ॥ तमाखुपत्रं राजेन्द्र, भज माज्ञानदायकम् ॥ १ ॥

अर्थात् हे राजेन्द्र ! अज्ञान को देनेवाले तमाखुपत्र (तमाखू के पत्ते) का सेवन मत करो किन्तु ज्ञान और लक्ष्मी को देनेवाले उस आखुपत्र अर्थात् गणेश देव का सेवन करो ॥ १ ॥

१-तमाख् वनाते समय उन का पसीना भी उसी में गिरता रहता है, इत्यादि अनेक सछीनताये भी समाद में रहती है।

१-देखों। जिस विलम को प्रथम एक हिन्दू ने पिया तो कुछ उस के मीतर अवखरात गर्मी के कारण अवस्य विलम में रह जावेगे फिर उसी को भुसलमान और इंसाई ने पिया तो उस के भी अवख-रात गर्मा के कारण उस विलम में रह गये, फिर उसी विलम को जब ब्राह्मण क्षत्रिय और वैद्यादि ने पिया तो कहिये अब परस्पर में क्या मेह रह गया है

रे-इसी प्रकार देशी पाठशालाओं तथा काहिजों के शिक्षकों को भी योग्य है कि ने कदापि इस हुके को ने पियें कि जिन की देखादेखी सम्पूर्ण निवासी भी निकस का दस छगाने कगते हैं ॥

४-यह सभापितरलमांडागार के प्रारंभ में श्लोक है ॥

ेधूर्म्नपानरतं विमं, सत्कृत्य दृदाति यः॥ दाता स नरकं याति, ब्राह्मणो ग्रामग्र्करः॥२॥

अर्थात् जो मनुष्य तमाखू पीनेवाले ब्राह्मण का सत्कार कर उस को दान देता है वह (दाता) पुरुष नरक को बाता है और वह ब्राह्मण श्राम का शुकर (धुअर) होता है ॥ २ ॥ इसी मकार शार्क्मधर वैचक श्रन्थ में लिखा है कि—"मुद्धिं लुम्पित यद्भव्यं मदकारि तदुच्यते" अर्थात् जो पदार्थ बुद्धि का लोप करता है उस को मदकारी कहते है ।

ऊपर के कथन से स्पष्ट है कि तमाखू आदि का पीना महाहानिकारक है परन्तु धर्तमान में लोग धाओं से तो विलक्कल अनिश्च है जतः उन को पदाशों के गुण और दोष विदित नहीं हैं, दूसरे—देशमर में इन कुत्यसनों का अत्यन्त प्रचार बढ रहा है जिस से लोग प्रायः उसी तरफ को झुक जाते हैं, तीसरे—कुत्यसनी लोगों ने मोले लोगों को बहकाने और फँसाने के लिये इन निक्कष्ट वस्तुओं के सेवन की प्रशंसा में ऐसी २ कपोल-किएत कवितायें रचडाली हैं जिन्हें सुनकर वे बेचारे मोले पुरुष उन वाक्यों को मानो धालीय वाक्य समझ कर बहक जाते और फँस जाते हैं अर्थात् उन्हीं निक्कष्ट पदार्थों का सेवन करने लगते हैं, देखिये ! इन कुत्यसनी लोगों की कविता की तरफ दृष्ट डालिये और विचारिये कि इन्हों ने मोले भाले लोगों के फँसाने के लिये कैसी माया रची है:—

भक्षीनै—गज गाइण डाइण गढां, हाथ या देण इमछ ॥ मतवालां पौरष चढ़े, आयो मीत अमछ ॥ १॥

१-यह पदापुराण का वाक्य है।।

२-तात्पर्यं यह है कि मदकारी पदार्थ दुद्धि का छोप करता है॥

३—आजकल राजपूर्तों में अफीम वही ही जरूरी चीज समझी जाती है अर्थात इस की जरूरत सन्तान के पैदा होने, सगाई, व्याह, लहाई और गमी आदि प्रखेक सौके पर उन को होती है, इन अवसरों में वे होग अफीम को बाटते हैं और गालना कर के लोगों को पिलाते हैं, उन लोगों में सब से वह कर बात यह है कि किसी आदमी से चाहे कितनी ही अदावत हो परन्तु जब उस के हाय से अफीम ने लो तो बस उसी दम सफाई हो जानेगी, राजपूत लोग अफीम के नचे को मर्द नवामी कहते हैं अर्थात मय के नचे से इसे अच्छा मानते हैं और इस का बहुत बसान भी करते हैं, यदाप अफीम का प्रचार उत्तर प्रिवम मारावाड़ में और मद्य का प्रचार पूर्व में अधिक है तथापि प्रायः सर्दार और जागीरदार लोग मय से ही विगडते और मराते हैं क्योंकि वे लोग इस का पीना वचपन से ही गोले गोलियों की खराब सगति में पढ़ कर सीख जाते हैं, फिर—डोली, डाडी, रण्डी और महुप आदि मद्य की तारीफ के गीत गा २ कर उन के नचे को प्रतिदिन वढाते रहते हैं, जैसी कि मद्य की महिमा कुछ उत्तर लिख कर बतलाई है, इस का प्रचार केवल किसी देशविशेष में ही हो यह बात नहीं है किन्तु सपूर्ण आर्थावर्त्त में यही दशा हो रही है इस लिये बुद्धिमानो का यही कर्ताव्य है कि अपने और समस्त देश के हिताहित का विचार कर इन कुळ्यसनों को दूर करें।

हुका—अस चढ़ना अस उचकना, नित खाना लिर गोश ॥ जगमांही जीनाजिते, पीना चम्मर पोश ॥ १ ॥ शिरपर वँघा न सेहरा, रण चढ़ किया न रोस ॥ लाहा जग में क्या लिया, पिया न चम्मर पोस ॥ २ ॥ हुका हिर को लाड़लो, राखे सब को मान ॥ भरी सभा में यों फिरे, ज्यों गोपिन में कान ॥ ३ ॥

मध—दारू पियो रंग करो, राता राखो नेंण ॥
वेरी थांरा जलमरे, सुल पावेला सेंण ॥ १ ॥
दारू दिल्ली आगरो, दारू बीकानेर ॥
दारू पीयो साहिबा, कोई सौ रुपियां रो सेर ॥ २ ॥
दारू तो भक भक करे, सीसी करे पुकार ॥
हाथ पियालो धन खड़ी, पीयो राजकुमार ॥ ३ ॥

गांजा—जिस ने न पी गांजे की कठी। उस छड़के से छड़की भछी॥१॥

गांग—घोट छांण घट में घरी, उठत लहर तरङ्ग ॥
विना मुक्त बैकुण्ठ में, लिया जात है भट्न ॥ १ ॥
जो तू चाहै मुक्त को, सुण कलियुग का जीव ॥
गंगोदक में छाण कर, भंगोदक कूं पीव ॥ २ ॥
'मंग कहै सो बाबरे, विजया कहें सो कूर ॥
इसका नाम कमलापती, रहे नैन भर पूर ॥ ३ ॥

तमाल्-कृष्ण चले बैक्कण्ठ को, राघा पकड़ी वांहि॥

यहां तमाखू खायलो, वहां तमाखू नांहि ॥ १ ॥ इलादि ।

मिय सुजन पुरुषो ! विचारशीलों का अब यही कर्चव्य है कि वैद्यशास आदिसे निषिद्ध तथा महा हानिकारक इन कुल्यसनों का जड़मूल से ही नाश कर दें अर्थात् लयं इन का त्याग कर दूसरों को भी इन की हानियां समझा कर इन का त्याग करने की शिक्षा दें, क्योंकि इन से ऊपर कही हुई हाज़ियों के सिवाय कुछ ऐसी भी हानियां होती है जिन से मनुष्य किसी काम का ही नहीं रहता है देखिये। जो पुरुष जितना इन नशों को पीता है उतनी ही उसकी रुचि और भी अपिक बढ़ती जाती है जिस से उस का फिर इन व्यसनों से निकलना कठिन हो कर इन्हीं में जीवन का त्याग करना पड़ता है, दूसरे—इन में रुपया तथा समय भी ज्यर्थ जाता है, दीसरे—इन के सेवन से बहुषा मनुष्य पागल भी हो जाते है और बहुतसे मर भी जाते है, चौथे—छोटे र मनुष्यों में भी नशेवालों की प्रतिष्ठा नहीं रहती है फिर मला बड़े लोगों में तो ऐसों को कौन पूंछता है, अतः समझदार लोगों को इन की ओर इिट भी नहीं डालनी चाहिये॥

सर्वहितकारी कर्चव्य ॥

शरीर की आरोग्यता रखने की जो २ मुख्य बातें है उन सब का जानना और उन्हीं के अनुसार चलना मनुष्यमात्र को योग्य है, इस विषय में आवश्यक बातों का संग्रह संक्षेप से इस प्रन्थमें कर दिया गया है, अब विचारणीय विषय यह है कि-शरीर की भारोग्यता के लिये जो २ आवश्यक नियम है वे सब ही सामान्य प्रजा जनों के आधीन नहीं हैं किन्तु उन में से कुछ नियम खाधीन हैं तथा कुछ नियम पराधीन हैं, देख़ी! आरोग्यताजन्य सुख के लिये प्रत्येक प्ररुष को उचित आहार और विहार की आवश्य-कता है इस लिये उस के नियमों को समझ कर उन की पावन्दी रखना यह प्रत्येक पुरुष का धर्म है क्योंकि आहार और विहार के आवश्यक नियम प्रत्येक पुरुष के खाधीन हैं परन्तु नगरों की सफाई और आवश्यक प्रवन्धों का करना कराना आदि आवश्यक नियम प्रत्येक पुरुष के आधीन नहीं हैं किन्त ये नियम सभा के छोगों के तथा सर्कार के नियत किये हुए शहर सफाई लाते के अमलदारों के आधीन हैं, इसलिये इन को चाहिये कि प्रजा के आरोग्यताजन्य सुख के लिये पूरी २ निगरानी रक्खें तथा जो २ आरोग्यता के आव-इयक उपाय मजा के आधीन हैं उन पर प्रजा को पूरा घ्यान देना चाहिये, क्योंकि उन उपायों के न जानने से तथा उन पर पूरा ध्यान न देने से अज्ञान प्रजाजन अनेक उप-द्रवों और रोगों के कारणों में फँस जाते है, इसलिये आरोग्यता के आंवश्यक उपायों का जानना प्रत्येक छोटे बड़े मनुष्य का मुख्य कार्य है, क्योंकि इन के न जानने से बड़ी हानि होती है. देखो ! कभी २ एक मनुष्य की ही अज्ञानता से हजारों लाखों मनुष्यों की जान को जोखम पहुँच जाती है. परन्त यह सब ही जानते है कि साधारण पुरुष उपदेश और शिक्षा के विना कुछ भी नहीं सीख सकते है और न कुछ जान सकते हैं, इसलिये अज्ञान प्रजाजनों को आहार और विहार आदि आरोग्यता की आवश्यक बातों से निज्ञ करना मुख्यतया निद्वान वैद्य डाक्टर और सर्कार का मुख्य कर्चन्य है अर्थाव लोग आरोग्यता के द्वारा अली रहें इस प्रकार के सद्भाव को हृदय में रखनेवाले वैव और डाक्टरों को वैद्यक विद्या का अवस्य उद्धार करना चाहिये अर्थात वैद्य और डाक्टरों को उचित है कि वे रोगों की उत्पत्ति के कारणों को खोज २ कर जाहिर करें, उन कारणों को इटावें और वे कारण फिर न प्रकट हो सकें, इस का पूरा प्रवंध करें और उन कारणों के हटाने के योग्य उपायों से प्रजाजनों को विश करें तथा प्रजाजनों को चाहिये कि उन व्यावश्यक उपायों को समझ कर उन्हीं, के अनुसार वर्त्ताव करें उस से विरुद्ध कदापि न चलें, क्योंकि उस से विरुद्ध चलने से नियमों की पावन्दी जाती रहती है और प्रवन्य इयर्थ जाता है, देखों ! म्यूनीसिपळ कमेटी के अधिकारी आदि जन वहें २ राखों में गली कूंचों में तथा सब गुहलों में जाकर तथा सोज ऋर चाहें जितनी सफाई रक्सें परन्तु

जब तक प्रजा जन अपने २ घर आंगन में इकड़ी हुई रोगों को पैदा करनेवाली मलीनता को नहीं हटावेंगे तथा आहार विहार के आवश्यक साधीन नियमों को नहीं जानेंगे तथा उन्हीं के अनुसार वर्ताव नहीं करेंगे तबतक शहर की सफाई और किये हुए आवश्यक प्रवन्मों से कुछ भी फल नहीं निकल सकेगा।

वर्त्तमान में जो आरोग्यता में वाघा पड़ रही है और सब आवश्यक नियम और प्रवन्य अखिरवत् हो रहे है उस का कारण यही है कि इस समय में अज्ञान लोग अधिक हैं अर्थात पढ़े लिखे भी बहुत से पुरुष शरीर रक्षा के नियमों से अनिमन्न है, यदि इस पर कोई पुरुष यह प्रश्न करे कि अब तो स्कूळों में अनेक विद्यायें और अनेक कठायें सिखलाई जाती है जिन के सीखने से लोगों का अज्ञान दूर हो रहा है फिर भाप कैसे कहते हैं कि वर्तमान समय में अज्ञान छोग अधिक है ? तो इस का उत्तर यह है कि-वर्तमान समय में स्कूलों में जो अनेक विवारों और अनेक कलायें सिखलाई जाती है यह तो दुझारा कहना ठीक है परन्तु शरीर संरक्षण की शिक्षा स्कूलों में पूरे तौर से नहीं दी जाती है, इसीलिये इम कहते हैं कि पढ़े लिखे भी बहुत से पुरुष शरीर रक्षाके नियमों से अनिमज्ञ है, देखो ! मारवाड़ में जो विद्या के पढाने का कम है उसे तो हम पहिले लिखही चुके है कि उन की पढ़ाई शिक्षा के विषय में खाल घूल मी नहीं है, अब गुजराती, बंगला, मराठी और अंग्रेज़ी पाठशालाओं की तरफ दृष्टि डालिये तो यही ज्ञात होगा कि उक्त पाठशालाओं में तथा उक्त मानाओं की पुस्तकों में जिस कम से कसरत, हवा, पानी और शकाश आदि का विषय पढ़ाने के छिये नियत किया गया है वह क्रम ऐसा है कि छोटे २ वालकों की समझ में वह कभी नहीं आ सकता है, क्योंकि वह शिक्षा का कम अति कठिन है तथा संक्षेप में वर्णित है अर्थात् विस्तार से वह नहीं लिखा गया है, देखो ! थोड़े वर्ष पूर्व अंग्रेज़ी के पांचवें धोरण में सी-नेटरी प्रायमर अर्थात् आरोग्यविद्याका प्रवेश किया गया था परन्तु उस का फल अवतक कुछ भी नहीं दीस पड़ता है, इस का कारण यही भतीत होता है कि उस का प्रारंभ वर्ष के अन्तिम दिनों में कक्षा में होता है और परीक्षा करनेवाले पुरुष अमुक २ विषय के पश्नों को पायः पूछते है इस वात का खयालकर शिक्षक और माप्टर लोग मुख्य २ विपयों के प्रश्नों को घोला २ के कण्ठाम करा देते है अर्थात् सव विपयों को याद नहीं कराते है, परन्तु इस में माष्टरों का कुछ भी दोष नहीं है, क्योंकि दूसरे जो मुख्य २ विषय नियत है उन्हीं को सिखाने के लिये जब शिक्षकों को काफी समय नहीं मिलता है तो मला जो निषय गौण पक्ष में नियत िकसे है उनपर शिक्षक पुरुष पूरा ध्यान कन दे सकते है, ऐसी दशा में सर्कार को ही इस विषय में ध्यान देकर इस विद्या को उन्नति देनी चाहिये अर्थात् इस आरोग्यपद नैद्यक विद्या को सर्व विद्याओं में शिरोमणि समझ

कर धोरण में ग्रुख्य विषय के तरीके पर नियत करना चाहिये, हमारे इस कथन का यह प्रयोजन नहीं है कि श्रीमती सर्कार को कोर्स में नियत कर के सम्पूर्ण ही वैद्यक विद्या की शिक्षा देनी चाहिये किन्तु हमारे कथन का प्रयोजन यही है कि कम से कम हवा, पानी, खुराक, सफाई और कसरत आदि के गुण दोगोंकी आवश्यक शिक्षा तो अवश्य देनी ही चाहिये जिस के वर्चाव से प्रतिदिन ही मनुष्य को काम पड़ता है, इस के लिये सहज उपाय यही है कि पाठशालाओं में पढ़ाने के लिये नियत की हुई पुस्तकों के पाठों में पहिले तो इस विद्या के सामान्य नियम बतलाये जानें जो कि सरल और उपयोगी हों तथा जिन के समझने में विद्यार्थियों को अधिक परिश्रम न पड़े, पीछे इस (विद्या) के स्क्ष्म विश्यों को जिन्हीं पुस्तकों के पाठों में प्रविष्ठ करना चाहिये।

वर्तमान में जो इस विद्या की कुछ बातें स्कूछों में पढी पढाई भी जाती हैं उन्हें गौण जानकर उन पर पूरे तौर से न तो कुछ घ्यान दिया जाता है और न वे बातें ही ऐसी हैं कि पाठकों के चित्तपर अपना कुछ प्रभाव डाल सकें इसलिये उन का पढ़ना पढ़ाना बिलकुल न्यर्थ जाता है, देखो ! स्कूल का एक विद्वान विधार्थी भी (जिस ने इस विधा की यह शिक्षा पाई है तथा दूसरों को भी शिक्षा के देने का अधिकारी हो गया है कि साफ पानी पीना चाहिये, साफ वस्न पहरने चाहियें तथा प्रकृति के अनुकूल ख़राक लानी चाहिये) घर में जाकर प्रतिदिन उपयोग में आनेवाली वस्तओं के भी गुण और दोष को न जान कर उन का उपयोग करता है, भला कहिये यह कितनी अज्ञानता है, क्या स्कल में शिक्षा के पाने का यही फल है ? स्कूल का पदार्थ विद्या का वेता एक विद्यार्थी यदि यह नहीं जानता है। कि मूली और दूध तथा मूंग की दाल और दूध मिश्रित कर खाने से शरीर में थोड़ा र जहर प्रतिदिन इकट्टा होकर मिवण्यत् में क्या र बिगाइ करता है तो उस के पद्धिविद्या के पढ़ने से क्या लाग है ! मला सोचो तो सही कि ऊपर लिखी हुई एक छोटौसी बात को भी वह विद्यार्थी जब कि खम में भी नहीं जानता है तो आरोग्यता के विशेष नियमों को वह क्यों कर जान सकता है: वा कैसे उन के जानने का अधिकारी हो सकता है ! स्कूछ के उच कक्षा के विद्यार्थी भी जो कि आकाश के अहीं और तारों की गात के तथा उन के परिवर्चन के नियमों को कण्ठाम पढ़ जाते है ऋतुओं के परिवर्त्ता से शरीर में क्या २ परिवर्त्तन होता है उस के लिये किस २ आहार निहार की संपाल रखनी चाहिये इत्यादि बातों को निलकुल नहीं जानते हैं, इसी प्रकार सूर्य और चन्द्रया के अहण के कारण को तथा उन के आकर्षण से समुद्रों में होनेवाले ज्वार माटे (उतार चढ़ाव) के नियम को तो वे (विद्यार्थी) समझ सर्केंगे परन्तु इस शहचक का शरीर निर कैसा असर होता है और उस के आकर्षण से शरीर में

१-जिन के विषय में हम पहिले हिख चुके है ॥

किस प्रकार की न्यूनाधिकता होती है इन बातों का ज्ञान उन विद्यार्थियों को कुछ मी नहीं होता है, सिर्फ यही कारण है कि वैद्यक शास्त्र के नियमों का ज्ञान उन्हें न होने से वै खयं उन नियमों का पालन नहीं करते हैं तथा दूसरों को नियमों का पालन करते हुए देखकर उन का उलटा उपहास करते है, जैसे देखो ! द्वितीया, पश्चमी, अष्टमी, एकादशी, चतर्दशी. पूर्णमासी और अमावस. इन तिथियों में उपवास और व्रत नियम का करना वैद्यक विद्या के आधार से बुद्धिमान आचारों ने धर्म रूप में प्रविष्ट किया है, इस के असकी तत्त्व की न समझ कर वे इस का हास्य कर अपनी विशेष अज्ञानता की प्रकट करते है. इसी प्रकार माद्रपद में पित्त के सिश्चत हो जुकने से उस के कीप का समय समीप आता है इस लिये सर्वज्ञ ने पर्युषण पर्व को खापन किया जिस में तेला उपवासादि करना होता है तथा इस की समाप्ति होने पर पारणे में छोग मीठा रस और दघ आदि पदार्थों को खाते है जिन के खाने से पित्त की विलक्षण शान्ति हो जाती है. देखी ! चरक ने दोशों की पकाने के लिये लंघन को सर्वोपिर पथ्य छिला है उस में भी पित्र और कफ के लिये तो कहना ही क्या है, इसी नियम को लेकर आश्विन (आसोज) छदि सप्तमी वा अप्टमी से जैन धर्म बाले नौ दिन तक आंबिल करते है तथा मन्दिरों में जाकर दीप और घूप आदि सुगन्धित बस्तुओं से स्नात्र अष्टप्रकारी और नवपदादि पूजा करते है जिस से शरद ऋत की हवा भी साफ होती है, क्योंकि इस ऋत की हवा बहुत ही ज़हरीली होती है, शरीर में जो पित्त से रक्तसम्बंधी विकार होता है वह सी आंबिल के तेंप से शान्त हो जाता है, इसी प्रकार वसन्त ऋत की हवा को ग्रुद्ध करने के लिये भी चैत्र द्धिद सप्तमी वा अष्टमी से लेकर नौदिन तक यही (पूर्वोक्त तप) विधिपूर्वक किया जाता है जिस के पुजासम्बन्धी व्यवहार से हवा साफ होती है तथा उक्त तप से कफ की भी शान्ति होती है, इसी प्रकार से जो २ पर्व बावे गये है वे सब वैद्यक विद्या के आश्रय से ही धर्मव्यवस्था प्रचारार्थ उस सर्वज्ञ के द्वारा आदिष्ट (कथित) है, एवं अन्य मतों में भी देखने से वही व्यवस्था प्रतीत होती है जिस का वर्णन अभी कर चुके है, देखो । आश्विन के कृष्ण पक्ष में ब्राझणों ने जो आद्धमोजन चलाया है वह भी वैद्यक विद्या से सम्बंध

१-वेला उपवास अर्थात् तीन दिन का उपवास ॥

२-उपवास सम्भा व्रत नियम के समाप्त होने पर प्रकृत्सजुसार उपयोज्य बद्ध के उपयोग को पारण कहते हैं॥

रे-अर्थात् पित्त और कफ के पक्ने के लिये तथा उन की शान्ति के लिये तो लघन ही मुस्य उपाय है॥

४-भाषिक तप उसे कहते हैं जिस में सब रसो का लाग कर चावल, गेहूँ, चना सूग और उडद इन पांच अन्नों में से केवल एक अन्न निमक के विना ही सिवाया हुआ खागा जाता है और गमें कियाहुआ करु पिया जाता है ॥

रान्त है अर्थात आद में मायः द्वर और सीठा खाया जाता है जिस के जाने से अपने शान्त हो जाता है, तात्पर्य यह है कि भानीन विद्वानों और बुद्धिमानों ने जार न्यवहार ऋतु आदि के आहार विहार को विचार कर प्रश्नत किसे हैं के सब ही मनुष्यों के किय परम अभदायक है परन्तु उन के नियमों को ठीक सीति से न जानना तथा नियमों के जाने विना उन का मनमाना वर्त्ताव करना कमी अमदायक नहीं हो सकता है ।

अत्यन्त शोक के साथ जिल्ला पहता है कि यद्या प्राचीन सर्व ज्यवहारों की प्रवीचार्य में बड़ी दूरदिशता के साथ वैद्यक विद्या के नियमों के अनुसार नाम था. कि जिन से सर्व साधारण को आरोग्यता आदि झुलों की प्राप्ति हो परन्तु नर्तमान से इतनी अविद्या नर्ति है कि लोग उन प्राचीन समय के पूर्वाचारों के बांचे हुए सब ज्यवहारों के लागी तत्व को न समझ कर उन में भी मनमाना अनुचित ज्यवहार करने लगे हैं जिस से हुल के बदले उलटी दुःल की ही प्राप्ति होती है, अतः हुलों का यह कर्तन्य है कि इस स्वार्थ अवक्ष्य ध्यान देकर वैद्यक विद्या के नियमों के अनुसार बांचे हुए इयवहारों के तत्त्व की ख्या समझ कर उनहीं के अनुसार लयं वर्ताव करें तथा दूसरों को भी उन की शिक्षा देकर उन में प्रवृत्त करें कि जिस से देश का कल्याण हो तथा सर्वसाधारण की हितसिब होने से उमय लोक के हुलों की प्राप्ति हो।

यह चतुर्यः संस्थाय-का सदाजारवर्णन-नामक नवां धकरणेडसमास-हराणी

दर्शवां अकरणं -रोगसामान्य कारण ॥

रोग का विवरण ॥

आरोग्यता की दशा में अन्तर पड़ जाने का नाम रोग है परन्तु नीरोगावस्था और रोगावस्था के बीच की मर्यादा की कोई स्पष्ट पहिचान नहीं है कि हन दोनों के बीच की दशा कैसी है और उस में क्या २ असर है, इस छिये इन दोनों अवस्थाओं का भी पूरा २ वर्णन करना कुछ कठिन बात है, देखों। आदमी को ज़रा भी खबर नहीं पड़ती है और वह एक दशा से घीरे २ दूसरी दशा में जा गिरता है अर्थात् नीरोगावस्था से रोगा- वस्था में पहुँच जाता है।

इमारे पूर्वाचारों ने इन दोनों अवस्थाओं का वर्णन यशाशक्य अच्छा किया है, उन्हीं के केखानुसार हम मी पाठकों को इन के ख़ह्मप का बोध कराने के लिये यथाशक्ति चेष्टा करते है-देखो ! नीरोगावस्था की पहिचान पूर्वाचार्यों ने इस प्रकार से की है कि सब अंगों का काम खामाविक रीति से चलता रहे-अर्थात फेफसे से श्वासोच्छास अच्छी तरह चन्ता रहे, होनरी तथा आँतों में ख़राक अच्छी तरह पचता रहे, नसों में नियमानुसार रुपिर फिरता रहे, इत्यादि सब क्रियार्थे ठीक २ होती रहें, मछ और मूत्र आदि की प्रष्टिं नियमानुसार होती रहे तथा मन और इन्द्रियां सस्य रह कर अपने २ कार्यों को नियमपूर्वक करते रहें, इसी का नाम नीरोगावस्था है तथा शरीर के अक्क खामाविक रीति से अपना २ काम न कर सकें अर्थात श्वासोच्छास में अड़चल माछम हो वा दर्द हो, रुधिर की गति में विषमता हो, पाचन किया में विष्न हो, मन और इन्द्रियों में ग्लानि रहे, मरू और मूत्र आदि बेगों की नियमानुसार प्रवृत्ति न हो, इसी प्रकार दूसरे अंगों की यथोचित प्रवृत्ति न हो, इसी का नाम रोगावस्था है अर्थात इन वार्तों से समझ छेना चाहिये कि आरोग्यता नहीं है किन्तु कोई न कोई रोग हुआ है, इस के सिवाय जव किसी आदमी के किसी अवयव में दर्द हो तो भी रोग का होना समझा जाता है. विशेष कर दाहयुक्त रोगों में, अथवा रोग की आरम्भावस्था में आदमी नरम हो जाता है. किसी प्रकार का दर्द उत्पन्न हो जाता है, शरीर के अवयव शक जाते है शिर में दर्द होता है और मूंख नहीं अगती है, जब ऐसे अक्षण माख्स पढ़ें तो समझ छेना चाहिये कि कोई रोग हो गया है, जब श्वरीर में रोग उत्पन्न हो जाब तब मनुप्य को उचित है ^{कि-काम} काज और परिश्रम को छोड़ कर रोग के हटाने की चेष्टा करे अर्थात उस (रोग) को आगे न वढने दे और उस के हेतु का निश्चय कर उस का योग्य उपाय करे, क्योंकि आरोग्यता का बना रहना ही जीव की खामाविक स्थिति है और रोग का होना विकृति है, परन्तु सब ही जानते और मानते हैं कि अञ्चातामेदनी नामक कर्म का जब उदय होता है तब चाहे आदमी कितनी ही सम्माळ क्यों न रक्से परन्तु उस से मूळ हुए विना कदापि नहीं रहती है (अवस्य मूळ होती है) किन्तु जबतक शातानेदनी कर्म के योग से आदमी कुदरती नियम के अनुसार चळता है और जबतक शरीर को साफ हवा पानी और ख़ुराक का उपयोग मिळता है तबतक रोग के आने का भय नहीं रहता है, यद्यपि आदमी का कमी न चूकना एक असम्मव बात है (मनुष्य चूके विना कदापि नहीं बच सकता है) तथापि यदि विचारशीळ आदमी शरीर के नियमों को अच्छे प्रकार समझ कर उन्हीं के अनुसार वर्षाव करे तो बहुत से रोगों से अपने शरीर को बचा सकता है।

रोग के कारण ॥

इस बात का सर्वदा सब को अवस्य ध्यान रखना चाहिये कि कारण के विना रोग फदापि नहीं हो सकता है और रोग के कारण को ठीक २ जाने विना उस का अच्छे भकार से इलाज भी नहीं हो सकता है, इस बात को यदि आदमी अच्छी तरह समझ छे तो वह अम्यन्तर (आन्तरिक) विचारशील होकर अपने रोग की परीक्षा को खयं ही कर सकता है और रोग की परीक्षा कर छेने के बाद उस का इलाब कर छेना भी लांधीन ही है, देखों ! जब रोग का कारण निवृत्त हो जावेगा तब रोग कैसे रह सकता है ! क्योंकि अज्ञानता से होचकी हुई मूळ को ज्ञान से सुधारनेपर खामाविक नियम ही अपना काम कर के फिर असली दशा में पहुँचा देता है, क्योंकि जीव का सहस्य अव्या-वाघ (विशेष बाघा से रहित अर्थात अव्याघात) है इसिकेये शरीर में रोग के कारणों को रोकनेवाळी स्तामाविक शक्ति स्थित है, दूसरे-पुण्य के कृत्यों के करने से भी शाता-वेदनी कर्म में भी रोग को रोकने की सामाविक शक्ति है, इस लिये रोग के अनेक कारण तो उद्यम के विना ही सामाविक किया से दूर होते जाते हैं, क्योंकि एक दूसरे के विरोधी होने से रोग और खामाविक शक्ति का, श्वातावेदनी और अञ्चातावेदनी कर्म का तथा निश्चयनय से जीव और कर्म का परस्पर शरीर में सदा झगड़ा रहता है, जब शातावेदनी कर्म की जीत होती है तब रोग को उत्पन्न करनेवाले कारणों का कुछ मी असर नहीं होता है किन्तु जब असातावेदनी कर्म की जीत होती है तब रोग के कारण

२-क्योंकि रोग का निदान यदि ठीक रीति से समझ में आजाने तो रोग की निकित्ता कर लेगा कुछ भी कठिन नात नहीं है ॥

^{9—}जानने अर्थात् ज्ञान की वढी सिंहमा है क्योंकि ज्ञान से ही सब कुछ हो सकता है, देखों ि भगवती सूत्र में लिखा है कि-"ज्ञानी जिस कर्म को खासोच्छ्वास में तोढ़ता है उस कर्म को अज्ञानी करोड वर्ष तक कुछ मोग करमी नहीं तोड सकता है" ॥

अपना असर कर उसी समय रोग को उत्पन्न कर देते है, देखो ! पुण्य के योग से बळवान् आदमी के श्वरीर में रोग के कारणों को रोकनेवाळी श्वातावेदनी कर्म की शक्ति अधिक हो जाती है परन्तु निर्वेळ आदमी के श्वरीर में कम होती है इस लिये बळवान् आदमी वहुत ही कम तथा निर्वेळ आदमी वार २ बीमार होता है ।

जीव की खाभाविक शक्ति ही शरीर में ऐसी है कि उस से रोगोत्पत्ति के पश्चात उपाय के विना भी रोग दव जाता वा चला जाता है, इस के अनेक उदाहरण शरीर में प्रायः देखे बाते है जैसे-आंख में जब कोई तृण आदि चला जाता है तब शीघ ही अपने आप पानी झर झर कर वह (तुण आदि) वह कर बाहर निकल पहता है, यदि कभी रात में वह (तृण आदि) आंख में पड़ जाता है तो प्रातःकाल खयं ही कीचह (आंख के मैल) के साथ निकल जाता है और आंख विना इलाज किये ही अच्छी हो जाती है. कमी २ जब अधिक भोजन कर छेनेपर पेट में बोझा हो जाता है तथा दर्द होने छगता है तब प्रायः लयं ही (अपने आप ही) अर्थात् ओषि के विना ही वमन और वस्त होकर वह (वोशा और दर्द) मिट जाता है, यदि कोई इस वमन और दस्त को रोक देवे तो हानि होती है, क्योंकि जीव के साथ सम्बंध रखनेवाली जो शातावेदनी कर्म की शक्ति है वह पेट के मीतरी बोझे और दर्द को मिटाने के लिये नमन और दस्त की किया को पैदा करती है, शरीरपर फोड़े, फफोछे और छोटी २ गुमड़ियां होकर अपने आप ही मिट जाती है तथा ज़ुखाम, शर्दी गर्मी और खांसी होकर प्रायः इलाज के विना (अपने आप ही) मिट जाती है और इन के कारण उत्पन्न हुआ बुखार भी अपने आप ही चला नाता है, तात्पर्य यही है कि अञ्चातानेदनी कर्म तो नीन के साथ प्रदेशवन्य में रहता है और वह अलग है किन्तु शातावेदनी कर्म जीव के सर्व प्रदेशों में सम्बद्ध है, इस िंये ऊपर लिली व्यवस्था होती है, जैसे-पन्नी दीवारपर सूसे चूने की वा घूळ की सुद्वी के डाठने से वह (सूखा चूना वा घूठ) थोड़ा सा रह जाता है, बाकी गिर जाता है, वाकी रहा वह हवा के झपट्टे से अलग हो जाता है, इसी कम से वह रोग भी खतः मिट जाता है, इस से यह सिद्ध हुआ कि जीव के साथ कर्मों के चार वन्य हैं अर्थात् प्रकृति-वन्म, खितिवन्म, अनुमागवंघ और प्रदेशवन्म, इन चारों वन्मों को उड्डू के दृष्टान्त से समझ छेना चाहिये-देखो । जैसे सोंठ के छड्डू की प्रकृति अर्थात् खमाव तीहण (तीखा) होता है, इस को प्रकृतिवन्य कहते है, वह छड़ू महीने मरतक अथवा वीस दिनतक निज समान से रहता है इस के बाद उस में वह समान नहीं रहता है, इस को स्थिति-वंष अर्थात् अवधि (मुद्दत) बन्य कहते हैं, छटांक मर का, आघपाव का अथवा पाव भर का ळडू है, इत्यादि परिमाण आदि को अनुमागवंघ कहते है, जिन २ पदार्थों के परमाणुओं को इकट्टा कर के वह लड्डू वांचा गया है उस में स्थित जो पदार्थों के प्रदेश

हैं उन को प्रदेशवंघ कहते हैं, प्रकृतिवन्म के विषय में इतना और भी जान लेना चाहिये कि—जैसे ज्ञानावरणी कर्म का समाव आंखपर पट्टी वांघने के समान है उसी प्रकार मिन्न २ कर्मों का मिन्न २ समाव है, इन्हीं कैमीं के सम्बंध के अनुकूछ प्रदेशवंध के द्वारा उत्पन्न हुआ रोग साध्य तथा कप्टसाध्यतक होता है और स्थितिवंधवाला रोग साध्य, असाध्य और कप्टसाध्यतक होता है, इसी प्रकार अनेक दर्द कर्मसमाबद्वारा अर्थाद समाव से (विना ही परिश्रम के) मिट जाते हैं परन्तु इस से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि सब ही दर्द और रोग विना परिश्रम और विना इलाज के अच्छे हो जावंगे, क्योंकि कर्मस्यमावजन्य कारणों में अन्तर होता है, देसो ! थोड़ी अज्ञानता से जब थोड़ा सा कप्ट अर्थाद अल्य बुसार शर्दी और पेट का दर्द आदि होता है तब तो बह शरीर में एक दो दिनतक गर्मी शर्दी दस्त और वमन आदि की थोड़ी सी तकलीफ देकर अपने आप मिट जाता है परन्तु वड़ी अज्ञानता से बढ़ा कप्ट होता है अर्थाद वड़े २ रोग उत्पन्न होकर बहुत दिनोंतक ठहरते है तथा उन के कारणों को यदि न रोका जावे तो वे रोग गम्भीर रूप धारण करते हैं।

पहिले कह चुके हैं कि—रोग के दूर करने का सब से पहिला उपाय रोग के कारण को रोकना ही है, क्योंकि रोग के कारण की रुकावट होने से रोग आप ही शान्त हो जावेगा, जैसे यदि किसी को अलीर्ण से बुखार आ जावे और वह एक दो दिनतक लंघन कर लेवे अथवा मंग की दाल का पतलासा पानी अथवा अन्य कोई वहुत हलका पय्य लेवे तो वह (अलीर्णजन्य ज्वर) शीघ्र ही चला जाता है परन्तु रोग के कारण को समझ विना यदि रोग की निष्टिच के अनेक लपाय भी किये जावें तो भी रोग वह जाते हैं, इस से सिद्ध है कि रोग के कारण को समझ कर तदनुक्ल पथ्य करना जितना लागदायक होता है उतनी लाभदायक लोपिय कदापि नहीं हो सकती है, क्योंकि देखों। पथ्य के न करनेपर लोपिय से कुल भी लाम नहीं होता है तथा पथ्य करने पर लोपिय की भी कोई आवश्यकता नहीं रहेंती है, इस बात का सदा ही ध्यान रखना चाहिये कि लोपिय रोग को नहीं मिटाती है किन्तु केवल रोग के मिटाने में सहायक मात्र होती है।

कपर निस का वर्णन कर चुके हैं वह रोग को मिटानेवाली जीव की सामाविक शक्ति निश्चयनय से शरीर में रातदिन अपना काम करती ही रहती है, उस को जब सानुकल

१-जैसे सोंठ का स्तमाव वायु और फफ के हरने का है ॥

२-जैसे भिन्न २ लड्डू का मिन्न २ खमाव पित्त के, वायु के और कफ़ के इरने का है।

३-कमों का सरूप यदि विस्तारपूर्वक देखना हो तो कम प्रतिपादक ग्रन्थों में देखो ॥

४-जिसा के देशक प्रन्यों में लिखा है कि-"पब्ले सित गदार्तस्य किसीपथनिपेदणे: ॥ पध्येऽसित गदार्त्तस्य किसीपधनिपेदणे: ॥ १ ॥" अर्थात् पष्ट के करने पर रोग से पीड़ित पुरुष को कीपध सेवन की क्या आवृह्यकता है और पृथ्य न करनेपर रोग से पीड़ित पुरुष को औपध सेवन से क्या लाम है ॥ १ ॥

माहार और विहार मिलता है तथा सहायक औषि का संसर्ग होता है तब शीघ्र ही संयोगरूप प्रयत्न के द्वारा कर्म विशेषजन्य रोगपर जीव की जीत होती है अर्थात् ज्ञाताकर्म असाताकर्म कों हटाता है, यह व्यवहारनय है, जो वैद्य वा डाक्टर ऐसा अभिमान रखते है कि रोग कों हम मिटाते है जन का यह अभिमान विलक्ष झंठा है, क्योंकि काल और कर्म से बढ़े २ देवता भी हार चुके है तो मनुष्य की क्या गणना है है देखों ! पांच सम चायों में से मनुष्य का एक समवाय उद्यम है. वह सी प्रणीतया तव ही सिद्ध होता है जब कि पहिले को चारों समवाय अनुकूल हो, हां वेशक यद्यपि कई एक बाहरी रोग काट छांट के द्वारा योग्य उपचारों से शीघ अच्छे हो सकते है तथापि शरीर के भीतरी रोगों पर तो रोगनाशिका (रोग का नाश करनेवाळी) खाभाविकी (खभाव-सिद्ध) शक्ति ही काम देती है, हां इतनी बात अवस्य है कि-उस में यदि दबा को मी समझ बूझकर युक्ति से दिया, जावे तो वह (ओषि) उस खाभाविकी शक्ति की सहा-यक हो जाती है परन्त यदि विना समझे बूझे दवा दी जाने तो वह (दवा) उस खामा-विकी शक्ति की किया को वन्द कर लाम के बदले हानि करती है, इन जपर लिखी हुई बातों से यदि कोई पुरुष यह समझे कि-जब ऐसी व्यवस्था है तो दवा से क्या हो संकता है 'तो उस का यह पक्ष भी एकान्तनय है और जो कोई पुरुष यह समझे कि दवा से अवस्य ही रोग मिटता है तो उस का यह भी पक्ष एकान्त नय है, इस लिये स्याद्वाद का सीकार करना ही कल्याणकारी है, देसो ! जीव की स्वामायिक शक्ति रोग को मिटाती है यह निश्चयनय की बात है, किन्तु व्यवहारनय से दवा और पथ्य. ये दोनों मिलकर रोग को मिटाते है. ज्यवहार के साथे विना निश्चय का ज्ञान नहीं हो सकता है इस छिये सामाविक शक्तिरूप ज्ञातावेदनी कर्मको निर्वेच करनेवाचे कई एक कारण अज्ञाताकर्म के सहायक होते है अर्थात् ये कारण शरीर को रोग के असर के योग्य कर देते है और जब शरीर रोग के असर के बोस्य हो जाता है तब कई एक दूसरे भी कारण उत्पन्न होकर रोग को पैदा कर देते हैं।

रोग के मुख्यतया दो कारण होते हैं—एक तो दूरवर्षी कारण और दूसरे समीपवर्षी कारण, इन में से जो रोग के दूरवर्षी कारण है वे तो शरीर को रोग के असर के योग्य कर देते हैं तथा दूसरे जो समीपवर्षी कारण है वे रोग को पैदा कर देते है, अब इन दोनों प्रकार के कारणों का संक्षेप से कुछ वर्णन करते हैं:—

सर्वेज भगवान् श्री ऋषभदेव पूर्व वैद्यने रोग के कारणों के अनेक भेद अपने पुत्र हारीत को वतलाये थे, जिन में से मुख्य तीन कारणों का कवन किया या, वे तीनों कारण

१-इन्हों ने हारीतसिहता नामक एक बहुत बढ़ा वैद्यक का प्रन्थ बनाया था, परन्तु वह वर्त्तमान में पूर्ण उपलब्ध नहीं होता है, इस समय को हारीतसिहता नाम वैद्यक का प्रन्य छपा हुआ उपलब्ध (प्राप्त) होता है वह इन का बनाया हुआ नहीं है किन्तु किसी दूसरे हारीत का बनाया हुआ है ॥

ये हैं—आध्यात्मिक, आघिमौतिक और आधिदैविक, इन में से आध्यात्मिक कारण उन्हें कहते हैं कि जो कारण स्वकृत पाप कर्म के योग से माता पिता के रज वीर्य के विकार से तथा अपने आहार विहार के अयोग्य वर्जाव से उत्सन होकर रोगों के कारणें होते हैं, इस मकार के कारणों में ऊपर कहे हुए निश्चय और ज्यवहार, इन दोनों नयों को सर्वत्र जान जेना चाहिये, शक्ष का नृत्सम और ज़हरीले जल से उत्पन्न हुआ ज़लम आदि अनेक-विच रोगोत्पादक (रोगों को उत्पन्न करनेवाले) कारणों को तथा आगन्तुक कारणों को आधिमौतिक कारण कहते हैं, इन सन में निश्चयनय में तो पूर्व बद्ध कमींदय तथा ज्यव-हारनय में आगन्तुक कारण जानने चाहियें, हवा, जल, गर्मी, ठंढ और ऋतुपरिवर्तन आदि जो रोगों के स्वामाविक कारण हैं उन्हें आविदैविक कारण कहते है, इन कारणों में भी पूर्वोक्त दोनों ही नय समझने चाहियें।

इन्हीं त्रिविश्व कारणों को पुनः दूसरे प्रकार से तीन प्रकार का बतलाया है जिन का वर्णन इस प्रकार है:---

१—स्वकृतः—बहुत से रोग प्रत्येक मनुष्य के शरीर में अपनी ही मूळों से होते हैं, इस प्रकार के रोगों के कारणों को स्वकृत कहते हैं।

२—परक्रुत—बहुत से रोग अपने पड़ोसी की, अपनी जाति की, अपने सम्बंधी की अधवा अन्य किसी दूसरे मनुष्य की मूळ से अपने अरीर में होते है, इस प्रकार के रोगों के कारणों को परकृत कहते है।

३—दैवकृत वा स्वभावजन्य—बहुत से रोग स्वामाविक प्रकृति के परिवर्षन से शरीर में होते हैं, जैसे—ऋतु के परिवर्षन से हवा और मनुष्यों की प्रकृति में विकार होकर रोगों का उत्पन्न होना आदि, इस प्रकार के रोगों के कारणों को दैवकृत अथवा स्वमावजन्य कहते हैं।

यद्यपि रोग के कारणों के ये तीन सेद ऊपर कहे गये है परन्तु वासव में तो मनुष्य-कृत और दैवकूत, ये दो ही मेद हो सकते है, क्योंकि रोगों के सब ही कारण इन दोनों मेदों में अन्तर्गत हो सकते है, इन दोनों प्रकार के कारणों में से मनुष्यकृत कारण उन्हें कहते हैं कि—जो कारण प्रत्येक आदमी अयवा आदमियों के समुदाय के द्वारा मिल कर बांचे हुए व्यवहारों से उत्पन्न होते हैं, इन मनुष्यकृत कारणों के मेद संक्षेप से इस प्रकार हो सकते हैं:—

⁹⁻क्योंकि मा बाप के रच वीर्य का विकार, गर्माक्स्या में गर्मिणी स्त्री का विरुद्ध वसीव और जन्म होने के पीछे माता आदि का अयोग्य आहार और विहार का करना कराना आदि कारण जीव के प्रेंकृत पाप के उदय से होकर हु खरूम कार्य को पैदा करते हैं 8

१-प्रत्येक मनुष्यकृत कारण—प्रत्येक मनुष्य अपनी मूळ से, आहार विहार की अपरिमाणता से और नियमों के उद्धंघन करने से जिन रोग वा मृत्यु को प्राप्त होने के कारणों को उत्पन्न करे, इन को प्रत्येक मनुष्यकृत कारण कहते हैं।

२-कुदुम्बकृत कारण-कुटुम्ब में प्रचिवत विरुद्ध व्यवहारों से तथा निक्वष्ट आचारों से जो रोगोत्पत्ति के कारण होते है, इन को कुटुम्बकृत कारण कहेते है ।

३-जातिकृत कारण-निकृष्ट प्रथा से तथा जाति के लोटे व्यवहारों से जो रोगोत्पत्ति के कारण होते हैं, इन्हें जातिकृत कारण कहेंते हैं, देलो ! बहुत सी जातियों में वाळविवाह आदि कैसी २ कुरीतियां प्रचिळत है, ये सब रोगोत्पत्ति के दूरवर्ची कारण हैं, इसी प्रकार बोहरे आदि कई एक जातियों में बुरखे (पड़दा विशेष) का प्रचार है जिस से उन जातियों की खियां निवळ और रोगिणी हो जाती हैं, इत्यादि रोगोत्पत्ति के अनेक जातिकृत कारण है जिन का वर्णन अन्यविसारमय से नहीं करते हैं।

४—देशकृत कारण—बहुत से देशों की आव हवा (जल और वायु) के प्रति-कुल होने से अथवा वहां के निवासियों की प्रकृति के अनुकूल व होने से जो रोगोत्पत्ति के कारण होते है, इन्हें देशकृत कारण कहते हैं।

५-कालकृत कारण—बाल्य, यौवन और बद्धत्व (बुढापा) आदि मिल २ अवसाओं में तथा छः ऋतुओं में जो २ वर्ताव करना चाहिये उस २ वर्ताव के न करने से अथवा विपरीत वर्ताव के करने से जो रोगोत्पित के कारण होते है, इन्हें काल- करत करण कहते है।

६—समुदायकृत कारण—मनुष्यों का मित्र २ समुदाय एकत्रित होकर ऐसे नियमों को बांबे जो कि शरीर संरक्षण से विरुद्ध होकर रोगोत्पित्त के कारण हों, इन्हें समुदायकृत कारण कहते है।

७-राज्यकृत कारण-राज्य के जो नियम और प्रवंध मनुष्यों की तासीर और जल वासु के विरुद्ध होकर रोगोत्पत्ति के कारण हों, इन्हें राज्यकृत कारण कहते है।

८—महा कारण—िनस से सब सृष्टि के जीव मृत्यु के भय में आ गिरें, इस प्रकार का कोई व्यवहार पैदा होकर रोगोत्पित्त वा मृत्यु का कारण हो, इस प्रकार के कारण को महा कारण कहते है, अत्यन्त ही श्लोक का विषय है कि—यह कारण वर्षमान समय में प्रायः सर्व जातियों में इस आर्यावर्ष में देखा जाता है, जैसे—देखो ! ब्रह्मचर्य और गर्माधान

१-इस का अनुमन नहुत पुरुषों को हुवा ही होगा कि-अनेक कुटुम्बों में बड़े २ व्यसनों और दुराचारों के होने से उन कुटुम्बों के छोग रोगी बन जाते हैं॥

र-जिन कारणों से पुस्पनाति तथा स्नीजाति की पृथक् र हानि होती है ने भी (कारण) इन्हीं कारणों के अन्तर्गत हैं॥

आदि सोर्छह संस्कार आदि व्यवहार वर्तमान समय में कैसे अघोदशापन्न (नीच दशा को पहुँचे हुए) हैं, जिन को पूर्वाचार्य तो शारीरिक उन्नित के शिखरपर छ जाने के कारण समझ कर धर्म की आवश्यक कियाओं में गिनते थे, परन्तु अब वर्तमान समय में उन का प्रचार शायद विरछे ही स्थानों में होगा, इस का कारण यही है कि—वर्तमान समय में राज्यकृत अथवा जातिकृत न तो ऐसा कोई नियम ही है और न छोगों को इन वातों का ज्ञान ही है, इस से छोग अपने हिताहित को न विचार कर मनमाना वर्ताय करने छोग है, जिस का फड पाठकगण नेत्रों से प्रत्यक्ष ही देख रहे हैं कि मनुष्यगण तनछीन, मन मछीन, द्रव्यरहित और पुत्र तथा परिवार आदि से रहित हो गये है, इन सव दुःखों-का कारण केवल न करने योग्य व्यवहार का करना ही है, इस सर्व हानि को व्यवहारनय की अपेक्षा समझना चाहिये, इसी को—देव कहो, चाहे कर्म कहो, चाहे मिवतव्यता कहो।

१-यहस्य भर्म के जो सोछह संस्कार हैं उन की विधि "आचारदिनकर" नामक सस्कृत प्रन्य में विस्तारपूर्वक विस्ती है, उन सस्कारों के नाम ये हैं---गर्भाधान, पुसवन, जन्म, सूर्यचन्द्रदर्शन, क्षीराशन, षष्टीपजन. श्रविकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णवेध, केशवपन, उपनयन, विद्यारम्म, विवाह, जतारीप और अन्तकर्म, इन सोलह संस्कारों की विधि बहुत वही है अतः उस का वर्णन यहा पर नहीं किया जा सकता है परन्त पाठकों के झानार्थ हम यहा पर सिर्फ इतना ही किखते हैं कि कीन २ सा संस्कार किस २ समय कराथा जाता है--१-गर्भाषान-यह सस्कार गर्भ रहने के बाद पाववें महीने में कराया जाता है। २-प्रसवन-यह संस्कार गर्भवती के जाठवें महीने में कराया जाता है। ३-जन्म-यह संस्कार सन्तान के जन्म समय में कराया जाता है अर्थात जन्म समय में बोग्य क्योतिपी को व्रहा कर सन्तान के जन्म प्रहों को स्पष्ट कराना तथा उस ज्योतिषी को रुपया श्रीफड और मोहर आदि (जो कुछ देना उचित समझा जावे वा जैसी अपनी अद्धा और शक्ति हो) देना । ४-सूर्यचन्द्रदर्शन-यह सस्कार जन्मदिन से दो दिन व्यतीत होने पर (तीसरे दिन) कराया जाता है । ५-श्रीराशन-यह सस्कार मी सर्वचन्द्र वर्शन सस्कार के ही हिन अथवा उस के इसरे दिन कराया जाता है, इस संस्कार में बालक को स्तनपान कराया जाता है-(पहिले लिख चुके हैं कि-जन्मकाल से तीन दिन तक अस्ता की का दूध विकार युक्त रहता है इस लिये हन दिनों में ओष्षि के द्वारा अथवा गाय के दूष से वालक का रक्षण करना ठीक है किन्तु जो लोग इस मे जर्ल्टी करते हैं उन के वालकों के कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, यह सरकार भी हमारे उसी क्यन की प्रष्टि करता है)। ६-पष्टी पूजन-यह सरकार जन्म से छठे दिन कराया जाता है। ७-छन्नि-कुर्म-यह सस्कार जन्म समय से दक्ष दिन व्यतीत होने के बाद (स्थारहवें दिन) कराया जाता है । ८-नामकरण- यह संस्कार भी श्रविकर्म संस्कार के दिन ही कराया जाता है। ९-अन्नप्राशन-यह संस्कार लबके का छ. महीने के बाद और लडकी का पाच महीने के बाद करागा जाता है। १०-कर्णनेघ-यह सस्कार तीसरे. पासर्वे वा सातवें वर्ष में कराया जाता है। ११-केशनपन-वह सस्कार यथोनित समय में कराया जाता है, इस सरकार में बालक के केश उतराये जाते हैं, इसे मुण्डनसरकार भी कहते हैं। १२-उपनयन-यह सस्कार आठ वर्ष की अवस्था के पीछे कराया जाता है। १३--विद्यारम्म-यह सस्कार आठवे वर्ष में कराया जाता है । १४-विवाह-यह सस्कार उस समय में कराया जाता है वा कराया जाना चाहिये जय कि स्त्री और प्रका इस संस्कार के योग्य अवस्थावाले हो जार्वे, क्योंकि जैसे कचा फल साने में जाहिए नहीं लगता है तथा हानि भी करता है उसी अकार कवी अवस्था में विवाह का होना भी कुछ लाम नहीं पहुँचाता है, प्रस्तुत अनेक हानियों को करता है। १५-जतारोप-यह सस्कार बह है जिस में श्री पुरुष

पहिले जो हम ने:पांच समवाय रोग होने के कारण िल हैं—वे सव कारण (पांच समवाय) निश्चय-जीर व्यवहारनय के विना नहीं होते है, इन में से विजुली या मकान आदि के गिरनेद्वारा जो मरना या चोट का लगना है, वह मिनतव्यता समवाय है तथा यह समवाय सब ही समवायों में प्रधान है, ,गर्मी और ठंढ के परिवर्तन से जो रोग होता है उस में काल प्रधान है, हेग और हैना आदि रोगों के होने में वँघे हुए समुदायी कर्म को प्रधान समझना चाहिये, इस प्रकार पांचों समवायों के उदाहरणों को समझ लेना चाहिये, निश्चयनय के द्वारा तो यह जाना जाता है कि उस जीव ने वैसे ही कर्म ;वांघे ये तथा व्यवहारनय से यह जाना जाता है कि—उस जीव ने अपने उद्यम और आहार-विहार आदि को ही उस प्रकार के रोग के होने के लिये किया है, इस लिये यह जानना चाहिये कि—निश्चयनय तो जानने के न्योग्य और व्यवहारनय प्रवृत्ति करने के योग्य है, देखों! बहुत से रोग तो व्यवहारनय से प्राणी के विपरीत उपचार और वर्चावों

मत का प्रहण करते हैं। १६--अन्तकर्म-इस सस्कार का दूसरा नाम मृत्युसंस्कार भी है, क्योंकि यह सस्कार भूत्यसमय में किया जाता है. इस सस्कार के अन्त में जीवारमा अपने किये हुए कर्मी के अनुसार बनेक बोतियों को तथा नरक और खर्ग आदि को प्राप्त होता है. इस छिये मनुष्य को चाहिये कि-अपनी जीवनावस्था में कर्मफल को विचार कर सदा श्रम कर्मे ही करता रहे, डेखो ! ससार में कोई भी ऐसा नहीं है जो मृत्यु से बचा हो, किन्तु इस (सृत्यु) ने अपने परम सहायक कर्म के योग से सब ही को अपने आधीन किया है, क्योंकि जितना आयुः कमें यह जीवात्मा पूर्व मन से वाध काया है उस का जो पूरा हो जाना है इसी का नाम मृत्यु है, यह आयुः कमें अपने पुण्य और पाप के योग से सब ही के साथ बंघा है अर्थात क्या राजा और क्या रक. सब ही को अवस्य मरना है और मरने के पश्चात इस जीवास्ता के साथ यहा से अपने किये हुए पाप और पुण्य के सिवाय कुछ भी नहीं जाता है अर्थात् संसार की सकल सामग्री यहीं पढ़ी रह जाती है. देखो ! इस संसार में असख्य राजे महाराजे और बादशाह आदि ऐश्वर्यपात्र हो गये परन्त यह पृथ्वी और प्रम्बीस्य पदार्थ किसी के साथ न गये, किन्तु केवल सब छोग अपनी २ कमाई का भीग कर रवाना हो गये. इसी तत्वज्ञानसम्बन्धिनी बात को बाद कोई अच्छे प्रकार सोच छेवे तो बढ धमण्ड और परहानि आदि को कसी न करेगा तथा भीरे २ इस कमों के योग से उस के पुण्य की बृद्धि होती जावेगी जिस से उस के अगळे सब भी सुघरते जावेगे अर्थात अगळे मवों से बह सबें सुखों से सम्प्रज्ञ होगा, परन्त जो परुष इस तत्वसम्बन्धिनी बात को न सोच कर अञ्चम कर्मों में प्रवृत्त रहेगा तो उन अञ्चम कर्मों के योग से उस के पाप की बृद्धि होती जावेगी जिस से उस के अगन्ने सब भी विगढते जावेंगे अर्थात् अगले मनों में वह सर्व द खों से युक्त होगा, तारपर्य यही है कि-मनुष्य के किये हुए पुण्य और पाप ही उस को उत्तम और अवन दशा में छे जाते हैं तथा संसार में जो २ न्यूनाधिकतायें तथा सिन्नतायें दील पहती हैं वे सब इन्हीं के योग से होती हैं, देखो ! सब से अधिक बठवान् और ऐश्वर्यवान् बढा राजा मकवत्तीं होता है, उस की क्षिक इतनी होती है कि-यदि तमाम संसार भी बदल जावे तो भी वह सकेला ही सब को सीधा (काबू में) कर सकता है, अर्थात् एक तरफ तमाम संसार का वल और एक तरफ उस अकेले चक्रवसीं का बल होता है तो भी वह उसे वश में कर लेता है, यह उस के पुण्य का ही प्रभाव है फ़िहिये इतना बढ़ा पद पुण्य के बिना कीन पा सकता है ² तात्पर्य यही है कि-जिस ने पूर्व सब में तप किया है, देव गुरु और कर्म की सेवा की है तथा परोपकार करके धर्म की बुद्धि का विस्तार किया है उसी को घमेंत्रता और राज्यपदनी मिळ सकती है, क्योंकि राज्य और मुख का मिळना पुष्प का ही फूल है.

से ही होते हैं, काल का तो खमान ही वर्षने का है इस लिये कभी शीत और कभी गर्मी का परिवर्षन होता ही है, अतः अपनी प्रकृति, पदार्थों के स्वमान और ऋतुओं के खमान के अनुसार वर्षान करना तथा उसी के अनुकूछ आहार और विहार का उपचार करना प्राणी के हाथ में है, परन्तु कर्म अति विचित्र है, इस लिये कुदरती कारणों से जो रोग के कारण पैदा होते हैं ने कर्मनश निरुष्ठ ही आदिमयों के शरीर में रोगोत्पित्त करते है, वातावरण में जो २ परिवर्षन होता है वह तो रोग तथा रोग के कारणों को दूर करने वाला है परन्तु उस में भी अपने कर्म के वश कोई प्राणी रोगी हो जाते है, इस लिये अद्भुष्ठों का जो परिवर्षन है वह वातावरण अर्थात् हवा की शुद्धि से ही सम्बन्ध रखता है परन्तु उस से भी जो पुरुष रोगी हो जाते हैं उन के लिये तो इन विकारों को दैव-छूत भी मान सकते हैं, इसलिये वास्तव में तो यही उचित प्रतीत होता है कि-इर किस्म के रोगों को पहिचान कर ही उन का स्थोचित इलाज करना चाहिये, यही इस अन्ध की सम्मति है ॥

यदि मनुष्य पुण्य (धर्म) न करे तो उस के लिये इ खागार (इ:ख का घर) नरक गति तैयार है, आहा! इस संसार की अनिस्पता को तथा कर्मगति के जमरकार को देखों कि जिन के घर में नव निधान और चीवह रहा मीजूद थे, सोलह हजार देवते जिन के यहा नौकर थे, वसीस हजार सुकुटधारी राजे जिन का मकरा करते थे. जिन के यहा खब सरत रानिया, कौतल घोडे. हाथी. रख. दीवान, नायनदीवान, बका, निशान, चीयडिये, प्राम, नगर, शाग, नगीचे, राजधानी, रहों की खाने, सोना चादी और लोहे की खाने, दास, दासी, नाटक मण्डली, पाकशाबा के झाता रसोइये, मिस्ती, तम्बोली, गोसमूह, खबर, इल, बन्दुके, तोपें. मसालची, म्याने, पानकी और अष्टाग के जाननेवाले निमित्तिये सवा हाजिर रहते थे, छवी, चॅबर, गवैये और बाराक्रनाये जिन की सेवा में हर बस्त उपस्थित रहते वे और जिन की जूतियों मे भी अमूल्य रत झलमलाया करते थे वे भी चले गये तो मला बसरो की गिनती को कौन करे हैं सोचो तो सही कि जब चकवर्तीसरीसे इस सप्तार में न रहे तो औरों की क्या कथा है ? चकवर्ती के चमत्कार और ऐथर्य की तरफ देखी कि-छाख गोजन का छम्बा चौडा जम्बद्वीप है, उस में दक्षिण दिशा की तरफ भारतवर्ष नामक एक सब से छोटा दुकड़ा है, इस के यदि वडे विमार्गों को गिनें तो छः खण्ड होते हैं, चकनतीं उन छ:वों खण्डों का मालिक होता है, वासुदेव तीन खण्ड का मालिक होता है, वासुदेव से छोटा माण्ड-लिक राजा होता है. उस से छोटा मुक्टवन्य होता है और उस से भी छोटा छत्रपति होता है. इस प्रकार से नीचे उतरते २ यह मी मानना ही पडता है कि-सामन्तराच. अकर, जागीरदार और सर्दार आदि भी क्षपनी प्रम्वी के राजे ही हैं. इसी प्रकार दीवान और नायवदीवान यदाप राजा नहीं हैं किन्तु राजा के नौकर हैं परन्त तथापि सामान्य प्रचा के लिये तो वे भी राजा के ही तत्य हैं. देखो ! गवर्नर जनरल और गवर्नर आदि हाकिम भी अविषि राजा नहीं हैं किन्तु राजा के भेजे हुए अधिकारी है परन्तु तथापि वडो के मेजे हुए होने से वे भी राजा के ही जल्य माने जाते हैं यह सब न्यूनाविकता केवळ पुण्य और पाप की न्यनाधिकता से ही होती है, इस वात को सदा व्यान में रखकर सब अधिकारियों को उचित है कि न्याय के ही मार्गपर चर्छे, अन्याय के मार्ग का खय खागकर बुखरों से भी खाग करानें, देखो ! पुष्य के प्रताप से एक समय वह था कि आर्थ खण्ड के राजों को अनार्थ खड के राजे मुजरा करते थे परन्तु गुण्य की हीनता से आज वह समय है कि अनार्य खड के राजों को आर्यखड के राजे मुजरा करते हैं, तात्पर्य यह है कि जब जिस का सितारा तेज होता है तब उसी का जोर शोर चारो ओर फैल जाता है, इसी लिये कहा

चतुर्थ अध्याय ॥

रोग के दूरवर्ती कारण ॥

देखा ! घर में रहनेवाले बहुत से मनुष्यों में से किसी एक मनुष्य को विधूचिका (हैज़ वा कोलेरा) हो जाता है, दूसरों को नहीं होता है, इस का कारण यही है कि—रोगोत्पित्त के करनेवाले जो कारण है वे आहार विहार के विरुद्ध वर्षाव से अथवा माता-पिता की जोर से सन्तान को पास हुई शरीर की प्राकृतिक निर्वलता से जिस सादमीका शरीर जिन २ दोषों से दब जाता है उसी के रोगोत्पित्त करते हैं क्योंकि वे दोष शरीर को उसी रोग विशेष के उत्पन्न होने के योग्य बना कर उन्हीं कारणों के सहायक हो जाते है इसलिये उन्हीं २ कारणों से उन्हीं २ दोष विशेषवाला शरीर उन्हीं २ रोग विशेषों के प्रहण करने के लिये प्रथम से ही तैयार रहता है, इस लिये वह रोग विशेष उसी एक सादमी के होता है किन्तु दूसरे के नहीं होता है, जिन कारणों से रोग की उत्पत्ति नहीं होती है परन्तु वे (कारण) शरीर को निर्वल कर उस को दूसरे रोगोत्पा-दक कारणों का स्थानरूप बना देते है वे रोग विशेष के उत्पन्न होने के योग्य बनानेवाले कारण कहलाते हैं, जैसे देखो ! जब पृथ्वी में बीज को बोना होता है तब पहिले पृथ्वी को जोतकर तथा खाद आदि डाल कर तैयार कर लेते हैं पीछे बीज को बोते हैं, क्योंकि जव पृथ्वी वीज के बोने के योग्य हो जाती है तव ही तो उस में वोया हुआ वीज उत्ता

जाता है कि-यह जीवात्मा जैसा २ प्रण्य परमव में करता है वैसा २ ही उस को फल भी प्राप्त होता है. वैखो | मनुष्य यदि चाहे तो अपनी जीवित दशा में घन्यवाद और ग्रह्माति को प्राप्त कर सकता है. क्योंकि धन्यवाद और सुख्याति के प्राप्त करने के सब साधन उस के पास विद्यमान हैं अर्थात ज्यों ही प्रणों की शृद्धि की लों ही मानो घन्यवाद और प्रस्थाति जाप्त हुई, ये दोनों ऐसी वर्ख्यें हैं कि इन के साधन-मूत शरीर आदि का नाश होनेपर भी इन का कभी नाश नहीं होता है. जैसे कि वेछ में फल नहीं रहता है परन्तु उस की सुगन्धि वनी रहती है, देखो ! संसार में जन्म पाकर अलवत्तह सब ही मूलुच्य प्राय: मानापमान पुख इ:ख और हर्ष बोक आदि को प्राप्त होते हैं परन्त प्रक्षसनीय वे ही मन्त्रय हैं जो कि सस माप से रहते हैं, क्योंकि पुत्त दु.स और हम शोकादि वास्तव मे शत्रुरूप हैं, उन के आधीन अपने की कर दैना अखन्त मूर्खता है, बहुत से छोग जरा से सुख से इतने प्रसन्न होते हैं कि फूछे नहीं समाते हैं तथा जरा से हुं स और श्रोक से इतने धवसा जाते हैं कि जल में हव भरना तथा विष खाकर मरना आदि निक्रष्ट कार्य कर वैठ्वे हैं, यह अति मुखों का काम है, मला कहा तो सही क्या इस तरह मरने से उन को खर्ग मिलता हैं किसी नहीं, किन्त्र, आत्मघातरूप पाप से द्वरी गति होकर जन्म जन्म में कष्ट ही उठाना पहेगा. बात्मधात करनेवाळे समझते हैं कि ऐसा करने से ससार में हमारी प्रतिष्ठा बनी रहेगी कि असक परव अमुक मपराघ के हो जाने से लिबत होकर आत्मघात कर भर गया, परन्तु अह उन की महा मूर्खता है यदि अच्छे छोगों की शिक्षा पाई है तो याद रक्खो कि इस तरह से जान को खोना केवल युरा ही नहीं किन्त महापाप भी है, देखो ! स्थानागसूत्र के दूसरे स्थान में लिखा है कि-कोष, मान, माया और छोम कर के जो आत्मघात करना है वह दुर्गति का हेतु है, अज्ञानी और अनती का मरना वालगरण मे दाखिल है, ज्ञानी और सर्व विरति पुरुष का मरना पण्डित सरण है, देशविरति पुरुष का मरना वालपण्डित सरण है और आराधना करके अच्छे ध्यान में मरना अच्छी गति के पाने का सूचक है।।

है, ई सीप्रकार बहुत से दोबरूप कारण शरीर को ऐसी दशा मे छे आते हैं कि वह (ह्रांसीर) रोगोत्पित्त के बोग्य बन जाता है, पीछे उत्पन्न हुए नवीन कारण श्रीघ्न ही रोग को उत्पन्न कर देते है, यथि शरीर को रोगोत्पित्त के बोग्य बनानेवाले कारण बहुत से हैं परन्तु अन्य के विसार के मय से उन सब का वर्णन नहीं करना चाहते हैं—िकन्तु उन में से कुछ मुख्य र कारणों का वर्णन करते हैं—१—माता पिता की निर्वछता। २—िनज कुटुम्ब में विवाह। ३—बार्छकपन में (कची अवस्था में) विवाह। १—सन्तान का विगड़ना। ५—अवस्था। ६—जाति। ७—जीविका वा वृत्ति (व्यापार)। ८—अकृति (तासीर)। बस शरीर को रोगोत्पत्ति के योग्य बनानेवाले ये ही आठ मुख्य कारण हैं, अब इन का संक्षेप से वर्णन किया जाता है:—

१—माता पिता की निर्धे छता—यदि गर्भ रहने के समय दोनों में से (माता-पिता में से) एक का शरीर निर्वे होगा तो नालक भी अनस्य निर्वे ही उत्पन्न होगा, इसी प्रकार यदि पिता की अपेक्षा माता नाविक अनस्यानाली होगी अथना माता की अपेक्षा पिता बहुत ही अधिक अनस्यानाला होगा (खी की अपेक्षा पुरुष की अनस्या ख्योदी तथा दूनीतक होगी तनतक तो जोड़ा ही गिना जानेगा परन्तु इस से अधिक अनस्थानाला यदि पुरुष होगा) तो नह जोड़ा नहीं किन्तु कुजोड़ा गिना जायगा इस कुजोड़े से भी उत्पन्न हुआ बालक निर्वे होता है और निर्वे ता जो है नहीं बहुत से रोगों का मूल कारण है।

२—निज कुदुम्ब में विचाह—यह भी निर्वलता का एक मुल्य हेतु है, इस लिये वैद्यक शास्त्र आदि में इस का निषेष किया है, न केवल वैद्यक शास्त्र आदि में ही इस का निषेष किया है किन्तु इस के निषेष के लैकिक कारण भी बहुत से है परन्तु उन का वर्णन अन्य के बढ़ जाने के भय से यहांपर नहीं करना चाहते हैं। हां उन में से दो तीन कारणों को तो अवस्य ही दिखलाना चाहते हैं—देखिये:—

१—देखो । इसी किये युगादि सगवान् श्रीकृषभदेव ने प्रचा को बळवती करने के क्रिये युगका धर्म को दूर किया था अर्थांत पूर्व समय में युगक जोवों से मैयुन होता था इस क्रिये उस समय में न तो प्रका की हृद्धि ही थी और ने कोई पुरुषार्थ-का काम ही कर सकते थे, किन्तु ने तो केवळ पूर्व वढा प्रण्य का फळ कल्पहारों से मोगव , उस समय कल्पहास का नाश होता हुआ देख कर प्रभुने पुरुषार्थ बढाने के किये दूसरों २ की सन्तित से मिकाह करने की आड़ा दी, तब सब ओग एक के साथ जन्मे हुए जोदे का किये दूसरों २ की सन्तित से विवाह करने की आड़ा दी, तब सब ओग एक के साथ जन्मे हुए जोदे का वसरे के साथ अन्मे हुए जोदे से विवाह करने क्ष्मे, वढी मत्तु में सी ऐसी ही आड़ा है परन्तु खुक्कि की वताई हुई छोटी मत्तु में ऐसा किखा है कि-जो साता के सिपण्ड में न हो और पिता के गोत्र में न हो ऐसी कन्या के साथ उत्तम जातिवाड पुरुष को विवाह करना चाहिये इसादि, परन्तु वास्तव में तो बढी ऐसी कन्या के साथ उत्तम जातिवाडे पुरुष को विवाह करना चाहिये इसादि, परन्तु वास्तव में तो बढी मतु का जो नियम है वह अर्हमीति के अनुकृष्ठ होने से मानवीय है।

· १-संस्कृत भाषा में नेटीका नाम दुहिता रक्खा है और उस का अर्थ ऐसा होता है कि-जिस के दूर ब्याहे जाने से सब का हित होता है।

र-प्राचीन इतिहासों से यह बात अच्छे प्रकार से प्रकट है और इतिहासवेचा इस बात को मछीगाँति से जानते भी है कि इस आर्यावर्च देश में पूर्व समय में पुत्री के विवाह के छिये स्वयंवर मण्डप की रचना की जाती थी अर्थात् स्वयंवर की रिति से विवाह किया जाता था और उस के वास्तविक तत्त्वपर विचार कर देखने से यह वात माद्यम होती है कि वास्तव में उक्त रीति अति उत्तम थी, क्योंकि उस में कन्या अपने गुण कर्म और स्वमावादि के अनुकूछ अपने योग्य वर का वरण (स्वीकार) कर छेती श्री कि जिस से आजन्म वे (स्वी पुरुष) अपनी जीवनयात्रा को सानन्द व्यतीत करते थे, क्योंकि सब ही जानते और मानते है कि स्वी पुरुष का सम्मान स्त्रमावादि ही गृहस्थाश्रम के सुस का वास्तविक (असछी) कारण है।

२—उपर कही हुई रीति के अतिरिक्त उस से उतर कर (घट कर) दूसरी रीति यह थी कि वर और कन्या के माता पिता आदि गुरुवन वर और कन्या की अवस्था, रूप, विद्या आदि गुण, सद्वर्ताव और स्वमावादि वार्तों का विचार कर अर्थात् दोनों में, उक्त बातों की समानता को देखकर उन का विवाह कर देते थे, इस से भी वहीं अमीष्ट सिद्ध होता था वैसा कि उपर किख चुके है अर्थात् दोनों (स्वी पुरुष) गृहस्थाश्रम के झुख को मास कर अपने जीवन को विताते थे।

४—ऊपर कही हुई दोनों रीतियाँ जब नष्टपाय हो गई अर्थात् स्वयंवर की रीति बन्त होगेई और माता पिता आदि गुरुजनों ने भी वर और कन्या के रूप, अवस्था, गुण, कर्म और स्वमावादि का मिळान करना छोड़ दिया, तब परिणाम में होनेवाळी हानि

^{9—}बैसा कि निश्क प्रन्थ में 'दुहिता' शब्द का ब्याख्यान है कि—''दूरे हिता दुहिता" इस का भाषायें कपर लिखे अनुसार ही है, विचार कर देखा जावे तो एक ही नगर में वसनेवाली कन्या से विचाह होने की अपेक्षा बूर देश में वसनेवाली कन्या से विचाह होने की अपेक्षा बूर देश में वसनेवाली कन्या से विचाह होना स्वॉक्तम मी प्रतीत होता है, परन्तु खेद का विपय है कि—बीकानेर आदि कई एक नगरों में अपने ही नगर में विचाह करने की रीति प्रचलित हो गई है तथा उक्त नगरों में यह भी प्रथा है कि की दिनमर तो अपने पितृग्रह (पीहर) में रहती है और रात को अपने श्रमुर ग्रह (सासरे) में रहती है और यह प्रथा खासकर वहा के निवासी उत्तम वणों में अधिक है, परन्तु यह महानिश्च प्रथा है, क्योंकि इस से ग्रहस्थाअम को बहुत हानि पहुँचती है, इस बुरी प्रथा से उक्त नगरों को जो २ हानियों पहुँच चुकी है और पहुँच रही हैं उन का विशेष वर्णन लेखके बढ़ने के भय से यहा नहीं करना चाहते हैं, बुद्धिमान गुरुष स्वय ही उन हानियों को सोचर्डने ॥

२-कज़ीज के महाराज जयचन्द्रकी राटीर ने अपनी पुत्री के निवाह के लिये खयनरसण्डप की रचना करवाई थी अर्थात् खयनर की रीति से अपनी पुत्री का निवाह किया था, वस उस के बाद से प्राय: उक्त रीती से निवाह नहीं हुआ अर्थात् खयनर की रीती उठ गई, यह बात इतिहासों से प्रकट है।

३-द्रव्य के लोग आदि अनेक कारणों से ॥

की सम्भावना को विचार करें अनेक बुद्धिमानों ने वर और कन्या के गुण आदि का विचार उन के जनमपत्रादिपर रक्खा अर्थात् ज्योतिषी के द्वारा जनमपत्र और प्रहगोचर के विचार से उन के गुण आदि का विचार करवा कर तथा किसी मनुष्य को भेज कर वर और कन्या के रूप और अवस्था आदि को जान कर उन (ज्योतिषी आदि) के कहदेने पर वर और कन्या का विवाह करने छेंगे, वस तब से यही रीति प्रचलित हो गई, जो कि अब भी प्रायः सर्वत्र देखी जाती है।

अव पाठक गण प्रथम संख्या में लिखे हुए दुहिता अन्द के अर्थ से तथा दूसरी संख्या से चौथी संख्या पर्यन्त लिखी हुई विवाह की तीनों रीतियों से भी (लौकिक कारणों के द्वारा) निश्चय कर सकते हैं कि इन ऊपर कहे हुए कारणों से क्या सिद्ध होता है, केवल यही दिव्ध होता है कि निजकुटुम्ब में विवाह का होना सर्वथा निषद्ध है, क्योंकि नेर्देखा ! दुहिता अन्द का अर्थ तो स्पष्ट कह ही रहा है कि कन्या का विवाह दूर होता चाहिये, अर्थात अपने आम वा नगर आदि में नहीं होना चाहिये, अर्थात अपने आम वा नगर आदि में भी करना निषद्ध है तब मला निज कुटुम्ब में व्याह के विषय में तो कहना ही क्या है ! इस के अतिरिक्त विवाह की जो उत्तम मध्यम और अधम रूप ऊपर तीन रीतियाँ कही गई हैं वे भी घोषणा कर साफ २ वतलाती है कि निज कुटुम्ब में विवाह कदापि नहीं होना चाहिये, देखों !

१-अर्थात् समान समाव और ग्रुण आदि का विचार न करने पर विरुद्ध समाव आदिके कारण वर और कन्या को गृहस्थाश्रम का सुख नहीं प्राप्त होगा, इस्पादि हानि की सम्भावना को विचार कर ॥

२-परन्तु महाजोक का विषय है कि-बर और कचा के माता पिता आदि पुर जन अब इस अधि साधारण तीसरे दर्जें की रीती का मी इव्य छोमादि से परिस्ताय करते चले जाते हैं अर्थांत वर्तमान में प्राय: देखा जाता है कि-जीमान् (इव्यपत्र) लोग अपने समान अपना अपने से भी अधिक केवल इव्यास्पद वर देखते हैं, दूसरी बातों (छडके का लडकी से छोटा होना आदि हानिकारक भी बातों) को विलक्षक ही नहीं देखते हैं, इस का कारण यह है कि इव्यास्पद वर ते सम्वध होने से वे सतार में अपनी नामवरी को बाहते हैं (कि अधुक के सम्बच्नी अधुक वहे सेठजी हैं इस्ताद), अब श्रीमान् लोगों के सिवाय जो सावारण जन हैं उन को तो वहों को देखकर वैसा करना ही है अर्थात् वे कब चाहने लगे कि हमारी कन्या वहे घर में न होने, तारपर्य यह है कि-गुण और समावादि सब बातों का विचार छोडकर इव्य की ओर देखने लगे, यहाँतक के ज्योतियी जी आदितक को भी दव्य का छोम देकर अपने वश्च में करने लगे अर्थात् उन से भी अपना ही अमीह करवाने लगे, इस के सिवाय छोमादि के कारण जो विवाह के विषय में कन्याविकय आदि अनेक हानियां हो चुकी हैं और होती जाती हैं उन को पाठक गण अच्छे प्रकार से जातते ही हैं बत: उन को लिखकर हम प्रन्य का वितार करना नहीं वाहते हैं, किन्दु यहां पर तो "निजक्रदुम्ब में विवाह कदापि नहीं होता चाहिये" इस विवय को लिखते हुए प्रसंगवशात् यह इतना आवन्यक समझ कर लिखा गया है। आशा है कि-पाठक गण हमारे इस लेख से स्थार्य तत्वको समझ गये होंगे॥

खयंवर की रीति से विवाह करने में यह होता या कि-निजकुदुम्ब से मिन्न (किन्तु देश की प्रथा के अनुसार खजातीय) जन देश देशान्तरों से आते थे और उन सब के गुण आदि का श्रवण कर कन्या ऊपर लिखे अनुसार सब वातों में अपने समान पति का खयं (ख़द) वरण (ख़ीकार) कर लेती थी. अब पाठकगण सोच सकते है कि-यह (खयं-बर की) रीति न केवल यही वतलाती है कि-निज कुटुम्ब में विवाह नही होना चाहिये किन्त यह रीति दहिता शब्द के वर्ष को और भी प्रष्ट करती है (कि कन्या का खप्राम वा स्वनगर आदि में विवाह नहीं होना चाहिये) क्योंकि यदि निज क्रद्रम्य में विवाह करना अभीष्ट वा छोकसिद्ध होता अथवा खमाम वा खनगरादि में ही विवाह करना योग्य होता तो खबंबर की रचना करना ही ज्यर्थ था, नयोंकि वह (निज क़द्रम्ब में वा समामादि में) विवाह तो विना ही सर्यंवर रचना के कर दिया जा सकता था, क्योंकि अपने कुदुम्ब के अथवा सम्रामादि के सब पुरुषों के गुण आदि प्रायः सव को विदित ही होते है, अब खयंबर के सिवाय जो दूसरी और तीसरी रीति लिखी है उस का भी प्रयो-जन वही है कि जो ऊपर लिख चुके है, क्योंकि-ये दोनों रीतियां खयंबर नहीं तो उस का रूपान्तर वा उसी के कार्य को सिद्ध करनेवाली कही जा सकती है, इन में विशेषता केवल यही है कि-पति का वरण कन्या खयं नहीं करती थी किन्तु माता पिता के द्वारा तथा ज्योतिषी आदि के द्वारा पति का वरण कराया जाता था, परन्त तात्पर्य वही था फि-निज क़द्रम्थ में तथा यथासम्भव खजामादि में कन्या का विवाह न हो ।

जपर छिखे अनुसार शास्त्रीय सिद्धान्त से तथा छैिकक कारणों से निजकुटुम्य में विवाह करना निषिद्ध है अतः निर्वछता आदि दोषों के हेत्र इस का सर्वथा परित्याग करना चाहिये।

र-बालकपन में विवाह—प्यारे सुबनो! आप को विदित ही है कि इस वर्त-मान समय में हमारे देश में जबर, शीतला, निष्चिका (हैना) और छेग आदि अनेक रोगों की अत्यन्त ही अधिकता है कि जिन से इस अमागे मारत की यह शोचनीय कु-दशा हो रही है जिस का सरण कर अश्रुधारा बहने लगती है और दुःल विसराया भी नहीं जाता है, परन्तु इन रोगों से भी बढ़ कर एक अन्य भी महान् भयंकर रोग ने इस जीर्ण मारत को घर दबाया है, जिस को देल व सुनकर वज्रहृदय भी दीर्ण होता है, तिस पर भी आध्वर्य तो यह है कि उस महा मयंकर रोग के पक्षे से शायद कोई ही मारतवासी रिहाई पा जुका होगा, यह ऐसा मयंकर रोग है कि—ज्यों ही वह (रोग) शिर पर चढ़ा त्योंही (बोड़े ही दिनों में) वह इस मकार थोथा और निकम्मा कर देता है कि जिस प्रकार गेहूँ आदि अस में चुन लगने से उस का सत निकल कर उस की अत्यन्त कुदशा हो जाती है कि जिस से वह किसी काम का नहीं रहता है, फिर देखी। दूसरे रोगों से तो व्यक्तिविशेष (किसी खास) को ही हानि पहुँचती है परन्तु इस मयंकर रोग से समूह का समूह ही बरन उस से भी अधिक जाति जनसंख्या व देश जनसंख्या ही निकम्मी होकर कुदशा को मास हो जाती है, युजनो ! क्या आप को माख्स नहीं है कि यह वही महामयानक रोग है कि जिस से मनुष्य की युरत मयावनी तथा लाक कान और आंख आदि इन्द्रियां थोड़े ही दिनों में निकम्मी हो जाती है, उस में विचारशक्ति का नाम तक नहीं रहता है, उस को उत्साह और साहस के खम में भी दर्शन नहीं होते है, सच पूँछो तो जैसे ज्वर के रहने से तिछी-आदि रोग हो जाते है उसी प्रकार वरन उस से भी अधिक इस महामयंकर रोग के होने से प्रमेह, निर्वछता, धीर्यविकार, अफरा, दमा, खांसी और स्वय आदि अनेक रोग उत्सक होते हैं जिन से शरीर की चमक दमक और श्रोमा जाती रहती है तथा मनुष्य आळसी और कोषी बन जाता है तथा उस की बुद्धि प्रष्ट हो जाती है, तात्थर्य छिखने का यही है कि इसी महामयंकर रोग ने इस भारत को विछक्त्र ही चौपट कर दिया, इसी ने छोगों को सम्य से असम्य, राजा से रंक (फकीर) और दीर्घायु से अल्यायु बना दिया, माइयो ! कहां तक गिनों से प्रकार के युख और वैभव को इसी ने छीन छिया !

हमारे पाठकगण इस बात को सनकर अपने मन में बिचार करने रूगे होंगे कि वह कौन सा महान रोग बला के समान है तथा उस के नाम को सनने के लिये असन्त विकल होते होंगे, सो हे सज्जनो ! इस महान् रोग को तो आप वैसे सुजन तो क्या किन्तु सब ही जन जानते हैं, क्योंकि प्रतिदिन आप ही सबों के ग्रहों में इस का निवास हो रहा है, देखो ! कौन ऐसा भारतवर्षीय जन है जो कि वर्त्तमान समय में इस से न सताया गया हो, जिस ने इस के पापड़ों को न बेला हो, जो इस के दु:खों से धायल होकर न तड़फड़ाता हो, यह वह मीठी मार है कि जिस के छगते ही मनुष्य अपने आप ही सर्व छुलों की पूर्णीहुति देकर मियांमिड्ट् बन जाते है, इस पर भी तुरी यह है कि जब यह रोग किसी गृह में प्रवेश करने को होता है तब दो तीन चार अथवा छः सास पहिले ही अपने आगमन की सूचना देता है, जब इस के आगमन के दिन निकट आते है तब तो यह उस गृह को पूर्णरूप से स्वच्छ कराता है, उस गृह के निवासियों को ही नहीं किन्छ उन से सन्बन्ध रखनेवालों को भी कपड़े लत्ते सुथरे पहिनाता है, इस के आगमन की सबर को सुनकर गृह में मंगळाचार होते है, इघर उक्तर से माई वन्धु आते है यह सब कुछ तो होता ही है किन्तु जिस रात्रि को इन महारोग का आगमन होता है उस रात्रि को सम्पूर्ण नगर में कोलाइल मच बाता है और उस गृह में तो ऐसा उत्साह होता है कि जिस का पारावार ही नहीं है अर्थात् दर्बानो पर नौवत झड़ती है, रिण्डयां नाच र कर मुवारक बार्वे देती है, घूर गोले और आतिशवाजी चलती है, पण्डित जन मन्त्रों



चतुर्थ अध्याय ||

का उचारण करते हैं, फिर सब लोग मिल कर अत्यन्त हर्ष के उस नादान मोली मूर्ति से चपेट देते है कि जिस के शिरपर र उस के दूसरे ही दिन मातःकाल होते ही सब खानों में इस के की घोषणा (मुनादी) हो जाती है ।

पाठक गण ! अब तो यह महान् रोग आप को प्रत्यक्ष प्रः
सही वह किस चूमघाम से आता है ! क्या २ खेळ खिळाता
है ! किस प्रकार सब को नेहोश कर देता है कि उस गृह
अड़ोसीपड़ोसीतक इस के कीतुक में वशीभृत हो जाते है । स्
ऐसे गाने नाजे के साथ में घर में दखळ होता है कि जिस में
नहीं होती है बरन यह कहना भी यथार्थ ही होगा कि सन लें
महारोग को बुळाते हैं कि जिस का नाम "वाल्यविवाह" (न्यू-

पाठक गण कपर के वर्णन से समझ गये होंगे कि—जो २ हुई है उन का मूळ कारण यही वाल्यावस्था का विवाह है, इ समय के अच्छे २ बुद्धिमान् डाक्टर लोग भी पुकार २ कर से कुछ लाम नहीं है किन्तु अनेक हानियां होती हैं, देखिंगे साहव (साविक पिन्सिपिल मेडिकल कालेज कलकता) का के विवाह की रीति अत्यन्त अनुचित है, क्योंकि इस से शार्र बाता रहता है, मन की उमग चली जाती है—फिर सामाजिक

डाक्टर नीवीमन कृष्ण बोष का बचन है कि—"शारीरिक " कारण हैं उन सब में मुख्य कारण न्यून अवस्था का विवाह ज की उचित का रोकनेवाला है"।

मिसस पी. जी. फिफसिन (छेडी डाक्टर मुम्बई) का क कियों में क्षिरविकार तथा चर्मदूषण आदि बीमारियों के आ विवाह ही है, क्योंकि इस से सन्तान श्रीघ उत्पन्न होती है, ि दूष पिछाना पड़ता है जब कि माता की रगें हड़ नहीं होती होकर नाना प्रकार के रोगों में फँस जाती है"।

डाक्टर महेन्द्रछाल सर्कार एम. डी. का वचन है कि-

विवाह के हेतु से मरती है तथा फी सदी दो मनुष्य इसी से ऐसे हो जाते हैं कि जिन को सदा रोग घेरे रहते हैं और वे आधे आधु में ही मरते हैं।

प्रिय सज्जनो ! इस के अतिरिक्त अपने शाखों की तरफ तथा प्राचीन इतिहासों की तरफ भी ज़रा दृष्टि दीजिये कि विवाह का क्या समय है और वह किस प्रयोजन के लिये किया जाता है—आर्थ (ऋषिप्रणीत) अन्योंपर दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट प्रकट होती है कि विवाह का मुख्य प्रयोजन सन्तान का उत्पन्न करना है और उस का (सन्तानोत्पत्ति का) समय शास्त्रकारों ने इस प्रकार कहा है कि:—

स्त्रियां षोडदावर्षायां, पत्रविदातिहायनः॥ वुद्धिमानुद्यमं कुर्यात्, विशिष्टसुतकाम्यया॥१॥

अर्थ-पचीस वर्ष की अवस्थावाले (जवान) बुद्धिमान् पुरुष को सीलह वर्ष की की के साथ बुपुत्र की कामना से संमोग करना चाहिये ॥ १ ॥

तदा हि प्राप्तवीयों तो, स्रतं जनयतः परम्॥ आयुर्वेळसमायुक्तं, सर्वेन्द्रिय समन्वितम्॥२॥

अर्थ क्योंकि उस समय दोनों ही (की पुरुष) परिपक्क (पके हुए) बीर्य से युक्त होने से आयु बळ तथा सर्व इन्द्रियों से परिपूर्ण पुत्र को उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥

न्यूनषोडशवर्षायां, न्यूनाब्दपञ्जविंशतिः॥ पुमान् यं जनयेद् गर्भे, स प्रायेण विषयते॥ ३॥ अल्पायुर्वेलहीनो वा, दारिक्र्योपद्वतोऽथवा॥ कुछादि रोगी यदि वा, भवेद्या विकलेन्द्रियः॥ ४॥

अर्थ — यदि पत्तीस वर्ष से कम अवस्थावाला पुरुष—रोल्ह वर्ष से कम अवस्थावाली स्त्री के साथ सम्मोग कर गर्माधान करे तो वह गर्म प्रायः गर्माश्यय में ही नाश को प्रात हो जाता है ॥ ३॥

अथवा वह सन्तति अल्प आयुवाळी, निर्वेळ, दरिद्री, कुछ आदि रोगों से युक्त,

अथवा विकलेन्द्रिय (अपांग) होती है ॥ ४ ॥

शास्त्रों में इस प्रकार के वाक्य अनेक स्थानों में लिखे हैं जिन का कहांतक वर्णन करें। प्रियमित्रों ! अपने और देश के शुमिनन्तकों ! अन आप से यही कहना है कि—यदि आप अपने सन्तानों को झुसी देखना चाहते हो तथा परिवार और देश की उन्नति को चाहते हो तो सब से प्रथम आप का यही कर्चन्य होना चाहिये कि—अनेक रोगों के मूल कारण इस बाल्यावस्था के विवाह की कुरीति को बंद कर शास्त्रोक्त रीति को प्रचित्र

[·] १--ये सव छोक जैनाचार्य श्रीजिनदत्तसूरिकत "विवेकविखास" के प्रतस उल्लास में लिखे है ॥

क्रीनियं, यही आप के पूर्व पुरुषों की सनातन रीति है इसी के अनुसार चलकर प्राचीन काल में तुल्य गुण कर्म और खमाव से युक्त स्त्री पुरुष श्वास्त्रानुसार स्वर्यम्वर में विवाह इर गृहस्थाश्रम के आनन्द को मोगते थे. बाल्यावस्था में विवाह होने की यह क़रीति तो इस भारत वर्ष में मुसलमानों की बादशाही होने के समय से चली है, क्योंकि मुसलमान होग हिन्दें में की रूपवती अविवाहिता कन्याओं को जबरदस्ती से छीन हेते थे किन्तु विवाहिताओं को नहीं छीनते थे, क्योंकि मुसलमानों की धर्मपुस्तक के अनुसार विवाहिता कन्याओं का छीनना अधर्म माना गया है, वस हिन्दुओं ने "मरता क्या न करता" की कहावत को चितार्थ किया क्योंकि उन्हों ने यही सोचा कि अब बाल्य विवाह के विना इन (मुसलमानों) से बचने का दूसरा कोई लपाय नहीं है, यह विचार कर छोटे २ पुत्रों और पुत्रियों का विवाह करना प्रारम्भ कर दिया, नस तन से आजतक वही रीति चळ रही है. परन्त प्रियमित्री! अब वह समय नहीं है अब तो न्यायशीला श्रीमती बृटिश गवर्नमेंट का वह न्याय राज्य है कि जिस में सिंह और वकरी एक बाद पर पानी पीते है. कोई किसी के धर्मपर आक्षेप नहीं कर सकता है और न कोई किसी को विना कारण छेंड वा सता सकता है, इस के सिवाय राज्यशासकों की अति प्रशंसनीय बात यह है कि-वे परस्री को बरी दृष्टि से कदापि नहीं देखेंते हैं. जब वर्षमान ऐसा ग्रम समय है तो अब भी हमारे हिन्दू (आर्थ) बनों का इन क़रीतियों को न सुधारना बढे ही अफसोस का खान है।

इस के सिवाय एक विचारणीय विषय यह है कि-जिस समय जिस वस्तु की प्राप्ति की मन में इच्छा होती है उसी समय उस के मिळने से परम दुख होता है किन्तु विना समय के वस्तु के मिळने से कुछ भी उत्साह और उमंग नही होती है और न किसी

^{9—}खयबररूप विवाह परम उत्तम विवाह है, इस में यह होता या कि कन्या का पिता अपनी जाति के बोग्य महाव्यों को एक तिथिपर एकत्रित होने की सूचना देता था और वे सब कोग सूचना के अनुसार नियमित तिथिपर एकत्रित होते की सूचना देता था और वे सब कोग सूचना के अनुसार नियमित तिथिपर एकत्रित होते वे तथा उन आये हुए पुरुषों में से जिसको कन्या अपने गुण कमें और समाव के अनुकूछ जान छेती थी उसी के गर्छ में जयमाळा (वरमाळा) डाछ कर उस से विवाह करती थी, वहुषा यह भी प्रथा थी कि खयवरों में कन्या का पिता कोई प्रण करता था तथा उस प्रण को जो पुरुष पूर्ण कर देता था तब कन्या का पिता अपनी कन्या का विवाह उसी पुरुष से कर देता था, इन सब वातों का वर्णन देखना हो तो कलिकाछ सर्वज्ञ शिहेमचन्द्राचार्यकृत सस्कृत रामायण तथा पाण्डवचित्र आदि प्रन्थों को देखी ॥

र-इतिहासों से सिद्ध है कि आर्यानर्त्त के बहुत से राजाओं की भी कन्याओं के डोले यदन वादशाहों ने लिये हैं, फिर सका सामान्य हिन्दुओं की तो क्या गिनती है ॥

रे-पयोंकि विवाहिता कन्यापर दूसरे पुरुष का (उसके खागी का) इक हो जाता है और इन के मत का यह विद्यान्त है कि दूसरे के हक में खाई हुई वक्त का छीनना पाप है॥

४-सनमुच यही गृहस्थात्रमका प्रथम पाया भी है ॥

मकार का आनन्द ही आता है, जिस प्रकार गूल के समय में सूली रोटी भी अच्छी जान पड़ती है परन्तु गूल के विना मोहनमोग को साने को भी जी नहीं चाहता है, इसी प्रकार योग्य अवस्था के होनेपर तथा स्त्री पुरुष को विवाह की इच्छा होनेपर दोनों को आनन्द प्राप्त होता है किन्तु छोटे र पुत्र और पुत्रियों का उस दशा में जब कि उन को न तो कामामि ही सताती है और न उन का मन ही उधर को जाता है, विवाह कर देने से क्या छाम हो सकता है! कुछ भी नहीं, किन्तु यह विवाह तो विना मूल के साथे हुए मोजन के समान अनेक हानियां ही करता है।

हे ख़जनो ! इन ऊपर कही हुई हानियों के सिवाय एक बहुत बड़ी हानि वह होती है कि जिस के कारण इस मारत में चारों ओर हाहाकार मच रहा है तथा जिससे उसके निर्मल यहा में घटना लग रहा है, वह बरी वाल विषवाओं का समृह है कि जिन की आहें इस भारत के घाव पर और भी नमक डाल रही हैं, हा प्रभी ! वह कौन सा ऐसा घर है जिस में विधवाओं के दर्शन नहीं होते हैं, उसपर भी वे भोड़ी विधवाँर कैसी है कि जिन के दूध के दाँततक नहीं गिरे है. न उन को अपने विवाह की कुछ स्रध बुध है और न ने यह जानती है कि हमारी चुड़ियां क्योंकर फूटी है, हमारे जपर पैदा होते ही कौन सा कजपात हो गया है, इसपर भी तुरी यह है कि-जब वे बेचारी तरुण होती हैं तब कामानल (कामाभि) के अवल होनेपर उन का नियोग मी नहीं होता है। मला सोचिये तो सही कि कामानल के दुःसह तेज का सहन कैसे हो सकता है ! सिर्फ यही कारण है कि हनारों में से दश पांच ही ख़न्दर आचरणवाली होती है, नहीं तो प्रायः नाना छीछायें रचती हैं कि जिन से निष्करुंक कुलवालों के भी शिर से रुजा की पगड़ी गिर जाती है, क्या उस समय कुलीन पुरुषों की मुक्कें उन के गुँहपर शोमा वेती है ! नहीं कभी नहीं, उन के यौवन का मद एकदम उतर जाता है, उन की प्रतिष्ठापर भी इस प्रकार छार पड़ जाती है कि-दश आदिमियों में ऊँचा छँह कर के उन की बोळने की भी ताकत नहीं रहती है, सत्य तो यह है कि मातापिता इस जलती हुई चिताको अपनी छातीपर देख २ कर हाड़ों का सांचा बन जाते है, इन सब क्रेशों का कारण बाल्यावस्था का विवाह ही है, देखो । मारत में विधवाओं की संख्या वर्षमान में इतनी है कि जितनी अन्य किसी देश में नहीं पाई जाती, क्योंकि अन्यत्र नाल्या-वस्था में निवाह नहीं होता है, देखो ! पूर्वकाल में जब इस भारत में बाल्यावस्था में विवाह नहीं होता या तब यहां विभवाओं की गणना (संख्या) बहुत ही न्यून थी।

बाल्यावस्था के विवाह से हानि का प्रत्यक्ष प्रमाण और दृष्टान्त यही है कि-देखो ! जब किसी खेत में गेहूँ आदि अब को बोते हैं तो जमने के पीछे दश पांच दिन में बहुत से मर जाते है, एक महीने के पीछे बहुत कम मरते हैं, दो चार महीने के पीछे अलन्त ही कम भरते हं, इस के पश्चात् बचे हुए चिरस्थायी हो जाते हैं, इसी प्रकार जन्म से पांच वर्षतक जितने वालक भरते है उतने पांच से दश वर्षतक नहीं मरते हैं, दश से पन्द्रह वर्षतक उस से भी बहुत कम मरते है, इस का हेतु यही है कि वाल्या-वस्ता में दॉतों का निकलना तथा शीतला आदि अनेक रोग प्रकट होकर वालकों के प्राणवातक होते हैं।

समझने की वात है कि—जब किसी पेड़ की जड़ मज़बूत हो जाती है तो वह बड़ी २ ऑिं घों से भी बच जाता है किन्तु निर्वल जड़वाले दृक्षों को आंधी आदि तूफान समूल उखाड डालते है, इसी प्रकार बाल्यावस्था में नावा मांति के रोग उत्पन्न होकर मृत्यु-कारक हो जाते है परन्तु अधिक अवस्था में नहीं होते है, यदि होते भी है तो सौ में पांच को ही होते है।

अब इस कपर के वर्णन से प्रत्यक्ष प्रकट है कि--यदि बाल्यावस्था का विवाह सारत से उठा दिया जाने तो प्रायः नालनिधनाओं का यूथ (समूह) अनस्य कम हो सकता है तथा थे सब (ऊपर कहे हुए) उपद्रव मिट सकते है. यद्यपि वर्तमान में इस निक्रष्ट प्रया के रोकने में कुछ दिकत अवस्य होगी परन्तु बुद्धिमान् जन यदि इस के हटाने के लिये पूर्ण प्रयत करें तो यह धीरे २ अवस्य हट सकती है अर्थात धीरे २ इस निक्रष्ट मया का अवस्य नाका हो सकता है और जब इस निकृष्ट मया का बिलकर नाक हो जाने गा अर्थात् वाल्यविवाह की प्रथा विलक्षण उठ जाने गी तब निस्सन्देह ऊपर किले सब ही उपद्रव शान्त हो जावेंगे और महादःख का एक मात्र हेत्र विधवाओं की संख्या मी अति न्यून हो जावेगी अर्थात् नाममात्र को रह जावेगी (ऐसी दशा में विधवा विवाह वा नियोग विवयक चर्चा के प्रश्नके भी उठने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी कि जिस का नाम अनकर साधारण जन चिकत से रह जाते है) क्योंकि देखी ! यह निश्चरुपूर्वक माना जा सकता है कि-यदि शास्त्रानुसार १६ वर्ष की कन्या के साथ २५ वर्ष के पुरुष का विवाह होने लगे तो सौ खियों में से शायद पाँच खियां ही मुक्किल से विभवा हो सकती है (इस का हेत्र विस्तारपूर्वक ऊपर लिख ही चुके है कि वाल्या-वस्था में रोगों से विशेष मृत्यु होती है किन्तु अधिकावस्था में नहीं इत्यादि) और उन पॉच विधवाओं में से भी तीन विधवार्य योग्य समय में विवाह होने के कारण अवस्य सन्तानवती माननी पड़ेगी अर्थात् विवाह होने के बाद दो तीन वर्ष में उन के बालवज्ञे हो जानेंगे पीछे वे विषवा होंगी ऐसी दशा में उन के लिये वैषव्ययातना अति कष्ट-दायिनी नहीं हो सकती है, क्योंकि-सन्तान के होने के बाद यदि कुछ समय के पीळे पतिका मरण भी हो जावे तो वे खियाँ उन वचों की भावी आशापर उन के ठाठन पालन में अपनी आय को सहज में ज्यतीत कर सकती हैं और उन को उक्त दशा में विधवापन की तकलीफ विशेष नहीं हो सकती है, वस इस हिसाव से सी विवाहिता स्त्रियों में से केवल दो विधवायें ऐसी दील पहेंगी कि जो सन्तानहीन तथा निराश्रयवत् होंगी अर्थात् जिन का कुछ अन्य प्रवन्ध करने की आवश्यकता रहेगी।

इस लिये सब उच वर्ण (ऊंची जाति)वालों को उचित है कि लयंवर की रीति से विवाह करने की प्रथा को अवस्य प्रचलित करें, यदि इस समय किसी कारण से उक्त रीति का प्रचार न हो सके तो आप खुद गुण कर्म और लगाव को मिलाकर उसी प्रकार कार्य को की जिये कि जिस प्रकार आप के प्राचीन पुरुष करते थे।

देखिये ! विवाह होने से मनुष्य गृहस्य हो जाते है और उन को प्रायः गृहस्थापयोगी सब ही प्रकार के पदार्थों की आवश्यकता होती है तथा वे सब पदार्थ धन ही से प्राप्त होते है और धन की प्राप्ति विवा आदि उत्तम गुणों से ही होती है तथा विवा आदि उत्तम गुणों के प्राप्त करने का समय केवल बाल्यावस्था ही है, अतः यदि बाल्यावस्था में विवाह कर सन्तान को बन्धन में डाल दिया जावे तो किहये विवा आदि उत्तम गुणों की प्राप्ति कि और कैसे हो सकती है तथा विवा आदि उत्तम गुणों के अभाव में धन की प्राप्ति कैसे हो सकती है और उस के बिना आवश्यक गृहस्थाययोगी पदार्थों की अनुप्रकृतिय (अप्राप्ति) से गृहस्थाअम में पूर्ण अल कैसे प्राप्त हो सकता है! सत्य तो यह है कि—वाल्यावस्था में विवाह का कर देना मानो सब आश्रमों को और उन के खुलों को नष्ट कर वेता है, इसी कारण से तो प्राचीन काल में विधाध्ययन के प्रधात विवाह होता था, शास्त्रकारों ने भी यही आजा दी है कि—प्रथम अच्छे प्रकार से विधाध्ययन कर फिर विवाह कर के गृह में वास करें, क्योंकि विधा, जितेन्द्रियता और उर्ज्यान कर फिर विवाह कर के गृह में वास करें, क्योंकि विधा, जितेन्द्रियता और जिस ने धन कि प्राप्त हुए विना गृहस्थाअम का पालन नहीं किया जा सकता है और जिस ने इन (विधा आदि) को प्राप्त नहीं किया वह पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को भी नहीं सिद्ध कर सकता है ॥

दाना हा भूख राम नार्य म पुत्रीके गुण--१-निस के सरीर में कोई रोग न हो। र-बिस के सरीर में दुर्गन्य न आदी हो। १-निस के सरीरपर बड़े २ बाळ न हो तथा मूंछ के बाल भी न हों। ४-बी बहुत वकवाद करतेवाटी न हो। ५-जिस का सरीर टेडा में हैं तथा अगहीन भी न हो। ६-जिस का शरीर कोमल हो परन्तु छ हो। ७-जिस की वाणी मधुर हो ८- जिस का वर्ष पीळा न हो। ९ जो भूरे नेत्रवाटी न हो। १०-जिस हो। ७-जिस की वाणी मधुर हो ८- जिस का वर्ष पीळा न हो। ९ जो भूरे नेत्रवाटी न हो। १०-जिस

^{9—}माता पिता को उचित है। के जब अपने पुत्र और पुत्री युवानस्था को जास हो जा तै तब उन के बोन्य कन्या और वर के ब्रह्मचर्य की, विवा जादि सहुणों की तथा उन के बर्साचरण की अच्छे प्रकार से परीक्षा करके ही उन का विवाह करें, इस की विधि शासकारों ने इस जकार कही है कि—१-जडके की परीक्षा करके ही उन का विवाह करें, इस की विधि शासकारों ने इस जकार कही है कि—१-जडके की अवस्था २५ वर्ष की तथा छड़की की अवस्था सोलह वर्ष की होनी चाहिये। १-जेंचाई में छड़की लड़के अवस्था २५ वर्ष की तथा छड़की की अवस्था इस से भी इंछ कम होनी चाहिये। १-जेंचाई में छड़की उंची के कन्ये के वरावर होनी चाहिये, अथवा इस से भी इंछ कम होनी चाहिये। विहान होने चाहिये अथवा वहाँ होनी चाहिये। १-जोंचों के हारीर सम होने चाहिये। ४-दोनों या तो विहान होने चाहिये अथवा होनी चाहिये। विहान होने चाहिये ॥

१—सन्तान का विगड़ना—बहुत से रोग ऐसे हैं जो कि पूर्व कम से सन्तानों के हो जाते हैं अर्थात् माता पिता के रोग बचों को हो जाते हैं, इस प्रकार के रोगों में मुख्य र ये रोग हैं—क्षय, दमा, क्षिप्तचित्तता (दीवानापन), खगी, गोला, हरस (मस्सा), सुजाल, गर्मी, आंल और कान का रोग तथा कुछ इत्यादि, पूर्वकम से सन्तान में होने-वाले बहुत से रोग जनेक समयों में दृद्धि को प्राप्त होकर जन सर्व कुडुम्ब का संहार कर हालते हैं उस समय लोग कहते हैं कि—देखो ! इस कुडुम्ब पर परमेश्वर का कोप हो गया है परन्तु वास्तव में तो परमेश्वर न तो किसी पर कोप करता है और न किसी पर प्रसन्न होता है किन्तु उन र जीवों के कर्म के योग से वैसा ही संयोग आकर उपस्थित हो जाता है क्योंकि क्षय और क्षिप्तचित्तता रोग की दशा में रहा हुआ जो गर्म है वह भी क्षय रोगी तथा क्षिप्तचित्त (पागल) होता है, यह वैद्यकशास्त्र का नियम है, इसल्यि चतुर पुरुषों को इस प्रकार के रोगों की दशा में विवाह करने तथा सन्तान के उत्पन्न करने से दूर रहना चाहिये।

किसी २ समय ऐसा भी होता है कि-सन्तान के होनेवाछे रोग एक पीड़ी को छोड़ कर पोते के हो जाते है।

सन्तान के होनेबाले रोगों से युक्त बालक यद्यपि अनेक समयों में प्रायः पिहले तन-दुरुत दीखते है परन्तु उन की उस तनदुरुत्ती को देखकर यह नहीं समझना चाहिये कि वे नीरोग हैं, क्योंकि ऐसे बालकों का शरीर रोग के लायक अथवा रोग के लायक होने की दशा में ही होता है, ज्योंही रोग को उचेजन देनेवाला कोई कारण बन जाता है त्यों ही उन के शरीर में शीझ ही रोग दिखलाई देने लगता है, यद्यपि सन्तान के होनेवाले रोगों का ज्ञान होने से तथा वचपन में ही योग्य सम्माल रखने से भी सम्मव है कि उस रोग की विलक्कल जड़ न जावे तो भी मनुष्य का उचित उद्यम उस को कई दर्जों में कम कर सकता तथा रोक भी सकता है ॥

का नाम शाकातुसार हो, जैसे—श्वांदा, सुमहा, विमक्षा, साविजी आदि। ११—जिस की बाल हैस वा ह- धिनी के दुस्य हो। १२—जो अपने बार गोजों में की न हो। १३—मनस्पृति आदि धर्म शाकों में कन्या के नाम के निपय में कहा है कि—"नक्षंत्रक्षनदी वाजीं, नान्स्यप्वेतनासिकाम्॥ न पश्यिद्दिप्रध्यनार्धीं, न न मीयणनासिकाम्॥ १॥" अर्थात् कन्या नक्षत्र नामवाठी न हो, जैसे—रोहिणी, रेवती इस्प्रादि, वृक्ष नामवाठी न हो, जैसे—वम्पा, दुल्सी आदि, नदी नामवाठी न हो, जैसे—गा, सरस्रती आदि अन्य (बीच) मामवाठी न हो, जैसे—वार्ष्वा अति, प्रवेत नामवाठी न हो, जैसे—विर्ध्यावळा, हिमा-छया आदि, पक्षी नामवाठी न हो, जैसे—वार्ष्वा अति, व्रेत नामवाठी न हो, जैसे—वार्ष्वा नागों, व्याठी खादि, प्रवेत नामवाठी न हो, जैसे—वार्ष्वा नागों, व्याठी खादि, प्रवेत नामवाठी न हो, जैसे—वार्ष्वा नागों, व्याठी खादि, प्रवेत नामवाठी न हो, जैसे—वार्ष्वा के प्रवेत नाहियें)।

५-अवस्था शारीर को रोग के योग्य बनानेवाले कारणों में से एक कारण अवस्था भी है, देखों! बचपन में शरीर की गर्मी के कम होने से ठंड जल्दी असर कर जाती है, उस की योग्य सम्माल न रखने से बोड़ीसी ही देर में हाफनी, दम, खांसी और कफ आदि के अनेक रोग हो जाते हैं।

जवानी (युवावस्था) में रोगों को रोकनेवाळी श्वातावेदनी शक्ति की प्रवलता के होने से शरीर को रोग के योग्य बनानेवाळे कारणों का नोर थोड़ा ही रहता है।

तीसरी बुद्धावस्था में श्वरीर फिर निर्वे एड़ जाता है और यह निर्वे छता बुद्ध मनुष्य के श्वरीर को बार २ रोग के योग्य बनाती है ॥

६—जाति—विचार कर देसा जावे तो पुरुषजाति की अपेक्षा स्त्रीजाति का शरीर रोग के असर के योग्य अधिक होता है, क्योंकि स्त्रीजाति में कुछ न कुछ अज्ञान, विचार से हीनता और हठ अवश्य होता है, इस लिये वह आहार विहार में हानि लाम का कुछ भी विचार नहीं रसती है, दूसरे—उस के शरीर के बन्धेज नाजुक होने से गर्भ-

प्यारे सुजनो ! विवाह के विषय में शासातुसार इन वातों का विचार अवस्थमेव करना चाहिये, क्योंके इन बातों का विचार न करने से जन्मभरतक दुःख भोगना पडता है तथा ग्रहस्थाश्रम दुःखों की खानि हो जाता है, देखो ! उत्तम कुछ व्यक्ते द्वस्य है, उस की सम्पत्ति शाखाओं के सहश है तथा प्रत्र मुरुवत है, जैसे मुलके नष्ट होने से बुद्ध कभी कायम नहीं रह सकता है, उसी प्रकार अयोग्य विवाह के द्वारा प्रश्नके नष्ट अष्ट होने से कुछ का नार्च हो बाता है, इसिछये वो पुरुष अपने पुत्र और पुत्रियों को सदा सुवी रखना चाहें ने मुखरूपी तत्व का निचार कर जास्त्रातुसार उचित विवि से विवाह करें क्योंकि जो ऐसा करेंगे वे श्री लोग जलरूपी इस की वृद्धिरूपी फल फल और एसी को देख सकते हैं. विस्क सत्य पूछी तो सन्तान ही नहीं किन्तु उस का योग्व विवाह ही कुछरूपी बुझ का मूल है, इस लिये जैसे इस की रक्षा के लिये उसके मूळ की रक्षा करनी पहती है उसी प्रकार कुछ की रक्षा के लिये योग्य विवाह की समाल और रक्षा करनी चाहिये, जैसे जिस बूझ का मूल इह होगा तो वह वहे २ प्रचण्ड वासु के सपड़ों से भी कभी नहीं गिर सकेगा परन्तु गरि मूछ ही निवेछ हुआ तो इना के बोडे ही शटके से उसड कर गिर पढेगा इसी प्रकार को प्रत्र सपूत वा सुरुक्षण होगा तथा उसका बोग्य निवाह होगा तो धन तथा कुळ की प्रतिदिन उन्नति होगी, सर्व प्रकार से बाप दादे का नाम तथा वश फैळेगा और नाना भाति से सुख तथा आनन्द की वृद्धि होगी, क्योंकि गुणवान् और उत्तम आवरणवाले एक ही सुपत्र से सम्पूर्ण कुछ इस प्रकार सोभित और प्रख्यात हो बाता है बैसे चन्दनके एक ही इस से तमाम बन प्रगन्धित रहता है, परन्तु यदि पुत्र कुपूत वा कुलझण हुआ तो वह अपने तन, मन, घन, मान और कीर्ति आदि को धूल में मिला देगा, इस लिये निवाह में घन आदि की अपेक्षा लड़के के गुण कर्स और शील आदि का मिलाना असत उनित है, क्योंकि घन तो इस ससार में बादल की छाया के समान है, प्रतिष्ठा पतक के रग के सहश और कुल केवल नाम के लिये हैं, इस कारण मूलपर सदा च्यान करने से परम सुख मिल सकता है अन्यया कदापि नहीं, देखों | किसी ने सख कहा है कि-"एक हि साघे सब सधें, सब साधे सब जाय ॥ जो त सीर्च मूळ को, फूळे फळे अवाय" ॥ १ ॥ अतः वर और कन्या के उत्पर लिखे हुए गुर्णी को भिला कर निवाह करना उचित है, जिस से उन दोनों की प्रकृति सदा एक सी रहे, क्योंकि वही छुख का मूल है, देखों ! किसी कविने कहा है कि-"प्रकृति मिछे सन मिछत है, अन मिछ से न मिछाय ॥

स्थान में बार २ परिवर्त्तन (उथलपुथल) हुआ करता है, इसलिय झी का निर्वल शरीर रोग के योग्य होता है, वर्त्तमान में स्नीजाति की उत्पत्ति पुरुषजाति से तिगुनी दीखती है तथा स्नीजाति पुरुषजाति की अपेक्षा अधिक मरती है, यही कारण है कि—एक एक पुरुष तीन २ चार २ तक विवाह किया करते है ॥

द्ध दही से जमत है, काजी से फारे जाय" ॥ १ ॥ ऊपर लिखी हुई वातो के मिलाने के आंतिरिक्त यह भी देखना उचित है हि जो लढका ज्वारी, मग्रप (शरावी), वेश्यागामी (रण्डीवाज) और चोर आदि म हो किन्तु पढ़ा लिखा, श्रेष्ठ कार्यकर्ता और धर्मात्मा हो उसी से कन्या का निवाह करना चाहिये, नहीं तो कदापि सुख नहीं होगा, परन्तु अत्यन्त स्रोक का विषय है कि-वर्तमान समय में इस उत्तम परिपाटी पर कुछ भी ज्यान न रेकर केवल कुम भीन आदि का मिळान कर वर कन्या का विवाह कर देते हैं, जिस का फल यह होता है कि उत्तम गुणवती कन्या का विवाह दुर्गुण वाले वर के साथ अथवा उत्तम गुणवाले पुत्र का विवाह तुर्गुणवाली कन्या के साथ हो जाने से घरों में प्रतिदिन देवाग्ररसप्राम मचा रहता है. इन सब हानियों के अतिरिक्त जब से भारत में बालहत्सा के मुख्य हेत्र वालविवाह तथा श्रद्धविवाह का अचार हुआ तब से एक और भी खोदी रीति का अचार हो गया है और वह यह है कि छडकी के लिये बर खोकने के किये-नाई, बारी, धीवर, भाट और पुरोहित आदि मेजे जाते हैं, यह कैसे शोक की बात है **कि-अपनी प्यारी पुत्री के जन्मभर के सुख हु ख का सार दूसरे परम छोमी, मुखं, ग्रुगहीन, खाणी और** नीच पुरुषों पर बाळ दिया जाता है, देखो ! जब कोई पुरुष एक पैसे की हाडी को भी मोल छेता है तो उस को खब ठोक बजा कर छेता है परन्त अफसोस है कि इस कार्य पर कि जिस पर अपने आत्मजों का इस निर्मर है किहित भी ध्यान नहीं दिया जाता है, सजनो ! यह कार्य ऐसा नहीं है कि इस को सामान्य श्चदिवाला मनुष्य कर सके किन्तु यह कार्य तो ऐसे मनुष्य के करने का है कि जो विद्वान तथा निलोंन हो और ससार को खब देखे हए हो, क्या आप इन नाई बारी माट और प्ररोहितों को नहीं जानते हैं कि दे कोग केवल एक एक पैसे पर प्राण देते हैं. फिर उन की बुद्धि की क्या तारीफ करें, उन की बुद्धि का तो धायारण नमुना यही है कि चार सभ्य प्रक्षों में बैठ कर वे बात तक का कहना भी नहीं जानते हैं, न तो पे कुछ पढ़े लिखे ही होते हैं और न विद्वानों का ही सग किये हुए होते हैं फिर मछा वे लोभरहित स्रोर इदिमान कहा से हो सकते हैं, देखो ! संसार में कोम से बचना अति कठिन काम है क्योंकि यह बढा अवल शह है. इस ने वहे २ विद्वान तथा महात्माओं को भी सताया है तथा सताता है. इसी लोभ में बाकर औरगजेव ने अपने पिता और आता को भी मार बाला था, कोम के ही कारण आजकल आई माइयों में भी नहीं बनती है, फिर मळा उन का क्या कहना है कि जो दिन रात धन ही की ळाळसा में रुगे रहते हैं और उस के लिये लोगों की खूठी खुशामदें करते हैं, उन की तो साक्षात यह दशा देखी गई है कि चाहें लड़का काला और क़ुवड़ा आदि कैसा ही क्यों न हो किन्तु जहा लड़के के पिता ने उत से सुड़ी गर्मे करने का प्रण किया वा खब आवमगत से उन को लिया खो ही वे लोग छडकी वासे से बाकर लडके की तथा कुछ की बहुत ही प्रशसा करते हैं। अर्थाव् सम्बंध करा ही देते हैं, परन्तु बहि लडकेवाला उन की मुद्री को गर्भ नहीं करता है तथा उन की आवमिक नहीं करता है तो चाहे लडका

७—जीविका वा वृत्ति—बहुत सी जीविकार्ये वा वृत्तियें (रोज़गार) भी ऐसी है जो कि श्ररीर को रोग के योग्य वनानेबाले कारण वन जाती हैं, जैसे देखे! सब दिन बैठ कर काम करनेवालों, आंख को बहुत परिश्रम देनेवालों, कलेजा और फेफसा दवा रहे इस प्रकार बैठकर काम करने वालों, रंग का काम करने बालों, पारा तथा फास

ंकैसा ही उत्तम क्यों न हो तो भी वे खोग आकर छड़की बाढ़े से बहुत अप्रशंसा तथा निन्दा कर देते है जिस के कारण परस्पर सम्बंध नहीं होता है और यदि दैवयोग से सम्बंध हो भी आता है तो पति पहिन्दों में परस्पर प्रेम नहीं रहता है क्योंकि वे (वर और कन्या) माट सादि के द्वारा एक वृद्धरे की निन्दा सने हुए होते हैं, इन्हीं अप्रवन्धों और परस्पर के द्वेष के कारण बहुधा मनुष्य नाना प्रकार की छनानों में पह गये और उन्हों ने अपनी अर्थाप्तिनी रूप बहुतेरी कालिकाओं को जीते जी रेहापे का खाद बखा हिया. इघर नाई बारी और प्ररोहित आदि के दुखंडे का तो रोना है ही परन्त उघर एक महान बोक का स्थान और भी है कि माता पिता आदि भी न पुत्र को देखते हैं और न पुत्री को देखते हैं. हा बाह आखें खोल कर देखते हैं तो यही देखते हैं कि कितना रूपना पास है और क्या २ साल टाल है किन्तु पुत्र और पुत्री बाहे चोर और ज्वारी क्यों न हो, चाहे समस्त धन को दो ही दिव में उड़ा दें और बाहें लड़की अपने फ़हरपन से एह को पति के वालो जेवन्ताना ही क्यों न वना दे परन्तु इस की उन्हें कुछ भी विन्ता नहीं होती है. सल पूछो तो यही रहा जा सकता है कि वे विवाह को पुत्र के साथ नहीं बरन धन के साथ करते हैं, जब उन की कोई अराई प्रकट होती है तब कहते हैं कि इस क्या करें, हमारे यहां तो एवा से ऐसा ही होता चला आया है, प्रिय महाशयो ! देखिये ! इघर माता पिता खादि की तो यह ठाँछा है. क्षव उघर बाखकार क्या कहते हैं-साखकारों का कथन है कि-नाहें प्रत्न और प्रत्री मरणपर्यन्त क्रमारे (क्षविवाहित) ही क्यों न रहें परन्तु असरश अर्थात् परस्परविरुद्ध ग्रुण कमें और खभान वालों ना विवाह नहीं करना चाहिये इस्पादि, देखिये । प्राचीन कारु में माप के प्रक्षा खोग इसी खास्रोक्त भारा के सदः सार अपने पत्र और प्रतियों का विवाह करते थे, जिस का फल यह था कि उस समय में यह एहत्या-क्षम खर्गधाम की शोभा को दिखला रहा था, बालकारों की यह भी सम्मति है कि जो ली पुरुप विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त एक दूसरे को अपनी इच्छा से पसन्द कर विवाह करते हैं वे ही उत्तम धन्तानों को उत्पन्न कर सदा प्रसन्न रहते हैं, इस कथन का मुख्य तात्पर्य यही है कि-इन क्रगर कहे हुए गुणों में जिस की से जिस पुरुष को और जिस पुरुष से जिस की को अधिक सानन्द निर्के उन्हीं को परस्पर बिबाह करना चाहिये. (देखो । श्रीपाळ राजा का प्राकृत चरित्र, उस में इस का वर्णन सावा है) शास कार यह भी प्रकार २ कर कहते हैं कि अति उत्तम विवाह वही है कि जिस में जल्म रूप और खमान आदि गुणों से मुक्त कन्मा और नर का परस्पर सम्बन्ध हो तथा कन्ना से नर का वरु और मायु दूना वा क्योता तो अवस्थ हो, परन्तु अफसोस का विषय तो यह है कि-शाक्ष को आंत कठ न कोई देखता और न कोई झनता ही है, फिर इस क्या में आलों और आलकारों की सम्मति प्रलेक विषय में कैसे मासूम हो सकती है ? वस यही कारण है कि-विवाहविषय में शासीय सिद्धान्त ज्ञात न होने से अनेक प्रकार की कुरीतियां प्रचलित हो गई और होती जाती है, जिन का वर्णन करते हुए अतिखेद होता है, देखिये! विवाह के विषय में एक यह और भी वड़ी भारी क्रपीति प्रचलित है कि

फरस की चीज़ों के बनानेवालों, पत्थर को घड़नेवालों, घातुओं का काम करनेवालों (छहार, कसेरे, ठँठेरे और युनार आदिकों) कोयले की खान को खोदने वाले मजूरों, कपड़े की मिल में काम करनेवाले मजूरों, बहुत वोलनेवालों, बहुत फ़ंकनेवालों और रसोई का काम मितिदिन करनेवालों का तथा इसी प्रकार के अन्य घन्धे (रोज़गार) करनेवालों का गरीर रोग के योग्य हो जाता है तथा इन की आयु मी परिमाण से कम हो जाती है!

८-प्रकृति-प्रकृति (समाव वा मिजान) भी श्रारीर को रोग के योग्य वनाने-वाला कारण है, देखो ! किसी का मिजान ठंडा, किसी का गर्म, किसी का वातल और

बहुषा उत्तम २ जातियों में विवाह ठेके पर होता है अर्थात सगाई करने से पूर्व इकरार (करार) हो जाता है कि-हम इतनी वही वरात लावेंगे और इतने क्यंबे आप को खर्च करने पढेंगे इस्मादि, उधर वेटी वाले वर के पिता से करार करा लेते हैं कि तम को इतना गहना थीदणी को चढ़ाना पढ़ेगा, यह तो बढे २ श्रीमन्तों का हाल देखने में भाता है. अब बाकी रह बये हजारिये श्रीर गरीब ग्रहस्य लोग, सो इन में भी बहुत से लोग रुपया छेकर कन्या का विवाह करते हैं तथा रुपये के लोभ मे पड़ कर ऐसे अन्थे वन आते हैं कि वर की आयु आदि का भी कुछ विचार नहीं करते हैं अर्थात् वर चाहे साठ दर्ष का बुद्वा क्यों न हो तो भी इपये के कोभ से अपनी अवोध (अज्ञान वा मोली) वाकिका को उस जर्जर के गड़े से वाथ कर उस के किये इ. खागार का द्वार खोल देते हैं. सख तो यह है कि जब से यहा कन्यानिकय की इसीति प्रचलित हुई तब ही से इस मारतवर्ष का सखानाक हो गया है, हे प्रभी! क्या ऐसे निवेंची माता पिता भी कन्या के माता पिता कहे जा सकते हैं ? जो कि केवल रुपये की तरफ देखते हैं और इस बात पर निकक्कळ प्यान नहीं देते हैं कि दो वर्ष के बाद यह झुड्डा मर जायगा और हमारी प्रत्री निमना होकर दुःखसागर से गोरी मारेगी या हमारे कुछ को कलद्वित करेगी, इस क्रुरीति के प्रचार से इस देश मे जो २ द्यानिया हो चुकी हैं और हो रही हैं उन का वर्णन करने में हृदय विदीर्ण होता है तथा विस्तृत होने से उन का वर्णन भी पूरे तौर पर यहा नहीं कर सकते हैं और न उन के वर्णन करने की कोई आवश्यकता ही है क्योंकि इस की ब्रानिया प्रायः ग्रजनों को विदित्त ही है, अब आप से यहा पर गई। निनेदन करना है कि है प्रिय मित्रो ! आप कोग अपनी २ जाति से इस इसी रीति को विरुक्त ही हठा देने (नेस्तनावृद करने) का पूरा १ प्रतिवन्य कीविये. क्योंकि वादि इस (शरी रीति) को जब (मूळ) से न उठा दिया बावेगा तो काळान्तर में अखन्त हानि की सम्मावना है, इस लिये इस इसीतिको उठा देना और इन निम्न लिखित कतिपय वार्तो का भी व्यान रखना आप का सुख्य कत्तंव्य है कि जिस से दोनों तरफ किसी प्रकार का क्षेत्र न हो और मन न विगडे, जैसा कि इस समय हमारे देश में हो रहा है, जिस के कारण भारत की प्रतिष्ठारूपी पताका भी छित्र सिन्न हो गई है तथा उत्तम २ वर्णवालों को भी नीचा डेखना पडता है, इस विषय मे ध्यान रखने योग्य ये वाते हैं— १-वरात में बहुत भीड़ नहीं के बानी चाहिये। २-बबेर या छट की चाल को उठाना चाहिये। ३-वागबहारी में फ़ज्छ खर्ची नहीं करनी चाहिये । ४-आतिशवाजी में रुपये को व्यर्थ में नहीं फ़रुता चाहिये। ५-रिव्हियों का नाच कराना मानो अञ्चम मार्ग की प्रश्नति करना है, इस लिये इस को भी

किसी का मिश्र होता है, मिश्रित प्रकृतिवालों में से कोई र पुरुष दो प्रकृति की प्रधा-नतावाले तथा कोई र तीनों प्रकृतियों की प्रधानतावाले मी होते हैं।

गर्भ मिजाज़वाला मनुष्य प्रायः शीघ ही क्रोध तथा बुखार के आधीन हो जाता है, ठंढे मिजाज़वाला मनुष्य प्रायः शीघ ही शर्दी कफ और दम आदि रोगों के आधीन हो जाता है, एवं वायु प्रकृतिवाला मनुष्य प्रायः शीघ ही वादी के रोगों के आधीन हो जाता है।

यद्यपि स्ल में तो यह प्रकृतिरूप दोष होता है परन्तु पीछे जब उस प्रकृति को वि-गाड़नेवाले आहार विहार से सहायता मिलती है तब उसी के अनुसार रोगोत्पित्त हो जाती है, इसलिये प्रकृति को भी शरीर को रोग के योग्य वनानेवाले कारणों में गिनते हैं॥

उठा वेना चाहिये । बुद्धिमान् जन यथपि इन पांचों ही इरीतियों के फल को अच्छे प्रकार से जानते ही होगे तथापि साधारण पुरुषों के ज्ञानार्थ इन इरीतियों की हानियों का सक्षेप से वर्णन करते हैं:—

बरात में बहुत भीड़माड़ का छे जाना-प्रथम तो यही विचार करना चाहिये कि वरात को एक ठाठ बाट से छे जाने में दोनों तरफ के लोगोंको हैका होता है और अच्छा प्रवन्य तथा आदर सरकार नहीं वन पढ़ता है, इस के सिवाय इघर उघर का घन भी वहुत खर्च हो जाता है, अतः वहुत धुमधाम से बरातको के जाने की कोई आवश्यकता नहीं है, बरन बोड़ी सी बरात को अच्छे सजाव के साथ के जाना श्रति उत्तम है, क्योंकि बोढी सी बरात का दोनों तरफ वाके उत्तम जान पान आदि से अच्छे प्रकार से सरकार कर अपनी जोगा को कायम रख सकते हैं, इस के सिवाय यह भी विचार की बात है कि-इस कार्य में निशेष धन का छगाना श्या ही है, क्योंकि यह कोई चिरस्थायी कार्य तो है ही नहीं सिर्फ दो दिन की बात है, अधिक बरात के छे जाने में नेकनामी की प्रायः कम आशा हो ती है किन्त बदनामी की ही सम्भावना रहती है. क्योंकि यह कायदे की बात है कि समर्थ पुरुष को भी बहत से जनोंका उनकी इच्छा के अनुसार पूरा २ प्रवध करने में कठिनता पडती है, वस नहां वरातियां के आदर सतकार में ज़रा शुटि हुई तो श्रीघ्र ही बराती जन वही कहते हैं कि अगुरु पुरुप की बरात में 'गये थे वहा खाने पीने तक का भी कुछ प्रवन्य नहीं या, सब छोग भूखों के मारे मरते थे, पानी तया दाना चास भी समय पर नहीं मिलता था, इघर सेठवी के लाने के समय तो वदी सीप साप (लक्षे चप्पों) करते ये परन्त वहां तो द्रम दवावे जनवासे ही में वैठे रहे इलादि, कहिये वह कितना अशोमा का स्थान है। एक तो घन जाने और दूसरे कुयम हो, इस में क्या फायदा है ! इस लिये बुद्धिमानों को घोड़ी ही सी वरात छे जाना चाहिये।

वस्तेर या स्टूट--वस्तेर का करना तो सर्व प्रकार ही महा हानिकारक कार्य है, देखो। वसेर का नाम सुनकर दूर २ के भगी आदि नीन जाति के क्षेय तथा छुछे, छंगडे, अपाहज, कैंगछे और दुवंछ आदि इक्ट्रे होते हैं, क्योंकि छाछन बुरी बसा है, इघर नगर निवासियों में से सब ही छोटे बड़े छत और स्टारियों पर तथा वाज़ारों में इकट्टे होकर उट्टके उड़ सग जाते हैं, वसेर करनेवाले वहा पर सुद्धिया अधिक सारते हैं जहा कियों तथा मनुष्यों के समूह अधिक टीते हैं, उन सुद्धियों के सकते ही हज़ारों की पुरुष

.,,,,,,

रोग को उत्पन्न करनेवाले समीपवर्ची कारण ॥

रोगको उत्पन्न करनेवाले समीपवर्षी कारणों में से मुख्य कारण अठारह है और वे ये है—हवा, पानी, खुराक, कसरत, नींद, वक्ष, विहार, मलीनता, व्यसन, विषयोग, रस-विकार, जीव, चेप, ठंढ, गर्मी, मनके विकार, अकस्मात् और दवा, ये सव पृथक् र अनेक रोगों के कारण हो जाते है, इन में से मुख्य सात वातें है जिन को अच्छे मकार से उपयोग में जाने से अरीर का पोषण होकर तनदुरुखी वनी रहती है तथा इन्हीं वस्तुओं का आवश्यकता से कम अधिक अथवा विपरीत उपयोग करने से शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

और बाल बने तले ऊपर गिरते हैं कि जिस से अवस्थ ही दश बीस छोगों के चोट लगही है तथा एक आध मर भी जाते हैं, उस समय में लोभवश आये हुए वेचारे अन्ये छूळे और छंगड़े आदि की तो अलान्त ही हुर्दशा होती है और ऐसी अन्बाधुन्धी मचती है कि कोई किसी की नहीं सुनता है, इघर तो क्रपर से मही धडाघड चली आती है तथा वह दर की मुद्री जिस किसी की जाक वा कान में लगती है वह बैसा ही रह जाता है, उघर सुचे गुंदे लोग क्षियों की ऐसी कुदशा देख उनकी नथ आदि में हाथ सार कर भागते हैं कि जिस से उन बेन्बारियों की नग आदि तो जाती ही है किन्त नाक आदि भी फट जाती है, यह तो मार्ग की दशा हुई-अब जाने बढ़िये-छूट का नाम सुनकर समधी के दर्बाजे पर भी झड़के झण्ड लग जाते है और जब वहां रुपयों की मुद्री चलती है उस समय खटनेवालों को बेहोसी हो जाती है और तक कपर गिरने से बहुत से खोग कुचल जाते हैं, किसी के दात दूरते हैं, किसी के हाथ पर इटते हैं, किसी के मुख आदि अगों से खून बहता है और कोई पढ़ा २ सिसकता है इत्पादि जो १ वडा उर्दशा होती है वह देखने ही से जानी जाती है. मछा वतलाइये तो इस वखेर से क्या लाम है कि जिस में ऐसे २ काँद्रक हों तथा धन भी व्यर्थ में जाने ? देखी ! बखेर में जितना रुपया फेंका जाता है उस में से आधे से अधिक तो मिट्टी आहि में मिल जाता है, वाकी एक तिहाई हट्टे कोई संगी आदि नीचों को मिलता है जिस को पाकर ने लोग खब मास और मध का खान पान करते हैं तथा अन्य हारे कामी में भी व्यय करते हैं, श्रेप रहा सो बन्य सामान्य जनों को मिलता है, परन्त छले छँगडे और अपाहिनों के हाथ में तो कुछ भी नहीं आता है. बरन उन वैचारों का तो काम हो जाता है अर्थात् अनेकों के चोट लग जाती है, इस के मतिरिक्त किन्हीं २ के पहुँची, छहा, नयुनी और अगुठी सादि भूपण जाते रहते हैं इस दशामे चाहे पानेवाळे कुछ छोग तो सेठवीकी प्रश्नंसा मी करें परन्त्र बहुधा वे चन कि जिन के चोट लग जाती है या जिन की कोई चीज जाती रहती है सेठजी तथा खालाजी के नाम की रोते ही है, जिन मनुष्यों को कुछ भी नहीं मिलता है वे यही कहते हैं कि सेठजी ने वखेर का तो नाम किया था. कहां २ कुछ पैसे फेंकरे थे, ऐसे फेंकने से क्या होता है, वह कज़स क्या वखेर करेगा इसादि, देखिये ! यह कैसी वात है-एक तो रुपये गमाना और इसरे बदनामी कराना, इस छिये वखेर की प्रथा को अवस्य वन्द कर वेना चाहिये, हा यदि सेठबी के इस्य में ऐसी ही उदारता हो तथा क्रव्य खर्चकर नामवरी ही छेना चाहते हों तो छले और लंगडों के लिये सदावर्त आदि जारी कर देना चाहिये ।

इन अठारहों विषयों में से बहुत से विषयों का विवरण हम विस्तारपूर्वक पहिले भी कर जुके हैं, इसिलये यहां पर इन अठारहों विषयों का वर्णन संक्षेप से इस प्रकार से किया जायगा कि इन में से प्रत्येक विषय से कौन २ से रोग उत्पन्न होते हैं, इस वर्णन से पाठक गणों को यह बात ज्ञात हो जायगी कि ज्ञारीर को अनेक रोगों के योग्य बनाने-बाले कारण कौन २ से हैं।

१—हवा—अच्छी हवा रोग को मिटाती है तथा खराव हवा रोग को उत्पन्न करती है, खराब हवा से मलेरिया अर्थात् विषम जीर्ण ज्वर नामक बुखार, दस्त, मरोड़ा, हैज़ा, कामला, आधाशीसी, शिर का दुखना (दर्द), मंदाग्नि और अजीर्ण आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

.बहुत ठंढी हवा से खांसी, कफ, दम, सिसकना, श्लोब और सन्धिवायु आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

वाग बहारी अर्थात् पूरू टही—नाग वहारी की भी नतंमान समय में वह चर्चरी है कि—रागि कागज और अवरख (सोवल) के फूलों के स्थान में (बद्यपि वे भी फजूल खर्ची में कुछ कम नहीं थे) हुडी, नोट, चादी सोने की कटोरियां, वादाम, रुपये और अवार्फियों को तस्तामें लगाने की नीवत ना में हुची। यों तो सन ही लोग अपने रुपये और माल की रक्षा करते हैं परन्तु हमारे देवामाई अपने हव्य को आंखों के सामने खर्च होकर खुशी से ल्लटन केते हैं और हव्यको खर्च कर के भी कुछ लाम नहीं एटाते हैं, हा यह तो अवश्यमेन सुनने में आता है कि असुक लाला या साहकार की बरात में फूलटिं अच्छी थी, हरतरह बचाई गई परन्तु न बची, लक्कीवालेके सामने तक न पहुँचने पाई कि पूर टर्डी खुट गई, जब प्रयम तो यही विचार करने का स्थान है कि विवाह के कार्य की प्रसक्ता के पहिले लूटने की अधुभ वाणी का मुँह से तिकलना (कि अमुक को फूल टर्डी लुट गई) कैता खुरा है। इसके विवाय इस में कभी २ लह भी चल लाते हैं, अब टोपी तथा पगदी उत्तर जाती है तब वह फूल हाथ में आते हैं मानो लूटनेवालों की प्रतिश्रा के जाने पर कुछ मिलता है, आपस में द्या हो जाने से बहुधा सेजिल्रेट तक भी नीवत पहुंचती है सब से सदी शोचनीय वात यह है कि विवाह जैसे श्रुभ कार्य के आरम्म ही में सभी का सब सामान करना पहता है।

आतिश्वादाज़ी—आतिशवाजी से व तो कोई सासारिक ही छाम है और न पारलोकिक ही है, वरन् वर्षों के उपार्जन किये हुए घन की सणमात्र में जल्म कर रास की देरी का बना देना है, इस में भीवमाड़ भी इतनी हो जाती है कि एक एक के अपर दश दश गिरते है, एक इघर दौड़ता है, एक उघर दोड़ता है इस से श्रद्धां तक धक्रमधक्का मन्द जाती है कि—बहुमा कोग वेदम हो जाते हैं, तमाचा यह होता है कि—किसी के पैर की उंगली पिनी, किसी की डाड़ी जर्की, किसी की मौओं तथा मूखे का सफाया हुआ, किसी का दुप्श तथा किसी का कंगरखा जल गया तथा किसी २ के हाद मांद मुन मने, इस से बहुमा मकानो के छप्परों में भी आग लग जाती है कि विस से चारो और हाहाकार मन्द जाता है और उस से अन्य स्थान काने के हारा बहुमा मनेक हानिया हो जाती है, कमी २ मनुष्य तथा पश्च मी

बहुत गर्म हवा से जलन, रूलापन, गर्मवायु, प्रमेह, प्रदर, अम, अँघेरी, चकर, भँवर आना, वातरक्त, गलत्कुछ, शील, ओरी, पिँडलियों का कटना, हैना और दस्त आदि रोग उत्पन्न होते हैं ॥

२-पानी--निर्मेख (साफ) पानी के जो छाम है वे पहिले लिख चुके हैं उन के लिखने की अब कोई आवश्यकता नहीं है।

सराव पानी से—हैज़ा, क्रमि, अनेक प्रकार का ज्वर, दस्त, कामला, अरुचि, मन्दाग्नि, अर्ज्ञीर्ण, मरोड़ा, गलगण्ड, फीकापन और निर्वेळता आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

अधिक स्नारवाले पानी से—पथरी, अजीर्ण, मन्दाग्नि और गलगण्ड आदि रोग होते है। सड़ी हुई वनस्पति से अथवा दूसरी चीज़ों से मिश्रित (मिले हुए) पानी से दस्त, शीत जबर, कामला और तापतिल्ली आदि रोग होते है।

मरे हुए जन्तुओं के सब्दे हुए पदार्थ से मिले हुए पानी से हैना, अतीसार तथा दूसरे भी मयंकर और ज़हरीले बुखार उत्पन्न होते है।

षळ कर प्राणों को खागते हैं, इस के अतिरिक्त इस निकृष्ट कार्य से हवा मी विगड जाती है कि जिस से प्राणी सात्र की आरोज्यता में अन्तर पड जाता है, इस से द्रव्य का जुकसान तो होता ही है किन्दु उस के साथ में महारम्म (जीवहिंसाजन्य अपराध) मी होता है, तिस पर भी द्वरों यह है कि-घर वार्लों को कार्मों की अधिकता से घर फूंक के भी तमाक्षा देखने की नीवत नहीं पहुंचती है।

रण्डी (वेच्या) का मान्य—सस्य तो यह है कि-रण्डियों के नाम ने इस मारत को गारत कर दिया है, क्योंकि तवला और सारंगी के बिना भारत बासियों को कल ही नहीं पढ़ती है, जब यह दक्षा है तो वरात में भाने नाने बालों के लिये वह सकीमनी क्यों न हो। समधी तथा समधिन का भी पेट एस के बिना नहीं भरता है, ज्यों ही बरात चली खों ही बिपयी जन बिना जुलाये नलने लगते हैं, वेस्था को जो स्पया दिया काता है उस का तो सस्यानाश होता ही हैं किन्तु उस के साथ में अन्य भी बहुत सी हानियों के हार खुळ जाते हैं, देखों। नाम ही में कुमार्गी मित्र उत्सव हो जाते हैं, नाम ही में हमार्ग देश के भाव्य साहुकार कवा को तिलाझळ देते हैं, नाम ही में वेश्याओं को अपनी शिकार के फीसने तथा नी जवानों का सस्यानाश मारंग का समय (सीका) हाय क्याता है, वाप वेटे माई और मतीजे आदि सब ही छोटे वटे एक महफिल में वैठकर लवा का परदा उठा कर अच्छे प्रकार से घूरते तथा अपनी आंखों को गर्म करते हैं वेश्या भी अपने मतलम को सिद्ध करने के लिये महफिलों में हमरी, टप्पा, नारहमासा और गजळ आदि हरक के खोतक रसीले रागों को गाती हैं, तिस पर भी हुरी यह है कि—ऐसे रसीले रागों के साथ में तीक्ण कटाझ तथा हान भाव भी इस प्रकार बताये जाते हैं कि जिन से मतुष्य लोट पोट हो जाते हैं तथा खुन सुरत और ग्रंगर किये हुए नी जवान तो उस की पुरीली आवाज और उन तीक्ष कटाझ आदि से ऐसे धायल हो खाते हैं कि फिर उन को तिवाय इस्त शस्य यार के लीर कुछ भी नहीं सुहतता है, देखिये। किसी महात्मा ने कहा है कि——

घातुओं के योग से मिले हुए पानी से (जिस में पारा सोमल और सीसा आदि वि-पैंडे पदार्थ गलकर मिले रहते हैं उस चलसे) मी रोगों की उत्पत्ति होती है ॥

र-खुराक — गुद्ध, अच्छी, प्रकृति के अनुकूल और ठीक तौर से सिजाई हुई खुराक के लाने से शरीर का पोपण होता है तथा अगुद्ध, सड़ी हुई, नासी, विगड़ी हुई, कची, रूखी, बहुत ठंढी, बहुत गर्म, भारी, मात्रा से अधिक तथा मात्रा से न्यून खुराक के लाने से बहुत से रोग उत्पन्न होते हैं, इन सब का वर्णन संक्षेप से इस प्रकार है:—
१ — सड़ी हुई खुराक से — कृमि, हैज़ा, वमन, कुष्ठ (कोड़), पित्त तथा दस्त आदि रोग होते हैं।

दर्शनात् इरते चित्तं, स्पर्शनात् हरते वलम् । मैथुनात् हरते चीर्यं, नेस्या प्रत्यक्षराक्षसी ॥ १ ॥

क्यांन् दर्शन से चित्त को, हुने से बठ को और मैधन से वीर्य को इर लेती है, अतः नैस्था सनमुन राक्षची ही है ॥ १ ॥ यशपि सद ही जानते हैं कि इस राक्षणी बेरुग ने हज़ारों वरों को बूक में मिला विया है तिस पर भी तो बाप जीर बेटे को साथ में बैठ कर भी इन्छ नहीं सुनता है, वहा उस की ऑख लगी कि यहनायर हो जाते हैं। प्रतिष्ठा तथा जवानी को खोकर बदनानी का तीक गरू में पहनते हैं, देखों ! हजारों लोग इस्क के नहीं में चर होकर अपना घर बार वेंचकर दो २ वानों के लिये मारे २ फिरते हैं, बहुत से नादान क्षेग घन कमा २ कर इन की मेंट चवाते हैं और उनके मातापिता हो २ दानों के खिये मारे २ फिरते हैं, सब पूछो हो इस कुकार्य से उन की जो २ कुदबा होती है वह सब अपनी करनी का ही निक्रष्ट फुछ है. क्योंकि वे ही प्रत्येक उत्सव अयोत् बालकवन्म, नामकरण, सण्डन, सगाई और विवाह चें तथा इन के सिवाय जन्नाष्ट्रनी, रासफीका, रामफीका, होकी, दिवाकी, दशहरा और वसन्तप्रवनी आदि पर बुटका २ कर अपने ना जनानों को उन राखितां की रहमरी जानाज तथा मधुरी बाँखें दिसल्याते हैं कि जिस से वे बहुधा रण्डीवाज़ हो जाते हैं तथा उन को जातसक और मुजाब आदि बीतारियों घेर छेती हैं, जिन की आग ने वे खुद मुनते रहते हैं तथा उन की परसादी अपनी औगाद की भी देस्त निराध छोड़ जाते हैं, बहुतते मूर्च वन रण्डीवों के नाज नखरे तथा बनाव श्रंगर आदि पर ऐसे मोहित हो जाते हैं कि घर की विवाहिता कियों के पास तक नहीं वाते हैं तथा उन (विवाहिता क्वियों) पर नाना प्रकार के दोष रखकर गुँह से बोलना भी अच्छा नहीं समझते हैं, वे वेचारी हु अ के क्रारण रातदिन रोती रहती है, यह भी अनुभव किया गया है नि-यहुषा जो क्रियां महफिल का नाव देख हेती हैं उन पर इस का ऐसा बुरा असर पड़ता है कि-जिस से घर के घर उनड़ जाते हैं. क्योंकि-सब ने देखती हैं कि-सम्पूर्ण सहफिल के टोग उस रण्डी की ओर टकटकी खगाये हुए उस के नाज़ और नखरों नो सह रहे हैं, यहांतक कि जब वह बूक्ने का इरादा करती है तो एक बादमी पीनदान डेकर हाज़िर होता है, इसी प्रकार चिंद पान खाने की ज़रुरत हुई तो भी निहाबत बाज़ तथा अदब के साथ उपस्थित क्रिया जाता है, इस के निवान वह दुष्टा नीचे से ऊपरतक सोने और चादी के आमूएणों तथा शतलस, गुलबदन और कमरस्वाब आदि बहुमूल्य बहरों के पेसवाज़ को एक एक दिन में चार २ दफे २-कची ख़राक से-मजीर्ण, दस्त, पेट का दुखना और कृमि मादि रोग होते हैं । ३-रूसी ख़ुराक से-वायु, शूल, गोला, दस्त, कठनी, दम और श्वास आदि रोग उत्पन्त होते हैं।

9-वातल ख़ुराफ से-शूल, पेट में चूंक, गोला तथा वायु आदि रोग उत्पन्न होते हैं। ५-बहुत गर्म ख़ुराक से-खांसी, अम्लपित (खट्टी वमन), रक्तपित्त (नाक और मुख

आदि छिद्रों से रुघिर का गिरना) और अतीसार आदि रोग उत्पन्न होते है । ६-यहुत ठंढी खुराक से-खांसी, श्वास, दम, हांफनी, शूळ, अर्दी और कफ आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

नई २ किस्म के बदलती है तथा अंतर और फुल्क की लपटे उस के पास से चली आती हैं वस इन्हीं सब बातों को देखकर उन विद्याहीन क्रियों के मन में एक ऐसा बरा असर पड जाता है कि जिस का सन्तिस (आखिरी) फळ यह होता है कि बहुवा वे भी उसी नगर में खूहमखुहा कवा को छाग कर राष्ट्री वन कर गुलछरें उडाने अगती हैं और झोई २ रेड पर सवार होकर अन्य देशों से जाकर अपने सन की आशा को पूर्ण करती है, इस प्रकार/रण्डी के नाम से गृहस्था को अनेक प्रकार की हानियां पहचती हैं. इस के सतिरिक्त यह कैसी कुप्रेया चल रही है कि-जब दर्वाजो पर रण्डियां गाली गाती है बीर उधर से (धर की कियों के द्वारा) उसे का जबाव होता है, देखिये । उस समय कैसे २ अपशब्द बोले जाते हैं कि--जिन को युन कर अन्यदेशीयकोगों का इंसते २ पेट फुल जाता है और वे कहते हैं कि इन्हों ने तो रिण्डयों को भी भाव कर दिया, विकार है ऐसी सास आदि को । जो कि मनुष्यों के सम्मुख (सामते) ऐसे २ शब्दों का उचार्रण करें! अथवा राज्यों से इस प्रकार की गाडियों को सुनकर माई बन्धु माता और पिता आदि की किश्चित सी छवा न करें और यह के अन्दर घूंपट बनाये रखकर तथा अंची आवाज से बात भी न कह कर अपने को परम अज्ञावती प्रकट करे! ऐसी दशा में सच पूछो तो विवाह क्या मानो परदे वाळी क्रियों (शर्म रखनेवाकी क्रियों) को जान वसकर बेशसे बनाना है. इस पर भी तुरी यह है कि-खरा होकर रिण्डयों को रूपया दिया जाता है (मानो घर की छनावती ब्रियों को निर्केक बनाने का प्ररस्कार दिया जाता है), प्वारे सुजनो ! इन रिण्डयों के नाच के ही कारण जब मतुष्य बेस्यायामी (रण्डीबाज) हो जाते हैं तो वे अपने घर्म कर्म पर भी वता क्षेज देते हैं, प्राय आपने देखा होगा कि जहा नाम होता है वहा दश पांच तो अवस्य शह ही जाते हैं. फिर जरा इस बात को भी सोचो कि जो रुपया उत्सवों और खुशियों में उन को दिया जाता है वे उस रुपये से वकराईद में जो कुछ करती हैं वह इत्सा भी रुपया देनेवाओं के ही शिर पर चढती है. क्योंकि-जब रुपया देनेवाओं को यह बात प्रकट है कि यदि इन के पास रुपया न होगा तो ये द्वाध सरुप्रत कर रह जानेगी और हस्या आदि कुछ भी न कर सकेंगी-फिर यह जानते हुए भी जो जोग उन्हें रूपया हेते हैं तो मानो ने ख़द ही उन से हत्या करवाते हैं. फिर ऐसी दशा में वह पाप रुपया टेनेवालों के शिर पर क्यों न चढेगा ! अब कहिये कि वह कौन सी ब्रद्धिमानी है कि रुपया खर्च करना और पाप को शिर पर लेना। प्यारे मुजनो ! इस नेस्या के नृत्य से विचार कर देखा जावे तो उमयलोक के मुख नष्ट होते हैं और इस के समान कोई भी कुत्सित प्रथा नहीं है, यद्यपि बहुत से लोग इस दुष्कर्म की हानियों

७-मारी ख़ुराक से-अपची, दस्त, मरोड़ा और बुसार आदि रोग उत्पन्न होते हैं। ८-मात्रा से अधिक ख़ुराक से-दस्त, अबीर्ण, मरोड़ा और उत्तर आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

९-मात्रा से न्यून ख़ुराक से-क्षय, निर्वळता, चेहरे और शरीर का फीकापन और बुसार मादि रोग उत्पन्न होते हैं।

इस के सिवाय मिट्टी से मिली हुई खुराक से-पाण्डु रोग होता है, बहुत मसालेदार खुराक से-यक्टत् (कलेजा अर्थात् लीवर) विगड़ता है और बहुत उपवास के करने से शूल और वायुजन्य रोग आदि उत्पन्न होकर श्वरीर को निर्वल कर देते हैं॥

को अच्छे प्रकार से जानते भी हैं तो भी इस को नहीं कोड़ते हैं, संसार की अनेक बदनामियों को विशर पर उठाते हैं तो भी इस से मुख नहीं मोड़ते हैं, इस क्रपीति की बो कुछ निक्रप्टता है उस को दूसरे तो क्या वतकानें किन्तु वह दूख तथा उस का सबैं सामान ही वतकाता है, देखो! जब मुख होता है तथा नैश्या गाती है तब यह उपदेश मिळता है कि—

सचिया-श्रम कालको छाड कुकाज रचें, यन जात है व्यर्थ सदा तिन को। एक रांव बुकाब बचावत हैं, नहिं खावत छाड जरा तिनको॥ मिरदंग भने चुक्र है चुक् हैं, बुरताळ पुछे किन को किन को। तब उत्तर रांड बतावत हैं, एक् है इन को इन की इन को ॥ १॥

एक समय का प्रसंग है कि-किसी भाग्यवान, वैस्थ के यक्क्युक ब्राह्मण ने भागवत की क्या वाची सब उस वैस्य ने क्या पर केवळ तीस रुपये नदाये परन्तु मा। भाग्यवान के वहां जब पुत्र का निवाह हुआ तो उस ने वेस्या को ब्रुकाई सीर उसे सात सी रुपये दिये, उस समय उस ब्राह्मण ने कहा है कि-

वोहा—उल्टी गति गोपाल की, घट गई विक्वा बीस ॥ रामजनी को सात सी, अमयराम को तीस ॥ १ ॥

. प्रियवरो ! अब अन्त में आप से यही कहना है कि-यदि आप के विचार में भी जगर कहीं हुई सब बातें ठीक हों तो श्रीप्र ही भारतसन्तान के उद्धार के लिये वेश्वा के नाच कराने की प्रधा को अवस्य स्थाग दीजिये, अन्यथा (इस का खाग न करने से) सम्मति देने के द्वारा आप भी दोषी अवस्य होंगे, क्योंकि-किसी विषय का खाग न करना सम्मति रूप ही है ॥

भांख—चेस्या के गृह्य के समान इस देश में मांडों के कौतुक कराने की भी प्रधा पढ रही है, इस का भी कुछ वर्णन करना चाहते हैं, ध्रुनिये—क्योंही वेस्याओं के नाच से निश्चिन्त हुए खोंही माडों का छस्कर वसीत के मेंडकों की मांति भांति २ की बोली बोलता हुआ निकल पड़ा, अब छगी तालियां बलने, कोई किसी की सुदी हुई खोपड़ी में चपत जमाता है, कोई गमें की भांति चिन्नाता है, एक कहता है कि मिया थी! दूसरा कहता है पुत्र, तास्पर्य यह है कि वे लोग अनेक प्रकार के कोलाहल मचाते हैं तथा ऐसी २ नकर्छ बनाते और सुनाते हैं कि जालाबी सेठवी और वाबू ची आदि की प्रतिष्ठा में पानी पड़ जाता है, ऐसे २ शब्दों का उचारण करते हैं कि जिन के किखने में भी केखनीको तो लगा आदी

८—कसरत से होनेवाले लामों का वर्णन पहिले कर चुके हैं तथा उस का विधान भी लिख चुके हैं, उसी नियम के अनुसार यथाशक्ति कसरत करने से वहुत लाम होता है, परन्तु बहुत मेहनत करने से तथा आलसी होकर बैठे रहने से बहुत से रोग होते हैं, अर्थात् बहुत परिश्रम करने से बुखार, अवीर्ण, ऊरुद्धान्म (नीचे के माग का रह जाना) और श्वास आदि रोगों के होने की संमावना होती है तथा आलसी होकर बैठे रहने से—अवीर्ण, मन्दाग्नि, मेदवायु और अशक्ति आदि रोग होते हैं, भोजन कर कसरत करने से—कले को हानि पहुँचती है, मारी अब खाकर कसरत करने से—आम-वात का मकोप होता है।

कसरत दो प्रकार की होती है—एक शारीरिक (शरीर की) और दूसरी मानसिक (मन की), इन दोनों कसरतों को पूर्व लिखे अनुसार अपनी शक्ति के अनुसार ही करना चाहिये, क्योंकि हह से अधिक शारीरिक कसरत तथा परिश्रम करने से हृदय में ज्याकुकता (अइयझाहट) होती है, नसों में रुपिर बहुत शीघ्र फिरता है, श्वासोच्छ्रास

है परना उस सभा के बैठनेवाले जो सभ्य कहलाते हैं कुछ भी कजा नहीं करते हैं. बरनः प्रसन्न बिक्त होकर इंसते २ अपना पेट फ़लाते और उन्हें पारितोषिक प्रदान करते हैं. प्यारे सुलनो ! इन्हीं व्यर्थ बातों के कारण भारत की सन्तानों का सत्यानाश मारा गया, इस किये इन सिभ्या प्रपत्नों का सीध्र ही खाग कर वीजिये कि जिन के कारण इस देश का पटपड़ हो गया, कैसे पद्यात्ताप का स्थान है कि-जहा प्राचीन समय में प्रहोक उत्सव में पण्डित जनों के सखोपदेश होते से वहा अब रण्डी तथा कींसे का नाच होता है तथा माति २ की वक्छें आदि तमाधे दिखळाये जाते हैं जिन से अध्यक्ष कर्म वेंघता है, क्योंकि वर्मशास्त्रों में लिखा है कि-नकल करने से तथा उसे देसकर खब होने से बहुत अध्यम कर्म वषता है, हा शोक ! हा शोक !! हा शोक !! इस के खिवाय थोडा सा वतान्त और भी पुन सीजिये और उसे छुनने से यदि कजा प्राप्त हो तो उसे छोडिये, वह यह है कि-विवाह आदि उत्सवों के समय क्रिया में बाजार, गर्छा, कुचे तथा घर मे फहर गालियों अथवा गीतों के गाने की निकृष्ट प्रथा अनिदाा के कारण वल पड़ी है तथा जिस से एहस्थाशम को अनेक हानिया पहुंच जुड़ी हैं और पहुंच रही है, उसे भी छोडना सावस्थक है, इस लिये आप को चाहिये कि इस का प्रवन्य करें अर्थात क्रियों को फूहर गालियां तथा गीत न गाने देवें, किन्तु निन गीतों में मर्यादा के सब्द हो उन को कोमल वाणी से गाने दे, क्योंकि युवतियों का युवानस्या में निर्छम शब्दो का मुख से निकालना मानी बास्द की चिनगारी का छोहना है. इस के अतिरिक्त इस व्यवहार से क्रियों का खमाव भी विगड़ जाता है. चित्त विकारों से भर जाता है भौर मन विषय की तरफ दौड़ने रुगता है फिर उस का साधना (काबू में रखना) अखन्त ही कठिन वरन. दुस्तर हो जाता है, इस खिये उचित है कि मन को पहिछे ही से निपयरस की तरफ न झुकने देवे तथा जीवन रूपी मदवाछे के हाथ में विषयरस रूपी हथियार देके अपने हितकारी सद्गुणों का नाश न कराव, यदि सन को पहिछे ही से इस से न रोका जावेगा तो फिर उस का रुकना अति कठिन हो जावेगा ।

बहुत ज़ोर से चळता है जिस से मगज़ तथा फेफसे आदि आवश्यक मार्गों पर अधिक दबाव होने से तत्सम्बंधी रोग होता है, मँबर आते हैं, कानों में आवाज़ होती है, लाँखों में अधरा छा जाता है, मूख मारी जाती है, अजीर्ण होता है, नींद नहीं आती है तथा बेचैनी होती है तथा शक्ति से बढ़कर मानसिक कसरत करने से मनुष्य के मगज़ में जुस्सा भर जाता है जिस से बेहोसी हो जाती है तथा कमी २ मृत्यु भी हो जाती है, मानसिक विपरीत परिश्रम करनेसे अर्थात् चिन्ता फिक आदि से अंग सन्तप्त हो जाते हैं,

इस के सिवाय विवाह के विषय में एक बात और भी अवस्य ध्यान में रखने योग्य है कि दोनों ओर से ऐसा कोई काम नहीं होना चाहिये कि जिस से आपस में त्रेम न रहे जैसे कि-बहुवा लोग बरातों में दाने घास और परो से आदि तनिक २ सी बातों में ऐसे झगड़े डाल देते हैं कि जिन से समिष्यों के मतों में अन्तर पड़ जाता है कि जिस के कारण छाख देने पर भी आवन्द नहीं आता है, यह बात विलक्क सन है कि-प्रेम के विना सर्वस्त मिलने पर भी प्रसन्तता नहीं होती है अतः प्रीतिपूर्वक प्रस्पेक कार्य को करना चाहिये कि जिस से दोनो ही तरफ प्रशसा हो और खर्च सी व्यय न हो, अला सोचने की बात है कि-हो सम्बंधियों में से जब एक की द्वराई हुई तो क्या वह अपना सम्बंधी नहीं है ² क्या उस की वदनामी से अपनी वदनामी नहीं हुई 2 सब पूछो तो जो कोग इस बात पर ध्यान नहीं देते हैं उन सम्बंधियों पर घता मेजना उचित है, क्योंकि विवाह का समय आपस में आनन्द तथा प्रेमरस के वर-धाने और मृद्ध सद्वर नार्तालाम करने का है, किन्त्र एक वृद्धरे के विपरीत ठीला रच कर युद्ध का सामान इकड्डा कर केने का यह समय नहीं हैं, इस किये जो छोग ऐसा करते हैं वह उन की सबैधा मूर्खता की बात है, अतः दोनों को एक दूसरे की अलाई का तन मन से विचार कर कार्यों को कर के यश का लेना उचित है, दोनों सम्बिधनों को यह भी उचित है कि-जो मनुष्य मन से दोनों की धूर उडाना पाहते है तथा बाहर से बहुत सी लड़ो फ्तो करते हैं उन की वार्ता पर कदापि ध्यान न दें, क्योंकि इस संसार में दूसरे को खशामद आदि के द्वारा निरन्तर प्रसन्न करने के शिये प्रिय बोलनेवाले प्रशंसक लोग बहुत हैं परन्तु को बचन सुनने में चाहे अप्रिय ही हो परन्तु वास्तव में कल्याण करनेवाला हो उस के बोलने बाले तथा धुनने बाले पुरुष दुर्लभ हैं, देखों ! बहुचा ग्रुप्त श्रश्च तथा दुष्ट क्षोग सामने तो हा में ही मिळाते हैं और पीछे बुराई निकालकर दर्शांते हैं परन्तु सत्युरुष तो चुँह पर प्रत्येक बखु के गुण और दोवों का वर्णन करते हैं और परोक्ष में प्रशसा ही करते है, इन वातों को विचार कर दोनों समधियों की योग्य है कि-दोनों समक्ष में मिलकर प्रलेक बात का साम निर्णय कर जो दोनों के लिये लामदायक हो उसी का अंगीकार करें जिस से दोनों कानन्द में रहे, क्योंकि वही विवाह और सम्वय का मुख्य फल है।

विवाह की रीति जो इस समय विगड रही है वह प्रसन्नवन्न पाठका को सक्षेप से बतला दी गई, गरि इस का पूरे तौर से वर्णन कर इस के दोष और ग्रुण वतलाये जानें तो इसी विषय का एक प्रन्य वन इस का पूरे तौर से वर्णन कर इस के दोष और ग्रुण वतलाये जानें तो इसी विषय का एक प्रन्य वन जाने परन्तु इिद्यमान पुरुष सङ्केतमात्र से ही तत्त्व को समझ लेते हैं अतः श्रातिसंक्षेप से ही इस विषय का वर्णन किया है, आसा है कि पाठक गण इतने ही कथन से अपने हिताहित का विचार कर अध्य और शहित कुमार्ग का ख़ाय कर झुम और हितकारक सन्मार्ग का अवसम्थन करेंगे ॥

शरीर में निर्वछता अपना घर कर छेती है, इसी प्रकार शक्ति से वाहर पढ़ने छिखने तथा बांचने से, बहुत विचार करने से और मन पर बहुत दवाव डाळने से कामला, बजीर्ण, वादी और पागलपन आदि रोग उत्पन्न होते है।

क्षियों को योग्य कसरत के न मिलने से—उनका शरीर फीका, नाताकत और रोगी रहता है, गरीव लोगों की क्षियों की अपेक्षा द्रव्यपात्र तथा ऐश आराम में संलम लोगों की क्षियों पायः मुख में अपने जीवन को व्यतीत करती है तथा निना परिश्रम किये दिनमर आलस्य में पड़ी रहती है, इस से बहुत हानि होती है, क्योंकि—जो क्षियां सदा वैठी रहा करती है उन के हाथ पांव ठंडे, चेहरा फीका, शरीर तपाया हुआ सा तथा दुर्बल, वादी से फूला हुआ मेद, नाड़ी निर्वल, पेट का फूलना, बदहन्मी, छाती में नलन, सट्टी डकार, हाथ पैरों में कांपनी, चसका और हिष्टीरिया आदि अनेक मकार के दुःखदायी रोग तथा ऋतुधर्मसम्बन्धी भी कई मकार के रोग होतें हैं, परन्तु ये सब रोग उन्ही कियों के होते हैं जो कि शरीर की पूरी २ कसरत नहीं करती हैं और माग्यमानी के घमण्ड में आकर दिन रात पड़ी रहती हैं ॥

५-नींद् - आवश्यकता से अधिक देर तक नींद के छेने से रुघिर की गिति ठीक रीति से नहीं होती है, इस से शरीर में चर्नीका माग जम जाता है, पेट की दूद (तोंद) बाहर निकळती है, (इसे मेदबायु कहते है), कफ का जोर होता है, जिस से कफ के कई एक रोगों के होने की सम्भावना हो जाती है तथा आवश्यकता से थोड़ी देरतक (कम) नीद के छेने से शूळ, उत्तरुम्म और आळस्य आदि रोग हो जाते है।

यहुत से मनुष्य दिन में निद्रा लिया करते है तथा दिन में सोने को ऐश आराम समझते हैं परन्तु इस से परिणाम में हानि होती है, जैसे—कोष, मान, माया और लोभ आदि आत्मश्रुओं (आत्मा के बैरियों) को थोड़ा सा मी अवकाश देने से वे अन्तः करण पर अपना अधिकार अधिक २ जमाने लगते है और अन्त में उसे वश में कर लेते हैं उसी प्रकार दिन में सोने की आदत को भी थोड़ा सा अवकाश देने से वह भी मांग और अफीम आदि के ज्यसन के समान चिपट जाती है, जिस का परिणाम यह होता है कि यदि किसी दिन कार्यवश दिन में सोना न वन सके तो शिर मारी हो जाता है, पैर टूटने लगते है और जम्रहाइयां आने लगती हैं, इसी तरह यदि कभी विवश होकर काम में लग जाना पड़ता है तो अन्तःकरण सोलह आने के वदले आठ आने मात्र काम (आधा काम) करने थोग्य हो जाता है, यद्यपि अत्यन्त निर्वल और रोगमस्त मनुष्य के लिये वैद्यकशास्त्र दिन में सोने की भी आज्ञा देता है परन्तु सस्थ (नीरोग) मनुष्य के लिये तो वह (वैद्यक श्रास्त्र) ऐसा करने (दिन में सोने) का सदा विरोधी है।

गर्मी की ऋतु में जब अधिक गर्मी पड़ती है तब श्वरीर का जलमय तत्त्व और बाहरी गर्मी शरीर के भीतरी भागों पर अपना प्रभाव दिखलाने लगती है उस समय दिन में भी थोड़ी देरतक सोना बुरा नहीं है परन्तु तब भी नियम से ही सोना चाहिये, बहुत से लोग उस समय में ग्यारह बजे से लेकर सायंकाल के पांच बजे तक सोते रहते हैं, सो यह वे अनुचित आचरण ही करते हैं, क्योंकि उस समय में भी दिन का अधिक सोना हानि ही करता है।

इस के सिवाय दिन में सोने से एक हानि और भी है और वह यह है कि-रात्रि में अवस्य ही सोकर विश्राम छेने की आवस्यकता है परन्तु वह दिनका सोना रात्रि की निद्रा में बाधा डाळता है जिस से हानि होती है।

बहुत से मनुष्य भी इस बात को स्तीकार करते हैं कि दिन में सोकर उठने के बाद उन का शरीर मिट्टीसा और कुछ ज्वर आजाने के समान निर्माल्य (कुझलाया हुआ सा) हो जाता है।

दिन में अच्छीतरह सोकर उठनेवाले मनुष्य के ग्रस की ग्रहा को देसकर लोग उस से प्रश्न करते हैं कि क्या जाज जाप की तबीयत जच्छी नहीं है! परन्तु उत्तर यही मिलता है कि—नहीं, तबीयत तो अच्छी है परन्तु सोकर उठा हूँ, इस से जिंसे छाल दिसलाई देती होंगी, अब कहिये कि दिन का सोना ग्रसकर हुआ कि हानिकर!

दिन में सोने से शरीर के सब धातु खास कर विकृत और विषम बन जाते हैं तथा शरीर के दूसरे भी कई शीतरी भागों में विकार उत्पन्न होता है।

कुछ मनुष्यों का यह कथन है कि—हम को सुल मिलता है इसलिये हम दिन में सोते हैं, परन्तु उन की यह दलील चलने योग्य नहीं है, क्योंकि मुख्य बात तो यह है कि उन के ऊपर आलस्य सवार होता है और उन्हें लेटते ही निद्रा आ जाती है, परन्तु सरण रखना चाहिये कि दिन की निद्रा खामाविक निद्रा नहीं है, किन्तु वैकारिक अर्थाद विकार को उत्पन्न करनेवाली है, देखों ! दिन में सोने वालों में से मनुष्यों का अधिक माग इस बात को खीकार करेगा कि दिन में सोने से उन्हें बहुत से विकृत खम आते हैं, कहिये इस से क्या सिद्ध होता है ! इसलिये बुद्धिमानों को सदा दिन में सोने के ज्यसन को अपने पीछे नहीं लगाना चाहिये।

यह भी सरण रखना चाहिये कि जिस प्रकार दिन में सोने से हानि होती है उसी प्रकार रात्रि में जागना भी हानिकर होता है, परन्तु उपवास के अन्त में रात्रि का जागना हानि नहीं करता है, किन्तु नियमित आहार कर के जागना हानि करनेवाला है, रात्रि में जागने से सब से प्रथम अजीर्ण रोग उत्पन्न होता है, मला सोचेन की बात है कि साधारण और अनुकूल आहार ही जब रात्रि में जागने से नहीं पचता है तो अनुकूलता

पर ध्यान देने के वदले केवल खाद ही पर चलनेवाले और मात्रा के अनुसार खाने के बदले खूव डाट कर ट्रंसनेवाले मनुष्य यदि रात्रि में जागने से सजीर्ण रोग में फॅस आंय तो इस में आधर्य ही क्या है ?

जो लोग दिन में सोकर रात्रि को नारह नजेतक जागते रहते है तथा जो दिन में तो इघर उघर फिरते रहते है और रात्रि में काम करके नारह नजेतक जागते है, वे जानवृझ कर अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारते है और अपनी आयु को घटांते है, किन्तु जो रात्रि में सुख से सोने वाले है ने ही दीर्घनीनी गिने जा सकते हैं, देखो ! पहिले यहां के लोगों में ऐसी अच्छी प्रथा प्रचलित थी कि प्रातःकाल उठकर अपने सेहियों से कुशल प्रश्न पृछते समय यही प्रश्न किया जाता था कि रात्रि सुखनिद्रा में व्यतीत हुई ! इस शिष्टाचार से क्या सिद्ध होता है यही कि लोग रात्रि में सुख से निद्रा लेते है ने ही दीर्घनीनी होते है।

निद्रा को रोकने से शिर में दर्द हो जाता है, जमुहाइयां आने छगती है, शरीर ट्रटने छगता है, काम में अरुचि होती है और आंखें मारी हो जाती है।

देखो ! निद्रा का योग्य समय रात्रि है, इसिल्ये जो पुरुष रात्रि में निद्रा नहीं लेता है वह मानो अपने जीवन के एक मुख्य पाये को निर्वेख करता है, इस में कुछ भी सन्देह नहीं है ॥

६—चस्त्र—देश और काल के अनुसार वस्तों का पहनना उचित होता है, क्योंकि वह भी शरीररक्षा का एक उत्तम साधन है, परन्तु वड़े ही शोक का विषय है कि—वर्त- मान समय में बहुत ही कम लोग इन वातों पर ध्यान देते है अर्थात् सर्वसाधारण लोग इन वातों पर जरा भी ध्यान नहीं देते है और न वस्तों के पहरने के हानिलाभों को सोचते है किन्तु जो जिस के मन में आता है वह उसी को पहनता है।

वस पहरने में यह भी देखा जाता है कि छोग देश काल और प्रकृति आदि का कुछ भी विचार न करके एक दूसरे की देखा देखी नस पहरने लगते हैं, जैसे देखों ! आज कल इस देश में काल कपड़ा बहुत पहिना जाता है परन्तु इस का पहनना देश और काल दोनों के विपरीत है, देखिये ! यह देश उष्ण है और काली वस्तु में गर्मी अधिक प्रस जाती है तथा वह बहुत देरतक बनी रहती है, इस पर भी यह खूबी कि श्रीष्म ऋतु में भी काले वस्त्र को पहनते है, उन का ऐसा करना मानो दुःखों को आप ही बुलाना है, क्योंकि सर्वदा काले वस्त्र का पहरना इस उष्णता प्रधान देश के वासियों को अयोग्य और हानिकारक है, इस के पहरने से उन के रस रक्त और वीर्य में गर्मी अधिक पहुँचती है, जिस से खच्छ और अनुकृत मोजन के साने पर भी घातु की क्षीणता और

१-नाटक के देखने के शौकीन स्रोगों को भी सायु को ही घटानेवारे जानी ॥

रक्तिविकार आदि रोग उन्हें घेरे रहते हैं, देखो ! इस समय इस देश में बहुत ही कम पुरुष ऐसे निकलेंगे कि जिन को धातुसम्बन्धी किसी प्रकार की बीमारी नहीं है नहीं तो जिधर जाइये उधर यही रोग फैला हुआ दीख पड़ता है, अतः सव मनुष्यों को अपने प्राचीन पुरुषोंके सहश वैद्यक शास्त्र के कथनानुसार तथा ऋतु और देश के अनुकूल खेताम्बर (सफेद वस्त्र) धीताम्बर (पीले वस्त्र) और रक्ताम्बर (लाल वस्त्र) आदि मांति २ के वस्त्र पहरने चाहिंथें।

इस के सिवाय यह मी स्मरण रखना चाहिये कि—वस्न को मैला नहीं रखना चाहिये, बहुमा देखा जाता है कि—लोग बहुमूल्य बसों को तो पहनते है परन्तु उन की खच्छता पर ध्यान नहीं देते हैं, इस कारण उन को शरीर की खच्छता से भी कुछ लाम नहीं होता है, अतः उचित यही है कि अपनी शक्ति के अनुसार पहना हुआ कपड़ा चाहे अधिक मुल्य का हो चाहे कम मूल्य का हो उस को आठवें दिन उतार कर दूसरा लच्छ बस्न पहना जाने कि जिससे स्वच्छताजन्य लाम प्राप्त हो, क्योंकि मलीन कपड़े से दुर्गन्य निक्कता है जिस से आरोग्यता में हानि होती है, दूसरे पुरुष भी ऐसे पुरुषों से घृणा करते हैं तथा उन की सर्व सक्कतों में निन्दा होती है।

निर्मल बस्नों के धारण करने से कान्ति यश और आयु की शृद्धि होती है, अलक्सी का नाश होता है, चित्त में हर्ष रहता है तथा मनुष्य श्रीमानों की सभा में जाने के बोग्य होता है।

तंग वस्त भी नहीं पहरना चाहिये क्योंकि तंग वस्त के पहरने से छाती तथा कलेजे (लीवर) पर दवाव पड़ने से ये अवयव अपने काम को ठीक रीति से नहीं करते हैं, इस से रुधिर की गति वन्द हो जाती हैं और रुधिर की गति के वन्द होने से श्वास की नली का तथा कलेजे का रोग उत्पक्त होता है।

इस के अतिरिक्त अति धर्स और भीगे हुए कपड़ों को भी नहीं पहरना चाहिये, क्यों कि इस प्रकार के वस्न के पहरने से कई प्रकार की हानि होती है।

इन सब बातों के उपरान्त यह भी आवस्यक है कि अपने देश के बस्नों को सब कामों में लाना योग्य है, जिस से यहां के शिल्प में उनति हो और यहां का रुपया भी बाहर को न जाने, देखों ! हमारे मारत देश में भी बड़े २ उत्तम और हढ़ बस्न बनते हैं, यदि सम्पूर्ण देशमाइयों की इस ओर हिष्ट हो जाने तो फिर देखिये मारत में कैसा बन बहता है, जो सर्व सुखों की जड़ है ॥

७-विहार शब्द से इस स्थानपर खी पुरुषों के सानगी (प्राह्वेट) व्यापार (मोग) का मुख्यतया समावेश समझना चाहिये, यद्यपि विहार के दूसरे भी

९-विहार अर्थात् स्रीविहार को अमेजी में "कोहेविस्टेसन" कहते हैं ॥

सनेक विषय हैं परन्तु यहां पर तो ऊपर कहे हुए विषय का ही सम्बंध है, स्त्री विहा मेर इन बातों का विचार रखना अतिआवश्यक है कि वयोविचार, रूपगुणविचार, कालवि-चार, शारीरिक स्थिति, मानसिक स्थिति, पवित्रता और एकपत्नीव्रत, अब इन के विषय में संक्षेप से कम से वर्णन किया जाता है:—

१-चयोविचार-इस विषय में मुख्य बात यही है कि-छगभग समान अवस्थावाले बीपुरुषों का सम्बंध होना चाहिये, अथवा छड़की से छड़के की अवस्था ख्योटी होनी चाहिये, बाछविवाह की कुचाछ बन्द होनी चाहिये, जबतक यह कुचाछ बंद न हो तवतक सम- झदार मातापिता को अपनी पुत्रियों को १६ वर्ष की अवस्था के होने के पहिले श्वसुरगृह (सासरे) को नहीं मेजना चाहिये।

समान अवस्था का न होना खीपुरुष के विराग और अप्रीति का कारण होता है और विराग ही इस संसार के व्यापार में शारीरिक अनीति "कार्पोरियलरिग्युलेरिटी" को जन्म देता है।

२० से २५ वर्षतक का लड़का और १६ वर्ष की लड़की संसारधर्म में प्रवृत्त होने के लिये योग्य गिने जाते है, इस से जितनी अवस्था कम हो उतना ही शारीरिक नीति "कार्पोरियलरिन्युलेरिटी" का मंग होना समझना चाहिये।

संसारवर्म के लिये पुरुष के साथ योग होने में छड़की की १२ वर्ष की अवस्था वहुत न्यून है, यद्यपि हानिविश्लेष का विचार कर सर्कार ने अपने नियम में १२ वर्ष की अवस्था नियत की है परन्तु उस सीमा को कम २ से बढ़ा कर १६ वर्षतक छाकर नियत करानी चाहिये।

र-रूपगुणविचार-रूप तथा गुण की असमानता भी अवस्था की असमानता के समान खराबी करती है, क्योंकि इन की समानता के विना शारीरिक धर्म "कार्पोरियल ला" के पालन में रस (आनन्द) नहीं उपजता है तथा उस की शारीरिक नीति "कार्पो-रियलरिग्युलेरिटी" के अर्थात् शारीरिक कर्वन्यों के उल्लाइन का कारण उत्पन्न होता है।

अवस्था, रूप और गुण की योग्यता और समानता का विचार किये विना जो माता ऐता अपने सन्तानों के बन्धन छगा देते है उस से किसी न किसी प्रकार से शारीरिक धर्म की हानि होती है, जिस का परिणाम ब्रह्मचर्य का गंग अर्थात् व्यमिचार है।

र-कालविचार-वैधकशास्त्र की आज्ञा है कि-"ऋतौ मार्याम्रुपेयात्" अर्थात् ऋतुकाल में मार्या के पास जाना चाहिये, क्योंकि स्त्री के गर्भ रहने का काल यही है, ऋतुकाल के दिवसों में से दोनों को जो दिन अनुकूल हो ऐसा एक दिन पसन्द करके

१-जिस दिन रजस्वला झी को ऋतुसाव हो उस दिन से लेकर १६ रात्रितक समय को ऋतु अथवा ऋतुकाल कहते हैं, यह पहिले ही लिख चुके हैं॥

स्त्री के पास जाना चाहिये, किन्तु ऋतुकाल के विना वार्रवार नहीं जाना चाहिये, क्योंकि ऋतुकाल के बीत जाने पर अर्थात् ऋतुस्नाव से १६ दिन बीतने के वाद जैसे दिन के अस्त होने से कमळ संकुचित होकर बंद हो जाते हैं उसी प्रकार स्त्री का गर्माशय संकु-चित होकर उस का मुख बंद हो बाता है, इस लिये ऋतुकाल के पीछे गर्माधान के हेतु से संयोग करना अत्यन्त निरर्थक है, क्योंकि उस समय में गर्भाषान हो ही नहीं सकता है किन्तु अमूल्य बीर्य ही निष्फल जाता है जो कि (वीर्य ही) शरीर में अद्मुत शक्ति है, प्रायः यह अनुमान किया गया है कि एक समय के वीर्यपात में २॥ तोले वीर्य के बाहर गिरने का सम्भव होता है, यद्यपि क्षीणवीर्य और विषयी पुरुषों में वीर्य की कमी होने से उन के शरीर में से इतने वीर्य के गिरने का सन्मव नहीं होता है तथापि जो पुरुष वीर्य का यथोचित रक्षण करते हैं और नियमित रीति से ही वीर्य का उपयोग करते है उन के शरीर में से एक समय के समागम में २॥ तोड़े वीर्य बाहर गिरता है, अब यह विचारणीय है कि यह २॥ तोले वीर्य कितनी ख़राक में से और कितने दिनों में बनता होगा, इस का भी विद्वानों ने हिसाब निकाला है और वह यह है कि ८० रतल ख़ुराक में से २ रतङ रुधिर बनता है और २ रतङ रुधिर में से २॥ तोला बीर्य बनता है. इस से स्पष्ट है कि-दो ! मन ख़ुराक जितने समय में खाई जावे उतने समय में २॥ कपये भर नया नीर्य ननता है, इस सर्व परिगणन का सार (मतलन) यही है कि दो मन खाई हुई ख़राक का सत्व एक समय के श्री समागम में निकल जाता है, अब देखी ! यदि तनदरुख मनुष्य प्रतिदिन सामान्यतया १॥ या २ रतल की ख़राक सावे तो ४० दिन में ८० रतल ख़राक सा सकता है, इस हिसान से यह सिद्ध होता है कि-यदि ४० दिवस में एक बार वीर्य का व्यय हो तबतक तो हिसाब बराबर रह सकता है परन्तु बिट उक्त समय (४० दिवस) से पूर्व अर्थात् बोड़े २ समय में वीर्य का लर्च हो तो अन्त में शरीर का क्षय अर्थात हानि होने में कोई सन्देह ही नहीं है, परन्तु वहे ही शोक का स्थान है कि जिस तरह लोग द्रन्यसम्बंधी हिसाव रखते है तथा अत्यन्त कृप-णता (कड़्नूसी) करते है और द्रव्य का संग्रह करते है उस प्रकार शरीर में स्थित वीर्य-ह्रप सर्वोत्तमे द्रव्य का कोई ही लोग हिसाव रखते है, देखो । द्रव्यसम्बन्धी स्थिति में तो गृहस्थों में से बहुत ही शोड़े दिवाला निकालते हैं परन्तु वीर्यसम्बंधी व्यवहार में तो पुरुषों का विशेष माग दिवालियों का धन्धा करता है अर्थात् आय की अपेक्षा व्यय विशेष करते है और अन्त में युवावस्था में ही निर्वल वन कर पुरुषत्व (पुरुषार्थ) से हीन हो वैठते हैं।

कपर जो ऋतुकाल का समय ऋतुसाव के दिन से सोछह रात्रि लिख चुके है उन में से जितने दिनतक रक्तसाव होता रहे उतने दिन छोड़ देने चाहियें अर्थाद ऋतुसाव के दिन ऋतुकाल में नहीं गिनने चाहियें, ऋतुसाव के प्रायः तीन दिन गिने जाते हैं अर्थात् नीरोग स्त्री के तीन दिनतक ऋतुसाव रहता है, चौथे दिन स्नान करके रजस्वला ग्रुद्ध हो जाती है, ये (ऋतुसाव के) दिन स्त्रीसंग में निषिद्ध हैं अर्थात् ऋतुस्नाव के दिनों में स्नीसंग कदापि नहीं करना चाहिये, जो पुरुष मन तथा इन्द्रियों को वश में न रख कर रंजस्वला स्त्री संगम करता है (जिस के रक्तसाव होता हो उस स्त्री से समागम करता है) तो उस की दृष्टि आयु तथा तेज की हानि होती है और अधर्म की प्राप्ति होती है, इस के सिवाय रजस्वला से समागम करने से गर्भस्थित की संभावना नहीं होती है अर्थात् प्रथम तो उस समय में समागम करने से गर्भ ही नहीं रहता है यदि कदाचित् गर्भ रहे भी तो प्रथम के दो दिन में जो गर्भ रहता है वह नहीं जीता है और तीसरे दिन जो गर्भ रहता है वह जरुपायु तथा विकृत अंगवाला होता है।

रजोदर्शन के दिन से लेकर सोल्ह रात्रि पर्यन्त रात्रियों में चौथी रात्रि से लेकर सोल-ह्वीं रात्रिपर्यन्त ऋतुकाल अर्थात् गर्भाधान का जो समय है उस में भी सम रात्रियां मधान है अर्थात् चौथी, छठी, आठवीं, वशवी, भारहवीं, चौदहवी तथा सोलहवी रात्रियां उत्तम है और इन में भी कम से उत्तरोत्तर रात्रियां उत्तम गिनी जाती है।

पूर्णमासी, अमावस्था, प्रातःकाळ, सन्ध्याकाळ, पिछळी रात्रि, मध्य रात्रि और मध्याह-काळ में खीसंयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस से चीवन का क्षय होता है।

गर्भवती से पुरुष को कभी संयोग नहीं करना चाहिय, क्योंकि गर्भावस्था में जिस चेष्टा के अनुसार व्यापार किया जाता है उसी चेष्टा के गुणों से युक्त बालक उत्पन्न होता है, और बड़ा होने पर वह बालक विषयी और व्यक्तिचारी होता है।

विहार के विषय में ऋतु का भी विचार करना आवश्यक है अर्थात् जो ऋतु विहार के लिये योग्य हो उसी में विहार करना चाहिये, विहार के लिये गर्मी की ऋतु विलक्षल मितिक्ल है तथा शीत ऋतु में पौष और माष, ये दो महीने विशेष अनुकूल हैं परन्तु किसी मी ऋतु में विहार का अतियोग (अत्यन्त सेवन) तो परिणाम में हानि ही करता है, यह वात अवश्य लक्ष्य (ध्यान) में रखनी चाहिये।

8-शारीरिक स्थिति— जिस समय में सी वा पुरुष के शरीर में कोई व्याधि (रोग), ब्रुटि (कसर) अथवा नेचैनी हो उस में विहार का त्याग कर देना चाहिये अर्थात् सी की रोगावस्था आदि में पुरुष को और पुरुष की रोगावस्था आदि में सी को अपने मन को वश में रखकर ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये, किन्तु ऐसे समय में तो विहार करने से अवस्य शरीर में विकार उत्पन्न हो जाता है तथा यदि कदाचित् ऐसे समय में गर्मिस्थिति हो जावे तो सी और गर्म दोनों का जीव जोखम में पड़ जाता है।

बहुत से रोगों में प्रायः विहार (विषयमोग) की इच्छा कम होने के बदले अधिक हो जाती है, जैसे—क्षयरोगी को बारंबार विहार की इच्छा हुआ करती है, यह इच्छा स्वामाविक नहीं है किंद्ध यह (उक्त) रोग ही इस इच्छा को जन्म देता है इस लिये क्षय-रोगी को सावधानी रखनी चाहिये।

विहार के विषय में परस्पर की आरीरिक शक्ति का भी विचार करना चाहिये, क्योंकि
यह बहुत ही आवश्यक बात है, स्त्री पुरुष को इस विषय में छम्पट बन कर केवल
स्वार्थी नहीं होना चाहिये, तात्पर्य यह है कि पुरुष को स्त्री की शक्ति का और खी को
पुरुष की शक्ति का विचार करना चाहिये, यदि स्त्री पुरुष के जोड़े में एक तो विशेष
बळवान् हो और दूसरा विशेष निर्वल हो तो यह अळनत्तह खराबी का मूल है, परन्तु
यदि माग्ययोग से ऐसा ही जोड़ा वैंष आवे तो पीछे परस्पर के हित का विचार क्यों
नहीं करना चाहिये अर्थात् अवस्य करना चाहिये।

बहुत से विचाररहित मूर्ज पुरुष विहार के विषय में श्लीजातिपर अपने हक का दाबा करते हैं और ऐसे विचार के द्वारा दावे का अनुचित उपयोग कर के श्ली को छाचार कर परवश करते हैं, सो यह अत्यन्त अनुचित है, क्योंकि देखों । श्ली पुरुष का परस्पर ज्यापार एक शारीरिक धर्म है और धर्म में एकतरफी हक का सवाल नहीं रहता है किन्तु दोनों वरावर हकदार हैं और परस्पर के झुल के लिये दोनों दन्पती धर्म में बँघे हुए हैं इस लिये श्ली और पुरुष को परस्पर की शक्ति तथा अनुकूलता का अवस्य विचार करना चाहिये।

५—मानसिक स्थिति—दोनों में से यदि किसी का मन चिन्ता, श्रम, शोक कोष और मय से ज्याकुछ हो रहा हो तो ऐसे प्रतिकृष्ठ समय में बिहार सम्यन्धी कोई भी चेष्टा नहीं करनी चाहिये, परन्तु अत्यन्त सेंद का विषय है कि—वर्त्तमान समय में श्री

पुरुष इस विषय का बहुत ही कम विचार करते है।

इच्छा के विना बळात्कार से किया हुआ कर्म सन्तोषदायक नहीं होता है और असं-तोष शारीरिक तथा मानसिक विकार का कारण होता है, इस लिये इच्छा के विना जो विहार किया जाता है वह निष्फल होता है और उल्टा शरीर को विगाइता है, इस लिये इस बात को दोनों पक्षों में ध्यान में रखना चाहिये, यह भी स्मरण रहे कि बी की इच्छा के विना स्नीगमन करने में और हाथ से वीर्यपात करने में विल्कुल फर्क़ नहीं है, इस लिये हाथ के द्वाराः वीर्यपात की किया को भी मूलकर भी नहीं करना चौहिये, इच्छा इस लिये हाथ के द्वाराः वीर्यपात की शान्ति नहीं होती है किन्तु उल्टी काम की शब्दि ही के विना संयोग होने से काम की शान्ति नहीं होती है किन्तु उल्टी काम की श्रद्धि ही

१-इस निरुष्ट व्यापार के द्वारा अनेक हानिया होती है जिन का कुछ वर्णन आगे पन्द्रहर्वे प्रकरण में प्रजाल रोग के वर्णन में किया जानेगा ॥

होती है और ऐसा होने से यह वड़ी हानि होती है कि स्नी का रच जिस समय पक होना चाहिये उस की अपेक्षा श्रीष्ठ ही अधेपक (अधपका) होकर गर्माशय में प्रविष्ट हो जाता है और वहां पुरुष के वीर्थ के प्रविष्ट होने से कचा गर्म वँघ जाता है।

६—पिवजता—विहार के विषय में पिवजता अथवा आरीरिक शुद्धि का विचार रखना भी बहुत ही आवश्यक बात है, क्योंकि खी पुरुषों के ग्रुप्त अंगों की व्याधि प्रायः स्थानिक अपविज्ञता और मळीनता से ही उत्पन्न होती है, इतना ही नहीं किन्तु यह स्थानिक मळीनता इन्द्रियों को विकारी (विकार से युक्त) बनाती है, परन्तु वहे ही सन्ताप की बात है कि—इस मकार की बातों की तरफ छोगों का बहुत ही कम ध्यान देखा जाता है, इसी का जो कुछ परिणाम हो रहा है वह प्रत्यक्ष ही दीस रहा है कि— चांदी, सुज़ास और गर्मी जादि अनेक दुष्ट और मळीन व्याधियों से शायद कोई ही भाग्यवान् जोड़ा वचा हुआ देखा जाता है, कहिये यह कुछ कम सेद की बात है!

शरीर के अवयवों पर मैळ वम कर चमड़ी को चझळ कर देता है और अज्ञान मनुष्य इस चझळता का खोटा खयाळ और खोटा उपयोग करने को उस्कराते है, इस लिये की पुरुषों को अपने शरीर के अवयवों को निरन्तर पवित्र और शुद्ध रखने के लिये सदा यक करना चाहिये, यचपि ऊपरी विचार से यह वात साधारण सी प्रतीत होती है परन्तु परिणाम का विचार करने से यह वड़े महस्चकी वात समझी वा सकती है, क्योंकि पवित्रता शारीरिक धर्म का एक मुख्य सद्गुण "गुडकालिटी" है, इसी लिये बहुत से धर्मवाळों ने पवित्रता को अपने २ धर्म में मिळा कर कठिन नियमों को नियत किया है, इस का गम्भीर वा मुख्य हेतु इस के सिवाय दूसरा कोई भी नहीं हो सकता है कि पविन्नता ही सब सद्गुणों और सद्धमों का मूळ है।

७-एक प्रतिव्रत अपनी विवाहिता पत्नी के साथ ही सम्बन्ध रखने को एक-पत्नीव्रत कहते हैं, विचार कर देखा जावे तो यह (एक प्रतीव्रत) भी ब्रह्मचर्य का एक ग्रुख्य अंग और गृहस्थाश्रम का प्रधान भूषण है, जो पुरुष एक प्रकीव्रत का पाठन करते हैं वे निस्सन्देह ब्रह्मचारी है और जो खियां एक पतिव्रत का पाठन करती है वे निस्स-न्देह ब्रह्मचारिणी है, खी के ठिये एक ही पुरुप का और पुरुष के ठिये एक ही खी का होना जगत् में सब से बड़ी नीति है और इसी पर शारीरिक और ज्यावहारिक आदि सर्व प्रकार की उन्नति निर्मर है।

इस नियम के उर्छघन करने से अर्थात् व्यमिचार से न केवल व्यावहारिक नीति का ही मंग होता है किन्तु शारीरिक नीति और आरोग्यता की मी हानि होती है इस लिये इस महाहानिकारक विषय को अवस्य छोड़ना चाहिये, इस विषय का यदि अच्छे प्रकार से वर्णन किया जावे तो एक प्रन्य वन सकता है, इस लिये संक्षेप से ही पाठकों को इस विषय को दर्शाते है:—

यदि विवाहित स्त्री पुरुष ऊपर लिसी हुई बातों को लक्ष्य में रख कर उन्हीं के अनु-सार वर्त्ताव करें तो वे नीरोगशारीरवाळे और दीर्घायु हो सकते है तथा सद्गुणों से युक्त सन्तिति को भी उत्पन्न कर सकते हैं और विचार कर देखा जाने तो जन्नाचर्य के पालन करने का प्रयोजन भी यही है, आहार विहार में नियमित और अनुकूलतापूर्वक रहना एक सर्वोत्तम और परमानश्यक नियम है तथा इसी नियम के पालन करने का नाम ब्रह्मचर्य है, ब्रह्मचर्य के विषय में एक विद्वान् अंग्रेज ने कुछ वर्णन किया है उस का निदर्शन करना आवश्यक समझ कर उस का संक्षिप्त अनुवाद यहां लिखते हैं, उक्त विद्वान् का कथन है कि-"यह निश्चित वात है कि-ज्ञहाचर्यवत के नियम की अज्ञानता. वा उस के उल्लंघन के कारण बीर्य का अनुचित उपयोग होने से खोटे परिणाम निकटते हैं, क्योंकि बहुत से लोग इस नियम को जानते मी हैं तो मी जान बूझ कर उलटी रीति से वर्चाव करते हैं किन्तु बहुत से लोग तो इस नियम से अत्यन्त अनमिज्ञ ही देखे जाते हैं, मनुष्य के तन और मन के साथ में सम्बन्ध रखनेवाला तथा उस के कल्याण सुस भीर जीवन के जय का करनेवाला जसचर्य त्रत ही है, इस लिये इस विषय में जो कुछ विचार किया जावे अथवा दलील दी जावे वह वासाविक है. ब्रह्मचर्यवृत्वारी अथवा श्रक्षचारी वही गिना वा सकता है जो कि शरीरवरू और शुन्दर स्नी आदि सर्व सामग्री के उपस्थित होने पर भी शास्त्रोक्त ज्ञान से अपने मन को वश में रखता है, इच्छापूर्वक स्त्रीसंग से अत्यन्त अलग रहने के लिये जो हढ़ निश्चय किया जाता है उसे प्रयोग (अमल) में लाने के लिये इच्छापूर्वक स्त्रीसंग नहीं करना चाहिये, किन्तु ऋतुदान के समय प्रतिज्ञा के अनुसार स्त्रीसंग करना उचित है, इस नियम के पाठन करनेवाले गृहस्य को ब्रह्मचारी कहते हैं, इसिक्ये यही परम उचित कर्तव्य है कि-प्रजा (सन्तान) के उत्पन्न करने के लिये ही स्रीसंग करना ठीक है, अन्यथा नहीं ॥

८—मलीनता—इस में सन्देह नहीं है कि मलीनता बहुत से रेंगों को उत्पश्च करती है, क्योंकि घर के मीतर की तथा आसपास की मलीनता खराब हवा को उत्पश्च करती है और उस हवा से अनेक रोगों के उत्पन्न होने की सम्मावना होती है, देखों। शरीर की मलीनता से चमड़ी के बहुत से रोग हो जाते हैं, जैसे—रूखापन, खुजली और गुमड़े आदि, इस के सिवाय मैळ से चमड़ी के छेद रुक जाते है, छेदों के रुक जाने से पसीने का निकलना बंद हो जाता है, पसीने के निकलने के बन्द होने से रुपिर ठीक सीर से शुद्ध नहीं हो सकता है और रुपिर के ठीक तीर से शुद्ध नहीं हो सकता है और रुपिर के ठीक तीर से शुद्ध न होने से अनेक रोग हो जाते हैं॥

९—ठयसन — ज्यसनों के सेवन से अनेक महाकष्टकारी रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जिन का कुछ वर्णन तो पहिले कर चुके है तथा कुछ यहां भी करते हैं— मच, ताड़ी, अफीम, मांग, तमाखू, तवाखीर, चाय और काफी आदि व्यसनों की बहुत सी चीज़ें हैं, यद्यपि इन चीजों में से कई एक चीज़ें रोगपर दवा के तरीके से योग्य रीति से वर्तने से फायदा करती है परन्तु ये सब ही चीज यदि थोड़े दिनोंतक लगातार लपयोग में लाई जाते तो इन का व्यसन पड़ जाता है और जब ये चीजें व्यसन के तरीके से नित्य ही प्रयोग में लाई जाती है तब इन से पृथक् र अनेक प्रकार के रोग लत्यक्ष हो जाते हैं, जैसे—मच के व्यसन से रसविकार, बदहजमी, वमन (ल्लटी), दस्त की कव्जी, खटा-पन, मन्दामि और मगज की खराबी होती है, आलस्य, दीर्घस्त्रता (टिल्ल्ड्यन), असा-हस (हिम्मत हारना), भीरुता (लरपोकपन) और निर्वुद्धिता (बुद्धि का नाश) आदि मच पीनेवाले के खास लक्षण है, मच से फेफसे की मगंकर बीमारी, यक्कत् अर्थात् लीवर का संकोच, यक्कत् का पकना, क्षय, मधुपमेह और गुदें का विकार आदि अनेक बड़े र मयंकर रोग लत्यक होते है, मच का पीना शरीर में विवपान के समान असर करता है तथा बुद्धि को विगाइता है।

ताड़ी के व्यसन से पेशाब के गुर्दे का रोग, मन्दाग्नि, अफरा और दस्त आदि रोग होते है तथा ताड़ी का पीना बुद्धि को अष्ट करता है।

अफ़ीम के व्यसन से आलस, बुद्धि की न्यूनता और क्षिप्तचित्तता (पागलपन) आदि उत्पन्न होते है, विशेष क्या लिखें इस व्यसन से शरीर विलकुरू नष्ट अए (वरबाद) हो जाता है।

मांग के व्यसन से बुद्धि तथा चतुराई का नाश होता है, मनुष्यत्व (आदिमयत) का नाश होकर पशुत्व (पशुपन अर्थात् हैवानी) प्राप्त होता है, स्मरणशक्ति घट जाती है, विचारशक्ति का नामतक नहीं रहता है, चक्कर आता है, मन खराब होता है तथा आयु घट जाती है।

वमाखू के ज्यसन से अर्थात् वमाखू के चावने से—पाचन शक्ति मन्द पड़ती है, बद-हजमी रहती है, इस के खाने से पहिले तो कुल चेतनता सी होती है परन्तु पीले सुस्ती जाती है, हाथ पैर ढीले हो जाते है, मन की चञ्चलता तथा चेतनता कम हो जाती है तथा विचारशक्ति मी कम हो जाती है, इस के अधिक खाने से विष के समान असर होता है अर्थात् जीवन को जोखम में गिरना पड़ता है।

तमालू के पीने से—छाती में दाह, श्वास तथा कफ का रोग उत्पन्न होता के निवार कर देत विकार कर देत का मित्र है, बदि शरीर के शहकूछ हो तो तैयार कर देत

तमालू के सूंघने से-मलीनता होती है, कपड़े खराव होते हैं तथा अनेक प्रकार के रोग भी उत्पन्न होते हैं।

चाय और काफी के न्यसन से भी नजे के पीने के समान हानि होती है, क्योंकि इस में भी थोड़ा २ नशा होता है, यह अधिक गर्भ और रूझ होने के कारण रूखी और कम खुराक खानेवाले गरीन लोगों को वहुत हानि पहुँचाती है तथा इस के सेवन से मगज और उस के ज्ञानतन्तु निर्वल हो जाते हैं ॥

१०-विषयोग-पहिले लिख जुके हैं कि यदि अमध्य वस्तु लाने पीने में आ जावे अथवा परस्पर (एक से दूसरा) निरुद्ध पदार्थ खाने में आ जावे तो वह शरीर में विष के समान हानि करता है, इस के सिवाय जो अनेक प्रकार के विष है वे भी पेट में जाकर हानि करते हैं, एक प्रकार की विषेखी (विषमरी) हवा भी होती है जिस से दुखार, पाण्डु और मरोड़ा आदि रोग होते है।

श्रीसे और तांबे के पेट में जाने से चूंक हो जाती है, बत्सनाग (सिंगिया) के पेट में जाने से मूच्छी तथा दाह होता है और सोमल तथा रसकपूर के पेट में जाने से दत्त के बन्यन ख़ुल जाते है, तात्पर्य यह है कि सब ही प्रकार के बिष पेट में जाकर हानि ही करते हैं।

११-रसिकार-दस्त, पेशान, पसीना, थूक और पित आदि पदार्थ रुविर से उत्तम होते हैं तथा इन सवों को शरीर का रस कहते हैं, यह रस जब आवश्यकता से न्यून वा अधिक होकर शरीर में रहता है तब हानि करता है, जैसे—यदि पसीना न निकलें तो भी हानि करता है और यदि आवश्यकता से अधिक निकलें तो भी हानि करता है, इसी तरह दस्त आदि के विषय में भी समझ लेना चाहिये, यदि पेशान कम हो तो पेशान के रास्ते से जो हानिकारक अंश वाहर निकलना चाहिये वह निकल नहीं सकता है तथा खून में जमा हो जाता है और अनेक हानियों को करता है, यदि पेशान का होना निलल्ल ही वन्द हो जाने तो आणी श्रीष्ठ ही मर जाता है, देलो ! हैना और मरी रोग में प्रायः पेशान रुक कर ही मृत्यु होती है, वहुत पसीना, वहुत दिनों का अतीसार, मस्सा, नाक से गिरता हुआ खून तथा खियों का मदर इत्यादि वहते हुए प्रवाह को एक सम्बय से सांघों में दर्द हो जाता है।

१२-जीव--जीव अर्थात् कृमि वा जन्तु से कण्ठमाल, बात रक्त, वमन, सृगी, अर्तासीर तथा, चुमड़ी के अनेक रोग उत्पन्न होते हैं॥

१-इस का मी जोगी को व्यसन ही पड़ बाता है।

१३—चेप—चेपीहवा से अथवा दूसरे मनुष्य के स्पर्श से बहुत सी वीमारियां होती है, जैसे—उपदंश (गर्मी का रोग), वातरक्त, गलितकुष्ठ, ममेह, छुनाल, भदर, टाई-फाइड तथा टाईफस नामक ज्वर (श्रील ओरी), हैजा, न्युज्योनिक क्षेग (अग्निरोहणी) और विस्फोटक आदि, इन के सिवाय और भी खाज दाद आदि रोग चेप से होते हैं॥

११-ठंड-श्वरीर की गर्सी जब कम होती है तब उस को ठंड कहते है, बहुत ठंड से अर्थात् शर्दी से ज्वर, मरोड़ा, चूंक, मूत्रपिण्डका श्रोध, सन्धिवात अर्थात् गॅठिया, मधुममेह, हृदयरोग, फेफसे का शोध, दम, क्षय और खांसी आदि रोग उत्पन्न होते है।

१५-गर्मी - शरीर की खासाविक गर्मी से जब अधिक गर्मी बढ़ जाती है तब ज्वर, धातरक्त, यक्षत्, रक्तिपत्त, गर्मी की खांसी, पिंडिटियों का पेंठना और अतीसार आदि रोग होते हैं, कठिन धूप की गर्मी से मगज की बीमारी, कठिन ज्वर, हैजा, श्रीतळा और मरोड़ा आदि रोग उत्पन्न होते हैं, एवं शरीर पर फुनिसियें और फफोले आदि चमड़ी की भी व्याधियां हो जाती हैं, जिस मकार विस्फोटक आदि दुष्टरोग दुष्टर्पर्श से उत्पन्न हुए गर्मी के विव से होते हैं उसी मकार गर्म पदार्थों के खाने से बढी हुई गर्मी से भी इस मकार के रोग होते हैं ॥

१६—सन के विकार—गन के विकारों से भी वहुत से रोग होते है, जैसे—देखो ! बहुत कोष से जबर और वातरक्त आदि बीगारियां हो जाती हैं, बहुत भय से मूर्छा, कामछा, चूंक, गुरुम, दस्त और अजीर्ण आदि रोग होते है, बहुत चिन्ता से अजीर्ण, कामछा, मञ्जूमेह, क्षय और रक्तपिच आदि रोग होते है।

१७-अकस्मात्—गिर जाने, कुचल जाने, दूव जाने और विष खाजाने आदि अनेक अकसात् कारणों से भी अनेक रोग होते हैं ॥

१८-ह्वा-यापि दवा रोगों को मिटाती है अथवा मिटाने में सहायता करती है परन्तु युक्ति के विना अज्ञानता से ठी हुई वा दी हुई दवा से कुछ मी ठाम नहीं होता है अथवा इस प्रकार से ठी हुई दवा एक रोग को दवा कर दूसरे को उत्पन्न कर देती है तथा मूळ से दी हुई दवा से मनुष्य गर भी जाता है, इस ळिये इन सब वातों को अपनी गफलत में अथवा अकस्मात्वर्ग में गिनते हैं, परन्तु छेमग्यू नीम हकीम और मूर्ख वैद्य अपने अल्पज्ञान से अथवा छोम से अथवा रोगी पर पूरी दया न रखने के कारण बे-पर्वाही से चिकित्सा करने से सैकड़ों रोगों के कारणरूप हो बाते है, देखो ! हज़ारों मनुष्य इन के हाथ से कप्ट पाते है, इन बातों का कुछ हप्टान्तों के द्वारा खुळासा वर्णन करते हैं:—

१-कहीं में कोई तथा कहीं से कोई बात के उडनेवांके को टेमरगू कहते हैं ॥

शरीर में बाय के बढ़ जाने का मुख्य कारण ठंड अर्थात् शर्दी ही है परन्त कमी र स्तार में बहुत गर्मी के बढ जाने से भी बायु जोर किया करती है, अब देखी ! शरीर में जब गर्भी के बढ़ने से बायु का जोर बढ जाता है और रोगी तथा दसरे भी सब छोग वादी की पुकार करते हैं (सब कहते हैं कि वादी है वादी है) उस की चिकित्सा के लिये यदि कोई योग्य वैद्य आकर गर्मी की निवृत्ति के द्वारा वाय की निवृत्ति करता है तब तो ठीक ही है परन्त्र जब कोई मुर्ख वैद्य चिकित्सा करने के लिये आता है तो वह भी क्षदीं से बादी की उत्पत्ति समझ कर गर्भ दवा देता है बिस से महाहानि होती है, खबी यह है कि यदि कदाचित् कोई बुद्धिमान् नैस यह कहे कि यह रोग गर्मी के द्वारा उलक हुई बादी से है इस लिये यह गर्म दवा से नहीं मिटेगा किन्त ठंढी दवा से ही मिटेगा. तो उस रोगी के परवाले सब ही स्त्री पुरुष वैद्य को मूर्ल उहरा देते हैं और उस की बतलाई हुई दवा को मझर नहीं करते हैं किन्तु मनमानी गर्म दवाहयां देते हैं जिन से गर्भी अधिक बढ़ कर रोग को असाध्य कर देती है, जैसे-पित्तसम्बंधी मयंकर गर्मी से उत्पन्न हुए पानीझरे में बृद्ध रण्डांथे और मूर्ल वैच सौ २ जैंगों को कुल्हिये (कुल्ह्डे) में छोक २ कर दिलाते हैं जिस से रोगी प्रायः मर ही जाता है, हां सी में से शायद कोई एक दीर्घायु ही बचता है, यदि बच भी जाता है तो उस को वह अखन्त गर्मी जन्मभर तक सताती रहती है, इसी पकार गर्मी के द्वारा जब कभी घातु का विकार होकर पुरुषत्व का नाश होता है, उपदंश, और सुजाल से अथवा मय और चिन्ता से बहुत से आदमियों का मगज फिर जाता है विचारवायु हो जाता है, पागलपन हो जाता है तन ऐसे रोगों पर भी अज्ञान छोग और ज्ञान से हीन ऊँट वैद आंखें बन्द कर एकदम गर्म दवा दिये जाते है जिस से वीमारी का घटना तो तूर रहा उछटी बायु अधिक बढ़ जाती है जिस से रोगी के और भी खराबी उत्पन्न होती है, क्योंकि इस प्रकार के रोग प्रायः मगज़ के लाली पड़ जाने से तथा धातु के नाश से होते हैं, इस लिये इन रोगों में तो जब मगज और बातु झुधरे तब ही बायु मिटकर लाम हो सकता है, इसी लिये मगन को पुष्ट करनेवाला, तराबट लानेवाला और शीतल इलाज इन रोगों में वतलाया गया है, परन्तु मूर्ल वैद्य इन बातों को कहां से जानें ?

अज्ञान नैस बहुत जुलान के अयोग्य अरीरवाले को बहुत जुलान है देते हैं जिस से दस्त और मरोड़े का रोग हो जाता है, आम तथा खून टूट पड़ता है और कई बार आंते

फाम न देकर अशक्त हो जाती हैं, जिस से रोगी मर जाता है ॥

एक रोग दूसरे रोग का कारण ॥

जैसे बहुत से रोग आहार विहार के विरुद्ध वर्ताव से स्वतन्त्रतया होते हैं उसी प्रकार दूसरे रोगों से भी अन्य रोग पैदा होते हैं, जैसे बहुत खाने से अथवा अपनी

. '

•

.

न किया जाने तो उस से मगन की नायु, विचारवायु अथना अम हो जाता है, बुद्धि का नाश हो जाता है और मनुष्य पागल के समान बन जाता है।

७ खांसी - यद्यपि यह एक साधारण रोग है परन्तु उस का उपाय न करने से उस की वृद्धि होकर राजयक्ष्मा हो जाता है।

८-मदात्यय-इस रोग से अजीर्ण, दाह और पागळपन का असाध्य रोग होता है।

९-उपदंश वा गर्मी-उपदंश अशीत दुष्ट श्री आदि से उत्पन्न हुई गर्मी के रोग से विस्फोटक, गांठ, वातरक्त, रक्तिपत्त, हरस, मगन्दर, नासूर और गाँठिया आदि रोग होते हैं।

१०-सुज़ाख- सुज़ाल होकर प्रमेह हो जाता है, उस (प्रमेह) से बदगांठ, मूत्र-क्रच्छू, मूत्राघात और प्रमेहिपिटिका (छोटी २ फ़ुनसियां) आदि रोग तथा उपदंश सम्बंधी भी सब प्रकार के रोग होते हैं॥

यह चतुर्भ अध्याय का रोग सामान्यकारण नामक दशवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

ग्यारहवां श्रकरण _ त्रिद्ोष्जुरोगवर्णन ॥

त्रिदोषज अर्थात् वात पित्त और कफ से उत्पन्न होनेवाछे रोगों का समय ॥

आर्थ वैद्यक शास्त्र के अनुसार यह सिद्ध है कि—सब ही रोगों की जड़ बात पित और कफ ही हैं, जबतक ये तीनों दोष बरावर रहते हैं अथवा अपनी खामाविक स्थिति में रहते हैं तबतक शरीर नीरोग गिना जाता है परन्तु जब इन में से कोई एक अथवा दो वा तीनों ही दोष अपनी २ मर्यादा को छोड़ कर उठटे मार्गपर चलते हैं तब बहुत से रोग उत्पन्न होते हैं।

ये तीनों दोष किस प्रकार से अपनी मर्यादा को छोड़ते है तथा उन से कौन २ से रोग प्रकट होते हैं इस विषय का संक्षेप से वर्णन करते हैं:—

१—बहुत शराब के पीने से जो रोग होता है उस को मदालय कहते हैं ॥
१—जैसा कि वैश्वक अन्यों में लिखा है कि—"तेषां समत्यमारोग्य क्ष्यवृद्धी विपर्ययः" अर्थात, उन (त्रिदोषों सर्थात् वात पित्त और कफ) का जो समान रहना है वहीं आरोग्यता है और उन की जो न्यूना विकता है वहीं रोगता है ॥

वायु के कोप के कारण॥

अपान वायु के, दख के और पेशाव के वेग को रोकना, तिक्त तथा कपैछे रसवाछे पंदायों का खाना, वहुत ठंढे पदार्थों का खाना, रात्रि को जागरण करना, बहुत खीसंग (मैथुन) करना, बहुत परिश्रम करना, बहुत खाना, बहुत मार्ग चळना, अधिक बोळना, मय करना, रुखे पदार्थों का खाना, उपवास करना, बहुत खारी कहुए तथा तीखे पदार्थों का खाना, वहुत हिचके खाना और सवारी पर बैठ कर यात्रा करना, इत्यादि कार्य वायु को कुपित करने में कारण होते हैं।

इन के सिवाय—बहुत ठंद में, बरसात की भीगी हुई जमीन में, बरसते समय में, आन करने के पीछे, पानी पीने के पीछे, दिन के पिछले माग में, खाये हुए मोजन के पनने के पीछे और जोर से पनन (हवा) चल रहा हो उस समय में झरीर में वायु जोर करता है तथा झरीर में ८० प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है, उन ८० प्रकार के रोगों के नाम ये हैं:—

- १-आक्षेपचायु-इस रोग में शरीर की नसों में हवा भरकर शरीर की इधर उधर फेंकती है।
 - २-हन्स्नम्भ-इस रोग में ठोडी वादी से जकड कर टेरी हो जाती है।
 - १-ऊकस्नम्भ-इस रोग में वादी से जंघा अकड़ कर चलने की शक्ति कम हो जाती है।
- ४-शिरोग्रह-इस रोग में शरीर की नसों में नादी भर कर शिर को जकड़ देती और पीड़ा करती है।
- ५-याद्यायाम-इस रोग में पीठ की रगों में वादी भर कर शरीर को धनुष के समान झका देती है।
- ६-अन्तरायाम—इस रोग में छाती की तरफ से श्ररीर कमान के समान बांका (टेव़) हो जाता है।
 - ७-पाइवैद्याल-इस रोग में पसवाड़ों की पसिलयों में चसके चलते हैं।
 - ८-कटिग्रह-इस रोग में वादी कमर की पकड़ के जकड़ देती है।
 - ९-दण्डापतानक-इस रोग में वादी शरीर को छकड़ी की तरह सीमा ही जकट देती है।
- १०-म्बद्धी-इस रोग में वायु भर कर पैर, हाथ, जांघ, गोड़े और पीडियों का कम्पन करती है।
- ११-जिह्नास्तम्य इस रोग में वादी जीय की नसों को पकड़ कर बोछने की शक्ति को वन्द कर देती है।
- १२-अर्दित-इस रोग में मुख का आधा भाग टेढ़ा होकर जीस का लोचा वेंघता है और करड़ा (सस्त) हो जाता है।

१३-पक्षाचाल-इस रोग में आधे शरीर की नसों का शोषण हो कर गति की रुकावट हो जाती है।

११-क्रोष्ट्रशिषक इस रोग में गोड़ों में नादी खून को पकड़ कर कठिन सर्वन

को पैदा करती है।

१५-मन्यास्तम्भ इस रोग में गर्दन की नसों में वायु कफ को पकड़ कर गर्दन को जकड़ देती है।

. १६-पङ्क-इस रोग में कमर तथा जांधों में वादी व्रस कर दोनों पैरों को निकम्मा

कर देती है।

१७—कालायख्य इस रोग में चलते समय श्ररीर में कन्पन होता है तथा पैर टेटे पड़ जाते हैं।

१८-तूनी-इस रोग में पकाशव में चिनग पैदा होकर गुदा और उपस्य (पेशाव

की इन्द्रिय) में जाती है।

१९-प्रतिलूँनी-इस रोग में तूनी की पीड़ा नीचे को उत्तर कर पीछे नाभि की तरफ जाती है।

२०-खुझ-इस रोग में पंगु (पांगले) के समान सब लक्षण होते हैं, परन्तु विशे-पता केवल यही है कि-यह रोग केवल एक पैर में होता है, इस लिये इस रोगवाले को लेंगड़ा कहते हैं।

२१-पादहर्ष--इस रोग में पैर में केवल झनझनाहट होती है तथा पैर शून्य जैसा

हो जाता है।

२२ - गृप्रसी - इस रोग में कटि (कमर) के नीचे का माग (बांघ) और पैर

आदि) जकड़ जाता है।

२३-विश्वाची-इस रोग में हथेकी तथा अंगुलियां जकड़ जाती हैं और हाथ से काम नहीं होता है।

२४-अपवाहुक-इस रोग में हाथों की नाड़ी चकड़ कर हाथ दूसते (दर्द

करते) रहते हैं।

२५-अगपतानक इस रोग में वादी इदय में जाकर दृष्टि को स्तरुष (रुकी हुई) करती है, ज्ञान और संज्ञा (चेतनता) का नाम्न करती है और कण्ठ से एक विरुक्षण (अजीब) तरह की आवाज निकल्ली है, जब यह वायु इदब से अलग इटती है तब रोगी को संज्ञा प्राप्त होती है (होश आता है), इस रोग में हिष्टीरिया (उन्माद) के समान चिह्न वार २ होते तथा मिट जाते है।

१-यह स्जन शृगाल के शिर के समान शेती है, इसी लिये इस को कोड़शीर्षक (शृगाल का शिर) कहते हैं॥ २-इस को कोई २ शासकार प्रत्नी भी कहते हैं॥

२६-ज्ञणायाम-इस रोग में चोट अथवा ज्लम से उत्पन्न हुए व्रण (घाव) में वादी दर्द करती है।

२७-व्यथा-इस रोग में पैरों में तथा घुटनों में चळते समय दर्द होता है।

२८-अपतन्त्रक-इस रोग में पैरों में तथा शिर में दर्द होता है, मोह होता है, गिर पड़ता है, शरीर धनुप कमान की तरह बांका हो जाता है, दृष्टि स्तव्य होती है तथा कहतर की तरह गले में शब्द होता है।

२९-अंगभेद-इस रोग में सब शरीर ट्र्टा करता है।

३०-अंगजरोष-स्स रोग में वादी सब अरीर के खून को सुखा डालती है तथा जरीर को भी सुखा देती है।

३१-मिनमिनाना--इस रोग में मुँह से निकलनेवाला शब्द नाक से निकलता है, इसे गूंगापन कहते है।

३२—कल्लता—इस रोग में हिचक २ कर तथा रुक २ कर थोड़ा २ बोला जाता है तथा बोलने में उवकाई खाता है।

३३-अछीला-इस रोग में नामि के नीचे पत्थर के समान गांठ होती है।

३४-प्रत्यष्टीला-इस रोग में नाभि के ऊपर पेट में गांठ तिरछी होकर रहती है।

३५-वामनत्व-इस रोग में गर्भ में माप्त होकर जब बादी गर्भविकार को करती है तब बालक वामन होता है।

३६-कुञ्जत्व-इस रोग में पीठ और छाती में वायु भर कर कूवड़ निकाल देती है।

३७-अंगपीड़-इस रोग में सब शरीर में दर्द होता है।

३८-अंगञ्जल-इस रोग में सब शरीर में चसके चलते है।

१९-संकोच-इस रोग में वादी नसों को संकुचित कर शरीर को अकड़ देती है।

४०-स्तम्भ-इस रोग में वादी से सब शरीर शस्त हो जाता है।

४१-रूक्षपन-इस रोग में वादी के कोप से शरीर रूखा और निस्तेज हो जाता है।

४२-अंग'भंग--इस रोग में ऐसा प्रतीत होता है कि-मानो वादी से जरीर ट्रट जायगा।

४२-अंगिविश्रम - इस रोग में शरीर का कोई माग लकड़ी के समान जड़ हो जाता है।

४१-मूकत्व-इस रोग में बोलने की नाड़ी में वादी के भर जाने से ज़वान बन्द हो जाती है।

8'-विद्यह—इस रोग में बाँतों में वायु भर कर दस्त और पेशाव को रोक देती है।

४६-बद्धविद्कता-इस रोग में वादी से दख बहुत करड़ा आता है।

४७-अतिज्ञस्मा-इस रोग में नादी से उनासी अर्थात् जैंगाई बहुत आती हैं।

४८-प्रत्युद्गार-इस रोग में वादी के कोप से डकारें बहुत आती है।

४९-अन्त्रक्जन-इस रोग में वादी के कोप से जातों में कूजन (कुर २ की आवाज़) वार २ होती हैं।

५०-वातप्रवृत्ति इस रोग में वादी के जोर से अधोवायु (अपान वायु) बहुत निकलती है।

५१-स्फुरण-इस रोग में वादी के जोर से झाँख अथवा हाथ आदि फोई अंग फरकता है।

५२-शिरापूर्ण-इस रोग में बादी से सब नर्से और शिरायें भर जाती हैं।

५३-कम्पवायु-इस रोग में वायु से सब अंग अथवा शिर कॉपा करता है।

५४ कार्य इस रोग में वादी के कोप से शरीर प्रतिदिन (दिन पर दिन) दुर्वल होता जाता है।

५५-इयामता-इस रोग में वादी से अरीर काला पहुता जाता है।

५६-प्रस्राप-इस रोग में वादी से मनुष्य बहुत बकता और बोजता रहता है।

५७- क्षिप्रसूत्राता इस रोग में वादी से दम २ में (थोड़ी २ वेर में) पेक्षाव उत्तरा करती है !

५८-निद्वानादा-इस रोग में वादी से नींद नहीं आती है।

५९-स्वेदनादा-इस रोग में वादी पसीने के छिद्रों (छेदों) की बन्द कर पसीने को बन्द कर देती है।

६०-दुर्बेलत्व-इस रोग में बायु के कोप से शरीर की शक्ति जाती रहती है।

६१- बलक्ष्य-इस रोग में नादी के कोप से शक्ति का निलकुल ही नाश हो जाता है।

६२-शुक्रप्रवृत्ति-इसरोग में वादी के कीप से शुक्र (वीर्य) बहुत गिरा करता है।

६३-शुक्रकार्य-इस रोग में वायु घातु में मिलकर धातु को सुला देती है।

६४-शुक्रनाश-इस रोग में वायु से घातु का बिलकुरू ही नाश हो जाता है।

६५-अनवस्थितचित्तता—इस रोग में वायु मगज़ में बाकर चित्त को अस्थिर कर देती है।

६६-काठिन्य-इस रोग में वायु के कोप से शरीर करड़ा हो जाता है।

६७-विरसास्यता-इस रोग में वायु के कोप से मुँह में रस का खाद विरुक्तर नहीं रहता है।

्रेट-कचायवकता—इस रोग में वादी के कोप से गुँह में कवेले रस का खाद रहता है।

६९-आध्मान—इस रोग में वायु के कोप से नामि के नीचे अफरा हो जाता है।
७०-प्रत्याध्मान—इस रोग में इदयके नीचे और नामि के ऊपर अफरा हो जाता है।
७१-शीतता—इस रोग में वायु से श्वरीर ठंडा पड़ जाता है।
७२-शीकत्व—इस रोग में वायु के कोप से श्वरीर के रोम खड़े हो जाते हैं।
७३-भीकत्व—इस रोग में श्वरीर में ग्रुई के जुमाने के समान व्यथा मतीत होती है।
७४-ताद्—इस रोग में श्वरीर में ग्रुई के जुमाने के समान व्यथा मतीत होती है।
७५-कण्ड्—इस रोग में शदीर में खाद नहीं माख्स होता है।
७५-राम्झता—इस रोग में रसों का खाद नहीं माख्स होता है।
७५-प्रसुसि—इस रोग में वायु के कोप से कानों से शब्द ग्रुनाई नहीं देता है।
७५-प्रसुसि—इस रोग में वायु के कोप से स्पर्श का ज्ञान नहीं होता है।
७५-प्रसुसि—इस रोग में वायु के कोप से स्पर्श का ज्ञान नहीं होता है।
७५-प्रसुसि—इस रोग में वायु के कोप से गंघ का ज्ञान नहीं होता है।
८०-इष्टिक्षय—इस रोग में हिंह में वायु अपना प्रवेश कर देखने की शक्ति को

सूचना—वायु के कीप से जरीर में ऊपर कहे हुए रोंगो में से एक अथवा अनेक रोगों के उक्षण स्पष्ट दिखलाई देते है, उन (उक्षणों) से निश्चय हो सकता है कि यह रोग वादी का है, खून और वादी का भी निकट सम्बंध है इस लिये वादी खून में मिल कर बहुत से खून के विकारों को पैदा करती है, अतः ऐसे रोगों में खून की शुद्धि और वायु की शान्ति करने वाला इलाज करना चाहिये॥

पित्त के कोप के कारण ॥

बहुत गर्म, तीखे, खट्टे, रूखे और दाहकारी पदार्थों के खाने पीने से, मद्य आदि नशों के न्यसन से, बहुत उपवास करने से, कोघ से, अति मैशुन से, बहुत शोक से, बहुत भूप और अग्नि तेज आदि के सेवन से, इत्यादि आहार विद्वार से पित्त का कोप होता है, जिस से पित्तसम्बन्धी ४० रोग होते हैं, जिन के नाम वे हैं:—

१-धूमोद्गार-इस रोग में घुएँ के समान जली हुई डकार आती है।

२-विदाह-इस रोग में शरीर में बहुत बलन होती है।

२-उष्णाङ्गत्व-इस रोग में श्ररीर हरदम गर्भ रहता है।

४-मतिभ्रम-इस रोग में शिर (मगज़) सदा घूमा करता है।

⁹⁻बायु से उत्पन्न होने बार्क इन ८० प्रकार के रोगों का यहा पर कथन कर दिया है परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि अनेक आचार्यों ने कई रोगों के नामान्तर (ब्रुवरे नाम) किसे हैं तथा उन के लक्षण भी और ही लिखे हैं, परन्तु संख्या में कोई सेद नहीं है अर्थात् रोग संख्या सब ही के मत में ८० ही है, यही विषय पित्त और कफ़ से उत्पन्न होनेनांखे रोगों के विषय में भी समझना चाहिये॥

५ कान्तिहानि इस रोग में शरीर के तेज का नाश होता है ! ६-कण्ठक्रोष-इस रोग में कण्ठ (गळा) सूल जाता है। ७-सुखद्योष-इस रोग में सुँह में शोष हो जाता है। ८-अल्पञ्चाकता-इस रोग में वात (वीर्य) कम हो जाता है। ९-तिक्तास्यता-इस रोग में ग्रँह कडुआ रहता है। १०-अम्लवकत्व-इस रोग में मुँह खट्टा रहता है। ११-स्वेदस्राय-इस रोग में पसीना बहुत बाता है। १२-अक्रपाक-इस रोग में शरीर पक जाता है। १३-ऋम-इस रोग में ग्लानि तथा अञ्चित (कमजोरी) रहती है। १४-इरितवर्णत्व-इस रोग में शरीर का रंग हरा दीखता है। १५-अतुः सि-इस रोग में भोजन करने पर भी तृप्ति नहीं होती है। १६-पीतकायता-इस रोग में शरीर का रंग पील दीखता है। १७-रक्तस्याच-इस रोग में शरीर के किसी स्थान से खुन गिरता है। १८-अक्टरण-इस रोग में शरीर की चमड़ी फटती है। १९-लोहगन्धास्यता-इस रोग में मुँह में से छोह के समान गन्य आती है। २०-वौर्शनध्य-इस रोग में मुँह तथा शरीर से दुर्गन्य निकलती है ! २१-पीतमूत्रत्व-इस रोग में पेशान पीळा उतरता है। २२-अरति-इस रोग में पदार्थी पर अपीति रहती है। २३-पित्तविट्कता-इस रोग में दस्त पीछा आता है। २४-पीतावलोकन-इस रोग में आँखों से पीला दीखता है। २५-पीतनेत्रता-इस रोग में आंखें पीछी हो जाती हैं। २६-पीतदन्तता-इस रोग में दाँत पीछे हो जाते हैं। २७-इतिनेच्छा-इस रोग में ठंढे पदार्थ की बांछा रहती है। २८-पीतनखता-इस रोग में नल पीले हो आते हैं। २९- तेजोद्रेष- इस रोग में सूर्य आदि का तेज सहा नहीं जाता है। २०-अल्पनिद्रता-इस रोग में नींद बोड़ी आती है। . ३१-कोप-इस रोग में क्रोध (गुस्सा) बढ़ जाता है। ३२-गात्रसाद-इस रोग में शरीर में पीड़ा होती है। ३३-भिन्नविद्कत्व-इस रोग में दस्त पतला जाता है। ३४-अन्धता-इस रोग में बांख से नहीं दीखता है। ३५-उडणोच्छासत्य-इस रोग में श्वास गर्म निकलता है।

३६-उडणस्त्रत्व—इस रोग में पेशाव गर्भ वाता है।
३७-उडणसलस्व—इस रोग में दस गर्भ उत्तरता है।
३८-तमोद्द्यन—इस रोग में वांलों में व्यिश वाती है।
३९-पित्तमण्डलद्द्यन—इस रोग में पीछे मण्डल (चकर) दीखते हैं।
४०-नि:सरस्व—इसं रोग में वमन और दस्त में पित्त निकलता है।

सूचना—िपत्त के कोप से अरीर में उक्त रोगों में से एक अथवा अनेक रोगों के अक्षण दिखलाई देते हैं, उन को खूब समझ कर रोगों का इलाज करना चाहिये, क्योंिक बहुधा देखा गया है कि—मतिअम, तिकास्यता, खेदसाव, क्कम, अरित, अस्पिनद्रता, गात्रसाद, मिज्ञविद्कता और तमोदर्शन आदि बहुत से पित्त के रोगों को साधारण मनुप्य अपनी समझ के अनुसार वायु के रोग गिनकर (मान कर) उन के मिटाने के लिये गर्म इलाज किया करते हैं, उस से उलटा रोग बढ़ता है, इसी मकार बहुत से रोग बाहर से बायु के से (बायुजन्य रोगों के समान) दीखते हैं परन्तु असल में निश्चय करने पर वे (रोग) पित्त के (पित्तजन्य) उहरते हैं (सिद्ध होते हैं), एवं बहुत से रोग बाहरी कक्षणों से पित्त तथा गर्मी के माल्स देते हैं परन्तु असल में निश्चय करने पर वे रोग बाहरी कक्षणों से पित्त तथा गर्मी के माल्स देते हैं परन्तु असल में निश्चय करने पर वे रोग बाहरी कि अत्य हुए सिद्ध होते हैं, इस लिये रोगों के कारणों के खोजने में बहुत विचार- वास्त और सक्ष्म बुद्धि से जांच करने की आवश्यकता है।।

कफ के कोप के कारण ॥

पुड़, शकर, बूरा और मिश्री आदि मीठे पदार्शों के साने से, भी और मक्सन आदि चिकने पदार्थों के साने से, केळा और मैंस का दूध आदि मारी पदार्थों के साने से, ठंढे और मारी पदार्थों के अधिक साने से, दिन में सोने से, अजीर्थ में मोजन करने से, विना मेहनत के साली बैठे रहने से, जीतकाल में अधिक ठंढे पानी के पीने से और ससन्त ऋतु में नये अन के साने से, इत्यादि आहार निहार से शरीर में कफ बढ़ कर बहुत से रोगों को उत्पन्न करता है, जिन में से मुख्यतया कफं के २० रोग है, जिन के नाम ये है:—

१-तन्द्रा—इस रोग में आंखों में भिंचाव सा लगा रहता है।
२-अतिनिद्धता—इस रोग में नींद बहुत आती है।
३-गौरव—इस रोग में शरीर भारी रहता है।
४-सुखलेप—इस रोग में गुँह मीठा २ सा लगता है।
५-सुखलेप—इस रोग में गुँह में चिक्रनापन सा रहता है।
६-प्रसेक—इस रोग में गुँह से लार गिरती रहती है।

७-श्वेतावलोकन-इस रोग में सब वस्तुयं सफेद दीखती हैं।

८-श्वेतिविद्कत्व- इस रोग में दस्त सफेद रँग का उतरता है।

९-श्वेतमूत्रता-इस रोग में पेशान श्वेत (सफेद) उतरता है।

१०-श्वेतांगवर्णता-इस रोग में शरीर का रंग सफेद हो जाता है।

११-उच्चेच्छा-इस रोग में अति गर्म पदार्थ के लाने की इच्छा होती है।

१-तिक्तकामता-इस रोग में कडुई चीज़ की इच्छा होती है।

१३-मलाधिक्य-इस रोग में दस्त अधिक होकर उतरता है।

१४-द्युक्रबाहुल्य-इस रोग में वीर्य का अधिक सम्बय होता है।

१५-बहुमू ज्ञता-इस रोगमें पेशाब बहुत साता है।

१६-आलस्य-इस रोग में आलस्य बहुत बाता है।

१७-मन्द्वुद्धित्व-इस रोग में बुद्धि मन्द हो जाती है।

१८-तृसि-इस रोग में थोड़ा सा खाने से ही तृप्ति हो जाती है।

१९-घर्घरचाच्यता-इस रोग में आवाज मर्घर होकर निकळती है।

२०-अचैतन्य-इस रोग में चेतनता जाती रहती है।

सूचना—कप का कीप होने से शरीर में से उक्त रोगोंनेंसे एक अथवा अनेक रोगों के जब अक्षण दीख पढ़ें तब उन को खूब सोच समझ कर रोगों का इलाज करना चाहिये।

कफ के रोगों में जो श्वेतावलोकन तथा श्वेतिविद्कत्व रोग गिनाये गये है उन का तात्पर्य यह नहीं है कि सब वस्तुयें वर्फ के समान सफेद दीखें तथा वर्फ के समान सफेद दक्त आवें, किन्तु उन का तात्पर्य यही है कि आरोग्यता की दशा में जैसा रंग दीखता था तथा जिस रंग का दक्त आता था वैसा रंग न दीख कर तथा उस रंग का दक्त न होकर पूर्व की अपेक्षा अधिक श्वेत दीखता है तथा अधिक श्वेत दक्त आता है ॥

यह चतुर्थ अध्याय का त्रिदोषन रोगवर्णन नामक ग्यारहनां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

बारहवां प्रकरण-रोगपरीक्षाप्रकार ॥

रोग की परीक्षा के आवश्यक ऋम वा प्रकार ॥

रोग की परीक्षा के बहुत से प्रकार हैं—उम में से वीन प्रकार निमित्त आल के द्वारा माने जाते हैं, जो कि वे हैं—खम, श्रकुन और खरोदय, खम के द्वारा रोग की परीक्षा इस प्रकार से होती है कि—रोगी को या उस के किसी सम्बन्धी को या उस के चिकि स्सक (रोगी की चिकित्सा करने वाले) वैद्य को जो खम आवे उस का शुमाशुम फल विचार कर रोग की परीक्षा करना, शकुन के द्वारा रोग की परीक्षा इस प्रकार से होती है कि—जिस समय वैद्य को बुलाने के लिये दूत जाने उसी समय मकान से निकलते ही उस को गर्म शकुन का होना शुम होता है, सौम्य तथा ठंढा शकुन होने तो वह अच्छा नहीं होता है इत्यादि, खरोदय के द्वारा रोग की परीक्षा इस प्रकार से होती है कि—जन दूत वैद्य के पास पहुंचे तब वैद्य खरोदय देखे, वह भी भरीहुई दिशा में देखे, यदि दूत वैठ कर या खड़ा रह कर प्रश्न करें तो सजीव दिशा समझे, यदि, उस समय वैद्य के अग्नितत्त्व चलता हो तो पित्त वा गर्मी का रोग समझे, रोगी के वायुतत्त्व चलता हो तो वायु का रोग समझे, इत्यादि तत्त्वों का विचार करे, यदि खाली दिशा में वैठ कर प्रश्न हो वा युपुन्ना नाड़ी चलती हो तो रोगी मर जाता है, आकाशतत्त्व में वैद्य को यश नहीं मिलता है, यदि वैद्य के चन्द्र सर चलता हो पीछे उस में प्रिथनी और जलतत्त्व चले तथा उस समय रोगीके घर जावे तो वैद्य को अवस्य यश मिलेगा, दवा देते समय वैद्य के सूर्य खर का होना इसी तरह पुनः वैद्य को मकान से निकलते ही ठंढे और सौम्यशकुन का होना अच्छा होता है परन्तु गर्म शकुन का होना अच्छा नहीं है, इत्यादि ।

इस प्रकार से लप्त शकुन और खरोदय के द्वारा परीक्षा करने से वैश्व इस बात की निमित्त शास्त्र के द्वारा अच्छी तरह जान सकता है कि—रोगी जियेगा या बहुत दिनोंतक भगतेगा अथवा आराम हो जायगा इत्यादि !

यद्यपि इन तीनों विषयों का कुछ यहां पर विशेष वर्णन करना आवश्यक था परन्तु अंथ के बढ जाने के भय से यहां विशेष नहीं लिख सकते हैं किन्तु यहां पर तो अब रोग परीक्षा के जो लोकप्रसिद्ध मुख्य उपाय है उन का विस्तारसिहत वर्णन करते हैं:—

रोगपरीक्षा के लोकप्रसिद्ध मुख्य चार उपाय है—प्रकृतिपरीक्षा, स्पर्शपरीक्षा, वर्श्वनपरीक्षा और प्रश्नपरीक्षा, इन में से प्रकृतिपरीक्षा में यह देखा जाता है कि रोगी की प्रकृति वायुप्रधान है, वा पिराप्रधान है, वा कफप्रधान है, अथवा रक्तप्रधान है, (इस विषय का वर्णन प्रकृति के सहरूप के निर्णय में किया जावेगा), स्पर्शपरीक्षा में रोगी के शरीर के मिन्न २ मागों की हाथ के स्पर्श से तथा दूसरे सावनों से जांच की जाती है, इस परीक्षा का भी वर्णन आगे विस्तार से किया जावेगा, यह स्पर्शपरीक्षा हाथ से तथा थर्मामीटर (उप्णतामापक नळी) से और स्टेओस्कोप (हृदय तथा श्वास नळी की किया के जानने की मुंगळी) आदि दूसरे भी साधनों से हो सकती है, नाड़ी, हृदय, फेफसा तथा चमड़ी, ये सब स्पर्शपरीक्षा के अंग है, दर्शनपरीक्षा में यह वर्णन है कि—रोगी के जरीर को अथवा उस के जुदे २ अवयवों को केवळ दृष्टि के द्वारा देखने मात्र से ने ना

१-सरोदय का कुछ वर्णन आगे (पनसाय्याय में) किया जायगा, वहा इस विषय को देग हेना चाहिये॥ १-अष्टाद्र निमित्त के वधार्य ज्ञान को जो कोई पुरुष सुठा समझते हैं यह उन की मुर्खना है॥

का बहुत कुछ निर्णय हो सकता है इस परीक्षा में बहुत से बर्शनीय दूसरे यी विषय जा जाते हैं, जैसे—रूप अर्थात् चेहरे का देखना, त्वचा (चमड़ी), नेत्र, जीम, मछ (दस्त) और मूत्र आदि के रंग को देखना तथा उन के दूसरे चिहों को देखना, हत्यादि। इन सब के दर्शन से भी रोगपरीक्षा हो सकती है, प्रश्नपरीक्षा में यह होता है कि—रोगी की हकीकत को सुन कर तथा पूछ कर आवश्यक बातों का ज्ञान होकर रोग का ज्ञान हो जाती है, अब इन चारों परीक्षाओं का विशेष वर्णन किया जाता है:—

प्रकृतिपरीक्षा॥

आर्यवैद्यक शास्त्र के मुख्यतया वर्णनीय विषय वात पित्त और कफ, ये तीन ही हैं और इन्हीं पर वैद्यक शास्त्र का आधार है, नाड़ीपरीक्षा में भी वे ही तीनों उपयोगी हैं, इस लिये इन तीनों विषयों का विचार पहिले किया जाता है—

नाड़ी आदि की परीक्षा के विषय पर आने से पहिले यह जानना परम आवश्यक है कि प्रत्येक दोषे वाली प्रकृति का क्या २ सरूप होता है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य को अपनी २ प्रकृति (तासीर) से बाकिफ होना बहुत ही जरूरी है, देखों । हमारी प्रकृति शान्त है अथवा तामसी (तमोगुण से युक्त) है इस बात को तो प्रायः सब ही मनुष्य आप भी जानते हैं तथा उन के सहवासी (साथ में रहनेवाले) इष्ट मित्र मी जानते हैं, परन्तु वैद्यकशास्त्र के नियम के अनुसार हमारी प्रकृति वात की है, वा पित्र की है, वा कफ की है, वा रक्त की है, अथवा मिश्र (मिलीहुई) है, इस बात को बहुत थोड़े ही पुरुष जानते है, इस के न जानने से खान पान के पदाशों के सामान्य गुण और दोषों का शान होने पर भी उस से कुछ अभ नहीं उठा सकते है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य जब अपनी प्रकृति को जान लेता है तब इस के बाद खान पान के पदाशों के सामान्य—गुण दोष को जान कर तथा अपनी प्रकृति के अनुसार उन का उपयोग कर अपनी आरोग्यता को कायम रख सकता है तथा रोग हो जाने पर उन का इलाज भी खार ही कर सकता है।

प्रकृति की परीक्षा में इतनी विशेषता है कि—इस का ज्ञान होने से दूसरी भी बहुत सी परीक्षायें सामान्यतया जानी जा सकती हैं, देखों । यह सब ही जानते हैं कि—सब आदिमियों में बात पित्त कफ और खून अवस्थ होते हैं परन्तु वे (बात आदि) सब के समान नहीं होते हैं अर्थात् किसी के अरीर में एक प्रधान होता है शेष गौण (अप्रधान) होते हैं, किसी के शरीर में दो प्रधान होते हैं शेष गौण होते हैं, अब इस में यह जान होता है इसी के जिस मनुष्य का जो दोष प्रधान होता है उसी दोष के नाम से उसकी

१-इस का यहा पर उचित समझ कर "प्रश्नपरीक्षा, नाम रख दिशा है ॥ २-वात पित्त और कफ, इम्हीं तीनों का नाम दोष है, क्योंकि ये ही विकृत होकर शरीर को वृपित करते हैं॥

प्रकृति पहचानी और मानी जाती है, यह मी स्मरण रहे कि—प्रकृति प्राय: मनुष्यों की प्रथक् २ होती है, देखो ! यह प्रत्यक्ष ही देखा जाता है कि—एक वस्तु एक प्रकृतिवाले को जो अनुकूल आती है वह दूसरे को अनुकूल नहीं आती है, इस का अल्य हेतु यही है कि—प्रकृति में भेद होता है, इस उदाहरण से न केवल प्रकृति में ही भेद सिद्ध होता है किन्तु वस्तुओं के खमान का भी भेद सिद्ध होता है।

जब मनुष्य खयं अपनी प्रकृति को नहीं जान सकता है तब खान पान की वस्तु प्रकृति की परीक्षा कराने में सहायक हो सकती है, इस का दृष्टान्त यही हो सकता है कि—जिस समय दूसरी किसी रीति से रोग की परीक्षा नहीं हो सकती है तब चतुर वैच वा डाक्टर ठंढे वा गर्म इलाज के द्वारा रोग का बहुत कुछ निर्णय कर सकते है तथा खान पान के पदार्थों के द्वारा प्रकृति की परीक्षा मी कर लेते है, जैसे—जब रोगी को गर्म बस्तु अनुकूल नहीं आती है तो समझ लिया जाता है कि इस की पित्त की प्रकृति है, इसी प्रकार ठंढी बस्तु के अनुकूल न आने से वायु की वा कफ की प्रकृति समझ ली जाती है।

प्रकृति के मुख्य चार भेद हैं—बातप्रधान, पित्तप्रधान, कफ्रमधान और रक्तमधान, इन चारों का परस्पर मेल होकर जब मिश्रित (मिले हुए) लक्षण प्रतीत होते है तब उसे मिश्रमकृति कहते है, अब इन चारों प्रकृतियों का वर्णन कम से करते है:—

वातप्रधान प्रकृति के मनुष्य वातप्रधान प्रकृति के मनुष्य के शरीर के अवयव बड़े होते हैं परन्तु विना न्यवस्था के अर्थात् छोटे बड़े और बेडोळ होते हैं, उस का शिर शरीर से छोटा या बड़ा होता है, ळ्ळाट ग्रुख से छोटा होता है, शरीर सूखा और रख़ा होता है, उस के शरीर का रंग फीका और रफ़हीन (विना ख़ून का) होता है, आंखें काळे रंग की होती है, वाळ मोटे काळे और छोटे होते है, चमड़ी तेजरहित तथा कख़ी होती है परन्तु स्पर्श का ज्ञान जल्दी कर छेती है, मांस के छोने करड़े होते हैं परन्तु विखरे हुए होते है, इस प्रकृतिवाळे मनुष्य की गति जल्दी कस्रा और कांपती हुई होती है, रुविर की गति परिमाणरहित होती है इसळिये किसी का यदि शिर गर्म होता है तो हाथ पैर ठंढे होते हैं और किसी का यदि शिर गर्म होता है तो हाथ पैर ठंढे होते हैं और किसी का यदि शिर र्ग में होते है, मन यद्यपि काम करने में प्रवल होता है परन्तु चञ्चल अर्थात् अस्थिर होता है, यह पुरुष काम और क्रोध आदि वैरियों के जीतने में अशक्त होता है, इस को प्रीति अपीति तथा मय जल्दी पैता होता है, इस की न्याय और अन्याय के विचार करने में सहमदृष्टि होती है परन्तु अपने न्याययुक्त विचार को अपने उपयोग में लाना उस को कठिन होता है, यह सब जीवन को अस्थिर अर्थात् चंचल श्रुति से गुजारता है, सव कामों में अल्दी करता है, उस के श्रुति में रोग वहुत जल्दी आता है तथा उस (रोग)

का मिटना भी कठिन होता है, वह रोग का सहन भी नहीं कर सकता है, उस को रोग-समय में चौगुना कष्ट दिखाई देता है, दूसरी प्रकृतिवाले का शरीर और मन ज्यों २ अवस्था आती जाती है त्यों २ शिथिल और मन्द पड़ता जाता है परन्तु वायुप्रधान प्रकृतिवाले का मन अवस्था के बढ़ने पर करड़ा और मजबूत होता जाता है, इस प्रकृति-वाले मनुष्य के अवीर्ण, बद्धकोष्ठ और अतीसार (दस्त) आदि पेट के रोग, शिर का दर्द, चसका, वातरक्त, फेफसे का वरम, क्षय और उन्माद आदि रोगों के होने का अधिक सम्मव होता है, इस प्रकृतिवाले मनुष्य की आयु शक्ति और धन थोड़ा होता है, इस प्रकृति के मनुष्य को तीले चटपेट गर्मागर्म तथा खारी पदार्थों पर अधिक प्रीति होती है तथा खट्टे मीठे और ठंढे पदार्थों पर अपीति (अरुचि) होती है ॥

पित्तप्रधान प्रकृति के मनुष्य — पित्तप्रधान प्रकृति के मनुष्य के शरीर के सब अंग और उपांग खूब स्रत होते हैं, उस के शरीर के बन्धान अच्छे तथा मांस के लोचे ढीले होते हैं, शरीर का रंग पिक्कल होता है, वाल बोड़े करवरे होते हैं तथा जल्दी सफेद हो जाते है, शरीर पर बोड़ी र फुनसियां हुआ करती है, उस को मूख प्यास जल्दी लगती है, उस के मुख शिर और बगल में से दुर्गन्य आया करती है, इस म्झित का मनुष्य दुद्धिमान् और कोधी होता है, उस की आंख पेशाव तथा दस्त का रंग पील होता है, वह साहसी उत्साही तथा क्रेश करने पर सहने की श्रक्तिवाला होता है, उस की आयु शिक्त इच्य और ज्ञान मध्यम होते है, इस म्झितवाले को अजीर्ण पित्त और इरस आदि रोगों के होने का अधिक सम्भव होता है, उस को मीठे तथा लट्टे रस पर अधिक गीति होती है तथा तीले और सारी रस पर रुचि कम होती है ॥

कफ्रप्रधानप्रकृति के मनुष्य कफ प्रधानप्रकृति के मनुष्य का शरीर रमणीक भरा हुआ तथा मजबूत होता है, श्ररीर का तथा सब अवयवों का रंग सुन्दर होता है, चमड़ी कोमल होती है, वाल रमणीक होते है, रंग सच्छ होता है, उस की आंखें चिलकती (चमकती) हुई सफेद तथा चूसर रंग की होती हैं, दाँत मेले तथा सफेद होते हैं, उस का समाव गम्भीर होता है, उस में बल अधिक होता है, उसे नींद अधिक आती है, वह आहार थोड़ा करता है, उस की विचारश्विक कोमल होती है, वोलने की शक्ति थोड़ी होती है, स्मरणश्चिक और विवेकतुंद्धि अधिक होती है, उस के विचार याययुक्त होती है, उस के विचार व्याययुक्त होते हैं तथा व्यवहार अच्छे होते हैं, उस के शरीर की शक्ति से मन की शक्ति अधिक होती है, उस के शरीर की शक्ति से मन की शक्ति अधिक होती है, उस के शरीर की शक्ति से मन की शक्ति अधिक होती है, उस के शरीर की शक्ति से मन की शक्ति अधिक होती है, उस के शरीर की चाल मन्द होती है परन्तु मजबूत होती है, इस प्रकृति का मनुष्य प्रायः ताकतवर धनवान और लम्बीउमवाला होता है, उस के सामान्य प्रकृति का मनुष्य प्रायः ताकतवर धनवान और लम्बीउमवाला होता है, उस के शरीर मारी कारण से रोग हो जाता है, कफ के संग रस की शुद्ध होती है, उस का शरीर मारी कारण से रोग हो जाता है, उस के द्वारा अशक्ति बढ़ती है, उस का शरीर वहुत स्थूल होता और मेदवाला होता है, उस के द्वारा अशक्ति बढ़ती है, उस का शरीर वहुत स्थूल होता और मेदवाला होता है, उस के द्वारा अशक्ति बढ़ती है, उस का शरीर वहुत स्थूल होता और मेदवाला होता है, उस के द्वारा अशक्ति बढ़ती है, उस का शरीर वहुत स्थूल होता

है, पेट की तोंद छिटक पड़ती है, उस के हाथ और सांचे बड़े तथा स्थूल होते हैं, मांस के लोचे दीले होते है, उस का चेहरा विरस और फीका होता है, उस का शरीर जैसा कपर से स्थूल दीखता है वैसी अन्दर ताकत नहीं होती है, निर्वलता; शोथ; जल्हाद्धि और हाथी के समान पैरों का होना आदि इस प्रकृति के मुख्य रोग है, इस प्रकृतिवाले को तीले और लारी पदार्थों पर अधिक प्रीति होती है तथा मीठे पदार्थों पर रुचि कम होती है॥

रक्तप्रधान धातु के मनुष्य—वात पित्त और कफ, इन तीन प्रकृतियों के सिवाय जिस मनुष्य में रक्त अधिक होता है उस के ये लक्षण है—शरीर की अपेक्षा शिर छोटा होता है, गुँह चपटा तथा चौकोन होता है, ल्लाट बड़ा तथा बहुतों का पीछे की ओर से ढाल होता है, छाती चौड़ी गम्मीर और लम्बी होती है, खड़े रहने से नामि पेटकी सपाटी के साथ मिल जाती है अर्थात न बाहर और न अन्दर दीखती है, चरनी थोड़ी होती है, शरीर पुष्ट तथा खून से भरा हुआ खूनस्रत होता है, बाल नरम पतले और आंटेदार होते हैं, चमड़ी करड़ी होती है तथा उस में से मांस के लोने दिखलाई देते है, नाड़ी पूर्ण और ताकतवर होती है, वाँत मज़बूत तथा पीलापन लिये हुए होते हैं, पीने की चीज़ पर बहुत मीति होती है, पाचनशक्ति प्रवल होती है, मेहनत करने की शक्ति बहुत होती है, मानसिक बृचि कोमल तथा बुद्धि खामाबिक (खमाबसिद्ध) होती है, इस मज़प्य सहनशील, सन्तोषी, लोगों का उपकार करनेवाला; बोलने में चतुर; सरलमाथी और साहसी होता है, वह हरदम न तो काम में लगा रहना चाहता है और न घर में बैठ कर समय को न्यर्थ में विताना चाहता है, इस मनुष्य के दाह; फफसे का बरम; नजला; दाहज्वर; खून का गिरना; कलेजे का रोग और फफसे का रोग होना लिक सम्भव होता है, वह धूप का सहन नहीं कर सकता है।

यद्यपि जुदी २ प्रकृति की पहिचान करना कठिन है, क्योंकि बहुत से मनुष्यों की मूळ प्रकृति दो दो दोगों से मिळी हुई भी होती है तथा दोनों दोगों के ळक्षण भी मिळे हुए होते है तथापि एक प्रकृति के ळक्षणों का ज्ञान होने के बाद ळक्षणों के द्वारा दूसरी प्रकृति का जान केना कुछ भी कठिन नहीं है।

यदि मनुष्य स्क्ष्म विचार कर देखे तो उस को यह भी माछम हो जाता है कि— मेरी प्रकृति में अमुक दोष प्रधान है तथा अमुक दोष गौण अथना कम है, इस प्रकार से जन प्रकृति की परीक्षा हो जाती है तन रोग की परीक्षा; उस का उपाय तथा पथ्यापथ्य का निर्णय आदि सब बातें सहज में नन सकती है, इस छिये वैद्य ना डाक्टर को सब से प्रथम प्रकृति की परीक्षा करनी चाहिये, क्योंकि यह अत्यावस्थक बाते है।

१-सर्व साधारण को प्रकृति की परीक्षा इस प्रन्य के अनुसार प्रथम करनी चाहिये क्योंकि इस में प्रकृति के लक्षणों का अच्छे प्रकृत से वर्णन किया है, देखों ! परिश्रम और यह करने से कठिनसे कठिन कार्य भी हो जाते हैं, यदि लक्षणों के द्वारा प्रकृतिपरीक्षा में सन्देह रहे तो रोगी से पूछ कर भी वैद्य वा सक्टर परीक्षा कर सकते हैं ॥

दोष के जौर प्रकृति के आपस में कुछ सम्बन्ध है या नहीं ? यह एक बहुत ही आवश्यक प्रश्न है, इस का उत्तर यही है कि—दोष का प्रकृति के साथ अत्यन्त धनिष्ठ सम्बन्ध है अर्थात् जिस मनुष्य की प्रकृति में जो दोष प्रधान होता है वही दोष उस मनुष्य की प्रकृति कहा जाता है और बहुवा उस मनुष्य के उसी दोष के कोप से रोष होता है, जैसे—यदि कोई रोगी पुरुष वायुप्रधानप्रकृति का है तो उस के ज्वर आदि जो कोई रोग होगा वह (रोग) वायुरूप दोष के साथ विशेष सम्बन्ध रखनेवाला होगा इसी प्रकार पित्त और कफ आदि के विषय में भी समझना चाहिये।

अब स्याद्वादमत के अनुसार इस विषय में दूसरा पक्ष दिखलाते हैं—रोग सदा शरीर की मूल प्रकृति के ही अनुसार होता हो यही एकान्त निश्चय नहीं है, क्योंकि अनेक समयों में ऐसा भी होता है कि—रोगी की मूलप्रकृति पित्त की होती है और रोग का कारण वायु होता है, रोगी की प्रकृति वायु की होती है और रोग का कारण पित्त होता है, इस प्रकार बहुत से रोग ऐसे हैं जो कि प्रकृति से बिल्कुल सम्बन्ध नहीं रखते है तो भी रोगी के रोग की परीक्षा करने में और उस का इलाज करने में रोगी की प्रकृति का ज्ञान होना बहुत ही उपयोगी है ॥

स्पर्शपरीक्षा ॥

शरीर के किसी माग पर हाथ से अथवा दूसरे यन्त्र (औनार) से स्पर्श कर यह दर्यापत करना कि इस के शरीर में गर्मी की; शर्दी की; खून की तथा श्वासोच्छ्वास की किया कितने अन्दागृन है, इसी को स्पर्शपरीक्षा मानी है, इस परीक्षा में नाड़ीपरीक्षा, त्वचापरीक्षा, धर्मामेटर (शरीर की गर्मी मापने की नळी) और स्टेथोस्कीप (छाती में कगाकर भीतरी विकार को दर्यापत करने की नळी) का समावेश होता है।

स्पर्शपरीक्षा का सब से पहिला तथा अच्छा साधन तो हाथ ही है, क्योंकि रोग की परीक्षा में हाथ बहुत सहायता देता है, देलो ! शरीर गर्भ है, वा ठंढा है, खुँहाला है, वा लरखरा है, शरीर के अन्दर का अमुक भाग नरम है, पोला है, वा कठिन है, वा अन्दर के भाग में गांठ है, अथवा शोथ है, इत्यादि सब बातें हाथ के द्वारा स्पर्श करने से शीष्र ही माल्यम होजाती हैं, नाड़ीपरीक्षा भी हाथ से ही होती है जो कि रोग की परीक्षा का उत्तम साधन है, क्योंकि नाड़ी के देलने से शरीर में कितनी गर्मी वा शर्दी है तथा कीव-उत्तम साधन है, क्योंकि नाड़ी के देलने से शरीर में कितनी गर्मी वा शर्दी है तथा कीव-सा दोष कितने अंश में कुपित है इत्यादि बातों का ज्ञान श्रीष्र ही हो जा सकता है, देखो ! अनुभवी वैद्य और हकीम अपने अनुभव और अन्यास से शरीर की गर्मी को केवल नाड़ी पर अंगुलियां रखकर निस्सन्देह कह देते हैं अर्थात् अर्ममेटर जितना काम करता है लगभग उतना ही काम उन का चतुर हाथ और अनुभववाली अंगुलियां कर सकती हैं ।

१-सत्य पूछो तो दोष का ही नाम तो प्रकृति है।।

कुछ समय पूर्व स्पर्शपरीक्षा केवल हाथ के द्वारा ही होती थी परन्तु अब अन्वेषण (हूँ वा लोज) करनेवाले चतुर लोगों ने हाथ का काम दूसरे साधनों से मी लेना ग्रुक्त कर दिया है अर्थात् शरीर की गर्मी का माप करने के लिये बुद्धिमानों ने जो थर्मा-मेटर यन्त्र बनाया है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है, क्योंकि इस साधन से एक साधारण आदमी भी स्वयमेव शरीर की गर्मी वा ज्वर की गर्मी का माप कर सकता है, हां इतनी बुटि इस में अवश्य है कि इस यन्त्र से केवल शरीर की साधारण गर्मी माल्यम होती है किन्तु इस से दोषों के अंशांश का कुछ भी बोध नहीं होता है, इस लिये इस में चतुर वैद्यों के हाथ कई दर्जे इस की अपेक्षा प्रवल जानने चाहियें, बाकी तो रोगपरीक्षा में यह एक सर्वोपिर निदान है, इसी प्रकार हृदय में खून की चाल तथा श्वासोच्छ्रास की किया को जानने के लिये स्टेथोस्कोप नाम की नली भी बुद्धिमान पश्चिमीय विद्वानों ने बनाई है, यह भी हाथ का काम करती है तथा कान को सहायता देती है, इस लिये यह भी प्रशंसा के योग्य है, तात्पर्य यह है कि—स्पर्शपरीक्षा चाहे हाथ से की जावे चाहे किसी यन्त्रविशेष के द्वारा की जावे उस का करना अत्यावश्यक है, क्योंकि रोगपरीक्षा का प्रवान कारण स्पर्शपरीक्षा है, अतः क्रम से स्पर्श परीक्षा के अंगों का वर्णन संक्षेप से किया जाता है:—

नाड़ीपरीक्षा— हिरिपण्ड की गित के द्वारा हृदय में से खून बाहर कका खाकर घोरी नहीं में जाता है, इस से उन नहीं में खटका हुआ करता है और उन्हीं खटकों से खून का न्यूनाधिक होना तथा बेग से फिरना माख्य होता है, इसी को नाड़ीग्रान कहते हैं, इस नाड़ीग्रानसे रोग की भी कुछ परीक्षा हो सकती है, यदापि किसी भी घोरी नस के जगर अंगुछी के रखने से नाड़ीपरीक्षा हो सकती है तथापि रोगका अधिक निश्चय करने के छिये हाथ के अंगूठे के नीचे नाड़ी को देखते हैं, हाथ के पहुँचे के आगे दो किटन डोरी के समान नसे है, गोरी चमड़ीवाछे तथा पतछे श्रीरवाछे पुरुषों के ये रगें स्पष्ट दिखाई देती हैं, उन में से अंगूठे की तरफ की डोरी के समान जो नाड़ी है उसपर बाहर की तरफ हाथ की दो वा तीन अंगुछियों के रखने से अँगुछी के नीचे खट २ होता हुआ शब्द माख्य पड़ता है, उन्हीं खटकों को नाड़ी का ठनाका तथा चाल कहते है, नाड़ी की इसी घीमी वा तेज चाल के द्वारा चतुर वैद्य अंगुछियां रखकर शरीर की गर्मी शर्दी सिधर की गित तथा ज्वर आदि वातों का ज्ञान कर सकता है।

नाड़ीपरीक्षा की साधारण रीति यह है कि—एक घड़ी को सामने रख कर एक हाथ से नाड़ी को देखना चाहिये अर्थात् हाय की दो या तीन अंगुलियों को नाड़ीपर रखकर यह देखना चाहिये कि नाड़ी एक मिनट में कितने ठपके देती है, एक साधारण पुरुष की नाड़ी एक मिनट में ११० ठपके दिया करती है, क्योंकि हृदय में गुद्ध खन का एक होद है वह एक मिनट में ११० बार ढीला तथा तंग होता है और खून को धक मारता है परन्तु नीरोग श्वरीर में अवस्था के भेद से नाड़ी की गति भिन्न २ होती है जिसका वर्णन इस प्रकार है:—

संख्या ।	अवस्थाभेद् ।	एक मिनटमें नाड़ी की गति का कम।
8	बालक के गर्भस्य होनेपर ॥	१८० से १५० बार ॥
२	तुरत जन्मे हुए नालक की नाड़ी ॥	१३० से १४० बार ॥
₹	पहिले वर्ष में ॥	११५ से १३० वार ॥
8	दूसरे वर्ष में ॥	१०० से ११५ वार ॥
4	तीसरे वर्ष में ॥	९५ से १०५ बार ॥
8	चार से सात वर्षतक ॥	९० से १०० बार ॥
O	भाठ से चौदह वर्षतक ॥	८० से ९० बार॥
4	पन्द्रह से इकीस वर्षतक ॥	७५ से ८५ बार ॥
9	बाईस से पचास वर्षतक ॥	७० से ७५ बार॥
१०	बुढापे में ॥	७५ से ८० बार॥

नाज़ीज्ञान में समझने योग्य बातें—१-हमारे कुछ शासों में तथा आधु-निक अन्थों में नाड़ी का हिसाब पलों पर लिखा है, उस हिसाब से इस हिसाब में शोडा-सा फर्क है, यह हिसान जो लिसा गया है वह विद्वान डाक्टरों का निश्चय किया हुआ है परन्त बहुत पाचीन वैसक प्रन्थों में नाड़ीपरीक्षा कहीं भी देखने में नहीं आती है, इस से यह निश्चय होता है कि-यह परीक्षा पीछे से देशी वैद्यों ने अपनी बुद्धि के द्वारा निकाली है तथा उस को देखकर यूरोपियन विद्वान् डाक्टरों ने पूर्वीक्त हिसान लगाया है, परन्तु यह हिसाब सर्वत्र ठीक नहीं मिलता है, क्योंकि जाति और स्थिति के भेद से इस में फर्क पहता है, देखो ! ऊपर के कोठे में नीरोग बड़े आदमी की नाही की चाल एक मिनट में ७० से ७५ बारतक बतलाई है परन्त इतनी ही अवस्थावाली नीरोग सी की नाडी की चाल धीमी होती है अर्थात पुरुष की अपेक्षा की की नाडी की चार्ले दश बारह कम होती हैं, इसी प्रकार स्थिति के मेद से भी नाड़ी की गति में मेद होता है, देखों ! खड़े हुए पुरुष की अपेक्षा बैठे हुए पुरुष की नाड़ी की चाळ वीमी होती है और नींद में इस से भी अधिक भीमी होती है, एवं कसरत करते; दौड़ते: चलते तथा परिश्रम का काम करते हुए पुरुष की नाड़ी की चाल बढ जाती है, इस से स्पष्ट है कि नाड़ी की गति का कोई निश्चित हिसाब नहीं है किन्तु इस का यथार्थ ज्ञान अनुमवी पुरुषों के अनुसद पर ही निर्मर है। २-चतर वैद्य वा हकीम की दोनों हाथों की नाड़ी देखनी चाहियें, क्योंकि कभी २ एक हाथ की घोरी नस अपनी हमेशा की जगह को छोड़ कर

हाथ के पीछे की तरफ से अंग्रें के नीचे के सांघे के आगे चली जाती है उस से नाड़ी देखनेवाले के हाथ में नहीं लगती है तन देखनेवाला घवडाता है परन्तु यदि शरीर में खून फिरता होगा तो एक हाथ की नाड़ी हाथ में न लगी तो भी दूसरे हाथ की नाड़ी तो अवस्य ही हाथ में छगेगी, इस छिये दोनों हाथों की नाड़ी को देखना चाहिये। ३-हाश पर अथवा हाश के पहुँचे पर कोई पट्टी डोरा वा वाजुबंद आदि वँघा हुआ हो तो नाडी का ठीक ज्ञान नहीं होता है. क्योंकि नांघने से घोरी नस में खुन ठीक रीति से आगे नहीं चल सकता है. इसलिये बन्धन को खोल कर नाडी देखनी चाहिये। ४-यदि हाथ को शिर के नीचे रख कर सोता हो तो हाथ को निकाल कर पीछे नाही को देखना चाहिये । ५--डरपोक आदमी किसी हर से वा हाक्टर को देख कर जन हर जाता है तब उस की नाही जलदी चलने लगती है इस लिये ऐसे आदमी को दम दिलासा देकर उस का दिल ठहरा कर अथवा बातों में लगाकर पीछें नाडी को देखना चाहिये. क्योंकि ऐसा करने पर ही नाडी के देखने से ठीक रीति से नाडी का ज्ञान होगा । ६-आदमी को बैठाकर वा सुलाकर उस की नाडी को देखना चाहिये। ७-परिश्रम किये हुए पुरुप की तथा मार्ग में चलकर तरत आये हुए पुरुष की नाडी को बोडीदेरतक बैठने देकर पीछे देखना चाहिये। ८-वहत खुनवाछे पुरुष की नाडी वहत जलदी और जोर से चलती है। ९-प्रातःकाल से सन्ध्यासमय की नाडी थीमी चलती है। १०-मोजन करने के बाद नाढी का बेग बढता है तथा मच चाह और तमाख आदि मादक और उत्तेजक बस्त के लाने के पीछे भी नाड़ी की चाछ बढ़ जाती है।

ं इस प्रकार जब नीरोग मनुष्यों की नाड़ी में भी सिन्न २ स्थितियों और सिन्न २ समयों में अन्तर माछ्य पड़ता है तो बीमारों की नाड़ी में अन्तर के होने में आध्वर्य ही क्या है, इस छिये नाड़ीपरीक्षा में इन सब बातों को ध्यान में रखना चाहिये।

नाड़ी में दोषों का ज्ञान---नाड़ी में दोषों के जानने के लिये इस दोहे को कण्ठ रखना चाहिये---

तर्जिनि मध्य अनामिका, राखु अंगुली तीन ॥ कर अँगुरु के मूल सों, वात पित्त कफ चीन ॥ १ ॥ अर्थात् हाथ में अंगुरे के मूल से तीर्जिनी मध्येंमा और अनामिका, ये तीन अंगुलियां

१-क्योंकि दिनसर कार्थ कर बुकने से सन्ध्यासमय समुख्य थान्त (यका हुआ) हो जाता है और थान्त पुरुप की नादी का घीमा होना सामानिक ही है ॥

२-जिन को छपर छिस चुके हैं॥

३-तर्जनी सर्यात् संगूठे के पासवाळी अगुळी ॥

४-मध्यमा अर्थात् वीच की अगुळी ॥

५-अनामिका अर्थात् कनिष्ठिका (छगुनिया) के पासनाली अगुली ।।

नाड़ी परीक्षामें लगानी चाहियें खीर उन से कम से बात पित्र और कफ की पहिचानना चाँहिये॥

नाड़ीपरीक्ष्ता का निषेध—िंवन २ समयों में और जिन २ पुरुषों की नाड़ी नहीं देखनी चाहिये, उन के स्मरणार्थ इन दोहों को कण्ठ रखना चाहिये—

तुरत नहाया जो पुरुष, अथवा सोया होय ॥ श्रुषा तृषा जिस को लगी, वा तपसी जो कोय ॥ १ ॥ व्यायामी अरु थिकत तन, इन में जो कोड आहि ॥ नाड़ी देखे वैद्य जन, सम्रुक्षि परै निहें वाहि ॥ २ ॥

अर्थात् को पुरुष शीघ्र ही सान कर चुका हो, शीघ्र ही सोकर उठा हो, विस को मूल वा प्यास लगी हो, जो तपश्चर्यों में लगा हो, जो शीघ्र ही व्यागाम (कसरत) कर चुका हो और जिस का शरीर परिश्रम के द्वारा यक गया हो, इतने पुरुषों की नाड़ी उक्त समयों में नहीं देखनी चाहिये, यदि वैद्य वा डाक्टर इन में से किसी पुरुष की नाड़ी देखेगा तो उस को उक्त समयों में नाड़ी का ज्ञान यथार्थ कमी नहीं होगा।

स्मरण रखना चाहिये कि नाड़ीपरीक्षा के निषय में चरक झुबुत तथा विद्वान् आक्षणों के बनाये हुए प्राचीन वैचक प्रन्थों में कुछ भी नहीं िल्ला है, हसी प्रकार प्राचीन जैन गुप्त (वैक्य) पण्डित वाग्मह ने भी नाड़ीपरीक्षा के विषय में अष्टाक्ष— हृदय (वाग्मह) में कुछ भी नहीं िल्ला है, तात्पर्य यही है कि—प्राचीन वैचक प्रन्थों में नाड़ीपरीक्षा नहीं है किन्तु पिछले बुद्धियान् वैद्योंने यह युक्ति निकाली है जैसा कि हम प्रथम लिख चुके हैं, हां वेशक श्रीमञ्जैनाचार्य हर्षकीर्तिस्रिकृत योगचिन्तामणि स्नादि कई एक प्रामाणिक वैद्यक अन्त्रों में नाड़ीपरीक्षा का वर्णन है, उस को हम यहां भाषा छन्द में प्रकाशित करते हैं:—

१-तात्पर्यं यह है कि तर्जनी अगुळी के नीचे जो नाडी का उपका हो उस से बात की गित को पहिबाने, सध्यमा अंगुळि के नीचे जो नाड़ी का उपका हो उस से पित्त की गित को पहिचाने तथा अनामिका ,
अंगुळि के नीचे चो नाडी का उपका हो उस से कफ की गित को पहिचाने, देशी विवक गालों में नाडीपरीक्षा का यही कम (जो ऊपर कहा गया है) ळिखा है, स्वाकि उक्त जालों का यही निहान्त है कि—
अंगुळे के मूल में जो तर्जनी आदि तीन अंगुळियां करावर छमाईं जाती हैं उन में से प्रथम (तर्जनी)
अंगुळी के नीचे वायु की नाड़ी है, दूसरी (सध्यमा) अगुळी के नीचे पित्त की नाड़ी है तथा ठीसरी
(अनामिका) अंगुळि के नीचे कफ की नाड़ी है, जिस प्रकार उक्त तीनों अंगुळियों के हारा उक्त तीनों
वोषों की गित का बोध होता है उसी प्रकार से उक्त अंगुळियों के ही द्वारा मिक्रित दोगों की गित का मी
वोषों की गित का बोध होता है उसी प्रकार से उक्त अंगुळियों के ही द्वारा मिक्रित दोगों की गित का मी
वोषों की गित का बोध होता है उसी प्रकार से उक्त अंगुळियों के ही द्वारा मिक्रित दोगों की गित का मी
वोषों की गित का नोध होता है उसी प्रकार से उक्त अंगुळियों के ही द्वारा मिक्रित होगों की गित का नाड़ी ताकिए की नाड़ी ताकिए की नाड़ी ताकिए की नाड़ी ताकिए की नाड़ी ताकिए के नीचे चळती है, वित्तकफ की नाड़ी सम्बन्धा और अनामिका के नीचे चळती है
तथा सिक्पार की नाड़ी तीनों अंगुळियों के नीचे चळती है।

दोहा—वात वेग पर जो चलै, सांप जोंक ज्यों कोय ॥
पित्तकोप पर सो चले, काक मेंडुकी होय ॥ १ ॥
कफ कोपे तब इंसगति, अथवा गति कापोत ॥
तीन दोष पर चलत सो, तित्तर लब ज्यों होत ॥ २ ॥
देही है उछलत चलै, वात पित्त पर नारि ॥
देही मन्द्गती चलै, वात स्लेषम कारि ॥ ३ ॥
प्रथम उछल पुनि मन्दगति, चले नाड़ि जो कोय ॥
तो जानो तिस देह में, कोप पित्त कफ होय ॥ ४ ॥

सोरठा—कबहुँ मन्द्गति होय, नारी सो नाड़ी चले॥ कबहुँ शीव्र गति सोय, दोष दोय तब जानिये॥ ५॥

दोहा—ठहर ठहर कर जो चले, नाड़ी सत्यु दिखात ॥
पित वियोग ते ज्यों प्रिया, शिर धूनत पिछतात ॥ ६ ॥
अति हि क्षीणगित जो चले, अति शीत तर होय ॥
तौ पित की गित नाश की, प्रकट दिखावत सोय ॥ ७ ॥
काम कोध डहेग भय, वसैं चित्त जिह चार ॥
ताहि वैद्य निश्चय धरै, चलत जलद गित नार ॥ ८ ॥

छप्पय—धातु क्षीण जिस होय मन्द वा अगनी या की। तिस की नाडी चलत मन्द ते मन्दतरा की॥

१-दोहों का संक्षेप में अर्थ--वातवेगवारी नाड़ी सांप और जॉक के समान टेडी चलती है, पित्तवेगवारी नाड़ी-काक और मेंड्र के समान चलती है ॥ १ ॥ कफ्नेयवारी नाड़ी-इंस और कहूतर के समान चलती है, तीनों दोषोंवारी अर्थाद सित्रपातवेगवारी नाड़ी-वितर तथा सन (बटर) के समान चलती है। १ ॥ वातपित्तवेगवारी वाड़ी--टेडी तथा उछलती हुँ इ चलती है, वातकफ्नेयवारी नाड़ी--टेडी तथा अन्द २ चलती है। १ ॥ अथम उछले पीछे मन्द २ चले तो शरीर में पित्त कफ का कोप खानना चाहिये। ४ ॥ कमी मन्द २ चले तथा कमी श्रीप्र गति से चले, उस नाड़ी को हो होषोंवारी समझना चाहिये। ४ ॥ कमी मन्द २ चले तथा कमी श्रीप्र गति से चले, उस नाड़ी को हो होषोंवारी समझना चाहिये। ५ ॥ जो नाड़ी उहर २ कर चले, वह खुको सूचित करती है, जैसे कि पति के वियोग से स्री शिर शुनती और पछताती है॥६॥जो नाड़ी वालन्द स्थायति हो तथा अखल शीत हो तो वह स्वायी (तेशी) के नाश की गति को दिखलाती है। ७ ॥ जिस के इदय में काम कोच उद्देग और यय होते हैं उस की नाड़ी शीप्र चलती है, यह वैद्य निवय जात हे। ८ ॥ विस की चातु शीण हो अथवा जिस की समि मन्द हो उस की नाड़ी अति मन्द चलती है, वालवती नाड़ी सिप रूप से चलती है, मूझ से युका पुरुष की नाड़ी तथा नाड़ी सार तथा भीजन किये हुए पुरुष की नाड़ी सिप रूप से चलती है, भूझ से युका पुरुष की नाड़ी वपल तथा भीजन किये हुए पुरुष की नाड़ी सिपर होती है ॥ ९ ॥

तपत तौन तन चलत जॉन सी भारी नारी ! ताहि वैद्य मन घरें तौन सी रुधिर दुखारी ॥ भारी नाड़ी सम चले स्थिरा बलवती जान । क्षुधावन्त नाड़ी चपल स्थिरा तृसिमय मान॥९॥

१-वायु की नाड़ी—सांप तथा जोंक की तरह बांकी (टेडी) चलती है।
२-पित्त की नाड़ी—की था मेंडक की तरह क़्दती हुई शीष्र चलती है।
२-कफ की नाड़ी—हंस कब्तर मोर और मुर्गे की तरह धीरे २ चलती है।
४-वायुपित्त की नाड़ी—सांप की तरह टेड़ी तथा मेंडक की तरह क़दकती हुई चलती है।

५-वातकफ की नाड़ी-सांपकी तरह टेडी तथा हंस की तरह बीरे २ वलती है। ६-पित्तकफ की नाड़ी-कौएकी तरह कूदती तथा मोर की तरह मंद चलती है।

असिपात की नाड़ी जिम्ही वहरने की करवत की तरह वा तीतर पक्षी की तरह चलती र अटक जाती है, फिर चलती है फिर अटकती है, अथवा दो तीन कुदके नार कर फिर अटक जाती है, इस प्रकार त्रिदोष (सिन्नपात) की नाड़ी विचित्र होती है।

विशेष विवरण—१-धीमी पढ़ कर फिर सरसर (शीघ २) चळने छगे उस नाड़ी को दो दोगों की जाने। २-जो नाड़ी अपना स्थान छोड़ दे, जो नाड़ी उदर २ कर चळे, जो नाड़ी बहुत क्षीण हो तथा जो नाड़ी बहुत ठंढी पढ़ जावे, यह चार तरह की नाड़ी प्राणघातक है। २-जुलार की नाड़ी गर्म होती है तथा बहुत जरूद चळती है। ४-कामातुर और कोघातुर की नाड़ी प्राणघातक है। ६-जिस का खून विगड़ा हो उस की नाड़ी गर्म तथा परवर नाड़ी जरूदी चळती है। ६-जिस का खून विगड़ा हो उस की नाड़ी गर्म तथा परवर के समान जड़ और भारी होती है। ७-जाम के दोव की नाड़ी बहुत मारी चळती है ८-मन्दाशि धातुक्षीणा और नींद से युक्त तथा नींद से तुरत उठे हुए आळती और युक्ती, इन सन की नाड़ी और चळती है। १०-अतिक्षुधायुक्त की नाड़ी चंचळ चळती है। ११-जिसके स्थर चळती है। १०-अतिक्षुधायुक्त की नाड़ी चंचळ चळती है। ११-जिसके बहुत दक्त छगते हों उस की नाड़ी बहुत जरूदी चळती है। ११-जोजन के वाद नाई बहुत दक्त छगते हों उस की नाड़ी इट २ कर चळे, क्षण में धीमी तथा क्षण में जरूदी धीमी चळती है। ११-जो नाड़ी इट २ कर चळे, क्षण में धीमी तथा क्षण में जरूदी चळे, बहुत जरूदी चळे, छछड़ के समान करड़ी, स्थिर और टेडी चळे बहुत गर्म चळे तथा अपने ठिकाने पर चळती २ बन्द हो जाने, थे सब तरह की नाडियां प्राणनागके तथा अपने ठिकाने पर चळती २ बन्द हो जाने, थे सब तरह की नाडियां प्राणनागके तथा अपने ठिकाने पर चळती २ बन्द हो जाने, थे सब तरह की नाडियां प्राणनागके विन्द को दिखानेवाळी हैं॥

डाक्टरों के मत से नाड़ीपरीक्षा—हमारे बहुत से देशी मनुष्य तथा मोले वैद्यजन ऐसा कहते हैं कि—"डाक्टर लोगों को नाड़ी का ज्ञान नहीं होता है और वे नाड़ी को देखते मी नहीं हैं" इत्यादि, सो उन का यह कथन केवल मूर्खता का है, क्योंकि डाक्टर लोग नाड़ी को देखते है तथा नाड़ीपरीक्षा पर ही अनेक बातों का आधार समझते है, जिस तरह से बहुत से तबीव नाड़ीपरीक्षा में बहुत गहरे उतरते है (बहुत अनुमवी होते हैं) और नाड़ी पर ही बहुत सा आधार रख नाड़ीपरीक्षा के अनुमव से अनेक बातें कह देते हैं और उन की वे बातें मिल जाती हैं तथा जैसे देशी वैद्य जुदे २ वेगों की—नाड़ी के बायु की पित्त की कफ की और त्रिदोप की इत्यादि नाम रखते है, इसी तरह डाक्टरी परीक्षा में जल्दी, बीमी, मरी, इलकी, सख्त, अनि-यमित और अन्तरिया, इत्यादि नाम रक्से गये है तथा जुदे २ रोगों में जो जुदी २ नाड़ी चळती है उस की परीक्षा भी वे लोग करते है, जिस का वर्णन संक्षेप से इस प्रकार है:—

- १-जल्दी नाड़ी—नीरोगस्थित में नाड़ी के वेग का परिमाण पूर्व लिख चुके है, नीरोग व्यादमी की दृढ अवस्था की नाड़ी की चाल ७५ से ८५ वारतक होती है, परन्तु बीमारी में वह चाल वह कर १०० से १५० वारतक हो जाती है, इस तरह नाड़ी का वेग बहुत वढ़ जाता है, इस को जल्दी नाड़ी कहते है, यह नाड़ी क्षयरोग, व्ह का लगना और दूसरी अनेक प्रकार की निर्वलताओं में चलती है, झड़पनाली नाड़ी के संग ख़दय का धवकारा बहुत नोर से चलता है और नाड़ी की चाल हदय के धवकारों पर ही विशेष आधार रखती है, इस लिये क्यों र नाड़ी की चाल जल्दी र होती जाती है त्यों र रोग का नोर बहुत बढ़ता जाता है और रोगी का हाल विगड़ता जाता है, बुखार की नाड़ी भी जल्दी होती है तथा ज्वरार्च (ज्वर से पीड़ित) रोगी का अंग गर्म रहता है, एवं सादा बुखार, आन्तरिक ज्वर, सिलागत ज्वर, सांघों का सख्त वर्द, सख्त खांसी, क्षय, मगज़; फेफसा; इदय; होजरी और आंतें आदि मर्म स्थानों का शोय, सख्त मरोड़ा, कलेंचे का पकना, आंख तथा कान का पकना, ममेह और सख्त गर्मी की टांकी आदि रोगों की दशा में भी जल्दी नाडी ही देखी वाती है।
- २-धीमी नाड़ी—नीरोगावस्था में जैसी नाड़ी चाहिये उस की अपेक्षा मन्द चाल से चलनेवाली नाड़ी को धीमी नाड़ी कहते है, जैसे—ठंद, श्रान्ति, क्षुघा, दिलगीरी, उदासी, मगज़ की कई एक वीमारियां (जैसे मिरगी वेशुद्धि आदि) और तमाम रोगों की अन्तिम दशा में नाड़ी वहुत धीमी चलती है।

- २-मरी नाड़ी—जिस प्रकार नाड़ीपरीक्षा में अंगुलियों को नाड़ी का वेग अर्थात् चाल माल्स देती है उसी प्रकार नाड़ी का वज़न अथवा कद भी माल्स होता है, यह वज़न अथवा कद जब आवश्यकता से अधिक बढ़ जाता है तब उस को भरी नाड़ी अथवा बड़ी नाड़ी कहते हैं, जैसे-सून के भराव में, पौरुष की दशा में, बुखार में तथा वरम में वाड़ी मरी हुई माल्स देती है, इस मरीहुई नाड़ी से ऐसी हालत माल्स होती है कि अरीर में खून पूरा और बहुत है, जिस प्रकार नदी में अधिक पानी के आने से पानी का जोर बढ़ता है उसी प्रकार खून के भराव से नाड़ी भरीहुई लगती है।
- 8- इलकी नाड़ी— थोड़े खूनवाली नाड़ी को छोटी या हलकी कहते हैं, क्योंकि लंगुलि के नीचे ऐसी नाड़ी का कद पतला नर्थात् हल्का लगता है, जिन रोगों में किसी द्वार से खून बहुत चला गया हो या जाता हो ऐसे रोगों में, बहुत से पुराने रोगों में, हैं जे में तथा रोग के जाने के बाद निर्वलता में नाड़ी पतली सी माल्स देती है, इस नाड़ी से ऐसा माल्स हो जाता है कि इस के शरीर में खून कम है या बहुत कम हो गया है, क्योंकि नाड़ी की गित का मुख्य आधार खून ही है, इस लिथे खून के ही बज़न से नाड़ी के 2 वर्ग किये जाते हैं—गरीहुई, मध्यम, छोटी वा पतली और बेमाल्स, खून के विशेष जोर में मरीहुई, मध्यम खून में मध्यम तथा थोड़े खून में छोटी वा पतली नाड़ी होती है, एवं हैने के रोग में खून बिलकुल नष्ट होकर नाड़ी अंगुली के नीचे कठिनता से माल्स पड़ती है उस को बेमाल्स नाड़ी कहते हैं।
- '- सक्त नाड़ी जिस घोरी नस में होकर खून बहता है उस के भीतरी पड़दे की तांतों में संकुचित होने की काकि अधिक हो जाती है, इस लिये नाड़ी सलत चलती है, परन्तु जब वही संकुचित होने की काकि कम हो जाती है तब नाड़ी नरम चलती है, इन दोनों की परीक्षा इस मकार से है कि नाड़ीपर तीन अंगुलियों को रख कर अपर की (तीसरी) अंगुलि से नाड़ी को दबाते समय यदि बाकी की (तीचे की) दो अंगुलियों को घड़का लगे तो समझना चाहिये कि नाड़ी सल्त है और दोनों अंगुलियों को घड़का न लगे तो नाड़ी को तरम समझना चाहिये।
- ६—अनियमित नाड़ी—नाड़ी की परिमाण के अनुकूछ चाछ में यदि उस के दो ठनकों के बीच में एक सदश समयविगाग चछा आवे तो उसे नियमित नाड़ी (कायदे के अनुसार चछनेवाळी नाड़ी) जानना चाहिये, परन्तु जिस समय कोई रोग हो और नाड़ी नियमविरुद्ध (बेकायदे) चछे अर्थात् समय विमाग ठीक न चछता हो (एक ठनका जल्दी आवे और दूसरा अधिक देरतक ठहर कर आवे) उस नाड़ी को अनियमित नाड़ी समझना चाहिये, जब ऐसी (अनियमित) नाड़ी चळती है तय

प्रायः इतने रोगों की शंका होती है—हृदय का दर्द, फेफसे का रोग, मगज़ का रोग, सिलपातज्वर, खुवा रोग और श्वरीर का अत्यन्त सड़ना, इस नाड़ी से उक्त रोगों के सिवाय अन्य भी कई प्रकार के अत्यन्त मयंकर स्थितिवाले रोगों की सम्मावना रहती है।

७-अन्तरिया नाड़ी-विस नाड़ी के दो तीन ठनके होकर वीच में एकाघ ठनके जितनी नागा पढ़े अर्थात् ठनका ही न लगे, फिर एकदम दो तीन ठनके होकर पूर्ववत् (पहिले की तरह) नाड़ी बंद पड़ जाने और फिर नारंनार यही न्यवस्था होती रहे वह अन्तरिया नाड़ी कहलाती है, जन हृदय की बीमारी में खून ठीक रीति से नहीं फिरता है तब बड़ी घोरी नस चौड़ी हो जाती है और मगन का कोई भाग विगड़ जाता है तब ऐसी नाड़ी चलती है॥

डाक्टर छोग प्रायः नाड़ी की परीक्षा में तीन वार्तों को ध्यान में रखते हैं वे ये हैं— १--नाड़ी की चाळ जल्दी है या भीमी है। २- नाड़ी का कद बड़ा है या छोटा है। १--नाड़ी सख्त है या नरम है।

खूनवाले जोरावर आदमी के बुखार में, मगज के शोध में कलें के रोग में और गाँठियावायु आदि रोगों में जल्दी, वहुत वड़ी और सख्त नाड़ी देखने में आती है, ऐसी नाड़ी यदि बहुत देरतक चलती रहे तो जान को जोखम आ जाती है, जब बुखार के रोग में ऐसी नाड़ी बहुत दिनेंतक चलती है तब रोगी के बचने की आशा थोड़ी रहती है, हां यदि नाड़ी की चाल बीरे २ कम पड़ती जावे तो रोगी के युघरने की आशा रहती है, मायः यह देखा गया है कि—फश्त खोलने से, जोंक लगाने से, अथवा अपने आप ही खून का राखा होकर जब बड़ा हुआ खून निकल जाता है तो नाड़ी युघर जाती है, निर्वल आदमी को जब बुखार आता है अथवा शरीरपर किसी जगह स्वजन आ जाती है तब जतावली छोटी और नरम नाड़ी चलती है, जब खून कम होता है, आंतों में शोय होता है तथा पेट के पढ़दे पर शोथ होता है तब बल्दी छोटी और सख्त नाड़ी चलती है, यह नाड़ी यछपि छोटी तथा महीन होती है परन्तु बहुत ही सख्त होती है, यहांतक कि अंगुलि को तार के समान महीन और करड़ी लगती है, ऐसी नाड़ी भी खून का जोर बतलाती है।

नाडी के विषय में लोगों का विचार—केवल नाड़ी के देखने से सब रोगों की सम्पूर्ण परीक्षा हो सकती है ऐसा जो लोगों के मनों में हह से ज्यादा विश्वास जम गया है उस से वे लोग प्रायः ठगाये जाते हैं, क्योंकि नाड़ी के विषय में झूंठा फांका मारने-वाले घूर्त वैद्य और हकीम अज्ञानी लोगों को अपने वचनजाल में फंसाकर उन्हें मन माना ठगते है, इन घूरोंने यहांतक लीला फैलाई है कि जिस से नाड़ीपरीक्षा के विषय

में अनेक अद्गुत और असम्मन नार्ते मायः धुनी जाती हैं, जैसे-हाय में कचे सूत का तागा बांधकर सब हाल कह देना इत्यादि, ऐसी बातों में सत्य किञ्चिन्मात्र भी नहीं होता है किन्तु केवल झूठ ही होता है, इस लिये धुननों को उचित है कि घूतों के बनावटी जाल से बचकर नाड़ीपरीक्षा के बबार्थ तत्त्व को समझें।

इस अन्य में जो नाड़ीपरीक्षा का निवरण किया है वह नाड़ीज्ञान के सक्षे अमिला-पियों और अम्यासियों के लिये बहुत उपयोगी है, क्योंकि इस अन्य में किये हुए निवरण के अनुसार कुछ समयतक अम्यास और अनुमव होने से नाड़ीपरीक्षा के स्रुम निचार और रोगपरीक्षा की बहुत सी आवस्थक कूंनियां मी मिल सकती हैं, इस लिये निद्धानों की लिसीहुई नाड़ीपरीक्षा अथवा उन्हीं के सिद्धान्त के अनुकूल इस अन्य में विधानों की लिसीहुई नाड़ीपरीक्षा अथवा उन्हीं के सिद्धान्त के अनुकूल इस अन्य में विधानों की लिसीहुई नाड़ीपरीक्षा अथवा उन्हीं के सिद्धान्त के अनुकूल इस अन्य में विधानों की लिसीहुई नाड़ीपरीक्षा करना चाहिये किन्तु नाड़ीपरीक्षा के निषय में जो धूर्तों ने अस्यन्त झूंटी बातें प्रसिद्ध कर रक्सी है उनपर निल्कुल ध्यान नहीं देना चाहिये, देसो! घूर्तों ने नाड़ीपरीक्षा के विषय में कैसी २ मिथ्या वार्ते प्रसिद्ध कर रक्सी हैं कि रोगी ने छः महीने पहिले अमुक साग साबा या, कल अमुक ने ये २ चीजें साई थीं, इत्यादि, कहिये ये सब गप्पें नहीं तो और क्या हैं ?

बहुत से हकीमसाहवों ने और वैद्धों ने नाड़ी की हह से ज्यादा महिमा वज़ रक्सी है तथा असन्मव और घड़ीहुई गप्पों को लोगों के दिलों में जमा दी है, ऐसे मोले लोगों का जब कभी डाक्टरी चिकित्साके द्वारा रोग का मिटना कठिन होता है अथवा देरी लगती है तब वे मूर्ख लोग डाक्टरों की वेक्क्रकी को प्रकट करने लगते है जैर कहते हैं कि-"डाक्टरों को नाड़ीपरीक्षा का ज्ञान नहीं है" पीछे वे लोग देशी वैस के पास जाकर कहते है कि-"हमारी नाड़ी को देखो, हमारे करीर में क्या रोग है, हम ्र वैद्य उसी को समझते हैं कि-जो नाड़ी देखकर रोग को वतका देवे17 ऐसी दक्षा में जो भ्रत्यवादी वैद्य होता है वह तो सत्य २ कह देता है कि-"माहयो! नाड़ीपरीक्षा से तुम्हेरी प्रकृति की कुछ वातों को तो हम समझ ढेंगे परन्तु तुम अपनी अन्वल से आसि-रतक जी २ हकीकृत बीती है और बो हकीकृत है वह सब साफ २ कह दो कि किस कारण से रोग हुआ है, रोग कितने दिनों का हुआ है, क्या २ दवा ठी यी और क्या २ पथ्य सायारिया था, क्योंकि तुम्हारा यह सब हाल विदित होने से हम रोग की परीक्षा कर संकेंगे¹⁷ यद्यपि विद्वान् तथा चतुर वैद्य नाड़ी को देखकर रोगी के शरीर की खिति का बहुत कुछ अनुमान तो लगं कर सकते है तथा वह अनुमान प्रायः सचा मी निकलता है तथापि ने (निद्वान नैच) नाड़ीपरीक्षा पर सतिशय श्रद्धा रखनेनाले अज्ञान होगों के सामने अपनी भीक्षा देकर आपनी कीमैत नहीं करना चाहते हैं, परन्तु

१-अर्थात् केवल नाष्ट्री देखकर शन श्रुतान्त कह कर ॥ - २-कीमत सर्थात् वेष्ट्री ॥

ऐसे मोले तथा नाड़ीपरीक्षापर ही परम श्रद्धा रखनेवाले जब किन्हीं घूर्त चालाक और पालण्डी वैद्यों के पास जाते है तो वे (वैद्य) नाड़ी देखकर बड़ा आढम्बर रचकर दो बातें बायु की दो बातें पित्त की तथा दो बातें कफ की कह कर और पांचें पचीस बातों की गप्पें इधर उधर की हकाँलते है, उस समय उनकी बातों में से थोड़ी बहुत बातें रोगी के बीतेहुए अहबाँलों से मिल ही जाती है तब वे मोले अज्ञान तथा अत्यन्त श्रद्धा रखनेवाले वेचारे रोगीजन उन उगों से अत्यन्त उगाते है और मन में यह जानते है कि—संसार मर में इन के जोड़े की कोई हकीम नहीं है, बस इस प्रकार वे विद्वान वैद्यों और डाक्टरोंको छोड़कर ढोंगी तथा चूर्त वैद्यों के जाल में फँस जाते हैं।

प्रिय पाठकगण! ऐसे घूर्त वैद्यों से बचो! यदि कोई बैच द्वम्हारे सामने ऐसा घमण्ड करे कि—मै नाड़ी को देखकर रोग को बतला सकता हूँ तो उस की परीक्षा पहिले द्वम ही कर डालो, बस उस का घमण्ड उतर जावेगा, उस की परीक्षा सहज में ही इस प्रकार हो सकती है कि—पांच सात आदमी इकट्टे हो जाओ, उन में से आधे मनुष्य जीमलो (मोजन करलो) तथा आपे मूले रहो, फिर घमण्डी बैच को अपने मकान पर जुलाबो चाहे द्वम ही उस के मकान पर जाओ और उस से कहो कि—हम लोगों में जीमे हुए कितने है और मूले कितने है इस बात को आप नाड़ी देखकर बताइये, बस इस विषय में वह कुछ भी न कह सकेगा और द्वम को उस की परीक्षा हो जावेगी अर्थात द्वम को यह विदित हो जावेगा कि जब यह नाड़ी को देखकर एक मोटी सी इस बात को नहीं बता सका तो फिर रोग की सूक्ष्म बातों को क्या वतला सकता है!

वड़े ही शोक का विषय है कि—वर्तमान समय में वैद्यों की योग्यता और अयोग्यता तथा उन की परीक्षा के विषयमें कुछ मी ध्यान नहीं दिया जाता है, गरीबों और साधा-रण छोगों की तो क्या कहें आजकल के अज्ञान भाग्यवान् छोग भी विद्वान् और मूर्ल वैद्य की परीक्षा करनेनाले वहुत ही थोड़े (आटे में नमक के समान) दिखलाई देते है, इस लिये सर्व साधारण को उचित है कि—नाड़ीपरीक्षा के यथार्थतत्त्व को समझें और उसी के अनुसार वर्ताव करें, मूर्ल वैद्यों पर से श्रद्धा को हटावें तथा उन के मिथ्याजाल में न फॅसें, नाड़ी देखने का जो कायदा हमने आर्यवेद्यक तथा डाक्टरी

१-पाच पचीस अर्थात् बहुतसी ॥

२-इकालते हैं अर्थात् हाकते है ॥

३-अहवालों अर्थात् इकीकतों यानी हालों ॥

४-जोडे का अर्थात वरावरी का ॥

५-गयि एक विद्वान् अनुमवी वैद्य जिस पुरुषकी नाढी पहिले भी देखी हो उस पुरुषकी नाढ़ी को देखकर उक्त वात को अच्छे प्रकार से वतला सकता है क्योंकि पहिले लिख चुके हैं कि भोजन करने के बाद नाढ़ी का नेग बढ़ता है हसादि, परन्तु वूर्त और मूर्ख वैद्य को इन बातों की खबर कहाँ ॥

मत से लिखा है उसे वाचकहृन्द अच्छीतरह समझें तथा इस बात का निश्चय करलें कि रोग पेट में है, शिर में है, नाक में है, वा कान में है, हत्यादि बातें पूर्णतया नाड़ी के देखने से कभी नहीं माख्य पड़ सकती हैं, हां वेशक अनुमवी चिकित्सक रोगी की नाड़ी, चेहरा, खांख, चेष्टा और बात चीत आदि से रोगी की बहुत कुछ हक्षीकत को जान सकता है तथा रोगी की विशेष हकीकत को छुने विना भी बाहरी जांच से रोगी का मुख्य खख्प कह सकता है परन्तु इस से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि वैध ने सब परीक्षा नाड़ी के द्वारा ही कर ली है और हमेशा नाड़ीपरीक्षा सची ही होती है, जो लोग नाड़ीपरीक्षा पर हहसे ज्यादा विश्वास रखकर ठगाते हैं उन से हमारा इतना ही कहना है कि केवल (एकमात्र) नाड़ीपरीक्षा से रोग का कभी आजतक न तो निश्चय हुआ न होगा और न हो सकता है, इस लिये विद्वान, वैध वा डाक्टरपर पूर्ण विश्वास रखकर उनकी यशार्थ आज्ञा को मानना चाहिये।

यह भी स्मरण रहे कि बहुत से वैद्य और डाक्टर लोग रोगी की प्रकृति पर बहुत ही बोड़ा खयाल करते हैं किन्तु रोग के बाहरी चिह्न और हकीकत पर विशेष आघार रख कर इलाज किया करते हैं, परन्तु इसतरह रोगी का अच्छा होना कठिन है, क्योंकि कोई रोगी ऐसे होते है कि वे अपने शरीर की पूरी हकीकत खुद नहीं जानते और इसी लिये वे उसे बतला भी नहीं सकते हैं, फिर देखों ! अचेतना और सिनपात जैसे महा मयंकर रोगों में, एवं उन्माद, मुच्छी और सृगी आदि रोगों में रोगी के कहेहुए लक्षणों से रोग की पूरी हकीकत कभी नहीं माळम हो सकती है, उस समय में नाड़ीपरीक्षा पर विशेष आधार रखना पड़ता है तथा रोगी की मक्कतिपर इकाज का बहुत आश्रय (आसरा) केना होता है और प्रकृति की परीक्षा मी नाड़ी आदि के द्वारा अनेक प्रकार से होती है, डाक्टर छोग जो सुँगछी छेकर इदय का घड़का देखते है वह भी नाड़ी-परीक्षा ही है क्योंकि हाथ के पहुँचे पर नाड़ी का जो ठबका है वह हृदय का बड़का और खून के प्रवाह का जाखिरी घड़का है, खरीर में जिस २ जगह घोरी नस में खून उछलता है वहां २ अंगुलि के रखने से नाड़ीपरीक्षा हो सकती है, परन्तु जब खून के फिरने में कुछ मी फर्क होता है तब पहिली घोरी नसों के अन्त माग को खून का पोषण मिलना बंद होता है, अन्य सब नाड़ियों को छोड़ कर हाथ के पहुँचे की नाड़ी की ही जो परीक्षा की जाती है उस का हेतु यह है कि-हाथ की बो नाड़ी है वह घोरी नस का किनारा है, इस किये पहुँचे पर की नाड़ी का घवकारा अंगुलि को स्पष्ट माळस देता है, इस लिये ही इसारे पूर्वीचार्यों ने नाड़ीपरीक्षा करने के लिये पहुँचे पर की नाड़ी की ठीक २ जगह ठहराई है, पैरों में गिरिये के पास भी बही नाड़ी देखी जाती है क्योंकि वहां भी घोरी नस का किनारा है, (प्रश्न) खी की नाड़ी वार्ये हाय की देखते है और

पुरुष की नाड़ी दिहिने हाथ की देखते हैं, इस का क्या कारण है ! (उत्तर) धर्मशास्त्र तथा निमित्तादि शास्त्रों में प्ररुष का दहिना अंग और स्त्री का बांयां अंग मुख्य माना गया है, अर्थात् निमित्तशास्त्र सामुद्रिक में उत्तम पुरुष और स्त्री के जो २ रुक्षण लिसे है उन में स्पष्ट कहा है कि-पुरुष के दिहने अंग में और स्नी के वांगें अंग में रुक्षणों को देखना चाहिये, इसी प्रकार जो २ अंग प्रस्फुरण (अंगों का फड़कना) आदि अंग सम्बन्धी शक़न माने गये है वे पुरुष के दहिने अंग के तथा स्त्री के वांगें अंग के गिने जाते हैं, तारपर्य यह है कि रुक्षण आदि सब ही बातों में पुरुष से स्त्री में ठीक विपरीतता मानी जाती है, इसी लिये संस्कृत भाषा में श्री का नाम वामा है, अतः पुरुष का दहिना अंग प्रधान है और श्री का बांयां अंग प्रधान है. इस लिये पुरुष के दिहने हाथ की और श्री की बांबें हाथ की नाही देखने की रीति है, बाकी तो दोनों हाथों में घोरी नस का िकनारा है और वैद्यक आस में दोनों हाथों की नाड़ी देखना लिखा है। (प्रश्न) हम ने बहुत से वैद्यों के सुख से सुना है कि-नाभिस्थान में बहुत सी नाड़ियों का एक गुच्छा कल्लुए के आकार का बना हुआ है, वह पुरुष के झुळटा (सीधा) और स्त्री के उलटा मुख कर के रहता है इस लिये पुरुष के दिहने हाथ की और सी के वांये हाथ की नाड़ी देखी जाती है। (उत्तर) इस नात की चर्ची मासिकपत्रों में अनेक नार छप ज़की है तथा इस वात का निश्चय हो ज़ुका है कि-नाभिस्थान में नाड़ियों का कोई गुच्छा नहीं है, इस के सिवाय डाक्टर लोग (जो कि शरीर को चीरने फाडने का काम करते हैं तथा शरीर की रग रग से पूरे विज्ञ (वाकिफ) है) कहते है कि-"यह बात विरुक्तल गलत है" मला कहिये कि ऐसी दशा में नामिस्थान में नसों के गुच्छे का होना कैसे माना जा सकता है ! इस छिये बुद्धिमानों को अब इस असत्य बात को छोड देना चाहिये, क्योंकि प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है'॥

त्वचापरीक्षा—त्वचा के स्पर्श से शरीर की गर्मी शर्दी तथा पसीने आदि की परीक्षा होती है, इस का संक्षेप से बर्णन इस प्रकार है—

१—दोष युक्त चमड़ी—वायुरोगवाले की चमड़ी ठंढी, पिचरोगवाले की गर्म और कफरोगवाले की गीगी होती है, यद्यपि यह नियम सर्वत्र नहीं होता है तथापि प्रायः ये (ऊपर लिखे) लक्षण होते है ।

२-गर्भ चमड़ी-पित्र और सन प्रकार के बुखारों में चमड़ी गर्म होती है, चमड़ी की उज्जाता से भी बुखार की गर्मी माळ्स हो जाती है परन्तु अन्तर्वेगी (जिस का वेग मीतर ही हो ऐसे) ज्वर में बुखार अन्दर ही होता है इस लिये वाहर की चमड़ी बहुत गर्म नहीं होती है किन्तु साधारण होती है, इस अवस्था (दशा)

१-'प्रसद्धे किम्प्रमाणम्' इति न्यायात् ॥

में चमड़ी की परीक्षा में वैद्य छोग प्रायः घोखा खा जाते हैं, ऐसे अवसर पर नाड़ीपरीक्षा के द्वारा अथवा अर्भागेटर के द्वारा अन्तर (अन्दर) की गर्मी जानी जा सकती है, कभी र ऐसा भी होता है कि ऊपर से तो चमड़ी जलती हुई तथा बुखार सा माद्धम देता है परन्तु अन्दर बुखार नहीं होता है।

- १—ठंढी चमड़ी—बहुत से रोगों में श्वरीर की चमड़ी ठंढी पड़ जाती है, जैसे— बुखार के उतर जाने के बाद निर्वछता (नाताकती) में, दूसरी बीमारियों से उत्पन्न हुई निर्वछता में, हैने में तथा बहुत से पुराने रोगों में चमड़ी ठंढी पड़ जाती है, जब कमी किसी सख्त बीमारी में श्वरीर ठंढा पड़ जाने तो पूरी जो-खम (ख़तरा)समझनी चाहिये।
- ४—सूखी चमड़ी—चमड़ी के छेदों में से सदा पसीना निकलता रहता है उस से चमड़ी नरम रहती है परन्तु जब कईएक रोगों में पसीना निकलना बंद हो बाता है तब चमड़ी सुखी और खरखरी हो जाती है, बुखार के प्रारम्म में पसीना निकलना बनद हो जाता है इस लिये बुखारबाले की तथा बादी के रोगवाले की चमड़ी सुखी होती है।
- ५—भीगी चमड़ी—आवश्यकता से अधिक पसीना आने से चमड़ी मीगी रहती है, इस के सिवाय कई एक रोगों में भी चमड़ी ठंढी और मीगी रहती है और ऐसे रोगों में रोगी को पूरा डर रहता है, बैसे—सन्ध्वात (गॅठिया) में चमड़ी गर्म और भीगी रहती है तथा है ज़े में ठंढी और भीगी रहती है, निर्वछतामें बहुत ठंढा और मीगा अंग जोखम को जाहिर करता है, यदि कभी रातको पसीना हो, चमड़ी भीगी रहे और निर्वछता (नाताकती) बढती जावे तो क्षयके चिन्ह समझ्कर जल्दी ही सावधान हो जाना चाहिये।

थमीमेटर — शरीर में कितनी गर्मी है, इस वात का ठीक माप थर्मामेटर से ही सकता है, धर्मामेंटर काच की नली में नीचे पारे से मराहुआ गोल पपोटा (काच का गोल वस्त) होता है, इस पारेवाले वस्त को मुँह में जीम के नीचे वा बगल में पांच मिनटतक रस कर पीले वाहर निकाल कर देखते है, उस के अन्दर का पारा शरीर की गर्मी से ऊपर चड़ता है तथा सर्दी से नीचे उतरता है, अच्छे तनदुरुत आदमी के शरीर की गर्मी साधारणतया ९८ से १०० हिजी के बीच में रहती है, चहुतों के शरीर में मध्यम गर्मी ९८ से ९९ होती है और बाहर की गर्मी अथवा परिश्रम से उस में कुछ २ बढ़ोतरी (बृद्धि) होती है तब पारा १०० तक चढ़ता है, नीद में और सम्पूर्ण शान्ति के समयों में एकाध हिजी गर्मी कम होती है, रोग में शरीर की गर्मी विशेष चढ़ाव और उतार करती है और अरीर की सामाविक गर्मी से पारा अधिक उतर जाता

है वा चढ़ जाता है, सादे बुखार में वह पारा १०१ से १०२ तक चढता है, सख्त बुलार में १०४ तक चढता है और अधिक मयंकर बुलारमें १०५ से छेकर आखिरकार १०६३ तक चढ़ता है, श्ररीर के किसी मर्मस्थान में शोय (सूजन) और दाह होता है तब बुखार की गर्मी बढकर १०८ तक अथवा इस से भी कपर चढ जाती है, ऐसे समय में रोगी प्राय: बचता नहीं है, खामाविक गर्मी से दो डिग्री गर्मी वढ जाती है और उस से जितना सय होता है उस की अपेक्षा एक डिग्री मी गर्मी जन कम हो जाती है उस में अधिक भय रहता है, हैचे में जब शरीर अन्त में ठंढा पड जाता है तब शरीर की गर्मी घट कर अन्त में ७७ डिग्री पर जाकर ठहरती है, उस समय रोगी का बचना कठिन हो जाता है, जनतक १०४ हिमी के अन्दर बुलार होता है वहाँतक तो हर नहीं है परन्त उस के आगे जब गर्मी बढ़ती है तब यह समझ लिया जाता है कि रोग ने भयकर रूप धारण कर लिया है, ऐसा समझ कर बहुत जरुदी उस का उचित इलाज करना चाहिये. क्योंकि साधारण दवा से आराम नहीं हो सकता है. इस में गफलत करने से रोगी मर जाता है, जब खामाविक गर्मी से एक डिग्री गर्मी बढ़ती है तव नाही के खामाविक ठवकों से १० ठवके वह जाते है, वस नाही के ठवकों का यही क्रम समझता चाहिये कि एक दियी गर्मी के बढ़ने से नाही के दश दश दबके बढ़ते है. अर्थात जिस आदमी की नाड़ी आरोग्यदशा में एक मिनट में ७५ ठवके खाती हो उस की नाही में एक हिप्री गर्मी बढ़ने से ८५ ठबके होते हैं तथा दो हिप्री गर्मी बढ़ने से बुखार में एक मिनट में ९५ बार धड़के होते हैं, इसी प्रकार एक एक डिग्री गर्मी के बढ़ने के साथ दश दश ठबके बढ़ते जाते है. जब बगल मीगी होती है अथवा हवा या जमीन मीगी होती है तब धर्मामेटर से शरीर की गर्मी ठीक रीति से नहीं जानी जा सकती है. इस छिये जब बग्रल में अमीमेटर लगाना हो तब वग्रल का पसीना पोंछ कर फिर बर्मामेटर लगाकर पांच मिनट तक दवाये रखना चाहिये. इस के वाद उसे निका-**छक्तर देखना चाहिये. जिस प्रकार बर्मोमेटर से शरीर की गर्मी प्रत्यक्ष दीखती है तथा** उसे सब छोग देख सकते है उस प्रकार नाड़ीपरीक्षा से शरीर की गर्मी प्रत्यक्ष नहीं दीलती है और न उसे हर एक पुरुष देख सकता है ॥

इस यन्त्र में वड़ी खूनी यह है कि-इस के द्वारा शरीर की गर्मी के जानने की किया को हर एक आदमी कर सकता है इसी लिये बहुत से माग्यवान् इस को अपने घरों में रखते हैं और जो नहीं रखते है उन को भी इसे अवस्थ रखना चाहिये ॥

⁹⁻प्रिय मित्रो ! देखो !! इस अन्य की बादि में हम विशा को सब से यह कर कह चुके हैं, सो आप छोग असक ही अपनी नजर से देख रहे हैं परन्तु शोक का विषय है कि-खाप छोग उस तरफ इन्छ भी ब्यान नहीं देते हैं, विशा के महत्त्व को देखिये कि वर्मागेटर की नजी में केवळ दो पैसे का सामान है, परन्तु बुद्धिसान् जीर विशाधर शुरोपियन अपनी विशा के गुण से उस का मूख्य पाय क्षये केते हैं, जिन्हों ने इस को निकाला था वे कोळ्यपिपति (करोड़पिट) हो गये, इसी लिये कहा जाता है कि-क्स्पी विशा की दासी है, श

स्टेथोस्कोप—इस यद्य से फेफसा, श्वास की नली, हृदय तथा पसिलयों में होती हुई क्रिया का बोध होता है, यद्यपि इस के द्वारा जिस प्रकार उक्त विषय का बोध होता है उस का वर्णन करना कुछ आवश्यक है परन्तु इस के द्वारा जांचने की क्रिया का ज्ञान ठीक रीति से अनुमनी डाक्टरों के पास रह कर सीखने से तथा अपनी बुद्धि के द्वारा उस का सब वर्षाव देखने ही से हो सकता है, इस लिये यहां उस के अधिक वर्णन करने की आवश्यकता नहीं समझी गई॥

द्र्शनपरीक्षा॥

आंख से देख कर जो रोगी की परीक्षा की जाती है उसे यहां दर्शनपरीक्षा के नाम से लिखी है, इस परीक्षा में जिह्वा, नेत्र, आकृति (नेहरा), त्वचा, मूत्र और मल की परीक्षा का समावेश समझना चाहिये, इन का संक्षेपतया कम से वर्णन किया जाता है:—

जिह्नापरीक्षा—जिह्ना की दशा से गले होजरी और आँतों की दशा का ज्ञान होता है, क्योंकि जिह्ना के ऊपर का बारीक पड़त गले होजरी और आँतों के मीतरी बारीक पड़त के साथ जुड़ा हुआ और एक सहश्च (एकरस अर्थात अत्यन्त) मिला हुआ है, इस के सिवाय जिह्नापरीक्षा के हारा दूसरे भी कई एक रोग जाने जा सकते है, क्योंकि जीम के गीलेपन रंग और ऊपरी मैल से रोगों की परीक्षा हो सकती है, आरोग्यदशा में जीम भीगी और अच्छी होती है तथा उस की अभी ऊपर से कुछ काल होती है, अब इस की परीक्षा के नियमों का कुछ वर्णन करते हैं:—

भीगी जीभ - अच्छी हालत में जीम थूक से मीगी रहती है परन्तु बुलार में जीम स्वने छगती है, इस लिये जब जीम मीगी हुई हो तो समझ छेना चाहिये कि बुलार नहीं है, इसी प्रकार हर एक रोग में जीम स्व कर जब फिर मीगनी शुरू हो जाने तो समझ छेना चाहिये कि रोग अच्छा होनेवाला है, यद्यपि रोग दशा में जल के पीने से एक बार तो जीम गीगि हो जाती है परन्तु जो बुलार

होता है तो तुरत ही फिर भी सूल जाती है। रि

सूखी जीम—बहुत से रोगों में आवश्यकता के अनुसार शरीर में रस उत्पन्न सूखी जीम—बहुत से रोगों में आवश्यकता के अनुसार शरीर में रस उत्पन्न नहीं होता है और रस की ब्रं दे से उसी कदर यूक मी ओड़ा पैदा होता है इस से जीम सूख जाती है और रो को भी जीम सूखी हुई माद्धम देती है, उस समय रोगी कहता है कि—मेरा सब मुँह सूख गया, इस मकार की जीम पर अंगुलि के लगाने से भी वह सूखी और करड़ी माद्धम पड़ती है, बुसार, शीतला, अंगुलि के लगाने से भी वह सूखी और करड़ी माद्धम पड़ती है, बुसार, शीतला, अंगुलि के लगाने से भी तमाम चेपी बुसारों में, होजरी तथा आँतों के रोगों में और यहत जोर के बुसार में जीम सूख जाती है अशीत ज्यों २ बुसार अधिक होता बहुत जोर के बुसार में जीम सूख जाती है अशीत ज्यों २ बुसार अधिक होता है हों रोगों में जीम सूख जाती है अशीत ज्यों २ बुसार अधिक होता है हों रोगों में जीम सूख जाती है अशीत ज्यों २ बुसार अधिक होता

लाल जिम-जीम की अनी तथा उस का किनारे का माग सदा कुछ लाल होता है परन्तु यदि सन जीम लाल हो जाने अथना उस का अधिक भाग लाल हो जाने तो शीतला, भुलपाक, मुँह का आना, पेट का शोथ तथा सोमल निष का खाना, इतने रोगों का अनुमान होता है, बुखार की दशा में भी जीम अनीपर तथा दोनों तरफ कोरपर अधिक लाल हो जाती है।

फीकी जिम — शरीर में से बहुत सा खून निकरुने के पीछे अथवा बुखार तिल्ली और इसी प्रकार की दूसरी नीमारियों में भी शरीर में से रक्तकणों के कम हो जाने से जैसे चेहरा तथा चमड़ी फीकी पढ़ जाती है उसी प्रकार जीम भी सफेद और फीकी पढ़ जाती है।

मेली जिम — कई रोगों में जीमपर सफेद अर का जाती है उसी को मैली जीम कहते है, बहुत सख्त बुखार में, सख्त सन्धिवात में, कलेजे के रोग में, मगज़ के रोग में और दस्त की कली में जीम मैली हो जाती है, इस दशा में जीम की अनी और दोनों तरफ की कोरों से जब जीम का मैल कम होना शुरू हो जावे तो समझ लेना चाहिये कि रोग कम होना शुरू हुआ है, परन्तु यदि जीम के पिछले भाग की तरफ से मैल की अर कम होना शुरू हो तो जानना चाहिये कि रोग धीरे २ घटेगा अभी उस के घटने का जारंग हुआ है, यदि जीम के जपर की अर जल्दी साफ हो जावे और जीम का वह माग लाल चिलकता हुआ और फटा हुआसा दीखे तो समझना चाहिये कि वीच में कोई स्थान सड़ा है वा उस में ज़खम हो गया है, क्योंकि जीम का इस प्रकार का परिवर्त्तन खरावी के चिहों को प्रकट करता है, बहुत दिनों के बुखार में जीम की अर भूरी अथवा तमालू के रंग की होती है और जीम के ऊपर बीच में चीरा पड़ता है वह भी बड़ी भयंकर बीमारी का चिह्न है, पित्त के रोग में जीम पर पीला मैल जमता है।

काली जीभ कई एक रोगों में जीम जामूनी रंग की (जामून के रंग के समान रंगवाली) या काले रंग की होती है, जैसे दम श्वास और फेफसे के साथ सम्बंध रखनेवाले खांसी मादि रोगों में जब श्वास लेने में अड़चल (दिक़त) पड़ती है तब खून ठीक रीति से साफ नहीं होता है इस से जीम काली झांखी अथवा आसमानी रंग की होती है, स्मरण रहे कि कई एक दूसरे रोगों में जब जीम काले रंग की होती है तब रोगी के बचने की आशा थोडी रहती है।

काँपती हुई जी म - सिन्नपात में, मगज़ के मयंकर रोग मै तथा दूसरे भी कई एक मयंकर वा सख्त रोगों में जीम काँपा करती है, यहाँ तक कि वह रोगी के

अधिकार (काबू) में नहीं रहती है अर्थात् वह उसे वाहर निकालता है तब भी वह काँपती है, इस प्रकार काँपती हुई जीम अत्यन्त निर्वलता और मय भी निशानी है।

सामान्यपरीक्षा-वहुत से रोगों की परीक्षा करने में जीम दर्पणक्रप है अर्थात जीम की मिन्न २ दशा ही सिन्न २ रोगों को स्चित कर देती है, जैसे-देखो! जीम पर सफ़ेद मैळ जमा हो तो पाचनशक्ति में गड़बड़ समझनी चाहिये, जो मोटी और सूबी हुई हो तथा दाँतों के नीचे आ जाने से जिस में दाँतों का चिह्न बन जाने ऐसी जीम होजरी तथा मगजतन्तुओं में दाह के होने पर होती है, जीम पर मीटा तथा पीछे रंग का मैल हो तो पित्तविकार जानना चाहिये, जीम मैं कालापन तथा भूरे रंग का पहत खराब बुखार के होने पर होता है, जीम पर सफेद मैळ का होना साघारण बुखार का चिह्न है, सूखी; मैलवाली; काली और काँपती हुई जीम इक्रीस दिनों की अविधवाले सर्यंकर सिन्नपातज्वर का चिह्न है, एक तरफ छोचा करती हुई जीम आधी जीम में बादी आने का चिह्न है, जब जीम बड़ी कठिनता तथा अत्यंत परिश्रम से बाहर निकले और रोगी की इच्छा के अनुसार अन्दर न जावे तो समझना चाहिये कि रोगी बहुत ही श्रक्तिहीन और दुर्दशापन (दुर्दशा को प्राप्त) हो गया है, बहुत मारी रोग हो और उस में फिर जीम कांपने लगे तो बड़ा डर समझना चाहिये, हैजा, होजरी और फेससे की बीमारी में जब जीम सीसे के रंग के समान झांखी दिखलाई देवे तो सराव चिह समझना चाहिये, यदि कुछ आसमानी रंग की जीम दिखलाई देवे तो समझना चाहिये कि खून की चाल में कुछ अवरोध (रुकावट) हुआ है, मुँह एक जावे और जीम सीसे के रंग के समान हो जावे तो वह मृत्यु के समीप होने का चिह्न है, वायु के दोव से बीम खरदरी फटी हुई तथा पीली होती है, पित्त के दोष से जीम कुछ २ लाल तथा कुछ काठी सी पढ़ जाती है, कफ के दोष से जीम सफेद भीगी हुई और नरम होती है, त्रिदोप से जीम कांटेवाळी और सूखी होती है तथा मृत्युकाळ की जीम खरखरी, अन्दर से वढी हुई, फेनवाली, लकड़ी के समान करड़ी और गतिरहित हो जाती है'।

नेश्चपरीक्षा रोगी के नेत्रों से मी रोग की परीक्षा होती है जिसका विवरण इस प्रकार है—वायु के दोष से नेत्र रूखे, निस्तेज, घूमवर्ण (घुएँ के समान धूसर रंगवाले), चझल तथा दाहवाले होते हैं, पित्त के दोष से नेत्र पीले, दाहवाले और दीपक आदि के तेज को न सह सकनेवाले होते हैं, कफ के दोष से नेत्र मीगे, सफेद, नरम, मन्द,

१-देशी वैद्यकशास्त्र की अपेक्षा यहा पर हम ने डाक्टरी मत्तानुसार निहापरीक्षा व्यविक विखार हे रिसी है ॥

निस्तेज, तन्द्रायुक्त, कृष्ण और जंड होते हैं, त्रिदोष (सविपात) के नेत्र भयंकर, लाल, कुछ काले और मिचे हुए होते हैं।

आकृतिपरीक्षा— आकृति (चेहरा) के देखने से भी बहुत से रोगों की परीक्षा हो सकती है, प्रातःकाल में रोगी की आकृति तेजरहित विचित्र और झांकने से काली दीखती हो तो वादी का रोग समझना चाहिये, यदि आकृति पीली मन्द और शोधयुक्त दीखे तो पिच का रोग समझना चाहिये, यदि आकृति मन्द और तेलिया (तेल के समान चिकनी) दीखे तो कफ का रोग समझना चाहिये, खामानिक नीरोगता की आकृति झान्त स्थिर और मुखयुक्त होती है, परन्तु जब रोग होता है तब रोग से आकृति फिर (बदल) जाती है तथा उस का खरूप तरह र का दीखता है, रात दिन के अभ्यासी वैद्य आकृति को देख कर ही रोग को पहिचान सकते है, परन्तु प्रत्येक वैद्य को इस (आकृति) के द्वारा रोग की पहिचान नहीं हो सकती है।

जाकृति की व्यवस्था का वर्णन संक्षेप से इस प्रकार है:---

- १-चिन्तायुक्त आकृति—सस्त बुसार में, बड़े भवंकर रोगों की प्रारम्भदशा में, हिचकी तथा सैचातान के रोगों में, दम तथा श्वास के रोग में, कठेजे और फेफसे के रोग में, इत्यादि कई एक रोगों में आकृति चिन्तायुक्त अथवा चिन्तातुर रहती है।
- २-फीकी आकृति महुत खून के जाने से, जीर्ण ज्वर से, तिल्ली की वीमारी से, बहुत निर्वलता से, बहुत चिन्ता से, मय से तथा मर्त्सना से, इत्यादि कई कारणों से खून के मीतरी ठाठ रजःकणों के कम हो जाने से आकृति फीकी हो जाती है, इसी प्रकार ऋतुवर्म में जब बी का अधिक खून जाता है अथवा जन्म से ही जो शक्तिहीन वांघेवाठी बी होती है उस का बाठक वारंबार दूध पीकर उस के खून को कम कर देता है और उस को पृष्टिकारक मोजन पूर्णतया नहीं मिळता है तो खियों की मी आकृति फीकी हो जाती है।
- र-लाल आकृति संख्त बुसार में, मगज़ के शोय में तथा द लगने पर लाल आकृति हो बाती है, अर्थात् आंखें खुन के समान लाल हो जाती है और गालों

१-जड अर्थात् क्रियारहित ॥

२-इसी विषय का वर्णन किसी बिद्वान ने दोहों में किया है, जो कि इस प्रकार है—वातनेत्र रखे रहे, धूमन रा विकार ॥ क्षमकें निह चन्नळ खुळे, काळे रा विकार ॥ १ ॥ पित्तनेत्र पीळे रहे, नीळे लाळ तेपह ॥ तस बूप निह दृष्टि दिक, ळक्षण ताके येह ॥ २ ॥ कफज नेत्र ज्योतीरहित, चिट्टे जळमर ताहि ॥ सारे बहुता हि प्रभा, मन्द दृष्टि दरसाहि ॥ ३ ॥ काळे खुळे जु मोह सों, ज्याकुळ अरु विकराल ॥ रूखे क्वाहुँ ठाळ हों, त्रेदोषल सममाल ॥ ४ ॥ तीन तीन तीपहि जहाँ, त्रेदोषल सो मान ॥ दो २ दोप लखे जहाँ, द्वाहुज तहाँ पिछान ॥ ५ ॥ इन दोहों का अर्थ सरल ही है इस ळिये नहीं लिखते हैं ॥

पर गुळानी रंग माख्म होता है तथा गाळ उपसे हुए माख्म होते हैं, नव आकृति ळाळ हो उस समय यह समझना चाहिये कि खून का शिर की तरफ तथा मगन् में अधिक जोश चढ़ा है।

४—फूली हुई आकृति—बहुत निर्वेखता जीर्णज्वर और जलोदर आदि रोगों में आकृति फूली हुई अर्थात् श्रेथरवाली होती है, आंख की ऊपर की जमड़ी चढ़ जाती है, गाल में अंगुलि के दबाने से गड्डा पड़ जाता है तथा आकृति स्वी हुई दीखती है।

५-अन्द्र खुड़ी बैठी हुई आकृति— जैसे वृक्ष की शासा के पत्ते तथा छिलकों के छीलने के बाद शासा सुड़ी हुई मास्त्र होती है इसी प्रकार कई एक मर्वकर रोगों की अन्तिम अवस्था में रोगी की आकृति वैसी ही हो जाती है, देखो ! है जे में सरने के समय जो आकृति बनती है वह प्रायः इसी प्रकार की होती है, इस दशा में छलाट में सल, आंख के डोले अन्दर मुसे हुए, आंख में गहुं पड़े हुए, नाक अनीदार, कनपटी के आंगे गहुं पड़े हुए, गाल बैठे हुए, हाड़ों पर सल पड़े हुए तथा आकृति का रंग आसमानी होता है, ऐसे लक्षण जय दिखलाई देने छगें तो समझ लेना चाहिये कि रोगी का जीना कठिन है ॥

स्वचापरीक्षा-- जैसे त्वचा के स्पर्शसे गर्मी और ठंढ की परीक्षा होती है उसी प्रकार त्वचा के रंग से तथा उस में निकली हुई कुछ चटों और गांठों जादि से शरीर के दोवों का कुछ अनुमान हो सकता है, जीतका ओरी और अचपड़ा (आकड़ा काकड़ा) आदि रोगों में पहिले बुखार जाता है उस बुखार को लोग बेसमझी से पहिले सादा बुखार समझ छेते हैं परन्तु फिर त्वचा का रंग कारू हो जाता है तथा उस पर महीन २ दाने निकल आते हैं वे ही उक्त रोगों की पहिचान करा सकते है इस लिये उन्हें अच्छी तरह से देखना चाहिये, यदि श्वरीर पर कोई स्थान ठारु हो अथवा कहीं पर सूजन हो तो उसे खून के ज़ोर से अथवा पित्त के विकार से समझना चाहिये, जिस की त्वचा का रंग काला पड़ता जावे उस के शरीर में वायु का दोष समझना चाहिये, जिस के श्वरीर का रंग पीछा पड़ता जाने उस के श्वरीर में पित्त का दोष समझना चाहिये, जिस के शरीर का रंग गोरा और सफेद पड़ता जावे उस के शरीर में कफ का दोष समझना चाहिये तथा जिस के शरीर की खचा का रंग विलकुल रूखा होकर अन्दर चीरा २ सा दिखाई देवे तो समझ छेचा चाहिये कि खून विगड़ गया है अथवा तप गया है, लोग इसे गर्मी कहते हैं, जब त्वचा तक खून नहीं पहुँचता है तन त्वचा गर्भ और रूखी पड़ जाती है, बदि त्वचा का रंग ताँवे के रंग के समान (तामड़ा) हो तो समझ छेना चाहिये कि रक्तपित्त तथा बातरक्त का रोग है, यदि खचा पर काले

चट्टे और धब्बे पड़ें तो समझ छेना चाहिये कि इस को ताज़ी और अच्छी ख़ुराक नहीं मिछी है इस छिये ख़ून विगड़ गया है, इसी तरह से एक प्रकार के चट्टे और विस्फोटक हों तो समझ छेना चाहिये कि इस को गर्मी का रोग है, हैज़े की निक्कष्ट वीमारी में त्वचा तथा नखों का रंग आसमानी और काछा पड़ जाता है और यही उस के मरने की निशानी है इस तरह त्वचा के द्वारा बहुत से रोगों की परीक्षा होती है।

मूत्रपरीक्षा—नीरोग आदमी के मूत्र का रंग ठीक सूखी हुई धास के रंग के समान होता है, अर्थात जिस तरह सूखी हुई धास न तो नीळी, न पीळी, न लाळ, न काळी और न सफेद रंग की होती है किन्तु उस में इन सब रंगों की छाया झळकती रहती है, बस उसी प्रकार का रंग नीरोग आदमी के मूत्र का समझना चाहिये, मूत्र के द्वारा भी बहुत से रोगों की परीक्षा हो सकती है, क्योंकि मूत्र खून में से छूट कर निकला हुआ निरुपयोगी (बिना उपयोग का) प्रवाही (बहनेवाला) पदार्थ है, क्योंकि खून को ग्रुद्ध करने के ळिये मूत्राशय मूत्र को खून में से खींच छेता है, परन्तु जब शरीर में कोई रोग होता है तब उस रोग के कारण खून का कुछ उपयोगी भाग भी मूत्र में जाता है इस लिये मूत्र के द्वारा भी बहुत से रोगों की परीक्षा हो सकती है, इस मूत्रपरीक्षा के विषय में इम यहां पर योगचिन्तामणिशास्त्र से तथा डाक्टरी प्रन्थों से डाक्टरों की अनुभव की हुई विशेष वातों के विवरणके द्वारा अष्टविष (आठ प्रकार की) परीक्षा लिखते है:—

१—वायुदोपवाले रोगी का मूत्र बहुत उतरता है और वह बादल के रंग के समान होता है।

२-िषचदोषवाळे रोगी का मूत्र कसूँमे के समान छाळ, अथवा केस्ळे के फूळ के रंग के समान पीळा, गर्म, तेळ के समान होता है तथा ओड़ा उतरता है।

२-फफ के रोगी का मूत्र तालाव के पानी के समान ठंडा, सफेद, फेनवाला तथा

- १-मिले हुए दोषोंवाला मूत्र मिलेहुए रंग का होता है।
- ५-सन्निपात रोग में मूत्र का रंग काला होता है।
- ६-खून के कोपवाला मूत्र चिकना गर्म और लाल होता है।
- ७-वातिपत्त के दोषवाका मूत्र गहरा छाठ अथवा किरमची रंग का तथा गर्भ होता है।

⁹⁻जैसे बातिषत्त के रोग में बादल के रंग के समान तथा खाल वा पीला होता है, बातकफ के रोग में बादल के रंग के समान तथा सफेद होता है तथा पितकफ के रोग में खाल वा पीला तथा सफेद रंग का होता है, इस का वर्णन नं॰ ७ से ८ तक सागे किया भी गया है॥

८—वातंकफ दोषवाछे का मूत्र सफेद तथा बुद्बुदाकार (बुरुबुले की शकर का) होता है।

९-कफपित्तवाले रोगी का मूत्र लाल होता है परन्तु गदल होता है।

१०-अजीर्ण रोगी का मुत्र चांवलों के वोवन के समान होता है।

११-नये बुखारवाले का सूत्र किरमची रंग का होता है तथा अधिक उतरता है।

१२—मूत्र करते समय यदि मूत्र की छाछ घार हो तो वड़ा रोग समझना चाहिये, काळी घार हो तो रोगी मर जाता है, मूत्र में वकरी के मूत्र के समान गन्ध आदे तो अजीर्ण रोग समझना चाहिये।

१२—मूत्रपरीक्षा के द्वारा रोग की साध्यासाध्यपरीक्षा—रोग साध्य (सहज में मिटनेवाला) है, लयवा कष्टसाध्य (किठनता से मिटनेवाला) है, लयवा जसाध्य (न मिटनेवाला) है, इस की संक्षेप से परीक्षा लिखते हैं—प्रातःकाल चार घड़ी के तड़के रोगी को उठाकर उस के मूत्र को एक काच के सफेद प्याले में लेना चाहिये परन्तु मूत्र की पहिली और पिछली धार नहीं लेनी चाहिये अर्थात् विचली (बीचकी) धार लेनी चाहिये तथा उस को स्थिर (विना हिलाये छलाये) रहने देना चाहिये, इस के बाद सूर्य की घूप में घण्टे भर तक उसे रख के पीछे उस में एक बास के तृण (विनके) से धीरे से तेल की बूंद डालनी चाहिये, यदि वह तेल की बूंद डालते ही मूत्रपर फैल जावे तो रोग को साध्य समझना चाहिये, यदि बूंद न फैले अर्थात् उपर ज्यों की त्यों पड़ी रहे तो रोग को कष्टसाध्य समझना चाहिये तथा यदि वह बूंद अन्दर (मूत्र के तले) बैठ जावे अथवा अन्दर जाकर फिर उपर अकर कुण्डाले की तरह फिरने लगे अथवा बूंद में छेद २ पड़ जावें अथवा वह बूंद मूत्र के संग मिल जावे तो रोग को असाध्य जानना चाहिये।

दूसरी रीति से परीक्षा इस प्रकार भी की जाती है कि—यदि तालाव, इंस, छन्न, चमर, तोरण, कमल, हाथी, इत्यादि चिह्न दीलें तो रोगी बच जाता है, यदि तलवार, दण्ड, कमान, तीर, इत्यादि शक्षों के चिह्न उस बूंद के हो जावें तो रोगी भर जाता है, यदि बूंद में बुद्बुदे उठें तो देवता का दोष जानना चाहिये इत्यादि, यह सव मूत्रपरीक्षा योग-चिन्तामणि प्रन्थ में लिखी है तथा इन में से कई एक बातें अनुमव सिद्ध भी हैं क्योंकि केवल प्रन्थ के बांचने से ही परीक्षा नहीं हो सकती है, देखी! बुद्धिमानों ने यह सिद्धान्त किया है कि—इल्म का करता उखाद और अनकरता शागिर्द होता है, मन्य के बांचने से केवल वायु पिच कफ खून तथा मिले हुए दोषों आदि की परीक्षा मूत्र के देखने से हो सकती है, किन्तु उस में जो २ विशेषतार्ये हैं वे तो नित्य के अभ्यास और बुद्धि के दोड़ाने से ही जात हो सकती हैं॥

2

डाक्टरी मत से मूत्रपरीक्षा—रसायनशास की रीति से मूत्रपरीक्षा की डाक्टरोंने अच्छी छानवीन (खोब) की है इस लिये वह प्रमाण करने (मानने) योग्य है, उनके मतानुसार मूत्र में गुल्यतया दो चीने है—गुरिजा और एसिड, इनके सिवाय उस में नमक, गन्धक का तेजाव, चूना, फासफरिक (फासफर्स) एसिड, मेगनेशिया, पोदास और सोडा, इन सब बस्तुओं का भी थोड़ा र तत्त्व और बहुत सा भाग पानी का होता है, मूत्र में जो र पदार्थ है सो नीचे लिखे कोष्ठ से विदित हो सकते हैं:—

मूत्र में स्थित	मूत्र के १००० मार्गोंमें ॥ ९५६॥। माग ॥		
पानी			
	युरिया ॥	१८॥ भाग॥	
शरीर के घसारे से पैदा		0 0	
होनेवाली चीज़ें ॥	चरवी, चिकनाई, जादि ॥	0 0	
खार ॥	नमक ॥	७। भाग ॥	
n	फासफरिक एसिड ।।	٦ "	
* ***	गम्धक का तेजाब ।	शा ,,	
52	चूना ॥	oll 33	
93	मेगनेशिया ॥	0 33	
93	पोटास ॥	१ 111 ,,	
37	सोडा ॥	बहुत थोड़ा ॥	

मूत्र में बचाप कपर लिखे पदार्थ हैं परन्तु आरोग्यदशा में मूत्र में कपर लिखी हुई चीज़ें सदा एक वज़न में नहीं होती है, क्यों कि खुराक और कसरत आदि पर उनका होना निर्भर है, मूत्र में स्थित पदार्थों को पक्के रसायनशाखी (रसायनशाख के जानने-वाले) के सिवाय दूसरा नहीं पहिचान सकता है और जब ऐसी (पक्की) परीक्षा होती है तभी मूत्र के द्वारा रोगों की भी पक्की परीक्षा हो सकती है। हमारे देशी पूर्वाचार्य इस रसायन विद्यामें बड़े ही प्रवीण वे तभी तो उन्होंने बीस जाति के प्रमेहों में शर्करा-ममेह और क्षीरममेह आदि की पहिचान की है, वे इस विषय में पूर्णतया तत्त्ववेत्ता वे यह बात उनकीं की हुई परीक्षा से ही सिद्ध होती है।

बहुत से लोग डाक्टरों की इस वर्तमान परीक्षा को नई निकाली हुई समझकर आश्चर्य में रह जाते हैं, परन्तु यह उनकी परीक्षा नई नही है किन्तु हमारे पूर्वाचार्यों के ही गूढ़ रहस्य से लोज करने पर इन्होंने माप्त की है, इस लिये इस परीक्षा के विषयमें उनकी कोई तारीफ नहीं है, हां अलवतह उनकी बुद्धि और उद्यम की तारीफ करना हरएक गुणमाही मनुष्य का काम है, यद्यपि मूत्र को केवल आंखो से देखने से उस में स्थित अनेक चीज़ों की न्यूनाधिकता ठीक रीति से माख्य नहीं होती है तथापि मूत्र के जत्थे से तथा मूत्र के पतलेपन वा मोटेपन से कई एक रोगों की परीक्षा अच्छी तरह से बाँच-करने से हो सकती है।

े नीरोग आदमी को सब दिन में (२४ घण्टे में) सामान्यतया २॥ रतल मूत्र होता है तथा जब कभी पतला पदार्थ कमती या बढ़ती खानेमें था जाता है तब मूत्र में भी घट. बढ़ होती है, ऋतुके अनुसार भी मूत्र के होने में फर्क पड़ता है, जैसे देखों। शीत काल की अपेक्षा उष्णकाल में मूत्र थोड़ा होता है।

मूत्राशय का एक रोग होता है जिस को मूत्राशय का जलन्दर कहते हैं, यह रोग मूत्राशय में विकार होने से आल्ज्युमेन नामक एक आवश्यक तत्त्व के मूत्रमागंद्वारा खून में से निकल जाने से होता है, मूत्र में आल्ज्युमेन है वा नहीं इस बात की जांच करने से इस रोग की परीक्षा हो सकती है, इसी तरह मृत्र सम्बन्धी एक दूसरा रोग मञ्जमेह (मीठा मृत्र) नामक है, इस रोगमें मूत्रमार्ग से मीठे का अधिक भाग मृत्रमें जाता है और वह मीठे का भाग मृत्र को साधारणतथा आंख से देखने से यद्यपि नहीं माद्यम होता है (कि इसमें मीठा है वा नहीं) तथापि अच्छी तरह परीक्षा करने से तो वह मीठा भाग जान ही लिया जाता है, इस के जानने की एक साधारण रीति यह भी है कि मीठे मृत्र पर हमारों चीटियां छग जाती हैं।

मूत्र में सार भी जुदा २ होता है और जब वह परिमाण से अधिक वा कम जाता है तथा सटास (एसिड) का भाग जब अधिक जाता है तो उस से भी अनेक रोग उसक होते हैं, मूत्र में जानेबाले इन पदार्थों की जब अच्छी तरह परीक्षा हो जाती है तब रोगों

की भी परीक्षा सहज में ही हो सकती है॥

सूत्र में जानेवाले पदार्थों की परीक्षा—मूत्रकी परीक्षा अनेक प्रकार से की जाती है अर्थात् कुछ बातें तो मूत्र को आंख से देखने से ही माल्यम होती है, कुछ चीनें रसायनिक प्रयोग के द्वारा देखने से माल्यम होती हैं और कुछ पदार्थ सुक्ष्मदर्शक यन्न के द्वारा देखने से माल्यम पड़ते है, इन तीनों प्रकारों से परीक्षा का कुछ विषय यहां छिखा जाता है।

१—आंखों से देखने से मृत्र के जुदे २ रंग की पहिचान से जुदे २ रोगों का अनुमान कर सकते हैं, नीरोग पुरुष का मृत्र पानी के समान साफ और कुछ पीलास पर (पीलेपन से युक्त) होता है, परन्तु मृत्र के साम जब खून का माग जाता है तब मृत्र लिएन से युक्त) होता है, यह मी सारण रखना चाहिये कि कई एक दवाओं के लाले से भी मृत्र का रंग बदल जाता है, ऐसी दशा में मृत्रपरीक्षाद्वारा रोग का निश्चय खाने से भी मृत्र का रंग बदल जाता है, ऐसी दशा में मृत्रपरीक्षाद्वारा रोग का निश्चय

⁻ १-इसे अंग्रेजी में बाइट्स डिज़ीज कहते हैं ॥

नहीं करलेना चाहिये यदि सूत्रको बोड़ी देरतक रसने से उस के नीचे किसी प्रकार का जमाव हो जावे तो समझ लेना चाहिये कि—खार, खून, पीप तथा चर्ची आदि कोई पदार्थ मूत्र के साथ जाता है, मूत्र के साथ जब आल्न्युमीन और शकर जाता है तो उस की परीक्षा आंखों के देखने से नहीं होती है इस लिये उस का निश्चय करना हो तो दूसरी रीति से करना चाहिये, इसी प्रकार यद्यपि सूत्र के साथ थोड़ा बहुत खार तो मिला हुआ होता ही है तो भी जब वह परिमाण से अधिक जाता है तब मूत्र को थोड़ी देरतक रहने देने से वह खार मूत्र के नीचे जम जाता है तब उस के जाने का ठीक निश्चय हो जाता है, रोग की परीक्षा करना हो तब इन निम्नलिखित वातों का खयाल रखना चाहिये:—

- १-मूत्र घुँएके रंगके समान हो तो उस में खून का सम्मव होता है ।
- र-मूत्र का रंग काल हो तो जान लेगा चाहिये कि-उस में खटास (एसिड) जाता है।
 - मूत्र के कपर के फेन बिद जल्दी न बैठें तो जान छेना चाहिये कि उस में आह-व्युमीन अथवा पित्र है ।
- -४-मूत्र गहरे पीछे रंग का हो तो उस में पित्त का जाना समझना चाहिये।
- ५-मूत्र गहरा मूरा या काळे रंग का हो तो समझना चाहिये कि-रोग पाणधातक है।
- ६-सूत्र पानी के समान बहुत होती हो तो मधुममेह की शक्का होती है, हिस्टीरिया के रोगमें भी मूत्र बहुत होता है, मूत्रपर इजारों चीटियां छगें तो समझ छेना चाहिये कि मधुममेह है।
- ७-यदि सूत्र मैका और गदका हो तो वान केना चाहिये कि उस में पीप जाता है।
- ८—मूत्र काल रंग का और बहुत योड़ा होता हो तो कलेजे के, मगज़ के और बुखार के रोग की शंका होती है।
- ९-मूत्र में खटास अधिक जाता हो ती समझना चाहिये कि पाचनिक्रया में बाघा पहुँची है।
- र ०—कामले (पीलिये) में और पित्त के अकोप में सूत्र में बहुत पीलापन और हरापन होता है तथा किसी समय यह रंग ऐसा गहरा हो जाता है कि काले रंग की शंका होती है, ऐसे मूत्र को हिलाकर देखने से अथवा थोड़ा पानी मिलाकर देखने से मूत्र का पीलापन माल्लम हो सकता है।
- र-रसायनिक प्रयोग से मूत्र में खित भिन्न र वस्तुओं की परीक्षा करने से कई एक बातों का ज्ञान हो सकता है, इस का वर्णन इसप्रकार है:---

१-इस का नियम भी यही है कि-जब मूत्र बहुत आता है तब वह पानी के समान ही होता है ॥

- १—पिरा—यद्यपि मूत्र के रंग के देखने से पिरा का अनुमान कर सकते हैं परन्तु रसायनिक रीति से परीक्षा करने से उस का ठीक निश्चय हो जाता है, पिरा के जानने के लिये रसायनिक रीति यह है कि—मूत्र की थोड़ी सी बूंद की काच के प्याले में अथवा रकेनी में डाल कर उस में थोड़ा सा नाइट्रिक एसिड डालना चाहिये, दोनों के मिलने से यदि पहिले हरा फिर जाग्रुनी और पीछे लाल रंग हो जाने तो समझ लेना चाहिये कि मूत्र में पिरा है।
- २—युरिक एसिड—यूरिक एसिड आदि मूत्र के यद्यपि खामाविक तत्त्व है परन्तु वे भी जव अधिक जाते हों तो उन की परीक्षा इस प्रकार से करनी चाहिये कि—पूत्र को एक रकेवी में डाल कर गर्म करे, पीछे उस में नाहिद्रक एसिड की योड़ी सी बूंद डाल देने, यदि उस में पासे बँघ जावें तो जान लेना चाहिये कि मूत्र में यूरिया अधिक है तथा मूत्र को रकेवी में डाल कर उस में नाहिद्रक एसिड डाला जावे पीछे उसे तपाने से यदि उस में पीले रंग का पदार्थ हो जावे तो जानलेना चाहिये कि मूत्र में यूरिक एसिड जाता है।
- ३-अाळ्च्युमीन आल्ल्युमीन एक पौष्टिक तत्त्व है, इसिलिये जन वह मूत्र के साथ में जाने लगात है तन शरीर कमज़ोर हो जाता है, इस के जाने की परीक्षा इस रीति से करनी चाहिये कि मूत्र की परीक्षा करने की एक नली (ख्रुव) होती है, उस में दो तीन रुपये भर मूत्र को लेना चाहिये, पीछे उस नली के नीचे मोमवर्ती को जलां कर उस से मूत्र को गर्म करना चौहिये, जन मूत्र उन-लने लगे तन उस के अन्दर शोरेके तेनान की योड़ी सी नूंदें डाल देनी चाहियें, इस की बूंदों से मूत्र बादलों की तरह ख़ुँचला हो जावेगा और वह खुँचला हुआ मूत्र जब उहर जावेगा तब उस में यदि आल्ल्युमीन होगा तो नीचे बैठ जावेगा और आँखों से दीखने लगेगा परन्तु मूत्र के गर्म करने से अथवा गर्म कर उस में शोरे के तेनान की जूँदें डालने से यदि वह मूत्र खुँचला न होने अथवा धुँचला होगर के तेनान की जूँदें डालने से यदि वह मूत्र खुँचला न होने अथवा धुँचला होकर खुँचलापन मिट जावे तो समझ लेना चाहिये कि मूत्र में आल्ज्युमीन नहीं जाता है, इस परीक्षा से गर्म किये हुए और नाइट्रिक एसिड मिले हुए मूत्र में जमा हुआ पदार्थ कार होगा तो वह फिर भी मूत्र में मिल जायगा और आल्ज्युमीन होगा तो वैसे का वैसा ही रहेगा।

8—इयुगर अर्थात् शर्कर—जब मूत्र में अधिक वाकम शकर जाती है तब उस रोग को मधुममेह का मयद्भर रोग है, इस रोग कहते कहते में मूत्र बहुत मीठा सफेद

[्]र--डाक्टर लोग तो इस के नीचे स्पिरीट (मद्य) का दीपक जल्मते हैं परम्तु आर्थ लोगों को तो भोम-वसी ही जलानी चाहिंगे ॥

तथा पानी के समान होता है और उस में शहद के समान गन्ध आती है, इस रोग में रसायनिक रीति से परीक्षा करने से शकर का डोना ठीक रीति से जाना जा सकता है, इस की परीक्षा की यह रीति है कि-यदि शकर की शक्का हो तो फिर मूत्र को गर्भ कर छान छेना चाहिये ऐसा करने से यदि उस में आइन्य्रमीन होगा तो अलग हो जावेगा, पीछे मूत्र को काच की नहीं में हेकर उस में आधा बीकर पोटास अथवा सोडा डालना चाहिये. पीछे नीलेयोथे के पानी की थोडी सी बंदें डालनी चाहियें परन्त नीलेथोथ की वृदें बहुत ही होशियारी से (एक बँद के पीछे दसरी बूँद) डालना चाहिये तथा नली को हिलाते जाना चाहिये. इस तरह करने से वह मत्र आसमानी रंग का तथा पारदर्शक (जिस में आर पार दीखे ऐसा) हो जाता है, पीछे उस को खूब उवालना चाहिये. यदि उस में शकर होगी तो नली के पेंदे में नारंगी के रंग के समान काल पीले पदार्थ का जमाव होकर ठहर जावेगा तथा खिर होने के बाद वह कुछ छारू और मूरे रंग का हो जावेगा, यदि ऐसा न हो तो समझ छेना चाहिये कि मूत्र में शक्तर नहीं जाती है। ५-बार और खटास (एसिड और आल्कली क्षार)-- यत्र में खार का माग जितना जाना चाहिये उस से अधिक जाने से रोग होता है. खार के अधिक जाने की परीक्षा इस प्रकार होती है कि-हल्दी का पानी करके उस में सफेद व्लार्टिंग पेपर (साही चूसनेवाला कागन) मिगाना चाहिये, फिर उस कागज को झुखाकर उस में का एक दुकड़ा छेकर मूत्र में मिगा देना चाहिये. यदि मूत्र में खार का माग अधिक होगा तो इस पीले कागज का रंग बदल कर नारंगी अथवा वादामी रंग हो जायगा. फिर इस कागज को पीछे किसी खटाई में भिगाने से पूर्व के समान पीठा रंग हो जावेगा ।

यह खार की परीक्षा की रीति कह दी गई, अब अधिक खटास जाती हो उस की परीक्षा किखते हैं—एक प्रकार का छीटमस पेपर बना हुआ तैयार आता है उसे छेना चाहिये, यदि वह न मिळ सके तो क्ळाटिंगपेपर को लेकर उसे कोविज के रस में मिगाना चाहिये, फिर उसे सुसा लेना चाहिये, तव उस का आसमानी रंग हो जावेगा, उस कागज का दुकड़ा लेकर सूत्र में मिगाना चाहिये, यदि सूत्र में खटास अधिक होगा तो उस कागज़ का रंग भी अधिक छाड़ हो जावेगा और यदि सटास कम होगा तो

१-डाक्टर लोग इलदी का टिंक्चर छेते हैं ॥

२-इस प्रकार की सूत्रपरीक्षा के छिये बना हुआ भी टरपेरिक पेपर इगर्छेंड से आता है, यदि वह न होने तो हरूदी में भिगाया हुआ ही पूर्वोक्त (पहिले कहा हुआ) कागज़ लेना चाहिये ॥

३-अधिक खटास के जाने से भी शरीर में अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं ॥

कागज़ंका रंग भी कम छाछ होगा, तात्पर्य यह है की खटास की न्यूनाधिकता के समान ही कागज़ के छाछ रंग की भी न्यूनाधिकता होगी॥

र-सक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा जो मूत्रपरीक्षा की जाती है उस में ऊपर हिस्ती हुई दोनों रीतियों में से एक भी रीति के करने की आवश्यकता नहीं होती है अर्थात् न तो ऑलोंके द्वारा ध्यान के साथ देलकर मूत्र के रेंग आदि की जाँच करनी पडती है और न रसायनिक परीक्षा के द्वारा अनेक रीतियों से मूत्र में स्थित अनेक पदार्थों की जाँच करनी पहती है, किन्तु इस रीतिसे मूत्र के रँग आदि की तथा मूत्र में स्थित और मूत्र के साथ जानेवाले पदार्थी की जाँच अतिस्रगमता से हो जाती है, परन्तु हाँ इस (सूक्ष-दर्शक) यन्त्र के द्वारा मूत्र में स्थित पदार्थों की ठीक तौर से जॉन कर छेना प्रायः उन्हीं के लिये सुगम है जिन को मूत्र में स्थित पदार्थों का खरूप ठीक रीति से माख्स हो. क्योंकि मिश्रित पदार्थ में स्थित वस्त्विशेष (सास चीन) का ठीक निश्चय कर हैना सहज वा सर्वसावारण का काम नहीं है, यद्यपि यह बात ठीक है कि-सक्ष्मदर्शक यन्त्र से मूत्र में मिश्रित तथा सूक्ष्म पदार्थ भी उत्कटरूप से मतीत होने रूगता है तथापि यह तो मानना ही पड़ेगा कि-उस पदार्थ के सरूप को न जाननेवाला पुरुष उस का निश्वय कैसे कर सकता है, जैसे-इष्टान्त के लिये यह कहा वा सकता है कि-आल्ब्युमीन के सक्रप को जो नहीं जानता है वह सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा सूत्र में स्थित आल्ब्युमीन को देख कर भी उस का निश्चय कैसे कर सकता है. तात्पर्य केवल यही है कि स्क्मदर्शक यन्त्र के द्वारा वे ही लोग मूत्र में स्थित पदार्थों का निश्चय सहज में कर सकते है जो कि उन (मूत्र में स्थित) पदार्थों के लहूप को ठीक रीति से जानते हों।

यह तो प्रायः सब ही जानते और मानते हैं कि—वर्तमान समय में अपने देश के वैधों की अपेक्षा डाक्टर लोग शरीर के आभ्यन्तर (भीतरी) मागों, उन की कियाओं और उन में स्थित पदार्थों से विशेष विश्व (जानकार) हैं, क्योंकि उन को शरीर के आभ्यन्तर मागों के देखने मालने आदि का प्रतिदिन काम पड़ता है, इसलिये यह कहा जा सकता है कि—डाक्टर लोग स्क्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा स्त्रपरीक्षा को अच्छे प्रकार से कर सकते हैं।

पहिले कह चुके है कि-इस (स्हमदर्शक) यन्त्र के द्वारा जो मूत्रपरीक्षा होती है वह मूत्र में स्थित पदार्थों के खरूप के ज्ञान से विशेष सम्बन्ध रखती है, इस लिये सर्व-साधारण लोग इस परीक्षा को नहीं कर सकते हैं, क्योंकि मूत्र में स्थित सब पदार्थों के खरूप का ज्ञान होना सर्वसाधारण के लिये व्यतिदुस्तर (कठिन) है, अतः स्हमदर्शकें यन्त्र के द्वारा जब मूत्रपरीक्षा करनी वा करानी हो तब डाक्टरों से करालेनी चाहिये, अर्थात् डाक्टरों से मूत्रपरीक्षा करा के मूत्र में जानेवाले पदार्थों की न्यूनाधिकता (कमी वा ज्यादती) का निश्चय कर तबनुकूल उचित उपाय करना चाहिये।

कपर लिखे अनुसार मूत्र में स्थित सब पदार्थों के खरूप का ज्ञान यद्यपि सर्वसाधारण के लिये अति दुस्तर है और उन सब पदार्थों के खरूप का वर्णन करना भी एक अति कठिन तथा विशेषस्थानापेक्षी (अधिक स्थान की आकांक्षा रखनेवाला) विषय है अतः उन सब का वर्णन प्रन्य के विस्तार के भय से नहीं लिख सकते हैं परन्तु तथापि संक्षेप से कुछ इस परीक्षा के विषय में तथा मूत्र में स्थित अत्यावश्यक कुछ पदार्थों के खरूप के विषय में गृहस्थों के लाम के लिये लिखते हैं:—

- १—पहिले कह जुके हैं कि—नीरोग मनुष्य के मूत्र का रँग ठीक स्सी हुई घास के रंग के समान होता है, तथा उस में जो खार और खटास आदि पदार्थ यथो-चित परिमाण में रहते हैं उन का भी वर्णन कर जुके है, इस लिये सङ्मदर्शक यन्त्र के द्वारा मूत्रपरीक्षा करनेपर नीरोग मनुष्य का मूत्र ऊपर लिखे अनुसार (उक्त रँग से युक्त तथा यथोचित खार आदि के परिमाण से युक्त) ऊपर से स्पष्टतया न तीखने पर भी उक्त यह से साफ तौर से दीख जाता है।
- २-बात, पिर्च, कफ, द्विदोष (दो २ मिछे हुए दोष) तथा सिनपात (त्रिदोष) दोषवाले, एवं अजीर्ण और ज्वर आदि विकारवाले रोगियों का मूत्र पहिले लिखे अनुसार उक्त यन्त्र से ठीक दील जाता है, जिस से उक्त दोषों वा उक्त विकारों का निश्चय स्पष्टतया हो जाता है।
- १—मूत्र में तैल की बूँद के डालने से दूसरी रीति से जो सूत्रपरीक्षा तालान, इंस, छत्र, चमर और तोरण आदि चिह्नों के द्वारा रोग के साध्यासाध्यविचार के लिये लिख चुके हैं ने सब चिह्न स्पष्ट न होने पर भी इस यन्त्र से ठीक दील जाते हैं अर्थात् इस यन्त्र के द्वारा उक्त चिह्न ठीक २ माळ्स होकर रोग की साध्यासाध्य-परीक्षा सहज में हो जाती है।
- 8-पिहले कह चुके हैं कि-डाक्टरों के मत से मूत्र में मुख्यतया दो चीजें हैं—
 युरिला और एसिड, तथा इन के सिनाय—नमक, गन्मक का तेज़ान, चूना, फासफरिक (फासफर्स) एसिड, मेगनेशिया, पोटास और सोडा, इन सन बस्तुओं का
 भी थोड़ा २ तत्त्व और बहुत सा माग पानी का होता है, अतः इस यन्त्र के
 द्वारा मृत्रपरीक्षा करने पर उक्त पदार्थों का ठीक २ परिमाण प्रतीत होजाता है,
 यदि न्यूनाधिक परिमाण हो तो पूर्व लिखे अनुसार विकार ना हानि समझ लेनी
 चाहिये, इन पदार्थों में से गन्मक का तेज़ान, चूना, पोटास तथा सोडा, इन के
 स्वरूप को प्रायः मनुष्य जानते ही हैं अतः इस यन्त्र के द्वारा इन के परिमाणादि
 का निश्चय कर सकते हैं, क्षेष आवश्यक पदार्थों का खरूप आगे कहा जायगा।

१-इन सब पदार्थों के परिमाण का विवरण पहिले ही लिख चुके हैं ॥

- ५-इस यन्त्र के द्वारा 'सूत्र को देखने से यदि उस (मूत्र) के नीचे कुछ जमान सा माछस पड़े तो समझ छेना चाहिये कि-लार, खून, रसी (पीप) तथा चर्ची आदि का माग मूत्र के साथ जाता है, इन में भी निशेषता यह है कि-लार का माग अधिक होने से मूत्र फटा हुआ सा, खून का माग अधिक होने से घूत्रवर्ण, रसी (पीप) का माग अधिक होने से मैठ और गदछेपन से युक्त तथा चर्ची का माग अधिक होने से चिकना और चर्ची के कतरों से युक्त दील पहता है।
- ६-मूत्र में खटास का भाग अधिक होने से वह (मूत्र) रक्तवर्ण का (ठाठ रँग का) तथा पित्त का माग अधिक होने से पीत वर्णका (पीठे रँग का) और फेनों से हीन इस यन्त्र के द्वारा स्पष्टतथा (साफ तौर से) दीख पड़ता है।
- ७-मूत्र में शकर के भाग का जाना इस बन्त्र के द्वारा प्रायः सब ही जान सकते हैं, क्योंकि शकर का सरूप सब ही को विदित है।
- ८—इसं यन्त्र के द्वारा परीक्षा करने से यदि मूत्र—फेनरहित, अतिश्वेत (बहुत सफेद अर्थात् अण्डे की सफेदी के समान सफेद), किग्म (चिकना), पौष्टिक तस्त्व से युक्त, ऑंटे के लस के समान लसदार, पोश्त के तेल के समान दिग्म तथा नारियल के गूदे के समान किन्म (चिकने) यदार्थ से संघट (गुया हुआ), गाडा तथा रक्त (खून) की कान्ति (चमक) से युक्त दील पड़े तो जान लेना चाहिये कि—मूत्र में आस्ट्यूमीन है, इस प्रकार आल्व्युमीन का निक्षय हो जाने पर मुत्राशय के जलन्यर का मी निक्षय हो सकता है, जैसा कि पहिले लिल चुके हैं।
- ९.—इस यन्त्र के द्वारा देखने पर बाद मूत्र में जलाये हुए पौधे की राल के समान, बा कढ़ाई में मूने हुए पदार्थ के समान कोई पदार्थ दीखे अथवा सोडे की राल

⁹⁻इस का कुछ बर्णन आगे वर्षी संख्या में किया जावेगा ॥

२-यह शब्द वो प्रकार का है-जित में से एक का उचारण आल्ड्युम्यन है, यह जादिन तथा फ्रेस भाषा का शब्द है, इस को फ्रेंस भाषा में अल्बस भी कहते हैं, जिस का अर्थ 'सफेद, है, इस काब्द के तीन अर्थ है-१-अण्डे की सफेदी, २-परविश्व करनेवाला मादा जो बहुत से पौघों के बीजके परदे में इकार रहता है परन्तु गर्भ में मिला नहीं रहता है, यह अल अर्थाद नेहूं और इसी किस्स के दूसरे अर्जों में माटे का हिस्सा होता है, पीस्त के दाने में रोगनी (तेल का) हिस्सा होता है और नारिवल में गूदेदार हिस्सा होता है, २-यह रसायन के लिहाज़ से वही बस्तु है जो कि आल्ड्युनीन है (जिस का अर्थ अर्भो आगे होता है, ३-यह रसायन के लिहाज़ से वही बस्तु है जो कि आल्ड्युनीन है (जिस का अर्थ अर्भो आगे कहते है), दूसरे शब्द का उचारण आल्ड्युनीन है, यह गाटा इन तथा विवेला पदाय होता है जो कि खास आवस्यक (जरूरी) मादा अर्थ का होता है और चोह का पंका होता है और नह दूसरे हैवानी मादों में पाया जाता है, यह चाहे इन हो और चाहे व्ह हो. इस के सिवाय यह पौघों में भी पाया आता है, यह पानी में घुलजाता है तथा गर्मी बीर दूसरी रसायनिक रीतियों से जम जाता है।

सी दील पड़े अथवा तेज़ावी सोडा वा तेज़ावी पोटास दील पड़े तो जान छेना चाहिये कि मूत्र में लार और खटास (आलकैंटी लार और एसिड) है।

यह संक्षेप से सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा मूत्रपरीक्षा कही गई है, इस के विषय में यदि विशेष हाल जानना हो तो ढाक्टरी अन्थों से वा ढाक्टरों से पूँछ कर जान सकते है।।

मलपरीक्षा—मल से भी रोग की बहुत कुछ परीक्षा हो सकती है तथा रोग के साध्य वा असाध्य की भी परीक्षा हो सकती है, इस का वर्णन इस प्रकार है:—

- १-वायुतोषवाले का मल-फेनवाला, रूखा तथा धुएँके रंग के समान होता है और उस में चौथा भाग पानी के सदस होता है।
- २-पित्तदोपवाले का मल-हरा, पीला, गन्यवाला, ढीला तथा गर्म होता है !
- ३-कफदोषवाले का मल-सफेद, कुछ सूखा, कुछ भीगा तथा चिकना होता है।
- ४-वातपित्रदोषवाले का मल-पीला और काला, भीगा तथा अन्दर गांठींवाला होता है।
- ५-वातकफदोषवाले का मल-मीगा, काला तथा पपोटेवाला होता है।
- ६-पित्तकफदोषवाले का मल-पीला तथा सफेद होता है।
- ७-त्रिदोपवाले का गल-सफेद, काला, पीला, ढीला तथा गांठोंवाला होता है।
- ८-अनीर्णरोगवाळे का मळ-दर्गन्धयुक्त और ढीला होता है ।
- ९-जलोदररोगवाले का मल-बहुत दुर्गन्थयुक्त और सफेद होता है।
- १०-म्रत्युसमय को प्राप्त हुए रोगी का मळ-बहुत दुर्गन्धयुक्त, ठाळ, कुछ सफेद, मांस के समान तथा काळा होता है।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जिस रोगी का मरू पानी में डूब जावे वह रोगी बचता नहीं है।

इस के अतिरिक्त मरूपरीक्षा के विषय में निम्नलिखित वातों का भी जानना अत्याव-स्यक है जिन का वर्णन संक्षेप से किया जाता है:—

⁹⁻इस शब्द का प्रयोग बहुबचन में होता है अर्थात अळकलिस वा अळकलीज, इस को फ्रेंच भाषा में अलकली मी कहते हैं, यह एक प्रकार का खार पदार्थ है, इस शब्द के घोषकारों ने कई अर्थ िख हैं, जैसे-पीधे की राख, कहाई में मूनना, वा मूनना, सोडे की राख, तेजाबी सोडा तथा तेजावी पोटास इलादि, इस का रासायनिक खरूप यह है कि-यह तेजाबी असळी चीजों में से हैं, जैसे-सोडा, पोटास, गोंदिनशेप और सोडे की किस्म ना एक तेज तेजाब, इस का मुख्य गुण यह है कि-यह पानी और अवकोहल (बिव) में मिल जाता है तथा तेल खरिर चर्बा से मिल कर सातुन को बनाता है और तेजाब से मिलकर नमक को बनाता है या उसे मातदिल कर देता है, एवं बहुत से पौधों की ज़र्दी (पीलेपन) को भूरे रग की कर देता है और काई वा पीधे के छाल रंग को नीला कर देता है।

- १-पनला द्रत-अपनी से अथवा संग्रहणी के रोग से पतले दस्त होते हैं, यदि नल में ख़राक का कचा माग दीले तो समझना चाहिये कि-अब का पाचन ठीक रीतिसे नहीं होता है, आँतों में पित्तके बढ़ने से भी मल पतला और नरम आता है, अतीसार और हैजे में दस्त पानी के समान पतला आता है, यदि अय रोग में विनाकारण ही पतला दस्त आवे तो समझ छेना चाहिये कि रोगी नहीं बचेगा।
- '२-कर ज़ा द्स्त-नित्य की अपेक्षा यदि कर ज़ा दस्त आने तो कन ज़ियत की निकानी समझनी चाहिये, हरस के रोगी को सदा सस्त दस्त आता है तथा उस में प्रायः सफरे का माग छिठ जाने से उस में से खून आता है, पेट में अथवा सफरे में वादी के रहने से सदा दस्त की कछी रहती है, यदि कठेने में पित्त की किया ठीक रीति से न होने तथा आवश्यकता के अनुसार पित्तकी उत्पत्ति न हो अथवा मठ को आगे दकेठने के छिये आँतों में तंग और दी होने की यथा-वश्यक (जितनी चाहिये उतनी) शक्ति न होने तो दस्त करड़ा आता है।
- ३-खूनशाला दस्त यदि दत्तके साथ में मिला हुवा खून जाता हो अथवा जान गिरती हो तो समझ लेना चाहिये कि मरोड़ा हो गया है, हरस रोग में तथा रक्तिय रोग में खून दस्त से अलग गिरता है, अर्थाद दत्त के पहिले वा पीछे धार होकर गिरता है।
- 8—अधिक खून व पीपवाला दस्त—यदि दस्त के मार्ग से खून वहुत गिरे तथा पीप एक दम से आने लगे तो समझ लेना वाहिये कि कलेना पककर औं तों में फूटा है।
- ५-मांस के घोचन के समान दस्त—यदि दस्त घोथे हुए मांस के पानी के समान आवे तथा उस में चाहे कुछ खून भी हो वा न हो परन्तु काले छोतों के समान हो और उस में बहुत दुर्गन्य हो तो समझना चाहिये कि आँतें सड़ने लगी है।
- ६-सफेट ट्स्त-यदि दस्त का रंग सफेट हो तो समझना चाहिये कि कलेजे में-से पित्त यथावस्यक (चाहिये जितना) ऑठों में नहीं आता है, प्रायः कामला पिताशय तथा कलेजे के रोग में ऐसा दस्त आता है।
- ७-सफेद कांजी के समान वा चाँवलों के घोवन के समान दस्त हैने में तथा बढ़े (अल्पन्त) अनीर्ण में दस्त सफेद कांनी के समान अथवा चाँवलों के घोवन के समान आता है।

८-काला वा हरा द्स्त-यदि काळा अथवा हरा दस्त आवे तो समझना चाहिये कि कळेजे में रोग तथा पिच का विकार है।

प्रश्नपरीक्षा ॥

रोगी से कुछ हकीकत के पूछने से भी रोगों की विज्ञता (जानकारी) होती है और ऐसी विज्ञता पहिले लिखी हुई परीक्षाओं से मी नहीं हो सकती है , यदाप कई समयों में ऐसा भी होता है कि-रोगी से पूछने से ग्री रोग का यथार्थ हाल नहीं माल्स होता है और ऐसी दशा में उस के कथन पर विशेष विश्वास मी रखना योग्य नहीं होता है, परन्तु इस'से यह नहीं मान केना चाहिये कि-रोगी से हकीकत का पूछना ही व्यर्थ है, किन्तु रोगी से पूछ कर उस की सब अगली पिछली हकीकत को तो अवस्य जानना ही चाहिये, क्योंकि पूछने से कमी २ कोई २ नई इकीकत मी निकल आती है, उस से रोग की उत्पत्ति के कारण का पता मिल सकता है और रोग की उत्पत्ति के कारण का अर्थात् निवान का ज्ञान होना वैद्यों के लिये चिकित्सा करने में बहुत ही सहायक है. इस लिये रोगी से वारंवार पछ २ कर खब निश्चय कर छेना चाहिये, केवळ इतना ही नहीं किन्त बहुत सी वातों को रोगी के पास रहनेवाकों से अथवा सहवासियों से पूछ के निश्चय करना चाहिये, जैसे-यदि रोगी को बमन (उकटी) होता है तो बमन के कारण को पूछ कर उस कारण को बन्द करना चाहिये, ऐसा करने से बमन को बन्द करने की कोई व्यावस्यकता नहीं रहेंती है, जैसे यदि पित्त से वमन होता हो पित्त को दवाना चाहिये. यदि अनीर्ण से होता हो तो अनीर्ण का इलान करना चाहिये. तथा यदि होनरी की हर-कत से होता हो तो उस ही का इलाज करना चाहिये. तात्पर्य यह है कि-वमन के रोग में बमन के कारण का निश्चय करने के लिये बहुत पूछ ताछ करने की आवश्यकता है. इसी प्रकार से सब रोगों के कारणों का निश्चय सब से प्रथम करना चाहिये, ऐसा न करने से चिकित्सा का कुछ भी फल नहीं होता है, देखों ! यदि बुखार अनीर्ण से आया हो और उस का इलाज दूसरा किया जाने तो नह आराम नहीं हो सकता है, इसलिये पहिले इस का निश्चय करना चाहिये कि बुलार अजीर्ण से हुआ है अथवा और किसी

१-परन्तु स्मरण रहे कि ऑवस्त्र गूगुळ तथा छोहे से बनी हुई दवाओं के खाने से दस्त काला आता है, इस लिये यदि इन में से कोई कारण हो तो काले दस्त से नहीं दरना चाहिये ॥

२-क्योंकि दूसरी परीक्षाओं से कुछ न कुछ सन्देह रह जाता है परन्तु रोगी से हकीकत पूछ छेने से रोग का ठीक निश्चय हो जाता है ॥

३-सहायक ही नहीं किन्तु यह कहना बाहिये कि-निदान का वानना ही चिकित्सा का मुख्य आधार है ॥ ४-सर्योंकि वमन के कारण को वन्द कर देनेसे वसन आप ही वन्द हो जाता है ॥

^{&#}x27; ५-कारण का निवास किये विना केवल चिकित्सा ही निष्फळ हो जाती हो यही नहीं किन्तु ऐसी चिकित्सा दूसरे रोगों का कारण बन जाती है ॥

कारण से हुआ है, इस का निश्चय जैसे दूसरे उक्कणों आदि से होता है उसी प्रकार रोगी ने दो तीन दिन पहिले क्या किया था, क्या खाया था, इत्यादि नातों के पूछने से शीव ही . निश्चय हो जाता है !

बहुत से रोग चिन्ता, मय, कोघ और कामविकार आदि मनःसम्बद्धी कारणों से भी पैदा होते है और शरीर के लक्षणों से उन का ठीक र ज्ञान नहीं होता है, इसलिये रोगों में हकीकत के पूछने की बहुत ही आवश्यकता है, उदाहरण के लिये पाठकगण जान सकते हैं कि-शिर का दुलना एक सामारण रोग है परन्तु उस के कारण बहुत से है, जैसे-शिर में गर्मी का होना, दख की कठनी, घातु का जाना और पदर आदि कई कारणों से शिर दुखा करता है, अब शिर दुखने के कारण का ठीक निश्चय न करके यदि दसरा इठाज किया जावे तो कैसे आराम हो सकता है ! फिर शिर दुखने के फारणों को तलास करने में यद्यपि नाड़ीपरीक्षा भी कुछ सहायता देती है परन्त यदि किसी प्रकार से रोग के कारण का पूर्ण अनुमव हो जावे तो शेष किसी परीक्षा से कोई काम नहीं है. और रोग के कारण का अनुमव होने में केवल रोगी से सद हाल का पूछना प्रधान साधन है, जैसे देखो ! शिर के दर्द में यदि रोगी से पूछ कर कारण का निश्चय कर छिया जाये कि तेरा शिर किस तरह से और कव से दुखता है इत्यादि, इस मकार कारण का निश्चय हो जाने पर इळाज फरने से शीत्र ही आराम हो सकता है, परन्त कारण का निश्चय किये विना चिकित्सा करने से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता है, जैसे देखो ! यदि कपर लिखे कारणों में से किसी कारण से शिर दुखता हो और उस कारण को न समझ कर अमोनिया सँघाया जावे तो उस से बिलकुल फायदा नहीं हो सकता है, फिर देखी! वाँत के तथा कान के रोग से भी शिर अत्यन्त दुखने लगता है, इस बात को भी विरहे ही छोग समझते हैं, इसी प्रकार कान के वहने से भी शिर दुलता है, इस बात को रोगी तो सम में भी नहीं जान सकता है, हां यदि वैद्य कान के दुखने की वात को पूछे अथवा रोगी अपने आप ही वैद्य को अञ्चल से आखीर तक अपनी सब इकीकत अनाते समय कान के वहने की वात को भी कह देवे तो कारण का ज्ञान हो सकता है।

बहुत से अज्ञान लोग वैद्य की आवरू (प्रतिष्ठा) और परीक्षा लेने के लिये हाथ लग्ना करते है और कहते है कि—"आप देखों! नाड़ी में क्या रोग है ?" परन्तु ऐसा कमी मूळ कर भी नहीं करना चाहिये, किन्तु आप को ही अपनी सब हकीकत साफ २ कह देनी चाहिये, क्योंकि केवल नाड़ी के द्वारा ही रोग का निश्चय कमी नहीं हो सकता है, किन्तु रोग के निश्चय के लिये अनेक परीक्षाओं की आवश्यकता होती है, इसी प्रकार वैद्य को भी चाहिये कि केवल नाड़ी के देखनेका आडम्बर रचकर रोगी को अम में व डाले और न उसे डरावे किन्तु उस से धीरब से पूछ २ कर रोग की असली पहिचान

केरे, बिंद रोग की ठीक परीक्षा कराने के लिये कोई नया वा अज्ञान (अजान) रोगी आ जावे तो उस को थोड़ी देर तक बैठने देना चाहिये, जब वह खस्थ (तहेदिल) हो जावे तब उस की आकृति, आँखें और जीम आदि परीक्षणीय (परीक्षा करने के योग्य) अज्ञों को देखना चाहिये, इस के बाद दोनों हाथों की नाड़ी देखनी चाहिये, तथा उस के गुख से सब हकीकत सुननी चाहिये, पीछे उस के शरीर का जो माग जांचने योग्य हो उसे देखना और जांचना चाहिये, रोगी से हकीकत पूछते समय सब बातों का खूब निश्चय करना चाहिये अर्थात् रोगी की जाति, वृत्ति (रोज़गार), रहने का ठिकाना, आयु, ज्यसैन, यूत्पूर्व रोग (जो पहिले हो चुका है वह रोगें), विषिसहित पूर्वसेनित औषघ (क्या र दा केसे र ली, क्या र खाया पिया ! इत्यादि), औषघसेवन का फल (लाम हुआ वा हानि हुई इत्यादि), इत्यादि सब बातें पूँछनी चाहियें।

इन सब बातों के सिवाय रोगी के मा बाप का हाल तथा उन की श्ररीरसम्बन्धिनी (श्ररीर की) न्यवस्था (हालत) भी जाननी चाहिये, क्योंकि बहुत से रोग माता पिता से ही पुत्रों के होते है।

यश्रिप सरपरीक्षा से भी रोगी के मरने जीने कष्ट रहने तथा गर्मी शर्दी आदि सब बातों की परीक्षा होती है परन्तु वह यहां प्रन्य के वढ जाने के भय से नहीं किसी है, हां सरोदय के विषय में इस का भी कुछ वर्णन किया है, वहां इस विषय को देखना चाहिये।

साध्यासाध्यपरीक्षा बरू के द्वारा भी होती है, इस के सिवाय मृत्यु के चिह्न संक्षेप से कारूजान में िल है है, जैसे—कानों में दोनों अंगुलियों के लगाने से यदि गड़ागड़ाहर न होने तो प्राणी मर जाता है, आंख को मसल कर अँचेरे में खोले, यदि विजुली का सा अवका न होने तथा आंख को मसल कर मींचने से रंग र का (अनेक रंगों का) जो आकाश्य से बरसता हुआ सा दीखता है वह न दीखे तो मृत्यु जाननी चाहिये, लाया-पुरुष से अथवा काच में देखने से यदि मखक आदि न दीखें तो मृत्यु जाननी चाहिये, यदि चैतमुदि ४ को प्रातःकाल चन्द्रस्वर न चले तो नी महीने में मृत्यु जाननी चाहिये,

⁹⁻बहुत से घूर्त वैद्य अपना महत्त्व दिख्तकाने के किये रोगी का हाल आदि कुछ भी न पूँछकर केवल नाड़ी ही देखते हैं (मानो सर्वसाघारण को वे यह प्रकट करना चाहते हैं कि हम केवल नाड़ी देखकर ही रोग की सर्व व्यवस्था को जान सकते हैं) तथा नाडी देखकर अनेक झूठी सची वार्ते बना कर अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये रोगी को बहुका दिया करते हैं, परन्तु सुयोग्य और निद्वान् वैद्य ऐसा कभी नहीं करते हैं। २-यदि कोई हो तो।।

२-मृत्पूर्व रोग का पूछना इस लिये आवक्सक है कि-उस का मी विचार कर ओपिव दी जावे, क्योंिक उपदंश आदि भूतपूर्व कई रोग ऐसे भी हैं कि जो कारणसामग्री की सहायता पाकर फिर भी उत्पन्न हो जाते हैं-इस लिये गदि ऐसे रोग उत्पन्न होचुके हों तो चिकित्सा में उन के पुनवत्पादक कारण को बचाना पढ़ता है ॥

इत्यादि, यह सब विवरण अन्य के वढ़ जाने के अय से यहां नहीं लिखा है, हां खर का तो कुछ वर्णन आगे (पद्ममाध्याय में) लिखा ही जावेगा—यह संक्षेप से रोगपरीक्षा और उस के आवश्यक प्रकारों का कथन किया गया ॥

यह चतुर्थ अध्याय का रोगपरीक्षापकार नामक वारहवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

. . तरहवां प्रकरण—औषव[्]प्रयोग ॥

औषघों का संग्रह ॥

जंगल में उत्पन्न हुई जो अनेक वनस्पतियां बाज़ार में विकरी हैं तथा अनेक दवायें जो घातुओं के संसर्ग से तथा उन की अस्म से बनती है इन्हीं सबों का नाम औषेष (दवा) है, परन्तु इस अन्थ में जो र बनस्पतियां संग्रहीत की गई हैं अथवा जिन र औषषों का संग्रह किया गया है वे सब साधारण हैं, क्योंकि जिस औषघ के बनानें में बहुतज्ञान, चतुरोंई, समय और धन की आवश्यकता है उस औषघ का शाक्षोक्त (शाक्ष में कहा हुआ) विधान और रस आदि विद्यांशाला के सिवाय अन्यत्र यथावस्थित (ठीक र) वन सकना असम्भव है, इस लिये जिन औषघों को साधारण वैच तथा गृहस्य खुद बना सके अथवा बाज़ार से मंगा कर उपयोग में ला सके उन्हीं औषघों का संक्षेप से यहां संग्रह किया गया है तथा कुछ साधारण अंग्रेज़ी औषघों के भी नुसले लिखे है कि जिन का वक्षीय गया है तथा कुछ साधारण अंग्रेज़ी औषघों के भी नुसले लिखे है कि जिन का वक्षीय गया सर्वत्र किया जाता है।

इन में से प्रथम कुछ शास्त्रोक्त जीवघों का विधान लिखते हैं:---

उनिष्ट और आसव पानी काड़ा अथवा पतले प्रवाही पदार्थ में औषध को हाल कर उसे मिट्टी के वर्तन में मर के क्रपड़िमिट्टी से उस वर्तन का ग्रुँह वन्द कर एक या दो पखवाड़े तक रक्खा रहने दे, जब उस में खगीर पैदा हो जाने तब उसे काम में छावे, औषघों को उनाले विना रहने देने से आसैव तैनार होता है और उवाल कर तथा हम्से औषघों को पीछे से डाल कर रख छोड़ते है तब अरिष्टें तैयार होता है।

१-अर्थात् चनस्पतियों धीर चातुओं से निकित्सार्यं बने हुए पदायों का समानेश औपम नाम में हो जाता है।

२-'विद्याशाला, अन्द से यहां वह स्थान समझना चाहिये कि जहा वैद्यकविद्या का नियमानुसार पठन पाठन होता हो तथा उसी के नियम के अनुसार सब ओषधिया ठीक १ तैयार की जाती हों ॥

३-जैसे कुमार्यासव, द्राकासव, आदि ॥

४--जैसे अमृतारिष्ट आदि ॥

जहां भीषघों का वजन न छिला हो वहां इस परिमाण से छेना चाहिये कि—अरिष्ट के लिये उवाछने की दवा ५ सेर, शहद ६। सेर, गुड़ १२॥ सेर और पानी ३२ सेर, इसी प्रकार आसव के लिये चूर्ण १। सेर छेना चाहिये तथा शेष पदार्थ ऊपर लिखे अनुसार छेने चाहियें।

इन दोनों के पीने की मात्रा 8 तोला है ।

मद्य—इसे यद्र पर चढा कर अर्क टपकाते हैं, उसे मद्य (स्पिरिट) कहते हैं। अर्क — औषघों को एक दिन मिगाकर यद्भें पर चढा के भमका खीचते है, उसे अर्क कहते है।

अवलेह—िनस वस्तु का अवँलेह बनाना हो उस का खरस लेना चाहिये, अथवा की बान कर उस को छान छेना चाहिये, पीछे उस पानी को भीमी आंच से गाडा पड़ने देना चाहिये, फिर उस में शहद गुड़ शकर अथवा मिश्री तथा दूसरी दवायें भी मिला देना चाहिये, इस की मात्रा आबे तोले से एक तोले तक है।

करक -- गीळी बनस्पति को शिलापर पीस कर अथवा सूसी ओषधि को पानी डाल कर पीस कर छुगँदी कर लेनी चाहिये, इस की मात्रा एक तोले की है।

क्तांथ—एक तोले श्रीविध में सोलह तोले पानी डार्ल कर उसे मिट्टी वा कर्ल्ड के पात्र (वर्तन) में उकालना (उबालना) चाहिये, बब अप्टमांझ (आठवां माग) शेप रहे तब उसे छान केना चाहिये, पायः उकालने की ओविध का बजन एक समय के लिये प्र

१-परन्तु कई आचारों का यह कथन है कि-अरिष्ट में डालने के लिये प्रक्षेपवस्तु ४० रुपये भर, गहद १०० रुपये भर, गुढ ४०० रुपये भर तथा इब पदार्थ १०२४ रुपये भर होना चाहिये ॥

२-यह पूर्णअवस्थावाळे प्रकृष के लिये मात्रा है, किन्तु न्यूनावस्था वाले के लिये मात्रा कम करनी पड़ती है, जिस का वर्णन आगे किया जावेगा, (इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये) ॥

३-यन्त्र कई प्रकार के होते हैं, उन का वर्णन बुसरे वैद्यक अन्यों में देख छेना चाहिये ॥

४-द्याधर्मवाओं के छिये लर्क पीने योग्य अर्थात् सक्य पदार्थ है परन्तु लरिष्ट और आसव असक्य हैं, क्योंकि जो नाईस प्रकार के असक्य के पदार्थों के खाने से अचता है उसे ही पूरा द्याधर्म का पालनेवाला समझना चाहिसे ॥

५-जो वस्तु चाटी जाने उसे अवछेह कहते हैं ॥

६-तार्त्पर्य यह है कि चिंद गीली वनस्पति हो तो उस का खरस लेना चाहिये परन्तु बदि सूखी ओपिध हो तो उस का काढ़ा बना लेना चाहिये ॥

७-इस को सुसलमान वैद्य (इसीम) लक्तक कहते हैं तथा संस्कृत में इस का नाम करक है ॥

^{&#}x27;८-इस को उकाली भी कहते हैं।।

९-तात्पर्य यह है कि ओषिष से १६ ग्रुना जल डाला जाता हैं-परन्तु यह जल का परिमाण १ तोले से लेकर ४ तोले पर्यन्त औषष के लिये समझना चाहिये, चार तोले से उपरान्त कुड्व पर्यन्त औषप में भाटगुना जल डालना चाहिये और कुडव से लेकर प्रस्य (सेर) पर्यन्त आंपन में चीगुना ही जल डालना चाहिये॥

तीले है, यदि काथ को थोड़ा सा नरम करना हो तो चौथा हिस्सा पानी रखना चाहिये, एक बार उकाल कर छानने के पीछे जो कूचा रह जाने उस को दूसरी बार (फिर भी शाम को) उकाला जाने तथा छान कर उपयोग में लाया जाने उसे परकाथ (दूसरी उकाली) कहते है, परन्तु शाम को उकाले हुए काथ का नासा कूचा दूसरे दिन उपयोग में नहीं लाना चाहिये, हां प्रातःकाल का कूचा उसी दिन शाम को उपयोग में लाने में कोई हर्ज नहीं है।

निर्वे रोगी को काथ का अधिक पानी नहीं देना चाहिये।

नवीन ज्वर में पाचन काथ (दोषों को पकानेवाळा काथ) देना हो तो अर्द्धावशेष (आधा बाकी) रख कर देना चाहिये।

कुटकी आदि कटु पदार्थों का काय ज्वर में देना हो तो ज्वर के पकने के बाद देना चौहिये।

स्मरण रहे कि-काथ करने के समय वर्तन पर दक्कन देना (ढांकना) नहीं चाहिये, क्योंकि दक्कन देकर (ढांक कर) बनाया हुआ काथ फायदे के बदले बड़ा भारी नुकसान करता है।

कुरला—दवा को उकाल कर उस पानी के अथवा रात को भिगोथे हुए उंदे हिम के अथवा फिटकड़ी और नीलायोथा आदि को पानी में डाल कर उस पानी के सुखपाक आदि (मुँह का पक जाना अथवा मस्ड्रों का फ्लना आदि) रोगों में कुरले किये जाते हैं।

ऊपर कहे हुए रोगों में त्रिफला, रांग, तिलकँटा, चमेली के पत्ते, दूध, धी और शहद, इन में से किसी एक वस्तु से कुरैंले करने से भी फायदा होता है।

• गांली—किसी दना को अथना सत्त्व को शहद, नीबू का रस, धदरल का रस, पान का रस, गुड़, अथना गूर्गुल की चासनी में डाल कर छोटी २ गोलियां बनाई जाती है, पीछे इन का यथानस्थक उपयोग होता है।

२-कुरले को सस्कृत में गण्डूष कहते हैं ॥ ३-कुरले के ४ मेद हैं--सेहन (चिकनाइट करनेवाला), शमन (शान्ति करनेवाला), शोधन (साफ करनेवाला) और रोपण (खच्छ घातुओं की भरती करके घाव को पूरा करनेवाला), वात की पीड़ा में सेहन, पित्त की पीड़ा में शमन, कफ की पीड़ा में शोधन तया घाव आदि में रोपण कुरले किमें जाते हैं, (इन का विधान वैद्यक प्रन्थों में विस्तारपूर्वक देख लेना चाहिये)॥

४-इन को संस्कृत में गुटिका कहते हैं तथा बढ़ी २ गोलियों को मोदक कहते हैं ॥ ५-मृगुछ को यदि शोधना हो तो त्रिफला के काय में शोधना चाहिये तथा शिलाजीत भी इसी में शुद्ध होता है ॥

१-- ज्वर के पकते का समय यह है कि-- वातिक ज्वर सात दिन में, वैत्तिक ज्वर दश दिन में तथा इक्षेत्रिक ज्वर वारह दिन में पकता है।।

घी तथा तेल — जिन २ औषघों का घी अथना तेल बनाना हो उन का खरस लेना चाहिये, अथना औषघों का पूर्वोक्त करक लेना चाहिये, उस से चौगुना घी अथना तेल लेना चाहिये, घी तथा तेल से चौगुना पानी, दूघ, अथना गोम्न्न लेना चाहिये और सूखे औषघ को १६ गुने पानी में उकाल कर चतुर्थाश रखना चाहिये, काथ से चौगुना घी तथा तेल होना चाहिये, गीले औषघों का करक बना कर ही खालना चाहिये, पीले सब को उकालना चाहिये, उकालने से जब पानी जल जाने तथा औषघ का भाग पका (लाल) हो जाने तथा घी अलग हो जाने तब उतार कर ठंडा कर लान लेना चाहिये।

इन के सिद्ध हो जाने की पहिचान यह है कि—तेल में जब झागों का आना बंद हो जाने तब उसे तैयार समझकर झट नीचे उतार छेना चाहिये तथा बी में जब झाग आ जानें त्योंही झट उसे उतार छेना चाहिये ।

इन के सिवाय बस्तुओं के तेळ घाणी में तथा पातालयम्रादि से निकाले जाते हैं जिस का जानना ग्रुरुगम तथा शास्त्राधीन है, इस घृत तथा तेल की मात्रा चार तोले की है-।

चूर्ण—सूले हुए औषघों को इकट्टा कर अथवा अलग २ कूटकर तथा कपड़छान कर रख छोड़ना चौहिये, इस की मात्रा आये तोले से एक तोले तक की है।

धुआँ वा धूप— जिस प्रकार अज्ञार में दवा को युलगा कर धूप दे कर घर की हवा साफ की जाती है उसी प्रकार कई एक रोगों में दवा का धुलां चमड़ी को दिया जाता है, इस की रीति यह है कि—अंगारे पर दवाको डालकर उसे खाट (चार पाई) के नीचे रख कर खाटपर बैठ कर ग्रंह को उघाड़े (खुला) रखना चाहिये और सब श्वरीर को कपड़े से खाट समेत चारों तरफसे इस प्रकार डकना चाहिये कि धुलां बाहर न निकलने पावे किन्तु अंगपर लगता रहे।

धूम्रपान-जैसे दवा का धुआं शरीर पर लिया जाता है उसी प्रकार दवा को हुके

१-तारपर्य यह है कि-गिलोय सादि मृदु पदार्थों में चौगुना चल डालना चाहिये. सींट आदि सूखे पदार्थों में आठगुना जल डालना चाहिये 'तथा देवदार आदि बहुत दिन के सूखे पदार्थों में सोलह गुना जल डालना चाहिये ॥

२—इन की दूसरी परीक्षा यह मी है कि झेह का पाक करते २ जय करक अगुलियों में भीडने से वक्ती के समान हो जावे और उस करक को अप्ति में डाटने से आवाज न हो अर्थात चटचढाने नहीं तब जानना चाहिये कि अन यह सेह (इत अथना तेल) सिद्ध हो गया है ॥

३-यदि चूर्ण में गुड मिलाना हो तो समान माग डालें, खांड डालनी हो तो दूती डालें तथा चूर्ण में यदि हीग डालनी हो तो एत में भून कर डालनी चाहिये, ऐसा करने से यह उत्हेद नहीं करती है, यदि चूर्ण को एत या शहद में मिला कर चाटना हो तो उन्हें (एत वा शहद को) चूर्ण से दूने लेवे, इसी प्रकार यदि पतले पदार्थ के साथ चूर्ण को लेना हो तो वह (जल खाबि) चौगुना लेना चाहिये॥

में भरकर फिरंग तथा गठिया आदि रोगों में मुँह से वा नाक से पीते है, इसे धूर्मपान कहते हैं।

नस्य—नाक में घी तेल तथा चूर्णकी सूँघनी ली जाती है उस को नैस्य कहते हैं।
पान—किसी दवा को २२ गुने अथवा उस से भी अधिक पानी में उकाल कर
आधा पानी वाकी रक्ता जावे तथा उसे पिया जावे इसे पान कहते हैं।

पुटपाक — किसी हरी वनस्पति को पीस कर गोला बना कर उस को वह (वरगद) वा एरण्ड अथवा जासुन के पत्ते में लेपट कर उत्पर कपड़िमट्टी का थर दे कर वनकंडों को सुलगा कर निर्धूय होनेपर उस में रख देना चाहिये, जब गोले की मिट्टी लाल हो जावे तब उसे निकाल कर तथा मिट्टी को दूर कर रस निचोड़ लेना चाहिये, परन्तु थिद वनस्पति सूखी हो तो जल में पीस कर गोला कर लेना चाहिये, इस रस की पुटपाक कहते हैं, इस के पीने की मात्रा दो से चार तोले तक की है।

पश्चाङ्ग-मूल (जड़), पत्ते, फल, फूल तथा छाल, इस को पश्चाङ्ग कहते हैं।
फलकर्ती-योनि अथवा गुदा के अन्दर दवा की मोटी वर्ता दी जाती है तथा
इस में थी वा दवाका तेल अथवा सादुन आदि भी लगाया जाता है।

फांट—एक भाग दवा के चूर्ण को आठ माँग गर्म पानी में कुछ घंटोंतक भिगा कर उस पानी को दवा के समान पीना चाहिये, ठंडे पानी में १२ घण्टेतक भीगने से भी फांट तैयार होता है, इस की मात्रा ५ तोले से १० तोले तक है।

बस्ति—पिन्दकारी में कोई प्रवाही दवा भर कर मळ वा मूत्र के स्थान में दवा नदाई जाती है, इस का नाम वर्स्सि है, वह खाने की दवा के समान फायदा करती है।

२-नस्य के सब भेद और उन का विधान आदि दूसरे वैद्यक प्रन्थों में देखना चाहिये, क्योंकि नस्य का

विधान बहुत विस्तृत है ॥

३-इस की मोटाई अगुष्ठ के समान होनी चाहिये ॥ ४-कोई आचार्य चौगुने जल में मिगाने को लिखते हैं ॥

४-काइ आचाव चाउन का विचान कर ते हैं से मयने से मन्य कहसाता है ॥ ५-इस को कोई आचार्य हिम कहते हैं तथा इसी जब को रई से मयने से मन्य कहसाता है ॥ ६-वस्ति के सब मेद तथा उन का विचान आदि इसरे नैयक अन्यों के देख लेना चाहिये, वर्यांकि इस का बहुत विस्तार है ॥

१-धूल्पान छः प्रकार का है-समन, वृंहण, रेचन, कासहा, नमन और अपधूपन, इन का विधान और उपयोग दूसरे वैद्यक प्रन्यों में देख केना चाहिये-बका हुआ, डरपोक, दुखिया, जिस को तरकाल बिलाविधि कराई गई हो, रेचन लिया हुआ, रात्रि में जागा हुआ, प्यासा, दाह से पीडित, जिस का ताह सूख रहा हो, उदररोगी, जिस का मस्तक तप्त हो, तिमिररोगी, छर्दिवाला, अफरे से पीडित, उर. अत- साला, प्रमेह से पीडित, पाण्हरोगी, गर्मववी की, स्का और श्लीप, जिस ने द्य शहद प्रत और आसव का उपयोग किया हो, जिस ने सम दही आदि का उपयोग किया हो, बालक, दृद्ध और कृश, इत्सारि प्राणियों को पूल्पान नहीं करना चाहिये॥

भावना—दवा के चूर्ण को दूसरे रस के पिछाने को (दूसरे रस में भिगाकर शुष्क करने को) भावना कहते हैं, एकवार रस में घोट कर या भिगा कर सुखाले, इस को एक भावना कहते हैं, इसी प्रकार जितनी भावनायें देनीं हों उतनी देते चले जीवें।

बाफ नाफ कई प्रकारसे ठी बाती है, बहुत सी सेंक और बांधने की दवारें भी बफारे का काम देती हैं, केवल गर्भ पानी की अथवा किसी चीन को डाल कर उकाले हुए पानी की बाफ सँकड़े मुखबाले वर्षन से केनी चाहिये, इस की विधि पहिले लिख जुके है।

बन्धेरण-किसी वनस्पति के पत्ते आदि को गर्भ कर शरीर के दुखते हुए स्थान पर वाँचने को वन्धेरण कहते हैं।

सुर्व्या—हरड़ आँवला तथा सेव आदि जिस चीन का मुरन्ना बनाना हो उस को उवाल कर तथा भी कर दुगुनी या तिगुनी खांड या मिश्री की चासनी में दुवा कर रख छोड़ना चाहिये, इसे मुरव्या कर्हते है।

सोदक बड़ी गोडी को मोदैक कहते हैं, मेथीपाक तथा सोंठपाक आवि के मोदक गुड़ खांड़ तथा मिश्री आदि की चासनी में बांधे जाते है।

सन्ध-द्वा के चूर्ण को दवा से चौगुने पानी में डाङ कर तथा हिला कर या मथ-कर छान कर पीना चाहिये, इसे मन्थ कहते हैं।

यवागू--कांजी-अनान के आटे की छःगुने पानी में उकाल कर गाडा कर के उतार केना चाहिये।

लेप—स्वी हुई दवा के चूर्ण को अथवा गीली वनस्पति को पानी में पीस कर छेप किया बाँता है, लेप दोपहर के समयमें करना चाँहिये ठंडी वरूत नहीं करना चाहिये, परन्तु रक्त पित्त, स्वन, दाह और रक्तविकार में समय का नियम नहीं है।

१-जितने रस में सब चूर्ण डूब जावे उतना ही रस भावना के लिये छेना चाहिये, क्योंकि यही भावना का परिमाण नैयों ने कहा है ॥

१-इस का मुख्य प्रयोजन पसीना ठानै से है कि पसीने के द्वारा दोष शरीर में से निकले ॥

१-यदि कोई कडी वर्त हो तो फिटकडी आदि के रोजाव से उसे नरम कर छेना चाहिये ॥

४-मधुपक इरड आदि को भी मुख्या ही कहते हैं।

५-अमयादि मोदक आदि मोदक कई प्रकार के होते हैं ॥

६-छेप के दो भेद है-प्रहेप और प्रवेह, पित्तसम्बधी कोथ में प्रछेप तथा कप्तसम्बधी कोथ में प्रदेह किया जाता है, (बिचान वैश्वक प्रन्धों में देखों)॥

७-रात्रि में छेप नहीं करना चाहिये परन्तु दुष्ट त्रणपर रात्रि में भी छेप करने में कोई हानि नहीं है, यह भी सरण रखना चाहिये कि प्राय: छेपपर छेप नहीं किया जाता है ॥

ख्रपड़ी वा पोल्टिस-गेहूँ का आटा, अलसी, नींन के पर्त तथा कांदा आदि को जल में पीस कर अथवा गर्भ पानी में मिला कर लगदी बना कर शोथ (स्वन) तथा गुमड़े आदिपर बांबना चाहिये, इसे खपड़ी वा पोल्टिस कहते हैं।

संक - संक कई प्रकार से किया जाता है - कोरे कपड़े की तह से, रेत से, ईट से, गर्म पानी से मरी हुई काच की शीबी से और गर्म पानी में डुवाकर निचोड़े हुए फला- हैन वा ऊनी कपड़े से अथवा बाफ दिये हुए कैपड़े से इत्यादि।

स्वरस—किसी गीली बनस्पैति की बाँट (पीस) कर आवश्यकता के समय थोड़ा सा जल मिला कर रस निकाल लेना चाहिये, इसे स्वरस कहेंते है, यदि बनस्पति गीली न मिले तो सूली दवा को अठगुने पानी में डकाल कर चौथा माग रखना चाहिये, अथवा २४ घण्टे तक पानी में भिगाकर रख छोड़ना चाहिये, पीछे मल कर छान लेना चौहिये, गीली वनस्पति के खरस के पीने की मात्रा दो तोले है तथा सूखी बनस्पति के खरस की मात्रा चार तोले है परन्तु वालक को खरस की मात्रा जावा तोला देनी चाहिये।

हिम-ओषि के चूर्ण की छः गुने जल में रातभर भिगा कर जो प्रातःकाल छान कर लिया जाता है: उस को हिम कहैते हैं।

क्षार—जी आदि वनस्पतियों में से जवासार आदि क्षार (सार) निकाले जाते हैं, इसी प्रकार सूली, कारपाठा (घीग्वारपाठा) तथा औंघाझाड़ा आदि मी बहुत सी चीजों का सार निकाला जाता है।

इस के निकालने की यह रीति है कि-वनस्पित को मूल (जड़) समेत उलाड़ कर उस के पश्चांग को जला कर राख कर लेनी चाहिये, पीछे चौगुने जल में हिला कर किसी मिट्टी के वर्तन में एक दिनतक रखकर उत्पर का नितरा हुआ जल कपड़े से छान लेना

१-संक के-जेहन, रोपण और छेखन, ये तीन मुख्य भेव है, वातपीडा में-जेहन, पिसपीडा में रोपण स्था कफ्पीड़ा में छेखन सेंक किया जाता है, इन का विधान आदि सव विधय वैद्यक प्रन्यों में देखना खाहिय, यह भी स्मरण रहे कि-सेंक दिन में करना चाहिये परन्तु अदि आवश्यक अर्थाद महादु.खदायी रोग हो तो रात्रि के समय में भी करना चाहिये ॥

२-पानी की नाफ से युक्त फलालैन अथवा ऊनी कपडे से रैंक करने की विधि पहिले किस चुके हैं ॥

३-चनस्पति वह छेनी चाहिये जो कि सरदी अग्नि और कीडे आदि से विगडी न हो ॥

४-इसे खरस तथा अगरस भी कहते हैं ॥

५-इसे खरस तथा रस भी कहते हैं ॥ ६-इस को शीतकषाय भी कहते हैं, इस के पीने की मात्रा दो पछ सर्थात् ८ तोले है ॥

१-यस मा साराम्याय मा मध्य दे हैं के बनाने की रीति यह किसी है कि बी के झक की राख ७-किन्हीं लोगों ने ववकार (बीखार) के बनाने की रीति यह किसी है कि बी के झक की राख एक सेर चौंसट (६४) सेर पानी में मिलाकर मोटे कपड़े में वह पानी कमकः २९ बार छान लेना पाक सेर चौंसट (६४) सेर पानी में मिलाकर मोटे कपड़े में वह पानी कसकर चूर्णवत (चूर्ण-चाहिये, फिर इस पानी को किसी पात्र में मर कर औदाना चाहिये, जब पानी जलकर चूर्णवत (चूर्ण-के समान) पदार्थ वाकी रह जाने उसी को बवझार (जवाखार) कहते हैं ॥

चाहिये, पीछे उस जल को फिर जलाना चाहिये, इस प्रकार जलानेपर आखिरकार क्षार पेंदी में सूख कर जम जायगा।

सत—गिलोय तथा सुलेठी आदि पदार्थों का सत बनाया जाता है, इस की रीति यह है कि—गीली औषघ को कूट जल में मथकर एक पात्र में जमने देना चाहिये, पीछें ऊपर का जल धीरे से निकाल डालना चाहिये, इस के पीछे पेंदी पर सफेदसा पदार्थ रह जाता है वही सुखने के बाद सैत जमता है।

सिरंका — अंग्रेंर जार्सेन तथा सांठे (गन्ना वा ईस) का सिरका बनाया जाता है, इस की रीति यह है कि — जिस पदार्थ का सिरका बनाना हो उस का रस निकाल कर स्था थोड़ासा नौसादर डाल कर धूप में रख देना चाहिये, सड़ उठनेपर तीन वा सात दिन में बोतलों को मर कर रख छोड़ना चाहिये, इस की मात्रा आधे तोले से एक तोले-तक की है, दाल तथा शाक में इस की खटाई देने से बहुत हाज़मा होता है, मोजन के पीछे एक वण्टे के बाद इसे पानी में मिलाकर पीने से पाचनशक्ति दुरुख होती है!

गुलकेन्द् गुलाव या सेवती के फूलों की पँखिड़ियों की मिश्री बुरका कर तह पर तह वेते जाना चाहिये तथा उसे देंक कर रख देना चाहिये, जब फूल गल कर एक रस हो नावे तब कुल दिनों के बाद वह गुलकन्द तैयार हो जाता है, यह वड़ी तरावट रखता है, उष्णकाल में मातःकाल इसे बोट कर पीने से अत्यन्त तराबट रहती है तथा अधिक प्यास नही लगती है।

कुछ औषघों के अंग्रेज़ी तथा हिन्दी नाम ॥

संख्या॥	अंग्रेज़ी नाम॥	हिन्दी नाम॥	संख्या।	अंग्रेजी नाम ॥	हिन्दी नाम॥
१	इनफ्यूज़न ॥	चाय ॥	११	पळास्टर ॥	छेप ॥
२	एकवा ॥	पानी ॥	१२	पोल्टिस ॥	छपड़ी ॥
3	पक्स्ट्राक्ट ॥	सत्व, घन ॥	१३	फोमेनटेशन॥	सेंक ॥

१-इस को सरकृत में सरव कहते हैं॥

१-इसे पूर्वीय देशों में जिरका भी कहते हैं, वहा सिरके में आम करोदे वेर और खीरा आदि फला को भी बालते हैं जो कि कुछ दिनतक उस में पढ़े रह कर जलन्त मुखाहु हो जाते हैं॥

३-अगूर का िरका बहुत तीस्ण (तेज) होता है ॥

४-जामुन का सिरका पेट के किये बहुत ही फायदेमन्द होता है, इस में शौडा सा काला नमक सिला कर पीने से पेट का दर्द शान्त हो जाता है ॥

५-गुलकन्द में प्रायः ने ही गुण समझने चाहियें जो कि गुलाव वा सेवती के फूलो में तथा मिश्री में हैं॥

६-यह-शीतल, हृदय को हितकारी, प्राही, शुक्रजनक (वीर्य को उत्पन करनेवाला), इलका, त्रिदीप-नाशक, रुधिरविकार को दूर करनेवाला, रंग को उक्बल करनेवाला तथा पाचन है।

8	एनिमा ॥	पिचकारी, वस्ति ॥	\$8	वाथ्	' वाफ, स्नान ॥
4	ओल्यम ॥	तेल (सानेका) ॥	१५	विल्स्टर ॥	फफोछा उठाना॥
દ્	अंग्वेन्टम ॥	मल्हम ॥	१६	मिक्सचर ॥	मिलावट ॥
છ	कन्फेक्सन ॥	मुरव्या, अचार ॥	१७	छाइकर ॥	मवाही ॥
6	टिंक्चर ॥	अर्क ॥	१८	लिनिमेंट ॥	तेल (लगाने का)॥
٩	डिकोक्सन॥	काढ़ा, उकाळी॥	१९	छोशन ॥	पोता घोने की द्वा॥
१०	पल्वीस ॥	चूर्ण ॥	२०	वाइन ॥	ञासव ॥

देशी तौल (वज़न)॥

१ रत्ती=चिरमीमर ॥	८ वाड=१ चौत्रज्ञीमर ॥
३ रत्ती= १ बाछ ॥	१६ वाख≔१ अठलीभर ॥
३ वाल=१ मासा ॥	३२ वाल=१ रुपयेमर ॥
६ मासा=१टंकै ॥	८० रुपयेभर=॥ सेर, पाकँड, रतल ॥
२ दंक=१ तोला॥	८० रुपयेमर≔१ सेर ॥
A 0	

४ बारू=अन्दानन १ दुअन्नीगर ॥

अंग्रेजी तैल और माप ॥

जशा स	७ जार मान ॥
सूली दबाइयों की तौछ ॥	पतली दवाइयों की माप ॥
१ ब्रेन =१ गेहूँभर॥	६० वूँद=मीनीम=१ झ्रम ॥
२० ग्रेन =१ स्कुपल ॥	८ ड्राम=१ झौस ॥
३ स्क्रुपल=१ ड्राम ॥	२० औंस=१ पीन्ट ॥
८ ह्याम =१ औंस ॥	८ पीन्ट=१ ग्यालन ॥
१२ बौंस =१ पारुण्ड ॥	
२ ब्रेन =१ रत्ती ॥	
६ प्रेन =१ वाछ ॥	
१ औस ≔२॥ रुपयेमर ॥	
	2 2.6

जो प्रवाही (पतली) दवाइयां ज़हरीली अथवा बहुत तेज़ नहीं होती हैं उन को साधा-रण रीति से (चमचा आदि भर के) भी पिछा देते हैं, उस का कम इस प्रकार है:—

१ टी. स्पुन फुळ=१ झ्म । १ डित्रर्ट०स्पुन फुळ= २ झ्म । १ टेवुळ स्पुन फुळ= ४ झूम है औंस । १ वाहनग्लास फुळ=२ औंस ।

१-परन्तु कहीं २ डंक चार ही मासे का माना जाता है ॥

अंग्रेजी में अवस्था के अनुसार दवा देने की देशी मात्रा ॥ पूरी अवस्था के आदमी को पूरी मात्रा का परिमाण (१ भाग गिनें तो) ॥

संख्या।	. अवस्था ॥	गात्रा ॥
8	१ से ३ महीने के वालक को ॥	पूरी मात्रा का १६ ॥
२	३ से ६ महीने के बालक को ॥	पूरी मात्रा का 🕄 ॥
Ę	६ से १२ महीने के बाळक को ॥	पूरी मात्रा का ३ ॥ .
8	१ से २ वर्ष के बालक को ॥	पूरी मात्रा का ै ॥
ч	२ से ३ वर्ष के बाळक को ॥	पूरी मात्रा का 🧜 🛚
६	३ से ४ वर्ष के बालक को ॥	पूरी मात्रा का 🖁 🛚
୍ଡ	८ से ७ वर्ष के वालक को ॥	पूरी मात्रा का 🚦 ॥
2	७ से १४ वर्ष के बालक को ॥	पूरी मात्रा का 🤰 🛮
-	१४ से २१ वर्ष के जवान को ॥	पूरी मात्रा का 🥞 ॥
१०	२१ से ६० वर्ष के पूर्णायु पुरुष को ॥	पूर्ण मात्रा देनी चाहिये ॥

विशोष बक्त र्वेय — एक महीने के बच्चे को एक वायविड़ंग के दोने के बजन जितनी दवा देनी चाहिये, दो महीने के बच्चे को दो दाने जितनी दवा देनी चाहिये, इस प्रकार से प्रति महीने एक एक वायविड़ंग जितनी मात्रा बढ़ाते जाना चाहिये, इस प्रकार से १२ महीने के बालक को वारह वायविड़ंग जितनी दवा चाहिये, जिस प्रकार वालक की मात्रा अवस्था की वृद्धि में बढ़ा कर दी जाती हैं उसी प्रकार साठ वर्ष की अवस्था के पीछे वृद्ध पुरुष की मात्रा धीरें २ घटानी चाहिये अर्थात् साठ वर्षतक पूरी मात्रा देनी चाहिये पीछे पति सात २ वर्ष से कपर लिखे कम से मात्रा को कम करते जाना चाहिये परन्तु धातु की भस्म तथा रसायिक दवा की मात्रा एक राई से लेकर अधिक से अधिक एक वाल तक भी दी जाती है।

अंग्रेजी-मात्रा ॥

			AINAH AH	71 11	
संख्या॥		अवस्था ॥	अधिक से अधिक	अधिक से अनिक	अधिक से अधिक
			एक औम वजन ॥	एक ड्राम बजन ॥	एक स्कुपल वजन॥
8		६ महीनेतक॥		३ श्रेन ॥	१ मेन ॥
र		१२ महीनेतक॥	२ स्कुपल ॥	५ ग्रेन ॥	१॥ त्रेन ॥
३	-	२ वर्षतकः॥	१ ड्राम ॥	८ अेन ॥	२॥ श्रेन ॥
8	२ से	३ वर्षतक॥	१। ड्राम ॥	९ ग्रेन ॥	३ श्रेन॥

⁹⁻यह विषय प्राय. देशी दवा के विषय में समझना चाहिये, अर्थात् अवस्था के अनुसार देशी दवा की मात्रा यह समझनी चाहिये॥

_	- 3					
ч		५ वर्षतक ॥	१॥ द्याम ॥	१२ बेन ॥	8	त्रेन ।।
દ્	५ से	७ वर्षतक ॥	२ इतम ॥	१५ श्रेन ॥		थ्रेन ॥
9	2	. 2 . 0		-	-3	अप ॥
G		१० वर्षतक ॥	३ ड्राम ॥	२० ब्रेन ॥	· ·	श्रेन ॥
6	१० के	१२ वर्षतक॥	॥ औस ॥	44		
-			ા ચાલ []	॥ द्वाम ॥	11	स्कृपङ ॥
0	90 m	१५ वर्षतक ॥	to more th			
			५ ड्राम ॥	४० ग्रेन ॥	88	त्रेन ॥
9 -	S 42 2	२० वर्षतक ॥	P		•	
10	124	र्० वयतक ॥	६ ड्राम ॥	८५ ग्रेन ॥	\$ 8	अन् ॥
0.0	2 - 2	200		•		
55	10 H	२१ वर्षतक ॥	१ औंस ॥	१ ड्राम ॥	9	स्कृपल ॥
				, X, 11	,	(301W)

विद्रोष सूचना—१-मात्रा शब्द बिस २ बगह लिखा हो वहां उसका अर्थ यह समझना चाहिये कि-इतनी दवा की मात्रा एक टक्क (वस्त) की है।

२—अवस्था के अनुसार दबाइयों की मात्रा का बजन यद्यपि ऊपर लिखा है परन्तु उस में भी ताकतवर और नाताकृत (कमजोर) की मात्रा में अधिकता तथा न्यूनता करनी चौहिये तथा स्त्री और मनुष्य की साति, ऋतु तथा रोग के प्रकार आदि सब वातों का विचार कर दबाकी मात्रा देनी चाहिये।

२—बालक को ज़हरीली दवा कभी नहीं देनी चौहिये, अफीम मिली हुई दवा भी चार महीने से कम अवस्थावाले वालक को नहीं देनी चौहिये, किन्तु इस से अधिक अवस्थावाले को देनी चाहिये और वह भी निशेष आवश्यकता ही में देनी चौहिये तथा देने के समय किसी विद्वान वैद्य वा डाक्टर की सम्मति लेकर देनी चाहिये।

४—चूर्ण (फॉकी) की मात्रा अधिक से अधिक दो बाल के अन्दर देनी चाहिये तथा पतली दवा चार आने भर अथवा एक छोटे चमचे भर देनी चाहिये परन्तु उस में दबई के गुण दोष तथा स्वभाव का विचार अवस्य करना चाहिये।

५-जो दवा पूरी अवस्था के आदमी को जिस बज़न में दी जावे उसे जगर छिले अनुसार अवस्थाकम से भाग कर के देना चाहिये।

६-वालक को सोंठ मिर्च पीपल और ठाल मिर्च आदि तीक्ष्ण ओषि तथा मादक (नजीली) ओषियां कभी नहीं देनी चाहियें।

9-क्योंकि दवा की शक्ति का सहन करने के क्षिये शक्ति की आवश्यकता है, इस लिये शक्ति का विचार कर ओषधि की मात्रा में न्यूनाधिकता कर लेनी चाहिये ॥

२-बालक को जहरीली दवा के देने से उस के रुपिर में अनेक विकार उत्पन हो जाते हैं जो कि

जरीर में सदा के लिये अपना घर बना लेते हैं और शरीर में अनेक हानियां करते हैं ॥ ३-क्योंकि बार महीने से कम अवस्थावाला बालक अफीम मिछी हुई दना की शक्ति का सहन नहीं

कर सकता है ॥ ४—विज्ञेष अवस्था में न दे कर प्राथ: अथवा नित्य देने से वह उस का अभ्यावी हो जाता है और उस से उस को अनेक हानियां पहुँचती हैं॥ ७—गिर्भणी स्त्री के लिये मिक्न २ रोगों की जो खास २ दवा शास्त्रकारों ने लिखी है वही देनी चाहिये, क्योंकि वहुत गर्भ दवाइयां तथा दखावर खीर तीक्ष्ण इलाज गर्भ को हानि पहुँचाते हैं।

८—सब रोगों में सब दवाइयां ताज़ी और नई देनी चाहि यें परन्तु वायिवड़ंग, छोटी पीपल, गुड़, घान्य, शहद और घी, ये पदार्थ दवा के काम के लिये एक वर्ष के पुराने

हेने चाहियें।

९.--गिलोय, कुड़ालाल, अदूसे के पत्ते, विदारीकन्द, सतावर, आसगेँघ और सोंफ, इत्यादि वनस्पतियों को दवा में गीली (हरी) लेना चाहिये तथा इन्हें दूनी नहीं लेना चाहिये।

१०-इन के सिवाय दूसरी बनस्पतियां सूखी छेनी चाहियें, यदि सूखी न मिछें अर्थात् गीछी (हरी) मिछें तो छिखे हुए बज़न से दूनी छेनी चाहियें।

११—जो वृक्ष स्थूल और बड़ा हो उस की जड़ की छाछ दवा में मिलानी चाहिये परन्तु छोटे वृक्षों की पतली जड़ ही लेनी चाँहिये।

१२—तमाम भस्म, तमाम रसायन दवायें तथा सब प्रकार के आसब ज्यों २ पुराने होते जानें त्यों २ गुणों में बढ कर होते हैं (विशेष गुणकारी होते हैं) परन्तु काष्ठादि की गोलियां एक वर्ष के बाद हीनसत्त्व (गुणरहित) हो जाती है, चूर्ण दो महीने के बाद हीनसत्त्व हो जाता है, औषधों के योग से बना हुआ बी तथा तेळ चार महीने के बाद हीनसत्त्व हो जाता है, परन्तु पारा गन्धक हीगछ और बच्छनाग आदि को शुद्ध कर दवा में डाळने से काष्ठादि रस दवाइया पुरानी होनेपर भी गुणयुक्त रहती है अर्थात् उन का गुण नहीं जाता है।

१२-काथ तथा चूर्ण आदि की बहुत सी दवाइयों में से यदि एक वा दो दवाइयां न मिठें तो कोई हरज नहीं है, अथवा इस दशा में उसी के सदद्य गुणवाली दूसरी इनाई मिळे तो उसे मिळा देनी चौहिये तथा नुसले में एक दो अथवा तीन दवाइयां रोग

१-प्रन्तु सांप आदि की नाबी, दुष्ट प्रथिनी, जळप्राय स्थान, इमशान, कपर सूमि और सार्ग में उत्पक्ष हुदें वाज़ी दबाई भी नहीं केनी चाहिये, तथा कीनों की खाई हुदें, अन्य से जली हुदें, शर्दा से मारी हुदें, इ. लगी हुदें, अथना अन्य किसी प्रकार से दुषित भी दना नहीं केनी चाहिये ॥

२-तार्त्पर्य यह है कि लम्बी और मोटी जहवाले (वट पीपल आदि) की छाल लेनी चाहिये तथा छोटी बहवाले (कटेरी घमासा आदि) के सबै अग अर्थात् बह, पत्ता, पूल, फल और शाक्षा लेने, परन्तु किन्हीं आचायों की यह सम्मति है जो कि ऊपर लिखी है ॥

^{1—}इन्छ ऒषधियों की प्रतिनिधि ओषधिया यहा दिखळाते हैं—जिन को उनके असाव में उपयोग में छाना चाहिये—चित्रक के असाव में दन्ती अधवा जोंगा का खार, वसासे के असाव में जवासा, तगर के असावमें कृठ, सूर्वों के असाव में जिंगनी की त्वचा, अहिंद्रा के असाव में मानकन्द, कदमणा के असाव में मोर-सिखा, मौरिसरी के असाव में काल कमल अथवा नीला कमल, नीले कमल के असाव में कमोदनी, चमेली के फूल के असाव में कोंग, आक आदि के दूध के असाव में आक आदि के पत्तों का रस, पुदुकरमल

के विरुद्ध हों तो उन्हें निकाल कर उस रोग को मिटानेवाली न लिखी हुई दवाइयों के भी उस नुससे में मिला देना चाहिये।

१४-यदि गोली बांधने की कोई चीन (रस आदि) न किसी हो तो गोली पानी ें बांधनी चाहिये।

१५-जिस जगह नुसखे में वज़न न लिखा हो वहां सन दवाइयां नरावर लेनी चाहियें

१६-यदि चूर्ण की मात्रा न िख्सी हो तो वहां चूर्ण की मात्रा का परिमाण पान तीछे से लेकर एक तोळेतक समझना चाहिये परन्तु जहरीळी चीज का यह परिमाण नहीं है।

१७-इस अन्य में विशेष दवाइयां नहीं दिखलाई गई है परन्तु बहुत से अन्यों में प्रायः बजन आदि नहीं लिखा रहता है इस से अविज्ञ लोग ववड़ाया करते है तथा कभी २ वजन आदि को न्यूनाधिक करके तकलीफ भी उठाते हैं, इस लिये सब के जानने के लिये संक्षेप से यहांपर इस विषय को सुचित करना अत्यावश्यक समझा गया ॥

यह चतुर्थ अध्यायका औषधपयोगनामक तेरहवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

और किलवारी के अभाव में कुठ, थूनेर के अभाव में कुठ, पीपरामुख के अभाव में बच्च और राजपी-पछ, बावची के अमाव में पमार के बीज, दावहत्वी के अभाव में हत्वी, रसोत के अभाव में दाखत्वी, सोरडी मिश्र के अभाव में फिटकरी, तालीसपत्र के लगाव में सर्गतालीस, भारंगी के सभाव में तालीस अथवा कटेरी की जह, रूचक के असाव में रेड का नमक, मुलहटी के असाव में बातकीएफ. असलवेत के अभाव में भूका, दास के अभाव में कम्मारी का फल, दास और कम्मारी दोनों के अभाव में बन्छक का फल, मखद्रवा के अमान में कींग, कत्तुरी के अमान में कंकील, ककील के अमान में चमेली का फल कपर के असाव में प्रगन्ध मोथा अववा गठीना, कैसर के असाव में कपूस के नये फूल, श्रीसण्ड (श्रेत धन्दन) के असाव में कपूर, केशर और बन्दन के असाव में आरू बन्दन, आरू बन्दन के असाव मे नई खस. अतीस के अभाव में नागरमोथा, हरड के अभाव में आँवला, नाग्केशर के अमाव में कमल की केशर. मेदा महामेदा के अभाव में सतावर. जीवक ऋवमक के अभाव में विदारीकन्द. काकोली और काकोली के समाव में असर्गंघ. ऋदि वृद्धि के अभाव में बाराहीकन्द, वाराहीकन्द के अमाव में चर्म काराज मिलाये के असाव में लाल चन्दन अथवा चित्रक, ईस के असाव में नरसल, सुवर्ण के असाव में सोनामक्वी. नांदी के अभाव में रूपामक्वी, दोनों मिक्षकाओं (सर्णमिक्षका और रजतमिक्षका) के अभाव में खर्ण गेरू, द्ववर्णभसा और रत्रतमसा के अमाव में कान्तिकोइ की भसा, कान्तिकोइ के अभाव में तीहण (खेरी) लोह, मोती के बसाव में मोती की सीप, शहद के असाव में पुराना गुड़, सिश्री के अभाव में सफेद दूरा, सफेद दूरे के अभाव में सफेद खाड, दूध के अभाव में सूग का रस भागवा ससर का रस, इत्यादि ॥

चौदहवां प्रकरण-ज्वरवर्णन॥

ज्वर के विषय में आवस्यक विज्ञान ॥

ज्वर का रोग यद्यपि एक सामान्य प्रकार का गिना जाता है परन्तु विचार कर देखा जावे तो यह रोग बड़ा कठिन है, क्योंकि सब रोगों में मुख्य होने से यह सब रोगों का राजा कहलाता है, इसल्यि इस रोग में उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, देखिये ! इस मारत वर्ष में बहुत सी सृत्युर्थे प्रायः ज्वर ही के कारण होती हैं, इसल्यि इस रोग के समय में इस के भेदों का विचार कर उचित चिकित्सा करनी चाहिये, क्योंकि भेद के जाने विना चिकित्सा ही व्यर्थ नहीं जाती है किन्तु यह रोग प्रवल्ता को धारण कर भयानक रूप को पकड़ लेता है तथा अन्त में प्राणधातक ही हो जाता है।

ज्वर के बहुत से भेद हैं—जिन के लक्षण आदि भी पूर्वाचारों ने प्रथक् २ कहे हैं परन्तु यह सब प्रकार का ज्वर किस मूल कारण से उत्यक्त होता है तथां किस प्रकार चढ़ता और उतरता है इत्यादि वातों का सन्तोषजनक (हृदय में सन्तोष को उत्यक्त करने वाला) समाधान अधावधि (आजतक) कोई भी विद्वान् ठीक रीति से नहीं कर सका है और न किसी प्रन्थ में ही इस के विषय का समाधान पूर्ण रीति से किया गया है किन्तु ज्यानी शक्ति और अनुसव के अनुसार सब विद्वानों ने इस का कथन किया है, केवल यही कारण है कि—वड़े २ विद्वान् वैद्य भी इस रोग में बहुत कम कृतकार्य होते है, इस से सिद्ध है कि—ज्वर का विषय बहुत ही गहन (कठिन) तथा पूर्ण अनुसवसाध्य है, ऐसी दशा में वैद्यक के वर्तमान प्रन्थों से ज्वर का जो केवल सामान्य सहूप और उस की सामान्य चिकित्सा जानी जाती है उसी को बहुत समझना चाहिये।

उक्त न्यूनता का विचार कर इस प्रकरण में गुरुपरम्परागत तथा अनुभवसिद्ध ज्वर का विषय लिखते हैं अर्थात् ज्वर के मुख्य २ कारण, लक्षण और उन की चिकित्सा को दिखलाते हैं—इस से पूर्ण आशा है कि—केवल वैच ही नहीं किन्तु एक साधारण पुरुष भी इस का अवलम्बन कर (सहारा लेकर) इस महाकठिन रोग में कृतकार्थ हो सकता है।

ज्वर के स्वरूप का वर्णन ॥

स्ररीर का गर्म होकर तप जाना अथवा शरीर में जो साभाविक (कुदरती) उप्णता (गर्मी) होनी चाहिये उस से अधिक उष्णता का होना यह ज्वर का मुख्य कैंप है,

१-सस्थान, व्यक्तन, छिङ्ग, उक्षण, चिङ्क और आकृति, ये छः शब्द रूप के पर्यायनाचक (एकार्य-वाची) हैं॥

परन्तु इस प्रकार से शरीर के तपने का क्या कारण है और वह (तपने की) किया किस प्रकार होती है यह विषय बहुत सूक्ष्म है, देशी वैद्यकशासने जबर के विषय में यही सिद्धान्त ठहराया है कि वात, पित्त और कफ, ये तीनों दोष अयोग्य आहार और विहार से कुपित होकर जठर (पेट) में जाकर अग्नि को बाहर निकाल कर ज्वर को उत्पन्न करते हैं, इस विषय का विचार करने से यही सिद्ध होता है कि—वात, पित्त और कफ, इन तीनों दोषों की समानता (वरावर रहना) ही आरोग्यता का चिह्न है और इन की विकम्मता अर्थाद न्यूनाधिकता (कम वा ज्यादा होना) ही रोग का चिह्न है तथा उक्त दोषों की समानता और विषमता केवल आहार और विहार पर ही निर्मर है।

इस के सिवाय—इस विषय पर विचार करने से यह भी सिद्ध होता है कि जैसे शरीर में बायु की बृद्धि दूसरे रोगों को उत्पन्न करती है उसी प्रकार वह बातज्वर को भी उत्पन्न करती है, इसी प्रकार पित्त की अधिकता अन्य रोगों के समान पित्तज्वर को तथा कफ की अधिकता अन्य रोगों के समान पित्तज्वर को तथा कफ की अधिकता अन्य रोगों के समान कफज्वर को भी उत्पन्न करती है, उक्त कम पर ध्यान देने से यह भी समझमें आ सकता है कि—इन में से दो दो दोषों की अधिकता अन्य रोगों के समान दो दो दोषों के उक्षणवाले ज्वर को उत्पन्न करती है और तीनों दोषों के विकृत होने से वे (तीनों दोष) अन्य रोगों के समान तीनों दोषों के उक्षणवाले त्रिदोष (सन्निपात) ज्वर को उत्पन्न करते हैं।

ज्वर के भेदों का वर्णन ॥

ज्वर के मेदों का वर्णन करना एक बहुत ही कठिन विषय है, क्योंकि ज्वर की उत्पत्तिके अनेक कारण हैं, तथापि पूर्वाचार्यों के सिद्धान्त के अनुसार ज्वर के कारण को यहां दिखळाते हैं—ज्वर के कारण मुख्यतया दो प्रकार के है—आन्तर और बाध, इन में से आन्तर कारण उन्हें कहते हैं जो कि शहर से उत्पन्न होते हैं, हन में से आन्तर कारणों के दो मेद हैं—आहार विहार की विषमता अर्थात् आहार (मोजन पान) आदि की तथा विहार (डोळना फिरना तथा खीसक आदि) की विषमता (विरुद्ध चेष्टा) से रस का विगड़ना औ उस से ज्वर का आना, इस प्रकार के कारणों से सर्व साधारण ज्वर उत्पन्न होते हैं, जैसे कि—तीन तो प्रयक् र दोषवाळे, तीन दो र दोषवाळे तथा मिश्रित तीनों दोषवाळा हत्यादि, इन्हीं कारणों से उत्पन्न हुए उवरों में विषमज्वर आदि ज्वरों का भी समावेश हो जाता है, शरीर के अन्दर शोध (सूजन) तथा गांठ आदि का होना आन्तर कारण का दूसरा भेद है अर्थात् भीतरी क्षोध तथा गांठ आदि के वेग से ज्वर आन्तर कारण का दूसरा भेद है अर्थात् भीतरी क्षोध तथा गांठ आदि के वेग से ज्वर

का आनी, ज्वर के बाब कारण वे कहलाते हैं जो कि सब आगन्तुक ज्वरों (जिन के विषयों आगे लिखा जावेगा) के कारण हैं, इन के सिवाय हवा में उड़ते हुए जो चेपी ज्वरों के परमाणु हैं उनका भी इन्हीं कारणों में समावेश होता है अर्थात् वे भी ज्वर के बाब कारण माने जाते हैं ॥

देशी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ज्वरों के भेद ॥

देशी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ज्वरों के केवल दश भेद हैं अर्थात् दश प्रकार का ज्वर माना जाता है, जिन के नाम ये हैं—वातज्वर, पिचज्वर, कफज्वर, वातिपचज्वर, वात-कफज्वर, कफिपचज्वर, सिन्निपातज्वर, आगन्तुक ज्वर, विषमज्वर और जीर्णज्वर ॥

अंग्रेजी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ज्वरों के भेद ॥

अंग्रेज़ी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ज्वरों के केवल चार भेद हैं अर्थात् अंग्रेज़ी वैद्यक शास्त्र में मुख्यतया चार ही प्रकार का ज्वर माना गया है, जिन के नाम ये है-जारीज्वर, आन्तरज्वर, रिमिटेंट ज्वर और फूट कर निकल्नेवाला ज्वर ।

इन में से प्रथम जारी ज्वर के चार भेद हैं-सादातप, टाइफस, टाईफोइड और फिर २ कर आनेवाला ।

दूसरे आन्तरज्वर के भी चार भेद है—ठंड देकर (शीत छग कर) नित्य आने-बाछा, एकान्तर, तेजरा और चौथिया।

तीसरे रिमिटेंट ज्वर का कोई भी भेद नहीं है , इसे दूसरे नाम से रिमिटेंट फीवेंर भी कहते हैं।

चौथे फूट कर निकलने बालेज्वर के बारह मेत हैं-शीतला, ओरी, अचपड़ा (आकड़ा काकड़ा), लाल बुखार, रंगीला बुखार, रक्तवायु (विसर्प), हैज़ा वा मरी का तप, इन्छु-एज़ा, मोती क्षरा, पानी क्षरा, थोथी क्षरा और काला मूंघोरों।

इन सब ज्वरों का वर्णन कमानुसार आगे किया जावेगा ॥

^{9—}इस कारण को अप्रेजी नैशक में जबर के कारण के प्रकरण में यद्यपि नहीं गिना है परन्तु देशी नैशकशाल में इस को जबर के कारणों में माना ही है, इस लिये जबर के आन्तर कारण का दूसरा मेद यही है।

२-देशी वैयकशास्त्र के अनुसार वे चारो मेद विषम ज्वर के हो सकते हैं ॥

र-देशी वैश्वकशास्त्र के अनुसार यह (रिमिटेट ज्वर) विषयञ्चर का एक भेद सन्ततज्वर नामक हो सकता है ॥

४-अप्रेजी भाषा में उत्तर की फीवर कहते हैं ॥

५-देशी वैचकशास में मसूरिका को क्षुद्र रोग तथा मुघोरा नाम से लिखा है ॥

उवर के सामान्य कारण ॥

अयोग्य आहार और अयोग्य विहार ही ज्वर के सामान्य कारण हैं, क्योंकि इन्हीं दोनों कारणों से शरीरस्थ (शरीर में स्थित) बात विक्रत (विकार युक्त) होकर ज्वर क्रे उत्पन्न करता है।

यह भी स्मरण रहे कि-अयोग्य आहार में बहुत सी बातों का समावेश होता है, जैसे बहुत गर्म तथा बहुत ठंढी खुराक का खाना, बहुत मारी खुराक का खाना, विगड़ी हुई और बासी ख़राक का खाना, प्रकृति के विरुद्ध ख़राक का खाना, ऋत के विरुद्ध ख़राक का खाना, भूख से अधिक खाना तथा दृषित (दोष से युक्त) वर का पीना, इत्यादि ।

इसी प्रकार अयोग्य विहार में भी बहुत सी बातों का समावेश होता है, जैसे-बहुत महनत का करना, बहुत गर्मी तथा बहुत ठंढ का सेवन करना, बहुत विकास करना तथा खराब हवा का सेवन करना, इत्यादि ।

बस ये ही दोनों कारण अनेक प्रकार के ज्वरों को उत्पन्न करते हैं ॥

ज्वर के सामान्य लक्षण ॥

ज्यर के बाहर प्रकट होने के पूर्व आन्ति (अकावट), नित्त की विकलता (वेनैनी), मुख की विरसता (विरसपन अर्थात् स्वाद का न रहना), आंखों में पानी का आना, जॅमाई, ठंढ हवा तथा भूप की वारंवार इच्छा और अनिच्छा, अंगों का हटना, शरीर में भारीपन, रोमाश्च का होना (रोंगटे लड़े होना) तथा मोजन पर अरुचि इत्यादि छक्षण होते हैं, किन्तु ज्वर के बाहर प्रकट होने के पीछे (ज्वर भरने के पीछे) त्वचा (चमड़ी) गर्म माछम पड़ती है, वही ज्वर का प्रकट चिह्न है, ज्वर में प्रायः पित्त अथवा गर्मी का मुख्य उपद्रव होता है, इस लिये ज्वर के प्रकट होने के पीछे श्वरीर में उष्णता के भरते के साथ जपर लिखे हुए सब चिह्न बराबर बने रहते हैं ॥

वातज्वर का वेर्णन ॥

कारण-निरुद्ध आहार और विहार से कोप को पास हुआ वायु आमाशय (होजरी) ९--तात्पर्य यह है कि-अयोग्य आहार और अयोग्य विदार, इन दोनों हेतुओं से आमाशय में स्थित

जो बात पित्त और कफ हैं वे रस सादि घातुओं को दूबित कर तथा जठराप्ति को बाहर निकाल कर ज्वर

२—थवपि प्रलेक रोग के झान के किये हेतु (कारण), सम्प्राप्ति (इष्ट हुए दोष से अथवा फैळते हुए को उत्पन करते हैं ॥ रोग से रोग की उत्पत्ति), पूर्वरूप (रोग की उत्पत्ति होने से पहिले होनेवाले विष्ठ), लक्षण (रोगोत्पत्ति के हो जाने पर उस के निह) और उपक्रम (औषध मादि देने के द्वारा रोगी को मुख मिळने से वा न भिलने से रोग का निश्वय), इन पांच नातों की आवश्यकता है इस लिये प्रलोक रोग के वर्णन में इन पाँचों का वर्णन करना यथि आवश्यक था तथापि इन का विद्वान वैद्यों के लिवे आवश्यक समझकर हम ने इन पोचों का वर्णन न करके केवल हेतु (कारण) और लक्षण, इन दो ही वालों का वर्णन रोग प्रकरण न किया है, क्योंकि साधारण गृहस्थों को उक्त दो ही विवय बहुत खागदायक हो सकते हैं ॥

में जाकर उस में स्थित रस (आम) को दृषित कर जठर (पेट) की गर्मी (अग्रि) को बाहर निकालता है उस से वातज्वर उत्पन्न होता है।

लक्ष्मणं—जँमाई (वंगासी) का जाना, यह वातज्वर का मुख्य चिह्न है, इस के सिवाय ज्वर के वेग का न्यूनाधिक (कम ज्यादा) होना, गला ओष्ठ (होठ) और मुख का सूखना, निद्रा का नाश, छीक का बन्द होना, शरीर में रूक्षता (रूखापन), दस की कवजी का होना, सब शरीर में पीड़ा का होना, विशेष कर मस्तक और हृदय में बहुत पीड़ा का होना, मुख की विरसता, शूळ और अफरा, इत्यादि दूसरे मी चिह्न माख्म पड़ते है, यह वातज्वर प्रायः वायुपकृतिवाळे पुरुष के तथा वायु के प्रकोप की ऋतु (वर्षा ऋतु) में उत्यन्न होता है।

चिकित्सा—१—यद्यपि सब मकार के ज्वर में परम हितकारक होने से छह्वन सर्वोंपरि (सब से ऊपर अर्थात् सब से उत्तम) चिकित्सा (इलाज) है त्यापि दोष, मकृति,
वेग्न, काल और अवस्था के अनुसार शरीर की स्थिति (अवस्था) का विचार कर छह्वन
करना चाहिये, अर्थात् मवल बातज्वर में शक्तिमान् (ताकृतवर) पुरुष को अपनी शक्ति
का विचार कर आवश्यकता के अनुसार एक से छः छंघन तक करना चाहिये, यह मी
जान लेना चाहिये कि—छंघन के दो मेद हैं—निराहार और अस्पाहार, इन में से बिलकुंछ
ही नहीं लाना, इस को निराहार कहते है, तथा एकाथ बख्त बोड़ी और हलकी ख़ुराक
का लाना जैसे—दिलया, भात तथा अच्छे मकार से सिजाई हुई मूंग और अरहर (तूर) की दाल इत्यादि, इस को अस्पाहार कहते है, साधारण बात ज्वर में एकाथ टंक
(बख्त) निराहार छंघन करके पीछे मकृति तथा दोष के अनुकूछ ज्वर के दिनों की
मर्यादा तक (जिस का वर्णन आगे किया जावेगा) ऊपर लिले अनुसार इलकी तथा
थोड़ी ख़ुराक लानी चाहिये, क्योंकि—ज्वर का बही उत्तम पथ्य है, यदि इस का सेवन मली
भांति से किया जावे तो औषिष के लेने की भी आवश्यकता नहीं रहती है।

⁹⁻जीपाई-यहाँ वेग कम्प तन होई ॥ ओठ कण्ठ मुख स्वत सोई ॥ १ ॥
निद्रा अरु छिका को नासू ॥ रूखो अद्य क्ष्यज हो तासू ॥ १ ॥
क्षिर इद सब ऑग पीड़ा होने ॥ बहुत उवासी गुख रस खोने ॥ ३ ॥
गाढी निष्ठा सूत्र छ काळा ॥ उष्ण वस्तु चाहै वित नाला ॥ ४ ॥
नेत्र छ छाळ रक्ष पुनि होई ॥ उदर आफरा पीडा सोई ॥ ५ ॥
वातज्वरी के एते छक्षण ॥ इन पर ब्यानहिं धरो विवस्तण ॥ ६ ॥

२-क्योंकि क्षम करने से अप्ति (आहार के न पहुँचने से) कोठे में स्थित दोगों को पकाती है और जब दोष पक जाते हैं तब उन की प्रवजता जाती रहती है, परन्तु जब अंकन नहीं किया जाता है अर्थात् आहार को पेट में पहुँचाया जाता है तब अप्ति उसी आहार को ही पकाती है किन्तु दोगों को नहीं पकाती है।

र-यदि कदाचित् ऊपर कहे हुए छंघन का सेवन करने पर भी ज्वर न उतरे तो सब मकार के ज्वरवाओं को तीन दिन के बाद इस औषधि का सेवन करना चाहिये-देवदार दो रुपये भर, घनिया दो रुपये भर, सींठ दो रुपये भर, रींगणी दो रुपये भर तथा बड़ी कण्टाळी दो रुपये भर, इन सब खीषघों को कूट कर इस में से एक रुपये भर औषघ का काड़ा पाव भर पानी में चढ़ा कर तथा डेड छटांक पानी के बाकी रहने पर छान कर छेना चाहिये, क्योंकि इस काथ से ज्वर पाचन को प्राप्त होकर (परिपक होकर) उतर जाता है।

३—अथवा ज्वर आने के सातवें दिन दोप के पाचन के लिये गिलोय, सांठ और पीपरा मूल, इन तीनों औपमों के काथ का सेवन ऊपर लिखे अनुसार करना चाहिये, इस से दोष का पाचन होकर ज्वर उत्तर जाता है।

पित्तज्वर का वर्णन ॥

कारण—पित्त को बढ़ानेवाले मिथ्या आहार और विहार से विगड़ा हुआ पित्त आमाश्रय (होजरी) में जाकर उस (आमाश्रय) में स्थित रस की दृषित कर जठर की गर्मी को बाहर निकालता है तथा जठर में स्थित वायु को भी कुपित करती है, इस लिये कोप को प्राप्त हुआ वायु अपने स्वमौद के अनुकृत जठर की गर्मी को बाहर निकालता है उस से पित्तज्वर उत्पन्न होता है।

लक्ष्मण्य - भारतों में दाह (जलन) का होना, यह पित्तज्वर का मुख्य लक्षण है, इस के सिवाय ज्वर का तीक्ष्ण वेग, प्यास का अत्यंत लगना, निद्रा थोड़ी आना, अती-सार अर्थात् पित्त के वेग से दस्त का पतला होनों, कण्ठ ओष्ठ (ओठ) मुख और नासिका

१-यह भी स्वरण रखना चाहिये कि-एक दोष कृपित होकर दूसरे होष को भी कृपित वा विहत (विकार युक्त) कर देता है ॥

२-वायु का यह सक्त वा स्थान है कि वायु दोप (कक्त कोर पित्त), बाहु (रस और रक्त कारि) कीर मक को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचानेवाला, आशुकारी (जल्दी करने वाला), रको गुण-बाला, सूक्ष्म (बहुत वारीक अर्थात देखने में व आनेवाला), स्म (रूखा), शीतल (उण्डा), इलका और व्यवल (एक जगह पर न रहनेवाला) है, इस (वायु) के पाच मेद हैं—उदान, प्राण, समान, अपान और व्यान, इन में से कष्ठ में उदान, हृदय में प्राण, नामि में समान, शुदा में अपान और सम्पूर्ण हारीर में व्यान वायु रहता है, इन पाचों वायुओं के प्रथक् २ कार्य आदि सब बातें वृक्षरे वैद्यक प्रन्थों में देख देनी चाहियें, ग्रहां उन का वर्णन विस्तार के अय से तथा अनावश्यक समझ कर नहीं करते हैं ॥

३—जीपाई—तीक्षण नेग जु तुपा अपारा ॥ निहा अल्प होग अतिसारा ॥ १ ॥ कण्ठ ओछ मुख नासा पाके ॥ मुर्का दाह क्ति अम ताके ॥ २ ॥ परसा तन कहु मुख वक बादा ॥ वमन करत अरु रह उन्मादा ॥ ३ ॥ धीतळ वज्ज बाह तिस रहरें ॥ नेत्रन तें जु प्रवाह जळ बहरें ॥ ४ ॥ नेत्र मृत्र पुनि मळ हु पीता ॥ पित्त ज्वर के ने ळक्षण मीता ॥ ५ ॥

४-इस ज्वर में पित्त के वेग से इस्त ही पतला होता है परन्तु इस पतले दक्त के होने से श्रतीसार रोग नहीं समझ लेना नाहिये ॥ (नाक) का पकना तथा पसीनों का आना, मूर्छा, दाह, चित्तप्रमें, मुख में कडुआपन, प्रलाप (बड़बड़ाना), वमन का होना, उन्मत्तपन, श्रीतळ वस्तु पर इच्छा का होना, नेत्रों से जल का गिरना तथा विष्ठा (मल) मूत्र और नेत्र का पीला होना, इत्यादि पित्तज्वर में दूसरे भी लक्षण होते है, यह पित्तज्वर प्रायः पित्तप्रकृतिवाले पुरुष के तथा पित्त के प्रकोपकी ऋतु (शरद् तथा श्रीष्म ऋतु) में उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—१-इस ज्वर में दोष के वल के अनुसीर एक टंक (वल्त) अथवा एक दिन वा जब तक ठीक रीति से मूख न लैंगे तव तक लंघन करना चाहिये, अथवा मूंग की दाल का पानी, मात तथा पानी में पकाया (सिजाया) हुआ साबूदाना पीना चाहिये।

२-अथवा-पित्तपापड़े वा चासिया पित्तपापड़े का काँड़ा, फांट वा हिम पीना चाहिये ॥

३-अथवा-दाल, हरड़, मोयाँ, कुटकी, किरमांछे की गिरी (अमछतास का गूदा) और पिचपापड़ा, इन का काढ़ा पीने से पिचज्वर, शोर्ष, दाह, अम और मूछी आदि उप-द्रव मिटकर दस्त साफ आना है।

१-अथवा-पित्तपापड़ा, रक्त (लाल) चन्दन, दोनों प्रकार का (सफेद तथा काला) बाला, इन का काथ, फांट अथवा हिम पित्तज्वर को मिटाता है।

५—रात को ठंढे पानी में भिगाया हुआ धनियेँ का अथवा गिल्लोय का हिम पीने से पिराज्यर का दाह शान्त होता है।

६—यदि पित्तज्वर के साथ में दाह बहुत होता हो तो कबे चावलों के घोवन में थोड़े से चन्दन तथा सींठ को पिस कर और चावलों के घोवन में मिला कर थोड़ा शहद और मिश्री डाल कर पीना चाहिये !!

ì

3

1

F

१-चित्तश्रम अर्थात् चित्त का स्थिर न रहना ॥

९-दोष के वल के अनुसार अर्थात् विकृत (विकार को प्राप्त हुआ) दोष जैसे लघन का सहन कर सके उतना ही आंर वैसा ही अधन करना चाहिये ॥

३-दोष के विकार की यह सर्वोत्तम पहिचान भी है कि जब तक दोय विकृत तथा कथा रहता है तब तक भूल नहीं कगती है ॥

४-काढा, फाट तथा हिम आदि बनाने की विधि इसी अध्याय के औपधप्रयोगवर्णन नामक तेरहर्ने प्रकरण में किस चुके हैं, वहा वेस लेना चाहिये ॥

५-मोथा खर्यात् नागरमोथा (इसी प्रकार मोया शब्द से सर्वत्र नागरमोथा समझना चाहिये) ॥

६-शोप अर्थात् शरीर का सूखना ॥

७-वाला अर्थात् नेत्रवासा, इस को सुगववाला भी कहते हैं, यह एक प्रकार का सुगन्धित (खबबूदार) तृण होता है, परन्तु पसारी क्षेण इस की जगह नाडी के सूखे साग को हे देते हैं उसे नहीं केना चाहिये॥

कफडवर का वर्णन॥

कारण कफ को बढानेवाँ के मिथ्या आहार और विहार से दूषित हुआ कफ जठर में जाकर तथा उस में स्थित रस को दूषित कर उस की उष्णता को बाहर निकारुता है, एवं कुपित हुआ वह कफ वायु को भी कुपित करता है, फिर कोप को प्राप्त हुआ वायु उष्णता को बाहर लाता है उस से कफल्वर उत्पन्न होता है।

ख्यां — अत्र पर अरुचि का होना, यह कफुक्तर का गुस्य रूक्षण है, इस के सिवाय अंगों में भीगापन, जबर का मन्द वेगै, मुख का मीठा होना, आरुस, तृप्ति का माद्धस होना, श्रीत का रूपना, देह का भारी होना, नीद का अधिक आना, रोमाश्व का होना, रेडण्म (कफ़) का गिरना, वमन, उनाकी, मरू; मूत्र; नेत्र; त्वचा और नल का श्वेत (सफेद) होना, श्वास, खांसी, गर्मी का प्रिय रूपना और मन्दामि, इत्यादि दूसरे भी चिह्न इस ज्वर में होते हैं, यह कफुक्तर प्राय: कफुम्कृतिवांक पुरुष के तथा कफ़ के कोप की ऋतु (वसन्त ऋतु) में उत्पक्ष होता है।

चिकित्सा—१—फफज्वरवाळे रोगी को ढंघन विशेष सब होता है तथा बीम्य छंघन से दूषित हुए दोष का पाचन भी होता है, इसळिये रोगी को जब तक अच्छे प्रकार से मूख न छगे तब तक नहीं खाना चाहिये, अथवा भूंग की दाल का ओसामण पीना चाहिये।

२-गिलोय का काढ़ा, फांट अथवा हिम शहद डाल कर पीना चाहिये।

३—छोटी पीपल, हरड़, बहेड़ा और आंवला, इन सब को सममाग (बराबर) लेकर तथा चूर्ण कर उस में से तीन मासे चूर्ण को शहद के साथ चाटना चाहिये, इस से कफ ज्वर तथा उस के साथ में उत्पन्न हुए खांसी श्वास और कफ दूर हो जाते है।

१—कफ को बढानेवाले आहार—क्रिग्ध श्रीतक तथा मधुर पदार्थ हैं तथा कफ को वढानेवाले विहार अधिक निहा आदि जानने चाहियें॥

२—चौपाई - मन्द नेग मुख मीठो रहहै ॥ बाउच तृप्ति जीत तन गहरूँ ॥ ९ ॥ भारी तन अति निद्रा होने ॥ रोम उठें पीनस रुचि खोषे ॥ २ ॥ श्रुक्त मूत्र नख निष्ठा जासू ॥ भेत नेत्र खच खांसी श्वास् ॥ ३ ॥ वसन उदाकी उष्ण मन बहुई। ॥ एते उक्षण कफज्वर अहुई। ॥ ४ ॥

३-कफ शीतल है तथा सन्द गतिवाला है इस लिये ज्वर का भी वेग मन्द ही होता है।
४-कफ का स्वभाव तृतिकारक (तृति का करनेवाला) है इस लिये कफज्वरी लघन का विशेष
सहन कर सकता है, दूसरे-कफ के विकृत तथा कृषित होने से बठरात्रि अखन्त शान्त हो जाती है, इस
लिये भूख पर रुचि के न होने से भी उस को लघन सक्क होता है।

५-पहिले कह ही चुके हैं कि लंबन करने से जठराति दोव का पाचन करती है ॥

४-इस ज्वर में अङ्से का पत्ता, मूरींगैणी तथा गिलोय का काटा गहद डाल कर पीने से फायदा करता है ॥

द्विदोषज (दो २ दोषींवाले) ज्वरों का वर्णन॥

पहिले कह चुके है कि-दो र दोषवाले ज्वरों के तीन मेद है अर्थात् वातिपितज्वर, वातिकफज्वर और पित्तकफज्बर इन दो र दोषवाले ज्वरों में दो र दोषों के लक्षण मिले हुए होते हैं , जिन की पहिचान सूक्ष्म दृष्टि वाले तथा वैद्यक्त विद्या में कुशल अनुमवी वैद्य ही अच्छे प्रकार से कर सकते हैं , इन दोर दोषवाले ज्वरों को वैद्यक शास्त्र में द्वन्द्वज तथा मिश्रज्वर कहा गया है, अब कम से इन का विषय संक्षेप से दिखलाया जाता है ॥

वातिपत्तज्वर का वर्णन ॥

स्वस्पा — जभाई का बहुत जाना और नेत्रों का जलना, ये दो लक्षण इस ज्वर के मुख्य है, इन के श्विवाय—प्यास, मूर्छा, अम, दाह, निद्धा का नाश, मसाक में पीड़ा, वमन, अक्वि, रोमाच्च (रोंगटों का खड़ा होना), कण्ठ और मुख का सूखना, सन्वियों में पीड़ा और अन्यकार दर्शन (अँधेरे का दीखना), ये दूसरे भी लक्षण इस ज्वर में होते हैं।

चिकित्सा--१-इस ज्वर में भी पूर्व िल्ले अनुसार रुद्धन का करना पथ्य है।

१--भूरींगणी को रेगनी तथा कथ्टकारी (क्टेरी) भी कहते हैं, प्रयोग में इस की जब ली जाती है, परन्तु जब न मिलने पर पद्माद्म (पानों अंग अर्थात् जब, पत्ते, फूल, फल और शाखा) भी काम में आता है, इस की साधारण मात्रा एक मासे की है।

२—सर्थात् दोनों ही दोयो के छक्षण पाये जाते हैं, जैसे—वातिपत्तज्वर मे—वातज्वर के तथा पित्त-ज्वर के (दोनों के) मिन्नित छक्षण होते हैं, इसी प्रकार वातकफज्वर तथा पित्तकफज्वर के विपय में भी जान केना वाहिये॥

१—वयोकि मिश्रित सक्षणों में दोपो के अञ्चाची मान की कल्पना (कीन सा दोष कितना बढा हुआ है तथा कीन सा दोप कितना कम है, इस बात का निवय करना) बहुत कठिन है, वह पूर्ण विद्वान् तथा अनुमनी वैद्य के सिवाय और किसी (साधारण वैद्य आदि) से नहीं हो सकती है ॥

४-इन दो २ होपनाले ज्वरों के वर्णन में कारण का वर्णन नहीं किया जानेगा, क्योंकि प्रलेक होप-बाले ज्वर के निपय में को कारण कह चुके हैं उसी को मिश्रित कर दो २ दोवबाले ज्वरों में समझ लेना चाहिये, जैसे-वानज्वर का जो कारण कह चुके हैं तथा पित्तज्वर का जो कारण कह चुके हैं इन्हीं दोनों को मिलाकर वातिपत्तज्वर का कारण जान लेना चाहिये, इसी प्रकार वातकफज्वर तथा पित्तकफज्वर के निपय में भी समझ लेना चाहिये॥

५-चौपाई--एपा मूरळा अम अह दाहा ॥ नींदनाश हिर पीड़ा ताहा ॥ ९ ॥ अरुनि वमन जूम्मा रोमाचा ॥ कष्ठ तयो मुखशोष हु सॉचा ॥ २ ॥ सन्चि ग्रूळ पुनि तम हु रहुई ॥ वातपित्तज्वर ळक्षण अहुई ॥ ३ ॥

६-पूर्व लिखे अनुसार अर्थात् जब तक दोयों का पाचन न होने तथा भूख न लगे तब तक रुघन करना चाहिये अर्थात् नहीं खाना चाहिये ॥

२-चिरायता, गिलोय, दाख, ऑनला और कचूर, इन का काड़ा कर के तथा उस ने त्रिवर्षीय (तीन वर्ष का पुराना) गुड़ ढाल कर पीना चाहिये।

२-अथवा-गिलोय, पित्तपापड़ा, मोया, चिरायता और सोंठ, इन का क्राध क्रके पीना चाहिये, यह पश्चमद्र काथ वातपित्तज्वर में अतिलाभदायक (फायदेमन्द) माना गया है ॥

वातकफज्वर का वर्णन ॥

लक्ष्मण — जॅमाई (उवासी) का आना और अरुचि, ये दो लक्षण इस ज्वर के अल्य है, इन के सिवाय—सिन्वयों में फूटनी (पीड़ा का होना), मन्त्रक का भारी होना, निद्रा, गीले कपड़े से देह को ढाकने के समान माल्यम होना, देह का मारीपन, खांसी, नाक से पानी का गिरना, पसीने का आना, शरीर में दाह का होना तथा ज्वर का मध्यम वेगे, ये दूसरे भी लक्षण इस ज्वर में होते हैं।

चिकित्सा—१—इस ज्वर में भी पूर्व छिसे अनुसार छंघन का करना पथ्य है। २—पसर कंटाली, सोंठ, गिलोय और एरण्ड की जड़, इन का काड़ा पीना चाहिये, यह लघुसुदादि काथ है।

२—िकरमाले (अमलतास) की गिरी, पीपलामूल, मोथा, कुटकी और जैं हरहे (छोटी अथीत् काली हरहे), इन का काढ़ा पीना चाहिये, यह आरग्ववादि काय है³। ४—अथवा—केवल (अकेली) छोटी पीपल की उकाली पीनी चाहिये ॥

पित्तकफञ्चर का वर्णन ॥

लक्ष्मणं — नेत्रों में दाह और अरुचि, वे दो लक्षण इस ज्वर के ग्रुख्य हैं, इन के सिवाय—तन्द्रा, मूर्छो, ग्रुख का कफ से लिस होना (लिसा रहना), पिच के नोर से ग्रुख

१-सोरडा-देह दाह ग्रुव गात, सौमित जुम्मा अविच हो ॥ भव्य हु वेग दिखात, स्वेद कास पीनस सही ॥ १ ॥ नींद व आवे कोय, सन्य पीव़ मस्तक गहे ॥ वैद्य विचारे सोय, वे छक्षण कफवात के ॥ २ ॥

२-मायु शीघ्रगतिवाला है तथा कफ सन्दगतिवाला है, इस किये दोनों के संबोग से वातकफन्दर सध्यमवेगवाला होता है।।

३—यह आर्ग्यमादि काप-दीपन (अप्रि को प्रदीस करनेवाळा), पाचन (दोवों को पकानेवाळा) तथा संशोधन (मळ और दोवों को पका कर बाहर निकालनेवाळा) सी है, इस के ये गुण होने से ही दोवों का पाचन आदि होकर ज्वर से शीम्र ही मुक्ति (बुटकारा) हो जाती है।

४-सोरठा - गुड कड़ता परतीत, तन्त्रा मूर्छ अहिन हो ॥ बार नार में भीत, बार नार नें तप्त हो ॥ १॥ लिप्त बिरस मुख बान, नेत्र जलन अह कार हो ॥ लक्षण होत सुखान, पित्तककल्पर के वही ॥ २॥ में कडुआहट (कडुआपन,), सांसी, प्यास, वारंवार दाह का होना और वारंवार शीत का रुगना, ये दूसरे मी रुक्षण इस ज्वर में होते हैं।

चिकित्सा—१—इस ज्वर में भी पूर्व लिखे अनुसार लंघन का करना पथ्य है। २—जहां तक हो सके इस ज्वर में पाचन ओषधि लेनी चाहिये।

३—रक्त (लाल) चन्दन, पदमाख, घनियाँ, गिलोय और नींव की अन्तर (मीतरी) छाल, इन का काटा पीना चाहिये, यह रक्तचन्दनादि कार्य है ।

8—आठ आनेभर कुटकी को चल में पीस कर तथा मिश्री मिला कर गर्म जल से पीना चाहिये।

५-अइसे के पत्तों का रस दो रुपये मर छेकर उस में २॥ मासे मिश्री तथा २॥ मासे शहद को डाल कर पीना चाहिये ॥

सामान्यज्वर का वर्णन ॥

कारण तथा रूक्षण—अनियमित खानपान, अजीर्ण, अचानक अतिशीत वा गर्मी का रूगना, अतिवाद्य का रूगना, रात्रि में जागरण और अतिश्रम, ये ही प्रायः सामान्यज्वर के कारण है, ऐसा ज्वर प्रायः ऋतु के बदरूने से भी हो जार्तों है और उस की सुख्य ऋतु मार्च और अप्रेरू मास अर्थात् वसन्तऋतु है तथा सितन्वर और अक्टूबर मास अर्थात् शरद्ऋतु है, शरद्ऋतु में प्रायः पिच का बुसार होता है तथा वसन्तऋतु में प्रायः कफ का बुसार होता है, इन के सिवाय—जून और जुरु महीने में भी अर्थात् बरसात की वातकोपवाली ऋतु में भी वायु के उपद्रवसहित ज्वर चढ आती है।

जपर जिन मिन्न २ दोषवाछे ज्वरों का वर्णन किया है उन सबों की भी गिनती इस (सामान्य ज्वर) में हो सकती है, इन ज्वरों में अन्तरिया ज्वर के समान चढ़ाव उतार नहीं रहता है किन्तु ये (सामान्यज्वर) एक दो दिन आकर जल्दी ही उत्तर जाते है।

१-यह क्राय दीपन और पाचन है तथा प्यास, दाह, अरुचि, वसन और इस ज्वर (पित्तक्रफजर) की वीच ही दर करता है।

२—यह ओषि अम्लिपत्त तथा कामलासहित पित्तकफल्यर की भी बीघ्र ही बूर कर टेती है, इस ओषि के विषय में किन्हीं आचारों की यह सम्मित है कि अहसे के पत्तों का रस (कपर लिखे अनुसार) दो तोले छेना नाहिये तथा उस में मिश्री और शहद को (अत्येक को) नार २ मासे डालना नाहिये॥

३-अर्थात इन कारणों से देश, काल और प्रकृति के जनुसार-एक वा दो दोप विकृत तथा कृषित होकर जठराप्ति को बाहर निकाल कर रसों के जनुगानी होकर ज्वर को उत्पन्न करते हैं ॥

४-ऋतु के बदलने से ज्वर के आने का अनुभव तो प्राय. वर्तमान में प्रत्येक यह में हो जाता है।

५-क्योंकि शरद्ऋतु में पित्त प्रकृपित होता है ॥

६-पर्शानों का न आना, सन्ताप (देह और इन्हियों में सन्ताप), सर्व अंगो का पीडा करके रह जाना अथवा सब अगों का साम्मित के समान (स्वच्य सा) रह जाना, ये सब उक्षण ज्वरमात्र के साधारण है अर्थात ज्वरमात्र में होते हैं इन के सिवाय सेष उक्षण दोयों के अनुसार प्रशक् २ होते हैं ॥

चिकित्सा—१—सामान्यज्वर के लिये प्रायः वही चिकित्सा हो सकती है जो कि भिन्न २ दोषवाले ज्वरों के लिये लिखी है।

२-इसं के सिवाय-इस ज्वर के लिये सामान्यचिकित्सा तथा इस में रखने योग्य कुछ नियमों को लिखते हैं उन के अनुसार वर्ताव करना चाहिये।

३—जब तक ज्वर में किसी एक दोष का निश्चय न हो वहां तक विशेष चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि सामान्यज्वर में विशेष चिकित्सा की कोई आवश्यकता नहीं है, किन्तु एकाघ टंक (बख्त) लंबन करने से, आराम लेने से, हलकी खुराक के खाने से तथा यदि दस्त की कब्जी हो तो उस का निवारण करने से ही यह ज्वर उतर जाता है।

४-इस ज्वर के प्रारम्भ में गर्भ पानी में पैरों को डुबाना चाहिये, इस से पसीना आकर ज्वर जतर जाता है ।

५-इस ज्वर में ठंडा पानी नहीं पीना चाहियें किन्तु तीन उफान आने तक पानी को गर्म कर के फिर उस को ठंडा करके प्यास के छगने पर थोड़ा २ पीना चाहिये।

६—सोंठ, काळी मिर्च और पीपळ को घिस कर उस का अझन आंख में करवाना चाहिये।

७-बहुत खुड़ी हवा में तथा खुड़ी हुई छत पर नहीं सोना चाहिये।

८—खळप्रदेश में (मारवाड़ आदि प्रान्त में) बाजरी का दिल्या, पूर्व देश में भात की कांकी वा मांड, मध्य मारवाड़ में मूंग का खोसामण वा मात तथा दिक्षण में अरहर (त्र) की पतळी दाल का पानी अथवा उस में भात मिला कर खाना चाहिये।

' ९—यह भी स्मरण रहे कि—यह ज्वर जाने के बाद कभी २ फिर भी वापिस का जाता है इस िक इस के जाने के बाद भी पथ्य रखना चाहिये अर्थात् जव तक शरीर में पूरी ताकत न आ जाये तब तक भारी अन नहीं खाना चाहिये तथा परिश्रम का काम भी नहीं करना चाहिये ।

१-सामान्यंज्वर में दोष का निष्मय हुए विना विशेष निकित्सा करने से कमी २ वड़ी मारी हाति मी हो जाती है अर्थात दोष अधिक प्रकुपित हो कर तथा प्रवलहम थारण कर रोगी के प्राणघातक हो जाते हैं ॥ १-क्योंकि पसीने के द्वारा ज्वर की भीतरी गर्मी तथा उस का वैग वाहर निकल जाता है ॥

३-क्योंकि क्षीतल जल इंशामिशेष अयवा कारणविशेष के सिवाय जबर मे अपध्य (हानिकारक) माना गया है !!

४-ज्वर के जाने के वाद पूरी क्षक्ति के न आने तक सारी अन का खाना तथा परिश्रम के कार्य का करना तो निषद्ध है ही, किन्तु इन के सिवाय-व्यायास (दण्डकसरत), मेशुन, क्षान, इपर उपर विशेष खोळचा फिरना, विशेष इवा का खाना तथा अधिक श्रीतक जळ का सेवन, ये कार्य भी निषद्ध है।।

१०-यातच्चर में जो काढ़ा दूसरे नम्बर में लिंखा है उसे लेना चाहिये।

११-गिलोय, सींठ और पीपरायूक, इन का काढ़ा पीना चाहिये ।

१२—मूर्रागणी, चिरायता, कुटकी, सोठ, गिकोय और एरण्ड की जड़, इन का काड़ा पीना चाहिये ।

१३-दाल, धमासा और अदूसे का पत्ता, इन का काड़ा पीना चाहिये।

१ ४-चिरायता, बाला, कुटकी, गिलोय और नागरमोथा, इन का काढा पीना चाहिये।

१५-ऊपर कहे हुए काटों में से किसी एक काथ (काढ़ों) को विधिपूर्वकै तैयार कर बोड़े दिन तक लगातार दोनों समय पीना चाहिये, ऐसा करने से दोष का पाचन और शमन (श्रान्ति) हो कैंर ज्वर उतर जाता है।

सन्निपातज्वर का वर्णन ॥

तीनों दोषों के एक साथ कुपित होने को सिलपात वा त्रिदोष कहते हैं, यह दशा प्रायः सब रोगों की अन्तिम (आखिरी) अवस्था (हालत) में हुआ करती हैं, यह दशा ज्वर में जब होती है तब उस ज्वर को सिलपातज्वर कहते है, किसी में एक दोष की प्रवलता तथा दो दोषों की न्यूनता से तथा किसी में वो दोषों की प्रवलता और एक दोष की न्यूनता से इस ज्वर के वैद्यकशाक्ष में एकोक्चणादि ५२ मेर्द दिखलाये है तथा इस के तेरह दूसरे नाम भी रख कर इस का वर्णन किया है।

यह निश्चय ही समझना चाहिये कि-यह सिनपात मौत के विना नहीं होता है चाहे मनुष्य बोळता चाळता तथा खाता पीता ही क्यों न हो ।

यह भी सरण रखना चाहिये कि—सन्निपात को निदान और कालज्ञान को पूर्णतया जाननेवाला अनुमवी वैद्य ही पहिचान सकता है, किन्तु मूर्ल वैद्यों को तो अन्तद्शा तक में भी इस का पहिचानना कठिन है, हां यह निश्चय है कि—सन्निपात के वा त्रिदोप के साधारण लक्षणों को विद्वान वैद्य तथा डाक्टर लोग सहज में जान सकते हैं"।

१-अर्थात् वेबदार्वादि काथ (देखी वातज्वर की चिकित्सा में दूसरी संख्या) ॥

२-यह काढा दीपन और पाचन भी है।।

३-काढ़े की विधि पहिले तेरहवे प्रकरण में लिख जुके हैं।।

४-अर्थात् अपक (क्बे) दोप का पाचन और बढ़े हुए दोप का श्रमन होकर ज्वर उतर जाता है।

५-तारपर्य यह है कि-सिक्षपात की दशा में दोगों का संमालना अति कठिन क्या किन्तु असाध्य सा हो जाता है, वस वही रोग की वा यो समिस्रवे कि प्राणी की अन्तिम (आखिरी) अवस्था होती है, अर्थात् इस ससार से विदा होने का समय समीप ही आजाता है।।

६--उन सब ५२ भेदों का तथा तेरह नासों का वर्णन दूसरे वैद्यक प्रन्यों से देख लेना चाहिये, यहा पर अनावश्यक समझकर उन का वर्णन नहीं किया गया है ॥

५—तात्मर्य यह है कि—तीनों दोयों के खक्षणों को देख कर सित्तपात की सक्त का जान छेना योग्य वैद्यों के लिये कुछ कठिन बात नहीं है परन्तु सित्तपात के निदान (मृष्ठकारण) तथा दोयों के अशाकीमाव का निवय करना पूर्ण अनुभवी वैद्य का दी कार्य हैं ॥

इस के सिवाय यह भी देखा गया है कि—रात दिन के अभ्यासी अपिठस (विना पढ़े हुए) भी बहुत से जन मृत्यु के चिह्नों को प्रायः अनेक समयों में वतला देते है, तालर्य सिर्फ यही हैं कि—''जो जामें निकादिन रहत, सो तामें परवीन" अर्थात् जिस का जिस विषय में रात दिन का अभ्यास होता है वह उस विषय में प्रायः प्रवीण हो जाता है, परन्तु यह वात तो अनुभव से सिद्ध हो चुकी है कि—सिवायत ज्वर के जो १३ मेद कहे गये है उन के वतलाने में तो अच्छे २ चतुर वैद्यों को भी पूरा २ विचार करना पड़ता है अर्थात् यह असुक प्रकार का सिवायत है इस वात का बतलाना उन को भी महा कठिन पड़ जाता है।

इन सव वातों का विचार कर यही कहा जा सकता है कि—जो वैद्य सिनपात की योग्य चिकित्सा कर मनुष्य को बचाता है उस पुण्यवान् वैद्य की प्रशंसा के छिलने में छेखनी सर्वथा असमर्थ है, यदि रोगी उस वैद्य को अपना तन मन और घन अर्थात् सर्वस्त भी दे देवे तो भी वह उस वैद्य का यथोचित प्रत्युपकार नहीं कर सकता है अर्थात् बदला नहीं उतार सकता है किन्तु वह (रोगी) उस वैद्य का सर्वदा ऋणी ही रहता है।

यहां इम सिनपातज्वर के प्रथम सामान्य लक्षण और उस के बाद उस के विषय में आवश्यक स्वा को ही लिखेंगे किन्तु सिनपात के १३ मेदों को नहीं लिखेंगे, इस का कारण केवल यही है कि सामान्य बुद्धिवाले जन उक्त विषय को नहीं समझ सकते है और हमारा परिश्रम केवल गृहस्थ लोगों को इस विषय का ज्ञान कराने मात्र के लिये है किन्तु उन को वैध बनाने के लिये नहीं है, क्योंकि गृहस्थनन तो यदि इस के विषय में इतना भी जान लेंगे तो भी उन के लिये इतना ही ज्ञान (जितना हम लिखते हैं) अत्यन्त हितकारी होगा। लक्क्षण-जिस ज्वर में बात, पित्त और कफ, ये तीनों दोष कोप को प्राप्त हुए होते

१-च्योपाई-श्वण क्षण दाह शीत पुनि होई॥ गीवा हाड सन्वि शिर सोई॥ १॥
गदले नैन नीर को कावँ॥ रफ क्रिटल कोचन में आवँ॥ १॥
कण क्राळ भरणाटो जामें॥ कष्ठ रोध पुनि होने ताने॥ ३॥
तन्त्रा मोह अब अम परलापा॥ अविन आस पुनि कोच सँतापा॥ ४॥
जिहा श्याम दरन सी दीसे॥ तीक्ण स्पर्ध पुनि विशा तीसे॥ ५॥
अम शिथिल अति होने जासू॥ नासा रुविर खवँ सो तासू॥ ६॥
कप पित मिल्नो शिवर मुख आने॥ रफ पीत ब्यॉ नरण दिखाँव॥ ७॥
तृष्णा क्षोप कीस को चाले॥ नीर्दे न आवं काल ककले॥ ८॥
मल रुमूत्र निर कालह नरसे॥ जल्प स्वेद पुनि अंग में दरसे॥ ९॥
कष्ठकूल कफ की अति वाचा॥ कृशित खड़ वा को नहि लाया॥ १०॥
श्याम रफ मण्डल है ऐसा॥ टाव्या खादा दाफड़ जैसा॥ १९॥
मारी उदर धुने नहिं काना॥ श्रोत्रपाक इसादिक नाना॥ १२॥
वहुत काल में दोण जु पाने॥ सिमपातज्वर लक्षण सावे॥ १३॥
मश्रिपातज्वर सहल 'सुक्या॥ श्रम्यान्तर में वरण अनुपा। १४॥

है (कुपित हो जाते हैं) वह सिन्नपातज्वर कहलाता है, इस ज्वर में प्रायः ये चिह होते हैं कि—अकस्मात् क्षण मर में दाह होता है, क्षण मर में श्रीत लगता है, हाड़ सिन्ध और मस्तक में श्रूल होता है, अश्रुपातयुक्त गदले और लाल तथा फटे से नेत्र हो जाते हैं, कानों में शब्द और पीड़ा होती है, कण्ठ में कांटे पड़ जाते हैं, तन्द्रा तथा वेहोशी होती है, रोगी अनर्थमलाप (ब्यर्थ वकवाद) करता है, खांसी, श्रास, अरुचि और अम होता है, जीम परिदग्धवत् (जले हुए पदार्थ के समान अर्थात् काली) और गाय की जीम के समान खरदरी तथा शिथल (लटर) हो जाती है, पिच और रुधर से मिला हुआ कम श्रूक में आता है, रोगी शिर को इघर उधर पटकता है, तृथा बहुत लगती है, निद्रा का नाश्च होता है, हदय में पीड़ा होती है, पसीना; मूत्र और मल, ये बहुत काल में थोड़े र जतरते हैं, दोषों के पूर्ण होने से रोगी का देह क्षश (दुबला) नहीं होता है, कण्ठ में कफ निरन्तर (लगातार) बोलता है, रुधर से काले और लाल कोट (टांटिये अर्थात् वर्र के काठने से जत्यन हुए दाफड़ अर्थात् द्वीड़े के समान) और चक्क होट (टांटिये अर्थात् वर्र के काठने से जत्यन हुए दाफड़ अर्थात् व्वीड़े के समान) और चक्क होते हैं. शब्द बहुत मन्द (धीमा) निकलता है, कान; नाक और ग्रुख आदि छिद्रों में पाक (पकना) होता है, पेट भारी रहता है तथा वात, पिच और कफ, इन दोषों का देर में पाक होता है"।

१-अध्रपात्युक्त अर्थात् ऑद्धओं की धारा सहित ॥

२-कफ के कारण गदछे, पित्त के कारण लाख तथा वायु के कारण फटे से वेत्र होते हैं।

३-(प्रक्र) बात आदि तीन दोष परस्पर विरुद्ध गुणवाले हैं वे सब मिल कर एक ही कार्य सिप्रात को कैसे करते हैं. क्योंकि प्रलेक दोष परस्पर (एक दूसरे) के कार्य का नाशक है, जैसे कि-अप्ति और जल परस्पर मिलकर समान कार्य को नहीं कर सकते हैं (क्योंकि परस्पर विरुद्ध हैं) इसी प्रकार बात. पित्त और कफ, ये तीनों दौष भी परस्पर विरुद्ध होने से एक विकार को उत्पन्न नहीं कर सकते हैं? (उत्तर) बात, पित्त और कफ, ये तीनों दोष साथ ही में प्रकट हुए हैं तथा तीनों बराबर है. इस िक्ये ग्रणों में परस्पर (एक दूसरे से) निरुद्ध होने पर भी अपने २ ग्रणों से बूसरे का नाश नहीं कर सकते हैं. जैसे कि-साप अपने विष से एक दूसरे को नहीं मार सकते हैं, यही समाधान (जो इसने लिखा है) इद्यक आवार्य ने किया है, परन्त इस प्रश्न का उत्तर गवाधर आचार्य ने दूसरे हेत का आध्य छेकर दिया है. वह यह है कि-विरुद्ध गुणवाले भी वात आदि रोष सनिपातावस्था में देवेच्छा से (पर्व जन्म के किये हुए प्राणियों के श्वमाश्चम कर्यों के प्रसाव से) अथवा अपने सामाव से ही इक्ट्रे रहते हैं तथा एक दूधरे का निवात नहीं करते हैं। (प्रश्न) अब्त-इस बात को तो हम ने मान लिया कि-सिन्नपातावस्था में विरुद्ध गुणवाले हो कर भी तीनों दोष एक दूसरे का विभात नहीं करते हैं परन्त यह प्रश्न फिर भी होता है कि वात आदि तीनों दोषों के समय और प्रकोप का काल प्रयक्त २ है इस किये वे सब ही एक काल में न तो प्रकट ही हो सकते हैं (क्योंकि सम्बय का काल प्रथक २ है) स्तीर न प्रक्रियत ही हो सकते हैं (क्योंकि जब तीनों का सबय ही नहीं है फिर प्रकोप कहाँ से हो सकता है) तो ऐसी दशा में सित्रपात रूप कार्य कैसे हो सकता है ? क्योंकि कार्य का होना कारण के आधीन है। (उत्तर) तुम्हारा यह प्रश्न ठीक नहीं है क्योंकि शरीर में वात आदि दोष खमान से ही विद्यमान हैं. वे (तीनों दोष) अपने (त्रिदोष) को प्रकट करनेवाले निदान के वल से एक साय ही प्रकुपित हो जाते है अर्थात् त्रिदोषकर्ता मिथ्या आहार और मिथ्या विहार से तीनों ही दोष एक ही काल में कवित हो जाते हैं और कुपित हो कर समिपात रूप कार्य को उत्पन्न कर देते हैं ॥

इन रुक्षणों के सिवाय वाग्महने ये भी रुक्षण कहे हैं कि-इस ज्वर में शीत रुगता है, दिन में घोर निद्रा आती है, रात्रिमें नित्य जागता है, अथना निद्रा कभी नहीं आती है, पसीना बहुत आता है, अथना आता ही नहीं है, रोगी कभी गान करता है (गाता है), कभी नाचता है, कभी इँसता और रोता है तथा उस की चेष्टा परुट (वदरु) जाती है, इत्यादि।

यह भी स्मरण रहे कि-इन रुक्षणों में से बोड़े रुक्षण कष्टसाध्य में और पूरे (कपर

कहे हुए सब) उक्षण प्रायः असाध्य सन्निपात में होते हैं।

विद्योषवक्तव्य - सन्निपातज्वर में जब रोगी के दोषों का पाचन होता है अर्थात मल पकते हैं तब ही आराम होता है अर्थात् रोगी होश में आता है, यह मी जान छेना चाहिये कि-जब दोषों का वेग (जोर) कम होता है तब आराम होने की अविष (मुहत) सात दश वा वारह दिन की होती है, परन्तु यदि दोष अधिक वलवान् हों तो आराम होने की अवधि चौदह वीस वा चौवीस दिन की जाननी चाहिये, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि-सिन्नपात ज्वर में वहुत ही सँमाङ रखनी चाहिये, किसी तरह की गड़वड़ नहीं करनी चाहिये अर्थात् अपने मनमाना तथा मुर्ख वैद्य से रोगी का कमी इलाज नहीं करवाना चाहिये, किन्तु बहुत ही वैर्य (थीरज)के साथ चतुर वैद्य से परीक्षा करा के उस के कहने के अनुसार रस आदि दवा देनी चाहिये, क्योंकि सिन्नपात में रस आदि दवा ही प्रायः विशेष लाम पहुँचाती है, हां चतुर वैद्य की सम्मति से दिये हुए काष्टादि जोषियों के कांदे आदि से मी फायदा होता है, परन्तु पूरे तौर से तो फायदा इस रोग में रसादि दवा से ही होता है और उन रसों की दवा में भी शीब ही फायदा पहुँचानेवाले थे रस मुख्य है-हेमगर्म, असृतसञ्जीवनी, मकरध्वज, वह्गुणगन्यक और चन्द्रोदय आदि, ये सब प्रधानरस पान के रस के साथ, आर्द्रक (अदरल) के रसमें, सोंठ के साथ, औंग के साथ तथा जुल्सी के पत्तों के रस के साथ देने चाहियें, परन्तु यदि रोगी की ज़वान वन्द हो तो सहजने की छाठ के रस के साथ इन में से किसी रस को जरा गर्म कर के देना चाहिये, अथवा असकी अम्बर वा कस्त्री के साथ देना चाहिये ।

चाहिय ।

यदि कपर कहे हुए रसों में से कोई भी रस विद्यमान (मौजूद) न हो तो साधारण

यदि कपर कहे हुए रसों में से कोई भी रस विद्यमान (मौजूद) न हो तो साधारण

रस ही इस रोग में देने चाहियें जैसे—बाही गुटिका, मोहरा गुटिका, त्रिपुरमेरन, जानन्द
रस ही इस रोग में दोने चाहियें जैसे—बाही गुटिका, मोहरा गुटिका, त्रिपुरमेरन, जानन्द
रस ही इस रोग में दोन चाहियें जैसे—बाही गुटिका, मोहरा गुटिका, त्रिपुरमेरन, जानन्द
सकते हैं।

इन के सिवाय तीक्ष्ण (तेज़) नस्य का देना तथा तीक्ष्ण अजन का आंखों में ढालना आदि किया भी विद्वान वैद्य के कथनानुसार करनी चाहिये । उम्र (बड़े वा तेज़) सिनिपात में एक महीनेतक खूब होशियारी के साथ पथ्य तथा दवा का वर्षाव करना चाहिये तथा यह मी स्मरण रखना चाहिये कि सोलह सेर बल का उवालने से जब एक सेर बल रह बावे तब उस बल को रोगी को देना चाहिये, क्योंकि यह बल दस्त, वमन (उलटी), प्यास तथा सिनिपात में परम हितकारक है अर्थात् यह सौ मात्रा की एक मात्रा है।

इस के सिवाय जब तक रोगी का मल शुद्ध न हो, होश न आवे तथा सब इन्द्रियां निर्मल न हो जावें तब तक और कुछ खाने पीने को नही देना चाहियें अर्थात् रोगी को इस रोग में उत्कृष्टतया (अच्छे प्रकार से) बारह छंघन अवश्य करना देने चाँहियें, अर्थात् उक्त समय तक केवल ऊपर लिखे हुए जल और दवा के सहारे ही रोगी को रखना चाहिये, इस के बाद मूंग की दाल का, अरहर (तूर) की दाल का तथा खारक (छुहारे) का पानी देना चाहिये, जब खूब (कड़क कर) मूख लगे तब दाल के पानी में मात को मिला कर योड़ा र देना चाहिये, इस के सेवन के २५ दिन बाद देश की खुराक के अनुसार रोटी और कुछ धी देना चाहिये।

कर्णक नाम का सिवपात तीन महीने का होता है, उस का खयाल उक्त समय तक वैद्य के बचन के अनुसार रखना चाहिये, इस बीच में रोगी को खाने को नहीं देना चाहिये, क्योंकि सिवपात रोगी को पिहले ही खाने को देना विष के तुल्य असर करता है, इस रोग में यदि रोगी को दूध दे दिया जाने तो वह अवश्य ही मर जाता है।

सिनपात रोग काल के सदद्य है इस लिये इस में सप्तस्मरण का पाठ और दान पुण्य आदि को भी अवस्य करना चाहिये, क्यों कि सिन्नपात रोग के होने के बाद फिर उसी शरीर से इस संसार की हवा का प्राप्त होना मानो दूसरा जन्म लेना है।

इस वर्तमान समय में विचार कर देखने से विदित होता है कि—अन्य देशों की अपेक्षा मरुख्य देश में इस के चक्कर में आ कर बचनेवाले बहुत ही कम पुरुष होते है, इस का कारण व्यवहार नय की अपेक्षासे हम तो यही कहेंगे कि—उन को न तो ठीक तौर से ओषि ही मिलती है और न उन की परिचर्या (सेवा) ही अच्छे प्रकार से की जाती है, बस इसी का यह परिणाम होता है कि—उन को मृत्यु का आस बनना पड़ता है।

पूर्व समय में इस देशके निवासी धनाट्य (अमीर) सेठ और साह्नकार आदि ऊपर

१-सर्थोंकि मल की छुद्धि सीर इन्त्रियों के निर्मंख हुए विना आहार को दे देने से पुन. दोवों के अधिक कुपित हो जाने की सम्मानना होती है, सम्मानना स्था-दोष कुपित हो ही जाते हैं ॥

१-उक्तिष्टतया बारह छवनों के करना देने से मळ और कुपित दोषों का अच्छे प्रकार से पाचन हो जाता है, ऐसा होने से जठराप्ति मे भी कुछ बळ आ जाता है ॥

कहे हुए रसों को विद्वान वैचों के द्वारा बनवा कर सदा अपने घरों में रखते थे तथा अवसर (मौका) पड़ने पर अपने कुटुम्ब, सगे, सम्बन्धी और ग़रीब लोगों को देते थे, जिससे रोगियों को तत्काल लाग पहुँचता था और इस मयंकर रोग से बच बाते थे, परन्तु वर्षमान में वह बात बहुत ही कम देखने में आती है, कहिये ऐसी दशा में इस रोग में कँस कर बेचारे ग़रीबों की क्या व्यवस्था हो सकती है? इस पर भी आर्थ्य का विषय यह है कि उक्त रस वैचों के पास भी बने हुए शायद ही कही मिल सकते है, क्यों कि उन के बनाने में द्वय की तथा गुरुगमता की आवश्यकता है, और व ऐसे दयावान वैद्य ही देखे जाते हैं कि ऐसी कीमती दवा गरीबों को ग्रुप्त में दे देवें।

पूर्व समय में ऊपर िल्ले अनुसार यहां के घनाट्य सेठ और साष्ट्रकार परमार्थ का विचार कर वैद्यों के द्वारा रसोंको बनना कर रखते थे और समय आने पर अपने कुटु- न्वियों सोग सम्बन्धियों और गृरीनों को देते थे, परन्तु अन तो परमार्थ का विचार, अद्धा तथा दया के न होने से वह समय नहीं है, किन्तु अन तो यहां के धनाट्य लोग अविद्या तेवी के मसाद से व्याह शादी गांवसारणी और औसर आदि व्यर्थ कार्यों में हज़ारों रुपये अपनी तारीफ़ के लिये लगा देते हैं और दूसरे अविद्या देनी के उपासक जन भी उन्हीं कार्यों में व्यय करने से जन उन की तारीफ करते हैं तन ने नहुत ही खुश होते हैं, परन्तु विद्या देनी के उपासक विद्वान् जन ऐसे कार्यों में व्यय करने की कभी तारीफ़ नहीं कर सकते है, क्यों कि ऐसे व्यर्थ कार्यों में हज़ारों रुपयोंका व्यय कर देना शिष्टसन्मत (विद्वानों की सन्मति के अनुकूल) नहीं है।

पाठक गण ऊपर के लेख से मरुदेश के भनाख्यों और सेठ साहकारों की उदारता का परिचय अच्छे प्रकारसे पा गये होंगे, अब कहिये ऐसी दशा में इस देश के कल्याण

१-वर्तमान समय में तो यहा के (मदस्यक वेश के) निवासी धनाव्य सेठ और साहकार आदि ऐसे मजीन हृदय के हो रहे हैं कि इन के जिप्य में कुछ कहा नहीं जाता है किन्तु अन्तःकरण में ही महा-सन्ताप करना पटता है, इन के जरित्र और बत्तांन ऐसे निन्य हो रहे हैं कि जिन्हें देवकर दारण दुःख उत्पन्न होता है, ये ओग धन पाकर ऐसे मदोन्मत हो रहे हैं कि इन को अपने कर्तव्य की कुछ भी प्रिष्ठ वृक्षि नहीं है, रातदिन इन जेगों का कुरिसताचारी दुर्जनों के साथ सहनास रहता है, विहान और हानवान पुरुषों की संगति इन्हें घड़ी मर भी अच्छी नहीं हमती है, यदि कोई बोग्य पुरुष इन के पास आकर पुरुषों की संगति इन्हें घड़ी मर भी अच्छी नहीं हमती है, यदि कोई बोग्य पुरुष इन के पास आकर पुरुषों की संगति इन्हें घड़ी मर भी अच्छी नहीं हमती है, यदि कोई बोग्य पुरुष इन के पास आकर देशता है तो इन की आन्तरिक इच्छा मही रहती है कि—उन यह पुरुष उठ कर जाने और हम उपहास देशता है तो इन की आन्तरिक इच्छा मही रहती है कि—उन यह पुरुष उठ कर जाने और हम उपहास देश तथा विहानी वार्जी में अपने समय को वितानें, हेंसी उदा करना, कियों को देखना, उन की चर्चा करना, तास वा चीपद का खेखना, मंग आदि मादक हव्यों का सेवन करना, इसरों की निन्दा करना तथा करना, तास वा चीपद का खेखना, मंग आदि मादक हव्यों का सेवन करना, इसरों की निन्दा करना तथा अपन्त समय को व्यर्ग में नष्ट करना, बड़ी इन का रातदिन का कार्य है, यह इस नहीं कहते हैं कि—मर-अपन्य समय को व्यर्ग में नष्ट करना, बड़ी इन का रातदिन का कार्य है, यह इस नहीं कहते हैं कि—मर-अपन्य की सहस्ता आदि गुणों से बुक्त हैं, परन्तु अधिकाश में उन्हीं होगों की संख्या है किन का वर्णन हम बारे सहस्ता आदि गुणों से बुक्त हैं, परन्तु अधिकाश में उन्हीं होगों की संख्या है किन का वर्णन हम बारी कर चुके हैं ॥

की संभावना कैसे हो सकती है! हां इस समय में हम मुर्शिदाबाद के निवासी घनाड़य और सेठ साह्कारों की घन्यवाद दिये विना नहीं रह सकते है, क्यों कि उन में अब भी ऊपर कही हुई बात कुछ र देखी जाती है, अर्थात् उस देश में बड़े रसों में से मकर-ध्वज और साधारण रसों में विकासगुटिका, ये दो रस प्रायः श्रीमानों के घरों में बने हुए तैयार रहते हैं और मौके पर वे सब को देते भी हैं, बासाव में यह विद्यादेवी के उपा-सक होने की ही एकनिशानी हैं ।

अन्त में हमारा कथन केवल यही है कि—हमारे मरुखल देश के निवासी श्रीमान् लोग ऊपर लिखे हुए लेख को पढ़ कर तथा अपने हिताहित और कर्तन्यका विचार कर सन्मार्ग का अवलम्बन करें तो उन के लिये परम कल्याण हो सकता है, क्यों कि अपने कर्तन्य में प्रवृत्त होना ही परलोकसाधन का एक ग्रुख्य सोपान (सीवी) हैं।

आगन्तुक ज्वर का वर्णन ॥

कारण करीरपर अपना असर कर ज्वर को उत्पन्न करते है, उसे आगन्तुक ज्वर कहते हैं, यद्यप अपना असर कर ज्वर को उत्पन्न करते है, उसे आगन्तुक ज्वर कहते हैं, यद्यप अयोग्य आहार और विहार से विगड़ी हुई वायु भी आमाश्य (होनरी) में जाकर भीतर की अग्नि को विगाड़ कर रस तथा खून में मिछ कर ज्वर को उत्पन्न करती है परन्तु यह कारण सब प्रकार के ज्वरों का कारण नहीं हो सकता है—क्यों कि ज्वर दो प्रकार का है—शारीरिक और आगन्तुक, इन में से शारीरिक स्वतन्न (साधीन) और आगन्तुक परतन्न (पराधीन) है, इन में से शारीरिक ज्वर में ऊपर छिला हुआ कारण हो सकता है, क्यों कि शारीरिक ज्वर वायु का कोप होकर ही उत्पन्न होता है, किन्तु आगन्तुक ज्वर में पहिले ज्वर बद जाता है पीछे दोष का कोप होता है, जैसे—

१-इन को वहा की बोकी में बाबू कहते हैं, इन के युख्याजन बास्तव में मरस्थलदेश के निवासी थे।।

१-इस को वहा की देश भाषा में छक्खी विकासगुटिका कहते हैं।।

३-क्योंकि उन के हृदय में दया और परोपकार आदि मानुषी गुण विद्यमान है ॥

४—उन को स्मरण रखना चाहिये कि यह मजुष्य जन्म बडी कठिनता से प्राप्त होता है तथा बारंबार नहीं मिलता है, इस लिये पञ्चवत व्यवहारों को छोड कर माजुषी बक्तीय को अपने हृदय में स्थान दें, विद्वानों और ज्ञानी महात्माओं की सक्षति करें, कुछ चिक्त के अनुसार धाक्षों का अन्यास करें, रूक्षी और तब्बन्य विद्यास को अनिस्स समझ कर ब्रव्य को सन्मार्ग में खर्च कर परलोक के सुख का सम्मादन करें, क्योंकि इस मल से मरे हुए तथा अनिस्स शरीर से निर्मेख और शाखत (निस्स रहनेवाले) परलोक के सुख का सम्मादन करें, क्योंकि इस मल से मरे हुए तथा अनिस्स शरीर से निर्मेख और शाखत (निस्स रहनेवाले) परलोक के सुख का सम्मादन कर लेना ही माजुषी जन्म की कृतार्यता है।

५-आदि शन्द से मूत आदि का आनेश, अभिनार (धात और मूठ आदि का चलाना), अभिशाप (ब्राह्मण, ग्रुच, इद और महात्मा आदि का शाप) विषमक्षण, अभिदाह तथा हुई। आदि का ट्रटना, इत्यादि कारण भी समझ केने नाहियें॥

६-यह खाधीन इस किये हैं कि अपने ही किये हुए मिथ्या आहार और निहार से प्राप्त होता है ॥

ो ! फाम शोक तथा डर से चड़े हुए ज्वर में पित का कीप होता है और भूतादि के प्रतिविग्न के बुखार में आवेश होनेसे तीनों दोवोंका कीप होता है, इत्यादि ।

भेद तथा लक्षण—१-विषजन्य (विषसे पैदा होनेवाला) आगन्तुक ज्वर-विष के खोने से चढ़े हुए ज्वर में रोगी का ग्रुख काला पड़ जाता है, धुई के जुमाने के समान पीड़ा होती है, अन पर अरुचि, प्यास और मूर्ज़ होती है, खावर विषसे उत्पन्न हुए ज्वर में दख भी होते हैं, क्यों कि विष बीचे को गति करता है तथा मल आदि से ग्रुक्त वमन (उलटी) भी होती है।

२-ओषघिगन्धजन्य ज्यर्-किसी तेज तथा दुर्गन्धयुक्त वनस्पति की गन्ध से चढे हुए ज्वर में मूळी, शिर में दुर्द तथा क्य (उळटी) होती है।

१—कामज्यर—अमीष्ट (प्रिय) श्ली अथवा पुरुष की प्राप्ति के न होने से उत्पन्न हुए ज्वर को कामज्वर कहते है, इस ज्वर में चित्तकी अस्थिरता (चश्चलता), तन्द्रा (कंव) आलस्य, छाती में दर्व, अरुचि, हाथ पैरों का पेंठना, गलहस्त (गलहस्था) देकर फिक्ष का करना, किसी की कही हुई बात का अच्छा न लगना, शरीर का स्वना, ग्रँह पर पसीने का आना तथा निःश्वास का होना ऑदि चिह्न होते हैं !

४-अयज्वर—हर से चढ़े हुए ज्वर में रोगी प्रलाप (बक्वाव) बहुत करता है। ५-ऋोधज्वर—कोध से चढ़े हुए ज्वर में कम्पन (कॉंपनी) होता है तथा छल कड़का रहता है।

६-मृताभिषक्षज्वर-इस ज्वर में उद्वेग, हँसना, गाना, नाचना, काँपना तथा

अचित्त्य शक्ति का होना आदि चिह्न होते हैं।

इन के सिवाय क्षतज्वर अर्थात् श्ररीर में धाव के लगने से उत्पन्न होनेवाला ज्वर, दाहज्वर, श्रमज्वर (परिश्रम के करने से उत्पन्न हुआ ज्वर) और छेदज्वर (श्ररीर के किसी माग के कटने से उत्पन्न हुआ ज्वर) आदिज्वरों का इस आगन्तुक ज्वर में ही समावेश होता है।

१-वारमध् ने इस ज्वर के अझण-अम, अरुचि, दाह और कवा, निद्रा, बुद्धि और वैर्थ का नाश माने हैं ॥ २-क्षी के कामज्वर होने पर मूर्क, देह का हुटना, प्यास का लगना, नेत्र स्तन और मुख का नवल होना, पसीनों का आना तथा इस्य में दाह का होना ये अझण होते हैं ॥

२—(प्रअ) कम्पन का होना बात का कार्य है फिर यह (कम्पन) कोघ जनर से कैसे होता है, क्योंकि कोच में तो पित का प्रकोप होता है? (उत्तर) पहिले कह जुके हैं कि एक क्रपित हुआ रोप क्योंकि कोच में तो पित का प्रकोप होता है? (उत्तर) पहिले कह जुके हैं कि एक क्रपित हुआ रोप क्योंकि कोच में क्रपित हो जाता है और हुसरे दोप को भी क्रपित करता है इसलिये पित के प्रकोप के कारण बात भी क्रपित हो जाता है और क्यां कोच से केवल पित का ही प्रकोप होता है, यह बात नहीं है किन्तु—बात उसी से कम्पन होता है, असवा कोच से केवल पित का ही प्रकोप होता है, जैसा कि-निवेह आनार्य ने कहा है कि-"कोघशोकी स्वती बातिपतरक का भी प्रकोप होता है, जैसा कि-निवेह आनार्य ने कहा है कि-"कोघशोकी स्वती माने गये हैं, प्रकोपनी" अर्थात कोच और और और से वोगों बात, पित्त और रक्त को ग्रक्तित करनेवाले माने गये हैं, प्रकोपनी" अर्थात का भी प्रकोप होता है तो उस से कम्पन का होना साधारण बात है।

चिकित्सा—१—विषं से तथा जोषि के गन्य से उत्पन्न हुए ज्वर में—पित्तशमन, कर्ता (पित्त को शान्त करनेवाला) औषघ लेना चाहिये, अर्थात् तज, तमालपत्र, इलायची, नागकेशर, कवावचीनी, अगर, केशर और लैंग, इन में से सन वा थोड़े सुगन्धित पदार्थ लेकर तथा उनका काथ (काढा) बना कर पीना चाहिये।

२-काम से उत्पन्न हुए ज्वर में नाला, कमल, चन्दन, नेत्रवाला, तज, धनियाँ तथा जटामांसी आदि श्रीतल पदार्थों की उकाली, ठंढा लेप तथा इच्छित वस्तु की प्राप्ति आदि खपाय करने चाहियें।

३—क्रोष, मय और श्रोक खादि मानसिक (मनःसम्बन्धी) विकारों से उत्पन्न हुए ज्वरों में—उन के कारणों को (क्रोष, मय और श्रोक आदिको) दूर करने चाहियें, रोगी को धैर्य (दिलासा) देना चाहिये, इच्छित वस्तु की प्राप्ति करानी चाहिये, यह ज्वर पित्त को शान्त करनेवाले शीतल उपचार, आहार और विहार आदि से मिट जाता है।

१—चोट, श्रम, मार्गजन्य श्रान्ति (राखे में चलने से उत्पन्न हुई थकावट) और गिर जाना इत्यादि कारणों से उत्पन्न हुए ज्वरों में—पहिले दूध और मात खाने को देना चाहिये तथा मार्गजन्य श्रान्ति से उत्पन्न हुए ज्वर में तेल की मालिश करवानी चाहिये तथा सुखपूर्वक (बाराम के साथ) नीद लेनी चाहिये।

५—आगन्तुक ज्वरवाले को लंघन नहीं करना चौहिये किन्तु क्षिग्ध (चिकना), तर तथा पिचशामक (पिच को शान्त करनेवाला) शीतल मोजन करना चाहिये और मन को शान्त रखना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से ज्वर नरम (मन्द) पढ़ कर जतर जाता है।

६-आगन्तुकज्वर वाळे को वारंवार सन्तोष देना तथा उस के मिय पदार्थों की प्राप्ति कराना अति लामदायक होता है, इस लिये इस यात का अवस्य खयाल रखना चाहिये ।।

विषमज्वर का वर्णन ॥

कारण—िकसी समय में आये हुए ज्वर के दोषों का शास की रीति के विना किसी मकार निवारण करने के पीछे, अथवा किसी ओषधिं से ज्वर को दवा देने से जब उस

१-इन दोनों (विवजन्य तथा खोपिषरांश्यजन्य) जिंदों में-पित्त प्रकृपित हो जाता है इस लिये पित को शान्त करनेवाली ओवधि के लेने से पित्त शान्त हो कर ज्वर शीव्र ही उतर जाता है ॥

९-बाग्मह ने किखा है कि"श्रुद्धवातक्षयागन्तुनीणंज्नरिषु जङ्गतम्" नेष्यते, इति शेषः, क्षर्यात् श्रुद्ध बात में (केवल वातजन्य रोग में), क्षयजन्य (क्षयसे उत्पन्न हुए) ज्वर में, आगन्तुकज्वर में तथा जीणंज्वर में लघन नहीं करना चाहिये, वस यही सम्मति प्रायः सव आचार्यों की है॥

रे-इस ज्वर का सम्बंध प्राय. यन के साथ होता है इसी लिये मन को सन्तोप प्राप्त होने से तथा धर्मीष्ट वहत के मिलने से यन की शान्तिद्वारा यह ज्वर जतर जाता है ॥

४-जैसे किनाइन आदि से ॥

की लिंगस (अंश) नहीं जाती है तब बह ज्वर घातुओं में छिए कर ठहर जाता है तथा आहित आहार और विहार से दोष कोप को प्राप्त होकर पुनः ज्वर को प्रकट कर देतें हैं उसे विषयज्वर कहते हैं, इस के सिवाय—इस ज्वर की उत्पत्ति खराव हवा आदि दूसरे कारणों से भी प्रारंस दशों में हो जाती है।

लक्षण — विषमज्वर का कोई भी नियत समय नहीं है , न उस में ठंढ वा गर्मी का कोई नियम है और न उस के वेग की ही तादाद है, क्योंकि यह ज्वर किसी समय थोड़ा तथा किसी समय अधिक रहता है, किसी समय ठंढ और किसी समय गर्मी लग कर चढ़ता है, किसी समय अधिक वेग से और किसी समय मन्द (कम) वेग से चढ़ता है तथा इस ज्वर में प्रायः पित्त का कोप होता है।

भेद-विषम ज्वर के पांच मेद हैं-सन्तत, सतत, अन्येषुष्क (एकान्तरा), तेजरा और चौथिया, अब इन के सहस्य का वर्णन किया जाता है:---

१—सन्तर— बहुत दिनोंतक विना उतरे ही अर्थात् एकसदश रहनेवाले ज्वर को सन्तत कहते हैं, यह ज्वर वातिक (वायु से उत्पन्न हुआ) सात दिन तक, पैचिक (पिष् से उत्पन्न हुआ) वश दिन तक और कफन (कफ से उत्पन्न हुआ) वारह दिन तक अपने र दोव की श्रक्ति के अनुसार रह कर चला जाता है, परन्तु पीछे (उतर कर पुन:) फिर भी बहुत दिनों तक आता रहतों है, यह ज्वर शरीर के रस नामक धातु में रहता है।

१-तात्पर्य यह है कि जब प्राणी का उपर चका जाता है तब अल्प दोष भी सहित आहार और विहार के सेवन से पूर्ण होकर रस और रक्त आदि किसी धातु में प्राप्त होकर तथा उस को दूपित (विचाव) कर फिर विषय उपर को उत्पन्न कर देता है ॥

२-अर्थात् ज्वर की प्रारम्भदक्षा में जब खराब वा विवैजी हवा का सेवन अथवा प्रवेश आदि हो जाता है तब भी वह जबर विकृत होकर विवमज्वरस्थ हो जाता है 8

३—"विषमज्बर का कोई मो नियत समय नहीं है" इस कथन का तात्पर्य यह है कि—जैसे वातजन्य जबर सात रात्रि तक, विस्तज्वर इस रात्रि तक तथा कफज्बर बारह रात्रि (दिन) तक रहता है तथा प्रवक्त वेग होने से वातजन्य चौदह विस्त तक, विद्युज्य तीस दिन तक तथा कफज्बर चौवीस दिन तक रहता है, इस प्रकार विपमज्बर नहीं रहता है, व्यांत् इस का नियमित काल नहीं है तथा इस के वेग रहता है, इस प्रकार विपमज्बर कमी प्रवष्ट वेग से बहता है और कभी मन्द वेग से बढ़ता है ॥

४-इस ज्वर से सततज्वर क्षिन है, क्योंकि सततज्वर प्रायः दिन रात में दो बार चढता है अर्थात एक बार दिन में और एक बार रात्रि में, क्योंकि-प्रत्येक दोव का रात दिन में दो बार प्रकोर का समय आता है परन्तु यह वैसा नहीं है, क्योंकि यह तो अपनी स्थिति के समय करावर बना ही रहता है।

५-परन्तु किन्ही आवार्यों की सम्मति है कि-यह ज्वर कारीर के रस खीर रक्त वामक (दोनों) धातुले से रहता है ॥

चतुर्थ अध्याय ॥

२ सतत नारह घण्टे के अन्तर से आनेवाले तथा दिन में और राि. समैय आनेवाले ज्वर को सतत कहते हैं, इस ज्वर का दोष रक्त (खून) नामक रहता है।

"irr

m = 10°

أبيخ بالمسا

i est

4 1 2 4 4

一門

२-अन्येशुष्क (एकान्तरा)—यह ज्वर सदा २४ धण्टे के अन्तर से अर्थात् प्रतिदिन एक वार चढता और उतरता है², यह ज्वर मांस नामक धातु में र

१-तेजरा—यह ज्वर ४८ घण्टे के अन्तर से आता है अर्थात् बीच में ए नहीं आता हैं, इस को तेजरा कहते हैं परन्तु इस ज्वर को कोई आवार्य एकान्तः है, यह ज्वर मेद नामक घातु में रहता है।

५-चौथिया—यह ज्वर ७२ घण्टे के अन्तर से आता है अर्थात् वीच में हैं न आकर तीसरे दिनें आता है, इस को चौथिया ज्वर कहते हैं, इस का दौप (हाइ) नामक धादु में तथा मज्जा नामक धादु में रहता है।

इस जबरें में दोप भिन्न २ बातुओं का आश्रय छेकर रहता है इसिकेबे इस ज वैद्यजन रसगत, रक्तगत, इत्यादि नामों से कहिते हैं, इन में पूर्व २ की अपेक्षा उ अधिक भयंकर होता है, इसी किये इस अनुक्रम से अस्थि तथा भजा बातु में गय (प्राप्त हुआ) चौथिया ज्वर अधिक भयद्वर होता है, इस ज्वर में जब दोष प्रमुंच जाता है तब प्राणी अवस्थ मर जाता है।

अव विषमज्वरों की सामान्यतया तथा प्रत्येक के लिये मिन्न २ चिकिरसी किसते

ं १-क्योंकि दोप के प्रकोप का समय दिन और रातमर में (२४ वण्टे में) दो बार आता है।। १-इस में दिन वा रात्रि का नियम नहीं है कि दिन ही में बढ़े वा रात्रि में ही बढ़े किन्तु २४ नियम है।।

३-अर्थात तीवरे दिन काता है, इस में ज्वर के आले का दिन भी छे छिया जाता है अर्थात दिन आता है उस दिन समेत तीवरे दिन पुनः आता है ॥

४-तीसरे दिन से सात्पर्य यहा पर जबर आने के दिन का भी परिगणन कर के चौथे दिन क्योंकि जबर आने के दिन का परिगणन कर के ही इस का नाम चातुर्धिक वा नौथिया रक्का गया

५-इस उपर में अर्थात् निपमज्वर मे ॥

६-अर्थात् आथव की अपेक्षा से नाम रचते हैं, जैसे-सन्तत को रसगत, सतत को रसगत, का को मांसगत, तेवरा को मेदोगत तथा चौथिया को मकास्थिगत कहते हैं ॥

७-अर्थात् सन्तत से सतत, सतत से अन्येशुष्क, अन्येशुष्क से तेजरा और तेजरे से चीथिया । भयकर होता है ॥

८-अर्थात् सब की अपेक्षा चौथिया ज्वर शक्षिक अयकर होता है ॥

९-सम्पूर्ण विषयज्वर सिनपात से होते हैं परन्तु इन में जो दोष अधिक हो उन में उसी ं प्रधानता से चिकित्सा करनी चाहिये, विषयज्वरों में भी वेह का ऊपर नीचे से (वसन और विरे हारा) शोधन करना चाहिये तथा क्रिया और उष्ण अन्नपानों से इन (विषय) ज्वरों को जीतना चा

Ę٥

चिकित्सा—१-सन्तत उत्तर—इस उत्तर में-पटोल, इन्द्रयन, देवदार, गिलोय और नीम की छाल का काथ देना चाहिये ।

२—सत्ताज्वर—इस ज्वर में-नायमाण, कुटकी, वमासा और उपलसिरी का काय देना चाहिये।

२-अन्येद्युष्क (एकान्नर)-इस ज्वर में-दाल, पटोल, कहुआ नीम, मोब, इन्द्रयव तथा त्रिफला, इन का काथ देना चाहिये।

2-नेजरा-इस ज्वर में-बाला, रक्तचन्दन, मोश्र, गिलोय, धनिया और सोंठ, इन का काथ शहद और मिश्री मिला कर देना चाहिये।

५-चौथिया-इस ज्वर में-अद्भा, ऑवला, साळवण, देवदार, जौं हरहें और सोंठ का काय शहद और मिश्री मिला कर देना चाहिये।

सामान्य चिकित्सा—६—दोनों प्रकार की (छोटी बड़ी) रींगणी, सोंठ, घनिया और देवदारु, इन का काथ देना चाहिये, यह काथ पाचन है इस छिये विषमज्वर तथा सब प्रकार के ज्वरों में इस काथ को पहिले देना चाहिये।

७-मुस्तादि काथ-मीय, मुर्रिनेणी, निलीय, सींठ और आँवला, इन पांची की उकाली को श्रीतल कर शहद तथा पीपल का चूर्ण डाल कर पीना चाहिये।

८—जवरांकु शैं—गुद्ध पारा, गन्यक, वत्सनाग, सोंठ, मिर्च और पीपल, इन छः कों पदार्थों का एक एक भाग तथा गुद्ध किये हुए धतूरे के बीज दो आग छेने चाहियें, इन में से प्रथम पारे और गन्धक की कजली कर श्रेष चारों पदार्थों को कपड़छान कर तथा सब को मिला कर नींबू के रसमें खूब खरेंड कर दो दो रती की गोलियां बनानी चाहियें, इन में से एक वा दो गोलियों को पानी में वा खदरख के रस में अथवा सोंठ के पानी में जबर आने तथा ठंड छगने से आप बण्टे अथवा चण्टे मर पहिले छेना चाहिये, इस से जबर का आना तथा ठंड का छगना बिलकुछ बन्द हो जाता है, ठंड के ज्वर में ये गोलियां किनाइन से भी अधिक फायदेगन्द हैं।

१—पहिले इसी काथ के देने से दोषों का पाचन होकर उन का नेग सन्द हो जाता है तथा सन की प्रयस्तता मिट जाती है और प्रवस्ता के मिट चाने से पीछे दी हुई साधारण भी खोषि सीप्र ही तथा विशेष फायदा करती है ॥

२-भूरीयणी सर्वात् कटेरी ॥

३-आते हुए ज्वर के रोकने के किये तथा ठंड छगने को बूद करने के किये यह (ज्वराहुस) महुरा उत्तम कोषनि है !!

४-खरळ कर अर्थात् खरळ में घोंट कर ॥ ५-क्योंकि ये गोलियां ठंड को मिटा कर तथा धरीर में उच्चता का सवार कर बुखार को मिटावी हैं स्तीर शरीर में शक्ति को भी उरवन करती हैं॥

पुरुकर चिकित्सा—९—बीथिया तथा तेजरा के ज्वर में अर्गस्त के पत्तों का रस अथवा उस के स्खे पत्तों को पीस तथा कपड़छान कर रोगी को सुँघाना चाहिये तथा पुराने घी में हाँग को पीस कर सुँघाना चाहिये।

१०-इन के सिवाय-सब ही विषय जबरों में ये (नीचे लिखे) उपाय हितकारी हैंकाली मिर्च तथा तुलसी के पत्तों को घोट कर पीना चाहिये, अथवा-काली जीरी तथा
गुड़ में थोड़ी सी काली मिर्च को ढाल कर खाना चाहिये, अथवा-सोंठ जीरा और गुड़,
इन को गर्भ पानी में अथवा पुराने शहद में अथवा गाड़ी छाल में पीना चाहिये, इस के
पीने से ठंढ का जबर उत्तर जाता है, अथवा-नीम की मीतरी छाल, गिलोय तथा चिराथते के पत्ते, इन तीनों में से किसी एक वस्तु को रात को मिगा कर प्रातःकाल कपड़े से
छान कर तथा उस जल में मिश्री मिला कर और थोड़ी सी काली मिर्च ढाल कर पीना
चाहिये, इस के पीने से ठंढ के जबर में बहुत फायदा होता है।

स्मरण रहे कि—देशी इलाजों में से वनस्पति के काथ के लेने में सब प्रकार की निर्म-यता है तथा इस के सेवन में घर्म का संरक्षण भी है क्योंकि सब प्रकार के कांद्रे उचर के होने पर तथा न भी होने पर प्रति समय दिये जा सकते है, इस के अतिरिक्त—इन से मल का पाचन होकर दक्त भी साफ आता है, इस लिये इन के सेवन के समय में साफ दक्त के आने के लिये प्रथक् जुलान आदि के लेने की आवश्यकता नहीं रहती है, तारपर्य यह है कि—वनस्पति का काथ सर्वथा और सर्वदा हितकारी है तथा साधारण चिकित्सा है, इसलिये जहां तक हो सके पहिले इसी का सेवन करना चाहिये ।।

सन्तत ज्वर (रिमिटेंट फीवर) का विशेष वर्णन ॥

कारण-- विवमज़्वर का कारण यह सन्ततज्वर ही है जिस के लक्षण तथा

१-इस के-अगस्य, वगसेन, म्रानिपुष्प और मुनिद्वम, ये सस्कृत नाम हैं, हिन्दी में इसे अगस्य अग-स्तिया तथा इथिया भी कहते हैं, वगाठी में-यक, मराठी में-हदगा, गुजराती से-अगथियों तथा अप्रेजी में आण्डी फलोरा कहते हैं, इस का वृक्ष ढम्बा होता है और इस पर पर्तेवाठी वेकें अधिक चढती हैं, इस के पत्ते इसठी के समान छोटे २ होते हैं, फूछ सफेद, पीला, छाछ और काला होता है अर्थात् इस का फूल चार प्रकार का होता है तथा वह (फूछ) केसूछा के फूछ के समान वाका (टेड़ा) और उत्तम होता है, इस वृक्ष की छम्बी पताठी और चपटी फिल्टिया होती हैं, इस के पत्ते शीतछ, रुझ, वातकर्ता और कहुए होते हैं, इस के सेवन से पित्त, कफ, चौथिया उचर और सरेकमा दूर हो जाता है ॥

२-यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है कि-वनस्पति की खराक तथा रूपान्तर में उस का सेवन प्राणियों के लिये सर्वेदा हितकारक ही है, यदि वनस्पति का काथ आदि कोई पदार्थ किसी रोगी के अनुकूल न भी आदि तो उसे छोड वेना चाहिये परन्तु उस से जरीर में किसी प्रकार का विकार होकर हानि की सम्भावना कभी नहीं होती है जैसी कि अन्य रसादि की मानाओं आदि से होती है, इसी लिये कपर कहा गया है कि-जहा तक हो सके पहिले इसी का सेवन करना चाहिये ॥

चिकित्सा पहिले संक्षेप से लिख चुके हैं वह मलेरिया की विषेठी हवा में से उपन्न होता है तथा यह ज्वर विषमज्वर के दूसरे मेदों की अपेक्षा अधिक भयङ्कर है रैं।

स्वस्ण — यह ज्वर सात दश वा बारह दिन तक एक सहस्र (एकसरीखा) आया करता है अर्थात् किसी समय भी नहीं उतरता है, यह ज्वर मायः तीनों दोषों के कुपित होने से आता है, इस ज्वर के प्रारंग में पाचनिक्रया की अन्यवस्था (गड़बड़), विकल्लता (वेचैनी), खिन्नता (चित्त की दीनता) तथा शिर में दर्द का होना आदि लक्षण माख्स होते हैं ठंढ की चमकारी इतनी थोड़ी आती है कि ठंढ चढ़ने की खबर तक नहीं पड़ती है और शरीर में एकदम गर्भी गर जाती है, इस के सिवाय—इस ज्वर में चमड़ी में दाह, वमन (उल्लटी), शिर में दर्द, नींद का न आना तथा तन्द्रा (मींट) का होना आदि लक्षण भी पाये जाते हैं।

अन्तवेंगी (अन्तिरिया) बुलार से इस बुलार में इतना मेद है कि -अन्तवेंगी ज्वर में तो ज्वर का चढना और उतरना स्पष्ट माख्य देता है परन्तु इस में ज्वर का चढना और उतरना स्पष्ट माख्य देता है परन्तु इस में ज्वर का चढना और उतरना माख्य नहीं देता है, क्यों कि अन्तवेंगी ज्वर तो किसी समय विज्ञुल उतर जाता है और यह ज्वर किसी समय भी नहीं उतरता है किन्दु न्यूनाधिक (कम ज्यादा) होता रहता है अर्थात् किसी समय कुछ कम तथा किसी समय अत्यन्त ही कम हो जाता है, इस लिये यह भी नहीं माख्य पड़ता है कि क्व अविक हुआ और कब कम हुआ, यह बात प्रकटतया अर्थामेटर से ठीक माख्य हैति है, तास्पर्य यह है कि इस ज्वर की दो खिति होती हैं—जिन में से पहिली स्थिति में ओड़े र अन्तर से अपर इत कम रहता है और पिछे दूसरी स्थिति में ज्वर की मरती (आमद) अनुमान आठ र धण्टे तक रहती है, इस समय चमड़ी बहुत गर्भ रहती है, नाड़ी बहुत जल्दी चळती है, श्वासोच्छ्वास बहुत वेग से चळतों है और मन को विकळता प्राप्त होती है अर्थात् सन को चैन नहीं मिळता है, ज्वर की गर्मी किसी समय १०४

१-पहिके किख जुके हैं कि मकेरिया की निषेठी हवा चीमासे के बाद दळदलों में से उत्पन्न होती है ॥ १-तात्पर्य यह है कि मकेरिया की निषेठी हवा शरीर के अत्येक भाग में अविष्ट होकर तथा अपना सतर इस अवर को उत्पन्न करती है इस किये यह ज्वर अधिक मथकर होता है ॥

कर जबर का अपन करना हराने हैं साईस की न्यूनता (कमी) तथा अधिकता (ज्यादती) स्वष्ट माईस मुन्ता (कमी) तथा अधिकता (ज्यादती) स्वष्ट माईस हो जाती है, बस उसी से जबर की भी न्यूनता तथा अधिकता साईस कर की आदी है, बर्शात यमी की हो जाती है, बर्शात का निश्चय हो जाता है। क्योंकि न्यूनता से उचर की न्यूनता तथा कमी की अधिकता से उचर की अधिकता का निश्चय हो जाता है। क्योंकि न्यूनता से उचर की न्यूनता तथा कमी की अधिकता से उचर की अधिकता का निश्चय हो जाता है। क्योंकि न्यूनता से उचर की क्याने की रीति पहिछे लिख पहिछे लिख चुके हैं कि उचर के वेग में गर्मी बढती जाती है, अर्थीमेटर के लगाने की रीति पहिछे लिख चुके हैं।

पुक्त हु ॥ ४-नाडी का चीत्र चलना तथा श्वासोध्छास का वैग से श्वाना, ये दोनों वार्ते उत्तर के वेग के ही कारण होती हैं तथा उसी से इंदय की अखस्थता होकर सन को विकलता प्राप्त होती है ॥

तक तथा किसी समय उस में भी आगे अर्थात् १०५ और १०७ तक भी वह जाती है, इस प्रकार आठ दश घंटे तक अधिक वेगयुक्त होकर पीछे कुछ नरम (मन्द) पड़ जाता है तथा थोड़ा २ पसीना आता है, ज्वर की गर्मी के अधिक होने से इस के साथ खांसी, छीवर का वरम (शोध), पाचनिक्रया में अन्यवस्था (गड़वड़) अतीसार और मरोड़ा आदि उपद्रव भी हो जाते हैं।

इस ज्वर में प्रायः सातवें दशवें वा बारहवें दिने तन्द्रा (मींट) अथवा सिन्नपात के छक्षण दीखने छगते है तथा इस ज्वर की उचित चिकित्सा न होने से यह १२ से २४ दिन तक ठहर जाता है³।

चिंकित्सा—यह सन्तवज्वर (रिमिटेंट फीवर) बहुत ही मयंकर होता है इस लिये यदि गृहजनों को इस का ठीक परिज्ञान न हो सके तो कुशल वैद्य वा डाक्टर से इस की परीक्षा करा के चिकित्सा करानी चाहिये, क्यों कि सख्त और मयंकर बुखार में रोगी ७ से १२ दिन के अन्दर मर जाता है और जब रोग अधिकदिन तक ठहर जाता है तो गम्मीर रूप पकड़ लेता है अर्थात् पीछे उसका मिटना अति दु:साध्य (कठिन) हो जाता है, सब से प्रथम इस बुखार की ग्रस्थ चिकित्सा यही है कि—बुखार की टेम्परेचर (गर्मी) को जैसे हो सके वैसे कम करना चाहिये, क्यों कि ऐसा न करने से एकदम खून का जोश चटकर मगज़ में शोथ हो जाता है तथा तन्द्रा और तिदोष हो जाता है इस लिये गर्मी को कम करने के लिये यथाशक्य शीध ही उपाय करना चाहिये, इस के अतिरिक्त जो देशी चिकित्सा पहिले लिख चुके है वह करनी चाहिये।।

जीर्णज्वर का वर्णन ॥

कारण—जीर्णज्वर किसी विशेष कारण से उत्पन्न हुआ कोई नया बुसार नहीं हैं किन्तु नया बुसार नरम (मन्द) पड़ने के पीछे जो कुछ दिनों के वाद अर्थात् बारह दिन के बॉद मन्दवेग से शरीर में रहता है उस को जीर्णज्वर कहते हैं, यह ज्वर ज्यों

¹⁻तात्पर्य यह है कि-बात के प्रकोप में सातवे दिन, पित्त के प्रकोप में दशवे दिन तथा कफ के प्रकोप में बारहवे दिन तन्त्रा होती है अथवा पूर्व लिखे अनुसार एक दोप कुपित हुआ दूसरे दोपों को भी कृपित कर देना है इस लिये सिक्पात के लक्षण दीखने लगते हैं॥

१-तात्पर्य यह है कि दोषों की प्रवलता के अनुसार इस की १२ से २४ दिन तक स्थिति रहती है ॥

३-अर्थात् गर्भा को सभाषक्य उपायों द्वारा बढने नहीं देना चाहिये॥

४-तारपर्य यह है कि-वारह दिन के बाद तथा तीनो दोधों के द्विगुण (हुगुने) दिनों के (तेरह द्विगुण छन्बीस) अर्थात् छन्बीस दिनों के उपरान्त को ज्वर अरीर में सन्दवेग से रहता है उस को जीर्णज्वर कहते हैं, परन्तु कोई आवार्य यह कहते हैं कि २१ दिन के उपरान्त सन्दवेग से रहनेवाला ज्वर जीर्णज्वर होता है।

२ पुराना होता है त्यों २ मन्दवेगवाळा होता है, इसी को अखिज्वर (अखि अर्थात् हाड़ों में पहुँचा हुआ ज्वर) भी कहते हैं ।

लक्ष्मण—इस ज्वर में मन्द्रवेगता (बुलार का वेग मन्द्र), शरीर में रूलापन, चमड़ी पर शोथ (स्जन), थोथर, अक्षों का जकड़ना तथा कफ का होना, ये लक्षण होते हैं तथा ये लक्षण जब कम २ से बढते जाते हैं तब वह जीर्णज्वर कष्टसाध्य हो जाता है ।

चिकित्साँ—१-गिछोय का काढ़ा कर तथा उस में छोटीपीपल का चूर्ण तथा शहद मिलाकर कुछ दिन तक पीने से जीर्णज्वर मिट जाता है।

२—खांसी, श्वास, पीनस तथा जरुचि के संग यदि जीर्णज्नर हो तो उस में गिलोय, भूरींगणी तथा सोंठ का काढ़ा बना कर उस मे छोटी पीपल का चूर्ण मिला करें पीने से वह फायदा करता है"।

३—हरी गिलोय को पानी में पीसकर तथा उस का रस निचोड़ कर उस में छोटी पीपल तथा शहद मिला कर पीने से जीर्णज्वर, कफ, सांसी, तिल्ली और अरुचि मिट जाती है।

४-दो माग गुड़ और एक माग छोटी पीपल का चूर्ण, दोनों को मिला कर इस की गोली बना कर खाने से अजीर्ण, अरुचि, अग्नियन्दता, खांसी, श्वास, पाण्डु तथा कृषि रोग सहित जीर्णज्वर मिट जाता है।

५-छोटी पीपल को श्रहद में चाटने से, अथवा अपनी शक्ति और प्रकृति के अनुसार दो से केकर सात पर्यन्त छोटी पीपलों को रात को जल को जल में वा तूथ में मिगा कर

२-जीभे उदर का एक भेद वातवकासकी है, उस में ये सब कक्षण पाये जाते हैं, वह उदर कप्टवाच्य भाना जाता है ॥

३-इस उवर में रोगी को छंघन नहीं करवाना चाहिये, क्योंकि छघन के कराने से ज्यों २ रोगी क्षीय होता जावेगा त्यों २ यह ज्वर बढता चळा जावेगा ॥

४-पीपल का चूर्ण अनुमान ६ सासे डालना चाहिये तथा काढे की दवा दो तोले लेकर ३२ तोले जल में

औंटाना चाहिये तथा ८ तोले जरू श्रेष रखना चाहिये ॥

५—यह काथ अप्ति की सन्दता, ऋल और सर्वित (लक्ष्य) रोग को भी सिटाता है, इत काय के विषय में आचार्यों की यह भी सम्मति है कि—कर्ष्यगत (नामि से कपर के) रोग के निवारण के क्षिये हसे साथकाल को देना चाहिये (यह चक्रदत्त का सत है), विद रात्रिज्वर हो तो भी सार्थकाल को देना चाहिये, यूसरी अवस्था में आतःकाल देना चाहिये तथा पित्तप्रधानस्वल में धीयल का चूणें न डाल कर उस के बदले में शहद कालना चाहिये ॥

^{9—}यह ज्वर क्रम २ से सातों बातुओं में जाता है, अर्थात पहिन्ने रस में, फिर रक्त में, फिर मांस में, फिर मेंस में, फिर सेंद में, फिर हुई। में, फिर मजा में और फिर हुकमें जाता है, इस ज्वर के मजा और हुक बाद में पहुँचने पर रोगी का बचना असम्भन हो जाता है ॥

खाने से, अथवा दूध में उकाल कर पीने से, अथवा पीपलों को पीस कर गोली वना कर खाने से और गोली पर गर्म कर ठंढा किया हुआ दूध पीने से अर्थात् प्रतिदिन कम २ से बड़ाकर इस का सेवन करने से जीर्णज्वर आदि अनेक रोग मिट जाते हैं।

६-आमलक्यादि चूर्ण--आँवला, चित्रक, हरड़, पीपल और सेंघा निमक, इन का चूर्ण बनाकर सेवन करना चाहिये, इस चूर्ण से बुखार, कफ तथा अरुचि का नाश हो जाता है, दख साफ आता है तथा अप्रि प्रदीष्ठ होती है।

७-खणवसन्तमालिनी और चौंसठपहरी पीपलं-ये दोनों पदार्थ जीर्णजनर के लिये अक्सीर दवा है॥

ज्वर में उत्पन्न हुए दूसरे उपद्रवों की चिकित्सा ॥

ज्वर में कास्त (खांसी)—इस में कायफल, मोय, माइंगी, धनियां, चिरायता, पित्तपापड़ा, वच, हरड़, काकड़ासिंगी, देवदारु और सोंठ, इन ११ चीज़ों की उकाली बना कर होनी चाहिये, इस के छेने से खांसी तथा कफ सहित बुखार चला जाता है।

अथवा पीपरू, पीपरामूळ, इन्द्रयव, पित्तपापड़ा और सोंठ, इन ओषियों के चूर्ण को शहद में चारने से फायदा होता है।

ज्वर में अतीसार—इस में छंघन करना चाहिये, क्योंकि इस में छंघन पथ्य हैं । अथवा—सोंठ, कुड़ाछाल, मोथ, गिलोय और अतीस की कली, इन की उकाली लेनी चाहिये।

अथवा—काठी पाठ, इन्द्रयव, गिलोय, पित्तपापड़ा, मोथ, सोंठ और चिरायता, इनकी छकाठी छेनी चाहिये।

दुर्जिल्डचर---यह ज्वर खराब तथा मैं छे पानी के पीने से, अथवा शिखरगिरि, बद्रीनाथ, आसाम और अड़ंग आदिस्थानों के पानी के रूगने से होता है।

इसज्वर में हरड़, नीव के पत्ते, सोंठ, सेंघानिमक और चित्रक, इनका चूर्ण कर बहुत दिनोंतक सेवन करना चाहिये, इस का सेवन करने से बुखार मिट जाता है।

अथवा—पटोळ वा कडुई तुरई, मोथ, गिळोय, अङ्क्सा, सोंठ, धनिया और चिरायता, इन का काथ शहद ढाळकर पीना चाहिये।

९--ये दोनों पदार्थ शास्त्रोक्त विधि से तैयार किये हुए इसारे "सारवाबस्रधावर्षणसलीपघालय" में सर्वेदा तैयार रहते हैं, इसारे यहा का औषघसुचीपत्र संगा कर देखिये ॥

२-ज्वर में अतीक्षार होने पर छवन के सिवाय दूसरी ओषि नहीं है खर्यात छवन ही विशेष फायदा करता है, क्योंकि-छवन वहें हुए दोषों को झान्त कर देता है तथा उन का पाचन भी करता है, इस लिये ज्वर में अतीक्षार होने पर बळवान रोगी को तो अवस्य ही आवश्यकता के अनुसार छवन कराने चाहियें, हा यदि रोगी निर्वेछ हो तो दूसरी बात है।

अथवा—चिरायता, निसोत, सश, वाला, धीपळ, वायविद्रंग, सोंठ और कुटकी, इन, सब औषघों का चूर्ण बना कर शहद में चाटना चाहिये।

अथवा—सींठ, जीरा और हरड़, इनकी चटनी बनाकर मोजन के पहिले खानी चाहिये। अथवा—वस्तनाय दो भाग, जलाई हुई कीड़ी पांच माग और काली मिर्च नी भाग, इन को कूट कर तथा अदरख के रस में घोट कर मूंग के बराबर गोली बना लेनी चाहियें तथा इन में से दो गोलियों को प्रातःकाल तथा सायंकाल (दोनों समय) पानी से लेना चाहिये, ये गोलियां आमज्बर, खराब पानी के लगने से उत्पक्ष ज्वर, अजीर्ण, अफरा, मलबन्य, शूल, श्वास और कास आदि सब उपद्ववों में फायदा करती हैं।

ज्वर में तृषा (प्यास)—इस में चाँदी की गोळी को गुँह में रसकर चूसना चाहिये!

अथवा---आलूबुखारा वा खजूर की गुठळी को चूसना चाहिये। अथवा---शहद और पानी के कुरले करने चौहियें।

अथवा—जहरी नारियल की गिरी, रुद्राक्ष, सेके (भूने) हुए लैंग, सोना, विना विषे हुए मोती, मूँगिया और (मिल सके तो) फालसे की जड़, इन सब को थिस कर सीप में रख, लोड़ना चाहिये तथा वण्टे २ मर पीछे जीम के लगाना चाहिये, तरप्थात पहरमर के बाद फिर थिस कर रख लोड़ना चाहिये और उसी प्रकार लगाना चाहिये, इस से पानी झरे तथा मोती झरे की प्यास, श्रिदोष की प्यास, कांटे, जीम का कालपन और वमन (उलटी) आदि कृष्टसाध्य भी रोग मिट जाते है तथा यह लोषघ रोगी को खुराक के समान सहारा और ताकृत देती हैं।

ज्वर में हिका (हिचकी)—यदि ज्वर में हिचकी होती हो तो सेंधेनिमक को जळ में वारीक पीस कर नस्य देना चाहिये।

अथवा—सोंठ और खांडकी नख देना चाहिये।

अथवा—हींगकी धूनी देना चाहिये।

भाषवा---निर्धूम अंगार पर हींग काली मिर्च तथा उदद को अथना घोड़े की स्ली छीद को जला कर उस की घुआँ को स्ंघना चाहिये।

९-इस के सेवन से घोर तृषा भी बीघ्र ही शान्त हो जाती है, इस में जरू बिळकुल ठडा बेना नाहिये।
२-जम्मीरी, विजीरा, अनारदाना, वेर और ज्का, इन को पीसकर मुख में छेप करने से भी प्याप्त
मिट जानी है, अथवा-शहद, वड (बरगद) की कोंपल और खील (भूने हुए धान अर्थात तुषसहित
चॉवल), इन सब को पीस कर मुख में इन का कनळ रखना नाहिये, यह भी तृषा (प्यास) की निवृत्ति
के लिये अच्छा प्रयोग है।

अथवा—पीपल की सूखी छांल को जला कर पानी में 'बुझाना चाहिये 'फिर उसी पानी को छान कर पीना चाहिये।

अथवा—राई की जावे तोले बुकनी को आघरोर पानी में मिलाकर थोड़ीदेर तक रख छोड़ना चाहिये फिर नितरे हुए पानी को लेकर आधी २ छटांक पानी को दों वा तीन घण्टे के अन्तर से पीना चाहिये।

ज्वर में श्वास—इस में दोनों मूरींगंणी, धमासा, कड़ाई तोरई अथवा पटोल, काकड़ासिंगी, माइंगी, कुटकी, कचूर और इन्द्रयव, इन की उकाली बना कर पीनी चाहिये³!

अथवा—छोटीपीपल, कायफल और काकड़ासिंगी, इन तीनों का चूर्ण शहद में चाटना चाहियें ।

ज्वर में मूच्छी-इस में अदरल का रस झुँवाना चाहिये।

अथवा—शहर, सेंधानिमक, मैनशिल और काली मिर्च, इन को महीन पीस कर उस का ऑल में अझन करना चाहियेँ।

अथवा--ंठेंढे पानी के छींटे आंख पर लगाने चाहियें।

अथवा--- सुगन्धित धूप देनी चाहिये तथा पंखे की हवा छेनी चाहियें।

ज्वर में अरुचि — इस में अदरल के रस को कुछ गर्म कर तथा उस में सेंघानि-मक ढाल कर थोड़ासा चाटना चाहिये।

अथवा-विजौरे के फल के अन्दर की किलयां और सेंधानिमक, इन को मिला कर मुंह में रखना चाहिये ।

ज्वर में वमन—इस में गिलोय के काथ को ठंढा कर तथा उस में मिश्री और शहद डाल कर उसे पीना चाहियें।

१-दोनों भूरींगणी अर्थात् छोटी कटेरी और वडी कटेरी ॥

१-यह दशाग काथ समिपात को भी दर करता है ॥

३-जनर मे शास होने के समय क्रातिंशतकाथ (३२ पदानों का काढा) भी बहुत लाभदायक है, उस का वर्णन मावप्रकाश आदि प्रन्थों में देख छेना चाहिये, यहा विस्तार के भय से उसे नहीं लिखा है।

४-इन नारो चीज़ो को जल में वारीक पीस छेना चाहिये ॥

५-ज्वरदशा में मूर्ज होने के समय हुछ श्रीतल और मन को आराम देनेवाले उपचार करने चाहिये, जैसे-मुगन्चित अगर आदि श्री धूनी देना, सुगन्चित फूलो की माला का धारण करना, नरम ताल (ताड) के पत्नो की हवा करना तथा बहुत कोमल केले के पत्तो को अरीर से लगाना हत्वादि ॥

६-किन्हीं आजार्यों का कथन है कि-विजारे की केशर (अन्दर की किलग), घी और संघानिसक का, अथवा ऑवके, दाख और मिश्री का करक मुख में रखना चाहिये॥

७-किन्हीं आवार्यों की सम्मति केवल शहद बाल कर पीने की है।

अथवा-मिश्री डाङ कर पित्तपापड़े का हिम पीना चाहिये। अथवा-ऑवला, दाल और मिश्री का पानी, इन का सेवन करना चाहिये।

अयवा—दाल, चन्दन, वाला, मोथ, मौलेटी और धनियां, इन सब चीज़ों को अथवा इन में से जो चीज़ मिले उस को भिगा कर तथा पीस कर उस का पानी पीना चाहिये ।

अथवा—मोर के जले हुए चार चँदने, मुनी हुई पीपल, मुना हुआ जीरा, जली हुई नारियल की जोटी, जलाया हुआ रेशम का कूचा वा कपड़ा, पोदीना और कमलगहे (पन्त्रोड़ी) के अन्दर की हरियाई (गिरी), इन सन को पीस कर शहद में, अनार के शर्वत में, अथवा मिश्री की चासनी में नमन (उलटी) के होते ही चाटना चाहिये तथा फिर भी घण्टे धण्टे भर के बाद चाटना चाहिये, इस से त्रिदोप की भी वमन तथा छदीं बन्द हो जाती है।

अथवा-मुजा की दोनों नसों को खूब खींच कर वांधना चाहिये।

अथवा—नारियल की जोटी, इलदी, काली मिर्च, उड़द और मोर के चन्दे का धूम-पान करना चाहिये।

अयवा-नीम की भीतरी छाल का पानी मिश्री ढाल कर पीना चाहिये।

ज्वर में दाहं—इस में यदि भीतर दाह हो तो पायः वह चिकित्सा हितकारक है जो कि वसन के लिये लाभदायक है, परन्तु यदि वाहर दाह होता हो तो कबे चाँचलें के धोवन में विसा हुआ चन्दन एक बाल तथा घिसी हुई सींठ एक रत्ती लेनी चाहिये, इस में थोड़ा सा शहद मिला कर चाटना चाहिये तथा पानी में मिलाकर पीना चाहिये।

अथवा-चन्दन, सींठ, वाला और निमक, इन का लेप करना चाहिये।

अथवा-मगन पर मुलतानी मिट्टी का थर भरना चाहिये ।

यदि परार्थेकी तथा हयेकियों में दाह होता हो तो उत्तम साफ पैंदेवाकी फूक (कांसे) की कटोरी केकर धीरे २ फेरते रहना चाहिये, ऐसा करने से दाह अवश्य ज्ञान्त हो जावेगी। क्वर में पथ्य अर्थात् हितकारी कर्त्तव्यें।

१-परिश्रम के काम, छंघन (उपवास) और वायु से चेंद्र हुए ज्वर में-दृध के साथ मात का खाना पथ्य (हितकारक) है, कफ के ज्वर में मूंग की दाल का पानी

9-ज्वर में दाह होने की दशा में प्रायः वे भी चिकित्सार्गे हितकारक हैं जो कि दाह के प्रकरण में प्रन्थान्तरों में लिखी हैं,।परन्तु इस में इस वात का अवस्य स्मरण रखना चाहिये कि जो विकित्सा ज्वर के विरुद्ध अर्थात् ज्वर की बढ़ानेवाली हो उसे कभी नहीं करना चाहिये ॥

२-पगथली अर्थाह पैरों के तलवे ॥ ३-फूल अर्थात कारे की कटोरी के फेरने से एक प्रकार की बिजुली की खाँक के द्वारा आकर्षण ही

कर दाह निकल जाता है। ' ४-ज्यर में पथ्य अर्थात् हितकारी कर्तव्य का अवस्य वर्ताव करना जाहिये, क्योंकि-पथ्य का वर्ताव करने से दी हुई ओविष से भी कुछ लाम नहीं होता है तथा पथ्य का वर्ताव करने से ओविष के देने की भी विशेष आवस्यकता नहीं रहती है। तथा भात पथ्य है, पित्तज्वर के लिये भी यही पथ्य समझना चाहिये, परन्तु पित्तज्वर-बाले को ठंढा कर तथा थोड़ी सी मिश्री मिलाकर लेना चाहिये ।

यदि दो दोष तथा त्रिदोष माल्यम हों तो उस में केवल मूंग की दाल का पानी ही पथ्य है। २—मूंग का ओसामण, भात, अथवा साबुदाना, ये सब वस्तुर्ये सामान्यतया ज्वर में पथ्य हैं, अर्थात् ज्वर समय में निर्मय खुराक है।

इस के अतिरिक्त-यंह भी स्मरण रखना चाहिये कि-जहां दूध को पथ्य लिखा है वहां दूध के साथ साबूदाना समझना चाहिये अर्थात् दूध के साथ साबूदाना देना चाहिये, अथवा साबूदाना को जल में पका कर तथा उस में दूध मिला कर देना चाहिये।

१--प्रायः सब ही ज्वरों में प्रथम चिकित्सा छङ्घन है, अर्थात् ज्वर की दशा में छंघन परम हितकारक है और खास कर कफ तथा आम के ज्वर में, पित्त के ज्वर में, दो र दोषों से उत्पन्न हुए ज्वर में तथा त्रिदोषजन्यज्वर में तो छङ्घन परम छाभदायक होता है', यदि रोगी से सर्वथा निराहार न रहा जावे तो एक समय हळका आहार करना चाहिये, अथवा केवळ मूंगका ओसामण (पानी) पीना चाहिये, क्योंकि ऐसा करना भी छंघन के समान ही छामदायक है।

हां केवल वातज्वर, जीर्णज्वर, आगन्तुकज्वर और क्षय तथा यक्कत् के वरम से जरमन हुए ज्वर में विलक्कल निराहाररूप लंघन नहीं करना चाहिये, क्योंकि इन ज्वरों में निराहाररूप लंघन करने से उलटी हानि होती है।

8-तरुणज्वर में अर्थात् १२ दिन तक दूध तथा थी का सेवन विष के समीन है, परन्तु क्षय, शोथ, राजरोग और उरक्षित के ज्वर में, यक्नत् के ज्वर में, जीर्णज्वर में और आगन्तुकज्वर में दूध हितकारक है, इस में भी जीर्णज्वर में कफ के सीण होने के पीछे इक्कीस दिन के बाद तो दूध अस्त के समान है।

५—को ज्वरवाका रोगी अरीर में दुर्वक हो, जिस के खरीरका कफ कम पड़ गया हो, जिस को जीर्णज्वर की तककीफ हो, जिस को दस्त का वद्धकोष्ठ हो, जिस का शरीर रूखा हो, जिस को पित्त वा वायु का ज्वर हो तथा जिस को प्यास और दाह की तककीफ हो उस रोगी को भी ज्वर में दूध पथ्य होता है³।

१--म्योंकि रूपन के करने से दोषों का पाचन हो जाता है।

२-तरण ज्वर में दूध और थी आदि क्रिग्व पदार्थों के सेवन से मूर्क, वमन, मद और अविव सादि बूझरे रोग उत्पन्न हो जाते हैं॥

३-शरीर में दुर्बछ रोगी की दूध पीने से शक्ति बनी रहती है, जिसके शरीर का कफ कम पड़-गया हो उस के दूध पान से कफ की वृद्धि होकर दोगों की समता के द्वारा उसे सीघ्र आरोग्यता प्राप्त होती है, जीगेंज्वर में दूध पीने से शक्ति का स्वय न होने के कारण ज्वर की प्रवच्ता नहीं होती है, बदकोष्ठवाले को दूध के पीने से दस्त साफ आता रहता है, रूझ शरीरवाले के शरीर में दुग्धपान से रूझता मिट कर स्निम्धता (चिकनाहट) आती है, बातपित्तज्वर में दुग्धपान से उक्त दोगों की शानित हो कर ज्वर नष्ट हो जाता है तथा जिस रोगी को प्यास और दाह हो उस के भी उक्त विकार दूध के पीने से मिट जाते हैं।

६--ज्वर के प्रारम्भ में छंघन, मध्य में पाचन दवा का सेवन, अन्त में कड़ाई तथा कपैली दवा का सेवन तथा सब से अन्त में दोष के निकालने के लिये जुलाब का लेता, यह चिकित्साका उत्तम कम है ।

७-ज्वर का दोष यदि कम हो तो छंघन से ही जाता रहता है, यदि दोष मध्यम हो तो छंघन और पाचन से जाता है, यदि दोष बहुत बढ़ा हुआ हो तो दोष के संबो-धनका उपाय करना चाहिये।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि—सात दिन में वायु का, दश दिन में पित का जीर बारह दिन में कफ का ज्वर पकर्तो है, परन्तु यदि दोष का अधिक मकोप हो तो ऊपर कहे हुए समय से दुगुना समयतक जग जाता है।

८—ज्वर में जबतक दोवों के अंशांशकी सबर न पढ़े तबतक सामान्य चिकित्सा करनी चाहिये।

९ — ज्वर के रोगी को निर्वात (वायु से रहित) मकान में रखना चाहिये तथा हवा की आवश्यकता होने पर पंखे की हवा करनी चाहिये, मारी तथा गर्म कपड़े पहराना और ओढ़ाना चाहिये तथा ऋतु के अनुसार परिपक (पका हुआ) जल पिलाना चाहिये ।

१०-ज्वरवाले को कचा पानी नहीं पिलाना चाहिये तथा बारंबार बहुत पानी नहीं पिलाना चाहिये, परन्तु बहुत गर्भी तथा पित्त के ज्वर में बिंद प्यास हो तथा दाह होता हो तो उस समय प्यास को रोकना नहीं चाहिये किन्तु बाकी के सब ज्वरों में समाज

१-ज्वर के प्रारम्भ में छघन के करने से दोशों का पाचन होता है, सभ्य में पाचन इवा के सेवन से छंघन से भी न पके हुए उत्कृष्ट दोगों का पाचन हो जाता है, अन्त में कड़ई तथा कवें की दवा के सेवन से सामि का दीपन तथा दोशों का संशमन होता है तथा सब से अन्त में खुलाव के छेने से दोगों का संशोधन होने के हारा को छश्चिद्ध हो जाती है जिस से शीघ ही आरोग्यता प्राप्त होती है ॥

१-दोहा—सप्त दिवस ज्वर तर्ण है, चीदह सध्यम जान ॥
तिह जपर बुध जन कहै, उनरहिँ पुरातन मान ॥ १ ॥
पर्क पिराजनर दश दिनन, कफन्यर द्वादस जान ॥
सप्त दिवस मास्त पकै, छहुन तिन सम मान ॥ २ ॥
सीवध काचे ताप में, दे देवे जो जान ॥

मानों, काले सर्प को, कर उठाय लियो जान ॥ ३ ॥ ३-क्योंकि ज्वर के रोगी को कवे जल के पिछाने से ज्वर की वृद्धि हो जाती है ॥

४—प्रश्नुत ने लिखा है कि-प्यास के रोकने से (प्यास में जल न देने से) प्राणी बेहोश हो जाता है अन्य के होशी की दशा में प्राणों का नी खाग हो जाता है, इस लिये सब दशाओं में जल अवस्य देश और बेहोशी की दशा में प्राणों का नी खाग हो जाता है, इस लिये सब दशाओं में जल अवस्य देश लाहिये, इसी प्रकार हारीत ने कहा है कि-पृषा अल्बन्त ही घोर तथा तत्काल प्राणों का नाश करनेवाला जाहिये, इस लिये तृपार्त (प्यास से पीडित) को प्राण धारण (प्राणों का घारण करनेवाला) जल देश होती है, इस लिये तृपार्त (प्यास से पीडित) को प्राण धारण (प्राणों का घारण करनेवाला) जल देश नेवाहिये, इन वाक्यों से यही सिद्ध होता है कि-प्यास को रोकना नहीं धाहिये, हां यह ठीक है कि-यहत ग्रीडा २ जल पीना चाहिये ॥ रसकर शोड़ा २ पानी देना चाहिये, क्योंकि—ज्वर की प्यास में जल मी प्राणरक्षक (प्राणों की रक्षा करनेवाला) है।

११-ज्वरवाले को खाने की रुचि न मी हो तो भी उस को हितकारक तथा पथ्य मोजन ओषि की रीति पर (दवा के तरी के) बोड़ा अवस्य खिलाना चाहिये '।

१२-ज्वरवाले को तथा ज्वर से मुक्त (छूटे) हुए भी पुरुष को हानि करनेवाले आहार और विहार का त्याग करना चाहिये, अर्थात् खान, लेप, अभ्यङ्ग (मालिश), चिकना पदार्थ, जुलाव, दिन में सोना, रात में जायना, मेथुन, कसरत, ठंढे पानी का अधिक पीना, बहुत हवा के स्थान में बैठना, अति भोजन, भारी आहार, मक्कतिविरुद्ध भोजन, क्रोध, बहुत फिरना तथा परिश्रम, इन सब बातों का त्याग करना चाहियें, क्योंकि—ज्वर समय में हानिकारक आहार और विहार के सेवन से ज्वर बढ जाता है तथा ज्वर जाने के पश्चात् शीन्न उक्त बत्तीव के करने से गया हुआ ज्वर फिर आने लगता है।

१३—साठी चावळ, ठाळ मोटे चावळ, मूंग तथा अरहर (तूर) की दाळ का पानी, चॅंदिलिया, सोया (सोवा), मेथी, घियातोरई, परवळ और तोरई खादि का शाक, बी में बघारी हुई दाख अनार और सफरचन्द, वे सब पदार्थ ज्वर में पथ्य है।

१४-दाह फरनेवाले पदार्थ (जैसे उड़द, चॅवला, तेल और दही आदि), सहे पदार्थ, बहुत पानी, नागरवेल के पान, घी और मद्य इत्यादि ज्वर में कुपथ्य है ॥

फ्रट कर निकलनेवाले ज्वरों का वर्णन ॥

फूट कर निकलनेवाले ज्वरों को देशी वैद्यकशास्त्रवालों ने ज्वर के प्रकरण में नहीं लिखा किन्द्य इन को मसूरिका नाम से क्षुद्र रोगों में लिखा है तथा जैनाचार्य योग-चिन्तामणिकार ने मूंघोरा नाम से पानीझरे को लिखा है, इसी को मरुखल देश में निकाला तथा सोलापुर आदि दक्षिण के देश के महाराष्ट्र (मराठे) लोग भाव कहते है,

१-ऐसा करने से शक्ति क्षीण नहीं होती है तथा वात और पित्त का प्रकोप भी नहीं बढता है।

२-देखों। ज्वर में स्नान करने से पुन. ज्वर प्रवक्तरण घारण कर छेता है, ज्वर में कसरत के करने से ज्वर की चृद्धि होती है, मिन्न (चिकने) पदार्थों के पान आदि से मूर्छा, वमन, उन्मत्तता और अविच होती है, मारी अञ्च के सेवन से तथा दिन में सोने से विष्टम्म (पेट का फूळना तथा गुढ़ गुड़ चान्द का होना), बात आदि दोगों का कोप, अन्नि की मन्दता, तीक्ष्णता तथा छित्रों का बहुना होता है, इस छिये ज्वरवाळा अथवा जिस का ज्वर उत्तर गया हो वह मी (कुछ दिनों तक) दाहकारी भारी और असारम्य (प्रकृति के प्रतिकृत्य) अञ्च पान-आदि का, विषद्ध मोजन का, अध्यक्षन (मोजन के ऊपर मोजन) का, दण्ड कसरत का, डोकना फिरना आदि विष्टा का, उवटन तथा सान का परिखाग कर दे, ऐसा करने से ज्वररोगी का ज्वर चळा जाता है तथा जिस का ज्वर चळा गया हो उस को उस्त वर्जन के करने से फिर ज्वर वाजिस नहीं आता है ॥

इसी प्रकार इन के भिन्न र देशों में प्रसिद्ध अनेक नाम हैं, संस्कृत में इसका नाम मन्त्र-ज्वर है, इस ज्वर में प्रायः पित्तज्वर के सब छक्षण होते हैं।

विचार कर देखा जावे तो ये (फूट कर निकल्नेनाले) ज्वर अधिक मयानक होते हैं अर्थात् इन की यदि ठीक रीति से चिकित्सा न की जावे तो ये शीव्र ही प्राणवातक हो जाते हैं परन्तु बड़े अफसोस का विषय है कि—लोग इन की मयंकरता को न समझ कर मनमानी चिकित्सा कर अन्त में प्राणों से हाथ घो बैठते हैं।

मारवाड़ देश की जोर जब दृष्टि उठा कर देखा जावे तो विदित होता है कि— वहां के अविद्या देवी के उपासकों ने इस ज्वर की चिकित्सा का अधिकार मूर्छ रण्डाओं (विधवाओं) को सौंप रक्खा है, जो कि (रंडायें) डाकिनी रूप हो कर इस की प्रायः पिचिविरोधी चिकित्सा करती हैं अर्थात इस ज्वर में अत्यन्त गर्म लोंग सोंठ और ब्राझी दिलाती है, इस का परिणाम यह होता है कि—इस चिकित्सा के होने से सौ में से प्रायः नब्ने आदमी गर्मी के दिनों में मरते हैं, इस बात को हम ने वहां लयं वेखा है और सौ में से दश आदमी भी जो बचते हैं वे भी किसी कारण से ही वचते हैं सो भी अत्यन्त कष्ट पाकर बचते हैं किन्तु उन के लिये भी परिणाम यह होता है कि वे जन्म भर अत्यन्त कष्टकारक उस गर्मी का भोग मोगते हैं, इस लिये इस बात पर मारवाड़ के निवासियों को अवस्य ही ध्यान देना चाहिये।

इन रोगों में यथि मसूर के दानों के समान तथा मोती अथवा सरसों के दानों के समान शरीर पर फुनसियां निकल्ती हैं तथापि इन में अल्यतया ज्वर का ही उपद्रव होता है इस लिये यहां हमने ज्वर के मकरण में इनका समावेश किया है।

भेद (प्रकार) — फूट कर निकल्नेवाले ज्वरों के बहुत से भेद (प्रकार) हैं, ज्व में से शीतला, ओरी और अचपड़ा (इस को मारवाड़ में आकड़ा काकड़ा कहते हैं) आदि मुख्य हैं, इन के सिवाय— मोतीश्चरा, रंगीला, विसर्प, हैजा और क्षेग आदि सब मर्थकर ज्वरों का भी समावेश इन्हीं में होता है।

कारण—नाना प्रकार के ज्वरों का कारण जितना शरीर के साथ सम्बन्ध रखता है उस की अपेक्षा वाहर की हवा से विशेष सम्बन्ध रखता है³।

१-ज्वर में पित्तविरोधी चिकित्सा का सर्वेया निषेध किया गया है अर्थात् ज्वर में पित्तविरोधी चिकित्ता कभी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से अनेक दूसरे भी उपहच चठ खड़े होते हैं ॥

२-मर्गोकि उक्त दवा की गर्मा रोगियों के इदय में सना जाती है और जब श्रीमन्द्रत की गर्मी पड़ती है तब उन के शरीर में द्विगुण गर्मी हो जाती है कि-विस का सहन नहीं हो सकता है और आखिरकार मर ही जाते हैं।

³⁻अर्थात् उत्रों का कारण बाहरी हवा से विश्वेय प्रकट होता है ॥

ऐसे फूट कर निकलनेवाले रोग कहीं तो एकदम ही फूट कर निकलते हैं और कहीं कुछ विशेष विलम्ब से फूटते हैं, इन रोगों का मुख्य कारण एक प्रकार का ज़हर (पाइजन) ही होता है और यह विशेष चेपी हैं इस लिये चारों ओर फैल जाता है अर्थात् बहुत से आदिमयों के शरीरों में बुस कर बड़ी हानि करता है, इस के फैलने के समय में भी कुछ आदिमयों के शरीर को यह रोग लगता है तथा कुछ आदिमयों के शरीर को यह रोग लगता है तथा कुछ आदिमयों के शरीर को नहीं लगता है, इस का क्या कारण है इस बात का निर्णय ठीक रीति से अभी-तक कुछ भी नहीं हुआ है परन्तु अनुमान ऐसा होता है कि कुछ लोगों के शरीर के बन्धेन विशेष के होने से तथा आहार निहार से प्राप्त हुई निक्छ (खराव) स्थिति-विशेष के हारा उन के शरीर के दोष ऐसे चेपी रोगों के परमाणुओं को शीष्ठ ही प्रहण कर लेते है तथा कुछ लोगों के शरीर के बन्धेन विशेष के हारा उन के शरीर के तत्त्वों-पर ऐसे रोगों के चेपी तत्त्व शीष्ठ असर नहीं कर सकते हैं, इस का मत्यक्ष प्रमाण यही है कि—एक ही स्थान में तथा एक ही घर में किसी को यह रोग लग जाता है और किसी को नहीं लगता है, इस का कारण केवल वही है जो कि अभी कपर लिख चुके है।

स्रिया—क्षुट कर निकलनेवाले रोगों में से कीतला आदि रोगों में प्रथम तो यह विशेषता है कि ये रोग प्रायः वचों के ही होते है परन्त कभी २ ये रोग किसी २ वड़ी अवस्थावाले के भी होते हुए देखे जाते है, इन में दूसरी विशेषता यह है कि—जिस के शरीर में ये रोग एक वार हो जाते हैं उस के फिर ये रोग प्रायः नहीं होते है, इन में तीसरी विशेषता यह है कि—जिस बच्चे के शीतला का चेप लगा दिया गया हो अर्थात् शीतला खुदवा डाली हो (टीका लगवा दिया हो) उस को प्रायः यह रोग किर नहीं होता है, यदि किसी २ के होता भी है तो थोड़ा अर्थात् बहुत नरम (मन्द) होता है

१--तात्पर्य यह है कि जब रोग के कारण का पूरा वसर श्वरीर पर हो जाता है तब ही रोग उत्पन्न हो जाता है ॥

२-अर्थात् स्पर्श से अथवा इवा के द्वारा उड कर लगनेवाला है ॥

३—तारपर्य यह है कि—प्रलेक कार्य के लिये देश काल और प्रकृति आदि के सम्बन्ध से अनेक साधनों की आवश्यकता होती है, इस लिये जिन लोगों का शरीर उक्त रोगों के कारणों का आध्यणीय (आध्य लेने योग्य) होता है उन के शरीर में चेपी रोग प्रकृट हो जाता है तथा जिन का शरीर उक्त सम्बंध से रोगों के कारणों का आध्यणीय नहीं होता है उन के शरीर में चेपी रोग के परमाणुनों का असर नहीं होता है।

किन्तु शीतला न खुदाये हुए बचों में से इस रोग से सौ में से प्रायः चालीस मरते हैं और शीतला को खुदाये हुए बचों में से प्रायः सौ में से छः ही मरते हैं'।

इस प्रकार का विष शरीर में प्रविष्ट (दाखिळ) होने के पीछे पूरा असर कर हेने पर प्रथम ज्वर के रूप में दिखलाई देता है और पीछे शरीर पर दाने फूट कर निकलते हैं; यही उस के होने का निश्चय करानेवाला चिह्न है।

शील, शीतला वा माता (स्मालपाक्स) का वर्णन ॥

भेद (प्रकार)—शीतला दो प्रकार की होती है—उन में से एक प्रकार की शीतला में तो दाने खोड़ और दूर २ निकलते हैं तथा दूसरे प्रकार की शीतला में दाने बहुत होते हैं तथा समीप २ (पास २) होते हैं अर्थात दूसरे प्रकार की शीतला सब शरीर पर कृट कर निकलती है, इस में दाने इस प्रकार आपस में मिल जाते है कि—तिल मर मी (ज़रा मी) जगह लाली नहीं रहती है, यह दूसरे प्रकार की शीतला बहुत कष्टदायक और मयक्कर होती है।

डाक्टर टामसन साहब लिखते हैं कि—हम ने स्काटलैंड में सन् १८१८ ई॰ से दिसम्बर सन् १८१९ तक ५०६ सीतला के रोगियों की दवा की, जिन में से २५० ने टीका नहीं लगवाया था उन में से ५० मरे, इकहतर को जिन्हों ने टीका लगवाया था पिर कीतला निकली और इन में से केवल तीन ही मरे, लगमग ३०० महुच्यों में से जिन्हों ने दूसरी वार टीका लगवाया था एक ही मरा, सन् १८२८ ई॰ में फ्रांस के मारसेल्स नगर में महामारी फैली, उस समय उस नगर में ४०,००० (बालीस हज़ार) महाम्य यसते थे, जिन में से ३०,००० (तीस हज़ार) के टीका लगा हुआ वा २,००० (दो हज़ार) के अच्छी तरह से टीका नहीं लगा था और ४,००० (ताम हज़ार) ने टीका नहीं लगवाया था, तीस हजार टीका लगे हुए महुच्यों में से दो हज़ार के बीतला निकली और उन में से केवल नीस मरे, इस लेख से पाठक लगा टीका लगाने के लगम को मले प्रकार से समझ गये होंगे, तात्पर्य यह है कि—सम्पूर्ण प्रमाणों से यह वात कि हो हुज़ी है कि टीका लगाना महुच्य को शीतला से बनाता है और यदि उसे रोक नहीं देता तो उस की प्रवल्ता को अवस्थ ही कम कर देता है, इतने पर भी मारतिनासी जन महुच्याति के कूर रोग के निवारण के उपायस्य टीका लगाने की प्रथा को खीकार न करें तो इस से अधिक क्या शोक की यात हो सकती है शब्द खेद का निवय है कि—जिन उपायों से सदैव प्राणरक्षा की समायना होती की यात हो सकती है ? बद्दे खेद का निवय है कि—जिन उपायों से सदैव प्राणरक्षा की समायना होती है और जिन को सुप्रतिष्ठित बाक्टरों ने परीक्षा करके लाककारी ठहराया है महुच्य लपनी मूर्खता, के कारण उन उपायों का सी तिरस्कार करते है ॥

^{9—}यह रोग विकासत में भी पहिले बहुत होता था, बाक्टर मूर साहब किसते हैं कि—रूण्डन में जहां टीका के प्रचिक्त होने के पहिले प्रखेक दश मृत्यु में एक मृत्यु घीतळा के कारण होती थी वहा अब प्रखेक पनाधी मृत्यु में केवल एक ही शीतळा से होती है, पन्द्रह वर्ष तक रूण्डन के शीतलावस्थताल में सी शीतळा के रोगियों में से पैतीस मनुष्यों के रूपमण सरते थे परन्तु जब से टीका की जाल विम्रली गई है तब से दो सी मनुष्यों में से जिन्हों ने टीका रूपमाया था केवल एक ही मरा। जिन जातियों में टीका के रूपमों का प्रचार नहीं है बहुवा एक हजार में से बाठ सी मनुष्यों के शीतळा निकलती है परन्तु उन में जो टीका रूपमाते हैं एक हजार में से केवळ छ:हीके शीतळा निकलती है।

स्वस्था—शरीर में शीतला के विश्व का प्रवेश होने के पीछे वारह वा चौदह दिन में शीतला का ज्वर साधारण ज्वर के समान आता है अर्थात् साधारण ज्वर के समान इस ज्वर में भी ठंढ का लगना, गर्मी, शिर में दर्द, पीठ में दर्द तथा वमन (उलटी) का होना आदि लक्षण दील पड़ते हैं, हां इस में इतनी विशेषता होती है कि—इस ज्वर में गले में शोथ (स्जन), शूक की अधिकता (ज्यादती), आंलों के पलकों पर शोथ का होना और श्वास में दुर्गीन्य (वदन्) का जाना आदि लक्षण भी देले जाते हैं।

कमी २ यह मी होता है कि—िकेशोर अवस्थावाले बालकों को शीतला के ज्वर के प्रारम्भ होते ही तन्द्रा (मीट वा ऊँघ) आती है और छोटे वचों के खैंचातान (श्वास में रुकावट) तथा हिचकियां होती है।

ज्वर चढने के पीछे तीसरे दिन पहिले मुंह तथा गर्दन में दाने निकलते हैं, पीछे— शिर, कपाल (मस्तक) और छाती में निकलते हैं, इस मकार कम से नीचे को जाकर आखिरकार पैरों पर दिखलाई देते हैं, यद्यपि दानों के दीखने के पहिले यह निश्चय नहीं होता है कि यह ज्वर शीतला का है अथवा सादा (सावारण) है परन्तु अनुमन तथा त्वचा (चमड़ी) का विशेष रंग शीम ही इस का निश्चय करा देता है।

जब शीतला के दाने बाहर दिखलाई देने लगते हैं तब जबर नरम (मन्द) पड़ जाता है परन्तु जब दाने पक कर भराव खाते हैं (भरने लगते हैं) तब फिर भी ज्वर वेग को भारण करता है, अनुमान दशवें दिन दाना फूट जाता है और खरूंट जमना शुरू हो जाता है, प्रायः चौदहवें दिन बह कुछ परिपक हो जाता है अर्थात् दानों के लाल चहे हो जाते हैं, पीछे कुछ समय बीतने पर वे भी अहरूय हो जाते हैं (दिखलाई नहीं देते हैं) परन्तु जब शीतला का शरीर में अधिक प्रकोप और वेग हो जाता है तब उस के दाने मीतर की परिपक (पकी हुई) चमड़ी में धुस जाते है तथा उन दानों के चिह्न मिटते नहीं हैं अर्थात् खड़े रह जाते हैं, इस के सिवाय— इस के कठिन उपद्रव में यदि यथो-चित्त चिकित्सा न होने तो रोगी की ऑल और कान इन्द्रिय भी जाती रहती है!

चिकित्सा —टीका का लगवा लेना, यह शीतला की सर्वोपिर चिकित्सा है अर्थात् इस के समान वर्चमान में इस की दूसरी चिकित्सा संसार में नहीं है, सत्य तो यह है कि —टीका लगाने की युक्ति को निकालने बाले इंगलेंड देश के प्रसिद्ध डाक्टर जेनर साहब के तथा इस देश में उस का प्रचार करने वाली श्रीमती वृटिश गर्वनेमेंट के इस परम उपकार से एतदेशीय जन तथा उन के वालक सदा के लिये आमारी है अर्थात् उन के इस परम उपकार का बदला नहीं दिया जा सकता है, इस वात को प्रायः सब ही

१-क्योंकि ससार में जीवदान के समान कोई दान नंही है, अत एवं इस से वढ कर कोई भी परम उपकार नहीं है।

जानते हैं कि—जब से उक्त ढाक्टर साहब ने खोज करके पीप (रेसा) निकाला है तब से लाखों बच्चे इस मयंकर रोग की पीड़ा से मुक्ति पाने और मृत्यु से बचने लगे हैं, इस उपकार की जितनी मशंसा की जाने वह बोड़ी है।

इस से पूर्व इस देश में पायः इस रोग के होने पर अविदादेवी के उपासकों ने केवल इस की यही चिकित्सा जारी कर रक्सी थी कि-शीतलादेवी की पूजा करते थे जो कि अभी तक शीतलाससभी (शील सातम) के नाम से जारी हैं ।

इस (शीतला रोग) के विषय में इस पवित्र आर्यावर्त के छोगों में और विशेष कर स्त्री जाति में ऐसा अम (बहम) धुस गया है कि—यह रोग किसी देवी के कोप से प्रकट होता हैं, इस लिये इस रोग की दवा करने से वह देवी कुद्ध हो जाती है इस लिये इस की कोई भी दवा वहीं करनी चाहिये, यदि दवा की भी जावे तो छोंग सोंठ और किसमिस आदि साधारण वस्तुओं को कुल्हिये (कुल्हड़ी) में छोंक कर देवा चाहिये और उन्हें भी देवी के नाम की आस्था (अद्धा) रख कर देवा चाहिये इस्मादि, ऐसे ट्यर्थ और मिथ्या अम (बहम) के कारण इस रोग की दवा व करने से हज़रों वक्षे इस रोग से दुःख पाकर तथा सड़ २ कर गरते थें।

यद्यपि यह मिथ्यात्रम अब कहां २ से नष्ट हुआ है तथापि बहुत से खानों में यह अब तक भी अपना निवास किये हुए है, इस का कारण केनल यही है कि वर्षमान समय में हमारे देश की खी जाति में अविद्यान्यकार (अज्ञानकरी अधिरा) अधिक प्रसरित हो रहा है (फैल रहा है"), ऐसे समय में लाशों और पासण्डी जनों ने खियों को वहका कर देनी के नाम से अपनी जीविका चला की है , न केनल इतना ही किन्तु उन धूर्तों ने अपने जाल में फँसाये रखने के हेतु कुछ समय से शीतलाष्टक आदि भी बना डाले हैं, इस लिये उन धूर्तों के कपट का परिणाम यहां की खियों में पूरे तौर से पह रहा है कि खियां जमी तक उस शीतला देनी की मानता किया करती हैं, बड़े अफसो-

^{9—}अर्थात पूर्व समय में (टीका छमाने की रीति के अचरित होने से पूर्व) इस रोग की कोई निकला नहीं करते थे, सिर्फ शीतका देवी का पूजन और आराधन करते थे तथा उसी का आध्य छेकर बैठे रहते ये कि शीतका माता अच्छा कर देगी, उस का परिणाम तो जो कुछ क्षेता था वह सब ही को बिदित हैं. अस: उस के किखने की विशेष आवश्यकता नहीं है ॥

२-यदि ऐसा न होता तो अन्य उपयोगी चिकित्साओं को छोड कर क्यों श्रीतका माता का आपर्य किये वैठे रहते ॥

३-न्योंकि उन को यह मी अस है कि-देवी के बास की आस्था न रख कर दी हुई साधारण बड़ मी कुछ काम नहीं कर सकती है और पेसा करने से भी देवी अधिक कुछ हो जावेगी इसादि ॥

४-यह वात सब को विदित ही होगी अथवा रिपोटों से विदित हो सकती है ॥ ५-यदापि पुरुषों के विचार अब कुछ पटट गये हैं तथा पटटते (बदस्रते) बाते हैं परन्तु क्षिया अव भी पुरुषों के विदेश करने पर मी नहीं मानती है अर्थात् इस कार्य को नहीं छोडती हैं ॥

६-क्योंकि उन (धूरों) को सीका मिलगवा है।।

सका स्थान है कि हमारे देशवासी जन डाक्टर जेनर साहब की इस विषय की जांच का शुमकारी प्रत्यक्ष फल देख कर भी अपने अम (बहम) को दूर नहीं करते हैं और न अपनी खियों को समझाते हैं यह केवल अविद्या देवी के उपासकपन का चिह्न नहीं तो और क्या है ?

हे आर्यमहिलाओ ! अपने हिताहित का विचार करो और इस वात का हृदय में निश्चय कर हो कि-यह रोग देवी के कोप का नहीं हैं अर्थात झठे वहम को विरुक्तर छोड़ दो, देखो ! इस बात को तम भी जानती और मानती हो कि अपने प्ररुपा जन (बड़ेरे लोग) इस रोग का नाम माता कहते चले आये है सो यह वहत ही ठीक है परन्त तम ने इस के असली तत्त्व का अब तक विचार नहीं किया कि पुरुषा जन इस रोग को माता क्यों कहते हैं. असली तत्त्व के न विचार ने से ही धूर्च और खार्थी जनों ने तुम को धोला दिया है अर्थात् माता शब्द से शीतला देवीका शहण करा के उस के पजवाने के द्वारा अपने स्वार्थ की सिद्धि की है. परन्त अब तुम माता शब्द के असली तत्त्व को विद्वानों के किये हुए निर्णय के द्वारा सोची और अपने मिथ्या अम को शीघ ही दर करो, देखों ! पश्चिमीय विद्वानों ने यह निश्चय किया है कि-नार्म रहने के पक्षात सियों का ऋतुषर्भ बन्द हो जाता है तब वह रक्त (खन) परिपक होकर स्तनों में दशकर में प्रकट होता है. उस दृष को बालक जन्मते ही (पैदा होते ही) पीता है. इस छिये द्रघ की वही गर्मी कारण पाकर फूट कर निकछती है, क्योंकि यह शारीरिक (शरीरसम्बंधी) नियम है कि-ऋतुषर्म के आने से भी के पेट की गर्मी वहत छूट जाती है' (कम हो जाती है) और ऋत्वर्म के रुकने से वह गर्मी अत्यन्त बढ जाती है. वहीं मानुसम्बन्धिनी (माता की) गर्मी फूट कर निकलती है अर्थात् जीतला रोग के रूप में प्रकट होती है, इसी लिये बृद्ध जनों ने इस रोग का नाम माता रक्तवा है?।

वस इस रोग का कारण तो मानृसम्बन्धिनी गर्भी श्री परन्तु खार्थ को सिद्ध करने वाले धूर्तवानों ने अविद्यान्धकार (अज्ञान रूपी ऑधरे) में फँसे हुए लोगों को तथा विशेष कर कियों को इस माता शब्द का अर्थ उलटा समझा दिया है अर्थात् देवी ठहरा दिया है, इस लिये हे परम मित्रो! अब प्रत्यक्ष फल को देख कर तो इस असत्य अम (वहम) को जड़ मूल से निकाल डालो, देखो! इस बात को तो प्रायः तुम खयं

⁹⁻फेनल यही कारण है कि ऋतुधर्म के समय अखन्त मलीनता (भैकापन) और गर्मी होने के सवय से ही मैथुन का करना निषिद्ध (मना) है, अर्थात् उस समय मैथुन करने से गर्मी, सुजाख, शिर में दर्द, कान्ति (तेज वा शोमा) की हीनता (कमी) तथा नपुसकत (नपुसकपन) आदि रोग हो जाते हैं॥

२-अर्थात् माता के सम्बन्ध से प्राप्त होने के कारण इस रोग का भी नाम माना रक्खा गया है परन्तु मुर्खजन और अज्ञान महिलायें इसे जीतला माता की प्रसादी समझनी है ॥

(ख़ुद) ही जानते होंगे कि मुशीतका देवी के नाम से जो शीतका सप्तमी (शीक सातम) के दिन ठंढा (वासा अच) खाया जाता है उस से कितनी हानि पहुँचती हैं, अब अन्त में पुनः यही कथन है कि मिण्या विश्वास को दूर कर अर्थात् इस रोग के समय में शीतका देवी के कोप का विचार छोड़ कर उस की वैद्यक शाखानुसार नीचे लिखी हुई चिकित्सा करो जिस से तुम्हारा और तुम्हारे सन्तानों का सदा कल्याण हो।

१—नींव की मीतरी छाल, पिचपापड़ा, काली पाठ, पटोल, चन्दन, रक्त (ठाठ) चन्दन, खश, बाला, कुटकी, ऑवला, अड्सा और ठाल घमासा, इन सब औषघों को समान भाग लेकर तथा पीस कर उस में मिश्री मिला कर उस का पानी बना कर रखना चाहिये तथा उस में से थोड़ा २ पिलाना चाहिये, इस से दाह और ज्वर आदि शान्त हो जाता है तथा मसूरिका मिट जाती है।

२--मजीठ, बङ् (बर्गद) की छाल, पीपर की छाल, सिरस की छाल और गूलर की छाल, इन सब को पीसकर दानों पर लेप करना चाहिये।

२—यदि दाने बाहर निकल कर फिर भीतर बुसते हुए माल्स दें तो कचनार के वृक्ष की छाल का काय कर तथा उस में सोनामुखी (सनाय) का बोड़ा सा चूर्ण मिला-कर पिलाना चाहिये, इस के पिलाने से दाने फिर बाहर आ बाते हैं।

-४--यदि सुँह में तथा गर्छ में श्रण हों वा चॉदी हो तो बाँवला तथा मौलेठी का काथ कर उस में शहद डालकर क़रले कराने चाहियें।

५—थेगी नामक दानों को तथा मौलेटी को पीस कर उन का पानी कर आँखों पर सींचना चाहिये, इस के सींचने से आँखों का बचाव होता है ।

६-मौळेठी, त्रिफळी, पीछड़ी, दारुहरूदी, कमरू, बाला, लोष तथा मजीठ, इन भौपधीं को पीस कर इन का आँखों पर लेप करने से ना इन के पानी की बूँदों को आँख में

१-जिस का कुछ वर्णन पहिले कर चुके हैं॥

[,] २-तुम्हारा यह मिन्या विश्वास है इस बात को हम कपर दिखला ही चुके हैं और तुम अब इस बात को समझ भी सकते हो कि तुम्हारा बाखव में मिन्या विश्वास है वा नहीं है देखों। जब एक कार्व का कारण ठीक रीति से निश्चय कर लिया गया तथा कारण की निश्चित के द्वारा विद्वानों वे कार्य की निश्चित भी अल्ला आप प्राप्त सहसों उदाहरणों से सर्वसाधारण को अल्ला दिखला दी, फिर उस को न मानकर अपने हृदय में उन्मत्त के समान मिन्या ही कल्पना को बनाये रखना मिन्या विश्वास नहीं तो और क्या है ? परन्तु कहावत प्रसिद्ध है कि—"मुबह का मूला हुआ श्वाम को भी घर था जावे तो वह भूला नहीं कहा जाता है" वस इस कथन के अनुसार सब इस विद्या के प्रकाश के समय में अपने मिन्या विश्वास को वूर कर दो, जिस से तुम्हारा और तुम्हारे सावी सन्तानों का सदा कल्याण होने॥

३-अर्थात् उस पानी के छीटे घाँखों पर छगाने वाहियें ॥

४-अर्थात् ऑखो में किसी तरह की खरावी नहीं उत्पन्न होने पाती है।

५-त्रिफला अर्थात् इरङ् बहेटा और ऑवला ॥

डारुने से आँखों के त्रण मिट जाते है और कुछ मी तकरीफ नहीं होती है, अथवा गूंदी (गोंदनी) की छारु को पीस कर उस का आँख पर मोटा रूप करने से आँख को फायदा होता है।

७-जब दाने फूट कर तथां किचकिचा कर उन में से 'पीप वा दुर्गन्धि निकलती है तब मारबाड़ देश में पश्चवर्ष्यं का कपड़छान चूर्ण कर दबाते है अथवा कायफल का चूर्ण दबाते है, सो वास्तव में यह चूर्ण उस समय छाम पहुँचाता है, इस के सिवाय— रसी को धो डालने के लिये भी पश्चवरकल का उकाला हुआ पानी अच्छा होता है।

८-कारेली के पतों का काथ कर तथा उस में हलदी का चूर्ण खाल कर उसे पिलाने से चमड़ी में घुसे हुए (मीतरी) जण मिट जाते है तथा ज्वर के दाह की भी शान्ति हो जाती है।

९-यदि इस रोग में दस्त होते हों तो उन के बंद करने की दवा देनी चाहिये तथा यदि दस्त का होना बन्द हो तो हरूका सा जुलाव देना चाहिये?

१०-जब फफोले फूट कर खरूँटै जा जार्ने तथा उन में खाज (खुजली) आती हो तब उन्हें नख से नहीं कुचरने देना चाहियें किन्तु उन पर मलाई चुपड़नी चाहियें, अथवा केरन आहल और कार बोलिक आहल को लगाना चाहिये, जब फफोले फूट कर मुझीने लगें तन उन पर चावलों का आटा अथवा सफेदा ग्रुरकाना चाहिये, ऐसा करने से चट्टे (चकरें) और दाग नहीं पड़ते है।

विशेष सूचना — यह रोग चेपी है इस लिये इस रोग से युक्त पुरुष से घर के आदिमियों को दूर रहना चाहिये अर्थात् रोगी के पास जिसका रहना अत्यावश्यक (बहुत ज़रूरी) ही है उस के सिवाय दूसरे आदिमियों को रोगी के पास नहीं जाना चाहिये, क्योंकि प्रायः यह देखा गया है कि रोगी के पास रहनेवाले मनुष्यों के द्वारा यह चेपी रोग फैलने लगता है अर्थात् जिन के यह शीतला का रोग नहीं हुआ है उन बच्चों के भी यह रोग रोगी के पास रहनेवाले जनों के स्पर्श से अथवा गन्य से हो जाता है।

१-वड (वरगद), गूलर, पीपल, पारिस पीपल और पाखर (इस), वे पान क्षीरी इस अर्थात् दूषनाले वृक्ष हैं, इन पानो की छाल (बक्क) को पश्चवल्कल कहते हैं।।

२-एलका सा जुळाव देने का प्रयोजन यह है कि उक्त रोग के कारण रोगी को निर्वेळता (कमजोरी) हो जाती है इस लिये यदि उस में तीक्ष्ण (तेज) जुळाव दिया जावेगा तो रोगी उस का सहन नहीं कर सकेगा और निर्वेळता भी अधिक दस्तों के होने से निर्वेण वड जावेगी॥

२-इन को पूर्वीय (पूर्व के) देखों में खुट कहते हैं मर्थात् जण के ऊपर जमी हुई पपडी ॥

४-क्योंकि नख (नाख्न) से कुचरने (खुजलाने) से फिर जण (घाव) हो जाना है तथा नख के विद का प्रवेश होने से उस में और भी खराधी होने की सम्माधना रहती है ॥

इस रोग में जो यह प्रथा देखी जाती है कि— शील और ओरी आदिवाले रोती को पहुदे में रखते हैं तथा दूसरे आद्मियों को उस के पास नहीं जाने देते हैं. सो यह प्रथा तो प्रायः उत्तम ही है परन्त इस के असली तत्त्व को न समझ कर लोग अस (बहम) के मार्ग में चलने लगे हैं. देखो ! रोगी को पढदे में रखने तथा उस के पास दूसरे जनों को न जाने देने का कारण तो केवल यही है कि-यह रोग चेपी है. परन्त अम में पड़े हुए जन उस का तात्पर्य यह समझते हैं कि-रोगी के पास दूसरे जनों के जाने से शीतला देवी क़द्ध हो जावेगी इत्यादि, यह केवल उन की मूर्वता और मज्ञ-नता ही है ।

रोगी के सोने के स्थान में खच्छता (सफाई) रखनी चाहिये, वहां साफ हवा को आने देना चाहिय^र, अगरवत्ती आदि जलानी चाहिये वा धूप आदिके द्वारा उस स्नान को सगत्थित रखना चाहिये कि जिस से उस स्थान की हवा न विगड़ने पाने⁸।

रोगी के अच्छे होने के बाद उस के कपडे और विछीने आदि जला देने चाहियें अथवा घुलवा कर साफ होने के बाद उन में गन्यक का धुँआ देना चाहिये⁸।

रवराक शीतला रोग से यक्त नचे को तथा नडे आदमी को खान पान में द्ध. चावल, दलिया, रोटी, बूरा डाल कर बनाई हुई राबड़ी, मूंग तथा अरहर (तूर) की दाल, दाल, मीठी नारंगी तथा अजीर आदि मीठे और ठंढे पदार्थ प्रायः देने चाहियें, परन्तु यदि रोगी के कफ का ज़ोर हो गया हो तो मीठे पदार्थ तथा फल नहीं देने चा-हियें, उसे कोई भी गर्म वस्त खाने को नहीं देनी चाहिये।

रोग की पहिली अवस्था में तथा दूसरी खिति में केवल दूध मात ही देना अच्छा है। तीसरी स्थिति में केवल (अकेला) दूध ही अच्छा है, पीने के लिये ठंढा पानी अधवा वर्फ का पानी देना चाहिये।

' रोग के मिटने के पीछे रोगी अशक्त (नाताकत) हो गया हो तो जब तक ताकत

भश्योत् वाहर से आती हुई हवा की रुकावट नहीं होनी चाहिये ॥

५-क्योंकि मीठे पदार्थ कार फळ कफ की और भी बृद्धि कर देते हैं, जिस से रोगी के कफविकार के उत्पन्न हो जाने की आशङ्का रहती है ॥

⁹⁻⁻इस विषय में पहिले कुल कथन कर ही चुके हैं जिस से पाठकों को निदित हो ही गया होगा कि धास्तव में यह उन लोगों की मूर्खता और अझानता ही है ॥

१—क्योंकि इना के निगडने से दूसरे रोगों के उठ खंडे होने (उत्पन्न हो जाने) की सम्मानना रहती है ॥

४-क्योंकि रोगी के कपड़े और विजीने में उक्त रोग के परमाणु प्रविष्ट रहते हैं यदि उन को जलाया न जाने अथवा सोफ तौर से निना धुरुाये ही काम में छाया जाने तो ने परमाणु वृक्षरे मनुष्यों के शरीर में प्रविष्ट हो कर रोग को उत्पन्न कर देते हैं॥



यह रोग यद्यपि श्रीतला के समान भयंकर नहीं है तो भी इस रोग में प्रायः अनेक समयों में छोटे बचों को हांफनी तथा फेफसे का नरम (शोय) हो जाता है, उस दशामें यह रोग भी भयंकर हो जाता है अर्थात् उस समय में तन्द्रादि सन्निपात हो जाता है, ऐसे समय में इस का खूब सावधानी से इलाज करना चाहिये, नहीं तो पूरी हानि पहुँचती है।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि सख्त बोरी के दाने कुछ गहरे जामुनी रंग के होते हैं।

चिकित्सा इस रोग में चिकित्सा मायः श्रीतला के अनुसार ही करनी चाहिये, क्योंकि इस की मुख्यतया चिकित्सा कुछ मी नहीं है, हां इस में भी यह अवस्य होना चाहिये कि रोगी को हवा में तथा ठंड में नहीं रखना चाहिये ।

खुराक-मात दाल और दिलया आदि हलकी खुराक देनी चाहिये तथा दाल और धनिये को भिगा कर उस का पानी पिलाना चाहिये ।

इस रोगी को मासे भर सोंठ को जल में रगड़ कर (बिस कर) सात दिन तक दोनों समय (प्रातः काल और सायंकाल) विना गर्भ किये हुए ही पिलाना चाहिये॥

अछपड़ा (चीनक पाक्स) का वर्णन ॥

यह रोग छोटे बच्चों के होता है तथा यह बहुत साधारण रोग है, इस रोग में एक दिन कुछ २ जबर आकर दूसरे दिन छाती पीठ तथा कन्धे पर छोटे २ छाछ २ वाने उत्पन्न होते हैं, दिन मर में अनुमान दो २ दाने बंदे हो जाते है तथा उन में पानी मर जाता है, इस छिये वे दाने मोती के दाने के समान हो जाते हैं तथा ये दाने भी छगमग छीतला के दानों के समान होते हैं परन्तु बहुत थोड़े और दूर २ होते है।

इस रोग में ज्वर थोड़ा होता है तथा दानों में पीप नहीं होता है इस लिये इस में कुछ ढर नहीं है, इस रोग की साधारणता प्रायः यहां तक है कि— कमी २ इस रोग के दाने बच्चों के खेळते २ ही मिट जाते है, इस लिये इस रोग में चिकित्सा की कुछ भी आवश्यकता नहीं है ॥

२—दाख और घनिये को भिगा कर उस का पानी पिछाने से अप्रि का दीपन, सोजन का पानन तथा अज्ञ पर इच्छा होती है ॥

१-क्योंकि रोगी को इवा अथवा ठढ में रखने से शरीर के जकड़ने की और सन्धियों में पीड़ा इतक होने की आशका रहती है ॥

३-मास्तव में यह सी जीतला का ही एक मेंद है ॥ ४-महिले कह जुके है कि-शीतला सात प्रकार की होती है उन में से कोई तो ऐसी होती है कि पिना यहा के भी अच्छी हो जाती है (जैसे यही अल्लपड़ा), कोई ऐसी होती है कि-कुछ कट से दूर होती है तथा कोई ऐसी मी होती है कि यहा करने पर भी नहीं जाती है ॥

रक्तवायु वा विसर्प (इरीसी पेलास) का वर्णन ॥

भेद (प्रकार) - देशी वैद्यक शास के अनुसार भिन्न र दोष के तथा मिश्रित (संयक्त) तोष के सम्बन्ध से विसर्प अर्थात रक्तवाय उत्पन्न होता है तथा वह सात प्रकार का है', परन्तु उस के मुख्यतया दो ही भेद है—दोषजन्य विसर्प और भाग-न्तक विसेर्प, इन में से विरुद्ध आहार से शरीर का दोष तथा रक्त (खन) विगड़कर जो विसर्प होता है उसे दोषजन्य विसर्प कहते हैं और क्षत (जुलम), शख के विष अथवा विषेके जन्त (जानवर) के नख (नाखून) तथा दात से उत्पन्न हुए क्षत (ज़खम) और जलम पर विसर्प के चेप के स्पर्श आदि कारणों से जो विसर्प होता है उसे आग-न्तक विसर्प कहते है।

कारण-प्रकृतिविरुद्ध आहाँर, चेप, सराव विषेठी हवा, जलम, मध्रममेह आदि रोग, विषेक्षे जन्त तथा उन के इंक का लगना इत्यादि अनेक कारण रक्तवाय के हैं।

इन के सिवाय-जैनश्रावकाचार अन्य में तथा चरकऋषि के वनाये हुए चरक ब्रन्थ में लिखा है कि यह रोग विना ऋतुँ के, विना जाँच किये हुए तथा बहुत हरे जाकों के खाने का अभ्यास रखने से भी हो जाता है।

इन कपर कहे हुए कारणों में से किसी कारण से शरीर के रस तथा खन में विषेक्षे जन्त उत्पन्न हो जाते हैं और खरीर में रक्तवाय फैल जाता है।

स्रक्षण--वास्तव में रक्तवायु चमड़ी का बरम है और वह एक स्थान से दूसरे स्थान में फिरता और फैलता है, इसीलिये इस का नाम रक्तवायु रक्खा गया है", इस रोग में जनर आता है तथा चमड़ी ठाठ होकर सब जाती है. हाथ छगाने से रक्तवाय के स्थान में गर्मी माछम होती है और अन्दर चीस (चिनठा) चळती है ।

१-बातज, पित्तज, कफ़ज, सिन्नपातज (निदोषज), बातपित्तज, बातकफ़ज तथा पित्तकफ़ज, ये सात भेद हैं॥

२-अर्थात् इम दो ही भेदों में सब भेदों का समावेश हो जाता है ॥

³⁻अकृतिविरुद्ध भाहार अर्थात् प्रकृति को अनुकृत न आनेवाळे खारी, सहे, कहुए और गर्स पदार्थ आदि॥

४-बहुत से हुकों में विना ऋत के भी फल आ जाते हैं, (यह पाठकों ने प्राय: देखा भी होगा). उन के साने से भी यह रोग हो जाता है ॥

५-बहुत से जगर्जा फुळ विषेळे होते हैं अथवा विषेळे जन्तुओं से युक्त होते हैं. उन्हें भी नहीं खाना चाहिये ॥

६-वैसे तो वनस्पति का आहार काभदायक ही है परम्तु उस के खाने का अधिक अभ्यास नहीं रखना चाहिये ॥

७-इसी लिये इसे विसर्प भी कहते हैं ॥

<-यह भी स्नरण रखना चाहिये कि दोषों के अनुसार इस रोग में शित्र २ छक्षण होते हैं ॥ €₹

सन से प्रथम इस रोग में ठंढ से कम्पन, ज्वर का बेग, मन्दामि और प्यास, ये उक्षण होते हैं, रोगी के ठाल मूत्र उतरता है, नाड़ी जल्दी चलती है तथा कमी २ रोगी के वमन (उल्टी) और अमं मी हो जाता है जिस से रोगी वकने लगता है, तोफान भी करता है', इन चिह्नों के होने के वाद दूसरे वा तीसरे दिन शरीर के किसी भाग में रक्ष-वायु दीलने लगता है तथा दाह और लाल शोध (सूजन) भी हो जाती है।

आगन्तुक रक्तवायु कुळ्बी के दाने के समान होकर फफोळों से गुरू होता है तथा उस में काळा खून, शोब, ज्वर और दाह वहुत होता है, जब यह रोग अपर की चमड़ी में होता है तब तो अपरी चिकित्सा से ही थोड़े दिनों में शान्त हो जाता है, परन्तु जब उस का विष गहरा (चमड़ी के मीतर) चला जाता है तब यह रोग बड़ा मयंकर होता है अर्थात् वह पकता है, फफोला होकर फूटता है, शोध बहुत होता है, पीड़ा वेहह होती है, रोगी की शक्ति कम हो जाती है, एक स्थान में अथवा अनेक स्थानों में ग्रुंह करके (छेद करके) फूटता है तथा उस में से मांस के दुकड़े निकल करते हैं, भीतर का मांस सड़ने लगता है, इस मकार यह अन्त में हाड़ोंतक पहुँच जाता है उस समय में रोगी का बचना अतिकठिन हो जाता है और खासकर जब यह रोग गले में होता है तब अत्यन्त मयंकर होता है? ।

चिकित्सा—१—इस रोग में शरीर में दाह न करनेवार्ज जुलाब देना चाहियें तथा -वमन (उलटी), लेप और सींचने की चिकित्सा करनी चाहिये तथा यदि आवश्यकता समझी जावे तो जोंक लगानी चाहिये।

२—रतनेलिया, फाला इंसराज, हेमफन्द, फनावचीनी, सोना गेरू, बाला और चन्दन आदि शीतल पदार्थों का लेप करने से रक्तवायु का दाह और शोध शान्त हो जाता है।

३—चन्दन अथवा पदाकाष्ठ, बाला तथा मौलेठी, इन औषधों को पीस कर अथवा उकाल कर ठंडा कर के उस पानी की घार देने से शान्ति होती है तथा फ्टने के बाद भी इस जंल से घोने से लाम होता है।

8—चिरायता, अडूसा, कुटकी, पटोल, त्रिफला, रक्तचन्दन तथा नीम की मीतरी छाल, इन का काथ बना कर पिलाना चाहिये, इस के पिलाने से ज्वर, बमन, दाह, गोय, खुजली और विस्फोटक आदि सब उपद्रव मिट जाते हैं।

५-रक्तवायु की चिकित्सा किसी अच्छे कुशल (चतुर) वैद्य वा डाक्टर से करानी चाहिये।

१-अर्थात् ठंढ से कम्पन आदि इस रोग के पूर्वरूप समझे जाते हैं॥

२-ऐसे समय में इस की चिकित्सा थच्छे कुछल वैद्य वा डाक्टर से करानी चाहिये ॥

३-क्योंकि दाह करनेवाले जुलाव के देने से इस रोग की वृद्धि की आगंका होती है ॥

४-किन्हीं आचार्यों की यह भी सम्भति है कि-बिन निसर्पों में दाह न होता हो उन में जुलान हैना चाहिये किन्तु शेष (जिन में दाह होता हो उन) निसर्पों में जुलाव नहीं देना चाहिये ॥

विशेष सूचना—इस रोग से युक्त पुरुष को ख़ुराक अच्छी देनी चाहिये, इस रोगी के लिये दूध अथवा दूव डाल कर पकाई हुई चावलों की कांजी उत्तम पथ्य है, रोगी के आसपास खच्छता (सफाई) रखनी चाहिये तथा रोगी का विशेष रगर्श नहीं करना चाहिये, देखो ! अस्पतालों में इस रोगी को दूसरे रोगी के पास डाक्टर लोग नहीं जाने देते है, उन का यह भी कथन है कि—डाक्टर के द्वारा इस रोग का चेप दूसरे रोगियों के तथा खास कर ज़ख़मवाले रोगियों के शरीर में प्रवेश कर जाता है, इस लिये ज़ख़मवाले आदमी को इस रोगी के पास कभी नहीं आना चाहिये और न डाक्टर को इस रोगी का स्पर्श करना चाहिये ॥

यह चतुर्थअध्यायका ज्वरवर्णन नामक चौदहवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

पन्द्रहवां प्रकरण--प्रकीणरोगवर्णन ॥

प्रकीर्णरोगे और उन से शारीरिक सम्बन्ध ॥

यह बात प्रायः सब ही को बिदित है कि वर्तमान समय में इस देश में प्रत्येक गृह में कोई न कोई सावारण रोग प्रायः बना ही रहता है किन्तु यह कहना भी अयुक्त न होगा कि प्रत्येक गृहस्थ मनुष्य प्रक्षित (फुटकर) रोगों में से किसी न किसी रोग में फँसा ही रहता है , इस का क्या कारण है, इस विषय को हम यहां प्रत्य के विस्तार के भय से नहीं दिखलाना चाहते है, क्योंकि प्रथम हम इस विषय में संक्षेप से कुछ कथन कर चुके है तथा तत्त्वदर्शी बुद्धिमान् जन वर्तमान में प्रचरित अनेक रोगों के कारणों को जानते भी है क्योंकि अनेक बुद्धिमानों ने उक्त रोगों के कारणों को सर्व साधारण को प्रकट कर इन से बचाने का भी उद्योग किया है तथा करते जाते हैं।

इम यहां पर (इस प्रकरण में) उक्त रोगों में से कतिपयें रोगोंके विशेषकारण, रूक्षण तथा शास्त्रसम्मत (वैद्यकशास्त्र की सम्मति से युक्त) चिकित्सा को केवल इसी प्रयोजन

१-क्योंकि यह रोग भी चेपी (स्पर्शादि के द्वारा लगर्नेवाला) है ॥

२-अकीणं रोग अर्थात् फुटकर रोग ॥

⁴⁻क्योंकि वर्त्तमान समय में छोगों को आरोग्यता के मुख्य हेतु देश और काल का विचार एवं प्रकृति के अनुकूल आहार विहार जादि का ब्रान बिचकुल ही नहीं है और न इस के विषय में उन की कोई चेटा ही है, वस फिर प्रलेक ग्रह में रोग के होने में अथवा प्रलेक ग्रहस्थ मनुष्य के रोगी होने में आवर्ष ही क्या है ॥

४-कितिपय रोगों के अर्थात जिन रोगों से ग्रहस्थों को प्रायः पीड़ित होना पडता है उन रोगों के कारण छक्षण तथा विकित्सा को लिखते हैं॥

से लिखते हैं कि-साधारण गृहस्य बन सामान्य कारणों से उत्पन्न होनेवाले उक्त रोगों से उन के कारणों को जान कर बने रहें तथा दैववश्च वा आत्मदोष से यदि उक्त रोगों में से कोई रोग उत्पन्न हो जावे तो कक्षणों के द्वारा उसका निश्चय तथा चिकित्सा कर उस (रोग) से मुक्ति पासकें, क्योंकि-वर्तमान में यह वात प्रायः देखी जाती है कि-एक साधारण रोग के भी उत्पन्न हो जानेपर सर्व साधारण को वैच के अन्वेषण (हूँढने) और विनय; इव्यव्यय; अपने कार्य का त्याग; समय का नाश तथा क्षेत्रसहन आदि के द्वारा अतिकष्ट उठाना पड़ता है ।

इस प्रकरण में उन्हीं रोगों का वर्णन किया गया है जो कि वर्त्तमान में प्रायः प्रचरित हो रहे हैं तथा जिन से पाणियों को अनेक कष्ट पहुँच रहे हैं, जैसे—अजीर्ण, अग्रिमान्ब (अग्रि की मन्दता), शिर का दर्द, अतीसार, संग्रहणी, क्रमि, उपदंश और प्रमेह आदि !

इन के वर्णन में यह भी विशेषता की गई है कि—इन के कारण और उक्षणों को भड़ी भाँति समझा कर चिकित्सा का वह उत्तम क्रम रक्खा गया है कि—जिसे समझ कर एक साधारण पुरुष भी जाम उठा सकता है, इस पर भी ओषघियों के प्रयोग प्रायः वे जिसे गये हैं जो कि रोगोंपर अनेकवार जामकारी सिद्ध हो चुके हैं।

इस के सिवाय वशास्त्रक रोगविशेष पर अंग्रेजी प्रयोग भी दिखला दिवे गये हैं, जो कि-अनेक विद्वान् डाक्टरों के द्वारा प्रायः लामकारी सिद्ध हो चुके हैं।

आशा है कि-सर्वसाधारण तथा गृहस्थ जन इस से अवस्य लाम उठावेंगे। अब कारण लक्षण तथा चिकित्सा के कम से आवस्यक रोगों का वर्णन किया जाता है॥

अजीर्ण (इंडाइजेश्वन) का वर्णन॥

अजीर्ण का रोग यद्यपि एक बहुत साधारण रोग माना जाता है परन्तु निचार कर देखने से यह अच्छे प्रकार से निवित हो जाता है कि यह रोग कुछ समय के पक्षांत् प्रबद्धर को धारण कर छेता है अर्थात् इस रोग से शरीर में अनेक दूसरे रोगों की जब खित (कायम) हो जाती है, इस लिये इस रोग को साधारण न समझकर इस पर पूरा छक्ष्य (ध्यान) देना चाहिये, तात्पर्य यह है कि—यदि शरीर में ज्रा भी अजीर्ण माद्धर एके तो उस का शीघ ही इलाज करना चाहिये, देखों। इस बात को प्रायः सव ही समझ

१-दैववश अर्थात् पूर्वकृत अञ्चय कर्मों के उदय से तथा आत्मदोष से अर्थात् रोग से वयानेवार्व कारणों का निज्ञान होनेपर भी कभी न कमी भूछ हो जाने से ॥

२-इस कष्ट को प्रायः ने ही जन ठीक तीर से जानते हैं जिन को इस कष्ट का अनुभन हो जुका है।। ३-भजीर्ण और अग्निमान्स, ये दो रोग तो प्रायः बत्तमान में मतुष्यों को अत्यन्त ही कप्र पहुँचा रहें हैं और विचार कर देखा जाने तो ये ही दोनों रोग सब रोगों के मूलकारण हैं, अर्थात् इन्हीं होनो से सन रोग उराम होते हैं॥

सकते हैं कि शरीर का बन्धेन (बन्धान) ख़ुराक पर निर्भर है परन्तु वह ख़ुराक ही जंग अच्छे प्रकार से नहीं पचती है तन वह (ख़ुराक) शरीर को दद करने के वदले उलटा शिथिल (ढीला) कर देती है, तथा ख़ुराक के ठीक तौर से न पचने का कारण प्रायः अजीर्ण ही होता है, इस लिये अजीर्ण के उत्पन्न होते ही उसे दूर करना चाहिये।

कारण—अवीर्ण होने का कारण किसी से छिपा नहीं है अर्थात् इस के कारण को प्राय: सब ही जानते हैं कि अपनी पाचनशक्ति से अधिक और अयोग्य ख़राक के खाने से अजीर्ण होता है , अर्थात् एक समय में अधिक खा छेना, कच्चे मोजन को खाना, वेप-रिमाण (विना अन्दाज अर्थात् गछेतक) खाना, पिहले खाये हुए मोजन के पचने के पिहले ही फिर खाना, ठीक रीति से चबाये विना ही मोजन को खाना तथा खान पान के पदार्थों का पिथ्यायोग करना, ये सब अजीर्ण होने के कारण हैं।

इन के सिवाय—बहुत से व्यसन भी अजीर्ण के कारण होते हैं, जैसे मद्य (दारू), भंग (भाँग), गांजा और तमाखू का सेवन, आलस्य (द्युत्ती), वीर्य का अधिक खर्च करना, शरीर को और मन को अस्वन्त परिश्रम देना तथा चिन्ता का करना, इत्यादि अनेक कारणों से अजीर्णरूपी शत्रु शरीररूपी किले में प्रवेश कर अपनी जड़ को हद कर लेता है और रोगोत्पचिरूपी अनेक उपद्रवों को करता है।

लक्ष्मण—अजीर्ण यद्यपि एक छोटासा रोग गिना जाता है परन्तु वास्तव में यह सब से बड़ा रोग है, क्योंकि यही (अजीर्ण ही) सब रोगों की जड़ है, यह रोग द्यारि में स्थित होकर (ठहर कर) मायः दो कियाओं को करता है अर्थात् या तो दस्त छाता है अथवा दस्त को बन्द करता है, इन (दोनों) में से पूर्व किया में दस्त होकर न पचा हुआ अन्न का माग निकल जाता है, यदि वह न निकले तो मायः अधिक खराबी करता है परन्तु दूसरी किया में दस्त की कन्जी होकर पेट फूल जाता है, खद्दी दकार आती है, जी मिचलाता है, उबकी आती है, वमन होता है, जीमपर सफेद थर (मैल) जमजाती है, छाती और आमाश्रय (होजरी) में दाह होता है तथा शिर में दर्द होता है, इन के सिवाय कभी २ पेट में चूंक चलती है और नीद में अनेक प्रकार के दु:सम (बुरे सुपने) होते है, इत्यादि अनेक चिह्न अजीर्णरोग में साल्य पड़ते है।

१-अजीर्ण शब्द का अर्थ ही यह है कि खाये हुए भोजन का न पचना ॥

२-क्योंकि उत्पन्न होते ही इस का इलाज कर छेने से यह शीघ्र ही निश्चत्त हो जाता है अर्थात् शरीर में इस की जड नहीं जमने पाती है ॥

३-पाचनशक्ति से अधिक खुराक के खाने से अर्थात् आधसेर की पाचनशक्ति होनेपर सेरमर खुराक के खा छेने से तथा अयोग्य खुराक के खाने से अर्थात् प्रकृति के विरुद्ध खुराक के खाने से अर्जार्ण रोग उत्पन्न होता है।।

४-जिखने पढने और सोचने आदि के द्वारा मन को भी अधिक परिश्रम देने से अनीर्ण रोग होता है, क्योंकि-दिल, दिमाग और अग्न्यासय, इन तीनो का बढ़ा घनिष्ठ सम्बध है ॥

भेद (प्रकार)—देशी वैचक शास्त्र में अलीर्ण के प्रकरण में जठरामि के विकार का वहुत सूक्ष्मरीति से विचार किया है परन्तु अन्य के वढ़ जाने के मय से उन सक का विस्तारपूर्वक वर्णन यहां नहीं लिख सकते है किन्तु आवश्यक जान कर उन का सारमात्र संक्षेप से यहां दिखलाते हैं:—

न्यूनाधिक तथा सम विषम प्रमाव के अनुसार जठराभि के चार मेद माने गये हैं— मन्दाभि, तीक्ष्णामि, विषमामि और समामि ।

इन चारों के सिवाय एक अतितीक्ष्णामि भी मानी गई है जिस को भसक रोग कहते हैं।

इन सब अभियों का खरूप इस प्रकार जानना चाहिये कि—मन्दाधिवाले पुरुष के खोड़ा खाया हुआ मोजन तो पच जाता है परन्तु कि क्षित्त मी अधिक खाया हुआ योजन कभी नहीं पचता है, तीक्ष्णाभिवाले पुरुष का अधिक मोजन भी अच्छे प्रकार से पच सकता है, विषमाभिवाले पुरुष का खाया हुआ मोजन कभी तो अच्छे प्रकार से पच जाता है और कभी अच्छे प्रकार से पच जाता है और कभी अच्छे प्रकार से नहीं पचता है, इस पुरुष की अधि का वल अनियमित होता है इस लिये इस के प्रायः अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, समाभिवाले पुरुष का किया हुआ भोजन ठीक समय पर ठीक रीति से पचजाता है तथा इस का शरीर भी नीरोग रहता है तथा तीक्ष्णाभिवाला (अस्मकरोगवाला) पुरुष जो कुछ खाता है वह बीम ही

१-अयोंकि अजीणं से और जठराप्ति के विकारों से परस्पर में बड़ा सम्बंध है, वा यों कहना चाहिने कि-अजीणे जठराप्तिके विकाररूप ही है ॥

२-चीपाई--सल्प मातरा भोजन खावै ॥ ती हैं नॉहि पचै इस पावै ॥ १ ॥ इदि ग्लानि अम ६ पर सेका ॥ शीस जठर अति भारी जेका ॥ २ ॥ सन्द अप्ति इन छसाणा जानो ॥ तामें कफहिँ प्रवस्त पहिचानो ॥ ३ ॥ खल्प हु अधिक भातरा छेत्रै ॥ सो पनि जाय प्राण प्रख देवै ॥ ४ ॥ वल अति वर्ण प्रष्टता धाँरै ॥ पित्त प्रधान तीक्ष्ण गुण कारै ॥ ५ ॥ कवह पन्ने अन कवह नाहीं ॥ शुरू आफरा उदर रहाही ॥ ६ ॥ गृहगृह शब्द उदर में मारी ॥ कवहूंक मछ सावक मति तारी ॥ ७ ॥ विषम अगनि के ये हैं छिड़ा ॥ या मैं वल वायू को सड़ा ॥ ८ ॥ निहा प्रमाण मातरा अन की ॥ मुख से पने घटें निहें जन की ॥ ९ ॥ सम अगनी यह नाम वसानो ॥ चार अगनि में श्रेष्ठ ज जानो ॥ १० ॥ सम अगनी जाके तन होई॥ पूरव जन्म पुण्य फल सोई॥ ११॥ तीक्ण अप्रि आके तन होवे ॥ पथ्य कुपव्य को ज्ञान न ओवे ॥ १२ ॥ रूस फटक अति भोजन सेवै ॥ विना हुग्व छूत अन नित छेवै ॥ १३ ॥ क्षीण होय कृष्य जनहीं जाके ॥ वृद्ध होय पित वायू ताके ॥ १४ ॥ तीक्ण अभि वाय कर चड्ही ॥ पक अपक अस असि चड्ही ॥ १५ ॥ जो सावहि सो भसाहि शावै॥ तार्वे मसक नाम कहावै॥ १६॥ भोजन समय उछंपन करही ॥ तब ही रक्त मांस को हरही ॥ १७ ॥

भसा हो जाता है तथा उस को पुनः भूस लग जाती है, यदि उस मूख को रोका जावे तो उस की अतितीक्ष्णामि उस के शरीर के घातुओं को खा जाती है (युला देती है)।

इन्हीं ऊपर कही हुई अग्नियों का आश्रय छेकर वैद्यक शास में अजीर्ण के जितने मेद कहे हैं उन सब का अब वर्णन किया जाता है:—

१-आमाजीर्ण-यह अजीर्ण कफ से उत्पन्न होता है तथा इस में अंग में भारीपन, ओकौरी, आंख के पोपचों पर वेथेर और खड़ी डकार का आना, इत्यादि छक्षण होते हैं'।

२-विद्रधाजीण-यह अनीर्ण पित्त से उत्पन्न होता है तथा इस में अमें का होना, प्यास, मुर्छो, सन्ताप, दाह तथा खड़ी दर्कार और पसीने का आना, इत्यादि चिह्न होते है।

३—विष्ठब्याजीर्ण—यह अजीर्ण वादी से होता है तथा इस में शूरू, अफरा, चूंक, मछ तथा अधोवायु (अपानवायु) का अवरोध (रुकना), अंगों का जकड़ना और दर्द का होना, इत्यादि चिह्न होते है।

४-रसदोषाजीण - भोजन करने के पीछे पेट में पके हुए अन का साररूप रस (पतला भाग) जब नहीं पकने पाता है अर्थात् उस के पकने के पहिले ही जब भोजन कर लिया जाता है तब अजीर्ण उत्पन्न होता है, उस को रसशेषाजीर्ण कहते हैं, इस अजीर्ण में इदय के शुद्ध न होने से तथा शरीर में रस की दृद्धि होने से अनपर अरुचि होती है।

अफ़्रीणेजन्य दूसरे उपद्रय—जब अजीर्ण का वेग बहुत बढ़ जाता है तब उस अजीर्ण के कारण विषूचिका (हैज़), अलसक तथा विल्लिका नामक रोग हो जाता है', इन का वर्णन संक्षेप से करते है:—

१-आमाजीण अर्थात् आम के कारण अवीणे॥

र-भोकारी अर्थात् वसन होने की सी इच्छा ॥

[ै] १-ऑस के पोपचों पर येथर अर्थात् ऑख के परूकों पर सूचन ॥

४-वह अजीर्ण कफ की अधिकता से होता है।।

५-भ्रम अर्थात् चक्कर ॥

⁻ ६-इस अजीर्ण में पित्त के वेग से पुष् सहित खद्य डकार आती है।

[🕯] ७–चूक अर्थात् शूलमेवादि वातसम्बन्धी पीहा ॥

८—(प्रश्न) आमाजीर्ण में और रसक्षेषाजीर्ण में क्या मेद है, क्योंकि आमाजीर्ण आम (कचे रस के सिहत होता है और रसक्षेषाजीर्ण भी रस के शेप रहनेपर होता है है (उत्तर) देखों ! आमाजीर्ण में तो मझर हुआ कचा ही अब रहता है, क्योंकि—मधुर हुए कचे अब की आम सज्ञा है और रसश्या-जीर्ण में मोजन किये हुए पके पदार्थ का रस पेट में श्रेष रहता है और वह रस जवतक जठरामि से नहीं पकता है तवतक उस की रसश्याजीर्ण सज्ञा है, वस इन दोनों में यही मेद है।

९-स्मरण रखना चाहिये कि- विधूचिका, अलसक और विलम्बिका, ये तीनों उपद्रव प्रस्तेक अजीर्ण से होते हैं (अर्थात् आमाजीर्ण, विद्रमाजीर्ण और विष्टम्बाजीर्ण, इन तीनों से यथाकम उक्त उपद्रव होते हों यह वात नहीं है)॥

विप्विका-इस रोग में अतीसार (दस्तों का लगना), मुर्च्छा (वेहोशी), वगन (उल्हीं,) अम (चक्कर का जाना), दाह (जलन), शूल (पीड़ा), हृदय में पीड़ा, प्यास. हाथ और पैरीं में खैचासान (बाहरा), अतिजम्मा (जैमाहर्यों का अधिक आना). देह का विवर्ण (अरीर के रंग का वदल जाना), विकलता (वेचैनी) और कम्प (कॉपना). ये लक्षण होते हैं।

अलसक - इस रोग में आहार न तो नीचे उतरता है न कपर को जाता है' और न परिपक ही होता है, किन्तु आलसी पुरुष के समान पेट में एक जगह ही पहा रहता है, इस के सिवाय इस रोग में अफरा, मल मूत्र और गुदा की पवन (अपानवायु) का रुकना तथा अति तृषा (प्यास का अधिक छगाना), इत्यादि छक्षण भी होते हैं, इस रोग में प्रायः मनुष्य को अतिकष्ट होता है।

चिल्लस्थिका-इस रोग में किया हुआ मोजन कफ और वात से दृषित होकर न तो ऊपर को जाता है और न नीचे को ही जाता है अर्थात् न तो वमन के द्वारा निक-छता है और न निरेचन (दस्त) ही के द्वारा निकलता है, इस रोग में अलसक रोग से यह भेद है कि-जलसक रोग में तो शूल आदि घोर पीड़ा होती है परन्तु इस में वैसी पीड़ा नहीं होती है ।

जब विष्चिका और अलसक रोग में रोगी के दाँत नख और ओष्ठ (ओठ) काले हो जावें, अत्यन्त वमन हो, ज्ञान (संज्ञा,) का नाश हो जावें, नेत्र भीतर पुस जावें, खर क्षीण हो जावे तथा सन्धियां शिथिछ हो जावें तब इन छक्षणों के होने के बाद रोगी नहीं वर्चता है।

निद्रा का नाश, मन का न लगना, कम्प, मूत्र का रुकना और संज्ञाँ का नाश, वे पांच विपृचिका के घोर उपद्रव हैं ।

पहिले कह जुके हैं कि-यहुषा भोजन की विषमता से मनुष्य के अजीर्ण रोग हो जाता

१-अर्थात् न तो दस्त के द्वारा निकलता है और न बमन के द्वारा ही निकलता है ॥

२-इसी छिये इस रोग को अलसक करते हैं॥

३-परन्तु यह रोग भी दुधिकिस्स (कटिनता से चिकित्सा करने सोम्म) साना गया है ॥

४-जान का नाश हो वाने अर्थात् होण जाता रहे ॥

५-स्तर क्षीण हो दावे सर्पात आवाज बैठ जावे ॥

६-क्योंकि ऐसी दमा में यह रोग असाध्य हो जाता है ॥

७-संज्ञा का नाश अर्थात् वेहोगी ॥

८-चे निद्रानाशादि उपत्रव तो आयः सब ही रोगों में भनंकर होते हैं परन्तु वे पांचों उपद्रव जब इस (विधूचिका) रोग में होते हैं तो शेगी कमी नहीं बनता है क्योंकि इन पांचों उपद्रवों सहित विपूचिकारोग असाध्य हो जाता है ॥

है तथा वही अजीर्ण सब रोगों का कारण है, इस छिये जहांतक हो सके अजीर्ण को चीन्न ही दूर करना चाहिये, क्योंकि अजीर्ण रोग का दूर करना मानो सब रोगों को दूर करना है।

अजीर्ण जाता रहा हो उस के लक्षणं—शुद्ध हकार का आना, शरीर और मन का प्रसन्न होना, जैसा मोजन किया हो उसी के सहश मल और मृत्र की अच्छे प्रकार से प्रवृत्ति होना, सब शरीर का हलका होना, उस में भी कोष्ठ (कोठे अर्थात् पेट) का विशेष हलका होना तथा मूख और प्यास का लगना, ये सब विह्व अजीर्ण रोग के नष्ट होनेपर देखे जाते है, अर्थात् अजीर्ण रोग से रहित पुरुष के मोजन के पच जाने के वाद ये सब लक्षण देखे जाते हैं।

अजीर्ण की सामान्यचिकित्सा—१-आमानीर्ण में गर्म पानी पीना चाहिये², विदग्धानीर्ण में ठेढा पानी पीना तथा जुळाव छेना चाहिये³, विष्टव्यानीर्ण में पेटपर सेंक करना चाहिये⁸ और रसश्चेषानीर्ण में सो जाना चाहिये अर्थात् निद्रा छेनी चाहिये⁸।

२-यद्यपि अजीर्ण का अच्छा और सत्ता इलाज लंघन का करना है परन्तु न जाने मनुष्य इस से नयों अय करते है (डरते है), उन में भी हमारे मारवाड़ी माई तो मरना खीकार करते है परन्तु लंघन के नाम से कोसों दूर मागते है और उन में भी मान्यवानों का तो कहना ही क्या है, यह सब अनिद्या का ही फल कहना चाहिये कि उन को अपने हिताहित का भी ज्ञान विलक्षक नहीं है।

३-सेंघानिमक, सोंठ तथा मिर्च की फंकी छाछ वा जल के साथ लेनी चाहिये।

४—चित्रक की जड़ का चूर्ण गुड में मिछा कर खाना चाहिये ।

५-छोटी हरह, सोंठ तथा सेंघानिमक, इन की फंकी जल के साथ या गुड़ में मिला कर लेनी चाहिये।

६-सॉट, छोटी पीपछ तथा हरड़ का चूर्ण गुड़ के साथ छेने से आमाजीर्ण, हरँस और कठनी मिट जाती है।

१-अर्थात् जीर्णाहार (पचे हुए आहार) के उसाण ॥

१-इस (आमाजीर्ण) में वसन कराना भी हितकारक होता है ॥

३-विदर्भाजीणं से छघन कराना भी हितकारक होता है ॥

४-अर्थात् इस (विष्टन्धानीर्ण) मे सेंक कर पसीना निकालना चाहिये ॥

५-क्योंकि निदा छेने (सो जाने) से वह क्षेप रस भीव्र ही परिपक्ष हो बाता (पच बाता) है ॥

६-अच्छा इस किये हैं कि कपर से आहार के न पहुचने से उम प्र्वाहार का परिपाक हो ही गा और सस्ता इस किये हैं कि इस में द्रव्य का खर्च कुछ भी नहीं है, जत गरीन और अमीर सब को ही सुलम है अर्थात सब ही इसे कर सकते हैं॥

७-हरस क्षर्यात् ववासीर ॥

७—धनिया तथा सोंठ का काथ पीने से आमाजीर्ण और उस का शूल मिट जाता है। ८—अजवायन तथा सोंठ की फंकी अजीर्ण तथा अफरे को शीघ ही मिटाती है। ९—काला जीरी दो से चार बालतक निमक के साथ चावनी चाहिये।

१० - लह सुन, जीरा, सञ्चल निमक, सेंचा निमक, हींग और नींबू आदि दवाइयां भी अग्नि को प्रदीस करती तथा अजीर्ण को मिटाती हैं, इस लिये इन का उपयोग करना चाहिये, अथवा इन में से जो मिले उस का ही उपयोग करना चाहिये, यदि नींबू का उपयोग किया जावे तो ऐसा करना चाहिये कि - नींबू की एक फांक में काली मिर्च और मिश्री को तथा दूसरी फांक में काली मिर्च और सेंधेनिमक को डाल कर उस फाँक को आग्निपर रख कर गर्म कर उतार कर सहता २ चूसना चाहिये, इस प्रकार गांच सात नींबुओं को चूस लेना चाहिये, इस का सेवन अजीर्ण में तथा उस से उत्सन्न हुई प्राप्त और उलटी में बहुत फायवा करता है ।

११—सोंठ, मिर्च, छोटी पीपल, दोनों जीरे (सफेद जीर काला), सेंघानिमक, घृत में मूनी हुई हींग और अजमोदें, इन सव वस्तुओं को समान माग लेकर तथा हींग के सिवाय सव चीजों को कूट तथा छान लेना चाहिये, पीछे उस में हींग को मिला देना चाहिये, इस को हिंगाप्रक चूर्ण कहते हैं, अपनी शक्ति के अनुसार इस में से थोड़े से चूर्ण को घृत में मिला कर मोजन के पहिले (प्रथम कवल के साथ) खाना चाहिये, इस के खाने से खाजीर्ण, मन्दामि, शूल, गुल्म, अरुचि और वायुजन्य (वायुसे उत्पन्न हुए) सर्व रोग शीष्र ही मिट जाते हैं तथा अजीर्ण के लिये तो यह चूर्ण अति उत्तम औषभ हैं ।

१२—चार भाग सोंठ, दो भाग सेंधानिमक, एक भाग हरड़ तथा एक माग क्षोधा हुआ गम्धक इन सब को मिळा कर नींचू के रस की सात पुट देनी चाहियें, पीछे एक

१-उपयोग अर्थात् सेवन ॥

२-एक फाक में अर्थात् आधे नींवू में ॥

३—अर्थात् इस के सेवन से अनीर्ण तथा उस से उत्पन्न हुई प्वास और उस्ती मिट जाती है, इस के सिवाय इस के सेवन से वात आदि दोषों की शान्ति होती है, जनपर इसि चलती है, छह डकार आती है, मख का खाद ठीक हो जाता है तथा जठरामि प्रदीप्त होती है ॥

४-अजमोद के स्थान में वजवायन डाइनी चाहिये, यह किन्हीं लोगों की सम्मति है, नयोंकि वजवा-यन सन्त:सम्मार्जनी (कोठे को श्रद्ध करनेवाळी) है परन्तु अवसोद में वह गुण नहीं है ॥

५-यदि इच्छा हो तो विजार के रस के साथ इस चूर्ण की गोलिया बना कर उन का सेवन करता

चाहिये ॥

६-गन्धक के शोधने की विभि यह है कि- होहे की कल्छी में बोड़े से बी को गर्म कर उस में
गन्धक का चूर्ण बाल देना चाहिये, जब वह गल बाने तब उसे पानी मिलाये हुए इस में बाल देना चाहिये,
इसी तरह सब गन्धक को गला कर दूध में बाल देना चाहिये तथा अच्छी तरह से घोकर उसे छुख
हेना चाहिये ॥

एक मासे की गोलियां बनानी चाहियें तथा शक्ति के अनुसार इन गोलियों का सेवन करना चाहिये, इस गोली का नाम राजगुटिका है, यह अजीर्ण, नमन, निषूचिका, शुल और मन्दामि आदि रोगों में शीध ही फायदा करती है।

इन रूपर कहे हुए साधारण इलाजों के सिनाय इन रोगों में कुछ निशेष इलाज भी है जिन में से प्रायः रामबाण रस, क्षुधासागर रस, अनीर्णकण्टक रस, अग्निकुमार रस तथा शूळ्दाबानळ रस, इत्यादि प्रयोग उत्तम समझे जाते हैं'।

विशेष सूचना—अविणि रोगवाले को अपने साने पीने की सँमाल अवश्य रखनी चाहिये क्योंकि अवीर्ण रोग में साने पीने की सँमाल न रखने से यह रोग प्रवल रूप धारण कर अतिमयंकर हो जाता है तथा अनेकरोगों को उत्पन्न करता है इस लिये जब अवीर्ण हो तब एक दिन लंबन कर दूसरे दिन हलकी खुराक सानी चाहिये तथा ऊपर लिसी हुई साधारण दवाइयों में से किसी दवा का उपयोग करना चाहिये, ऐसा करने से अवीर्ण शीघ ही मिट जाता है, परन्तु इस रोग में प्रमाद (गफ़लत) करने से इस का असर शरीर में बहुत दिनोंतक बना रहता है अर्थात अवीर्ण पुराना पढ़ कर शरीर में अपना घर कर लेता है और फिर उस का मिटना अति कठिन हो जाता है।

बहुषा यह भी देला गया है कि बहुत से आदिमयों के यह अजीर्ण रोग सदा ही धना रहता है परन्तु तो भी ने उस का यथोचित उपाय नहीं करते है, इस का अन्त में परिणाम यह होता है कि ने उस रोग के द्वारा अनेक कठिन रोगों में फॅस जाते हैं और रोगों की फर्यादी (पुकार) करते हुए तथा अत्यन्त ज्याकुछ होकर अनेक मूर्ल नैद्यों से अपना दु:ख रोते है तथा मूर्ल नैद्य भी अजीर्ण के कारण को ठीक न जान कर मनमानी चिकित्सा करते हैं कि जिस से रोगी के उदर की अग्नि सर्वदा के छिये निगड़ कर उन को दु:ख देती है तथा अजीर्णरोग मृत्युसमय तक उन का पीछा नहीं छोड़ता है, इस छिये अन्दामि तथा अजीर्णवाछे पुरुष को सादी और बहुत हरूकी खुराक खानी चाहिये, जैसे—दारु मात और दिख्या आदि, क्योंकि यह खुराक ओषि के समान ही फायदा करती है, यदि इस से छाम प्रतीत (मारूम) न हो तो कोई अन्य साधारण चिकित्सा करनी चाहिये, अथवा किसी चतुर वैद्य वा डाक्टर से चिकित्सा करानी चाहिये!

१-इन सन का विधान आदि इसरे नैयक प्रन्थों में देख छेना चाहिये ॥

२-परन्तु शाम को अनीर्ण माह्यम हो तो थोडा सा मोजन करने में कोई हानि नहीं है, तात्पर्थ यह है कि-प्रात काल किये हुए मोजन का अनीर्ण कुछ साम को प्रतीत हो तो उस में शाम को भी थोडा सा मोजन कर देने में कोई हानि नहीं है परन्तु शामको किये हुए मोजन का वाजीर्ण यदि प्रात काल माह्यम हो तो लोपिंध लादि के हुए। उस की निश्ति कर के ही मोजन करना चाहिये वर्षात उसी अनीर्ण में मोजन नहीं कर देना चाहिये ॥

पुराने अजीर्ण (डिसपेपिसया) का वर्णन ॥

वर्तमान समय में यह अजीर्ण रोग बड़े र नगरों के सुघरे हुए भी समाज का तथा प्रत्येक घर का खास मर्ज़ बन गया है', देखिये ! अनेक प्रकार के मनमाने भोजन करने के शौक में पड़े हुए तथा परिश्रम न करनेवाले अर्थात् गद्दी तिकयों का सहारा लेकर दिन भर पड़े रहनेवाले अनेक सभ्य पुरुषोंपर यह रोग उन की सभ्यता का कुछ विचार न करें वारंवार आक्रमण (इमला) करता है परन्तु जो लोग चमचमाहटदार तथा खादिष्ट खान पान के आनन्द और उन के शौक से बचते हैं तथा जो लोग रात को नाच तमाशे और नाटक आदि के देखने की लत से बच कर साधारणतथा अपने जीवन का निर्वाह करते हैं उनपर यह रोग प्रायः दया करता है अर्थात् वे पुरुष प्रायः इस रोग से बचे रहते हैं

पाठकगण इस के उदाहरण को प्रत्यक्ष ही देख सकते हैं कि—बन्बई, हैदराबाह, करू-कत्ता, बीकानेर, अहमदाबाद और सूरत आदि जैसे शौकीन नगरों में इस रोग का अधिक फैलाव है तथा साधारणतया निर्वाह करने योग्य सर्वत्र प्राम आदि स्थानों में ढूँढने पर भी इस के चिह्न नहीं दीखते हैं, इस का कारण केवल वहीं है जो अभी कह चुके हैं।

इस बात का अनुभव तो प्रायः सब ही को होगा कि जिन धनवानों के पास धुल के सब साधन मौजूद है उन की अज्ञानतासे उन के कुटुम्ब में सदा बादी और बदहजनी रहती है तथा उसी के कारण शारीर और भन की अशक्ति उन का कमी पीछा नहीं छोड़ती है³।

लक्षण मूल तथा रुचि का नाश, छाती में दाह, खट्टी डकार, उनकी, वमन (उलटी), होजरी में दर्द, वायु का रुकनी, मरोड़ा, घड़क (इदय का घड़कना), धार का रुकना, शिर में दर्द, मन्दज्वर, अनिद्रा (नींद का न आना), बहुत सप्तों का आना, उदासी, मन में दुरे विचारों का उत्पन्न होना तथा गुँह में से पानी का गिरना, ये इस अजीर्ण के लक्षण है, इस रोग में अन्न नज़रों से भी देखे नहीं छहाता है और न

१~तारपर्यं यह है कि.—गृहिले को नजीण रोग उत्पन्न हुआ था उस की ठीक तीर से विकिश्ता न की जाने से तथा उस के बढानेवाले मिन्या थाहार और विहार के सेवन से उस की जड कायम हो जाने से वह प्रखेक घर का एक खास मर्ज़ बन गया है ॥

२-अर्थात् ये सभ्य पुरुष हैं इन को तो मैं न सताऊँ, इस वात का कुछ भी विचार न कर के ॥ ३-तात्पर्य यह है कि साने पीने आदि के विशेष श्लोक में न पडकर तथा यथोचित शारीरिक आदि परि-श्रम कर अपना निवीह करते हैं उन को यह रोग नहीं सताता है ॥

४-कारण वहीं है जो अभी लिख चुके हैं कि ने गही तिकयों के दास वन कर पड़े रहते है ॥ ५-वासु का रुकना अर्थात् डकार और अपानवायुनिसर्जन आदिके द्वारा वासु का न निकलना ॥

खाया हुआ अन्न पचता है, परन्तु हां कमी २ ऐसा मी होता है कि इस रोग से युक्त पुरुष को अधिक मूल लगी हुई माछ्म होती है यहांतक कि खाने के बाद मी मूल ही माछम पड़ती है तथा खुराक के पेट में पहुँचने पर भी अंग गलता ही जाता है, शरीर में सदा आलस्य बना रहता है, कमी २ रोगी को ऐसा दुःख माछम पड़ता है कि—वह यह विचारता है कि मै आत्मधात (आत्महत्या) कर के मर जाक, अर्थात् उस के हृदय में अनेक दुरे विचार उत्पन्न होने लगते हैं।

कारण—मसालेदार खुराक, बी वा तेळ से तर (सीगा हुआ) पकान्त (पकमान) वा तरकारी, अधिक भेवा, अचार, तेज और खट्टी चीजें, बहुत दिनोंतक उपवास करके पशु के समान खाने का अभ्यास, बहुत चाय का अभ्यास, जळ पीकर पेट को कुळा देना (अधिक जळ का पी छेना), भोजन कर के श्रीष्ठ ही अधिक पानी पीने का अभ्यास और गर्मागर्म (अति गर्म) चाय तथा काफी के पीने का अभ्यास, वे सब बादी और अजीर्ण को बुळानेवाळे दूत है।

इस के सिवाय—मध, ताड़ी, खाने की तमाखू, पीने की तमाखू, स्ंघने की तमाखू, मांग, अफीम और गांचा, इत्यादि विषेठे पदार्थों के सेवन से मनुष्य की होजरी खराव हो जाती हैं, वीर्य का अधिक क्षय, ज्यभिचार, युनाख और गर्मी आदि कारणों से मनुष्य की आँतें नरम और शक्तिहीन (नाताकत) पड़ जाती है, निर्धनावस्था में किसी उद्धम के न होने से तथा जाति और सांसारिक (दुनिया की) प्रथा (रिवाज) के कारण औसर और विवाह आदि में ज्यर्थ खर्च के द्वारा धन का अधिक नाश होने से उत्पन्न हुई चिन्ता से अमि मन्द हो जाती है तथा अजीर्ण हो जाता है, इत्यादि अनेक कारण अमि की मन्दता तथा अजीर्ण के है।

चिकित्सा — १ — इस रोग की अधिक कन्नी चौड़ी चिकित्सा का लिखना ध्यर्थ है, क्योंकि इस की सर्वोपिर (सन से ऊपर अर्थात् सन से अच्छी) चिकित्सा यही है कि ऊपर कहे हुए कारणों से नचना चाहिये तथा साधारण हलकी खुराक खाना चाहिये, शक्ति के अनुसार व्यायाम (कसरत) करना चाहिये तथा सामान्यतथा शरीर की आरोग्यता को नड़ानेवाली साधारण दवाह्यों का सेवन करना चाहिये, वस इन उपायों के सिवाय और कोई भी ऐसी चतुराई नहीं है कि जिस से इस रोग से नचान हो सके।

⁹⁻वर्गोंक इस रोग का कष्ट रोगी को असन्त पीड़ित करता है।।

^{?-}महुत से लोग यह समझते हैं कि मध और माग आदि के पीने से तथा तमाख् आदि के सेवन से (खाने पीने आदि के द्वारा) मूख खब लगती है, जज अच्छे प्रकार से खाया जाता है, पाचनशक्ति वढ़ जाती है तथा शरीर में शक्ति आती है इसाहि, सो यह उन की मूल है, क्योंकि परिणाम में इन सब पदायों से लामाश्य और जठरात्रि में विकार हो कर बहुत खराबी होती है अर्थात् कठिन जनीण होकर अनेक रोगों को उत्पन्न कर देता है, इस किये उक्त विचार से इन पदायों का व्यसनी कभी नहीं बनना चाहिये !!

२—न पचनेवाळी अथवा अधिक काळ में पचनेवाळी वस्तुओं का त्याग करना चाहिये, नैसे—तरकारी, सब प्रकार की दाळें, मेवा, अधिक घी, मक्सन, मिठाई तथा खटाई आदि ।

२-दूध, दिलया, खसीर की अथवा आदे में अधिक मोयन (मोवन) देकर गर्म पानी से उसन कर बनाई हुई पतली २ थोड़ी रोटी, बहुत नरम और थोड़ी चीन, काफी, दाल तथा मूंग का ओसामण आदि खुराक बहुत दिनों तक खानी चाहियें।

8—मोजन करने का समय नियत कर छेना चाहिये अर्थात् समय और कुसमय में नहीं खाना चाहिये, न बारंवार समय को बदळना चाहिये और न वहुत देर करके खाना चाहिये, रात को नहीं खाना चाहिये, क्योंकि रात्रि में मोजन करने से तनदुरुखी विगड़ती है।

बहुत से अज्ञान लोग रात्रि में भोजन करते हैं तथा इस विषय में अंग्रेजों का उदाह-रण देते हैं अर्थात् ने कहते हैं कि—"अंग्रेज लोग रात्रि में सदा खाते हें और ने सदा नीरोग रहते हैं, यदि रात्रि में मोजन करना हानिकारक (नुकसान करनेवाल) है तो उन के रोग क्यों नहीं होता है" इत्यादि, सो यह उन की अज्ञानता है तथा उन का यह कहना कि—"अंग्रेजों को रोग क्यों नहीं होता है" विलक्षल क्यें है क्योंकि—रात्रि में मोजन करने से उन को भी रोग तो अवश्य होता है परन्तु वह रोग बोड़ा होता है और बोड़े ही समयतक उहरता है, क्योंकि प्रथम तो उन लोगों के रहने के मकान ही ऐसे होते हैं कि क्षुद्र जीव प्रथम तो उन के मकानों में प्रवेश ही नहीं कर सकते हैं, दूसरे वे लोग नियत समय पर बहुत थोड़ा २ खाते है तथा खाने के प्रधात विकार न करनेवाले किन्तु हाज़मा करनेवाले पदार्थों का सेवन करते हैं कि जिस से उन को अजीर्थ कभी नहीं होता है, तीसरे—जब कथी उन को रोग होता है तब शीघ्र ही वे विद्वान डाक्टरों से उस की चिकित्सा करा छेते है कि जिस से रोग उन के शरीर में खान नहीं करने पाता है, चीये—वे नियमानुसार शारीरिक (शरीर का) और मानसिक (मनका) परिश्रम करते हैं कि जिस से उन का शरीर रोग के योग्य ही नहीं होता है, पांचवें—नियमानुसार शारीरिक (शरीर का) और मानसिक (मनका) परिश्रम करते हैं कि जिस से उन का शरीर रोग के योग्य ही नहीं होता है, पांचवें—नियमानुसार शारीरिक (शरीर का) और मानसिक (मनका) परिश्रम करते कार्यों के करने तथा निकृष्ट (द्वरे) कार्यों से बचने से उन को आधि (मानसिक रोग)

१-बहुत से लोग इस (अवीर्ष) रोग में कुछ दिनों तक कुछ परमादि रखते हैं परन्तु जब कुछ प्रमादि नहीं होता है तब रिाज होकर परमादि से बखना लोड देते हैं, क्योंकि ने समझते हैं कि परम्पर्व मानवा नहीं होता है तब रिाज होकर परमादि से बखना लोड देते हैं, क्योंकि ने समझते हैं कि परम्पर्व मानवा से कुछ फामदा तो होता नहीं है किर क्यों परम से बढ़े, ऐसा समझकर परम और कुपम आदि सब ही प्रवार्थों का उपमोग करने लगते हैं, सो बह उन की मूल है क्योंकि-इत रोग में बोटे ही दिनों तक परमप्रविक चलने से कुछ भी फायदा नहीं हो सकता है किन्तु एक असंतक (बहुत दिनों तक परमप्रविक बलांव कर फिर उसे परमप्रविक बलांव कर फिर उसे परमप्रविक बलांव कर फिर उसे होड़ देने से तो उलकी और भी हानि होती है, क्योंकि आसाशव और अमनवाहाय बिगड़ जाता है और उस से हुझरे भी हानेक रोग उरम्ब हो बाते हैं ॥

और व्याघि (शारीरिक रोग) सताती ही नहीं है, इत्यादि अनेक बातों से रोग उन के पास तक नहीं आता है, परन्तु सन जानते हैं कि—हिन्दुस्थानी जनों के कोई भी व्यवहार उन के समीन नहीं है, फिर हिन्दुस्थानी जन निषद्ध (शास्त्र आदि से मना किया हुआ) कार्य कर के दु:खरूपी फल से फैसे वचसकते हैं ? अर्थात् हिन्दुस्थानी जन शरीर को नाधा पहुँ-चानेवाले कार्यों को करके उन (अंग्रेजों) के समान तनदुरुखी को कभी नहीं पा सकते हैं।

वर्तमान में यह भी देखा जाता है कि—बहुत से आर्थ श्रीमान् छोग अंग्रेजों के समान ज्यवहार करने में अपना पैर रखते हैं परन्तु उस का ठीक निर्वाह न होने से परिणाम (नतीजा) यह होता है कि वे निना मौत आधी ही उम्र में मरते हैं, क्योंकि प्रथम तो अंग्रेजों का सब ज्यवहार उन से यथोचित वन नहीं आता है, दूसरे—इस देश की तासीर और जल वायु अंग्रेजों के देज से अलग है, इस लिये हिन्दुस्थानियों को उचित है कि—उन के अनुकरण (नकल करने) को छोड़ कर अपनी प्राचीन प्रथा (रिवाज़) पर ही चलते रहें अर्थात् प्रजापति मगवान् श्री नामिकुलचन्द्र ने जो दिनचर्या (दिन का ज्यवहार), रात्रिचर्या (रात्रि का ज्यवहार) तथा ऋतुचर्या (ऋतु का ज्यवहार) अपने प्रत्र हारीत को वतलाई थी (जिस को हम संक्षेप से इसी अध्याय में लिख चुके हैं) उस के अनुसार ही ज्यवहार करें, क्योंकि उस पर चलना ही उन के लिये कल्याणकारी है, नात्पर्य यह है कि—आर्यावर्ष के निवासियों को इस (आर्यावर्ष) देश के अनुसार ही अपना पहिराव, भेप, खान, पान तथा चाल चलन रखना चाहिये, अर्थात् भापा (बोली), मोजन, भेप और भाव, इन चार वातों को अपने देश के अनुसार ही रखना चाहिये, ये उत्पर कही हुई चार वातें मुल्यतया ध्यान में रखने की हैं ।

५-मध का सेवन नहीं करना चाहिये अर्थात् मद्य को कमी नहीं पीना चाहियें।

६-भोजन करने के समय में अथना भोजन करने के पीछे शीष्ट्र ही अधिक जरु नहीं पीना चाहियें तथा बहुत गर्म नाय वा काफी को नहीं पीना चाहिये, यदि कोई पतला पटार्थ पीने में आने तो वह बहुत गर्म वा बहुत ठंडा नहीं होना चाहिये।

१-हिन्दुस्थानी जनों के व्यवहार उन के समान ही नहीं है, वह बात नहीं है किन्तु हिन्दुस्थानियों के सब व्यवहार ठीक उन (अप्रेजों) के विरुद्ध (विपरीत) हैं, किर ये (हिन्दुस्थानी) लोग उन के समान आरोग्यता के सुरा को क्से पा सकते हैं॥

र-इस का अनुभव पाटकों को वर्तमान में अच्छे प्रकार से हो ही रहा है, इस 'लिये इस विषय के विवरण करने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥

३-इन चारो वातों को ध्यान में रख कर टेश, काल और प्रकृति आदि को विचार कर जो वर्त्ताव करेगा वहीं कभी धोखें में नहीं पढ़ेगा ॥

४-यद्यपि प्रारम्भ में इस से कुछ लाम सा प्रतीत होता है परन्तु परिणाम में इस से वही भारी हानि पहुँचती है, यह सुयोग्य मेंच और डाक्टरों ने क्षेत्र रीति से परीक्षा कर के निर्पारित किया है॥

५-क्योंकि भोजन करने के समय में अथवा भोजन करने के पीछे बीघ्र ही खबिक जरू पीने से खाये हुए अप का ठीक रीति से पाचन नहीं होता है ॥

७—तमाखू को नहीं सूंघना चाहिये, यदि फदाचित नकसीर रोग के बन्द करने के छिये वा कफ और नजले के निकालने के छिये उस के सूंघने की आवश्यकता हो वा उस का न्यसन पढ़ गया हो तो यथाशक्य (जहांतक हो सके) उसे छोड़ कर दूसरी दवा से उस का कार्य छेना चाहिये, यदि कदाचित् अतिन्यसन हो जाने के कारण वह न छूट सके तो इतना खयाछ तो अवश्य रखना चाहिये कि—मोजन करने से प्रथम उसे कमी नहीं सूंघना चाहिये, क्योंकि—मोजन करने से प्रथम तमाखू के सूंघने से मूख वन्द हो जाती है, इस बात की परीक्षा प्रत्येक सूंघनेवाला पुरुष कर सकता है।

८—खाने की तमाखू मी सूंघने की तमाखू के समान ही अवगुण करती है, परन्तु तमाखू खानेवाले लोग यह समझते हैं कि—तमाखू के खाने से ख़राक हज़म होती है, सो उन का यह खयाल करना अत्यन्त गलत है, क्योंकि तमाखू के खाने से उलटा अनीर्ण रहता है।

९-बहुत परिश्रम नहीं करना चाहिये, खुडी हुई सच्छ (साफ) हवा में अच्छे प्रकार असण करना (चूमना) चाहिये, यदि बहुत नींद छेने की (सोने की) आदत हो तो उसे छोड़ देना चाहिये तथा प्रातःकाळ श्रीत उठ कर खुडी हुई सच्छ हवा में घूमना फिरना चाहिये!

१०-मोजन करने के पीछे शीम ही बांचने, लिखने, पढने तथा स्क्म (बारीक) विषयों के विचार करने के लिये नहीं बैठना चाहिये, किन्तु कम से कम एक बंटा बीत जाने के बाद उक्त काम करने चाहियें ।

११-अल के पनाने (इबम करने) के लिये गर्म दबाइयां, गर्म खुराक तथा साफ दस्त लानेवाली दवा (जुलाब आदि) नहीं केनी चाहियें ।

वस अजीर्ण रोग से बचने के िकये उत्पर िल्ले नियमों के अनुसार चलना चाहिये, होजरी (आमाश्य) को सुधारने के िक्ये कुछ समय तक बच्चों की मांति दूस से ही निर्वाह करना चाहिये, आरोग्यता को रखनेवाली सितोपलादि साधारण औषमों का सेवन करना चाहिये तथा घोड़ेपर सवार होकर अथना पैदल ही प्रातःकाल और सायंकाल सम्बद्ध वायु के सेवन के िल्ये अमण करना चाहियें, क्योंकि होजरी के सुधारने के िल्ये यह सर्वोत्तम उपाय है ॥

१-यदापि कारीरिक (शरीरसम्बन्धी) परिश्रम भी विशेष वहीं करना चाहिये किन्तु मानिष्क (सनःसम्बद्धी) परिश्रम तो भूळ कर सी विशेष वहीं करना चाहिये, क्योंकि सानिष्क परिश्रम से यह रोग विशेष बढता है ॥

पराप पथता ए ॥ २-खरछ इता में असण करने (पूसने) से इस रोग में बहुत ही काम होता है, यह बात पूरे तीर से

असुमद में सा मुकी है ॥ २-भोजन करने के पीछे जीप्र ही जिखने पहने आदि का कार्य करने से मोजन ब्यों का लों आमाशव में स्थित रह जाता है अर्थास् परिपक्त नहीं होता है ॥ ४-सर्यों कि ऐसा करने से जठरामि का सामानिक वरू नष्ट हो कर उस में निकार उत्पन्न हो जाता है॥

अतीसार (डायरिया) का वर्णन ॥

कारण—अजीर्ण रोग के समान अतीसार (दस्त) होने के भी बहुत से कारण है तथा इन दोनों रोगों के कारण भी प्रायः एक से ही हैं, इन के सिवाय अतिशय (अधिक) और अयोग्य ख़ुराक, कचा फल, कचा अज, वासी तथा भारी ख़ुराक, इत्यादि पदार्थों के जपयोग से भी अतीसार रोग होता है, एवं खरान पाँनी, खरान हवा, ऋतु का बदलना, शर्दी, भय तथा अचानक आई हुई विपित, इत्यादि कई एक कारण भी इस रोग के उत्पादक (उत्पन्न करनेवाले) माने जाते है।

लक्ष्मण-वारंवार पतले दसा का होना, यह इस रोग का अस्य चिह है, इस के सिवाय-जी मचलाना, करुचि, जीमपर सफेद अथवा पीली थर का जमना, पेट में वायु का बढ़ना तथा उस की गड़गड़ाहट का होना, चूंक तथा खट्टी ढकार का आना, इत्यादि दूसरे भी चिह्न इस रोग में होते है।

इस बात को सदा ध्यान में रखना चाहिये कि अतीसार रोग के दस्तों में तथा मरोड़े के दस्तों में बहुत फर्क होता है अर्थात् अतीसार रोग में पतळा दस्त जलमबाह (जल के बहने) के समान होता है और मरोड़े में ऑतें मैठ से मरी हुई होती हैं, इस लिये उस में खुळासा दस्त न होकर ज्यथा (पीड़ा) के साथ थोड़ा २ दस्त आता है तथा आँतों में से ऑब, जलगुक्त पीप और खून मी गिरता है, यदि कमी अतीसार के दस्तों में खून गिरे तो यह समझना चाहिये कि यह खून या तो मस्से के मीतर से वा खून की किसी नठी के क्षटने से अथवा ऑतों वा होजरी में ज़लम (धाव) के होने से गिरता है।

व्यक्तिसार के मेद्-देशी वैद्यक शास में अतीसार रोग के बहुत से भेद माने हैं अर्थात जिस अतीसार में जिस दोग की अधिकता होती है उस का उसी दोष के अनुसार नाम रक्खा है, जैसे-बातातीसार, पिचातीसार, कफातीसार, सिन्नपातातीसार, श्लोकातीसार, आमातीसार तथा रक्जातीसार इत्यादि, इन सब अतीसारों में दख के रंग में तथा दूसरे भी उसणों में मेदें होता है जैसे-देखो ! बातातीसार में-दख झाँखा तथा पूअवर्ण का (धुएँ के समान रंगवाका) होता है, पिचातीसार में-पीका तथा रक्जता (धुर्खी) किये हुए होता है, कफातीसार में तथा आमातीसार में-दस्त सफेद तथा चिकना होता है और

१-अर्थात् अजीणं रोग के जो कारण कहे हैं वे ही अतीसार रोन के भी कारण जानने चाहियें।।

२-खराव पानी के ही कारण प्राय यात्रियों को दस्त होने उगते हैं ॥

३-अर्थात् साघारण अतीसार और मरोडे को एक ही रोग नहीं समझ छेना चाहिये॥

४-किन्हीं आचारों ने इस रोग के केवल छःही सेद माने हैं अर्थात वातातीसार, वित्तातीसार, कफा-तीसार, सिक्रपातातीसार, जोकातीसार और आमातीसार ॥

५-इंडरे लक्षणों में भी भेद एथक् २ दोणों के कारण होता है ॥

रक्तातीसार में खून गिरता है, इस प्रकार दस्तों के स्ट्रम (बारीक) मेदों को समझ कर यदि अतीसार रोग की चिकित्सा की आवे तो उस (चिकित्सा) का प्रभाव बहुत श्रीष्ठ होता है, यद्यपि इस रोग की सामान्य (साधारण) चिकित्साय भी बहुत सी हैं वो कि सब प्रकार के दस्तों में लाग पहुँचावी हैं परन्तु तो भी इस बात का जान लेना अत्याद-श्यक (बहुत ज़रूरी) है कि—जिस रोग में जो दोष प्रवल हो उसी दोष के अनुसार उसकी चिकित्सा होनी चाहिये, क्योंकि—ऐसा न होने से रोग उलटा वढ़ जाता है वा रूपान्तर (दूसरे रूप) में पहुँच जाता है, जैसे देखों ! यदि बातावीसार की चिकित्सा पितावीसारपर की जावे अर्थात् पितावीसार में यदि गर्म ओषिष दे दी बावे तो दस्त न रूक कर उलटा वढ जाता है और रक्तावीसार हो जाता है, इसी प्रकार दूसरे दोषों के विषय में भी समझना चाहिये।

अजीर्ण से उत्पन्न अतीसार में-दस्त का रॅंग झाँखा और सफेद होता है परन्तु जब वह अजीर्ण कठिन (सस्त) होता है तब उस से उत्पन्न अतीसार में हैंने के समान सब चिह्न माद्धम होते हैं।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा करने से पहिले दसा (मल) की परीक्षा करनी चाहिये, दसा की परीक्षा के दो मेद हैं—आमातीसार अर्थात् कचा दस्त और पकातीसार अर्थात् पक्षा दस्त इस के जानने का सहज उपाय यह है कि—यदि जल में ढालने से मल इन जाने तो उसे आम का मल अर्थात् अपक (कचा) समझना चाहिये और जल में ढालने से यदि वह (मल) पानी के ऊपर तिरने (उतराने) लगे तो उसे पक (पक्षा हुआ) मल समझना चाहिये , यदि मल आम का (कचा) हो अर्थात् आम से मिल हुआ हो तो उस के एकदम बन्द करने की ओषि नहीं देनी चाहिये, क्योंकि आम के दस्त को एकदम बन्द कर देने से कई मकार के विकारों की उत्पत्ति होती है, जैसे—अ-फरा, संग्रहणी, मस्सा, अगन्दर, शोध, पाण्डु, तिल्ली, गोला, प्रमेह, पेट का रोग तथा उत्तर आदि, परन्तु हां इस के साथ यह वात मी अवस्य याद रखनी चाहिये कि—यदि

^{9—}क्योंकि मेहों को समझ कर तथा दोष का विचार कर चिकिस्ता करने से दोष की निश्चित के हारा उक्त रोग की शीघ्र ही निश्चित हो जाती है ॥

२-पहिले कह चुके हैं कि-दोप के अनुसार मल के रंग आदि में मेद होता है, इस लिये मल ही परीक्षा के द्वारा दोम का निखय हो जानेपर चिकित्सा करनी चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से दोप ही निहासिद्वारा रोग की निहास होता हो हो जाती है और ऐसा व करने से उस्टी हानि होती हैं॥

३—इस के सिवाय साम सौर पक्ष की यह मी परीक्षा है कि—क्वे दोगों से मिळा हुमा आम मठ गिलगिला होता है तथा उस में हुर्गिन्य निशेष आती है परन्तु पक्ष मस्र गिलगिला नहीं होता है तथा उस में हुर्गिन्य कम आती है ॥

रोगी वालक, बुहुा, अथवा अशक्त (नाताकत) हो तथा अधिक दस्तों को न सह सकता हो तो आम के दस्तों को भी एकदम रोक देना चाहिये³ ।

१—इस रोग की सब से अच्छी चिकित्सा छंघन है परन्तु पित्तातीसार तथा रक्ताती-सार में छंघन नहीं कराना चाहिये, इन के सिवाय श्रेष अतीसारों में उचित छंघन कराने से रोगी को प्यास बहुत छगती है, उस को मिटाने के छिये धनियां तथा बाला को उकाल कर वह पानी ठंढा कर पिछाना चाहिये, अथवा धनियां, सोंठ, मोथा और पित्तपापड़े का तथा बाला का जल पिछाना चाहिये।

२-यदि अजीर्ण तथा आम का दस्त होता हो तो छंघन कराने के पीछे रोगी को प्रवोही तथा हलका भोजन देना चाहिये तथा आम को पचानेवाला, दीपन (अप्रि को प्रदीप्त करनेवाला), पाचन (मल और अक्ष को पचानेवाला) और स्तम्भन (मल को रोकनेवाला) भौषष देना चाहिये।

अब पृथक् २ दोषों के अनुसार पृथक् २ चिकित्सा को छिसते हैं:---

१-वातातीसार—इस में अनी हुई यांग का चूर्ण शहद के साथ छेना चाहिये। अथवा चावछ मर अफीम तथा केशर को शहद में छेना चाहिये तथा पथ्य में दही चावछ लाना चाहिये।

२-पित्तातीसार—इस में बेल की गिरी, इन्द्रजों, मोथा, वाला और अतिविध, इन जीवमों की उकाली केनी चाहिये, क्योंकि यह उकाली पित्त तथा आम के दस्त को शीध ही मिटाती है।

अथवा-अतीस, कुड़ाछाल तथा इन्द्रजीं, इन का चूर्ण चावलों के घोषन में शहद डाल कर लेना चाहिये।

२-फफातिसार—इस में कक्षन करना चाहिये तथा पाचनिकया करनी चाहिये। अथवा-हरड़, दारुहळदी, वच, मोथा, सोंठ और अतीस, इन औषघों का कादा पीना चाहिये।

⁹⁻बातिपत्त की प्रकृतिवाला जो रोगी हो, जिस का बल और वातु श्रीण हो गये हो, जो अखन्त दोषों से युक्त हो और जिस को वे परिमाण दस्त हो जुके हों, ऐसे रोगी के मी श्राम के दस्तों को रोक देना चाहिये, ऐसे रोगियों को पावन औपच के देने से खुखु हो जाती है, क्वोंकि पावन आपच के डेने से और भी दस्त होने रुगते हैं और रोगी उन का सहन नहीं कर सकता है, इस लिये पूर्व की अपेक्षा और भी अशक्ति (निवेस्ता) बह कर मृत्यु हो जाती है ॥

१-अवाही अर्थात पतके पदार्थ, जैसे-यनागू और यूप आदि । (प्रश्न) वैश्वक अन्यों में यह लिखा है कि-शूक़रोगी दो दल के सन्तों को (मूग सादि को), क्षयरोगी खीसग को, अतीसाररोगी पतले पदार्थों और खटाई को तथा ज्वररोगी उक्त सब को खाग देवे, इस कथन से अतीसाररोगी को पतले पदार्थ तो विजित हैं, फिर आपने अवाही पदार्थ देने को क्यों कहा? (उत्तर) पतले पदार्थों का जो अतीसार रोग में निपेष किया है वहा बूघ और वृत आदि का निपेष समझना चाहिये किन्तु यूप और पेया आदि पतले पदार्थों का निषेष नहीं हैं॥

श्यवा—हिङ्गाष्टक चूर्ण में हरड़ तथा सज्जीखार मिला कर उस की फंकी लेनी चाहिये।

-आमातीसार—इस में भी यथाशक्य लंघन करना चाहिये।
श्यवा—एरंडी का तेल पीकर कसे आम को निकाल डालना चाहिये।
श्यवा—गर्म पानी में घी डालकर पीना चाहिये।
श्यवा—सौंठ, सोंफ, खसखस और मिश्री, इन का चूर्ण खाना चाहिये।
श्यवा—सौंठ के चूर्ण को पुटपाक की तरह पका कर तथा उस में मिश्री डाल कर

4-रक्तातीसार—इस में पितातीसार की चिकित्सा करनी चाहिये। अथवा—चावलों के घोवन में सफेद चन्दन को घिस कर तथा उस में शहद और ो को डाल कर पीना चाहिये। अथवा—स्थाम की गुठली को छाछ में अथवा चावलों के घोवन में पीस कर लागा

हिंगे। अथवा—कवे वेल की गिरी को गुड में लेना चाहिये।

अथवा—जासुन, आम तथा इमली के कच्चे पत्तों को पीस कर तथा इन का रस निकाल उस में शहद घी और दूघ को मिला कर पीना चाहिये।

सामान्यचिकित्सां-१—आम की गुठली का मगँज (गिरी) तथा बेल की ो, इन के चूर्ण को अथवा इन के काँग को शहद तथा मिश्री ढाल कर लेना चाहिये। २—अफीम तथा केशर की आधी चिर्रमी के समान गोली को शहद के साथ लेना हेये।

३—जायफल, अफीम तथा खारक (छुहारे) को नागरनेल के पान के रस में बोट तथा बाल के परिमाण की गोली बनाकर उस गोली को छाछ के साथ लेना चाहिये। अ—जीरा, मांग, बेल की गिरी तथा अफीम को दही में बोट कर बाल के परिमाण की की बना कर एक गोली केनी चाहिये।

विशेषवक्त क्य जब किसी को दस्त होने कगते हैं तब बहुत से कोग यह सम-ते है कि नामि के बील की गांठ (धरन वा पेचोंटी) लिसक गई है इस िक्ये दस्त ते है, ऐसा समझ कर वि मूर्ल क्षियों से पेट को मसकाते (मकवाते) हैं, सो उन का ह समझना विकक्षक ठीक नहीं है और पेट के मसकाने से बड़ी मारी हानि यहुँचती है,

१-सामान्य चिकित्सा अर्थात् जो सब प्रकार के अतीसारों में फायदा करती है ॥

२-परन्तु आम की गुठकी के मगज (गिरी) के ऊपर जो एक प्रकार का मोटा किलकासा होता है

से निकाल डालना नाहिये अर्थात् उसे उपयोग में नहीं ब्यना नाहिये ॥

³⁻काथ में अवशिष्ट जल पावभर का छ्याकमर रखना चाहिये॥

४-चिरमी अर्थात् गुझा, जिसे माया में बुंचुची कहते हैं ॥

देखों ! शारीरिक विद्या के जाननेवाले डाक्टरों का कथन है कि—धरन अथवा पेचोंटी नाम का कोई मी अवयव शरीर में नहीं है और न नामि के बीच में इस नाम की कोई गांठ है और विचार कर देखने से डाक्टरों का उक्त कथन विलक्षल सत्य प्रतीत होता है', क्योंकि किसी अन्य में भी धरन का खरूप वा लक्षण आदि नहीं देखा जाता है, हां केवल इतनी बात अवश्य है कि—रगों में वायु अस्तल्यस्त होती है' और वह वायु किसी २ के मसलने से शान्त पढ़ जाती है, क्योंकि वायु का धर्म है कि मसलने से तथा सेक करने से शान्त हो जाती है, परन्तु पेट के मसलने से यह हानि होती है कि—पेट की रगें नाता-कत (कमजोर) हो जाती हैं, जिस से परिणाम में बहुत हानि पहुँचती है, इस लिये धरन के झूठे ख्याल को लोड़ देना चाहिये क्योंकि शरीर में धरन कोई अवयव नहीं है।

अनीसार रोग में आवश्यक सूचना—दर्खों के रोग में खान पान की बहुत ही सावधानी रखनी चाहिये तथा कभी २ एकाघ दिन निराहार छंघन कर छेना चाहियें, यदि रोग अधिक दिन का हो जावे तो दाह को न करनेवाळी थोड़ी २ ख़ुराक छेनी चाहिये, जैसे—चावळ और सावूदाना की कुटी हुई घाट तथा दही चावळ इत्यादि।

पथ्य-इस रोग में-बमन (उल्टी) का लेना, लंघन करना, नीद लेना, पुराने चावल, मस्र, त्र (अरहर), शहद, तिल, वकरी तथा गाय का दूघ, दही, छाल, गाय का थी, बेल का ताज़ा फल, जासुन, कबीठ, अनार, सब तुरे पदार्थ तथा हलका मोजन इत्यादि पथ्य हैं ।

कुपथ्य-इस रोग में सान, मर्दन, करड़ा तथा चिकना अल, कसरत, सेक, नया अल, गर्भ वस्तु, स्नीसंग, चिन्ता, जागरण करना, बीड़ी का पीना, गेहूँ, उड़द, कचे आन.

१-क्योंकि प्रथम तो उन छोगों का इस निपय में प्रसन्ध अनुमय है और प्रसन्ध अनुमय सन ही को मान्य होता है और होना ही चाहिये और दूसरे-जब वैद्यक आदि अन्य प्रन्य भी इस विषय में वही साझी वेते हैं तो मला इस में सन्देह होने का ही क्या काम है ॥

२-असव्यस्त होती है अर्थात् कमी इकड़ी होती है और कमी फैलती है ॥

२-भेट के मसलने से प्रथम तो रमें जाताकत हो जाती है जिस से परिणाम में बहुत हानि पहुँचती है, दूसरे-यदि बायु की शान्ति के लिये मसला मी जाने तो जादत विगड जाती है अर्थात किर ऐवा अभ्यास पढ जाता है कि पेट के मसलाये विना मूख प्यास आदि कुछ मी नहीं स्वगती है, इस लिये पेट को विशेष आवश्यकता के विवाय कभी नहीं ससलाना चाहिये ॥

४-क्योंकि कमी २ एकाम दिन निराहार छमन कर छेने से दोशों का पाचन तथा अप्ति का कुछ दीपन हो जाता है ॥

५-जन अतीसार रोग चला जाता है तन मरू के निकले निना मूत्र का साफ उतरना अधोनायु (अपाननायु) की ठीक प्रवृत्ति का होना, अप्ति का प्रदीप्त होना, कोष्ठ (कोठे) का हलका माल्स पड़ना शुद्ध डकार का आना, अन्न और बल का अच्छा लगना, हृदय में उत्साह होना तथा इन्तियों का खस्य होना, इसादि लक्षण होते हैं॥

पूरनपोली, कोला, ईख, मझ, गुड़, खरान जल, कस्तूरी, पत्तों के सन शाक, ककड़ी तथा खहे पदार्थ, ये सन कुपय्य हैं अशीत् ये सन पदार्थ इस रोग में हानि करते हैं।

यह भी त्मरण रखना चाहिये कि इस रोग में चाहे सोपिष कुछ देरी से ली जाने तो कोई हानि नहीं है परन्तु पथ्य खान पान करने में विलक्ष्ठ ही गलती (मूळ) नहीं करनी चाहियें।

.- मरोड़ा, आमातीसार, संग्रहणी (डिसेण्ट्री) का वर्णन ॥

मरोड़ा, आमातीसार और संग्रहणी, ये तीनों नाम छगमग एक ही रोग के हैं, क्योंकि-इन सब रोगों में प्रायः समान ही छक्षण पाये चाते हैं, वैद्यक शास्त्र में विस को आमा-तीसार नान से कहा गया है उसी को छोग मरोड़ा कहते हैं, अतीसार और आमातीसार जब पुराने हो जाते हैं तब उन्हीं को संग्रहणी कहते हैं, इस लिये यहां पर तीनों को साथ में ही दिल्लाते हैं, क्योंकि-अवस्था (स्थिति वा हाळत) के भेद से यह प्रायः एक ही रोग हैं ।

यह रोग प्रायः सब ही वर्ग के लोगों को होता है, जिस प्रकार एक विशेष प्रकार की विषेठी हवा से विशेष जाति के रोग फूट कर निकलते हैं उसी प्रकार मरोड़े रोग का मी कारण एक विशेष प्रकार की विषेठी हवा और विशेष ऋतु होती है, क्योंकि—मरोड़े का कारण एक विशेष प्रकार की विषेठी हवा और विशेष ऋतु होती है, क्योंकि—मरोड़े का रोग सामान्यतया (साधारण रीति से) तो किसी र के ही और कमी र ही होता है रोग सामान्यतया (साधारण रीति से) तो किसी र के ही और कमी र ही होता है परन्तु किसी र समय यह रोग बहुत फैठता है तथा वसन्त और वर्षा ऋतु में प्रायः इस का जोर जिनक होता है ।

कारण नरोड़ा होने के मुख्यतया दो कारण हैं—उन में से एक कारण इस रोग की हवा है अर्थात् एक प्रकार की ठंढी हवा इस रोग को उत्पन्न करती है और उस हवा का असर प्रायः एक स्थान के रहने वाले सब लोगों पर बचिप एक समान ही होता

हेना चाहिये ॥ १-तात्पर्य वह है कि स्थिति (हाट्य) के सेंद से अतीसार रोग के ही ये तीनों नाम प्रथक १ रक्ते गंवे हैं अत एवं हम में बहांपर इन सीनों को साथ में ही क्रिया है, अब जो इन में स्थिति का भेद है उस हैं अत एवं हम में बहांपर इन सीनों को साथ में ही क्रिया है, अब जो इन में स्थिति का भेद है उस

का वर्णन यथायोग्य आने किया ही खावगा ॥ ३-इस के देखने के समय नतुष्यों की समिवकांश संख्या इस रोग से पीड़ित हो जाती हैं ॥ ४-क्योंकि वसन्त जाँर वर्षा ऋतु में कम से कफ और वालु का कीप होने से प्राय. अप्रि मन्द रहती है ॥

^{3—}बह बात फेनल इसी रोग में नहीं किन्यु सब ही रोगों में ब्यान रखनेगोम है, क्योंकि-पहिने ही लिख चुके हैं कि-पृथ्य न रखने से ओषि से भी डुळ डाम नहीं होता है तथा पृथ्य रखने से ओपि के डिल की भी विशेष जावस्थकता नहीं रहती है, परन्तु हो इतनी बात अवस्थ है कि कई रोगों ने डुप्य हुत कि डिल की भी विशेष जावस्थकता नहीं रहती है, परन्तु हो इतनी बात अवस्थ है कि कई रोगों ने डुप्य हुत कि डिल की भी विशेष जावस्थकता नहीं रहती है, परन्तु खतीसार आदि रोगों में डुप्य डीप ही राम बड़ी सहत कि करता है, परन्तु खतीसार आदि रोगों में छोपि की अपेहा प्रम्यपर अधिक ब्यान मारी होने करता है, इस लिये इन (कर्तीसार आदि रोगों) में ओपि की अपेहा प्रम्यपर अधिक ब्यान तरा चारिये ॥

है तथापि अशक्त (नाताकत) मनुष्य और पाचनिकया के व्यतिक्रम (गड़बड़) से युक्त मनुष्यपर उस हवा का असर शीघ्र ही होता हैं।

इस रोग का दूसरा कारण खुराक है अर्थात् कचा और मारी अल, मिर्च, गर्म मसाले और शाक तरकारी आदि के खाने से बादी तथा मरोड़ा उत्पन्न होता है³।

इस रोग की उत्पत्ति का क्रम यह है कि-जब दस्त की कस्ती रहती है तथा उस के कारण मछ आँतों में भर जाता है तथा वह सक आँतों के भीतरी पड़त को विसता है तब मरोड़ा उत्पन्न होता है।

इस के सिवाय—गर्म ख़ुराक के खाने से तथा श्रीष्म ऋतु (गर्मी की मौसम) में सख्त जुळाब के छेने से भी कभी २ यह रोग उत्पन्न हो जाता है।

लक्ष्मण—मरोड़े का प्रांतम प्रायः दो प्रकार से होता है अर्थात् या तो सख्त मरोड़ा होकर पहिले अतीसार के समान दस्त होता है अथवा पेट में कब्बी होकर सख्त दस्त होता है अर्थात् दुकड़े २ होकर दस्त आता है, प्रारम्म में होनेवाले इस लक्षण के सिवाय—बाकी सब लक्षण दोनों प्रकार के मरोड़े में प्रायः समान ही होते है।

इस रोग में दख की शंका वारंवार होती है तथा पेट में ऐंठन होकर क्षण २ में थोड़ा २ दख होता है, दख की हाजत वारंवार होती है, काँख २ के दख आता है (उतरता है), शौचस्थान में ही बैठे रहने के छिये मन चाहता है तथा खून और पीर्प गिरता है।

कमी २ किसी २ के इस रोग में शोड़ा बहुत बुखार भी हो जाता है, नाड़ी जल्दी चळती है और जीमपर सफेद बर (मैछ) जम जाती है।

ज्यों २ यह रोग अधिक दिनों का (पुराना) होता जाता है त्यों २ इस में खून और पीप अधिक २ गिरता है तथा ऐंठन की पीड़ा वढ जाती हैं", वड़ी ऑंत के पड़त में

१-अशक्त और पायन किया के व्यतिकम से शुक्त मजुष्य की जठरामि प्राय: पहिले से ही अल्पवल होती है तथा आमाश्चय में पहिले से ही विकार रहता है अतः उक्त हवा का स्पर्श होते ही उस का असर शरीर में हो कर शीध ही मरोडा रोग उत्पन्न हो जाता है॥

२-सारपर्थ यह है कि उक्त खराक के ठीक रीति से न पनने के कारण पेट में आगरस हो जाता है नहीं आँतों में लिपट कर इस रोग को उत्पन्न करता है ॥

३-मल आतों में और ग्रदा की भीतरी बर्जी में फॅसा रहता है और ऐसा माछ्स होता है कि वह गिरना चाहता है इसी से नारनार दख की आश्रष्टा होती है ॥

४-कॉख २ के अर्थात् विशेष वळ करने पर ॥

५-नार्रवार यह प्रतीत होता है कि अब मळ उतरना चाहता है इस छिये शौचस्थान से उठने को जी नहीं चाहता है ॥

६-पीप अर्थीत् कवा रस (जास वा गिळगिळा पदार्थं) ॥

७-क्योंकि ऑतों में फेंसा हुआ गरू ऑतों को रगहता है n

शोथ (स्जन) हो जाता है, जिस से वह पड़त ठाठ हो जाता है पीछे उस में रूमें और गोठ जलम हो जाते हैं तथा उस में से पहिले खून और पीछे पीप गिरता है, इस प्रकार का तीक्ष्ण (तेज वा सख्त) मरोड़ा जब तीन वा चार अठवाड़ेतक वना रहता है तब वह पुराना गिना जाता है, पुराना मरोड़ा वर्षोतक चठता (ठहरता) है तथा जब इस का अच्छा और योग्य (मुनासिव) इलाज होता है तब ही यह जाता है, इसी पुराने मरोड़े को संप्रहेंणी कहते हैं पूरे पथ्य और योग्य दवा के न मिळने से इस रोग से हज़रों ही आदमी मर जाते है।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा करने से प्रथम यह देखना चाहिये कि-आँतों में सूजन है ना नहीं, इस की परीक्षा पेट के दवाने से हो सकती है अर्थात् जिस जगह पर दवाने से दर्द माछम पड़े उस जगह सूजन का होना जानना चाहिये, यदि सूजन माछम हो तो पिहले उस की चिकित्सा करनी चाहिये, सूजन के लिये यह चिकित्सा उत्तम है कि-जिस जगह पर दवाने से दर्द माछम पड़े उस जगह राई का पलाएर (पलसर) लगाना चाहिये तथा यदि रोगी सह सके तो उस जगह पर जोंक लगाना चाहिये और पीछे गर्म पानी से सेंक करना चाहिये तथा अलसी की पोल्टिस लगानी चाहिये और पीछे गर्म पानी से सेंक करना चाहिये तथा अलसी की पोल्टिस लगानी चाहिये, ऐसी अवस्था में रोगी को खान नहीं करना चाहिये और न ठंदी हवा में बहर निकलना चाहिये किन्तु विकौनेपर ही सोते रहना चाहिये, आँतों में से मल से मरे हुए मैल को निकालने के लिये छः मासे छोटी हरनों का अथना सोंठ की उकाली में अंदी के तेल का जुलाब देना चाहिये, क्योंकि प्रायः प्रारंगावस्था में मरोड़ा इस प्रकार के जुलाब से ही मिट जाता है अर्थात् पेट में से मैल से युक्त मल निकल जाता है, दस्त साफ होने लगाती है तथा पेट की पेंठन और नारंनार दस्त की हाजत मिट जाती है।

यह भी स्मरण रहे कि-मरोड़े बाले को अंडी के तेल के सिवाय दूसरा भारी जुलाब कभी नहीं देना चाहिये, यदि कदाचित् किसी कारण से अंडी के तेल का जुलाव न देना

⁹⁻अर्थात् पुराना मरोग्ना हो आनेपर दूषित हुई अठराप्ति प्रहणी नाम छठी कला को भी दूषित कर देती है (अग्नियरा कला को सप्रहणी वा अहणी कहते हैं) ॥

२-क्योंकि सूजन के स्थान में ही दवाब पडने से दर्द हो सकता है अन्यथा (सूजन व होनेपर) दवाने से दर्द नहीं हो सकता है ॥

३-पहिछे सूजन की चिकित्सा हो जाने से अर्थात् चिकित्साद्वारा सूजन के निश्च हो जाने से ऑते नरम पह जाती हैं और ऑतों के नरम पह जाने से मरोडा के छिये की हुई चिकित्सा से शीघ्र ही अम पहुँचता है ॥

४-क्योंकि पलाष्टर आदि के लगाने के समय में झान करने से अथना ठंडी इना के क्या जाने से निशेष रोग उत्पन्न हो जाते हैं तथा कभी २ सूजन में भी ऐसा निकार हो जाता है कि वह मिटती नहीं है तथा पक २ कर फूटने लगती है, इस लिये ऐसी दशा में झान आदि न करने का पूरा ध्यान रखना नाहिये ॥

हो तो अंडी के तेल में म्ती हुई छोटी हरहें दो रुपये भर, सोंठ ५ मासे, सोंफ एक रुपये भर, सोनामुखी (सनाय) एक रुपये भर तथा मिश्री पांच रुपये भर, इन औषधों का जुलाब देना चाहिये, क्योंकि यह जुलाब भी लगभग अपनी के तेल का ही काम देता हैं।

मरोड़ावाले रोगी को दूध, चावल, पतली घाट, अथवा दाल के सादे पानी के सिवाय

दूसरी ख़ुराक नहीं छेनी चाहिये।

बस इस रोग में प्रारंभ में तो बेही इलाज करना चाहिये, इस के पश्चात् यदि आवस्य-कता हो तो नीचे लिखे हुए इलाजों में से किसी इलाज को करना चाहिये।

१-अफीम मरोड़े का रामबाण के समान इलाज है, परन्तु इसे युक्ति से लेना चाहिये अर्थात् हिंगाष्टक चूर्ण के साथ गेहूं मर अफीम को मिला कर रात को सोते समय लेना चाहिये।

अथवा-अफीम के साथ आठ आनेमर सोये को कुछ सेककर (मूनकर) तथा पानी के साथ पीसकर पीना चाहिये।

यह भी सरण रखना चाहिये कि मरोड़ा तथा दस्त को रोकने के छिये यद्यपि अफीम उत्तम औषघ है परन्तु अण्डी का तेल लेकर पेट में से मैल निकालेबिना प्रथम ही अफीम का लेना टीक नहीं है, क्योंकि पहिले ही अफीम के लेने से वह विगड़े हुए मल को भीतर ही रोक देती है अर्थात् दस्त को वन्द कर देती है।

२—ईशनगोल अथवा सफेदजीरा मरोड़े में बहुत फायदा करता है, इस लिये आठ २ आने भर जीरे को अथवा ईशवगोल को³ दिन में तीन वार दही के साथ लेना चाहिये, यह दवा दक्ष की कञ्जी किये विना ही मरोड़े को भिटा देती है⁴।

३—यदि एक बार अण्डी का तेल लेनेपर भी मरोड़ा न मिटे तो एक बा दो दिन ठहर कर फिर अण्डी का तेल लेना चाहिये तथा उसे या तो सोंठ की लकाली में या पिपरमेट के पानी में अथवा अदरख के रस में लेना चाहिये अथवा लाहेनम अर्थात् अफीम के अर्क में लेना चाहिये, ऐसा करने से वह पेट की बायु को दूर कर दस्त को मार्ग देता है।

४--वेल का, फल भी मरोड़े के रोग में एक अकसीर इलान है अशीत् वेल की, गिरी को गुड़ और वही में मिला कर लेने से मरोड़ा मिट बाता है।

१-अर्थात् यह जलान भी अण्डी के तेल के समान अल को सहब में निकाल देता है तथा कोठे में अपना तीक्ष्ण प्रमान उत्पन्न नहीं करता है ॥

१-यही अर्थात् अपर कहा हुआ ॥

३-अर्थात् दोनों में से किसी एक पदार्थ को दिन में दो तीन बार दही के साथ छेना चाहिये तथा एक समय में आठ आने सर मात्रा छेनी चाहिये ॥

४-मरोड़े की दूसरी दवाह्या प्राय: ऐसी हैं कि वे मरोड़े को तो मिटाती हैं के किन कुछ दस्त की कच्जी करती है के किन यह दवा ऐसी नहीं है ॥

जपर लिखे हुए इलाजों में से यदि किसी इलाज से भी फायदा न हो तो उस रोग को असाध्य समझ छेना चाहिये, पीछे उस असाध्य मरोड़े में दस्त पतळा (पानी के समान) आता है, शरीर में बुखार बना रहता है तथा नाड़ी शीव चलती है।

इस के सिवाय यदि इस रोग में पेट का दुखना बरावर बना रहे तो समझ छेना चाहिये कि आँतों में अभी शोध (सूजन) है तथा अन्दर ज़लम है, ऐसी हारत में अथवा इस से पूर्व ही इस रोग का किसी कुशल वैद्य से इलाज करवाना चाहिये।

संग्रहणी-पहिले कह चुके हैं कि-पुराने मरोड़े को संग्रहणी कहते हैं, उस (संग्र-हणी) का निदान (मूळ कारण) वैद्यक शासकारों ने इस प्रकार लिखा है कि कोष्ठ में अग्नि के रहने का जो स्थान है वही अल को ग्रहण करता है इस लिये उस स्थान को शहणी कहते हैं, अर्थात् सहणी नामक एक थाँते है जो कि कचे अन को शहण कर भारण करती है तथा पके हुए अन को गुदा के मार्ग से निकाल देती है, इस महणी में जो अग्नि है बास्तव में बही महणी फहलाती है, जब अग्नि किसी मकार दूपित (सराव) होकर मन्द पड़ जाती है तब उस के रहने का स्थान ग्रहणी नामक ऑत मी सूनित (खराब) हो जाती है ।

वैद्यक ज्ञास में यद्यपि प्रहणी और संग्रहणी, इन दोनों में थोड़ा सा मेद दिसलाय है अर्थात् वहां यह कहा गया है कि-नो आमवायु का संग्रह करती है उसे संग्रहणी कहते हैं, यह (संग्रहणी रोग) ग्रहणी की अपेक्षा अधिक मयदायक होता है परन्तु हम यहां-पर दोनों की मिनता का परिगणन (विचार) न कर ऐसे इलाख लिखेंगे जो कि सामा-

न्यतया दोनों के लिये उपयोगी है।

कारण-जिस कारण से तीक्ष्ण मरोड़ा होता है उसी कारण से संग्रहणी भी होती है। अथवा तीक्ष्ण मरोड़ा के शान्त होने (मिटने) के बाद मन्दाग्निवाले पुरुष के तथा कुपध्य आहार और विहार करनेवाले पुरुष के पुराना मरोड़ा अर्थात् संग्रहणी रोग हो जाता है।

लक्ष्मण-पहिले कह चुके हैं कि महणी आँत कन्ने अन्न को महण कर धारण करती है तथा पके हुए को गुदा के द्वारा वाहर निकालती है, परन्तु जब उस में किसी प्रकार

१-अर्थात् उसे विकित्साद्वारा भी न जानेवाळा जान केना चाहिये ॥

२--चरक ऋषि ने कहा है कि "जठराप्ति के रहने का स्थान तथा सोवन किये हुए अम्र का ग्रहण करते से उस को शहणी कहते हैं, वह क्षेत्र अब का शहण तथा एक का अवःपातन करती हैं"।

३--यही छठी पित्तवरा नामक कला है तथा यह सामासय और पकासय के घीच में है ॥ ४-इसी किये तो कहा गया है कि बातीसार रोग में जुलाब लेने के समान प्रध्य करना चाहिये।

५-उस कारण का कथन पहिन्ने किया जा जुका है ॥

६-इस में प्रलेक दोष के कृपित करने के कारण को सी खान खेना चाहिये अर्थात् वात को कृपित करनेवाला कारण वातजन्य समहणी का भी कारण है, इसी प्रकार क्षेत्र दोवों में भी जान लेना बाहिये ॥

का दोष उत्पन्न हो जाता है तब प्रहणी वा संग्रहणी रोग हो जाता है, उक्त रोग में ग्रहणी कच्चे अन का ग्रहण करती है तथा कच्चे ही अन्न को निकालती है अर्थात पेट छूट कर कचा ही दस्त हो जाता है', इस रोग में दस्त की संख्या भी नहीं रहती है' और न दस्त का कुछ नियम ही रहता है, क्योंकि प्रायः ऐसा देखा जाता है कि—थोड़े दिनोंतक दस्त वन्द रह कर फिर होने लगते हैं, इस के सिवाय कभी र एकाघ दस्त होता है और कभी र बहुत दस्त होने लगते हैं।

इस रोग में मरोड़े के समान पेट में पेंठन, आमवायु, पेट का कटना, नारंनार दस्त का होना और बंद होना, साथे हुए अन्न के पचजानेपर अथवा पचने के समय अफरे का होना तथा मोजन करने से उस अफरे की शान्ति का होना तथा वादी की गांठ की छाती के दर्द की और तिछी के रोग की शंका का होना, इत्यादि उक्षण प्रायः देखे जाते हैं।

अनेक समयों में इस रोग में पतला, सूखा, कचा, शब्द युक्त (आवाज के साथ) तथा झागोंवाला वस्त होता है, शरीर सूखता जाता है अर्थात् शरीर का खून उड़ता जाता है, इसकी अन्तिम (आखिरी) अवस्था में शरीर में सूजन हो जाती है और आख़िरकार इस रोग के द्वारा मनुष्य बोलता २ मर जाता है।

इस रोग के वस्त में प्रायः अनेक रंग का खून और पीप गिरा करता है³।

चिकित्सा—१-पुरानी संग्रहणी अतिकष्टसाँध्य हो जाती है अर्थात् साधारण चिकित्सा से वह कमी नहीं मिट सकती हैं, इस रोग में रोगी की जठराश्चि ऐसी खराब हो जाती है कि—उस की होजरी किसी प्रकार की भी खुराक को छेकर उसे नहीं पचा सकती है, अर्थात् उस की होजरी एक छोटे से बच्चे की होजरी से भी अति नाताकत हो जाती है, इस छिये इस रोग से युक्त मनुष्य को हळकी से हळकी खुराक सानी चाहिये।

२—संग्रहणी रोग में छाछ सर्वोत्तम ख़ुराफ है, क्योंकि यह (छाछ) दवा और पथ्य दोनों का काम निकालती है, इस लिये दोनों का निचार कर भूनी हुई हींग, जीरा और सैंघा निमक ढाल कर इसे पीना चाहिये, परन्तु वह छाछ थर (मलाई) निकाले हुए

१-अर्थात् इस रोग में अन्न का परिपाक नहीं होता है ॥

२-अर्थात् नेशुमार दक्त होते हैं॥

३-इस रोग में ये सामान्य से लक्षण लिखे गये हैं इन के सिवाय-दोवविशेष के अनुसार इस रोग में मिन २ लक्षण भी होते हैं, जिन को दुदिसान् बन देख कर दोषविशेष का ज्ञान कर सकते हैं अथवा दोपों के अनुसार इस रोग के प्रथक् २ लक्षण वृसरे वैद्यक अन्यों में वर्णित है वहा देख कर इस विषय का निश्य कर लेना चाहिये॥

४-वडी ही कठिनता से नियुत्त होनेयोग्य ॥

५-इस लिये इस रोग की चिकित्सा किसी अतिकुवाक वैदा वा डाक्टर से करानी चाहिये।

६-इलकी से इलकी अर्थात् अल्पन्त इलकी ॥

दहीं में चौथा हिस्सा पानी डाल कर निलोई हुई होनी चाहिये, अर्थात् दही में चौयाई, हिस्से से अधिक पानी डाल कर नहीं निलोना चाहिये, क्योंकि गाडी लाल इस रोग में उत्तम खुराक है, अर्थात् अधिक फायदा करती है, संग्रहणीवाले रोगी के लिये अकेली लाल ही कपर लिखे अनुसार उत्तम खुराक है, क्योंकि यह पोषण कर चठराभि को प्रवल करती है।

इस रोग से युक्त मनुष्य को चाहिये कि-किसी पूर्ण विद्वान वैद्य की सम्मति से सब् कार्य करे, किन्तु मूर्ल वैद्य के फन्दे में न पड़े ।

छाछ के कुछ समयतक सेवन करने के पीछे यात आदि हलकी खुराक का लेना पारंस करना चाहिये तथा हलकी खुराक के लेने के समय में भी छाछ के सेवन को नहीं छोड़ना चाहिये, क्योंकि मृत्यु के मुख में पड़े हुए तथा अस्य (हाड़) मात्र शेष रहे हुए भी संग्रहणी के रोगी को विद्वानों की सम्मति से ली हुई छाछ अमृतरूप होकर जीनव-दान देती है, परन्तु यह स्मरण रहे कि—धीरज रखकर कई महीनोंतक अकेली छाछ ही को पीकर रोगी को रहना चाहिये, सत्य तो यह है कि—इस के सिवाय दूसरा साधन इस रोग के मिटाने के लिये किसी अन्य में नहीं देखा गया है।

इस रोग से युक्त पुरुष के लिये तकसेवन का गुणानुवाद जैनाचार्यरचित योगिवन्ता-मणि नामक वैद्यक ग्रन्थ में बहुत कुछ लिखा है तथा इस के विषय में हमारा मलक अनुमव भी है अर्थात् इस को हमने पथ्य और दवा के रूप में ठीक रीति से पाया है।

३-मूंग की दाल का पानी, धनियां, जीरा, सेंघा निमक और सींढ डाल कर छाछ को पीना चाहिये ।

४-डाई मासे वेळ की गिरी को छाछ में मिला कर पीना चाहिये तथा केवल छाछ की ही ख़राक रखनी चाहिये।

५-तुग्धवटी- शुद्ध वत्सनाग चार बाल भर, अफीम चार बाल भर, लोहभस्म पांच रची मर तथा अन्नक एक मासे भर, इन सब को दूष में पीस कर दो दो रची की गोलियां बनानी चाहियें तथा उन का शक्ति के अनुसार सेवन करना चाहिये, यह संग्रहणी तथा सूजन की सर्वोत्तम ओषधि है, परन्तु स्मरण रहे कि-जब तक इस दुम्बदी का सेवन किया जावे तब तक दूष के सिवाय दूसरी खुराक नहीं खानी चाहिये।

१-अयात छाछ का जानक करना जान कर स्वार्थ के कार्य व करके मूर्ख वैद्य के मन्दे में फंस जाने २-क्योंकि पूर्ण विद्वात् वैद्य की सम्मति के अञ्चसार सब कार्य व करके मूर्ख वैद्य के मन्दे में फंस जाने से यह रोग अवस्य ही प्राणो का चत्रु हो जाता है अर्थात् प्राण के कर ही छोडता है ॥

१-अर्थात् छाछ को अधिक पानी डाळ कर पतली नहीं कर देनी चाहिये ॥

२-तथा अन्य प्रन्यों में भी इस के विषय में बहुत कुछ कहा गया है अर्थात इस के विषय में यहा तक कहा गया है कि जैसे खर्चलोक में देवताओं के लिये सुसकारी असत है उसी प्रकार इस ससार में असत के समान सुसकारी छाछ है, इस में घडी मारी एक निसेपता वह है कि इस के सेवन से दग्ध हुए दोप फिर नहीं उठते (उमस्ते) हैं॥

विशेषसूचना अतीसार रोग में िछ खे अनुसार इस रोग में भी अधिक खान नहीं करना चाहिये, अधिक खान पान नहीं करना चाहिये, जागरण नहीं करना चाहिये, बहुत परिश्रम (महनत) नहीं करना चाहिये तथा खच्छ (साफ) हवा का सेवन करते रहना चाहिये, इस रोग के छिये सामुद्रिक पवन (दिरयाव की हवा) अथवा यात्रासम्बंधी हवा अधिक फायदेमन्द हैं।

कृमि, चूरणिया, गिंडोला (वर्म्स) का वर्णन ॥

विवेश्वन कृतियों के गिरने से शरीर में जो र विकार उत्पन्न होते है यद्यपि-वे अति सयंकर हैं परन्तु प्रायः मनुष्य इस रोग को साधारण समझते है, सो यह उन की बड़ी मूल है, देखो ! देशी वैद्यक शास्त्र में तथा डाक्टरी चिकित्सा में इस रोग का बहुत कुछ निर्णय किया है अर्थात् इस के विषय में वहां बहुत सी सूक्ष्म (वारीक) बातें बतलाई गई है, जिन का जान लेना मनुष्यमात्र को अत्यावश्यक (बहुत जरूरी) है, यद्यपि उन सब बातों का विस्तारपूर्वक वर्णन करना यहांपर हमें भी आवश्यक है परन्तु प्रन्थ के वह जाने के मय से उन को विस्तारपूर्वक न वतला कर संक्षेप से ही उन का वर्णन करते है ।

भेद्—कृमि की गुल्यत्या दो जाति है—बाहर की और मीतर की, उन में से बाहर की कृमि ये हैं—जुँप, ठीख और चर्मजुँप, इत्यादि, और मीतर की कृमि ताँते आदि है। इन कृमियों में से कुछ तो कफ में, कुछ खून में और कुछ मरू में उत्पन्न होती है।

कारण—बाहर की कृमि शरीर तथा कपड़े के मैलेपन अर्थात् गलीजपन से होती हैं और मीतर की कृमि अजीर्ण में सानेवाले के, मीठे तथा खट्टे पदार्थों के सानेवाले के, पतले पदार्थों के सानेवाले के, पतले पदार्थों के सानेवाले के, परस्पर विरुद्ध अज पान के सानेवाले के, बहुत बनस्पति की खराक के सानेवाले के तथा बहुत मेवा आदि के सानेवाले के पकट होती हैं।

प्रायः ऐसा भी होता है कि क्रिमियों के अण्डे खुराक के साथ में पेट में चले जाते हैं तथा ऑतों में उन का पोषण होने से उन की दृद्धि होती रहती हैं ।

⁹⁻प्रहणी के आधीन जो रोग हैं उन की अलीण के समान चिकित्सा करनी चाहिये, इस (प्रहणी) रोग में लघन करना, दीपनकत्तों खीषघों का देना तथा अतीसार रोग में जो चिकित्सायें कही गई हैं उन का प्रयोग करना लामदायक है, दोपों का आम के सहित होना ना आम से रहित होना जिस प्रकार अतीसार रोग में कह दिया गया है उसी प्रकार इस में भी चान केना चाहिये, यदि दोष आम के सहित हों तो अतीसार रोग के समान ही आम का पाचन करना चाहिये, पेगा आदि हलके अन को खाना चाहिये तथा पश्चकेल आदि को उपयोग में लाना चाहिये तथा पश्चकेल आदि को उपयोग में लाना चाहिये ॥

२-तॉत् कृमि गोल, चपटी तथा २० से ३० फीटतक लम्बी होती है ॥

३-अर्थात् वाहरी कृमि बाहरी मछ (पसीना आदि) से उत्पन्न होती है।

४-पत्र पदायों के अर्थात् कड़ी, पना और श्रीखण्ड आदि पदायों के सानेवाले के ॥

५-अर्थात् यह भीतरी कृतियों का बाह्य कारण है ॥

लक्षण—नाहर के जुँए तथा डीसें अचिप प्रत्यक्ष ही दीखते हैं तथापि चमड़ीपर ददोड़े, फोड़े, फ़ुनसी, खुनडी चौर गड़गूमड़ का होना उन की सत्ता (विद्यमानता) के प्रत्यक्ष चिह्न हैं ।

अब प्रथक् २ कारणों से उत्पन्न होनेवाली ऋमियों के रुक्षणों को लिखते हैं:---

१-कफ से उत्पन्न हुई क्रिमियों में कुछ तो चमड़े की मोटी डोरी के समान, कुछ अरुसिये के समान, कुछ अन्न के अंकुर के समान, कुछ बारीक और छन्नी तथा कुछ छोटी २ होती हैं।

इन के सिवाय कुछ सफेद और ठाठ झाँईवाठी भी कृमि होती हैं, जिन की सात जातियां हैं -इन के शरीर में होने से जीका मचठाना, गुँह में से ठार का गिरना, जक का न पचना, अरुचि, मूर्छो, उलटी, बुखार, पेट में अफरा, खांसी, डींक और क्षेमीं, वे उक्षण होते हैं।

. २-लून से उत्पन्न होनेवाकी कृमि कः प्रकार की होती हैं, और वे इस प्रकार सूक्ष्म होती हैं कि-सूक्ष्मदर्शक यद्म से ही उन को देख सकते है, इन क्रुमियों से कुछ बादि अर्थात् चमड़ी के रोग उत्पन्न होते हैं।

३—विष्ठा अर्थात् दस्त से उत्पन्न होनेवाडी क्रिम गोल, सहीन, मोटी, सफेद, पीडे, काले तथा अधिक काले रंग की भी होती हैं, ये क्रिम पांच प्रकार की होती हैं —विक् क्रिम होजरी के सन्मुख जाती है तब दस्त, गांठ, मल का अवरोध (रुक्ता), शरीर में दुर्वळता, वर्ण का फीकापन, रोंगटे सन्हे होना, मन्दामि तथा बैठफ में खुजली, इत्यादि चिह्न होते हैं।

कृमि विशेषकर बचों के उत्पक्ष होती है. उस दशा में उन की भूल या तो विलक्ष ही जाती रहती है वा सब दिन मूल ही मूल बनी रहती है।

१-अर्थात् कोठिपिटिका (पुसी), खुचली और गरुमण्डादि से उन की विखमानता का ठीक निवय है। जाता है, क्योंकि कोठिपिटिका आदि क्रमियों से ही उत्पन्न झेटी है ॥

२-जहर, गुह, दूध, दूधी और सिरका, इन पदार्थों का सेवन करने से कप्तजन्य कृषि अकट होती हैं तथा ये कृतियां आमाश्रय मे अकट होकर तथा बढकर सब बेह में विचरती हैं ॥

३—व सात जातियां ये है—माम्त्रादा (आंतों को खानेवाली), उदरावेद्या (पेटमें किपटी रहनेवाली), हृदयादा (हृदय को खानेवाली), महाग्रह, चुर व (चिन्ता), दर्मकुसुमा (क्षाम सर्वाद कुश के फूल के समान) और सुगन्धा ॥

४--छेष्म सर्वात पीनस रोग ॥

५-केशादा, लोमविष्यसा, रोमद्वीप, बहुम्बर, सौरस और सातर, वे छः जातिया रक्तन कृमियों की है। ६-विष्ठासे वत्पन्न हुई कृमियों की-कृकेरक, सकेरक, सौसुरादा, सक्ता और लेलिहा, वे पाव जातियां है।

इन के सिवाय—पानी की अधिक प्यास, नाक का विसना, पेट में दर्द, मुख में दुर्गीन्ध, नमन, बेचैनी, अनिद्रा (नीद का न आना), गुदा में कांटे, दस्त का पतला आना, कभी दस्त में और कभी मुख के द्वारा कृमियों का गिरना, खुराक की अल्पता (कभी), नकना, नींद में दाँतों का पीसना, चौक उठना, हिचकी और खैंचातान, इस्यादि लक्षण भी इस रोग में होते है।

इस रोग में कमी र ऐसा होता है कि-उक्षणों का ठीक परिज्ञान न होने से वैद्य वा क्षाक्टर मी इस रोग का निश्चय नहीं कर सकते है।

जब यह रोग प्रवक्त हो जाता है तब हैज़ा, मिरगी और क्षिप्तचित्तता (दीवानापन) इत्यादि रोग भी इसी से उत्पन्न हो जाते हैं।

चिकित्सा—१—यदि क्रमि गोछ हों तो इन के दूर करने के लिये सेंटोनोईन सादी और अच्छी चिकित्सा है, इस के देने की विधि यह है कि एक से पांच प्रेन तक सेंटोनाईन को मिश्री के साथ में रात को देना चाहिये तथा प्रातःकाल बोड़ा सा अंडी का तेल पिलाना चाहिये, ऐसा करने से दस्त के द्वारा क्रमियां निकल जावेंगी, यदि पेट में अधिक क्रमियों की शंका हो तो एक दो दिन के बाद फिर भी इसी मकार करना चाहिये, ऐसा करने से सब क्रमियां निकल जावेंगी।

जपर कही हुई विकित्सा से बच्चे की दो तीन दिन में ५० से १०० तक कृमियां निकल जाती है।

बहुत से लोग यह समझते हैं कि—जब क्रमि की कोथली (थैली) निकल जाती है तब बच्चा मर जाता है, परन्तु यह उन का मिथ्या अम है^{*}।

१—यदि सेंटोनाईन न मिळ सके तो उस के बदले (एवज़) में बाज़ार में जो लो-झेन्लीस अर्थात् गोळ चपटी टिकियां विकती हैं उन्हें देना चाहिये, क्योंकि उन में भी सेंटोनाईन के साथ बूरा वा दूसरा मीठा पदार्थ मिला रहता है, इन में एक छुमीता यह भी है कि बच्चे इन्हें मिठाई समझ कर शीघ ही खा भी लेते है।

१-अर्थात् हैजा भौर मिरगी आदि इस रोग के उपद्रव है ॥

२-यह एक सफेद, साफ तथा बहुए खादबाठी बखु होती है तथा अंग्रेजी औपभास्त्रों में प्रायः सर्वन्न मिळती है ॥

३—रात को देने से दबा का असर रातमर में खुद हो जाता है अर्थात् कृमिया अपने स्थान को छोड़ देती हैं तथा निःसल सी हो जाती हैं तथा प्रातःकाल अण्डी के तेल का जुकाब देने से सब कृमिया शीच के मार्ग से निकल जाती हैं और अपने प्रदीप्त होती है ॥

४-क्योंकि कृमियो की कोयली के निकलने से सौर वन्ने के मरने से क्या सम्बन्ध है ॥

५-चे प्रायः सफेद रंग की होती हैं तथा सीब्गगर कोगों के पास विका करती हैं n

२-टरपेंटाईन कृमि को गिराती है इस लिये इस की चार डाम मात्रा को चार डाम अंडी के तेल, चार डाम गोंद के पानी और एक औंस सोए के पानी को मिला कर पिलाना चाहिये।

२-अनार की जड़ की छाल एक रुपये भर लेकर तथा उस का चूर्ण कर उस में से आधा प्रातःकाल तथा आधा शाम को बूरा के साथ मिला कर फंकी बनाकर लेना चाहिये।

४--वायविङ्गे दो बाल, निसोत के छाल का चूर्ण एक बाल और कपीला एक बाल, इन सब औषयों को एक औंस उकलते (उबलते) हुए जल में पाव घंटे (१५ मिनट) तक भिगा कर उस का नितरा हुआ पानी छेकर दो २ चमसे भर तीन २ घंटे के बाद दिन में दो तीन बार लेना चाहिये, इस से क्रिमि निकल जाती है, परन्तु सरण रहे कि बुखार में यह दवा नहीं छेनी चाहिये ।

५-यदि पेट में चपटी क्रिम हों तो पहिले जुलान देना चाहिये, पीछे क्यालोमेलै देना

चाहिये तथा फिर जुलाब देना चाहिये।

६-मेलर्फर के तेल की ३० वा ४० बूंदें सोंठ के जल में देनी चाहियें और चार धंदे के पीछे अंढी का तेल अथवा जुलके का जुलाव देना चाहियें।

७-यदि तांतू के समान ऋषि हों तो क्यालोंभेल तथा सेंटोनाईन के देने से वे निकल जाती है, परन्तु वे कृमियां वारंवार हो जाती हैं, इस किये निमक के पानी की, क्या-र्सियों के पानी की, अथवा छोहे के अर्क में पानी मिळा कर उस की पिचकारी गुढ़ा में मारनी चाहिये, ऐसा करने से कृमि धुरु कर निकल जाती हैं।

८--आध सेर निमक को मीठे जल में गला कर तथा उसमें से तीन वा चार औंस छेकर उस की पिचकारी गुदा में मारनी चाहिये, इस से सब क्रमियां निकल जाती है।

९-पिचकारी के लिये इस के सिवाय-चूने का पानी भी सुफीद (फायदेमन्द) है। अथवा टिकचर जाफ स्टील की पिचकारी मारनी चाहिये, यदि टिकचर आफ स्टील न मिले तो इस के बदले (एवज्) में सितान के पत्तों को बफा र्कर अथवा उन्हें पीस कर पानी निकाल लेना चाहिये तथा इस पानी की पिचकारी मारनी चाहिये, यह मी

९-केवल (अकेली) वायविद्या ही कृति रोग का बहुत अच्छा इलान है, अर्थात् इस ही के सेवन से सब कुमियां मिर जाती हैं ॥

२-मुखार में इस दवा के देने से बमन आदि की संभावना रहती है।

३-यह एक अप्रेजी ओपिष है ॥

४-मेलफ्त नामक अंप्रेजी जोषिष है यह अस्पताको में सर्वत्र मिलती है ॥

५-इस से सब कृमिया निकल पड़ती है ॥

६-कपासियों अर्थात् विनौकों के पानी की ॥

५-लोहे का अर्क अस्पतालों में बहुत मिलता है ॥

८-वफाकर संयोद् उवालकर ॥

बहुत फायदा करती है, परन्तु पिचकारी सदा मारनी चाहिये, और तीन चार दिन के वाद जुळाब देते रहना चाहिये।

१०-पळासपौपड़े की बुरकी (चूर्ण) पाव तोळा (चार आने भर) और वायवि-इंग पाव तोळा, इन दोनों को छाछ में पिछा कर दूसरे दिन जुळाव देना चाहिये।

११—बायविङ्ंग के काथ में उसी (बायविङ्ंग) का चूर्ण डाल कर पिलाना चाहिये, अथवा उसे शहद में चटाना चौहिये।

१२-पळासपापड़े को जल में पीस कर तथा उस में शहद ढाळ कर पिळाना चाहिये।

१३-नींव के पत्तों का बफाया हुआ रस शहद मिला कर पिलाना चाहिये⁸!

१४-क्रुमियों के निकल जाने के पीछे वचे की तंन्दुरुखी को सुधारने के लिये टिंक-चर आफ स्टील की दश बूंदों को एक औंस जल में मिला कर कुछ दिनों तक पिलाते रहना चाहियें।

विशोषसूचना— इस रोग में तिल का तेल, तीखे और कड़ए पदार्थ, निमक, गोमूत्र (गाय की पेशाव), शहद, हींग, अववायन, नींवू, लहप्तन और कफनाशक (कफ को नष्ट करने वाले) तथा रक्तशोधक (खून को साफ करने वाले) पदार्थ पथ्य है, तथा दूध, मांस, घी, दही, पत्तों का शाक, खट्टा तथा मीठा रस और आटे के पदार्थ, ये सब पदार्थ कुपथ्य अर्थात् क्रिमियों को बढाने वाले हैं, बिद क्रिमिवाले बच्चे को रोटी देना हो तो आटे में निमक ढाल कर तने पर तेल से तल कर देनी चाहिये, क्योंकि यह उस के लिये लामदायक (फायदेमन्द) है।

आधाशीशी का वर्णन॥

कारण—आघाशीशी का दर्द प्रायः मौओं में विशेष रहता है तथा यह (आधा-शीशी का) दर्द में केरिया की विषेठी हवा से उत्पन्न होता है और ज्वर के समान नियत समय पर शिर में प्रारम्म होता है⁶, इस रोग में आधे दिनतक प्रायः शिर में दर्द अधिक रहता है⁸, पीछे घीरे २ कम होता जाता है अर्थात् सार्यकाङ को विङकुक वंद

१-पलासपापरे की दुरकी अर्थात् डाक के बीजों का चूर्ण ॥

२-नायविडग डालकर औटाये हुए जल मे वायविडग का ही बचार देकर तैयार कर छेना चाहिये, इस के पीने से कुमिरोग और कुमिरोगजन्य सब रोग दूर हो जाते हैं॥

३-मतूरे के पत्तों का रस भी शहद बाल कर पीने से कृमिरोग नष्ट हो जाता है ॥

४-क्योंकि टिंक्चर आफ स्टील शक्तिप्रद (ताकत देनेवाली) ओपिथ है ॥

५-ज्यारह प्रकार के मस्तक रोगो (मस्तक सम्बधी रोगो) में से यह आधाशीशी नामक एक मेद है, इस को संस्कृत में अर्थावमेदक कहते हैं, इस रोग में प्राय: आषे किर में महाकठिन दर्द होता है।

६-नियत समय पर इस का प्रारम होता है तथा नियत समय पर ही इस की पीडा मिटती है ॥

७-अर्थात ज्यों २ सूर्य चहता है लों २ वह दर्द बहता जाता है तथा क्यों २ सूर्य हरुता है लों २ वह दर्द भी कम होता जाता है ॥

हों जाता है, परन्तु किसी २ के यह दर्द सन दिन रहता है तथा किसी २ समय लिक हो जाता है।

कभी २ यह आधाशीशी का रोग अजीर्ण से भी हो जाता है तथा नारंगर गर्न के रहने से, बहुत दिनों तक बच्चे को दूष पिछाने से तथा ऋतुषर्भ में अधिक खून के जाने से कमज़ोर (नाताकत) खियों के भी यह रोग हो जाता है।

लक्ष्मण—इस रोग में रोगी को अनेक कष्ट रहते हैं अर्थात् रोगी प्रातःकार से ही शिर का दर्द लिये हुए उठता है, उस से कुछ भी खाया नहीं जाता है, शिर पड़का है, नोलना चालना अच्छा नहीं लगता है, चेहरा फीका रहता है, आंख के किनारे संटु-चित होते हैं, प्रकाश का सहन नहीं होता है, पुरुक आदि देखा नहीं जाता है तथा शिर गर्भ रहता है।

चिकित्सा—१-यह रोग श्रीतल उपचारों से प्रायः शान्त हो जाता है, इस स्वि यथाशक्य (जहां तक हो सके) श्रीतल उपचार ही करने चाहियें।

२-पहिले कह चुके हैं कि-यह रोग मलेरिया की विवैशी हवा से उत्पन्न होता है, इस लिये इस रोग में किनाइन का सेवन लागदायक (कायदेगन्द) हैं, किनाइन की पांच प्रेन की मात्रा तीन २ घंटे के बाद देनी चाहिये तथा यदि दक्त की कब्ज़ी हो जे जुलान देना चाहिये।

३-होजरी, डीवेर तथा आँतों में कुछ विकार हो तो दत्त को साफ ठाने वाँडी

तथा प्रष्टिकारक दवा देनी चाहिये।

9-वर्तमान समय में वाल्यविवाह (छोटी अवस्था में शावी) के कारण िस्यों के प्रायः प्रदर रोग हो जाता है तया उस से उन का श्ररीर निर्वेठ (नाताकृत) हो जाता है और उसी निर्वेठता के कारण प्रायः उन के यह आधाशीशी का रोग भी हो जाता है, इस िलेये खियों के इस रोग की चिकित्सा करने से पूर्व यथाशक्य उन की निर्वेठता को मिटाना चाहिये, क्योंकि निर्वेठता के मिटने से यह रोग खब ही शान्त हो जावेगा।

५-पहिले कह चुके हैं कि-यह रोग शीतल उपचारों से शान्त होता है, इस लिये इस का शीतल ही इलाज करना चाहिये, क्योंकि शीतल इलाज इस रोग में शीप्त ही फायदा करता है ।

१-क्योंकि किनाइन में मकेरिया की विवैदी हवा के तथा उस से उत्पन्न हुए ज्वर सादि रोगों के दबव करने (दबा देने) की शक्ति हैं॥

२-सीवर अर्थात यक्तत, जिसे भाषा में क्लेजा कहते हैं ॥

३-क्योंकि इस रोग में दख के साफ बाते रहते से जन्दी फायदा होता है ॥ ४-क्योंकि प्रदर रोग का गुरूष कारण बोध्य सहस्था के पहुँचने से पूर्व ही पुरुवदात स्त्ता है ॥

५-क्योंकि साधाशीशी का एक कारण विकेटता सो है ॥

६—ठवेंडर अथवा कोलन बाटर में दो माग पानी मिला कर तथा उस में कपड़े की मिगा कर शिर पर रखना चाहिये, गुलावबल अथवा गुलावबल के साथ चन्दन की चिस कर अथवा उस में सांगर के सींग की चिस कर लगाना चाहिये।

७-धमोनिया अर्थात् नौसादर और चूने को धुँघाना चौहिये तथा पैरों को गर्म जल में रखना और शिर को दवाना चाहिये ।

८-मौंओं पर दो जोंकें उगानी चौहियें।

९-इस रोगी को नकछीकनी सूँघनी चाहिये तथा सूर्योदय (सूर्य निकलने) के पहिले तुलसी और घत्रे के पर्चों का रस सूँघना चाहिये।

१०-- धी में पीसे हुए सेंघे निमक को मिळा कर उसे दिन में पांच सात बार स्ंघना चाहिये, इस से आधाशीशी का दर्द अवश्य जाता रहता है।

११-इस रोग में ताज़ी जलेबी तथा ताजा खोवा (मावा) खाना चाँहिये ।

१२-नींब पर की गिलोब का हिम पीने से भी इस रोग में नहुत फायदा होता है।

उपदंश (गर्मी), चाँदी, टांकी, का वर्णन ॥

चाँदी का रोग वहुषा मनुष्य के वेक्यागमन (रंडीवाजी के करने) से होता है, तात्पर्य (मतल्ब) यह है कि—सामाविक अर्थात् कुदरती नियम के अनुसार न चल कर उस का भंग करने से दुरे कार्य की यह जन्म भर के लिये सन्मा मिल जाती है।

जिस प्रकार यह रोग पुरुष के होता है उसी प्रकार स्त्री के भी होता है।

चाँदी एक मकार का चेपी रोग है, अर्थात् चाँदी की रसी (पीप) का चेप यदि किसी के छग जावे वा छगाया जावे तो उस के भी चाँदी उत्पन्न हो जाती है।

पहिले चाँदी और झुज़ल, इन दोनों रोगों को एक ही समझा जाता या परन्तु अव यह बात नहीं मानी जाती है, अर्थात् बुद्धिमानों ने अब यह निश्चय किया है कि—चाँदी भीर झुज़ाल, ये दोनों अलग २ रोग है, क्योंकि झुज़ल के चेप से झुज़ाल ही उत्पन्न होता है और चाँदी के चेप से चाँदी ही उत्पन्न होती हैं, इस लिये इन दोनों को

१-इस के छुँघाने से मगज में से निष्कृत (निकारयुक्त) जरू नासिका के द्वारा निकल जाता है, अतः यह रोग मिट जाता है ॥

२--पैरों को गर्स जल में रखने से पानी की गर्मी नाही के द्वारा मगज में पहुँच कर बायु का शमन कर देती है, जिस से रोगी को फायदा पहुँचता है ॥

१-क्योंकि जोंकों के ज्याने से ने (जोंके) मीतरी निकार को चूस केती हैं, जिस से रोग मिट आता है।

४-ऐसा करने से मगज़ में शक्ति के पहुँचने से यह रोग मिट जाता है ॥

५-जीर नॉदी तथा ग्रजास के सहम में तथा सहायों से बहुत सेद है ॥

अलम २ ही मानना ठीक है, तात्पर्य यह है कि वास्तव में ये दो प्रकार के रोग अनावार (वदचलनी) से होते हैं।

चाँदी दो प्रकार की होती है-मृद और कठिन, इन में से मृद चाँदी उसे कहते हैं कि जो इन्द्रिय के जिस साग में होती है उसी जगह-अपना असर करती है अर्थात उस माग के सिवाय शरीर के दूसरे भागपर उस का कुछ भी असर नहीं माद्धम होता है'. हां इस में यह बात तो अवस्य होती है कि-जिस जगहपर यह चाँदी हुई हो वहां से इस की रसी छेकर यदि उसी आदमी के शरीरपर दसरी जगह छगाई जाने तो उस जगहपर भी वैसी ही चाँदी पड़ जाती है।

दसरे प्रकार की कठिन (कड़ी वा सख्त) चाँदी वह होती है जिस का असर सब शरीर के ऊपर माख्स होता है , इस में यह बड़ी भारी विशेषता (ख़ासियत) है कि इस (दसरे प्रकार की) चाँदी का चेप लेकर बढ़ि उसी आदमी के शरीरपर दूसरी जगह लगाया जाने तो उस जगहपर उस का कुछ मी असर नहीं होता है³, इस कठिन चाँदी को तीक्ष्ण गर्भी अर्थात् उपदंश का भयंकर रोग समझना चाहिये, क्योंकि इस के होने से मनुष्य के शरीर को बड़ी हानि पहुँचती है, परन्तु नरम चॉदी में विशेष हानि की सम्मावना नहीं रहती है, इस के सिवाय नरम चाँदी के साथ यदि बदगांठ होती है तो वह प्रायः पकती है और फूटती है परन्तु कठिन—चाँदी के साथ जो बदगाँठ होती है वह पकती नहीं है, किन्तु बहुत दिनोंतक कड़ी और सूची हुई रहती है, इस प्रकार से वे दो तरह की चॉदी भिन्न २ होती है और इन का परिणाम (फरू) भी भिन्न २ होता है, इस लिये यह बहुत आवश्यक (जरूरी) बात है कि-इन दोनों को अच्छे प्रकार पहिचान कर इन की योग्य (उचित) चिकित्सा करनी चाहिये ।

नरम टांकी (साफ्ट शांकर) - यह रोग प्रायः की के साथ सम्भोग करते समय इन्द्रिय के भाग के छिल जाने से तथा पूर्वीक (पहिले कहे हुए) रोग के चेप के क्रगने से होता है, यह चाँदी पायः दूसरे ही दिन अपना दिखान देती है (दीस पढ़ती है) अथवा पांच सात दिन के भीतर इस का उद्भव (उत्पत्ति) होता है ।

यह (टांकी) फूछ (सुपारी अर्थात् इन्द्रिय के अग्रिम माग) के ऊपर पिछले गहें में

१-अर्थात यह शरीर के अन्य मार्गों में नहीं फूटती है ॥

२-अर्थात् इस चोंदी के असर से सब शरीरपर कुछ न कुछ निकार (फुसी, दरोडे, चकत्ती और चांदी आदि) अवस्य होता है ॥

३-अर्थात् इस की रसी लगाने से बूसरे स्थानपर नॉदी नहीं पड़ती है ॥

४-क्योंकि यह कौन से प्रकार की चाँदी है इस वात का निवाय कियेविना चिकित्सा करने से व केवल चिकित्सा ही व्यथं चाती है प्रखुत (किन्तु) उन्हों हानि हो जाती है ॥

५-साफ्ट अर्थात् जुलायम ना नरम ॥

चमड़ीपर होती है, इस रोग में यह भी होता है कि आसपास नेप के लगने से एक में से दो नार नाँदियां पड़ जाती है, नांदी गोल आकार (शकल) की तथा कुल गहरी होती है, उस के नीने का तथा किनारे का माग नरम होता है, उस की सपाटी के जपर सफेद मरा हुआ (निर्जीव) मांस होता है तथा उस में से पुष्कल (बहुतसी) रसी निकलती है।

कभी २ ऐसा भी होता है कि—चमड़ी फूल के ऊपर चढी रहती हैं और फूलपर सूजन के हो जाने से चमड़ी नीचे को नहीं उत्तर सकती है परन्तु कई बार चमड़ी के नीचे को उत्तर जाने के पीछे चाँदी की रसी मीतर रह जाती है इस लिये मीतर का माग तथा चमड़ी सूज जाती है और चमड़ी सुपारी के ऊपर नहीं चढती है, ऐसे समय में मीतर की चाँदी का जो कुछ हाल होता है उस को नज़र से नहीं देख सकते हैं।

कभी २ सुपारी के भीतर मूत्रमार्ग में (पेशाव के रास्ते में) चाँदी पढ़ जाती है तथा कभी २ यह चाँदी जब जोर में होती हैं, उस समय जासपास की जगह खजती जाती हैं तथा वह फैळती जाती है, उस को असरयुक्तें टांकी (फाग़ेडीना) कहते हैं, इस चाँदी के साथ बदगांट भी होती है तथा वह पककर फूटती है, जिस जगह बद होती है उस जगह गड़ा पड़ जाता है जौर वह जल्दी अच्छा भी नहीं होता हैं, कभी २ इस चाँदी का इतना जोर होता है कि इन्द्रिय का बहुत सा माग एका एक (अचानक) सड़ कर गिर जाता है, इस प्रकार कभी २ तो सम्पूर्ण इन्द्रिय का ही नाश हो जाता है, उस के साथ रोगी को ज्वर भी आ जाता है तथा बहुत दिनोंतक उसे अतिकष्ट उठाना पड़ता है, इस को सड़नेवाळी चाँदी (स्ळफीग) कहते है, ऐसी असरयुक्त और सड़ने- बाळी टांकी प्रायः निर्वेळ (कमबोर) और दु:खपद (दु:ख देनीवाळी) खिति (हाळत) के मनुष्य के होती है।

कमी २ ऐसा भी होता है कि—नरम अथवा सादी चाँदी मूल से तो नरमैं होती है परन्तु पीछे कही २ किन्ही २ दूसरे क्षोमक (क्षोम अर्थात् जोश दिलानेबाले) कारणों से किटन हो जाती है तथा कही २ नरम और कठिन दोनों अकार की चाँदी साथ में ही एक ही सान में होती है, किन्हीं पुरुषों के इन्द्रिय के कपर सादी फुंसी और चाँदी होती

१-सर्थात् पूछ का भाग खुळा रह जाता है।।

२-अर्थात् तीक्ण वा वेगयुक्त होती है ॥

³⁻खनती जाती है अर्थात निकम्मी पडती जाती है ॥

४-प्रसर्युक्त अर्थात् फैलनेवाली ॥

५-अर्थात् वह गड्डा बहुत कठिनता से बहुत समय में तथा अनेक क्लों के करनेपर मिटता है ॥

६-नरम अर्थात् मन्द् वेगवाळी ॥

७-क्षोयक कारणों से अर्थात् उंस में वेग वा तीक्ष्यता को उत्पन्न करनेवाले कारणों से ॥

चाँदी के साथ में जो वद होती है उस के होने का कारण यही है कि वद उस कर (चाँदी) का ही विष है और टांकी के होने का मूळ कारण प्रत्येक व्यक्ति का विश्विष्ट विष है, यह विष शोषण निक्यों के मार्ग से वंक्षण (अंड कोश) के मीतरी पिण्ड में पहुँचता है, उस विष के पहुँचने से उस मागका शोध हो जाता है और वही शोध वड़ी गांठ के रूप में हो जाता है।

कठिन चाँदी का विष रुषिर के मार्ग से सब श्ररीर में फैळ जाता है परन्तु मृदु (नरम) चाँदी का विष केवळ उक्त पिण्ड तक ही पहुँचता है अर्थात् सब शरीर में नहीं फैळता है।

चिकित्सा—१-वद के आरंस में रोगी को चळने फिरने का निषेष करना चाहिये, अर्थात् उसे अधिक चळने फिरने नहीं देना चौहिये, गर्म पानी का सेक करना चाहिये तथा उस पर वेळाडोना, आयोडीन टिंकचर, अथवा ळीनीमेंट ळगाना चाहिये तथा आवर्यकता के अनुसार जोंकें ळगानी चाहियें।

२-नींव के पत्तों को चफाकर वांचना चाहिये, अथवा सिन्दूर तथा रेवतचीनी का शीरा बांघना चाहिये।

३-चूने और गुड़ को पानी में बांट कर (पीसकर) उस का छेप करना चाहिये।

४-जब बद पक्तेपर आवे तब उसपर बारंबार अलसी की पोल्टिस बांघनी चौहिये, पीछे उस को शक्त से फोड़ देना चाहिये, अथवा उस के शिखर (ऊपरी शाग) को कास्टिक पोटास लगा कर फोड़ देना चाहिये तथा फूटने के बाद उस के ऊपर मल्हम-पट्टी लगानी चाहिये।

५-कमी २ ऐसा भी होता है कि-उस का मोटा तथा गहरा क्षत पढ़ जाता है और उस पर चमड़ी की मोटी कोर छटक जाती है परन्तु उस में दर्द नहीं होता है, जब कभी ऐसा हो तो उस चमड़ी की मोटी कोर को निकाल डालना चाहिये तथा उस पर व्यालो- मेळ और आयोडोफार्म बुरकाना चाहिये तथा रेड मेसी पीटेट का मल्हम लगाना चाहिये खयवा रसकपूर का पानी लगाना चाहिये।

६-कठिन चाँदी के साथ मूढ बद होती है अर्थात् वह न तो पकती है और न बहे अधिक दर्द करती है, वह बद इन ऊपर कहे हुए उपचारों (उपायों) से अच्छी नहीं हो

१-प्रहोक व्यक्ति का विशिष्ट निष अर्थात् खुदी २ तासीरवाळे हर एक पुरुष वा जी का विशेष प्रकार का विष अर्थात् चेपी रोग को उत्पन्न करनेवाळा एक खास प्रकार का वहरीळा असर ॥

२-न्योंकि चलने फिरने से बद की गाठ खोर पकड़ती है और जोर पकड लेनेपर सर्थात, कठिन रूप धारण कर लेनेपर उस का अच्छा होना दुस्तर हो जाता है ॥

३--अल्सी की पोल्टिस के बाधने से वह अच्छी तरह से पक जाती है और खुव पक जाने के बाद शक्त आदि से फोड़ देने से उस्क्र...का भीतरी सब मवाद (रसी) निकल बाता है तथा दर्द कम पह र जाता है।। ---

सकती है किन्तु वह तो उपदंश (गर्मी) के शारीरिक (शरीरसम्बन्धी) उपायों के साथ दूर हो सकती है ॥

कठिन तथा मृदु चाँदी के भेदों का वर्णन ॥

संख्या।। मृदु चाँदी के भेद ।।

- १ मलीन मैथुन करने के पीछे एक दो दिन में अथवा एक सप्ताह (इफ्ते) में दीखती है।
- प्रारंग में छोल अथवा चीरा होकर
 पीछे अत का रूप धारण करता है।
- दबाकर देखने से तळमाग में नरम
 ळगती है।
- श्वत की कोर तथा सपाटी बैठी हुई होती है, उसपर चृत नांस का थर होता है और उस में से तीव और गाडा पीप निकळता है।
- ५ बहुषा एक में बहुत से क्षत होते है।
- इ. श्रांत का चेप उसी मनुष्य के श्वरीर-पर दूसरी जिस २ जगह छम जाता है वहां २ वैसा ही चृदु क्षेत पड़ जाता है।
- एक सथवा दोनों वंखेंणों में बद होती है तथा वह प्रायः पकती है।
- इसं क्षत में विशेष पीड़ा और श्लीय होता है तथा प्रसर (फैलाव) करने-वाले और सड़नेवाले क्षत का उद्भव (उत्पत्ति) होता है और उस के स्त्वने में विलम्ब लगता है।

संख्या।। कठिन चाँदी के भेद।।

- मलीन मैथुन करने के पिछे एक से लेकर तीन अठवाड़ों में दील प-इती है।
- र प्रारम्भ में फ़ुनसी होकर फिर वह फ़ुट कर क्षत (बाब) पड़ जाता है।
- क्षत प्रारंग से ही तल्भाग में कठिन होता है।
- श्वत छोटा होता है, कीर बाहर की निकलती हुई होती है तथा सपाटी लाल होती है और उस में से पतली रसी निकलती है।
- ५ वहुषा एक ही सत होता है।
- ६ सत का चेप उसी मनुष्य के श्वरीर-पर दूसरी जिस २ जगह छग जाता है वहां २ दूसरा कठिन क्षैत नहीं होता है।
- एक तरफ अथना दोनों तरफ नद होती है उस में दर्द कम होता है और वह प्रायः पकती नहीं है।
- इस क्षत में पीड़ा तथा शोथ नहीं होता है तथा इस में प्रसर (फैलाव) करनेवाला और सड़नेवाला क्षत कचित (कहीं २) ही पैदा होता है और वह जल्दी ही सुख जाता है।

३-कटिन क्षत अर्थात् तीक्ण चाँदी ॥

19521

86

१-मृदु क्षत अर्थात् नरम चाँदी ॥

२-मंझणों अर्थात् अण्डकोशों में अवना उन के अति समीपनत्तीं मूर्य में शक्क बान कर

इस क्षत का असर खानिक है अर्थात्
 उसी जगहपर इस का असर होता है
 किन्तु वद के स्थान के सिवाय शरीर पर दूसरी जगह असर नहीं होता है॥

९ इस क्षत के होने के पीछे थोड़े समय में इस का दूसरा चिह्न शरीर के ऊपर माळम होने लगता है ॥

इस रीति से दोनों प्रकार की चाँदियों के भिन्न २ चिह्न ऊपर के कोष्ठ से माल्य हो सकते हैं और इंन चिह्नों से बहुषा इन दोनों का निश्चय होना सुगम है' परन्तु कभी २ जब क्षत की दुईशा होने के पीछे ये चिह्न देखने में आते हैं तब उन का निर्णय होना कठिन पढ़ जाता है'।

कभी २ किसी दशा में शिश्नें के ऊपर कठिन और नरम दोनों प्रकार की चाँदियां साथ में ही होती हैं और कभी २ ऐसा होता है कि द्वितीय चिह्न के समय के आने से पूर्व चाँदी के भेद का निश्चय नहीं हो सकता है ।।

कित टांकी (हाँ दें शांकर) — किठन टांकी के होने के पीछे शरीर के दूसरे भागोंपर गर्मी का असर माख्य होने लगता है, जिस मकार नरम टांकी स्नीसंसर्ग के होने के पीछे शीघ ही एक वा दो दिन में दीखने लगती है उस मकार यह किठन टांकी नहीं दीखती है किन्तु इस में तो यह कम होता है कि बहुधा इस में चार पांच दिन में अथवा एक अठवाड़े से लेकर तीन अठवाडों के मीतर एक बाँरीक फुंसी होती है और धह फूट जाती है तथा उस की चाँदी पड़ जाती है, इस चांदी में से मायः गाडा पीप महीं निकलता है किन्तु पानी के समान थोड़ी सी रसी जाती है, इस टांकी का ग्रस्थ गुण यह है कि-इस को दवा कर देखने से इस का तलमाग किठन माख्य होता है, किठन इस तलमाग के द्वारा ही यह निश्चय, कर लिया जाता है कि गर्मी के विषने शरीर में मवेश कर लिया है, यह टांकी बहुधा एक ही होती है तथा इस के साथ में एक अथवा

९-अर्थीत् छपर छिखे हुए प्रयक्त् २ चिन्हों से दोनों प्रकार की चॉदी सहज में ही पहिचान की

२-मर्योंकि क्षत के विगड़ जाने के बाद मिश्रितवत् हो जाने के कारण निहों का ठीक पता नहीं रूगता है।

३-शिश्र अर्थात् युखेन्द्रिय् (लिइ)।।

४-अर्थात् यह नहीं माछम होता है कि यह कीन से प्रकार की चाँदी है ॥

५-हार्ड अर्थात् कठिन वा सख्से ॥

६—अर्थात् शरीर के अन्य मार्गोपर भी गर्भी का कुछ न कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है ॥

७-वारीक अर्थात् वहुत छोटीसी ॥

८-अर्थात् वॉदी:के नीचे का भाग सस्त प्रघीत होता है ॥

६-विश्वाक न्या करना में कठिन होने से यह निषय हो जाता है कि इसका उनाड़ (नेगपूर्वक ६-विश्वाक न्या सक्तमां के कठिन होने से यह निषय हो जाता है कि इसका उनाड़ (नेगपूर्वक इंटेना) कठिनता के साथ उठनेबुक्त हैं

दोनों वंक्षणों में वद हो जाती है अर्थात् एक व्यथा दो मोटी गांठें हो जाती हैं परन्तु उस में दर्द थोड़ा होता है और वह पकती नहीं है, परन्तु यदि वद होने के पिछे बहुत चला फिरा जाने अथवा पैरों से किसी दूसरे अकार का परिश्रम करना पड़े तो कदाचित् यह गांठ भी पक जाती है ।

चिकित्सा—१-इस चाँदी के ऊपर आयोडोफार्म, क्याळोमेळ, रसकपूर का पानी-अथवा लाल मल्हम चुपडना चाहिये, ऐसा करने से टांकी श्रीष्ठ ही मिट जावेगी, यद्यपि इस टांकी के मिटाने में विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता है परन्तु इस टांकी से जो अरीरपर गर्मी हो जाती है तथा खून में विगाड़ हो जाता है उस का यथोचित (ठीक २) उपाय करने की बहुत ही आवश्यकता पड़ती है अर्थात् उस के लिये विशेष परिश्रम करना पड़ता है ।

२—रसकपूर, मुरदासींग, कत्था, झंखजीरा और माजूफल, इन प्रत्येक का एक एक तोला, त्रिफले की राख दो तोले तथा घोया हुआ घुतें दश तोले, इन सब दबाइयों की मिला कर चॉदी तथा उपदंश के दूसरे किसी क्षत पर लगाने से वह मिट जाता है।

३-त्रिफले की राख को घृत में मिला कर तथा उस में थोडा सा मोरथोथा पीस कर मिला कर चाँदी पर लगाना चाहिये।

४—ऊपर कहे हुए ढोनो नुसलों में से चाहे जिस की काम में लाना चाहिये परन्तु यह सरण रहे कि —पहिले त्रिफले के तथा नींव के पत्तों के जल से चाँची को घो कर फिर उस पर दवा को लगाना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने में जल्दी आराम होता है।

गर्मी द्वितीयोपदंश (सीफीलीस) का वर्णन ॥

फिटन चाँदी के दीखने के पीछे बहुत समय के बाद शरीर के कई आगों पर जिस का असर माल्झ होता है उस को गर्मी कहते है।

यद्यपि यह रोग मुख्यतया (सासकर) व्यमिचार से ही होता है परन्तु कभी २ यह किसी दूसरे कारण से भी हो जाता है, जैसे—इसका चेप छग जाने से भी यह रोग हो जाता है, क्योंकि प्रायः देखागया है कि—गर्मीवाले रोगी के शरीरपर किसी माग के काटने आदि का काम करते हुए किसी २ डाक्टर के भी जलग होगया है और उस के

१-तारपर्य यह है कि वह गाँठ विना कारण नहीं पकती है ॥

२-क्यांकि यह मृद् होती है ॥

३-उस रक्तविकार आदि की चिकित्सा किसी कुणल वैद्य वा डाक्टर से करानी चाहिये॥

४- इत के धोने का नियम प्राय सा वार का है, हा फिर यह भी है कि वितनी ही वार अधिक घोया जावे उतना ही वह लामदायक होता है ॥

चेप के प्रविष्ट (दाखिल) हो जाने से उस जखम के स्थान में टांकी पड़गई है और पीछे से उस के शरीर में भी गर्मी फूट निकली हैं, यह तो बहुत से लोगों ने देखा ही होगा कि—शीतला का टीका लगाते समय उस की गर्मी का चेप एक बालक से दूसरे बालक के लग जाता है, इस से सिद्ध है कि—यदि गर्मीवाला लड़का नीरोग धाय का भी दूध पीने तो उस धाय के भी गर्मीका रोग हो जाता है तथा गर्मीवाली घाय हो और लड़का नीरोग भी हो तो भी उस धाय का दूध पीने से उस लड़के के भी गर्मीका रोग हो जाता है, तात्पर्य यह है कि—इस रीति से इस गर्मी देवी की प्रसादी एक दूसरे के द्वारा बँटती हैं।

गर्मी का रोग प्रायः बारसा में जाता है³, इस तरह—ज्यमिचार, रोगी के रुघिर के रस का चेप और बारसा से यह रोग होता हे³।

यद्यपि यह बात तो निर्विवाद है कि कठिन बाँदी के होने के पीछे शरीर की गर्मी प्रकट होती है परन्तु कई एक डाक्टरों के देखने में यह भी आता है कि टांकी के नरम हो जाने तक अर्थात् टांकी के होने के पीछे उस के मिटने तक उस के आस पास और तलमाग में कुछ भी कठिनता न माख्स देने पर भी उस नरम टांकी के होने के पीछे कभी २ शरीर पर गर्मी प्रकट होने लगती है।

कठिन चाँदी की यह तासीर है कि जब से वह टांकी उत्पन्न होती है उसी समय से उस का तल भाग तथा कोर (किनारे का भाग) कठिन होती है, इस के समान दूसरा कोई भी घान नहीं होता है अर्थात् सब ही घान प्रथम से ही नरम होते हैं, हां वह दूसरी बात है कि—दूसरे घानों को छेड़ने से वे कदाचित् कुछ कठिन हो जाने परन्तु मूळ से ही (प्रारंभ से ही) वे कठिन नहीं होते हैं॥

इस दो प्रकार की (मृद्ध और कठिन) चाँदी के सिवाय एक प्रकार की चाँदी और भी होती है जिस में उक्त दोनों प्रकार की चाँदियों का गुण मिश्रित (मिल हुआ) होता हैं, अर्थात् यह तीसरे प्रकार की चाँदी व्यमिचार के पीछे शीष्ठ ही दिखलाई देती है और उस में से रसी निकलती है तथा थोड़े दिनों के बाद वह कठिन हो जाती है और आखिरकार शरीर पर गर्भी दिखलाई देने लगती है॥

कई बार तो इस मिश्रित (मृदु और किठिन) टांकी के चिह्न स्पष्ट (साफ) होते हैं

^{9—}तात्पर्य यह है कि यह रोग सद्भामक है, इस छिये संसर्ग मात्र से ही एक से दूसरे में जाता है ॥ २—अर्थात् यह रोग गर्भ में मी पहुंच कर गठक की उत्पत्ति के साथ ही उत्पन्न हो जाता है ॥

२—अयात् यह राग वस मा ना पश्चम कर पाठक का वरासर के वाप स्व उत्सार के हैं ॥ ३—तात्पर्य यह है कि उक्त व्यक्तिचार आदि तीन कारण इस रोग की उत्सत्ति के हैं ॥

४--विविवाद अर्थात् असमादि प्रमाणों के द्वारा अनुमन से सिद्ध ॥

५-अर्थात् इस तीसरे प्रकार की चॉदी में दोनों प्रकार की चॉदी के चिह सिले हुए होते हैं।

६-मृदु और कठिन अर्थात् उभयसक्य ॥

और उन के द्वारा यह बात सहब में ही माख्म हो सकती है कि उसका आखिरी परिणाम कैसा होगां, ऐसी दशा में परीक्षा करनेवाले वैद्यं ने रोगी को अपना स्पष्ट विचार प्रकट कर सकते हैं, परन्तु कमी २ इस के परिवर्तन (फेरफार) को समझना अच्छे २ परीक्षककों (परीक्षा करने वालों) को भी कठिन हो जाता है, ऐसी दशा में पीछे से गमीं के निकलने वा न निकलने के विषय में भी ठीक २ निर्णय नहीं हो सकता है, तास्प्य यह है कि इस मिश्रित टांकी का ठीक २ निर्णय कर लेना बहुत ही दुद्धिमत्ता (अक्कमन्दी) तथा पूरे अनुमव का कार्य है, क्योंकि देखों! यदि गमीं निकलेगी इस वात का निश्चय पहिले ही से ठीक २ हो जावे तो उस का उपाय जितनी जल्दी हो उतना ही रोगी को विशेष लामकारी (फायदेमन्द) हो सकता है।

कटिन टांकी के होने के पीछे चार से छेकर छःससाह (हफ्ते) के पीछे अथवा आठ ससाह के पीछे शरीर पर द्वितीय उपदंश का असर माछम होने छगता है, गर्मी के मारंभ से छेकर अन्त तक जो २ छक्षण माछम होते हैं उन के पायः तीन विभाग किये गये हैं = इन तीनों विभागों में से पहिछे विभाग में केवछ आरंभ में जो टांकी उत्पन्न होती है तथा उस के साथ जो वद होती है इस का समावेश होता है में, इस को प्राथमिक उपदंश, कठिन चांदी अथवा अत कहते हैं।

दूसरे विमाग में टांकी के होने के पीछे जो दो तीन मास के अन्दर शरीर की त्वचा (चमड़ी) और मुख आदि में छाछे हो जाते है, ऑख; सन्धिस्थान (जोड़ों की जगह) तथा हाड़ों में दर्द होने छगता है और वह (दर्द) दो चार अथवा कई वर्ष तक बना रहता है, इस सर्व विषय का समावेश होता है इस को सावदिहिक (सब शरीर में होने-वाला) अथवा द्वितीयोपदंश कहते है।

तीसरे विमाग में उन चिह्नों का समावेश होता है कि जो चिह्न सर्व गर्मी के रोग बालों के मकट नहीं होते है किन्तु किन्हीं र के ही मकट होते है तथा उन का असर मायः छाती और पेट के मीतरी अवयवों पर ही होता है, बहुत से लोग इस तीसरे विमाग के चिह्नों को दूसरे ही विमाग में गिन लेते है अर्थात् वे लोग दो ही विमागों में उपदंश रोग का समावेश करते हैं

१-क्योंकि इस के स्पष्ट विडों के द्वारा उस पहिंछे कही हुई दोनो अकार की (सृदु और कठिन) चॉदी के परिणाम के अनुभव से इस का भी परिणाम जान किया जाता है ॥

२-अर्थात् वैद्यजन रोगी को भी इस रोग का मावी परिणाम वतला सकते हैं ॥

३-तीन विमाग किये गये हैं अर्थात् तीन दर्जे बंधि गये है ॥

४-अर्थात् टॉकी की उत्पत्ति और बद का होना प्रथम दर्जा है ॥

५-प्राथमिक उपद्वा अर्थात् पूर्वस्वरूप से युक्त उपदश्च ॥

६-अर्थात् उत्पत्ति से छेकर तीन मास तक की सर्व व्यवस्था दूसरा दर्जी है ॥

७-द्वितीयोपदश अर्थात् दूसरे सहस्य से युक्त उपदश ॥

८-अर्थात् वे उपद्वा के दो ही दर्जे मानते हैं ॥

जब द्वितीयोपंदंश के चिह्नों का प्रारंग होता है उस समय बहुधा टांकी तो यहाप मुझीई हुई होती है तथापि उस स्थान में कुछ माग कठिन अवस्य होता है, यह भी सम्मव है कि-रोगी पूर्व के चिहों को मूळ जाता होगा परन्त वहत शीव (थोडे ही समय में) अंग में थोड़ा वहुत ज्वर आजाता है, गळा आ गया हो पेसा प्रतीत (माहर) होनें छगता है तथा उस में थोड़ा बहुत दर्द भी माख्स होता है, यदि सुख को खोड़ का देखा जावे तो गर्छ का द्वार, पड़त, जीम तथा गर्छ का पिछला भाग कुछ सुवा हुया तथा छाछ रंग का माछम होता है, तात्पर्य यह है कि-बहुपा इसी कम से दूसरे विमाग के चिंहों का प्रारंभ होता है रे. परन्त कभी २ ऐसा भी होता है कि ज्वर थोड़ा सा आता है तथा गठा भी थोड़ा ही जाता है, उस दशा में रोगी उस पर कुछ ध्यान भी नहीं देता है⁸ परन्तु इस के पश्चात् अर्थात् कुछ आगे वढ़ कर उपदंश का विभिन्न (विचित्र) प्रकार का दर्द उत्पन्न हो जाता है और जिस का कोई भी ठीक कम नहीं होता है" अर्थात किसी के पहिले आँख का दर्द उत्पन्न होता है, किसी की सन्धियां नकड़ जाती हैं, किसी के हाड़ों में दर्द उत्पन्न हो जाता है तथा किसी को पहिले त्वचा की गर्मी माल्स होती है इत्यादि, इस के सिवाय इस विमार्ग के चिह्न वहुया दोनों तरफै समान ही देखे जाते हैं. जैसे कि-दोनों हथेलियों में चटें हो जाती है. अथवा होनों तरफ के हाइ तथा सन्धियां एक साथ ऊपर को उठ जाती है।

यह गर्मी का रोग श्ररीर के किसी विशेष माग का रोग नहीं है किन्तु यह रोग रक (खून) के विकार (विगाड़) से उत्पन्न होता है, इस लिये शरीर के हरएक माग में इस का असर होता है, फिर देखों! जिस को यह रोग हो चुकता है वह आदमी बहुशा निर्वेष्ठ फीका और तेजहीन हो जाता है इस का कारण भी ऊपर कहा हुआ ही जानना चौंहिये।

इस रोग में जैसी टांकी मथम होती है उसी के परिमाण के अनुसार जारीर की गर्मी मकट होती है, इस लिये जिस रोगी के पहिले ही टांकी मोटी, बहुत कठिन तथा प्रसर

1

१-गला भा गया हो अर्थात् गले में छाले पड़ गये हों ॥

२-अर्थात् दूसरे दर्जे के चिहाँ का उद्भव ज्वरादि पूर्वक होता है ॥

३-अर्थात् रोगी को इस बात का घ्यान नहीं होता है कि आगे वह कर बूसरे दर्जे के निह मेरे शरीर पर पूर्णतया आक्रमण करेंगे ॥

४-अर्थात् ज्वरादिका कम जो ऊपर लिखा है वह ठीक रीति से नहीं होता है सर्थात् उस मे व्यक्तिकम हो जाता है ॥

५-इस विभाग के अर्थात् दूसरे दर्जे के ॥

६-दोनों तरफ अर्थात् शरीर के दाहिने और वार्वे तरफ ॥

७-अर्थात् सून में निगाद हो जाने से इस रोग के बढ़े जानेपर भी सजुष्य में क्ल, तेज और कान्ति आदि ग्रण उत्पन्न नहीं होते हैं ॥

यक्त (फैलती हुई) माद्यम होती है उस रोगी के पीछे से गर्मी के चिह भी वेग के साथ में उठते है। (प्रश्न) जिस आदमी के एक बार उपदंश का रोग हो जाता है वह रोग पीछे समूल (मूल के साथ) बाता है अथवा नहीं बाता है । (उत्तर) निस्सन्देह यह एक महत्व (दीर्घविशता) का प्रश्न है, इस का उत्तर केवल यही है कि यदि मुख (मुख्य) टांकी साधारण वर्ग की हुई हों तथा उस का उपाय अच्छे प्रकार से और शीघ • ही किया जावे तथा आदमी भी दृढ शारीर का हो तो इस रोग के समूल नष्ट हो जाने का सम्भव होता है, परन्त बहुत से छोगों का तो यह रोग अन्तसमय तक भी पीछा नहीं छोड़ता है, इस का कारण केवल-रोग का कठिन होना. शीव और योग्य उपाय का न होना तथा शरीर की दुर्वळता ही समझना चाहिये, यद्यपि औषघ. उपाय तथा परहेज से रहने से यह रोग कम हो जाता है तथा कुछ कालतक दील भी नहीं पहता है तथापि जिस प्रकार विल्ली चुहे की ताक (घात) लगाये हुए बैठी रहती है उसी प्रकार एक वार हो जाने के पीछे यह रोग भी आदमी के शरीरपर घात छगाये ही रहता है अर्थात इस का कोई न कोई लक्षण अनेक समयों में दिखाई दिया करता है और जब किसी कारण से शरीर में निर्वलता वढ जाती है त्यों ही यह रोग अपना जोर दिखलता है। (प्रश्न) ·आप पहिले यह कह ज़के है कि यह रोग चेप से होता है तथा वारसा में जाता है, परन्तु इस में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस रोगवाले आदमी को स्त्रीसंग करना चाहिये वा नहीं करना चाहिये⁸ (उत्तर) जनतक टांकी हो तनतक तो कदापि स्त्रीसंग नहीं करना चाहिये, किन्तु जब यह रोग योग्य उपचारों (उपायों) के द्वारा शान्त हो जावे तब (रोग की शान्ति के पीछे) स्त्रीसंग करने में हानि नहीं है 3, इस के सिवाय इस बात का भी स्मरण रखना चाहिये कि-बहुधा ऐसा भी होता है कि स्त्री अथवा प्ररुप को जब यह रोग होता है और उन के संयोग से गर्भ रहता है तब वह गर्भ पूर्ण अवस्था को प्राप्त नहीं होता है किन्तु चार वा पांच महीने में उस का पात (पतन) हो जाता है, इस लिये

१-क्योंकि वहुतों के मुख से यह पुना है कि वह रोग मूळसहित कभी नहीं जाता है परन्तु बहुत से मनुष्यों को रोग हो ज़ुकने के बाद भी विरुक्त नीरोग के समान देखा है अतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है, क्योंकि इस विषय में सन्देह हैं॥

२-नर्योंकि यदि वह पुरुष कारणिवशेष के विना ऋतुकाल में भी खद्मीसंग न करें तो उसे दोव क्षमता है (देखों मनु सादि प्रन्यों को) और यदि खीसंग करें तो चेप के द्वारा झी के भी इस रोग के हो जाने की सम्मावना है, क्योंकि साप भी प्रथम कह चुके हैं कि-यह रोग समूल तो किसी ही का जाता है।

३--तात्पर्य यह-है कि रोगदशा में झीसग कमी नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से दोनों को ही हानि पहुँचती है किन्तु जब योग्य चिकित्सा आदि उपायों से रोग विख्कुल शान्त हो जाने अर्थात् याँदी आदि कुछ मी विकार न रहे उस समय झीसँग फरना चाहिये, ऐसी दला में झी के इस रोग के सकमण की सम्मानना प्रायः नहीं रहती है, क्योंकि रसी निकलने आदि की दशा में उस का चेंग लगने से इस रोग की उत्पत्ति का पूरा निश्चय शेता है अन्यया नहीं।

यह बहुत ही आवश्यक (जरूरी) वात है कि जिस स्त्री अथवा जिस पुरुष के यह रोग हो उस को चाहिये कि प्रथम अच्छे प्रकार से इस रोग की चिकित्सा करा हे, पीछे संयोग करे, क्योंकि ऐसा करने से संयोगद्वारा स्थित हुए गर्भ में हानि नहीं पहुँचती है।

(प्रश्न) जिस पुरुष के उपदंश रोग हो जुका है वह पुरुष यदि विवाह करने की सम्मित मांगे तो उसे विवाह करने की सम्मित देनी चाहिये अथवा नहीं देनी चाहिये! (उत्तर) इस विषय में सम्मित देने से पूर्व कई एक बार्त विचारणीय (विचार करने- योग्य) हैं, क्योंकि देखो! प्रथम तो उपदंश की व्याघि एक वार होने के पीछे शरीर में से समूख नष्ट होती है अथवा नहीं होती है इस विषय में यद्यपि पूरा सन्देह रहता है तथापि योग्य चिकिरसा करने के बाद उपदंश रोग के शान्त होने के पीछे एक दो वर्ष- तक उस की प्रतीक्षा करनी चाहिये, यदि उक्त समयतक यह न्याधि न दीख पड़े तो विवाह करने में कोई मी हानि प्रतीत नहीं होती है, दूसरे—अन्य विभों के समान उप- दंश का भी विष समय पाकर अर्थात वहुत दिन न्यतीत हो जाने से वीणे और वछहीन (कमजोर) होजाता है, इस का प्रतक्ष प्रमाण यही है कि जिन को पहिले यह रोग हो खुका था पीछे योग्य उपायों के द्वारा ज्ञान्त हो जाने पर तथा फिर वहुत समय तक दिख- छाई न देने पर जिन की पुरुषों ने विवाह किया उन जोड़ों की सन्तित बहुषा तन्दुरुख दील पड़ती है, यही विषय जूनागढ़ के एल. एम. त्रिभुवनदास जैन डाक्टरने भी छिसा है।

गर्मी से जो २ रोग होते है वे प्रायः त्वचा (चमड़ी), मुल, हाड़, साँघे, बाँल, नख और केश में दिखलाई देते है, उन का वर्णन संक्षेप से किया जाता है:—

१—स्वचा के जपर बहुधा छाछ ताँवे के राँग के समान चक्रते देखने में आते है, ये (चक्रते) गोछ होते हैं तथा छोटे चक्रते तो दुखन्नी से भी छोटे और बड़े चक्रते रुपये से भी कुछ विशेष बड़े होते हैं, ये प्रायः शरीर की सम्पूर्ण त्वचा पर होते हैं अर्थात् पेट, छाती, पैर और हाथ इत्यादि सब अवयववीं पर दीख पड़ते है, परन्तु कभी २ ये चक्रते केवछ दोनों हथेछियों में और पैरों के तछवों में ही माद्धम होते हैं, कभी २ ऐसा मी होता है कि—इन चक्रतों के साथ में त्वचा के छाछे अथवा खोछ भी निकल जाते हैं, यह उपदंश का एक खास चिह्न है, कभी २ गर्मी के फफोछे भी हो जाते हैं उन को पूर्यपिटका तथा रजःपिटिका कहते हैं, मनुष्य की निर्वल दक्षा में तो ये भी पक कर घड़ी २ चांदी के रूप में हो जाते है अथवा सूख जाने के वाद उन्हीं पर वड़े २ खरींट जम जाते हैं, इस प्रकार के काले खरोंट कभी २ पैरों के ऊपर देखने में आते हैं।

इन के सिवाय उपदंश के कारण खुजली और गुमड़े भी हो खाते है, तात्पर्य यह है कि—स्वचा के जितने साधारण रोग होते है उन्हीं के किसी न किसी रूप में उपदंश का मी

[.] १-साधारण अर्थात् कुछ आदि ब्रिशेप रोगो को छोड़ कर ॥

रोग प्रकट होता है, इस रोग से त्वचा के ऊपर छोटी बड़ी सब प्रकार की पिटिकार्ये (फ़ुंसियें) भी हो जाती है।

उपदंश सम्बंधी त्वश्रोग (त्वचा का रोग) ताम्रवर्ण (ताँव के रंग के समान राँगवाला) तथा गोलाकार (गोल शकल का) होता है और वह शरीर के दोनों तर्रफ प्रायः समान (एक सा) ही होता है तथा उस के मिट जाने के पीछे उस के काले दाग पड़ कर रह जाते हैं।

२—इस रोग के कारण कभी २ केश (वाल) भी निःसत्त्व (निर्वल) होकर गिर पड़ते हैं , अर्थात् मूंछ दादी और मस्तक पर से केश विलकुल जाते रहते हैं।

३-नल का माग पक कर उस में से रसी निकला करती है, नल निकल जाता है और उस स्थान में चाँदी पड़ जाती है।

४-पहिले कह चुके है कि गर्मी के प्रारम्भ में मुख आता है' (मुखपाक हो जाता है) तथा उस के साथ में अथवा पीछे से गले के मीतर चाँदे पढ़ बाते है, मस्डें सूज जाते हैं, जीम; ओष्ठ (ओठ वा होठ) तथा मुख के किसी माग में चाँदे हो जाते हैं और उन पर वड़ी २ पिटिकार्ये भी हो जातीहै, इन के सिवाय ठारीक्ष अर्थात् खर (आवाज) की नली सूज जाती है अथवा उस के ऊपर चाँदियां पड़ जाती है, गर्मी के कारण जब ये ऊपर लिखे हुए मुख सम्बंधी रोग हो जाते हैं उस समय रोग के मर्थकर चिह्न समझे जाते हैं, क्योंकि इन रोगों के होने से श्वास ठेने का मार्ग सँकुचित (संकड़ा) हो जाता है' तथा कमी २ नाक भी भीतर से सड़ जाती है, उस का पड़दा फूट जाता है और वह वाहर से भी झर झर के गिरने ठगती है, ताछ में छिद्र (छेद) होकर नाक में मार्ग हो जाता है कि जिस से खाते समय ही ख़राक और पीते समय ही पानी नाक में होकर निकठ जाता है' तथा जीम और उस का पड़त भी झर झर के गिर जाता है।

५-हाड़ों पर का पड़त सूज जाता है, उस पर मोटा टेकरा हो जाता है तथा उस में या तो खयं ही (अपने आप ही) बहुत दर्द होता है अथवा केवल दवाने से वह दर्द करता है और उस में रात्रि के समय विशेष बेदना (अधिक पीड़ा) होती है कि जिस

१-दोनों तरफ अर्थात् दाहिनी और वाई ओर ॥

२-अर्थात् उस के कारण पटे हुए काळे दाग नहीं मिटते हैं 🛭

२-तात्पर्य यह है कि रोग के सवब से पूर्व के बाठ नि सल हो कर गिर बाते हैं और पीछे जो निकलते हैं वे भी निर्वल होने के कारण बढ़ने से पूर्व ही गिर जाते हैं॥

४-मुख आता है अर्थात् मुख में छाछे आदि पड जाते हैं ॥

५-क्योंकि शास के मार्ग के बहुत से स्थान को उक्त रोग घेर केते हैं॥

६-अर्थात् नि सत्वता के द्वारा थोडे २ माग से गिरने लगती है ॥

[ं] ७-अर्थात् खान पान उसी समय (ताछ मे पहुँचते ही) नाक के मार्ग से बाहर निकल जाता है ॥

से रोगी की निदा (नींद) में भंग (विघ) पड़ता है ', पैरों के हाड़ों पर, हाथ के हाड़ों-पर तथा डोस की हाँसडी के हाड़ों पर इस प्रकार के टेकरे विशेष देखने में आते हैं. इस के सिवाय पँसली और खोपड़ी के ऊपर भी ऐसे टेकरे हो जाते है तथा हाड का भीतरी भाग भी सड़ने लगता है जिस से वह हाड़ गल कर आख़िरकार मृत्यु हो जाती है।

६-कमी २ सन्धिवाय के समान पहिले से ही साँधे (बोटों के खान) जकड जाते हैं और विशेषकर बड़े साँघे अकड़ जाते है जिस से रोगी को हाथ पैरों का हिलाना इंडाना भी अति कठिन हो जाता है. कभी २ छोटी अंगुलियों के तथा पैरों के भी साँधे जकड जाते है तथा सज जाते है और कमर में भी बादी भर जाती है, यद्यपि साँघे थोड़े ही दिनों में अच्छे हो जाते हैं तथापि वे बहुत समय तक रोगी को कष्ट पहुँचाते रहते है।

७--कमी २ शरीर के किसी दूसरे स्थान में दिखळाई देने के पूर्व ऑख दुखनी जाती है तथा कभी २ ऑख का दर्द पीछे से उठता है, ऑंख में कनीनिका (मांफन) का बरम (शोथ) हो जाता है, कनीनिका के सूज जाने पर उस के ऊपर ठींफ (इस) नाम का रस उत्पन्न हो जाता है जिस से कनीनिका चिपक जाती है और कीकी विस्तृत नहीं होती है, आँख छाछ हो जाती है तथा उस में और मखक (माथे) में अतिशय वेदना (बहुत ही पीड़ा) होती है, इस लिये रोगी को रात्रि में निद्रा का आना कठिन हो जाता है, केवल इतना ही नहीं किन्तु यदि ठीक समय पर आँल की सँमाल (खबरगीरी) न की जावे तो आँख निकम्मी हो जाती है और दृष्टि का समूळ नाध हो जाता है।

तीसरे विभाग के चिह्न कुछ जनों के होते है तथा कुछ जनों के नहीं होते हैं परन्तु जिन लोगों के ये (तीसरे विमाग के) चिह्न होते है उन के ये चिह्न या तो कई वर्षी-तक कम २ से (एक के पीछे दूसरा इस कम से) हुआ करते हैं अथवा वारंवार एक ही प्रकार का चिह्न होता रहता है अर्थात् एक ही दर्द उठता रहता है", इस विमाग के चिह्नों का प्रारंस थोड़े बहुत वर्षों के पीछे होता है तथा जब रोगी की तवियत बहुत ही अशक्त हो जाती है उस समय उन का ज़ोर विश्लेष माख्स पड़ता है।

ठीफ नामक जो रस उत्पन्न होता है उस रस का स्नाव (झराव) होकर कई अववर्षी में गांठें बँध जाती हैं तथा यह परिवर्तन (फेरफार) कलेजा, फेफसा, मगज़ और दूसरे

१-अर्थात् रोगी को पीटा के कारण आराम पूर्वक नीद नहीं आती है ॥

२-सन्धिवायु के समान अर्थात् जिस प्रकार सन्धिवायु रोग में साँघे जक्छ जाते हैं उसी प्रकार ॥

३-जैसा कि पहिले लिख चुके हैं ॥

४-अर्थात् तीसरे दर्जे के चिह्न जिस मनुष्य के होते हैं उस के वे सब चिह्न एक चिर समय तक वारी १ से उत्पन्न होते रहते है अथवा उन चिहाँ में का कोई सा एक ही चिह्न बार १ उठता है अर्थात उठ-कर शान्त हो जाता है और फिर उठता है ॥

कई एक मागों में होता है तथा इस परिवर्तन से भी वहुत हानि पहुँचती है अर्थात् यदि यह परिवर्तन फेफसे में होता है तो उस के कारण क्षयरोग की उत्पत्ति हो जाती है, यदि मगज़ में होता है तो उस के कारण मस्तकश्रूछ (माथे में दर्द), वाय, उन्मत्तता (दीवानापन) और छकवा जादि अनेक मयंकर रोगों का उदय हो जाता है, कभी र हाड़ों के सड़ने का प्रारम्म होता है—अर्थात् पैरों के, हाथों के तथा मस्तक के हाड़ उपर से सड़ने छगते है, नाक भी सड़ कर झरने छगती है, इस से कभी र हाड़ों में इतना वड़ा विगाड़ हो जाता है कि— उस अवयव को कटवाना पड़ता है', आँख के दर्पण में उपदंश के कारण होनेवाले परिवर्तन (फेरफार) से हिष्ट का नाश्च हो जाता है तथा उपदंश के कारण वृषणों (अंडकोशों) की वृद्धि भी हो जाती है, जिस को उपदंशीय वृषण-वृद्धि कहते है।

चिकित्साः—१—उपदंश रोग की सुख्य (सास) दवा पारा है इस लिये पारे से युक्त किसी औषि को युक्ति के साथ देने से उपदंश का रोग कम हो जाता है तथा मिट भी जाता है।

२—पारे से उत्तर कर (वूसरे दर्जे पर) आयोडाइड आफ पोटाइयम नामक अंग्रेज़ी दवा है, अर्थात् यह दवा मी इस रोग में बहुत उपयोगी (फायदेमंद) है, यद्यपि इस रोग को समूछ (जड़ से) नष्ट करने की शक्ति इस (दवा) में नहीं है तथापि अधिकांश में यह इस रोग को इटाती है तथा शरीर में शान्ति को उत्पन्न करती है।

२—इन दो दवाइयों के सिवार्ये जिन दवाइयों से छोड़ सुधरे, जठरामि (पेट की अमि) प्रदीप्त (प्रज्वित अर्थात् तेज़) हो तथा खरीर का सुधार हो ऐसी दवाइयां इस रोग पर अच्छा असर करती हैं, जैसे कि—सारसापरेखा और नाइट्रो म्यूरियाटक एसिड इत्यादि ।

8-इन ऊपर कही हुई दबाइयों को कव देना चाहिये, कैसे देना चाहिये तथा कितने दिनों तक देना चाहिये, इत्यादि वातों का निश्चय योग्य वैद्यों वा डाक्टरों को रोगी की स्थिति (हारुंत) की जॉन कर सर्य (खुद) ही कर छेना चाहियें।

५-पारे की साधारण तथा वर्तमान में मिल सकने वाली दवाइयां रसकपूर, क्यालो-मेल, चाक, पारे का मिश्रण तथा पारे का मल्हम है।

१-यदि उस अवयव को न कटवाया जाने तो यह विकृत अवयव दूसरे अवयव को भी विगाड़ हेता है।

२-अर्थात् उपदश से हुई भूपणों की बृद्धि ॥

३-अर्थात् यह दवा उस के वेग को अवस्य कम कर देती है ॥

४-इन दो दवाइयों के सिवाय अर्थात् पारा और आयोडाइड आफ पोटास्यम के सिवाय ॥

५-क्योंकि देश, काल, प्रकृति और स्थिति के अनुसार मात्रा, विधि, अनुपान और समय आदि वातो में परिवर्तन करना पड़ता है ॥

६--पारा देने से यद्यपि मुंह ब्याता है (मुख्याक हो जाता है) तथापि उस में कोई हानि नहीं है , क्योंकि वास्तव में वहुत से रोगों में औषघ सेवन से मुखपाक हो ही जाता है, परन्तु उस से हानि नहीं होती है, क्योंकि -- स्थितिमेद से वह मुलपाक भी रोग के दूर होने में सहायक रूप होता है, इसी लिये देशी वैद्यलन गर्मी आदि रोगों में जान वृझ कर मुखपाक करनेवाली औषि देते हैं तथा उपदंश की शान्ति हो जाने पर मुखपाक को निवृत्त करने (मिटाने)वाली दवा दे देते हैं, बद्यपि पारे की दवा के देने से अधिक मुखपाक हो जाने से शरीर में प्रायः एक वड़ी खराबी हो जाती है जिस हो पायः बहुत से लोग जानते होंगे कि- कभी २ मुखपाक के अधिक हो जाने से बहुत से रोगियों की मृत्य तक हो जाती है, सिर्फ यही कारण है कि- वर्चमान में इस मुख-प्राक्त का लोगों में तिरस्कार (अनादर) देखा जाता है परन्त इस हानि का कारण हम तो यही कह सकते हैं: कि वहत से वैद्यजन औषि के द्वारा अखपक को तो के। के साय उत्पन्न कर देते हैं परन्तु उस के हटाने के (शान्त करने के) नियम को नहीं जानते हैं, वस एसी दशा में मुलपाक से हानि होनी ही चाहिये, क्योंकि मुलपाक की निष्ठित के न होने से रोगी कुछ ला भी नहीं सकता है, उसे कठिन परहेन ही परहेन करना पड़ता है, उस के दॉत हिलने लगते हैं तथा दॉत गिर भी जाते हैं और मुखपाक के फारण बहत से हाड़ भी सड़ जाते हैं, कभी २ जीम सूज कर तथा मोटी हो कर बाहर जा जाती है तथा मीतर से श्वास (साँस) का अबरोध (रुकावट) हो कर रोगी की मृत्य हो जाती है, इस लिये अज्ञान वैद्य को औषि के द्वारा अतिजय (बहुत अपिक) मुखपाक कभी नहीं उत्पन्न करना चाहिये किन्तु केवल साधारणतया आवश्यकता पहने पर मुखपाक को उत्पन्न करना चाहिये. जिस को छोग फुल मुखपाक कहते हैं, फुल मुखपाक प्रायः उसे कहते हैं कि जिस में थोड़ी सी थुक में विशेषता होती है. तार्ल्य यह है कि-दाँतों के मसूडों पर जिस का बोड़ा सा ही असर हो अस उतना ही पारा देना चाहिये, इस से विशेष पारा देने की कोई आवश्यकता नहीं हैं, परन्तु इस विषय में यह खयाछ रखना चाहिये कि पारे को केवल उतना देना चाहिये कि- नितना पारा लोहू पर अपना असर पहुँचा सके।

न्हत से मूर्ल नैद्य तथा दूसरे लोग यह समझते हैं कि- मुख में से जितना यूक

⁹⁻किन्तु प्रकृति और स्थिति के सेंद्र से मुख का आगा तो उक्त रोग की निवृत्ति में सहायक माना जाता है, यदि चिकित्सा उसी ढँग पर की जा रही हो तो ॥

२—सर्थात् सुखपाक को विभिपूर्वक उत्पन्न करना तथा उस भी निश्चति करना उन्हें ठीक रीति से गाइन नहीं होता है ॥

३-फूल सुखपाक क्यान् हरूका (नरम वा मृदु) मुखपाक ॥

४-द्योंकि विशेष पारे का देना परिणाम में भी हानिकारक (बुक्सान करनेवाला) होता है ॥

अधिक निकले उतना ही विशेष फायदा होता है, क्योंकि शूक के द्वारा गर्मी निकल जाती है, परन्तु उनका ऐसा समझना बहुत ही मूल की वात है, क्योंकि लाम तब विशेष होता है जब कि पारे से मुखपाक तो कम हो अर्थात् शूक में थोड़ी सी विशेषता (अधिकता) हो परन्तु वह बहुत दिनों तक बनी रहें, किन्तु मुखपाक विशेष (अधिक) हो और वह थोड़े ही दिनों तक रहे उस से बहुत कम फायदा होता है।

बहुधा यह मी देला गया है कि मुखपाक के विना उत्पन्न किये भी युक्ति से दिया हुआ पारा पूरा २ (पूरे तौर से) फायदा करता है, इस लिये अधिक मुखपाक के होने से अर्थात् अधिक थूक के बहने ही से नाम होता है यह विचार विलक्ष्य ही अमयुक्त '(बहम से भरा हुआ) है।

७—डाक्टर हचिनसन की यह सम्मति (राय) है कि— पारे की दवा को एक दो मास तक थोड़ी २ बरावर जारी रखना चाहिये, क्योंकि उन का यह कथन है कि— " उपदंश पर पारद (पारे) को जल्दी देखो, बहुत दिनोंतक उस का देना जारी रक्खो थोर मुखपक को उत्पन्न मत करों" इत्यादि।

८—गर्मीवाले रोगी को पारा देने की चार रीतियां है— उन में से प्रथम रीति यह है कि— मुख के द्वारा पारा पेट में दिया (पहुँचाया) जाता है, दूसरी रीति यह है कि— पारे का छुना अथवा माफ दी जाती है, तीसरी रीति यह है कि— पारे की दवा न तो पेट में खानी पड़ती है और न उसका छुना वा माफ ही छेनी पड़ती है किन्तु केवल पारा जाँव के मूळ में तथा काँख में छगाया जाता है और चौथी रीति यह है कि— ससाह (हफ्ते) में तीन वार लचा (चमड़ी) में पिचकारी छगाई जाती है ।

इस प्रकार पिट्ट जन गर्मी के दूसरे निमाग के निहैं माछम हों तन अथना उस के कुछ पिट्ट इन नारों रीतियों में से किसी रीति से यित युक्ति के साथ पारे की दवा का सेनन कराया जाने तो उपदंश के लिये इस के समान दूसरी कोई दना नहीं है, परन्तु पारे सम्नंधी दना किसी कुशल (नतुर) नैच ना डाक्टर से ही लेनी नाहिये अर्थात् मूर्स नैयों से यह दना कमी नहीं लेनी नाहियें। (प्रश्ना) सर्व साधारण को यह नात कैसे माछस हो सकती है कि— यह कुशल नैच है अथना मूर्स नैच है (उत्तर) निस प्रकार सर्व साधारण लोग सोने, नाँदी, जनाहिरात तथा दूसरी भी अनेक अस्तुनों की

१-शूक में योबी विशेषता होकर बहुत दिनोंतक बनी रहने से बड़ा लाम होता है अर्थात् रोगी को खाने पीने आदि की तकलीफ भी नहीं होती है तथा काम भी बन जग्ता है ॥

२-ऐसा करने से रोगी को निशेष कष्ट न होकर फायदा हो जाता है ॥

३-दूसरे विभाग (दूसरे दर्जे) के निष्क ज्वर आदि, जिन को पहिछे छिख चुके हैं ॥

४-क्योंकि मूर्ख वैद्यों से पारे की दवा के छेने से कभी १ महा समझूर (वटा खतरनाक) परिणास हो जाता है ॥

परीक्षा करते हैं अथवा दूसरे किसी के द्वारा उन की परीक्षा करा छेते हैं उसी प्रकार कुशल तथा मूर्ल वैच की परीक्षा का भी कर छेना वा दूसरे से करा छेना सर्वसाधारण को अत्यावश्यक (बहुत जरूरी) है, परन्तु महान् शोक का विषय है कि—वर्तमान में सर्वसाधारण और गरीब लोग तो क्या किन्तु बढ़े र श्रीमान् छोग भी इस विषय में कुछ भी ध्यान नहीं देते हैं, इसी का यह फल है कि—कुशल अथवा मूर्ल वैच की परीक्षा का करने वाला शायद ही सो में से एकाध मिलता है, इस लिये सर्वसाधारण से हमारा यही निवेदन है कि—दूध को मथ (विछो) कर धृत निकालने के समान जो हमने इस प्रन्य के इसी अध्याय के प्रारम्भ में वैचकविचा का सार लिखा है उस को अवकाश (फुर्तत) के समय में पाठकगण दूसरी ज्यर्थ (फिजूल) गप्पों में तथा नाना प्रकार के कल्पित किसे कहानियों की पुस्तकों के पढ़ने में अपने अमूल्य (वेशकीमती) समय को न गवा कर यदि विचारा करें तो उन को अनेक प्रकार का लाभ हो सकता है तथा इस के प्रभाव से उन में कुशल तथा मूर्ल वैच की परीक्षा करने की शक्त भी उत्पक्त हो सकती है'।

थव ऊपर कही हुई चिकित्साओं के सिवाय—जो अंग्रेजी तथा देशी दवाइयां इस रोग-पर पूर्ण छाम करती हैं उन्हें लिखते हैं:—

१—पोटांस आयोडाइड १५ ग्रेन, ठीकर हाइड्रार चीरी परक्षारीड २ ड्राम, एक्स्ट्राक्ट सारसापरीळा ३ ड्राम और चिरायते की चाय ३ औंस, इन सब जीववों को मिळा कर उस के तीन आग करने चाहिये तथा उन में से एक माग को संबेर, एक आग को मध्याह में (दोपहर को) और एक माग को आम को पीना चाहिये, यह दब अति उत्तम है अर्थात् गर्मी के सर्व रोगों में अति उपयोगी (फायदेमन्द) मानी गई है, इस दबा में जो पोटास आयोडाइड की १५ भेन की मात्रा किस्ती है उस के खान में एक हफ्ते के बाद २० भेन की मात्रा कर देनी चाहिये अर्थात् एक हफ्ते के बाद उक्त दबा २० भेन डाळना चाहिये तथा दूसरे हफ्ते में २५ भेन तक बढा देना चाहिये, इस दबा को आरंग करते ही यद्यपि तीन दिन तक केष्म (कफ अर्थात् जुकाम) हो जाता है परन्त वह पीछे भाप ही दो चार दिन में बन्द हो जाता है, इस खिये क्षेष्म के हो जाने से हरना नहीं चाहिये तथा दवा को बराबर छेते रहना चाहिये और इस दवा का सेवन दो महीने तक फरना चाहिये, यदि किसी कारण से इस का दो महीने तक सेवन व वन

१-सब ही जानते हैं कि कोई भी मतुष्य विना परीक्षा किये अथवा विना परीक्षा कराये सोने चाँदी आदि को नहीं छेता है, क्योंकि उसे घोखा हो जाने का सब बना रहता है ॥

२—क्योंकि हमने इस अन्य में कारीरिक विद्या के सार ग्रहस्यों को काम देने वाके अच्छे प्रकार से २—क्योंकि हमने इस अन्य में कारीरिक विद्या के सार ग्रहस्यों को काम देने वाके अच्छे प्रकार से लिख दिये हैं, तब ग्रह लिख दिये हैं तथा प्रसंगवज्ञात वैद्यादि की परीक्षा आदि के भी अनेक विषय लिख दिये हैं, तब ग्रह लिख दिये हैं तथा प्रसंगवज्ञात वैद्यादि की परीक्षा वर्षों बात है तो इस अन्य को च्यानपूर्वक पढ़ कर साधारण जन भी कुशक और मूर्ख वैद्य की परीक्षा वर्षों वर्षों कर सकते हैं ॥

सके तो चार हफ्ते तक तो इस का सेवन अवस्य ही करना चाहिये, इस दवा के समान अंग्रेजी दवाइयों में गर्मी पर फायदा करने वाली दूसरी कोई दवा नहीं है, इस दवा का सेवन करने के समय दूध मात तथा मिश्री का खाना बहुत ही फायदेमंद है अर्थात् इस दवा का यह पूरा पथ्य है, यदि यह न बन सके तो दूसरे दर्जे पर इस का यह पथ्य है कि—सेंधानमक डाल कर तथा बीज निकाली हुई जयपुर की थोड़ी सी लाल मिर्च डाल कर बनाई हुई मूँग की दाल फुलके तथा मात को खाना चाहिये, किन्तु इन के सिवाय दूसरी खुराक को नही खाना चाहिये तथा इस पथ्य (परहेज) को गर्मी की प्रत्येक दवा के सेवन में समझना चाहिये।

२—पोटास आयोडाइड १२ प्रेन, ठीक्वीड एक्स्ट्राक आफ् सारसापरेळा २ ड्राम, इन दोनों को मिठाकर र्वे आग (तीसरा हिस्सा) दिन में तीन वार देना चाहिये।

३—उसबा मगरवी दो तोले, पित्तपापड़ा छः मासे, काशनी छः मासे, चन्दन का चूरा ६ मासे तथा पुटास आयोडाइड छः ग्रेन, इन में से प्रथम चार औषधियो को आध पाव उबलते हुए गर्म पानी में एक घंटे तक चीनी वा काच के वर्तन में मिगोवें, फिर छान कर उस में पुटास आयोडाइड मिलावें और दिन में तीन वार सेवन करें, यह दवा एक दिन के लिये समझनी चाहिये तथा इस दवा का एक महीने तक सेवन करना चाहिये।

8—मजीठ, हरड़, बहेड़ा, ऑवका, नीम की छाल, गिलोय, कड़ और बच, इन सब जीवबों को एक एक तोले लेकर उस के दो भाग करने चाहिये तथा उस में से एक माग का प्रतिदिन काथ बना कर पीना चाहिये।

५-उपलस्ती, जेटीमधु (मधुयष्टि अर्थात् मौलेटी), गिलोय और सोनामुखी (सनाय), इन सब को एफ एक तीले लेकर तथा इन का काथ बना कर प्रतिदिन पीना चाहिये, यदि इस के पीने से दस्त विशेष हों तो सोनामुखी को कम डालना चाहिये।

६-उपद्ंश गजकेशारी अर्कि वह अर्फ यथा नाम तथा गुण है, अर्थात् यह अर्फ उपदंश रोग पर पूर्ण (पूरा) फायदा करता है, जो छोग अनेक दवाहयों को खाकर

१—कपर लिखी हुई चारों औपर्यों को मिलाकर तैयार की हुई यह दवा हमारे औषधालय में सर्वहा उपस्थित रहती है तथा चार सप्ताह (इफ्ते) तक पीने योग्य उक्त दवा के दास १०) रुपये हैं, पोष्टेज (बाकव्यय) प्रथक् है, जिन को आवश्यकता हो वे इत्य सेज कर अथवा बेल्यूपेबिल के द्वारा संगा सकते हैं।

र—यह अर्क ग्रुद्ध वनस्पतियों से बना कर तैयार किया जाता है, जो मगाना चाहें हमारे औषधालय से हत्य मेज कर अथवा वी पी द्वारा मेंगा सकते हैं, इस के सेवन की विधि आदि का पत्र (पर्चा) दवा के साथ में मेजा जाता है, एक सप्ताह (हफ्ते)तक पीने छायक दवा की शीशी का मूल्य ३) रुपये हैं, पोष्टेज (डाकव्यय) पृथक् क्यता है ॥

३-अर्थात् यह अर्क उपदशस्यी गज (हाथी) के किये केशरी (सिंह) के समान है ॥

निराश (नाउम्मेद) हो गये हों उन को चाहिये कि इस अर्क का अवस्य सेवन करें, क्योंकि उपदंश की सब व्याधियों को यह अर्क अवस्य मिटाता है ।

७-उपदंशिविध्वंसिनीगुटिका - यह गुटिका मी उपदंश रोग पर बहुत ही फायदा करती है, इस लिये इस का सेवन करना चाहिये ॥

बाल उपदंश का वर्णन ॥

पहिले कह चुके हैं कि नगर्मी का रोग वारसा में उत्पन्न होता है, इस लिये कुछ वर्षे-तक उपदंश का वारसा में उतरना सम्भव रहता है, परन्तु उस का ठीक निश्चय नहीं हो सकता है तथापि पहिले उपदंश होने के पीछे वर्ष वा छः महीने में गर्भ पर उस का असर होना विशेष संभव होता है, इस के पीछे बद्यपि ज्यों २ गर्मी पुरानी होती बाती है और उस का जोर कम पड़ता जाता है तथा दूसरे दर्जे में से तीसरे दर्जे में पहुँचती है त्यों २ कम हानि होने का सम्भव होता जाता है तथापि बहुत से ऐसे भी उदाहरण मिळते हैं कि कई वर्षों के ज्यतीत हो जाने के पीछे भी ऊपर लिखे अनुसार गर्मी वारसा में उतरती है, पिता के गर्मी होनेपर चाहे माता के गर्मी न भी हो तो भी उस के बच्चेश गर्मी होती है और बच्चे के द्वारा वह गर्मी माता के छग जाना भी सम्भव होता है तथा माता के गर्मी होने से बच्चे को भी उपदंश हो जाता है।

बचे का जन्म होने के पीछे यदि माता के उपदंश होवे तो दूध पिछाने से भी बचे के उपदंश हो जाता है, उपदंश से युक्त बचा यदि नीरोग धाय का दूध पीवे तो उस धाय के भी उपदंश के हो जाने का सम्भव होता है तथा खान का जो भाग बच्चे के मुख में जाता है यदि उस के उपर फाट हो तो उसी मार्ग से इस रोग के चेप के फैलने का विशेष सम्भव होता है 1

वालडपदंश तीन प्रकार से प्रकट होता है, जिस का विवरण इस प्रकार है:-

१-कमी २ गर्मावस्था में प्रकट होता है जिस से बहुत सी क्षियों के गर्म का पात (पतन अर्थात् गिरना) हो जाता है।

२-कमी २ गर्भ का पात न होकर तथा पूरे महीनों में बच्चे के उत्पन्न हो जाने पर जन्म के होते ही बच्चे के अंग पर उपदंश के चिन्ह माख्म होते है।

२-अर्थात् उपदंश का नाग करनेवाटी गोली ॥

१-यह अर्क सहस्रों वार उपदश के रोगियों पर परीक्षा कर के अनुसबसिद उहराया गया है अर्थाद इस से अवस्य ही फायदा होता है ॥

३—ये गुटिकार्चे भी खास इसारी वनाई हुई हमारे औपवालय में उपस्थित रहती हैं, जिन को जान-इयकता हो ने मंगा सकते हैं, मूल्य एक डिब्बी (जिस में ३२ गोलियां रहती हैं) का केवल १) द्रश्या है, पोष्टेज प्राहकों को प्रथक डेना पड़ता है, इन के सेवन की निधि आदि का पत्र इना के साथ में ही प्राहकों की सेवा में भेजा जाता है ॥

३-कभी २ बच्चे के जन्मसमय में उस के श्वरीरपर कुछ भी चिन्हें न होकर भी थोड़े ही अठवाड़ों में, महीनों में अथवा कुछ वर्षों के पीछे उस के शरीर में उपदश प्रकट होता है।

लक्ष्मण (चिह्न)—उपदंश रोग से युक्त माता पिता से उत्पन्न हुआ वालक जन्म से ही दुर्बल, गले हुए हाथ पैरों वाला तथा सुदीर सा होता है और उस की त्वचा (चमड़ी) में सल पड़े हुए होते है, उस की नाक खेष्म के समान (मानों नाक में खेष्म खर्थात् जुकाम भरा है इस प्रकार) बोला करती है और पीछे नितम्ब (शरीर के मध्य भाग) पर तथा पैरों पर गर्मी के लाल र चकते निकलते हैं, सुखपाक हो जाता है तथा खोह (ओठ वा होठ) पर चाँदे पड़ जाते हैं।

इस प्रकार के (उपदंश रोग से युक्त) बालक के जो दाँत निकलते हैं उन में से आगे के ऊपरले (ऊपर के) दो चार दाँत चमत्कारिक (चमत्कार से युक्त) होते हैं, वे बूंदे होते हैं, उन के बीच में मार्ग होता है और वे श्रीष्ठ ही गिर जाते हैं, किन्तु जो स्थिर (कायम) रहने वाले दाँत निकलते हैं वे भी वैसे ही होते हैं तथा उन के ऊपर एक गड्डा होता है।

चिकित्सा—१—पहिले कह चुके हैं कि—पारा गर्मी के रोग पर मुख्य लीषि है, इस लिये वारमों की गर्मी पर भी उस का पूरा लसर होता है लर्थात् उस का पात हुआ ही माख्स पड़ जाता है, गर्मी के कारण यदि किसी खी के गर्म का पात हुआ करता हो और उस को पारे की दवा देकर मुखपाक कराया जावे तो फिर गर्म के ठहर कर बढ़ने में कुछ भी लड़चल नहीं होती हैं तथा उस के गर्म से जो सन्तति उत्पन्न होती है उस के भी गर्मी नहीं होती हैं, यदि वालक का जन्म होने के पीछे थोड़े दिनों में उस के शरीर पर गर्मी दीख पड़े तो उस वालक की माता को किसी कुशल वैद्य से पारे की दवा दिलानी चाहियें, अथवा यदि वालक कुछ बड़ा हो गया हो तो उस के

१-तारपर्व यह है कि उपदश्च का असर तो वालक के शरीर में पहिले ही से रहता है वह कुछ ही अठवालों में, महीनों में अथवा वर्षों में अपने उद्भव (प्रकट) होने की कारण सामग्री को पाकर प्रकट हो जाता है ॥

२-क्योंकि माता पिता के द्वारा पहुँचा हुआ इस रोग का असर गर्भ ही में बालक को दुर्वल स्मादि ऊपर कहे हुए क्रसणोंवाला बना देता है ॥

३-वारसा का खरूप पहिळे लिख चुके हैं॥

४-अर्थात पारे की दवा के देने से की के गर्भ का पात नहीं होता है तथा वह गर्भ निवृमानुसार पेट में बढता चला लाता है ॥

५-क्योंकि पारे की दवा के देने से माता ही में गर्मी का विकार शान्त हो जाता है अतः वह वालक के शरीर पर असर कैसे कर सकता है ॥

६-अर्थात् पारे की दवा देने पर मी माता की गर्मी ठीक रीति से शान्त न होने और वालक पर भी उस का असर पहुँच जाने ॥

u-कि जिस से आगे को माता की गर्मी का असर बालक पर पड कर उस के छिये सबकारी न हो ॥

पारे का मल्हम लगाना चाहिये, ऐसा करने से गर्मी मिट जावेगी, मल्हम के लगाने की रीति यह है कि-कपड़े की चींट पर पारे के मल्हम को चुपड़ कर उस चींट को बन्ने के पैरों पर अथवा पीठ पर बांघ देना चाहिये. यह कार्य जब तक उपदंश न मिट जावे तब तक करते रहना चाहिये. इस से बहुत फायदा होता है क्योंकि-मल्हम के मीतर का पारा भरीर में जाकर उपदंश को मिटाता है. पारे की औषि से जिस प्रकार वही अवस्था बाले पुरुष के सहज में ही मुख पाक हो जाता है उस प्रकार बालक के नहीं होता है।

एक यह बात भी अवस्य घ्यान में रखनी चाहिये कि-उपदंश वाले बच्चे की माता के दंध के पिछाने के बदछे (एवज़ में) गाय आदि का दूध पिछा कर पाछना अच्छा है।

पथ्यापथ्य-इस रोग में दूध, सात, मिश्री, मूंग, गेहूँ और सेंघानिमक. इत्यादि साधारण खुराक का लाना तथा छुद्ध (साफ) बायु का सेवन करना पथ्य है ब्दीर गर्म पदार्थ, मच (दाक्र), बहुत मिर्चे, तेल, गुड़, खटाई, घूप में फिरना, अधिक परिश्रम करना तथा मैथन इत्यादि अपर्यं है ।

विशोध सुचना-वर्षमान समय में गर्मी देवी की प्रसादी से बचने वाले बोड़े ही पुण्यवान पुरुष दृष्टिगत होते हैं (देखे जाते हैं), इस के सिवाय भाय: यह भी देखा जाता है कि-बहुत से लोग इस रोग के होने पर इसे लिपाये रखते हैं² तथा बहुत रे भाग्यवानों (धनवानों) के छड़के माता पिता के छिहान वा डर से भी इस रोग के छिपाये रखते हैं परन्त यह तो निश्चय ही है कि बोड़े ही दिनों में उन को भैदान अवस्य आना ही पहता है (रोग को प्रकट करना ही पहता है वा यों समझिये कि रे प्रकट हो ही जाता है) इस लिये इस रोग को कमी लियाना नहीं चाहिये, क्योंकि रोग को छिपा कर रखने से बहुत हानि पहुँचती है तथा वह रोग कमी छिपा भी न रह सकता है, इस लिये इस का छिपाना बिलकुल ज्यर्थ है, अतः (इस लिये) रोग के होते ही उस को छिपाना नहीं चाहिये किन्तु उस का उनित उपाय करना चारि

ज्यों ही यह रोग उत्पन्न हो त्यों ही सन से प्रथम त्रिफले (हरड़ वहेड़ा भाँवला) के जुलान का लेना पारंग कर देना चाहिये तथा यह जुलान तीन दिर लेना चाहिये, जुलाव के दिनों में खिचड़ी के सिवाय और कुछ भी नहीं खाना हाँ रॅवती (पकती) हुई खिचड़ी में बोड़ासा घृत (घी) डाल सकते हैं।

१-इन क्रे सिवाय-मूत्र के वेग क्रे रोकना, दिन में सोना, मारी सल का खाना तथा छाछ ये कार्य भी इस रोग से युक्त पुरुष के क्रिये अपध्य क्यांत हानिकारक हैं ॥

२-अर्थात् इस रोग से बचे हुए बोडे ही पुरुष देखे जाते हैं ॥

३-अर्थात रुवा के कारण प्रकट नहीं करते हैं॥

^{• --}नेंं बीव ही प्रकट हो कर इस की विकित्सा हो जाना सच्छा है, पीछे यह कप्रसाध्य हो :

जुलान के ले जुकने के पीछे ऊपर लिखे अनुसार इलाज करना चाहिये, अथवा किसी अच्छे वैद्य वा डाक्टर से इलाज कराना चाहिये, परन्तु मूर्ख वैद्यों से रसकपूर तथा हींगछ आदि दवा कमी नहीं लेनी चाहियें।

यदि कुछ दिनों तक दना का योग न मिल सके तो उस के यह में लगना चाहिये परन्तु ऊपर लिखे पथ्यानुसार खुराक को चारी रखने में यूल नहीं करना चाहिये

जो मनुष्य इस रोग से मुक्ति (छुटकारा) पाने के बाद पुनः (फिर) कुकर्म (बुरे काम) करते है अर्थात् ठोकर खाकर भी नहीं चेतते है उन को पश्चाख्यानी गधा ही समझना चाहिये ।

प्रमेह अर्थात् सुजाख़ (गनोरिया) का वर्णन ॥

धुनाल का रोग बचिप की तथा पुरुष दोनों के होता है परन्तु पुरुष की अपेक्षा की के इस का दर्द कम माद्धम होता है, इस का कारण केवल यही है कि पुरुष की अपेक्षा की का मूत्रमार्ग बड़ा होता है, इस के सिवाय प्रायः यह भी देखा जाता है कि स्त्री की अपेक्षा यह रोग पुरुष के विशेष होता है।

कारण यह रोग व्यभिचार करने से उत्पन्न होता है तथा नेक्या और दिने नीली कियां ही इस रोग का मूल (ग्रुल्य) कारण होती है, तात्पर्य यह है कि व्यभिचार के हेत्र (क्षिये) जिस स्थान में बहुत से स्त्री पुरुषों का आगमन तथा परिचय (ग्रुलाकात) होता है वहीं से इस रोग की उत्पत्ति की विशेष सम्मानना होती है ।

⁹⁻म्जॉकि मूर्ख वैद्य अपनी अज्ञानता से रसकपूर और दींगळ आदि दवा तो रोगी को दे देते है परन्तु न तो ने उस के देने के विभान को दी जानते हैं और न अनुपान तथा पष्य आदि को समझते है, इस लिये रोगी को उक्त दवाओं को मूर्ख वैद्य से छेने में परिणाम में बड़ी भारी हादि पहुँचती है, अत उक्त दवाओं को मूर्ख वैद्यों से मूलकर भी नहीं छेना चाहिये ॥

२-स्जोंकि पश्य का वर्ताव दवा से भी अधिक फायदा करता है, (प्रश्न) यदि पश्य का सेवन दवा से भी अधिक फायदा करता है तो फिर दवा के छेने की क्या आवश्यकता है, केवल पश्य का ही सेवन कर छेना चाहिये " (उत्तर) वेशक! पश्य का सेवन दवा से भी अधिक फायदा करता है, परन्तु पश्य सेवन के समय में दवा के छेने की केवल इतने जहां ने आवश्यकता होती है कि रोग श्रीप्र ही मिट जावे (क्योंकि दो सहायक मिल कर वैरी को जल्दी ही जीत छेते हैं) यो तो दवा को न छेकर भी केवल पश्य का सेवन किया जांवे तो भी रोग अवश्य मिट जावेगा परन्तु हेर छगेगी, इस के विरुद्ध चिद केवल दवा का ही सेवन किया जांवे तो भी रोग अवश्य मिट जावेगा परन्तु हेर छगेगी, इस के विरुद्ध चिद केवल दवा का ही सेवन किया जांवे और पश्य का वर्ताव न किया जांवे तो कुछ भी ख्यम नहीं हो सकता है (इस विषय में पहिले छिख चुके हैं), तारपर्य यह है कि पश्य का सेवन मुख्य और दवा का छेना गाँग साधन है।

रे-इस कलिकाल में वेरमाओं के समान वह एक नवा व्यक्तिवार का डेंग वला है अर्थात कलकत्ता और वम्बई आदि अमेक वहें २ नगरों में कुटिनी (व्यक्तिवार की दलाली करनेवाली) की के मकान में आकर यहरों की क्षियां और व्यक्तिवारी पुरुष कुकमें करते हैं ॥

इस के मिनाय रजला स्त्री के साथ मैथुन करने से तथा जिस स्त्री के प्रदर का रोग हो अर्थात् किसी प्रकार की भी चातु जाती हो अथवा जिस के योनिमार्ग में वा कमल में किसी प्रकार की कोई ज्याचि हो उस स्त्री के साथ भी संयोग करने से यह रोग हो जाता है।

परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि—जिन के यह रोग हो जाता है उन में से प्रायः बहुत से छोग विषय सम्बंध में की हुई अपनी मूळ को खीकार नहीं करते हैं किन्तु वे यही कहते हैं कि गर्म चीन के खाने में आ जाने के हेत्र अथवा धूप में चळने से हमारे यह रोग हो गया है, परन्तु यह उन की मूळ है, क्योंकि बुद्धिमान पुरुष कार्य के द्वारा कारण का ठीक निश्चय कर छेते है, देखों। यह निश्चित बात है कि तीक्षण तथा गर्म चीन के खाने आदि कारणों से छुजाल हो ही नहीं सकता है, क्योंकि छुजाल मूत्रमार्भ का खास बरम (श्रोथ) है तथा वह चेप के छगने ही से होता है, देखों। यदि छुजाल का चेप एक आदमी का छेकर दूसरे के छगा दिया जावे तो उस के भी यह रोग हुए विना नहीं रहता है अर्थात् अवहय ही हो जाता है, क्योंकि छुजाल का गुण ही चेपी है,

यदि किसी दूसरे साधारण ज़खम की रसी को छेकर कमाया जावे तो बैसा असर नहीं होगा, क्योंकि साधारण ज़खम की रसी में झुज़ाख के चेप के समान गुण ही नहीं होता है।

गर्मी की चाँदी और मुज़ाल ये दोनों जुदे २ रोग हैं क्योंकि चाँदी के चेप से चाँदी ही होती है और मुज़ाल के चेप से मुजाल ही होता है परन्तु शरीर की लराबी करने में (शरीर को हानि पहुँचाने में) ये दोनों रोग माई बहिन हैं अर्थात् चाँदी बहिन और मुज़ाल माई है।

युनाल के सिवाय-मूत्र मार्ग के साधारण शोध के हेतु शिक्ष में से भी रसी के समान

पदार्थ निकलता है।

यह रोग हथरैंस, बहुत मिर्चें, मसाला और मच आदि के उपयोग से (सेवन से) होता है, परन्तु इस को ठीक सुजास नहीं समझना चाहिये।

⁹⁻साहि के नियमों से निपरीत (सन्तान के लिये ऋतुस्वय में अपनी मार्यो के समागम में व्यय व करके) आनन्दकारक असर को उत्पन्न करने के लिये उत्पन्त्यनय (शिक्ष) को हाथ से संबंधित (राह) कर वीर्त्रपात करने को हथरस कहते हैं तथा इस को अंग्रेज़ी में माहर बेशन, सेल्फ एम्ब्रूज, सेल्फ पोल्यू भान, हेल्यिहिष्ट्राईग और देश दिलीग प्रेक्तिस मी कहते हैं, शास्त्रीय विद्वान्त और मास्त्री कर्तव्य का निवार करने पर यही निश्चित होता है कि इस संसार में ब्रह्मचर्य ही एक ऐसा पदार्थ है जो कि समुख्य को अस के कर्तव्य का सीधा मार्ग वताल बेता है निस मार्ग पर बल कर समुख्य दोनों लोकों के मुखों को अस के कर्तव्य का सीधा मार्ग वताल बेता है निस मार्ग पर बल कर समुख्य दोनों लोकों के मुखों को सहस्त्र में ही प्राप्त कर सकता है तथा ब्रह्मचर्य का मण करना ठीक जस के निपरीत है अर्थात वहीं सहस्त्र में ही प्राप्त कर सकता है तथा ब्रह्मचर्य का मण करना ठीक जस के निपरीत है अर्थात वहीं (ब्रह्मचर्य का मक्त) मनुष्य का सर्वनाश कर देता है, क्योंकि यह (ब्रह्मचर्य का मक्त करना) मनुष्य जाति

लक्ष्मण—स्त्री गमन के होने के पश्चात एक से लेकर पांच दिन के भीतर छुज़ाख का चिह्न प्रकट होता है, प्रथम इन्द्रिय के पूर्व भाग पर खाज (ख़ुजली) चलती है, उस (इन्द्रिय) का मुख सूज कर लाल हो जाता है और कुछ ख़ुल जाता है तथा उस को दबाने से भीतर से रसी का बूँद निकलता है, उस के पीछे रसी अधिक निकलती

के लिये सब पापों का स्थान और सब दुर्गुणों का एक आश्रय है अर्थात इसी से सब पाप और सब दुर्गुण उत्पन्न होते हैं, इस की सयद्वरता का विचार कर यही कहना पडता है कि-यह पाप सब पापों का राजा है, वेंखो । बसरी सब सरावियों को अर्थात-चोरी, छचाई, ठगाई, खन, बदमाशी, अफीम, भाग; गाँजा स्रोर तमाख् स्रादि हानिकारक पदानों के व्यसन, सब रोग और फुटकर निकलने वाली भयकर चेपी महामारियों को इकट्ठा कर तराजू के एक पालने (पलडे) में रवस्ता जाने और दूसरे पालने में हाथ के द्वारा ब्रह्मचर्य मह की खरावी को रक्सा जाने तथा पीछे दोनों की तळना (सुकानिका) की जाने तो इस एक ही खराबी का पालना दूसरी सब खराबियों के पालने की अपेक्षा अधिक नीचा जावेगा. यदापि खी पुरुषों के अयोग्य व्यवहार के द्वारा उत्पन्न हुए भी ब्रह्मचर्यमङ्ग से अनेक खराविया होती हैं परन्तु उन सब खरावियों की अपेक्षा भी अपने हाथ से किये हुए अक्षचर्यभन्न से तो जो वही र खरावियां होती हैं उन का स्मरण करके तो हवय फटता है, देखों! यह बात बिलकुल ही सत्य है कि मनुष्य जाति में पुरुवत्व (पराक्रम) के नाशरूपी महाखराबी, बीर्य सम्बंधी अनेक खराबियां और उन से उत्पन्न हुई अनेक असीतियों का इसी से जन्म होता है, क्योंकि मन की निवंछता से सब पाप और सब हुईण उत्पन्न होते है और मन की निर्वेकता को जन्म देनेवाला यही विकृष्ट शारीरिक पाप (ब्रह्मचर्य का भड़ अर्थात माधर बेशन) है. सहा तो यह है कि इस के समान दूसरा कोई भी पाप संसार में नहीं देखा जाता है. यह पाप बत्तमान समय में बहुत कुछ फैला हुआ है, इस पर भी आवर्ष और दुःख की बात तो यह है कि लोग इस पाप से होनेवाके अनथों को जान कर भी इस पाप के आचरण से उत्पन्न हो खरावियों के देखने से पहिले नहीं चेतते हैं अर्थात अनभिष्ठ (अनजान) के समान हो कर अंधेरे ही में पढे रहते हैं और अपने होनहार सन्तान को इस से बचाने का उद्योग नहीं करते हैं, तात्पर्य यह है कि-एक जवान लडका इस पापाचरण से जब तक अपने शरीर की दुर्दशा नहीं कर छेता है तब तक उस के माता पिता सोते ही रहते हैं. परन्त जब यह पापाचरण जवान मलुखों पर पूरे तीर से आक्रमण (हमला) कर छेता है सीर उन की मनिष्यत की सर्व आशाओं को तोड़ डालता है तब हाय २ करते हैं, यदि वाचकवृन्द गम्भीर भाव से विचार कर देखेंगे तो उम को माल्य हो जावेगा कि इस ग्रप्त पापाचरण से मनुष्यवादि की जैसी २ अवनति और क्रदशा होती है वैसी अवनति और क्षदशा ऊपर कही हुई चोरी जारी आदि सब सरा-बियों से भी (चाहें वे सब इकट्टी ही क्यों न हो) कदापि नहीं हो सकती है, यह बात भी प्रकट ही है कि दूसरे सब दुरानरणों से उत्पन्न हुई वा होती हुई खराविया जीव्र ही विदित हो चाती है और सेही तथा सह-वासी ग्रणी जन उन से मनुष्य को शीघ्र ही बचा छेते हैं परन्तु यह ग्रुप्त दुराचरण तो अति प्रच्छन्न रीति से अपनी पूरी मार देकर तथा अनेक खरावियों को उत्पन्न कर प्रकट होता है, (इस पर भी खाद्यर्थ तो यह है कि प्रकट होने पर भी अनुभवी वैद्य वा डाक्टर ही इस को पहिचान सकते है) और पीछे इस पापाचरण से उत्पन्न हुई खराबी और हानियों से वचने का समय नहीं रहता है अयोग्न व्याघि असाध्य हो जाती है।

है, यह रसी पीछे रंग की तथा गाढ़ी होती है, किसी २ के रसी का थोड़ा दाग पड़ता है और किसी २ के अत्यन्त रसी निकल्ती है अर्थात् घार के समान गिरती है, पेशान मन्द धार के साथ में थोड़ी २ कई बार उतरती है और उस के उतरने के समय बहुत

अपने द्वाथ से ब्रह्मचर्य के मह करने को एक अति खराव और महा दु:खदायक व्याधि समझना चाहिये, इस व्याधि के रुक्षण इस रोग से बुक्त पुरुष में इस प्रकार पाये जाते हैं---शरीर दुर्वल हो जात है, खभाव चिड़ने वाला तथा चेहरा फीका और चिन्ता बुक्त रहता है, मुखाकृति विगडी हुई दीन तथा खिम होती है, ऑखें बैठ जाती हैं, मुख कम्या सा प्रतीत होता है, तथा दृष्टि नीचे को रहती है. इस पार का करनेवाका जन इस प्रकार सबसीत और चिन्तातुर दीख पडता है कि सानो उसका पापाचरण वसरे को द्वात हो जावेगा, उस का खमान डरपोक बन जाता है और उस की छाती (कडेजा वा दिल) वहत ही असाहसी (नाहिम्मत) हो जाती है, यहां तक कि वह एक साधारण कारण से भी भड़क उठता है, उसे नीद कम आती है और खप्न बहुत आते हैं. उस के हाथ पैर बहुधा उढ़े होते हैं (शरीर की शक्ति के सह हो जाने का यह एक खास चित है), यदि इस कुटेब का शीप्र ही अवरोध (स्काबट) कर शरीर के सुवारने का योग्य उपाय न किया जाने तो क्ररीर का प्रतिदिन क्षय होता जाता है, नमें सिंचने स्पती हैं, नसं तन जाती हैं और संक्रवित हो जाती हैं तथा तान और ऑक्की का रोग उत्पन्न हो जाता है, बहुवा हर खराबी से अपस्मार अर्थात् सूची का असाव्य रोग हो जाता है. हिशीरेया का भूत भी उस के करीर में इसे दिना नहीं रहता है (अवश्य इस जाता है) उस के इस जाने से वेचारा जवान महान्य क्षांवे पागर के समान अथवा धर्वया ही उत्मादी (पागळ) वन जाता है. ऊपर कही हुई खरावियों के विवाय दूसरी भी छोटी २ ग्रप्त खरावियां होती हैं जिन को रोगी खबं ही समझ सकता है तथा प्राय: रूका के कारण उन को वह पूसरों से नहीं कह सकता है और यदि कहता भी है तो उन के मूछ कारण को प्रत है रराता है और विशेष कर माता पिता आदि वहें जनों को तो इन सब चरावियों से अनिमह ही रखता है, इस ग्राप्त खरावियों का कुछ वर्णन इस प्रकार है कि-सारणशक्ति कम हो जाती है, तन्द्रक्ती में अव्यवस्था (गढवड) हो जाती है, खभाव में एकदम परिवर्शन (फेरफार) हो जाता है, नगरता कम हो जाती है, काम काज में आख्स और निक्ताह रहता है, मन ऐसा अव्यवस्थित और अस्पिर वन जाता है कि उस से कोई काम नियम के साथ तथा निधवपूर्वक नहीं हो सकता है, मगज सम्बन्धी सब कार्य निर्वेल पड जाते हैं, पेशाव करते समय उस के कुछ दर्द होता है अथवा पेशाव की हाज़त वार्तार हुआ करती है, मूत्रस्थान का मुख लाल रंग का हो जाता है, वीचे का स्वाव वार वार हुआ करता है, साधारण कारण के होने पर भी वह अधीर, भीर और साहसतीन हो जाता है, वीर्ज पानी के समान झरता है, वीर्यपात के साथ सनक सी हुआ करती है, कोधली में दर्द हुआ करता है तथा उस में मार श्रिक प्रतीत होता है और स्वाप में बार वार वीर्यपात होता है, कुछ समय के बाद धातुझाव सम्बन्धी अनेक शयहर रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिन से शरीर विलक्त्य निकम्मा हो जाता है, इस प्रकार शरीर के निकम्में पढ जाने से यह देनारा मन्द्रभाग्य मनुष्य घीरे २ पुरुषत्व से हीन हो जाता है, इसी प्रकार जो कोर स्त्री ऐसे दुराचरण में पड़ जाती है तो उस में से सीख़ के सब सहुण नष्ट हो जाते हैं तथा उस का खीरव धर्म भी नाम की प्राप्त हो जाता है।

जलन होती है तथा चिनग भी होती है इस लिये इसे चिनगिया सुज़ाल कहते है, इस के साथ में शरीर में बुलार भी भा जाता है, इन्द्रिय भरी हुई तथा कृठिन जेवड़ी (रस्सी) के समान हो जाती है तथा मन को अत्यन्त विकलता (वेचैनी) प्राप्त होती

शरीर के सम्पूर्ण वॉधों के बंध जाने के पहिले वो बालक इस इन्टेब में पह जाता है उस का शरीर पूर्ण बृद्धि और विकाश को प्राप्त नहीं होता है क्योंकि इस कटेन के कारण शरीर की वृद्धि और उस के विकाश में अवरोध (रुकावट) हो जाता है, उस की हिट्टिया कीर नरें अलकने अगृती हैं. ऑखें वैठ जाती हैं और उन के आस पास काळा कुँडाका साहो जाता है, ऑख का देज कम हो जाता है, दृष्टि निर्वल तथा कम हो जाती है, चेहरे पर फ़िस्स उठ कर फ़ुटा करती है, बाल झर पहते हैं, आये में टाल (टाट) पड जाती है तथा उस में दर्द होता रहता है, प्रष्टवद्य (पीठका बास) तथा कमर में जल (दर्द) होता है. सहारे के बिना सीवा बैठा नहीं जाता है, प्राताकाल विकोने पर से उठने को जी नहीं बाहता है तथा किसी काम में लगने की इच्छा नहीं होती है इस्यादि । सत्य तो यह है कि अस्ताभाविक रीति से ब्रह्मावर्य के मग करने रूप पाप की ये सब खराबिया नहीं किन्तु उस से बचने के छिये ये सब शिक्षायें हैं, क्योंकि सृष्टि के नियम से विरुद्ध होने से सृष्टि इस पाप की शिक्षाओं (सजाओं) को दिये विना नहीं रहती है. हम को विश्वास है कि इसरे किसी बारीरिक पाप के लिये सप्टि के नियम की आवश्यक विश्वाओं में ऐसी कठिन शिक्षाओं का उल्लेख नहीं किया गया होगा और चूकि इस पापाचरण के लिये इतनी शिक्षायें कहीं गई हैं. इस से निवय होता है कि-यह पाप बढ़ा मारी है. इस महापाप को विचार कर यही कहना पहला है कि-इस पापाचरण की शिक्षा (सजा) इतने से ही नहीं पर्याप्त (काफी) होती है, ऐसी दशा में स्रष्टि के नियम को आदि कठिन कहा जावे वा इस पाप को आदि वका कहा जावे किन्त सृष्टि का नियम तो प्रकार कर कह रहा है कि इस पापाचरण की शिक्षा (सजा) पापाचरण करनेवाले की ही केवल नहीं मिलती है किन्तु पापानरण करनेवाके के उडकों को भी थोडी बहुत भोगनी आवस्यक है, प्रथम तो प्राय: इस पाप का आवरण करने वालों के सन्तान उत्पन्न ही नहीं होती हैं. यदि दैवयोग से उस नराधम को सन्तान प्राप्त होती हैं तो वह सन्तान भी बोदी वहुत मा वाप के इस पापाचरण की प्रसादी को छेकर ही उत्पन्न होती है. इस में सन्देह नहीं है, इस छेख से हमारा प्रयोजन तरुण बयवालों को सङकाने का नहीं है किन्त इन सब सख बातों को दिसला कर उन को इस पापाचरण से रोकने का है तथा इस पापाचरण में पड़े हुओं को उस से निकालने का है, इस के अतिरिक्त इस केन्द्र से हमारा यह भी प्रयोजन है कि-बोन्य माता पिता पहिन्ने ही से इस पापाचरण से अपने वालको को बचाने के लिये पूरा अयक करें सौर ऐसे पापाचरण वाळे ळोगों के भी जो सन्तान होवें तो उन की भी उन की अच्छी तरह से देख रेख और सम्माळ रखनी चाहिये क्योंकि मा वाप के रोगों की प्रसादी छेकर जो छडके उत्पन्न होते हैं उस प्रसादी की कुटेन भी उन में अनस्य होती है, इसी नियम से इस पापाचरण वालों के जो लड़के होते है उन में भी इस (हाय से नीवैपात करनेरूप) कुटेन का सम्बार रहता है, इस किये जिन मा नापों ने अपनी अज्ञा-नावस्था मे जो २ मूळें की हैं तथा उन का जो २ फळ पाया है उन सब बानों से वित्र होकर और उस विषय के अपने अनुभव को ध्यान में अकर अपनी सन्तति को ऐसी कुटेव में न पढ़ने टेने के लिये प्रतिक्षण उस पर दृष्टि रखनी चाहिये और इस कुटेर्व की खरानियों को अपनी सन्तित को सुरिक्त के द्वारा बतला देना चाहिये ।

है, कभी २ इन्द्रिय में से छोड़ भी गिरता है, कभी २ इस रोग में रात्रि के समय इन्द्रिय जागृत (चैतन्य) होती है और उस समय वांकी (टेडी) होकर रहती है तथा उस के कारण रोगी के असख (न सहने योभ्य अर्थात् वहुत ही) पीड़ा होती है, कभी २

त्रिय वाचक सज्जो ! आप ने देखा होगा कि जिस छड़के में नी दश्च वर्ष की अवस्था में अति व्यवका थी, जो दुदिमान् था, जिस के कपोर्जे (गार्कों) पर युखाँ थी, तथा चेहरे पर तेज और कांति थी नहीं छडका दिना विवाह आदि किसी हेतु के कुछ समय के बाद मठीन बदन सथा और का और हो गया है, इस का करण वहीं पापाचरण की विमृति है, वर्षोंकि बह पाप सृष्टि के निगम से ही ग्रास न रह कर उस के चेहरे आदि अहाँ पर शक्क जाता है।

बहुत से व्यभिचारी और दुराचारी जन संवार को दिखाने के किये अनेक कपट वेप से रहकर अपने को नहाचारी प्रसिद्ध करते हैं तथा भोले और अक्षान स्त्रेग मी उन के कपट देप को न समझ कर उन्हें शहाचारी ही समझने लगते हैं, परन्त पाठक वर्ग ! बाप इस बात का निथय रक्खें कि जहाचारी प्रस्त का भेहरा ही उस के प्रहाचर्य की गवाही दे देता है, बस छोग जिन को उन के व्यवहार से प्रहाचारी समग्रे हैं. यदि उन का चेहरा ब्रह्मचर्य की गवाही न दे तो आप उन्हें ब्रह्मचारी कभी न समहें। (प्रश्न) आप ने अपने इस प्रम्य में इस प्रकार की ये वातें क्यों किसी हैं. क्योंकि दूसरों के दोयों को प्रकट करना इन ठीक नहीं समझते हैं, इस के लिवाय एक यह भी वात है कि यह संसार विचित्र है, इस में सब ही प्रकार के मनुष्य होते हैं अपात विष्ठाकारी (श्रेष्ठ आकार वाले) भी होते हैं तथा दरावारी भी होते हैं. क्योंक संसार की माया ही वहीं विचित्र है, इस संसार में सब एक से नहीं हो सकते हैं और ऐसा होने से ही एक को हानि तथा इसरे को जाम पहुँचता है. जैसे देखो । इस कार्य (हाथ से वीर्यपात) के करनेवाडे जो मताम हैं उन को जब कुछ हानि पहुँचवी है तब वैद्यों को लाम पहुँचता है, भक्षा सोचने की बात है कि-यदि सब ही सहसीब के हारा धर्मात्मा और नीरोग बन वार्वे तो बेकारे विहान किस को उपदेश हैं तथा बेच वा डाक्टर किस की चिकित्सा करें. तात्पर्य यह है कि इस संसारकक में सदा से ही विविधता चली आई है और ऐसी ही चली जावेगी, इस छिये बिद्वान को किसी के छिड़ों (दोवों) को प्रकाशित (जाहिर) नहीं करना चाहिये । (उत्तर) बाह जी बाह ! यह तुसारा प्रश्न तुसारे अन्तःकरण की विक्रता का ठीक परिचय देता है, बढ़े शोक और आश्चर्य की बात है कि द्वम को ऐसा प्रश्न करने में तनिक भी लमा नहीं आई और द्वम ने ज़रा भी मालुपी बुद्धि का आश्रय नहीं किया ! इसने इस प्रन्य में जो इस प्रकार की वार्ते लिखी हैं उन से हमारा प्रयोजन दूसरे के दोवों के प्रकट करने का नहीं है किन्तु सर्व साधारण को दुर्गुणों के दोष और हानियों को दिखाकर उन से बचाने और चेताने का है, देखी। इस कुटेव के कारण हजारों का सखानाश हो गया है तथा होता जाता है, अतः हमने इस के खरूप की दिखा-कर जो इस की हानियों का वर्णन कर इस से वचने के छिये उपटेश किया तो इस में क्या हुता किया, देखों । प्राणियों को मूल और होप से बचाना इमारा क्या किन्तु मनुष्यमात्र का यही कर्त्तव्य है, रही संवार . की विचित्रता की बात, कि यह संसार विचित्र है-इस में सब ही प्रकार के सनुष्य होते हैं अर्थात् शिध-चारी भी होते हैं और दुराचारी भी होते हैं इस्साद, सो वेशक यह ठीक है, परन्तु सुम ने कमी इस वात का भी विचार किया है कि मलुष्य हुराचारी क्यों होते हैं, इस के कारण को चिद विचार कर देखीये तो तुर्के माद्रम हो जायगा कि मनुष्यों के दुराचारी होने में कारण केवळ क्रचंस्कार ही है, वस उसी क्रवंस्कार

वृषण (अण्डकोष) स्व कर मोटे हो जाते हैं और उन में अत्यन्त पीड़ा होती है, पेशाव के बाहर आने का जो छम्बा मार्ग है उस के किसी माग में युजाल होता है, जब अगळे भाग ही में यह रोग होता है तब रसी थोड़ी आती है तथा ज्यों २ अन्दर के

को इटाना तथा भावी सन्तान को उस से बचाना इमारा अमीष्ट है, हमारा ही क्या, किन्तु सर्व संवानों और महारमाओं का नहीं अभीष्ट है और होना ही चाहिये, क्योंकि निम्नान पाकर जो अपने मुखे हए साई को कुमार्ग से नहीं इटाता है वह मनुष्य नहीं किन्तु साक्षात् पञ्च है, अब जो तुम ने हानि लाम की बात कही कि एक की हानि से दूसरे का लाम होता है इत्यादि, सो तुहारा यह कथन विलक्क अञ्चानता और बालकपन का है. देखों ' सब्बन वे हैं जो कि दूसरे की हानि के विना अपना काम चाहते हैं, किन्तु जो परहानि के द्वारा अपना जास चाहते हैं वे नराधम (नीन मनुष्य) है, देखी। नो योग्य नैय और बानटर हैं वे पात्रापात्र (योग्यायोग्य) का विचार कर रोगी से द्रव्य का महण करते हैं, किन्तु को (वैद्य और डाक्टर) यह चाहने हैं कि मनुष्याण तुरी सादतों में पढ़ कर खुद दु स मीगें और हम खुद उन का घर लटे. उन्हें साक्षात राक्षस कडना चाहिये. देखों 1 संसार का यह व्यवहार है कि—एक का काम करके दूसरा अपना निर्वाह करता है, वस इस प्रथा के अनुकूल वर्तांव करनेवाले को दोषास्पद (दोप का स्थान) नहीं कहा जा सकता है. जत: वैद्य रोगी का नाम करके अर्थात रोग से मुक्त करके उस की योग्यतात्रसार ध्रम केने तो इस में कोई अन्यथा (अनुचित) वात नहीं है, परन्तु उन की मानसिक शति खार्थतत्पर और निकृष्ट नहीं होनी चाहिये, क्योंकि मानसिक कृति को खार्थ में तत्पर तथा निकृष्ट कर व्युरों को हानि पहेंचा कर जो खार्थितिक चारते हैं वे नराधम और परापकारी समझे जाते हैं और उन का उक्त व्यवहार स्पृष्टिनियम के विरुद्ध माना जाता है तथा उस का रोकना अलावस्थक समझा गया है, यदि उस का रोकना तम आवस्थक नहीं समझते हो तथा निकृष्ट मानसिक वृत्ति से एक को हानि पहुँचा कर भी दूसरे के स्नाम होने को उत्तम समझते हो तो अपने पर में प्रसते हुए चीर की क्यों कलकारते हो है क्योंकि तहारा धन के जाने के द्वारा एक की हानि और एक का काम होना तहारा अमीए ही है. यदि तहारा सिद्धान्त मान किया जाने तन तो संसार मे चोरी जारी आदि अनेक कुरिसताचार होने छगेंगे और राजशासन आदि की भी मोई आवश्यकता नहीं रहेगी, महा खेद का विषय है कि-व्याह जादियों मे रण्डियो का नचाना, उन को द्रव्य देना, उस द्रव्य को दुरे मार्ग में खगवाना, वको के संस्कारों का विगाडना, रण्डियों के साथ में (मुकाबिले में) घर की कियों से गालियों गमा कर उन के संस्कारों का विगाडना, आतिशवाजी और नास तमाशों में हजारों रुपयों को फ्रेंक देना. धाल्यावस्था में सन्तानों का विवाह कर उन के अपक्ष (कर्न) वीर्य के नाश के लिये प्रेरणा करना तथा अनेक प्रकार के द्वरे व्यसनों में फॅसते हुए सन्तानों को न रोकना, इलादि महा द्यानिकारक वातों को तो तुम अच्छा और ठीक समझते हो और उन को करते हए तुझें तनिक भी लजा नहीं आती है किन्तु हमने वो अपना कर्तव्य समझ कर कामदायक (फायदेमन्द) शिक्षाप्रद (शिक्षा अर्थात् नसीहत देने वाळी) तथा जगत् कल्याणकारी वातें छिखी है उन को त्रम ठीक नहीं सम-झते हो, नाह जी नाह ¹ थन्य है दुझारी बुद्धि ! ऐसी २ बुद्धि और निचार रखने वाळे हुझीं छोगों से तो इस पनित्र आर्यावर्त्त देश का सत्यानाश हो गया है और होता जाता है, देखो ! बुद्धिमानों का तो यही परम (मुख्य) कर्तव्य है कि जो बुद्धिमान् जन गृहस्यों को काम पहुँचाने नाले तथा शिक्षाप्रदं उत्तम २

(पिछले अर्थात् मीतरी) माग में यह रोग होता है त्यों २ रसी विशेष निकलती है और वेसणी (बैठक) के माग में भार (बोझ) सा मतीत (माछम) होता है और पीड़ा विशेष होती है, कभी २ शिक्ष के अंदर भी चाँदी पड़ जाती है और उस में से रसी निकलती है परन्तु उसे सुजा़ल का रोग नहीं समझना चाहिये, चाँदी मायः आगे ही होती है और वह सुल पर ही दीखती है, परन्तु जब भीतरी माग में होती है तब इन्द्रिय का भाग कठिन और गीला सा प्रतीत (माछम) होता है।

. सुजाल के ऊपर कहे हुए वे कठिन चिह्न दश से पन्द्रह दिन तक रह कर मन्द (.नरम) पड़ जाते हैं, रसी कम और पत्रली हो जाती है तथा पीली के बदले (खान में) . सफेद रंगकी आने लगती है, जलन और चिनग कम हो जाती है तथा आखिरकार विक्रक्त बन्द हो जाती है, तात्पर्य यह है कि—दो तीन हत्फे में रसी विल्कुल बंद होकर सुजाख मिट जाता है, परन्तु जब सफेद रसीका थोड़ा र माग कई महीनों तक निकलत रहता है तब उस को प्राचीन प्रमेह (पुराना सुजाल) कहते हैं, इस पुराने सुजाल का मिटना बहुत कठिन (मुश्किल) हो जाता है अर्थात् दो चार मास तक इस के छित्र (छेद) बंद रहते हैं, लेकिन जब कुछ गर्म पदार्थ खाने में आ जाता है तब ही वह फिर माछम पड़ने लगता है अर्थात् पुनः सुजाल हो जाता है, सुजाल के पुराने हो जाने से शिष्ठ ही उस में से मूत्रकृच्छ अर्थात् मूत्रगांठ उत्पन्न हो जाती है और वह इतना कष्ट देती है कि रोगी और वैद्य उस के कारण हैरान हो जाते हैं तथा यह निश्चित (निध्य की हुई) बात है कि पुराने सुजाल से मायः मूत्रकृच्छ हो ही जाता है।

ं कभी २ धुजाल के साथ वद भी हो जाती है तथा कभी २ धुजाल के कारण इन्द्रिय के ऊपर मस्सा भी हो जाता है, इन्द्रिय का फूछ सुज जाता है और उस के वाहर चाँदे

छेखों को प्रकाशित (ज़ाहिर) करें उन के उक्त केखों को पढ़ें और उन्हें विचारें तथा यदि वे केख अपने हितकारक माछ्म पढ़ें तो उन का खय अक्षीकार कर अपने दूसरे माइयों को उन (छेखों) का उपदेश देकर उन को सन्मार्ग (अच्छे राखें) में जाने की चेश करें तथा यदि वे छेख अपने को हितकारी प्रतीत (माछ्म) न हो तो उन्हें अपनी ही बुद्धि से अहितकारी न ठहराकर दूसरे बुद्धिमान् विवेकशील (विचार शाली) और दूरदर्शा जनों के साथ उन के विषय में विचार कर उन की सत्मता असत्मता तथा हितकारिता और अहितकारिता के विषय में निर्धार (निश्वय) करें, क्योंकि सत्मास्त्य आदि का विचार करना ही मामुवी बुद्धि का फल है।

ं यद्यपि इस विषय में हमें और भी बहुत कुछ लिखना था परन्तु अन्य के अधिक वह जाने के कारण अब कुछ नहीं लिखते हैं, हमें बांखा है कि-हमारी इस संक्षित (अक्तिसर) सूचना से ही बुद्धिमान जन तत्त्व को समझ कर कल्याणकारी (अखदायक) मार्ग का अवलम्यन कर (सहारा केकर) इस हु,खोदिष (ह.खसायर) संसार के पार पहुँचेंगे ॥ (चकत्ते) पड़ जाते हैं, यूत्राज्ञय अथवा वृषण का बरम (श्लोश) हो जाता है और कमी २ पेश्लाव भी रुक जाता है।

यद्यपि सुजाल शरीर के केवल इन्द्रिय माग का रोग है तथापि तमाम शरीर में उस के दूसरे भी चिह्न उत्पन्न हो जाते है, जैसे-शरीर के किसी माग का फूट निकलना, सिन्धयों में दर्द होना, प्रस्रवंश (पीठ के बांस) में वायु का मरना तथा आँखों में दर्द होना इत्यादि, तात्पर्य यह है कि-सुजाल के कारण शरीर के विभिन्न भागों में भी अनेक रोग पायः हो जाते है।

चिकित्सा—१—धुजाल का प्रारंग होने पर यदि उस में शोय (स्जन) अधिक हो तथा असहा (न सहने योग्य) नेदना (पीड़ा) होती हो तो नेसणी के ऊपर थोड़ी सी जोंकें लगवा देनी चाहियें, परन्तु यदि अधिक शोथ और विशेष नेदना न हो तो केवल गर्म पानी का सेक करना चाहिये।

२-इन्द्रिय को गर्म पानी में मिगोये हुए कपड़े से छपेट छेना चाहिये।

३—रोगी को कमर तक कुछ गर्म (सहन हो सके ऐसे गर्म) पानी में दश से लेकर बीस मिनट तक बैठाये रखना चाहिये तथा यदि आवश्यक हो तो दिन में कई बार भी इस कार्य को करना चाहिये।

8-पेशाब तथा दस्त को लानेवाली औषियों का सेवन करना चाहिये I

५—इस रोग में पेशान के अन्छ होने के कारण जलन होती है इस लिये आलक्ली तथा सोडा पोटास आदि क्षार (खार) देना चाहिये।

६-इस में पानी अधिक पीना चाहिये तथा एक माग दूध और एक माग पानी मिला कर घीरे २ पीते रहना चाहिये।

७—अलसी की चाय बनवा कर पीनी चाहिये तथा जी का पानी उकाल (उबाल) कर पीना चाहिये, परन्तु आवश्यकता हो तो उस पानी में थोड़ा सा सोडा मी मिला लेना चाहिये।

८-गोख़रू, ईशवगोल, तुकमालम्बा, बीदाना, बहुफ़ली तथा मौलेठी, इन में से चाहे जिस पदार्थ का पानी पीने से पेशाव की वेदना (पीड़ा) कम हो जाती है।

९—सब से प्रथम इस रोग में यह औषधि देनी चाहिये कि—छाइकर आमोनी एसेटे-टिस दो औस, एसेटेट आफ पोटास नव्बे (९०) ग्रेन, गोंद का पानी एक धौस तथा कपूर का पानी तीन औस, इन सब दवाओं को मिछा कर (चौथाई) माग दिन में चार वार देना चाहिये, परन्तु स्मरण रहे कि उक्त दवा का जो प्रथम माग (पिहछा चौथाई हिस्सा) दिया जावे उस के साथ दक्त छाने के लिये या तो चार झाम विछायती निमक मिछा देना चाहिये अथवा समय तथा प्रकृति के अनुसार दूसरी किसी औषिष को मिला देना चाहिये, खर्थात् गुलाव की कली का, सोनामुसी (सनाय) का तथा एक वा ढेड़ औस ऐपसम साल्ट का एक जुलाव देना चाहिये।

१०-यदि ऊपर लिखी दवा से फायदा न हो तो लाइकर पोटास ६० मिनिम, सोरा-खार १ ड्राम, टिंकचर आफ हायोसाइम २ ड्राम तथा चूनेका पानी ४ औस, इन सब को मिला कर १ भाग दिन में चार वार देना चाहिये।

११-पाषाणभेद, धनिया, बमासा, गोखुरू, किरमाला (अमलतास) तथा गुड़, इन सब को प्रत्येक को आधे २ तोले लेकर तथा सब को एक सेर पानी में मिगो कर छान लेना चाहिये, पीछे दिन में दो तीन वार में वह पानी पिला देना चाहिये।

१२—चावलों का घोषन एक सेर, केसू के फूछ एक तोला, दाल (मुनका) एक तोला तथा त्रिफले का चूर्ण एक तोला, इन सब जीषघों को चावलों के घोषन में दो घण्टे तक भिगो कर तथा कुचल कर उन के पानी को छान लेना चाहिये और वही जल सेवेरे और शाम को पिलाना चाहिये।

१३—बहुफली ३ झ्रम और सोहा ३० श्रेन, इन दोनों औषधियों को मिला कर तीन पुड़ियां बना लेनी चाहिये तथा दिन में तीन वार (सनेरे, दुपहर और श्राम को) एक पुड़िया देनी चाहिये।

विशोष बक्तव्य—कपर लिखी हुई अंग्रेजी तथा देशी दवा यदि मिल सके तो शोड़े दिनों तक उस का सेवन कर उस के फल को देखना चाहिये परन्तु उस के साथ साधारण ख़ुराक को खाना चाहिये, मद्य, मिर्चे, मसाला, हीग और तेल आदि गर्म पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये।

देशी वैद्यक शास ने यद्यपि सुजास में दूध के पीने का निषेध किया है परन्तु डाक्टर त्रिमुवनदास की सम्मति है कि इस रोग में दूध के सेवन से किसी प्रकार की हानि नहीं होती है, इस परस्पर निरोध का विचार कर इस निषय में परीक्षा (जॉच) की गई तो निदित (माल्स) हुआ कि दूध के सेवन से यद्यपि और कुछ निगाइ तो नहीं होता है परन्तु सुजाल के मिटने में देरी लगती है (सुजाल बहुत दिनों में अच्छा होता है)।

जब युजाल के कांठन चिह्न मन्द (कम) पड़ आवें तब नीचे लिखी हुई दबा तथा पिचकारी का उपयोग करना चाहिये, परन्तु तब तक उक्त दबाइयों को काम में नहीं लाना चाहिये।

बहुत से अज्ञान (मूर्ख) वैद्य मुजाल का प्रारंग होते ही पिचकारी लगवाते हैं, सी यह ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से लग्न होने के बदले प्रायः हानि ही देखी जाती है इस लिये एक वा दो हफ्ते के बाद जब मुजाल हलका पड़ जाने अर्थात् नलन कम हो जाने और रसी योड़ी सफेद तथा पतली आने लगे तब ऐट में लेने के लिये (खाने के लिये) तथा पिचकारी के लगाने के लिये नीचे लिखी हुई दबाइयों को काम में लाना चाहिये।

ं ऊपर कहे हुए कार्य के लिये-कोपेवा, कवागचीनी और चन्दन का तेल, ये मुख्य पदार्थ है, इस लिये इन को उपयोग में लाना चाहिये।

१४—आइल कोपेवा ४ झूम, आइल क्युवब २ झूम, म्युसिलेश अकासिया २ औंस, आइलसिनेमान १५ बूँद और पानी १५ औस, पहिले पानी के सिवाय चारों औषिघयों को मिला कर पीछे उस में पानी मिलावें तथा दिन में तीन वार खाना खाने के पीछे एक एक औस पीवें, इस दवा के बोड़े दिनों तक पीने से रसी (मवाद) का आना बंद हो जावेगा।

१५—यदि ऊपर लिखी हुई दवा से रसी का आना बंद न हो तो कवावचीनी की वूकी (बुरकी) है से है तोला तथा कोपेवा वालसाम ४० से ६० मिनिम, इन दोनों को एकत्र करके (मिला कर) उस के दो माग कर लेने चाहियें तथा एक माग सेवेरे और एक माग काम को घृत, मिश्री, अथवा कहद के साथ चाटना चाहिये।

अथवा केवल (अकेली) कवावचीनी की वृक्षी (बुरकी अथवा चूर्ण) दो दुअक्षीमर दिन में तीन वार वृत तथा मिश्री के साथ खाने से भी फायदा होता है।

इस के सिवाय-चन्दन का तेल भी अजाख पर बहुत अच्छा असर करता है तथा वह अंग्रेजी वालसाम कोपेवा के समान गुणकारी (फायदेमन्द) समझा जाता है।

१६—डीकर पोटास ३ झाम, सन्दरू (चन्दन) का तेरू ३ झाम, टिकचर आरेनिश-याई १ औस तथा पानी १६ औस, पिहले पानी के सिवाय श्रेष तीनों औषियों को मिला कर पीछे पानी को मिलाना चाहिये तथा दिन में तीन बार खाना खाने के पीछे इसे एक एक औस पीना चाहिये।

१७-दश से बीस मिनिम (बूंद) तक चन्दन के तेल को मिश्री में, अथवा बतासे में डाल कर सबेरे और शाम को अर्थात् दिन में दो बार कुछ दिन तक लेना चाहिये, यह (चन्दन का तेल) बहुत अच्छा असर करता है।

१८-पिचकारी--जिस समय ऊपर कही हुई दवाइयां की जाती हैं उस समय इन के साथ इन्द्रिय के मीतर पिचकारी के छगाने का भी कम अवश्य होना चाहिये, क्योंकि-ऐसा होने से विशेष फायदा होता है।

पिनकारी के लगाने की साधारण रीति यही है कि—काच की पिनकारी को दवा के पानी से मर कर उस (पिनकारी) के मुख को इन्द्रिय में डाल देना चाहिये तथा एक हाय से इन्द्रिय को और दूसरे हाथ से पिनकारी को दवाना चाहिये, जन पिनकारी साली होजाने (पिनकारी का पानी इन्द्रिय के मीतर चला जाने) तब उस को श्रीष्ट्र ही बाहर निकाल लेना चाहिये और दवा को थोड़ी देर तक मीतर ही रहने देना चाहिये अर्थात् इन्द्रिय को थोड़ी देर तक दवाये रहना चाहिये कि जिस से दवा बाहर न निकल

सके, शोड़ी देर के बाद हाथ को छोड़ देना चाहिये (हाथ को अलग कर लेना चाहिये अर्थात् हाथ से इन्द्रिय को छोड़ देना चाहिये) कि जिस से दवा का पानी गर्म होकर बाहर निकल जाने।

पिचकारी के लगाने के उपयोग (काम) में आने वाली दवाइयां नीचे लिखी जाती हैं:— १९—सलफोकार वोलेट लाफ जिंक २० ग्रेन तथा टपकाया हुआ (फिल्टर आदि किया से शुद्ध किया हुआ) पानी ४ औंस, इन दोनों को मिला कर ऊपर लिखे जनु-सार पिचकारी लगाना चाहिये।

२०-छेड वाटर ३० से ४० मिनिम, जस्त का फ्छ १ से ४ प्रेन, अच्छा मोरबोश १ से ३ प्रेन तथा पानी ५ औंस, इन सब को मिछा कर ऊपर कही हुई रीति के अनु-सार पिचकारी छगाना चाहिये ।

२१--कारवोलिक एसिङ २० ग्रेन तथा पानी ५ औंस, इन को मिलाकर दिन में भार वा पांच वार पिचकारी लगाना चाहिये।

२२—पुटासीपरमेंगनस २ थ्रेन को ४ औंस पानी में मिला कर दिन में तीन पिन-कारी लगाना चाहिये।

२२-नींबू के पत्ते, इमली के पत्ते, नींब के पत्ते और मेंहदी के पत्ते, मलेक दो दो तोले, इन सब को आध सेर पानी में औटा कर दिन में तीन वार उस पानी की पिवकारी लगाना चाहिये।

२४—मोरश्रोश २ रत्ती, रसोत १ मासा, व्यक्तीम १ मासा, सफेदा काशगरी १ मासा, गेरू ६ मासे, बबूळ का गोंद १ तोळा, कळमी छोरा २ रत्ती तथा बाजुफळ १ मासा, पिहळे गोंद को १५ तोळे पानी में बोंटना (खरळ करना) चाहिये, पीछे उस में रसोत डाळ कर घोंटना चाहिये, इस के बाद सब औषघियों को महीन पीस कर उसी में मिळा देना चाहिये तथा उसे छान कर दिन में तीन बार पिचकारी ळगाना चाहिये।

विशोष वक्तरुय जिप छिली हुई दवाह्यों को अनुक्रम से (क्रम २ से) क्रम में लाना चाहिये अर्थात् जो दवाई प्रथम लिसी है उस की पहिले परीक्षा कर लेकी चाहिये, यदि उस से फायदा न हो तो उस के पीछे एक एक का अनुसन करना चाहिये अर्थात् पांच दिन तक एक दवा को काम में लाना चाहिये, यदि उस से फायदा न माख्स हो तो दूसरी दवा का उपयोग करना चाहिये।

उक्त दवाओं में जो पानी का सम्मेल (मिलाना) लिला है उस (पानी) के बदले (एवज) में गुठाब जल मी डाल सकते हैं।

पिचकारी के लिये एक समय के लिये जल का परिमाण एक औंस अर्थात् २॥) रुपवे-भर है, दिन में दो तीन वार पिचकारी लगाना चाहिये, यह भी स्मरण रहे कि-पहिले गर्म पानी की पिचकारी को छगाकर फिर दवा की पिचकारी के छगाने से जल्दी फायदा होता है, पुराने छुजाल के छिये तो पिचकारी का छगाना जत्यावश्यक समझा गया है ॥

स्री के सुजाख का वर्णन ॥

पुरुष के समान स्त्री के भी छुजाल होता है अर्थात् छुजाल वाले पुरुष के साथ व्यभिचार करने के बाद पांच सात दिन के भीतर स्त्री के यह रोग प्रकट हो जाता है।

इस की उत्पत्ति के पूर्व ये चिह्न दील पड़ते है कि अथम अचानक पेड़्न में दर्द होता है, वमन (उलटी) होता, है, पेट में दर्द होता है, अज अच्छा नहीं लगता है, किसी २ के ज्वर भी हो जाता है, दस्त साफ नहीं होता है तथा किसी २ के पेशाव जलती हुई उत्तरती है इत्यादि, ये चिह्न पाच सात दिन तक रह कर शान्त हो (मिट) जाते हैं तथा इन के शान्त हो जाने पर स्त्री को यथपि विशेष तकलीफ नहीं माख्स होती है परन्तु जो कोई पुरुष उस के पास जाता है (उस से संसर्ग करता है) उस को इस रोग की मसादी के मिलने का द्वार खुला रहता है।

स्त्री के जो युजाल होता है वह प्रदर से उपलक्षित होता है (जानलिया जाता है)!
युजाल प्रथम स्त्री की योनि में होता है और वह पीछे वह जाता है अर्थात् वहते २
वह मूत्रमार्ग तक पहुँचता है, इस लिये जिस प्रकार पुरुष के प्रथम से ही कठिन चिह्न
होते है उस प्रकार स्त्री के नहीं होते है, क्योंकि स्त्री का मूत्रमार्ग पुरुष की अपेक्षा बड़ा
होता है, इसी लिये इस रोग में स्त्रीको कोपेवा तथा चन्दन का तेल हत्यादि दवा की
विशेष आवश्यकता नहीं होती है किन्तु उस के लिये तो इतना ही करना काफी होता है
कि उस को प्रथम त्रिफले का जुलाब तीन दिन तक देना चाहिये, फिर महीना वा वीस
दिन तक साधारण खुराक देनी चाहिये तथा पिचकारी लगाना चाहिये, क्योंकि स्त्री के
लिये पिचकारी की चिकित्सा विशेष फायदेमन्द होती है।

देशी वैध इस रोग में स्त्री को प्रायः बंग मी दिया करते है।

सूचना—इस वर्तमान समय में चारों तरफ दृष्टि फैला कर देखने से विदित होता है कि इस दुष्ट शुजाल रोग से वर्त्तमान में कोई ही पुण्यवान् पुरुष वचे है नहीं तो प्रायः यह रोग सब ही को बोड़ा बहुत कष्ट पहुँचाता है।

इस रोग के होने से भी गर्मी के रोग के समान खून में विकार (विगाड़) हो जाता है, इस लिये खून को साफ करनेवाली दवा का महीने वा वीस दिन तक अवस्य सेवन करना चाहिये।

यह रोग भी गर्मी के समान वारसा में उतरता है अर्थात् यह रोग यदि माता पिता के हो तो पुत्र के भी हो जाता है। इस दुष्ट रोग से अनेक (कई) दूसरे भी भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं परन्तु उन सब का अधिक वर्णन यहां पर अन्य के बढ़जाने के सय से नहीं कर सकते हैं।

बहुत से अज्ञान (मूर्ख) छोग इस रोग के विद्यमान (मौजूद) होने पर भी स्नीसंगम करते हैं जिस से उन को तथा उन के साथ संगम करने वाली स्नियों को वड़ी भारी हानि पहुँचती है, इस लिये इस रोग के समय में झीसंगम कदापि (कमी) नहीं करना चाहिये।

बहुत से लोग इस रोग के महाकप्ट को भोग कर के भी पुनः उसी मार्ग पर चलते है, यह उन की परम अज्ञानता (वड़ी मूर्वता) है और उन के समान मूर्व कोई नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से वे मानो अपने ही हाब से अपने पर में कुल्हाड़ी मारते हैं और उन के इस व्यवहार से परिणाम में जो उन को हानि पहुँचती है उसे वे ही जान सकते हैं, इस लिये इस रोग के होने के समय में कदापि खीसंगम नहीं करना चाहिये॥

कास (खांसी) रोग का वर्णन ॥

कारण—नाक और मुख में घूल तथा धुओं के जाने से, मितिहिन रूक्ष (रूखे) अन्न और अधिक व्यायाम के सेवन से, आहार के कुपथ्य से, मल और मूत्र के रोकने से तथा छींक के रोकने से माणवायु अत्यन्त दुष्ट होकर तथा दुष्ट उदान वायु से मिल कर कास (खाँसी) को उत्पन्न करती है।

भेद--कास रोग के पॉच भेद हैं-वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, क्षत (पाव)
* जन्य और क्षयजन्य, इन पॉचों में से कम से पूर्व की अपेक्षा उत्तरीत्तर बलवान होता है।

स्वया—वात के कास रोग में प्रायः हृदयं, कनपटी, मस्तकः उदर और पसवाहे में शूल (पीड़ा) होता है, मुँह उतर जाता है, वल (शक्ति); खर (आवाज) और पराक्ति मस्ति हो जाता है, वारंवार तथा सूखी खांसी उठती है और स्वरमेद हो जाता है (आवाज वदल सी जाती है)।

पित्त के कास रोग में प्रायः इदय में दाह (जलन), ज्वर, मुल का सूलना तथा कड़ु जा रहना, प्यास का लगना, पीले रंग के तथा कड़ु प्रवम का होना, शरीर के रंग का पीला हो जाना तथा सब देह में दाह का होना, इत्यादि लक्षण होते हैं।

कफ के कास रोग में कफ से मुख का लिप्त (लिसा) रहना, अन्न में अरुचि, श्रीर का मारी रहना, कण्ठ में साज (खुजली) का चलना, वारंनार सांसी का उठना, तथा थूँकने के समय कफ की गाँठ गिरना, इत्यादि लक्षण होते हैं।

क्षत (घाव) के कास रोग में प्रथम सूली खॉसी का होना, पीछे रुधिर से युक्त शूक का गिरना, कण्ठ में पीड़ा का होना, इदय में धुई के जुमने के समान पीड़ा का होना, दोनों पसवाड़ों में शूरू का होना, सन्वियों में पीड़ा, ज्वर, क्वास, प्यास तथा स्वर मेद का होना, इत्यादि लक्षण होते हैं।

यह क्षतज्ञन्य कास रोग बहुत स्नीसंग करने से, मार के उठाने से, बहुत मार्ग चलने से, कुश्ती करने से तथा दौड़ते हुए हाथी और घोड़े आदि के रोकने से उत्पन्न होता है अर्थात् इन उक्त कारणों से रूक्ष पुरुष का इदय फट जाता है तथा वायु कुपित होकर खांसी को उत्पन्न कर देता है।

क्षय के कास रोग में ऋरीर की क्षीणता, शूळ, ज्वर, दाह और मोह का होना, सूखी खांसी का उठना, रुधिर मांस और शरीर का सूख जाना तथा थूक में रुधिर और कफ-संयुक्त पीप का आना, इत्यादि छक्षण होते है ।

यह क्षयजन्य कास रोग कुपथ्य और विषमाञ्चन के करने से, अतिमैश्चन से, मल और मूत्र आदि बेगों के रोकने से, अति दीनता से तथा अति शोक से. अप्रि के मन्द हो जाने से उत्पन्न होता है।

चिकित्सा-१-वायु से उत्पन्न हुई खांसी में-वधुना, मकोय, कची मूली और चौपतिया का शाक लाना चाहिये, तैल आदि खेह, दूघ, ईल का रस, गुड़ के पदार्थ, वहीं, कांजी, खड़े फल, खड़े मीठे पदार्थ और नमकीन पदार्थ, इन का सेवन करना चाहिये।

अथवा-दश मूळ की यवागू का सेवन करना चाहिये, क्योंकि-यह यवागू श्वास खांसी भौर हिचकी को शीघ्र ही दूर करती है तथा यह दीपन (अध्र को प्रदीस करने वाळी) और वृष्य (बलदायक) भी है।

२-पित्त से उत्पन्न हुई खांसी में-छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, दाख, कपूर, छुगन्यवाला, सोंठ और पीपल का काय बना कर तथा उस में शहद और मिश्री ढाल कर पीना चाहिये।

६-कफ से उत्पन्न हुई खांसी में-पीपल, कायफल, सोंट, काक़ड़ासिंगी, मारंगी, काली मिर्च, कछौजी, कटेरी, सम्हाळ, अनवायन, चित्रक और अद्भुसा, इन के काथ में पीयल का चूर्ण डाल कर पीना चाहिये।

४-क्षत से उत्पन्न हुई खांसी में-ईख, कमल, इश्चवालिका (ईख का भेद), कमल की ढंढी, नील कमल, सफेद चन्दन, महुजा, पीपल, दाल, लाल, काकड़ासिंगी और सतावर, इन सब को समान भाग है, वंशलोचन दो माग तथा सब से चीगुनी मिश्री मिलावे, पीछे इस में शहद और मक्खन मिला कर प्रकृति के अनुसार इस की यशोचित मात्रा का सेवन करे।

५-सय से उत्पन्न हुई खांसी में-कोह के चूर्ण में अहुसे के रस की. अनेक भावनार्थ दे कर तथा उस में शहद मिश्री और मक्खन मिला कर उस का सेवन करना चाहिये। ६-वेर के पत्ते को मनशिल से लपेट कर उस लेप की पूप में असा लेना चाहिये. पीछे उस के धुएँ का पान (घृष्ट्रपान) कराना चाहिये, इस से सन प्रकार की सांसी मिट जाती है।

७-कटेरी की छारू और पीपल के चूर्ण को शहद के साथ में चाटने से सब मकार की खांसी दूर होती है।

८—प्रथम बहेड़े को घृत में सान कर तथा गोवर से छपेट कर पुटपाक कर छेना चाहिये, पीछे इस के छोटे र इकड़े कर मुख में रखना चाहिये, इस से मब प्रकार की खांसी अवश्य ही दूर हो जाती है।

९—चित्रक की जड़ और छाल तथा पीपल, इन का चूर्ण कर शहदं से चाटना चाहिये, इस से खांसी, श्वास और हिचकी दूर हो जाती है।

१०-नागरमोथा, पीपल, दाख तथा पका हुआ कटेरी का फल, इन के चूर्ण को वृत और शहद में मिल्रा कर चाटना चाहिये, इस के सेवन से क्षयजन्य खांसी दूर हो जाती है।

११-कींग, जायफल और पीपल, वे मत्येक दो २ तोले, काली मिर्च चार तोले, तथा सोंठ सोलह तोले, इन सब को वारीक पीस कर उस में सब चूर्ण के बराबर मिश्री को पीस कर मिलाना चाहिये तथा इस का सेवन करना चाहिये, इस का सेवन करने से खांसी, ज्वर, अरुचि, ममेह, गोला, श्वास, मन्दामि और संम्रहणी आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

अरुचि रोग का वर्णन ॥

भोद (प्रकार)—अरुचि रोग आठ प्रकार का होता है—बातजन्य, पित्रजन्य, कम-जन्य, समिपातजन्य, शोकजन्य, भयजन्य, अतिलोभजन्य और अतिकोधजन्य।

कारण — यह अरुचि का रोग प्रायः मन को क्रेश देने वाले अल रूप और गन्य आदि कारणों से उत्पन्न होता है, परन्तु सुश्चत आदि कई आचार्यों ने वात, पित, कफ, सिनिपात तथा मन का सन्ताप, वे पांच ही कारण इस रोग के माने हैं, अतएव उन्हों ने इस रोग के कारण के आश्रय से पांच ही मेद भी माने हैं।

स्वक्षण-भातवन्य अरुचि में-दाँतों का खट्टा होना तथा मुख का कवैला होना,

ये दो सक्षण होते हैं।

पित्तजन्य अरुचि में मुख-कडुआ, खड़ा, गर्म, विरस और दुर्गन्य युक्त रहता है।
कफ्तजन्य अरुचि में मुख-खारा, मीठा, पिच्छल, भारी और श्रीतल रहता है तथा
आँतें कफ से लिस (लिसी) रहती हैं।

शोक, भय, अतिलोभ, क्रोघ और मन को बुरे लगनेवाले पदार्थों से उत्पन्न हुई अरुचि में—मुख का साद सामाविक ही रहता है अर्थात् वातजन्य आदि अरुचियों के

समान मुख का साद सट्टा सादि नहीं रहता है, परन्तु शोकादि से उत्पन्न अरुचि में केवल भोजन पर ही अनिच्छा होती है।

सिन्नपातजन्य अरुचि में अनेक रसों का प्रतीत होना तथा मुख में अनेक रसों का प्रतीत होना, इत्यादि चिह्न होते है।

चिकित्सा—१-मोजन के प्रथम सेंघा निमक मिला कर अदरल को खाना चाहिये, इस के खाने से अन्न पर रुचि, अग्नि का दीपन तथा जीम और कण्ठ की शुद्धि होती है।

२—अदरस के रस में शहंद डारू कर पीने से अरुचि, श्वास, खांसी, जुसाम और कफ का नाश होता है।

३—पकी हुई इमली और सफेद बूरा, इन दोनों को श्रीतल जल में मिला कर छान लेना चाहिये, फिर उस में छोटी इलायची, कपूर और काली मिर्च का चूर्ण डाल कर पानक तैयार करना चाहिये, इस पानक के कुरलों को वारंबार मुख में रखना चाहिये, इस से अरुचि और पित्त का नाश होता है।

४—राई, अना हुआ जीरा, अनी हुई हीग, सोंठ, सेंघा निमक और गाय का दही, इन सब को छान कर इस का सेवन करना चाहिये, यह तत्काल रुचि को उत्पन्न करती है तथा जठरामि को बढाती है।

५-इमली, गुड़ का जल, दालचीनी, छोटी इलायची और काली मिर्च, इन सब को मिला कर मुख में कवल को रखना चाहिये, इस से अरुचि भीन्न ही दूर हो जाती है।

६—यवानी खाण्डय — अजवायन, इमली, सोंठ, अमलवेत, अनार और खहे वेर, ये सब प्रत्येक एक एक तोला, धनिया, संचर निमक, जीरा और दालचीनी, प्रत्येक छः २ मासे, पीपल १०० नग, काली मिर्च २०० नग और सफेद बूरा १६ तोले, इन सब को एकत्र कर चूर्ण बना लेना चाहिये तथा इस में से थोड़े से चूर्ण को कम २ से गले के नीचे उतारना चाहिये, इस के सेवन से इत्य की पीड़ा, पसवाड़े का दर्द, विवंध, अफरा, खांसी, श्वास, संग्रहणी और बवासीर दूर होती है, ग्रुख और जीम की शुद्धि तथा अन्न पर रुचि होती है।

७-अनारदाना दो पछ, सफेद बूरा तीन पछ, दालचीनी, पत्रज और छोटी इला-यची, ये सब मिला कर एक पछ, इन सब का चूर्ण कर सेवन करने से अरुचि का नाश होता है, जटराभि का दीपन और अन्न का पाचन, होता है एवं पीनस, खांसी तथा ज्वर-का नाश होता है॥

छर्दि रोग का वर्णन ॥

अपने वेग से मुल को पूरण कर तथा सन्धि पीड़ा के द्वारा सब अंगों में दर्द को उत्पन्न कर दोशों का जो मुल में आना है उस को छर्दि कहते हैं।

लक्ष्यण—वायु की छिंदें में —हृदय और पसवाड़ों में पीड़ा, मुलशोष (मुल का स्ला), मस्तक और नामि में शूळ, खांसी, खर मेद (आवान का वदल जाना), मुई चुमने के समान पीड़ा, डकार का शब्द, प्रवल वमन में झाग का आना, ठहर २ कर वमन का होना तथा थोड़ा होना, वमन के रंग का काला होना, क्षेत्रे और पतले वमन का होना तथा वमन के वेग से अधिक क्षेत्र का होना, इत्यादि चिह्न होते हैं।

पित्त की छर्दि में मूर्छा, प्यास, ग्रस्तशोष, मस्तक ताळु और नेत्रों में पीड़ा, कँघेरे और चक्कर का आना, और पीछे; हरे; कद्धए; गर्म; दाहयुक्त तथा घूमवर्ण वमन का होना, वे चिद्द होते हैं।

कफ की छिंदें में तन्द्रा (मींट), ग्रुख में मीठा पन, कफ का गिरना, सन्तोष (अब में अरुचि), निद्रा, चित्त का न लगना, श्ररीर का मारी होना तथा चिकने; गाड़े; मीठे और सफेद कफ के वमन का होना, वे चिह्न होते हैं।

सिनपात अर्थात् त्रिदोप की छिंदें में—रा्ल, अनीर्ण, अरुचि, दाह, प्यास, श्वास और मोद के साथ उलटी होती है तथा वह उलटी खारी; खट्टी; नीली; संघट (गाड़ी); गर्भ और ठाल होती है।

भागन्तुज छिंदें में-त्रथायोग्य दोषों के अनुसार अपने २ लक्षण होते हैं'!

कृमि की छर्दि में-शूळ तथा खाळी उर्लेटी होती है, एवं इस रोग में कृमि रोग और हृदय रोग के समान सब उक्षण होते हैं।

छिदिं के उपद्रव—सांसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, प्यास, अवेतनता (वेहोशी), हृदय रोग तथा नेत्रों के सामने कॅथेरे का आना, ये सब उपद्रव प्रायः छिदें रोग में होते हैं।

कारण — अत्यन्त पतले; चिकने; अप्रिय तथा लार से युक्त पदार्थों का सेवन करने से, कुसमय मोजन करने से, अधिक मोजन करने से, बीमत्स पदार्थों के देखने से, गरिष्ठ (मारी) पदार्थों के लाने से, अम; मय; उद्वेग; अजीर्ण; और क्रमिदोष से गर्भिणी बी की गर्म सम्बंधी पीड़ा से तथा वारंवार मोजन करने से तीनों दोष कुपित हो कर बल पूर्वक सुल का आच्छादन कर लेते हैं तथा अंगों में पीड़ा को उत्पन्न कर सुल के द्वारा पेट में पहुँचे हुए मोजन को बाहर निकालते हैं।

१.-जो कि पहिले पृथक् २ लिख चुके हैं ॥ २--खाड़ी उलटी होती है क्षर्यात उवकियों आकर रह जाती हैं ॥

चिकित्सा—१—आमाशय (होजरी) के उत्क्रेश के होने से छर्दि होती है, इस लिये इस रोग में प्रथम लंघन करना चाहिये !

२-यदि इस रोग में दोषों की अवलता हो तो कफापित्तनाशक विरेचन (जुलाव) लेना चाहिये।

३—वातजन्य छर्दि रोग में जल को दूध में मिला कर औंटाना चाहिये, जब जल जल कर केवल दूध श्रेप रह जावे तब उसे पीना चाहिये।

४—सूमिऑवले के यूष में वी और सेंघे निमक को मिला कर पीना चाहिये ।

५-गिलोय, त्रिफला, नीम की छाल और पटोलपत्र के कात्र में शहद मिला कर पीने से छिद दूर हो जाती है।

६-छोटी हरड़ के चूर्ण में शहद को मिला कर चाटने से दख के द्वारा दोशों के निकल जाने से शीव ही छर्दि मिट जाती है।

७-वायविड़ंग, त्रिफला और सोंठ, इन के चुर्ण को शहद में मिला कर चाटना चाहिये। ८-वायविड़ंग, केवटी, मोथा और सोंठ, इन के चुर्ण का सेवन करने से कफ की छर्दि

मिट जाती है।

९—ऑवले, खील और मिश्री, ये सब एक पल लेकर तथा पीस कर पाव भर जल में छान लेना चाहिये, पीछे उस में एक पल शहद को डाल कर पुनः कपड़े से छान लेना चाहिये, पीछे इस का सेवन करना चाहिये, इस का सेवन करने से त्रिदोष से उत्पन्न हुई छर्दि शीझ ही नष्ट हो जाती है।

१०-गिलोय के हिम में शहद डाल कर पीने से त्रिदोष की कठिन छिंद भी मिट जाती है।

११-पित्तपापड़े के काथ में शहद डाल कर पीने से पित्त की छिंदें मिट जाती है।

१२-एलादि चूर्ण-इलायची, लोग, नागकेशर, बेरै की गुठली, खीलै, पियङ्क, मोथा, चन्दन और पीपल, इन सब औषधियों को समान माग लेकर तथा इन का चूर्ण कर मिश्री और शहद को मिला कर उसे चाटना चाहिये इस से कफ, वायु और पित्त की छिदि मिट जाती है।

१२-सुले हुए पीपल के वक्कल (छाल) को लेकर तथा उस को जला कर राल कर लेना चाहिये, उस राल को किसी पात्र में जल डाल कर घोल देना चाहिये, थोड़ी देर में उस के नितरे हुए जल को लेकर छान लेना चाहिये, इस जल के पीने से छिंदें और अरुचि बीध ही मिट जाती है॥

१-हिम की विधि औपधप्रयोग वर्णन नामक प्रकरण में पहिले लिख चुके हैं ॥

२-वेर की अर्थात् झडवेरी के वेर की ॥

३-मूने हुए धान (जिन में से चावल निकळते हैं)॥

स्रीरोग (प्रदर) का वर्णन ॥

कारण—परस्पर विरुद्ध पदार्थ, मद्य, अध्यक्षन (भोजन के ऊपर भोजन करना), अजीर्ण, गर्भपात, अति मैश्रुन, अति चलना फिरना, अति श्रोक और उपवासादि के द्वारा श्रीर का कश होना, भार का ले जाना, लकड़ी आदि का लगना तथा दिन में सोना, इन कारणों से वात, पित्त, कफ और सिन्नपात का चार प्रकार का प्रदर रोग उत्पन्न होता है।

स्वकार सब प्रकार के प्रदरों में अंगों का टूटना तथा हाथ पैरों में पीड़ा होती है। बातजन्य प्रदर—रूखा, ठाल, झागों से मिठा हुआ, मांस तथा सफेद पानी के समान थोड़ा २ बहता है तथा इस में तोद (धुई के चुमाने के समान पीड़ा) और आक्षेपक बायु की पीड़ा होती है।

पित्तजन्य प्रदर---कुछ पीला, नीला, काला, लाल तथा गर्भ होता है, इस में पित के दाह से चमचमाहट युक्त पीड़ा होती है तथा प्रदर का वेग अधिक होता है।

कफजन्य प्रदर-आम रस (कचे रस) से युक्त, सेमर के गोंद के समान विकता, कुछ पीछा तथा मांस के धुछे हुए जल के समान गिरता है, इस की खेत पदर कहते है।

सिन्नपातजन्य प्रदर का रंग शहद, धी, हरताल और मज्जा के समान होता है तथा उस में मृत शरीर के गन्ध के समान गन्ध आती है, यह सिन्नपातजन्य प्रदर रोग असाध्य होता है।

अति प्रदर के उपद्रव—पदर के अत्यंत गिरने से—दुर्वेळता, अम, मूर्छी, मद, चृषा (प्यास), दाह (जळन), प्रलाप (बकना), पाण्डुरोग, तन्द्रा (मींट') और बात-जन्म आक्षेपक आदि रोग हो जाते हैं।

असाध्य प्रदर के लक्षण—जिस के पदर के रुघिर का लाव निरन्तर होता हो। पृषा; दाह और ज्वर हो, जो दुर्वळ हो तथा जिस का रुघिर क्षीण हो गया हो उस बी का यह रोग असाध्य माना जाता है।

चिकित्सा—१-दही चार तोले, काला निमक एक मासा, जीरा तो मासे, मौलेठी दो मासे, नीला कमल दो मासे और शहद चार मासे, इन को इकड़ा पीस कर खाने से वातजन्य प्रदर शांत हो जाता है।

२—मौलेठी एक तोला और मिश्री एक तोला, इन दोनों को चावलों के जल में, पीस कर पीने से रक्तप्रदर मिट जाता है।

याल कर नाग ता पुन्य राजिया है । इ—डाथवा—सिरिटी की जह का चूर्ण कर मिश्री और शहद के साथ साने से रक्त-प्रदर हूर हो जाता है ।

४-अथवा—किसी पवित्र स्थान से ज्वाजैनसी जै। पिषकी उत्तर की तरफ की जड़ को

१-इसे संस्कृत में वला कहते हैं ॥ २-इसे माधा में वधनकी कहते हैं, यह एक प्रकार की रूखड़ी होती है ॥

उतराफाल्गुनी नक्षत्र में उखाड़ कर उसे कमर में बाँधने से रक्तप्रदर अवश्य मिट जाता है। ५—रसोत और चौछाई की जड़ को वारीक पीस कर चावळों के जळ में इसे तथा शहद को मिळा कर पीने से त्रिदोष जन्य मदर नष्ट हो जाता है।

६—अशोक दृक्ष की चार तोले छाल को वत्तीस पल जलमें औटावे, जब आठ पल शेप रहे तब उस में उतना ही (आठ पल) दूध मिला कर उसे पुनः औटावे, जब केवल दूध शेष रह जावे तब उसे उतार कर शीतल करे, इस में से चार पल दूध प्रातःकाल पीना चाहिये, अथवा जठराशि का वलावल विचार न्यूनाधिक मात्रा का सेवन करे, इस से अति कठिन भी रक्तपदर शीझ ही दूर हो जाता है।

७---कुश की जड़ को चावलों के घोवन में पीस कर तीन दिन तक पीने से प्रदर् रोग शान्त हो जाता है।

-८---दारुहळदी, रसीत, चिरायता, अहुसा, नागरमीया, बेळगिरी, ळाळ चन्दन और क्रमोदिनी के फूळ, इन के काथ को श्रहद डाळ कर पीना चाहिये, इस के पीने से सब प्रकार का प्रदर अर्थात् ठाळ सफेद और पीड़ा युक्त मी शान्त हो जाता है ॥

राजयक्ष्मा रोग का वर्णन ॥

कारण—अधोवायु तथा मळ और मूत्रादि वेगों के रोकने से, क्षीणता को उत्पन्न करने वाले मैथुन; छंघन और ईप्यों आदि के अतिसेवन से, वलवान् के साथ युद्ध करने से तथा विषम मोजन से सिन्नपातजन्य यह राजयहमा रोग उत्पन्न होता है।

लक्ष्मण — कन्ये और पसवाड़ों में पीड़ा, हाथ पैरों में जलन और सब अंगों में जबर, ये तीन लक्षण इस रोग में अवस्य होते हैं, इस प्रकार के यहमा को जिल्हा यहमा कहते हैं। अब में अरुचि, ज्वर, श्वास, खासी, रुपिर का निकलना और खर्मगंग, ये छः लक्षण जिस यहमा में होते है जस को पद्क्प राजयक्ष्मा कहते हैं।

वायु की अधिकता बाले यक्ष्मा में-खरमेद, शूल, कन्चे और पसवाड़ों का सूखना, ये छक्षण होते है।

पित्त की अधिकता बाले यहमा में-ज्वर, दाह, अतीसार और शूक के सौथ में रुधिर का गिरना, ये लक्षण होते हैं।

कफ की अधिकता वाळे यक्ष्मा में मस्तक का कफ से मरा रहना, भोजन पर अरुचि, स्नांसी भीर कण्ठ का विगड़ना, ये लक्षण होते है।

सिनपातजन्य राजयश्मा में-सव दोपों के मिश्रित छक्षण होते है।

१-स्तरमङ्ग अर्थात् आवाज का दूर जाना, अर्थात् वेठ जाना ॥

२-मिश्रित अर्थात् मिळे हुए ॥

साध्यासाध्यविचार—जो यक्ष्मा रोग उक्त ग्यारह छक्षणों से युक्त हो, अश्वा छः छक्षणों से वा तीन छक्षणों (ज्वर खांसी और रुघिर का गिरना इन तीन छक्षणों) से युक्त हो उस को असाध्य समझना चाहिये।

हां इस में इतनी विशेषता अवश्य हैं कि—उक्त तीनों प्रकार का (स्यारह रुक्षणों वाला, छ: रुक्षणों वाला तथा तीन रुक्षणों वाला) यक्ष्मा मांस और रुधिर से क्षीण मनुष्य का , असींध्य तथा वलवान् पुरुष का कष्टसीध्य समझा जाता है।

इस के सिवाय—जिस यहमा रोग में रोगी व्यत्यन्त मोजन करने पर भी क्षीण होता जाने, अतीसार होते हों, सब अंग सूज गये हों तथा रोगी का पेट सूल गया हो वह यहमा भी असाध्य समझा जाता है।

चिकित्सा--१-जिस रोगी के दोष अत्यन्त बढ़ रहे हों तथा जो रोगी, बल्बान् हो ऐसे यक्षा रोगवाले के प्रथम वमन और विरेचन आदि पाँच कैर्म करने चाहिंगे,

१-असाध्य अर्थात् चिकित्सा से भी न मिटने वाला ॥

२-कष्टसाध्य अर्थात् सुविकल से मिटने वाला ॥

३-वमन, विरेचन, अनुवासन, निरुद्दन और नावन (नस्म), ये पाँच कमें कहाते हैं, इन में से बिक आदि का कुछ कथन पूर्व कर चुके हैं तथापि यहां पर इन पॉचों कमों का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं, सब से पहिला कमें बमन अर्थात् रालटी कराना है, इस की यह विधि है कि-कारद कार्य, वर्षा कार्य वसन्त ऋतु में वसन कराना चाहिये। वसन के योग्य प्राणी-वलवान्, जिस के कफ गरा है, हाजासादि कफ के रोगो से जो पीड़िन हो. जिन को बमन कराना हित हो तथा जो भीर बित्त वाका हो, इन सब को वसन कराना चाहिये, चमन के योग्य रोग-विषदोप, ब्यसम्बर्धा बालरोग, सन्दामि, कीपर, अर्द्वेद, हृदयरोग, क्रुष्ट, विसर्प, प्रमेह, अजीर्ण, अम, विदारिका, अपची, खांसी, श्वास, शीनस, अण्डहि, सृगी, ज्वर, उन्साव, रकातीसार, नाक ताछ और ओष्ठका पक्ता, कान का बहना, अविजिह, पलसुण्डी, अतीसार, पिसकफल रोग, मेदोरोग और अक्षित, इन रोगों में बमन कराना चाहिये, घमन कराना नियेश--तिर्मिररोगी, गुल्मरोगी, उदररोगी, इश, अखन्त इस, गर्भवती सी, अखन्त स्थूल, उरः क्षत आदि भाव वाला, मद्य से पीडित, बालक, रुक्ष, बिरूहण वस्ति जिस के की गई हो, उदावर्त तथा कर्च रक्त दित बाला और केवल वातजन्य रोग युक्त, इन की वयन बढी कठिनता से होता है, इस लिये इन सब को और प्राण्डुरोगी, क्रमिरोगी, पहने से जिस का कष्ठ नैठ गया हो, अर्जाणं से व्यथित और जी विप के विकार से बुद्धित है, इन सब को वसन कराना चाहिये, जो कफ से व्याप्त हैं, इन को सहुए का काबा पिला कर बमन कराना चाहिये, यदि सुकुमार, कृषा, नालक, वृद्ध और वमन से हरने वालों के इमन कराना हो तो यदौगू, दूष, छाछ, वा दही आदि पदार्थ पिछा कर वमन कराना चाहिये, वसन कराने का यह नियम है कि जिस को वसन कराना हो उस को जो पदार्थ अनुकूछ न हो अर्थात् अरुनिः कारी हो तथा कपकारी हो ऐसे पदार्थ को खिला कर अथम दोगों को उस्हेशित (निकलने के सम्मुख) कर दे, फिर सेहन भौर खेदन कर के वसन कराने, क्योंकि ऐसा करने से वसन ठीक हो जाता है, सब

परन्तु क्षीण और दुर्बल रोगी के उक्त पश्च कर्म नहीं करने चाहिये, क्योंकि क्षीण और दुर्बल रोगी उक्त पंच कर्मों के करने से श्रीष्म ही मर बाता है, क्योंकि क्षीण पुरुष के शरीर में उक्त पांचों कर्म विष के समान असर करते है, देखो ! आचार्यों ने कहा है कि— "राजयक्ष्मा वाले रोगी का बल मल के आधीन है और जीवन शुक्र के आधीन है" इस लिये यक्ष्मा वाले रोगी के मल और बीर्य की रक्षा सावधानी के साथ करनी चाहिये !

वमनकारी पदायों से संधानिसक और शहद हितकारी हैं. बसन में बीमत्स (जो न रुचे ऐसी) औषधि देनी चाहिये तथा विरेचन में रुचिकारी औषधि देनी चाहिये. कांद्रे की ४ वल औषधों को चार सेर जल में मौटावे. जब दो सेर जल क्षेत्र रहे तब उतार कर तथा छान कर वमन के लिये रोगी को देवें। मात्रा--वसन के लिये पीने बोजब साथ की खाठ सेर की मात्रा वही है, छ: सेर की मध्यम है और तीन सेर की मात्रा हीन होती है, परन्त वमन, विरेंचन और क्षिर के निकालने में १३॥ पळ अर्थात ५४ तोळे का सेर माना गया है। कल्क चा चर्णादि की मात्रा-नमनादि में कल्क चूर्ण और अवलेड् की उत्तम मात्रा बारह तोले की है. बाठ तोले की मध्यम तथा बार तोले की अधम मात्रा है। वसन में धेग----वसन में आठ देगों के पीछे पिश्त का निकलना उत्तम है. ह. देगों के पीछे पिश्त का निकलना मध्यम है तथा चार वेगों के पीछे पित्त का निकलना अध्य है. कफ को चरपरे तीरून और उच्च पदार्थों-से दूर करे, पित को सादिष्ट और शीतक पदायों से तथा वात मिश्रित कफ को खादिष्ट, नमकीन, सहे और गर्म सिक्ठ पदायों से दूर करे. कफ की अधिकता में पीपक, सैनफळ और संभातिसक, इन के चूर्ण को गमें जल के साथ पीने, पित्त की अधिकता में पटोलपत्र. अहसा और नीम के चूर्ण को जीतल जल के साथ पीने तथा कर युक्त नात की पीड़ा में मैनफल के चर्ण की फकी के कर ऊपर से दूध पीने, अलीर्ण रोग में बसै जरू के साथ सेंघेनिसक के चूर्ण को खाकर वसन करे, जब वसन कर्ता औषव को पी चुके तब केंचे आसन (मेज वा क़र्सी) पर घैठ कर कण्ठ को अण्ड के पत्ते की नाल से बारबार खुकाला कर बसन करें । वसन ठीक न होने के अवस्था-अब से पानी का बहना, हदय का रुकता, देह में चकत्तों का पढ़ जाना तथा सब देह में खुजली का चलना. ये सब बसन के ठीक रीति से न होने से उत्पन्न होते हैं। अत्यन्त वसन के उपद्रव—असन्त वसन के होने से प्यास. हिचकी. डकार. बेहोशी, जीस का निकथना, आँख का फटना, मुख का बुखा रह बाना. विधर की वसन का होना. बारं बार थक का आना और कष्ठ में पीड़ा का होना, ये अति वसन के उपहन हैं। स्रति वसन का यहा---यदि वसन अल्लन्त क्षेते होने तो साधारण जुलाब देना चाहिये, यदि बीस सीतर चली गई हो तो क्षिरम खट्टे खारे रस से युक्त थी और दूध के कुछे करने चाहियें तथा उस प्राणी के आगे बैठ कर दूसरे लोगों को मींवू आदि सहे फर्लों को चूसना चाहिये, यदि जीभ बाहर निकल पड़ी हो तो तिल वा दाख के कल्क से लेपित कर जिहा का मीत्र प्रवेश कर दे, यदि अदि वमन से ऑख फट कर निकल पढ़ी हो तो पृत चुपड कर घीरे २ मीतर को दबावे, यदि बावड़ा फटे का फटा (खुला ही) रह गया हो तो खेदन कमें करे, नस्य देवे तथा कफ बात हरणकर्त्ता यह करे, यदि अति वसन से क्षिर गिरने छगे तो रक्तपित्त पर छिसी हुई चिकित्सा को करे, यदि अति वसन से तृषा आदि उपद्रव हो गये हों तो ऑवळा, रसोत, खस, खील, चन्दन और नेत्रवाला को जल में मुख कर (सन्य तैयार कर) उस में थी; शहद और खाड़ बाल कर पिलावे।

र—कोह की छाल, खिरेटी और कौंच के बीज, इन का चूर्ण कर तथा उस में शहर, घी और मिश्री मिला कर दृष्ठ के साथ पीना चाहिये, इसके पीने से राज यहमा तथा खांसी शीघ्र ही मिट जाती है।

३-शहद, सुवर्ण मिक्का (सोना माली) की मस्म, वायिवंदंग, शिलाजीत, लोह की मस्म, वी और हरड़, इन सब को मिला कर सेवन करने से घोर मी यक्ष्मा रोग नष्ट हो जाता है, परन्तु इस औषिष के सेवन के समय पूरे पथ्य से रहना चाहिये।

उत्तम वमन के उद्युष्ण—इदय, कण्ठ और मस्तक का छुद्ध होना, जठराप्नि की प्रवलता, देह में इलका पन तथा कफ पित्त का नष्ट होना, ने उत्तम यमन के कक्षण है। श्रमन में पथ्यापथ्य—चीशाक्षि-बाके वमनकर्ता प्राणी को तीसरे पहर मूण, साठीनावक, शालिनावक तथा हृदय की प्रिय यूप जादि पदार्थ को साना चाहिये, अनीर्णकारी पदार्थ का मोजन, बीतिल जल का पीना, व्यायाम, मैशुन, तेल की मालिस और कोष का करना, इन सब का एक दिन तक साग करना चाहिये।

वसरा कमें विरेचन है-इस की वह विधि है कि-अधम केह, खेदन और वसन करा के फिर विरेचन (जुलाव) देना चाहिये, किन्त वसन कराये विना निरंचन कसी नहीं देना चाहिये, क्योंकि वसन कराये विना विरेचन को दे देने से रोगी का कफ नीचे को आ कर ग्रहणी (पाचकाप्ति) को डॉक देता है कि निस से मन्दाप्ति, देह का गौरव और प्रवाहिका आदि रोग उत्पन्न हो कार्ते हैं. अथवा प्रथम पावन हव्य हे आम और कफ को पका कर फिर विरेचन देना चाहिये, श्रद्ध देह नाके को शरद ऋतु और नसन्त ऋतु में विरेचन कराना चाहिये. हां यदि क्रसल वैश्व विरेचन देने के दिना रोगी का प्राण सहस्र देखें तो ऋत है नियम का स्थाग कर अन्य ऋत में भी विरेचन करा देना आहिये, पित्त के रोग, आसवात, उदररोग, अफरा और कोष्ठ की अञ्चादि. इन में विरेचन कराना अस्मावस्थक होता है, क्योंकि देखी! को बात और विसाहि दोष छंघन और पाचनादि कमों से जीत छिये जाते हैं ने समय पा कर कदाचित फिर भी कृपित हो सकते हैं परन्तु बमन और विरेचन आदि संचोधनों से जो दोष छुद्ध हो जाते हैं वे फिर कमी कृषित नहीं होते हैं। विरेचन का निषेध—वालक, गृद्ध, अत्यन्त क्रिय, बाव से क्षीण, सबसीत, यका हुआ, प्यासा, अत्यन्त स्यूळ, गर्सिणी स्नी, ननीन ज्वर वास्त्रा, तत्कास की प्रसूता स्नी, सन्समि वासा, मध से उन्मत्त, जिस के बाण आदि सस्य लग रहा हो तथा जिस ने प्रथम सेह और खेद न किया हो (घृत पान था मुंजिस का सेवन न किया हो), इन को विरेचन नहीं देना चाहिये। विरेखन देने योग्य---जीर्ण ज्यरवाला, विष से व्याकुल, वातरोगी, भगदरवाला, ववासीर; पण्डुरोग तथा उदर रोग वाला, गाउ है रोग माला, इदय रोगी, अविच से पीड़ित, योनिरोग वाजी झी, प्रमेहरोगी, गोले का रोगी, श्रीहरोगी, तण से पीडित, विद्रिधिरोगी, वमन का रोगी, विस्फोट; विवृचिका और इन्ह रोग वाला, कान; नाक, मलक; मुख, गुदा और लिंग में जिस् के रोग हो श्रीहा सूचन और नेजरोग से युक्त, क्रमिरोगी, खार के महाण और षादी से तु.स्तित, झूड़रोगी तथा मृत्राघात से तुःखित, ये सब प्राणी विरेचन के नोग्य होते हैं, असन्त पित्त प्रकृति वाले का कोठा पुदु (नरम) होता है, अखन्त कफ वाले का अध्यम और असन्त वादी वाले का कोठा कूर होता है (यह बादी वासा पुरुष दुविरेच्य होता है अर्थात् इस को दस्त कराना कठिन पडता है), इस लिये युदु कोठे वाले को नरम माना, सध्यम कोठे वाले को सध्यम और कूर कोठे वाले के

- ४--मिश्री, घी और शहद, इन को मिळा कर सेवन करना चाहिये तथा इस के ऊपर दूघ पीना चाहिये, इस के सेवन से यक्ष्मा का नाश तथा अरीर में पुष्टि होती है।

५—सितोपलादि चूर्ण—मिश्री १६ तोले, वंशलोचन ८ तोले, पीपल ४ तोले, छोटी इलायची के बीज २ तोले और दालचीनी १ तोले, इन सब का चूर्ण कर शहद और घी मिला कर चाटना चाहिये, इस के सेवन से राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, ज्वर, पस-षाड़े का शूल, मन्दामि, जिह्ना की विरसता, जरुचि, हाथ पैरों का दाह, और ऊर्ज्वगत रक्तपित, ये सब रोग शीघ ही नष्ट होते हैं।

तीरण मात्रा देनी चाहिये. (सह, सध्यम और तीन औषघों से सह, सध्यम और तीन मात्रायें कहलाती हैं) नरम कोठे वाले प्राणी को दाख, वृथ और भण्डी के तेल आदि से विरेचन होता है. मध्यम कोठे वाले को निसोत, क्रटकी और अमलतास से विरेचन होता है और कर कोठे वाले को बहर का दूध, चोक, दन्ती और जमालगोटे आदि से विरेचन होता है। चिरेचन के चेग-तीस वेग के पीछे आम का निकलना उत्तम, बीस वेग के पीछे मध्यम और दश वेग के पीछे अधम होता है। विरेखन की मात्रा-आठ तोड़े की उत्तम, बार तोड़े की मध्यस और दो तोड़े की अधम मात्रा मानी जाती है, परन्त वह परिणाम काथादि की औषधि की मात्रा का है, विरेचन के लिये कल्क; मोदक और चूणे की मात्रा एक तोले की ही है, इन का सेवन शहर, भी और अवकेंद्र के साथ करना चाहिये, मात्रा का यह साधारण नियम कहा गया है इस छिये मात्रा एक तोड़े से डेकर वो तोड़े पर्यन्त ब्रहियान, वैद्य रोगी के वडावड का विचार कर दे सकता है। दोषानुसार विरेश्वन-पित्त के रोग में निरोत के वृर्ण को द्राक्षादि काय के साथ में, कफ के रोगों में सोंठ, मिर्च और पीपल के चूर्ण को त्रिफला के कांबे और गोमूत्र के साथ में, बायु के रोगों में निसोत. सेंघानिसक और सोंठ के चर्ण को खड़े पदायों के साथ में देना चाहिये. अण्डी के तेळ को तुगुने गाय के दूघ में मिळा कर पीने से शीघ्र ही विरेचन होता है, परन्तु अण्डी का तेळ खच्छ होना चाहिये। अत के अनुसार विरेखन वर्ष ऋत में निसोत, इन्हर्ची, पीपक और सोंठ के चर्ण में दाख का रस तथा शहद डाल कर लेना चाहिये. शरद ऋत में निसीत, धमासा, नागरमोधा, खांह. नेत्रवाला. चन्दन, वास का रस और मौलेठी, इन सब को श्रीतल जल में पीस कर तथा छान कर (विना औटाये ही) पीना बाहिये. शिक्षिर और बसन्त ब्ह्तू में पीपल, सोंठ, सेंघानिमक, सारिवा और निसोत का चूर्ण शहद में मिला कर खाना नाहिये। अभयादि भोदक—विरेचन के लिये अभयादि भोदक भी उत्तम पदार्थ है, इस का विधान वैद्यक अन्यों में देख छेना चाहिये, यह विरेचन के लिये तो उत्तम है ही, किन्तु विरेचन के ियाय यह त्रियमञ्चर, मन्दामि, पाण्डरोग, खांसी, भगन्दर तथा बातजन्य पीठः पसवाबा: जाघ और उदर की पीड़ा को भी बूर करता है। विरेचन में नियम-विरेचनकारक औषि को पी कर सीतल जल से नेत्रों को छिडकना चाहिये तथा सुपन्य (अतर आदि) को सूंघ कर पान खाना चाहिये, हवा में नहीं बैठना चाहिये तथा दस्त के चेय को रोकना नहीं चाहिये, इन के सिवाय सीट का छेना तथा शीतल जलसर्थं का लाग करना चाहिये. वार वार गर्म जल को वा सौंफ आदि के अर्क को पीना चाहिये. जैसे वमनकारक औषधि के छेने से कफ. पी हुई औषधि, पित्त और बात निकछते हैं उसी प्रकार विरेचन की औषधि के छेने से मळ, पित्त, पी हुई औषधि और कफ निकलते हैं। उत्तम बिरे-

६—जातीफलादि चूर्ण जायफल, बायिवड़ंग, चित्रक, तगर, तिल, तालीसपत्र, चन्दन, सोंठ, लोंग, छोटी इलायची के वीच, मीमसेनी कपूर, हरड़, आमला, काली मिर्च, पीपल और वंशलोचन, ये प्रत्येक तीन २ तोले, चतुर्जा तक की चारों भौषिघयों के तीन तोले तथा मांग सात पल, इन सब का चूर्ण करके सब चूर्ण के समान मिश्री मिलनी चाहिये, इस के सेवन से क्षय, खांसी, श्वास, संग्रहणी, अरुचि, जुलाम और मन्दामि, वे सब रोग शीघ ही नष्ट होते हैं।

चन न होने के छक्षण-जिस को उत्तम प्रकार से विरेचन न हुआ हो उस की नामि में पीडा गुक कठोरता, कोख में दर्द, सक और अधोवायु का रुकना, देह में खुबली का बलना, बकत्तों का उठना, हेह का गौरव. दाह, अरुचि, अफरा और नमन का होना, इत्यादि लक्षण होते हैं, ऐसी दशा में पानत औरावि दे कर ब्रेहन करना चाहिये. जब मळ पक जावे और ब्रिग्व हो जावे तब प्रनः शुकाष देना वाहिये, ऐसा करने से जुजाब न होने के उपह्रव मिट कर तथा अप्ति प्रदीत हो कर शरीर हरूका हो जाता है। अधिक विरेचन होने के उपद्रव-अधिक विरेचन होने से मुच्छा, ग्रद्धंश (कार का निकरना), पेड वें दर्द, आम का अधिक गिरना तथा वस्त में स्थिर और वर्षा आदि का निकलना, इत्यादि उपहर होते हैं. ऐसी दशा में रोगी के शरीर पर शीघ्र ही शीतल जल छिडकना चाहिये. चावलों के थोवन में शहर बात कर पिछाना चाहिये, इलका सा नमन करावा चाहिये, आमकी छालके करक को दही और जौ की कांजी में मीस कर नामि पर छेप करने से दक्तो का घोर उपद्रव भी मिट जाता है. जींकों का सीसीर, शांकि चावल, साठी चावल, वकरी का दूच, श्रीतल पदार्थ तथा प्राही पदार्थ, इस्राहि पदार्थ अधिक दखों के होने को बंद कर देते हैं। उत्तम विरेत्वन होने के लक्षण--शरीर का इलका पन, मन में प्रसमता तथा सघोवाय का अनुकूळ चलना, ये सब उत्तम विरेचन के सक्षण हैं । विरेचन के गुण-इन्त्रियों में वल का होना, बुद्धि में खच्छता, जठराप्ति का दीपन तथा रसादि घात और अवस्था का स्थिर होना, ये सब विरेचन के ग्रण हैं। विरेचन में पथ्यापथ्य-असत हवा में बैठना, शीतक जल का स्पर्ध, तैव की मालिश, अशीर्ण कारी मोजन, व्यायामादि परिश्रम और मैधुन, वे सब विरेचन में अपन्य है तथा शाहि और साठी चावल, मूरा आदि का गवागू, ये सब पदार्थ विरेचन में पथ्य अर्थात् हितकारक हैं ॥

तीसरा कमें अनुवासन है—यह विस्त (गुदा में पिनकारी लगाने) का प्रथम नेद है, तारार्थ यह है कि वील आदि लेहों से जो पिनकारी लगाते हैं उस को अनुवासन विस्त कहते हैं, इसी का एक सेद मान्ना विस्त है, माना विस्त में गृत आदि की माना जाठ तोले की अधवा चार तोले की जी जाती है। अनुवाध्यन विस्त के अधिकारी—एस देह वाला, तीक्ष्णांत्र वाला तथा केवल बातरोग वाला, ये सब इस विस्त के अधिकारी हैं। अनुवासन विस्त के अनिधकारी—कुछरोगी, प्रमेहरोगी, असन्त स्पूर्ण अरीर वाला तथा उदररोगी, ये सब इस विस्त के अनिधकारी हैं, इन के सिवाय अजीगरोगी, उत्माद वाला, तथा उदररोगी, मूर्लित, अक्षन्व कुक्त, मयभीत, श्वासरोगी तथा काम और स्वयोग से ग्रुक्त, इन को न तो यह (अनुवासन) विस्त देनी चाहिये और न निरुद्धण विस्त (जिस का वर्णन आगे किया जानेगा) देनी चाहिये। वस्ति का विधान—चिस देने को नेत्र (नली) मुवर्ण आदि चातु की, शव की, वास की, नरसल की, हाबाँवाँत की, सींग के अपना की, अयवा स्कटिक बादि मिणयों की बनानी

७—श्रद्धसे का रस एक सेर, सफेद चीनी आधसेर, पीपळ आठ तोळे और घी आठ तोले, इन सब को मन्दाभि से पका कर अवलेह (चटनी) बना छेना चाहिये, इस के श्रीतळ हो जाने पर ३२ तोळे शहद मिळाना चाहिये, इस का सेवन करने से राजयक्ष्मा, खांसी, श्रास, पसवाड़े का शूळ, हृदय का शुळ, रक्तिपत्त और ज्वर, ये सब रोग शीघ ही मिट जाते हैं।

८-वकरी का वी चार सेर, बकरी की मैंगनियों का रस चार सेर, बकरी का मूत्र चार सेर, बकरी का दूध चार सेर तथा बकरी का दही चार सेर, इन सब को एकत्र पका

चाहिये, एक वर्ष से लेकर छ वर्ष तक के वालक के लिये छ: अगुल के, छ: वर्ष से लेकर वारह वर्ष तक के लिये बाठ अगुल के तथा बारह वर्ष से अधिक अधस्या वाले के लिये बारह अगुल के लम्बे बस्ति के नेत्र बनाने चाहियें. इ अपुल की नली में भूग के दाने के समान, बाठ अगुल की नली में सदर के समान तथा बारह अगुरू की नहीं में बेर की गुउली के समान छिद्र रक्खें, नहीं ज़िकनी तथा गांव की पूंछ के समान (जह में सोटी और आगे कम २ से पतली) होनी चाहिये, नली मूळ में रोगी के अगूठे के समान मोटी होनी चाहिये और कनिष्ठिका के समान स्थूल होनी चाहिये तथा गोळ मुख की होनी चाहिये. नहीं के तीन भागों को छोड कर चतुर्य भाग रूप मूल में गाय के कान के समान दो कार्णकाये बनानी चाडियें..तथा उन्हीं कर्णिकाओं में चर्म की कोयली (यैली) को दो बन्धनों से खुव मजबूत बांध देना चाहिये. वह बित्त लाल वा कपैले रग से रंगी हुई, विकनी और दर होनी चाहिये. यदि चाव मे पिचकारी मारनी हो तो उस की नछी आठ अगुछ की मूप के समान छिद्र बाछी और गीघ के पाख की नली के समान मोटी होनी चाहिये। बस्ती के गुण--वस्ति का उत्तम प्रकार से सेवन करने से धरीर की प्रष्टि, वर्ण की उत्तमता, वरू की शृद्धि, आरोग्यता और वायु की बृद्धि होती है। ऋतु के अनुसार वस्ति—शीत काल और धसन्त ऋत में दिन में लेह विता देना चाहिये तथा श्रीष्म वर्षा और शारद ऋत में लेड बिस रात्रि में देना नाहिये। वस्ति विधि-रोगी को बहुत निकना न हो ऐसा भोजन करा के यह वस्ति देनी चाहिये किन्तु वहुत विकना सोजन इसके वस्ति नहीं देनी चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से हो प्रकार से (भोजन मे और वस्ति में) लेह का उपयोग होने से मह और मुर्छा रोग उत्पन्न होते हैं तथा अत्यन्त रूस पदार्थ खिला कर विक्ष के देने से वरू और वर्ण का नास होता है, खतः अल्पिक्षण पदार्थी को खिला कर विश्व करनी चाहिये। चस्ति की मात्रा-विद विश्व हीन मात्रा से दी जाने तो वशीचित कार्य को नहीं करती है, यदि अविक मात्रा से दी जाने तो अफरा. क्रांस और अतीसार को उत्पन्न करती है इस लिये विस्त न्यूनाधिक मात्रा से नहीं देनी चाहिये, अनुवासन वस्ति में सेह की छ. पल की मात्रा उत्तम, तीन पल की मध्यम और डेड एक की मात्रा अधम मानी गई है, क्षेड में जो सोंफ और संघे नमक का चूर्ण ढाळा जाने उस की मात्रा छः मासे की उत्तम, चार मासे की सध्यम और दो मासे की हीन है। वस्ति का समय-विरेचन देने के बाद ७ दिन के पीछे जब देह में बल मा जावे तब अज़वासन विका देनी चाहिये। विक्ति देने की रीति--रोगी के खूब तेछ की साछिश कराके धीरे २ गर्मे जल से बफारा दिला कर तथा मोजन कराके कुछ इधर उधर ग्रुमा कर तथा मल मूत्र और अधोनाय का लाग करा के सेह बस्ति देनी चाहिये, इस की रीति यह है कि-रोगी को वार्ये करवट युका के वार्ट

कर उस में एक सेर जनाखार का चूर्ण डालना चाहिये, इस वृत के सेवन से राजयहमा, खांसी और श्वास, ये रोग नष्ट हो जाते हैं।

९—वासा के जड़ की छाल १२॥ सेर तथा जल ६४ सेर, इन को मौटावे, जब १६ सेर जल शेष रहे तब इस में १२॥ सेर मिश्री मिला कर पाक करे, जब गाड़ा हो जावे तब उस में त्रिकुटा, दालचीनी, पत्रज, इलायची, कायफल, मोथा, कुष्ठ (कूठ), जीरा, पीपरामूल, कवीला, चन्य, वंशलोचन, कुटकी, गचपीपल, तालीसपत्र और धनियां, ये सब दो २ तोले मिलावे, सब के एक जीव हो जाने पर उतार ले तथा शीतल होने पर

जांच को फैला कर और दाहिनी जांच को सकोड़ कर चिकनी गुदा में पिचकारी की नहीं को रक्खे, उस नकी में विस्त के मुख को सूत से बॉब कर वार्वे क्षय में के कर दाहिने हाथ से मध्यम नेग से धीर वित होकर दवाने. जिस समय वस्ति की जाने उस समय रोगी जमाई खांसी तथा छींकना सादि न करे; पिचकारी के दावने का काल तीस माश्रा पर्यन्त है, जब क्षेष्ठ सब चारीर में पहुँच जावे तब सी वाकू पर्यन्त वित्त छेटा रहे (वाक और साम्रा का परिसाण अपने चोंद्र पर हाथ को फेर कर चुटकी बजाने जितना माना गया है, अथवा ऑख वन्द कर फिर खोलना जितना है, अथवा ग्रह अक्षर के उबारण काल के समान है) फिर सब वेह को फैला देना चाहिये कि जिस से खेह का असर सब शरीर में फैल जाने, फिर रोगी के पैर के तलवों को तीन बार ठोंकना चाहिये, फिर इस की शब्या को उठा कर कुछ और क्सर के तीन बार ठोंकना चाहिये, फिर पैरों की तरफ से सम्या को तीन २ बार किंची करना चाहिये. इस प्रकार सब विधि के होने के पखाद रोगों को बथेष्ट सोना चाहिये. जिस रोगी के पिचकारी का तेल विना किसी उपद्व के अधोवायु और मछ के साथ गुदा से निकले उस के बस्ति का ठीक लगना जानना चाहिये, फिर पहिले का मोजन पत्र जाने पर और तेल के निकल काने पर दीप्ताप्ति नाले रोगों को सायंकाल में इलका अब भोजन के लिये देना चाहिये. इसरे दिन लेह के विकार के दूर करने के लिये गर्म जल पिलाना चाहिये. अथवा धनिया और सोंठ का काढ़ा पिलाना चाहिये इस, प्रकार से छः सात आठ अयवा नी अनुवासन वृक्षियां देनी चाहिये, (इन के बाद अन्त में निरूद्दण वृक्षित देनी चाहिये)। घृष्टित के **गण**—पहिली वृद्धि से मूत्राराय और पेडू चिक्ने होते हैं, दूसरी वृद्धि से महाक का पवन धान्त होता है. तीसरी बिता से वल और वर्ण की बृद्धि होती है, चौथी और पॉचवी विता से रस और रुपिर क्रिय होते हैं. छठी वस्ति से मांस क्रिम्ब होता है, सातनीं वस्ति से मेद झिम्ब होता है, आठवीं और नवीं विद्र से कम से मांस स्त्रीर मच्चा क्रिग्ध होते हैं, इस प्रकार अक्षरह वस्तियों तक लगाने से शुक्र तक के बाव-न्मात्र विकार दूर होते हैं, जो पुरुष अठारह बिन तक अठारह निर्दाणों का सेवन कर छेदे वह हाथी के समान वलनान्, घोड़े के समान नेगवान् और देवों के समान कान्ति वाला हो जाता है, रूझ तथा अधिक षायु वाले मनुष्य को तो प्रति दिन ही बित्त का सेवन करना नाहिये तथा अन्य मनुष्यों को जठरानि में वाधा न पहुँचे इस लिये तीसरे २ दिन वस्ति का सेवन करना चाहिये, रूझ सरीर वाले मतुष्यों को अल्प मात्रा भी अनुवासन वरित दी जाने तो बहुत दिनों तक भी कुछ हर्ष नहीं है किन्तु क्रिग्य मनुष्यों से धोडी सान्ना की निरुद्दण बस्ति दी जाने तो वह उन के अनुकूछ होती है, जयवा जिस मनुष्य के बित

इस में एक सेर शहद मिलाने, पीछे इस को चौटा कर शीतल किये हुए जल के साथ अग्नि का बलावल विचार कर लेने, इस के सेवन से राजयक्ष्मा, रक्तिपत्त, क्षतक्षय, बातजन्य तथा पित्तजन्य श्वास, हृदय का शूल, पसवाड़े का शूल, वसन, अरुचि और ज्वर, ये सब रोग शीध ही श्वान्त हो जाते हैं।

१०-जीबन्त्यादिघृत-- घृत चार सेर, बल सोल्ह सेर, कल्क के लिये जीवन्ती, मौलेठी, दारव, त्रिफला, इन्द्रजौं, कचूर, कूठ, कटेरी, गोलुरू, खिरेटी, नील कमल, भूँय

देने के पीछे तत्काल ही केवल लेह पीछा निकले उस के बहुत बोटी मात्रा की वस्ति देनी चाहिये, क्योंकि क्रिन्द शरीर में दिया हुआ क्षेद्र स्थिर नहीं रहता है। शस्ति के ठीक न होने के अध्राण-वित्त से ययोचित शक्ति न होने से (विष्ठा के साथ तेल के पीला न निकलने से) अगों की शिथिलता. पेट का फुलना, ग्रुल, मास तथा पद्माणय में आरीपन, इसादि अवगुण होते हैं, ऐसी दशा में रोगी को तीक्ष्म औषधों की तीरूण निरुष्टण विसा देनी चाहिये. अथवा वसादि की मोटी वत्ती वना कर उस में औपधों को भर कर अथवा औषयों को लगा कर गुरा में उस का प्रवेश करना चाहिये, ऐसा करने से अधीवाय का अजलोमन (अनुकुछ गमन) हो कर मूछ के सहित केंद्र बाहर निकळ जावेगा, ऐसी दवा में विरेचन का वेशा भी जासकारी होता है तथा तीक्ष्ण नत्य का देना भी उत्तम होता है, अनुवासन वस्ति देने पर यदि क्षेद्र बाहर न निकलने पर भी किसी प्रकार का उपहव न करे तो समध केना चाहिये कि शारीर के रक्ष होने से विस्त का सब बेह उस के कारीर में काम में आ गया है, ऐसी दक्ता में उपाय कर केह के निका-कने की कोई आवस्यकता नहीं है, वस्ति देने पर गदि खेह एक दिन रात्रि में भी पीछा न निकले तो शोधन के उपायों से उसे बाहर निकालना वाहिये, परन्तु बेह के निकालने के लिये दूसरी बार केह बस्ति नहीं देनी चाहिये । अनुवासन तैस्त-विकोय, एरड, कवा, भारंगी, शहसा, सौधिया एण, सताबर, कटसरैया और कीवा ठोडी, ये सब नार २ तोछे. जो. उडद, अळसी, येर की गुठली और फुलगी, ये सब आठ २ तोळे छेपे, इन सब को जार द्रोण (धोन) जल में औटावे, जब एक द्रोण जल शेप रहे तब इस में चार २ रुपये भर सब ऑवनीयगण की श्रीषघों के साथ एक आडक तेल को परिपक्ष करे. इस तेल का उपयोग करने से सब वातसम्बधी रोग दर होते हैं. बस्ति किया में कुछ भी विपरीतता होने से मीहत्तर प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं. ऐसी दशा जब कभी हो जावे तो सथत में कहे अनुसार निक्रा आदि सामप्रियों से विकित्सा करनी चाहिये. इस वस्ति कमें में प्रश्याप्रध्य क्षेष्ठ पान के समात सब कड़ करना चाहिये ॥

चौया कमें निरुद्दण है—यह विश्व का बूसरा मेद है—सार्य यह है कि—काडे, दूव और तैल आदि की पिचकारी लगाने को निरुद्दण विश्व कहते है, इस विश्व के पृथक् २ औपिषयों के सम्मेल से अनेक मेद होते हैं तथा इसी कारण से उन मेदों के पृथक् २ नाम भी रक्खे गये हैं, इस निरुद्दण विश्व का बूसरा नाम आस्थापन विश्व भी है, इस नाम के रखने का हेतु यह है कि—इस विश्व के सेपों और घातुओं का अपने २ स्थान पर स्थापन होता है। निरुद्धण बस्तिकी मात्रा—इस विश्व के सवा प्रस्थ की मात्रा उत्तम, एक प्रस्थ की मात्रा मध्यम और तीन कुढन (तीन पान) की मात्रा अध्य मानी गई है। निरुद्धण बस्ति के अनिधिकारी—असन्त किन्य चरीर बाल, बिस के होप परिपक्ष कर न निकाले गये हों, उरःक्षत वाला,

आवला, त्रायमाण, जवासा और धीपल, ये सब मिला कर एक सेर लेवे, सब की मिला कर घी बनावे, इस घृत का, सेवन करने से ग्यारहों प्रकार का राजयहमा रोग शीघ ही मिट जाता है।

११—जो पुरुष अति मैथुन के कारण श्लोष रोग से पीड़ित हो उस को घी तथा उस की प्रकृति के अनुकूछ मधुर और हृदय को हितकारी पदार्थ देने चाहियें।

क्रश्च. अफ़रा बाला, छर्दि, हिचकी, बनासीर, खासी, श्वास तथा गुदारोग से युक्त, सुनन, अतीसर तथा विपूचिका रोग बाळा, कुष्ठरोगी, गर्निणी स्त्री, मञ्जुप्रमेही और जलोदर रोग बाळा,इन सब को निस्हण बांळ नहीं देनी चाहिये। निरुद्धणवस्ति के अधिकारी-चातसम्बंधी रोग, उदावर्त, वातरक्त, विषमञ्तर, मूर्छ तथा तपारोग से युक्त, बहररोगी, सफरा, मूत्रकृष्ण, पथरी, अण्डबृद्धि, रक्तप्रहर, सन्दाति, प्रनेह, श्रह, अम्स्वित स्रोत काती के रोग से बुक्त, इन सब को विधिपूर्वक निरुट्ण विद्या देनी चाहिये। निरुद्दण श्वस्ति की विधि वा समय—जो रोगी मल, गुत्र और अवीवायु के वेग का खाग कर तुका हो, नेहत भीर बफारा ले चुका हो तथा जिस ने मोजन न किया हो, इन सब के मध्याह के समय घर के मीतर निक्रण विस्त करनी बाहिये, इस विस्त के देने के प्रधाद पिनकारी को ग्रदा से वाहर निवाल लेना बाहिये तथा रोगी की दो बड़ी तक अकरूँ ही बैठे रहना चाहिये, क्योंकि दो घड़ी के मीतर ही बेह निसा बाहर निकल आती है, यदि दो घडी में भी बख्ति का तेल बाहर न निकले तो जवाखार, बोमुत्र, नींबू का रस और रेंबा-नमक, इन की पित्रकारी रूप शोधन से बस्ति के रोळ को बाहर विकाल देना चाहिये। दस्ति के ठीक होते के लक्षण--- जिस रोगी के कम से मल, पित्त, कफ और बायु निकर्ले तया गरीर इसका हो बाने उस के वस्ति का ठीक लगाना जानना चाहिये। वस्ति के ठीक न होने के छझण-जिस सतुज्य के थोड़े २ वेग से पिचकारी बाहर निकले, मल और पवन बोड़े २ निकलें, मून्छी नावे, पंडा हो, आरी-पन तथा अविन हो, उस के विस्त का ठीक व क्यांना जानना चाहिये, क्योंकि थी हुई औराधि का निक्छ जाना, सन में प्रसन्नता का होना, किम्पता का होना तथा व्याघि का बटना, ये सब कहाण दोनों बिसर्पो के ठीक काने के हैं। चस्ति का नियम—विता कमें के जानने वाले वैदा को इस प्रकार विता देवी चाहिये कि---यदि प्रथम वस्ति ठीक रूग वाने तो दूसरी, तीसरी तथा नीयी बार भी बस्ति देनी नाहिये। यदि बादी का रोग ही तो निरुद्ध विस्त देनी चाहिये, पित का रोग हो तो दूश के साथ हो निरुद्ध विस्ता देनी चाहियें, कफ का रोग हो तो कपेंछे, बरपरे और गोमूत्रादि पदायों को गर्म करके उन की सीन निरुद्ध विद्यर्था देनी चाहियें तथा जो मनुष्य त्रिदोय से विर रहा हो उस को कम से दूव जीर सूंप के रस की मस्तियां देनी नाहियें, यह निरूहण मस्ति मोजन के पश्चात् करनी नाहिये तथा सुकुमार, इद और बारुक के कोसल वित्त करनी चाहिये, क्यों कि इन के तीहण वित्त करने से इन के वरू और अह का नाश होता है। चस्तियों का कम-प्रथम उत्हेशन नस्ति, फिर दोपहर मित और फिर संगमर्शन पिता देवी चाहिये, यही वस्ति देवे का कम है। उत्क्रेशन वस्ति—संबी के बीज, महुमा, बेलगिरी, पीपल, सैंघानिमक, बच तथा ह्युपा (पलासी फल) का कल्क, इन की बस्ति को उट्हेशन कहते हैं अर्थात् इस वस्ति चे दोष पक कर तथा अपने २ स्थानों से छूट कर निकल्ने दो तैयार हो आते हैं। दोपहर वस्ति—शतावर, महुसा, वेशमरी, इन्द्रनी और कॉबी, इन में गोमून को मिळा कर वो वस्ति

१२-शोक के कारण जिस के शोप उत्पन्न हुआ हो उस रोगी को चित्त को प्रसन्नता देनेवाले मीठे, चिकने, शीतल, दीपन और इलके पदार्थ देने चाहियें तथा जिन कारणों से शोक उत्पन्न हुआ हो उन की निवृत्ति करनी चाहिये।

१३—अधिक व्यायाम (कसरत) के कारण जिस के शोष उत्पन्न हुआ हो उस रोगी को घृत आदि स्निष्म (चिकने) पदार्थ देने चाहियें तथा शीतल और कफर्वर्धक (कफ को बढ़ाने वाले) पदार्थों से उस की चिकित्सा करनी चाहिये।

दी जाती है इसे दोपहर बिता कहते हैं, क्योंकि इस से बात आदि दोयों का हरण होता है। शामन-वस्ति-प्रियमु, महुआ, भागरमोथा और रस्रोत, इन को दूध में पीम कर जो वस्ति दी जाती है इसे गमनवस्ति कहते हैं. क्योंकि इस से दोषों का शमन (शान्ति) होता है। लेखनवस्ति-त्रिफले का काय, गोमूत्र, शहद, जवाखार तथा करकादि गण की सब ओषिययों को टाल कर वो बस्ति दी जाती है उसे डेखनवरित कहते हैं। गृंहणचरित-वृहण आष्यों का काढ़ा करके उस में मधुर पदायों का कल्क और भी मिला कर जो विस्त दो जाती है उसे बृहण विस्त कहते हैं, क्योंकि इस विस्त से रस और रक्त आदि की इदि होती है। पिचळलबस्ति-वेर, नारगी, लसोडे तथा सेमर के फूलों के अदूर, इन की वूध में पका कर तथा उस में शहद मिला कर जो विस्त दी जाती है उसे पिच्छलविस्त कहते हैं. इस की मात्रा १२ पर की है। निरुद्धधस्ति-प्रथम एक तीले संघे निमक को बाल कर फिर १६ तीले शहर को मिला कर खब पीसे, फिर इस में २४ उपये भर लेह डाके, सब को एकत्र कर जेह को ख्ब मिला वेचे, फिर इस में ८ रुपये भर कल्फ को मिला कर सब को घोट कर एकजीव करले. फिर ३२ रुपये भर काथ और अन्त में १६ क्पये भर योग्य चुणे को डाल कर सब का सर्वन कर विका के उपयोग में लावे. इसे निरुद्वसित कहते हैं, इस प्रकार की की हुई वस्ति की मात्रा तील में १५ प्रसृति की होती है, इस में विभेषता यह भी है कि-बादी के रोग में बार पछ महद और छः पछ झेह डाळना चाहिये. पित्त के रोग में चार पल शहद और तीन पल लेह डालना चाहिये तथा कफ के विकार में छ: पल शहद और चार पछ बेह डाळना चाहिये। मधुतैळकवस्ति—आठ पढ अडी की चड का काथ कर के उस में चार पल सहद, चार पल तेल, दो तोछे सोंफ और दो तोले सेथे निमक को बाल कर सब को रई से मध हैवे, पीछे इसे वस्ति के उपयोग में छावे, इसे मधुतैलकवित कहते हैं. इस वस्ति के सेवन से बल की वृद्धि, वर्ण की उत्तमता, मैथुनशक्ति की वृद्धि, अप्रि का दीर होना, बातु का पुरु होना तथा मेट: गाठ: इसि, श्रीद; मल और उदावर्तका नाश, ब्सादि ग्रण होते हैं । बापनवस्ति—सहद, थी, दूध और तेल, ये सब आठ २ रुपये भर छे, इस में एक वोड़े हाकवेर तथा एक वोड़े सेवे निमक को डाल कर घोटे, जब एकर्जीन हो जाने तब इसे निस्त के उपयोग में छाने, इसे वापन निस्त फहते हैं, इस निस्त से पाचन होता है तथा दस साफ आता है। युक्तरथवस्ति अडी की जड का काथ कर के उस में, गहद, तेल, संघा निमक, वन और पीपछ को ढाळकर बस्ति के उपयोग में छावे, इसे युक्तरब बस्ति कहते हैं। सिद्ध-वस्ति-पवमूछ के काथ में तेल, पीपछ, संघा निमक तथा मौलेठी को डाल कर वृद्धि के उपयोग में लावे. इसे भिद्ध निक्ष करते हैं। वस्तिकर्स में पथ्यापथ्य-गर्भ नल से खान करना, दिन से न सोना तथा अजीर्णकर्त्ता पदार्थों का न खाना, ये सब कार्य पश्य है, इस बस्तिकर्स में क्षेत्र पश्यापश्य लेहनवरित के

१ ४ - अधिक मार्ग में चलने से जिस के शोष रोग उत्पन्न हुआ हो उस को धैर्य देना चाहिये, बैठालना चाहिये, दिन में झुलाना चाहिये तथा शीतल; मधुर और बृंहण (पुष्टि-करने अर्थात् धातु आदि को बढाने वाले) पदार्थ देने चाहियें।

१५-न्नण (घाव) के कारण जिस के शौष उत्पन्न हुआ हो उस रोगी की चिकित्सा क्षिग्ध (चिकने), अमिदीपनकर्ता, स्वादिष्ठ (जायकेदार), शीतल, कुछ खटाईबाले सथा त्रणनाशक पदार्थों से करनी चाहिये।

समान जानना चाहिये, इस दित का एक भेद उत्तरवित (लिज तथा शोन में पिनकारी लगामा) मी है, जिस का वर्णन यहा अनावस्यक समझ कर नहीं किया जाता है, उस का विषय आवस्यकतानुसार-दृष्टरै वैद्यक प्रन्थों में देख लेना चाहिये॥

पोंचवां कमें भावन (नत्म) देना है, तारपर्व यह है कि-जो ओविंद नासिका से प्रहण की जाती है उसे नाबन वा नस्य कहते है, इस कर्म के नावन और नस्यकर्म, ये दो नाम है, इस को नस्यकर्म इसिंग्ये कहते है कि इस से नासिका की चिकित्सा होता है, नस्पकर्म के दो मेद हैं-रेचन और केहन, इन में से जिस कमें से भीतरी पदार्थों को कम किया जावे उसे रेचन कहते है तथा जिस कमें से भीतरी पदार्थों की इद्धि की जावे उसे सेहन कहते हैं। समयानुसार नस्य के ग्रुण-आत.कार की नस कफ को छ करती है, मध्याह की नस्य पित्त को और सायकाल की नस्य वादी को नष्ट करती है, नस्य को प्राय: दिन में छेना चाहिये परन्तु यदि घोर रोग हो तो रात्रि में भी छे छेना चाहिये। सस्य का निषेध-भोजन हे पीछे तत्काल, जिस दिन बादल हो उस दिन, लघन के दिन, नवीन खुदाम के समय में, गर्भवती की, विपरोगी, अजीर्गरोगी, जिस को वस्ति दी गई हो, जिसने जेह जल वा आसव पिया हो, कोंधी, घोकाइल, प्यासा, इ.स., बालक, मल मूत्र के देग का रोकने वाला, परिश्रमी और जो ज्ञान करना वाहता है, इन सब को नस्य केना निपिद्ध है। नस्य की अवस्था—जब तक बालक बाट वर्ष का न हो जाने तब तम उपे मस्य नहीं देना चाहिये तथा अस्ती वर्ष के पीछे भी नस्य नहीं देना चाहिये। रेखननस्य की विधि-तीक्ष्ण तैल से, अथवा तीक्ष्ण औषघो से पके 📭 तैलो से, कार्यों से, अथवा तीक्ष्ण रहो से रेचन मस्प क्षेनी चाहिये, यह नस्य नासिका के दोनों छिद्रों में छेनी चाहिये तथा प्रस्पेक छिद्र में आठ २ बूंद डाठना चाहिये, यह उत्तम मात्रा है, छः २ बूँदों की मध्यम मात्रा है और चार २ बूँदों की अधम मात्रा है। नस्य में औषधों की मात्रा का परिमाण-नसकर्म में तीश्ण औषध रत्ती भर छेना साहिये, हींग एक जौ मर, सेंघा निमक छ. रत्ती, दूध चार शाण, पानी तीन रुपये भर तथा मधुर प्रव्य एक रुपये भर केना चाहिये। रेखननस्य के भेद-रेचननस्य के अवधीडन और प्रवसन, ये हो भेद है-बिंद नस्य देकर मस्तक को खाली करना हो तो बोग्य रीति से इन दोनो मेदों का प्रवोग करना चाहिये, जिस के साथ में तीक्ष्म पदार्थों को मिलाया हो उन का कल्क करके रख नियोड देना, इस को अवधीडन कहते हैं भीर छ: अगुलवाली दो मुख की नकी में ४८ रत्ती तीश्ण चूर्ण भरकर मुख की फूँक देकर उस चूर्ण को नाक में नढा देना, इस को प्रथमन कहते है। नस्यों के योग्य रोग-इसली के कपर के रोगे में, कफ के खरभग में, अरुचि, प्रतिस्थाय, भस्तकग्रूल, पीनस, सूजन, चृगी और कुष्टरोग में रेचनगर्स देना चाहिये, डरनेवाले, स्त्री, क्या मनुष्य और बातक को सेहननस्य देना चाहिये, गले के रोग, १६—महाचन्द्रनादि तैला विली का तैल चार सेर, काथ के लिये लाल चन्दन, शालपणीं, छोटी कटेरी, वड़ी कटेरी, गोखुरू, मुद्रपणीं, विदारीकन्द, असगन्ध, माप-पणीं, आँवले, सिरस की छाल, पद्माल, खस, सरलकाछ, नागकेश्वर, प्रसारणी, मूर्वी, फूल-प्रियंगु, कमलगङ्गा, नेत्रवाला, खिरेटी, कंगही, कमल, की नाल और मसीड़े, ये सव

समिपात. निद्रा, विषम ज्वर, मन के विकार और क्रमिरोग में अवगीडन नस्य देना चाहिये तथा असन्त कपित दोपवाछे रोगों में खौर जिन में संज्ञा नष्ट हो गई हो ऐसे रोगों में प्रधमननस्य देना चाहिये। विरेचनतस्य साँठ के चर्ण को तथा गुड को मिलाकर अथवा सेंधे निमक और पीपल को पानी में पीसकर नस्य देने से नाफ, मस्तक, कान, नेज, गर्दन, ठोडी और गले के रोग तथा भूजा और पीठ के रोग नष्ट होते हैं, नहुए का सत, वच, पीपल, काली मिर्च और संघा निमक, इन को थोड़े गर्म जल मे पीसकर नस देने से सुगी, उन्माद, सनिपात, अपतनक और बास की मुर्छा, वे सद दूर होते हैं, सेंश-निमक, सफेद मिर्च (सहजने के बीज), सरसों और कुठ, इन को वकरे के मूत्र से बारीक पीस कर नसा देने से तन्त्रा दूर होती है, काठी मिर्च, वन और कायफट के चूर्ण को रोहू मछली के पित्ते की भावना देकर नहीं से प्रथमनगरम देना चाहिये । बुंहणनस्य के भेद-बुहणनस्य के मर्श और प्रतिमर्श, ये दो भेद है, इन में से भाण से जो स्नेहन नस्य दी जाती है उसे मर्श कहते है. (तर्जनी" बहुलि की आठ बुंदों की मात्रा को शाण कहते हैं) इस मर्श नस्य में आठ शाण की तर्पणी मात्रा प्रत्येक नथुने में देना उत्तम मात्रा है, चार शाण की मध्यम और एक शाण की मात्रा अधम है. प्रखेक नथुने में मात्रा की दो ९ बूदों के डालने को अतिमर्श कहते हैं, दोपों का बलावल विचार कर एक दिन में दो बार, या तीन बार, अथवा एक दिन के अन्तर से, अथवा दो दिन के अन्तर से मर्श नस्य देनी बाहिये. अथवा तीन: भोंच वा सात दिन तक निरन्तर इस नत्य का उपयोग करना चाहिये. परन्त उस से यह सावधानता रखनी चाहिये कि रोगी को छीक आदि की व्याकुळता न होने पावे, मर्श नस्य देने से समय पर स्थान से भ्रष्ट हो कर दोप क्रपित हो कर मस्त्रक के गर्म स्थान से विरेचित होने स्रवता है कि जिस से मस्तक में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, अथवा दोषों के झीण होने से रोग उत्पन्न हो जाते हैं. यह दोप के उत्क्रेश (स्थान से श्रष्ट) होने से रोग उत्पन्न हो तो वमनरूप ग्रोधन का उपयोग करना चाहिये और यदि नेद आदि का क्षय होने से रोग उत्पन्न हो तो पूर्वोक्त लेह के द्वारा उन्हीं क्षीण दोगों की प्रष्ट करे, मस्तक नाक और नेत्र के रोग, सूर्यावर्त्त, आषाशीशी, दांत के रोग, निर्वछता, गईन सुजा और कन्या के रोग, मुखशोप, कर्णनाद, वातिपत्तसम्बधी रोग, विना समय के वालों का श्वेत होना तथा बाल और बाढी मूंछ का भर २ कर गिरना, इन सब रोगों में बेहों से अधवा अधुर पदायों के रसो से छेहन-नस को देना चाहिये। उंहणनस्य की विधि-खांड के साथ केशर को दूध में पीस कर पीछे घी से सेंक कर नस देने से वातरक की पीढा शान्त होती है, माँह, कपाल, नेत्र; मखक और कान के रोग. सर्यावर्त्त और आधाशीशी, इन रोगों का भी नाश होता है, यदि झेहननस्य देना हो तो अणुतैल (इस की विधि मुश्रुत में देखों), नारायण तैळ, सापादि तैळ, अथवा ओस्य औषघों से परिपक्ष किये हुए धूत से देना चाहिये, यदि कफ्युक्त वादी का दर्द हो तो तेल की और यदि केवल वादी का ही दर्द हो तो सन्धा की नस्य देनी चाहिये, पित्त का दर्द हो तो सर्वदा थी की नस्य टेनी चाहिये, उदुद, कींच के बीज.

मिलाके ५० टके भर लेवे तथा खिरेटी ५० टके भर लेवे, पाक के बास्ते जल १६ क्षेर छेवे, जब जल चार सेर बाकी रहे तब बकरी का दूध, सतावर का रस, लाल का रस. कांजी और दही का जल, प्रत्येक चार २ सेर छे तथा प्रत्येक के पाक के लिये जल १६ सेर छेवे, जब चार सेर रह जावे तब उसे छान छे, फिर पृथक २ काथ और करक के राखा, अड की जड़, बला, रोहिए तुण और आसगन्य, इन का काय करके तथा इस में हींग और सेंधे-निसक को डालकर कुछ गर्ने काथ की नत्य के देने से कम्प्युक्त पक्षाधात (अर्थांग), आर्देत बात -(लकवा), गर्दन का रष्ट जाना और अपवाहक (हाथों का रह जाना) रोग दूर हो जाता है, सर्व और प्रतिमर्शनासक बंहण नख के दो सेद कह चुके हैं, उन में से प्रतिमर्श नस्म के १४ समय माने गये हैं, जो कि ये हैं---प्रात:काल, बॉतन करने के बाद, घर से वाहर निकलते समय, व्यायाम के वाद. मार्ग न्नक कर आने के पखात, मैथुन के पथात, सकलाग के पीछे, सूत्र करने के पीछे, अवन आँवने (लगाने) के पीछे, कवल विधि के पीछे, भोजन के पीछे, दिन में सोने के पीछे, बमन के पीछे और सायकाल में, प्रतिमर्श नस्य के ठीड होने की यह पहिचान है कि-योडी ही छींक आने से यह नाक का लेह मुख में था जाने तो जान छेना चाहिये कि प्रतिसर्भ नस्य उत्तम रीति से हो गई है, नाक से ् सुख में आये हुए पदार्थ को निगळना नहीं चाहिये किन्तु उसे धुरु डेना चाहिये । प्रतिमधी नस्य के अधिकारी-श्रीण मनुन्य, तुषारोगी, मुखशोपरोगी, बालक और इस, इन को प्रतिमर्श नस हितकारी है। प्रतिसभी नस्य के गुण-अतिमर्श नस्य के उपयोग से इंसकी के कपर के रोग करापि नहीं होते हैं तथा डेह में गुलजट नहीं पढ़ते हैं तथा बालों का श्रेत होता मिटता है, इन के सिवाय-स्म नस्य से इन्द्रियों की शक्ति बढ़ती है, बहेबा, नीम, कॅमारी, इरड़, उसोड़े और मालकांगनी, इन में से एक एक पदार्थ की नस्य छेने का अभ्यास रखने से अवस्य श्वेत बाळ काछे हो जाते हैं। नस्य की विधि-दॉतन करने के पक्षात्, सक और सूत्रादि का लाग करने के पीछे धूमपान द्वारा कपाल तथा गर्छ मे खोदित कर रोगी को पवन और धूळ से रहित स्थान में चित (सीधा) छेटा देना चाहिये तथा उस के मस्तक को कुछ लटकता रखना चाहिये, हाथ पैरों को पसार देना तथा नेत्रों को वस से बॉक देना चाहिये पीछे नाक की अनी को ऊँची करके नस देनी चाहिये अर्थात् सोने चॉदी आदि की चमची से, वा सीप से, वा किसी यन्त्र की बुक्ति से, वा कपड़े से, अधवा कई से, बीच में भार प हटने पावे इन रीति से कुछ र मेमें नल नाक में डाल देनी बाहिये, विस समय नाक में नस्स डाली जाने उस समय रोगी को चाहिये कि माथे को न हिलावे, कोघ न करे, बोळे नहीं, कीके नहीं और हॅसे नहीं, क्योंकि माथे के हिलाने आदि से केह वाहर को आ जाता है अर्थात भीतर नहीं पहुँचता है और ऐसा होने से खाँसी, सरेकमा, सस्तकपीड़ा और नैत्रपीड़ा उत्पन्न हो जाती है, नस्य को ग्रामाटक (नाक की मीतरी हार्रि) में पहुँचने पर्यन्त स्थिर रखना चाहिये सर्वात् निगळ नहीं जाना चाहिये, पीछे बैठ कर मुख में आये हुए हव को बूँक देना चाहिये, नस्य के देने के पश्चात् मन में सन्ताप न करे, घूल उड़ने के स्थान में न आवे, क्रीघ न करे, दश ना पन्तह मिनट तक न सोचे, किन्तु सीघा पड़ा रहे, रेचननस्य से मस्तक के खाळी होने के प्रधात धूम्रपान तथा कवलप्रहण हितकारी होता है, नस्य के द्वारा मस्तक को ठीक २ छिदि हो जाने से शरीर का इलका होना, सब का साफ उतरना, नाडियों के दर्द का नाच, व्यापि का नाग और चित्त तथा इन्डियों की असमता, इलादि छडाण होते हैं ॥

लिये-सफेद चन्दन, अगर, कंकोल, नस, छारछवीला, नागकेशर, तेजपात, दालचीनी, कमलगद्दा, हलदी, दारुहल्दी, सारिवा, काली सारिवा, लाल कमल, छड़, कूठ, त्रिफला, फालसे, मूर्वा, गठिवन, नलिका, देवदार, सरलकाष्ठ, पशास, सस, धाय के फूल, वेलगिरी, रसोत, मोथा, सिलारस, सुगन्धवाला, नच, मजीठ, लोध, सोंफ, जीवन्ती, पियंगु, कचूर, इलायची, केसर, सटासी, कमल की केशर, राखा, जावित्री, सोंठ और धनिया, ये सव प्रत्येक दो २ तोले लेवे, इस तेल का पाक करे, पाक हो जाने के पश्चात् इस में केशर, कस्तूरी और कपूर थोड़े २ मिलाकर उत्तम पात्र में भर के इस तेल को रख छोड़े, इस तेल का मर्दन करने से बातिपत्तजन्य सब रोग हुर होते है, धातुओं की दृद्धि होती है, धोर राजयक्ष्मा; रक्तपित्त और उरःक्षत रोग का नाश होता है तथा सब प्रकार के क्षीण पुरुषों की क्षीणता को यह तेल की ही दूर करता है।

१७-यदि रोगी के उरःक्षत (हृदय में वाव) हो गया हो तो उसे खिरेटी, अस-गन्ध. अरनी, सतावर और पुनर्नवा, इन का चूर्ण कर दूध के साथ नित्य पिछाना चाहिये।

१८—अथवा—छोटी इलायची, पत्रज और दालचीनी, प्रत्येक छः २ मासे, पीपल दो तोले, मिश्री, मौलेठी, छुद्दारे और दाल, प्रत्येक चार २ तोले, इन सब का चूर्ण कर शहद के साथ दो २ तोले की गोलियां बनाकर नित्य एक गोली का सेवन करना चाहिये, इस से उरःक्षत, ज्वर, लांसी, श्वास, हिचकी, वमन, अम, मूच्छी, मद, प्यास, श्लोष, पसवाड़े का शूल, अरुचि, तिल्ली, आद्यवात, रक्तिपत्त और सरमेद, ये सब रोग दूर हो जाते है सथा यह एलादि गुटिका बृष्य और इन्द्रियों को तृस करने वाली है ॥

आमवात रोग का वर्णन् ॥ .---.

कारण—परस्पर विरुद्ध आहार और विरुद्ध विहार (जैसे मोजन करके शीध ही दण्ड कसरत आदि का करना), मन्दाभि का होना, निकम्मा बैठे रहना, तथा खिरध (चिकने) पदार्थों को खाकर दण्ड कसरत करना, इत्यादि कारणों से आम (कचा रस) बायु से प्रेरित होकर कफ के आमाशय आदि खानों में जाकर तथा वहां कफ से अत्यन्त ही अपक होकर वह आम अमनी नाड़ियों में प्राप्त हो कर तथा वात पित्त और कफ से दूषित होकर रसवाहिका नाड़ियों के छिद्रों में सम्रार करता है तथा उन के छिद्रों को बन्द कर मारी कर देता है तथा अमि को मन्द और हृदय को अत्यन्त निर्वेष्ठ कर देता है, यह आमसंज्ञक रोग अति दारुण तथा सब रोगों का स्थान माना जाता है।

लक्षण - मोजन किये हुए पदार्थ के अंजीर्ण से जो रस उत्पन्न होता है वह कमरसे इकड़ा होकर, आम कहलाता है, यह आम रस श्चिर और सब अंगों में पीड़ा को उत्पन्न करता है।

१-मामनात अर्थात् आम के सहित नायु ॥

२-रसवाहिका नाड़ियों के अर्थात् जिन में रस का प्रवाह होता है उन नाहियों के ॥

इस रोग के सामान्य रूक्षण ये हैं कि -जन वात और:कफ दोनों एक ही समय में कुपित हो कर पीड़ा के साथ त्रिकस्थान और सन्वियों में मनेश करते हैं कि जिस से इस प्राणी का शरीर खम्भित (जकड़ा हुआ सा) हो जाता है, इसी रोग को आमवात कहते है।

कई आचार्यों ने यह भी कहा है कि—आमनात में अंगों का दूरना, अरुनि, प्यास, आरुस्य, शरीर का भारी रहना, ज्वर, अन्न का न पचना और देह में शून्यता, ये सब छक्षण होते हैं।

परन्तु जब आमवात अत्यन्त बढ़ जाता है तब उस में बड़ी अयंकरता होती है अर्थात् शृद्धि की वशा में यह रोग दूसरे सब रोगों की अपेक्षा अधिक कष्टदायक होता है, वहे हुए आमवात में—हाथ; पैर; मस्तक; घोंद्र; त्रिकस्थान; जानु और जंथा, इन की सन्धियों में पीड़ा युक्त स्वन होती है, जिस २ स्थान में वह आम रस पहुँचता है वहाँ २ विच्छू के डंक के रूगने के समान पीड़ा होती है।

इस रोग में—मन्दामि, मुल से पानी का गिरना, अरुचि, देह का भारी रहना, उसाह का नाका, मुल में निरसैंता, दाह, अधिक मूत्र का उत्तरना, कूल में कठिनता, गूळ, दिन में निद्रा का आना, रात्रि में निद्रा का न आना, प्यास, बमन, अम (चकर), मूर्छा (वेहोशी), हृदय में क्रेश का माख्य होना, मरू का अवरोध (रुक्ता), जड़ता, आँतों का गूँजना, अफरा तथा बातजन्य (वायु से उत्पन्न होनेवाळे) कळापलंज आदि अनेक उपद्रचों का होना, इत्यादि छक्षण होते हैं।

इन के सिवाय-वादी से उत्पन्न हुए आमवात में -शूल होता है, पित्त से उत्पन्न हुए आमवात में -दाह और रक्तवर्णता (ठाल रंग का होना) होती है तथा कफ से उत्पन्न हुए आमवात में -देह की आईता (गीला रहना) होती है तथा अत्यन्त साज (खुनली) चलती है।

साध्यासाध्य विचार—एक दोष का आमवात रोग साध्य (चिकित्सा से शीष्र ही दूर होने योग्य), दो दोषों का आमवात रोग याप्य (उत्तम और शीष्र चिकित्सा करने से दूर होने योग्य परन्तु उत्तम और शीष्र चिकित्सा न करने से न मिटने योग्य अर्थात् कष्टसाध्य) तथा तीनों दोषों का आमवात असाध्य (चिकित्साद्वारा भी न मिटने योग्य) होता है।

चिकित्सा — १ - आमवात रोग में - छंघन करना अति उत्तम चिकित्सा है '।

१-दोनों कूलों तथा पीठ की जोडवाली हुई। के स्थान को त्रिकस्थान कहते हैं॥

२-पीड़ायुक्त अर्थात् दर्द के साथ ॥

३-विरसता अर्थात् फीकापन ॥ ४~क्योंकि लड्डन करने से आम अर्थात् क्षे रस का तथा दोषों का पानन हो जाता है ॥

२-लंघन के सिवाय-स्वेदन करना (पसीने लाना), अग्नि को प्रदीप्त करनेवाले कहुए पदार्थों का खाना, जुलान लेना, तैल आदि की गालिश कराना और विस्तिकर्म करना (गुदा में पिचकारी लगाना) हितकारक है।

२-इस रोग में-वाळ की पोटली बना कर उसे अझ में तपाकर रूक्ष स्वेद करना चाहिये तथा खेहरहित उपनाह (लेप) भी करना चाहिये ।

४--आमवात से ज्यास और प्यास से पीड़ित (दु:खित) रोगी को पर्झैकोल की डाल कर सिद्ध (तैयार) किया हुआ जल पीना चाहिये।

५-सूखी मूळी का यूष, अथवा छष्ठु पश्चमूळें का यूप, अथवा पश्चमूँछ का रस, अथवा सोंठ का चूर्ण डाल कर कांजी छेना चाहिये।

६-सौनीर नामक कांजी में बैंगन को उवाल कर अथवा कडुए फलों को उवाल कर लेना चाहिये ।

७-बश्चए का शाक तथा अरिष्ट, सांठ (गदहपूर्ना), परवल, गोख़ुरू, वरना और करेले, इन का शाक लेना चाहिये।

८—जी, कोदों, पुराने साठी और जालि चावल, छाछ के साथ सिद्ध किया हुआ कुल्यी का यूप, सटर, और चना, ये सब पदार्थ आमवात रोगी के लिये हितकारक है। ९—चित्रक, कुटकी, हरड़, सोंठ, अतीस और गिलोय, इन का चूर्ण गर्म जल के साथ हेने से आमवात रोग नष्ट होता है।

१०-कचूर, सोंठ, हरह, वच, देवदारु और अतीस, इन औषघों का काथ पीने से तथा रूखा भोजन करने से आमवात रोग दूर होता है।

.११-इस प्राणी के देह में विचरते हुए आमवातरूपी मस्त गजराज के मारने के लिये एक अंडी का तैल ही सिंह के समान है, अर्थात् अकेला अंडी का तैल ही इस रोग को शीघ ही नष्ट कर देता है।

१२-आमवात के रोगी को अंडी के तेल को हरड़ का चूर्ण मिला कर पीना चाहिये।

१२—अमलतास के कोमल पत्तों को सरसों के तेल में मून कर मात में मिला कर साने से इस रोग में बहुत लाम होता है।

१-तेल की मालिश वातशामक अर्थात् वायु को शान्त करनेशली है ॥

१-स्स स्वेद अर्थात् शुष्क वस्तु के द्वारा पसीने ठाने से और स्नेहरहित (विना चिकनाइटके) छेप करने से भीतरी जाम रस की स्निग्मता मिट कर उस का वेग आन्त होता है ॥

३-पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक स्नौर साँठ, इन पाँचो का प्रत्येक का एक एक कोल (आठ २ मासे) छेना, इस को पत्रकोल कहते हैं॥

४—शालपर्णा, प्रप्रपर्णा, छोटी कटेरी, बढी कटेरी और गोस्तर, इन पानो को रुघु पद्ममूल कहते हैं ॥ ५—वेल, गम्मारी, पाडर, अरनी और खोनाक, इन पॉचो ग्रुक्षो की जड़ को पद्ममूल वा बृहत्पद्ममूल कहते हैं ॥

१२-सोंठ और गोखुरू का काथ प्रातःकाल पीने से आमवात और कमर का शृह (दर्द) श्रीध्र ही मिट जाता है।

१५-इस रोग में यदि कटिशूल (कमर में वर्द) विशेष होता हो तो सींठ बाँर गिलोय के काथ (काढ़े) में पीपल का चूर्ण डाल कर पीना चाहिये।

१६-शुद्ध (साफ) अंडी के बीजों को पीस कर दूध में डाल कर सीर बनावे तथा इस का सेवन करे, इस के खाने से कमर का दर्द अति श्रीघ मिट जाता है अर्थात् कमर के दर्द में यह परमीपंधि है।

१७—सङ्कर खेद—कपास के विनोले, कुल्थी, तिल, जीं, लाल एरण्ड की जड़, अलसी, पुनर्नवा और शण (सन) के बीज, इन सब को (यदि ये सब पदार्थ न मिलें तो जो २ मिल सकें उन्हीं को लेना चाहिये) लेकर कूट कर तथा काँजी में मिगा कर दो पोटलियां बनानी चाहियें, फिर प्रज्वेलित चूल्हे पर कांजी से मरी हुई हांड़ी को रख कर उस पर एक छेदबाले सकोरे को डाँक दे तथा उस की सिन्धें को बंद कर दे तथा सकोरे पर दोगों पोटलियों को रख दे, उन में से जो एक पोटली गर्म हो जाने उस से पहुँचे के नीच के भाग में, पेट, शिर, कूले, हाथ, पैर, अँगुलि, एड़ी, कन्धे और कमर, इन सब अंगों में सेक करे तथा जिन २ स्थानों में दर्द हो वहां २ सेक करे, इस पोटली के शीतल हो जाने पर उसे सकोरे पर रख दे तथा दूसरी गर्म पोटली को उठाकर सेंक करें, इस प्रकार करने से सामवात (आम के सहित बादी) की पीड़ा शीप्र ही जानत हो जाती है।

१८—महारास्तादि काथ—रासा, अंड की जड़, अहसा, घमासा, कच्र, वेबदार, खिरेटी, नागरमोथा, सोंठ, अतीस, हरड़, गोखुरू, अमलतास, कलोंजी, घनियां, पुनर्नवा, असगन्ध, गिलोय, पीपल, विधायरा, शतावर, बच, पियावांसा, चन्य, तथा दोनों (छोटी बड़ी) कटेरी, ये सब समान भाग लेवे परन्तु रास्ना की मात्रा तिगुनी लेवे, इन सब का अष्टावशेष (जल का आठवां हिस्सा शेष रखकर) काड़ा बना कर तथा उस में सींठ का चूर्ण डाल कर पीवे, इस के सेवन से वादी के सब दोष, सामरोग, पक्षाँधात, अर्दित,

१-परमीपनि अर्थात् सन से उत्तम ओषि ॥

२-प्रज्वलित अर्थात् खूव जलते हुए ॥

३-सन्वि अर्थात् सॅघ वा छेद ॥

४-तात्पर्य यह है कि गर्म पोटली से संक करता जाने तथा ठढी हुई पोटली को गर्म करने के छिये सकोरे पर रखता जाने ॥

५-अण्ड अर्थात् एरण्ड वा अण्डी का वृक्ष ॥

६-सामरोग अर्थात आम (ऑन) के सहित रोग ॥

७-पक्षाचात आदि सन नातरोग है ॥

कम्प, कुटज, सन्धिगत वात, जानु जंघा तथा हाड़ों की पीड़ा, गृष्ठसी, हनुमह, करुखम्म, वातरक्त, विश्वाची, कोष्टुशीर्षक, इदय के रोग, बवासीर, योनि और शुक्त के रोग तथा स्त्री के बंध्यापन के रोग, ये सब नष्ट होते हैं, यह काथ स्त्रियों को गर्भपदान करने में भी अद्वितीय (अपूर्व) है।

१९—रास्तापञ्चक—रास्ता, गिलीय, अंह की बड़, देवदार और सोंठ, ये सन औष मिलाकर एक तोला लेने, इस का पानगर जल में काथ चढाने, जन एक छटांक जल क्षेप रहे तन इसे उतार कर छान कर पीने, इस के पीने से सन्धिगत नात, अस्थि-गत नात, मजाश्रित नात तथा सनीगगत आमनात, ये सन रोग शीध ही दूर हो जाते हैं।

२०-रास्ताससक राक्षा, गिलोय, अमलतास, देनदार, गोखुरू, अंड की जड़ और पुनर्नना, ये सन मिला कर एक तोला लेकर पावसर जल में काथ करे, जन छटांक भर जल होत रहे तन उतार कर तथा उस में छः मासे सोंठ का चूर्ण डाल कर पीने, इस काथ के पीने से जंघा, ऊरु, पसवाड़ा, त्रिक और पीठ की पीड़ा शीन्न ही दूर हो जाती है।

२१-इस रोग में-वशमूल के काथ में पीपल के चूर्ण को डालकर पीना चाहिये।

२२-हरड़ और सींठ, अथवा गिलोय और सींठ का सेवन करने से लाम होता है।

२२—चित्रक, इन्द्रजी, पाढ, कुटकी, अतीस और हरड़, इन का चूर्ण गर्म जरु के साथ पीने से आमाश्चय से उठा हुआ वातरोग शान्त हो जाता है।

२४—अजमोद, काठी मिर्च, पीपल, बायिबड़ंग, देवदारु, चित्रक, सतावर, सेंघा निमक और पीपरामूल, ये सब प्रत्येक चार २ तीले, सोंठ दश पल, विवायरे के वीज दश पल और हरड़ पाच, पल, इन सब को मिलाकर चूर्ण कर लेना चाहिये, पीछे सब औषवों के समान गुड़ मिला कर गोलियां बना लेना चाहिये अर्थात् प्रथम गुड़ में थोड़ा सा जल ढाल कर अग्निपर रखना चाहिये जब वह पतला हो जावे तब उस में चूर्ण ढालकर गोलियां वाँव लेनी चोहियें, इन गोलियों के सेवन से आमवात के सब रोग, विवृचिका (हैजा), प्रतृनी, हद्योग, गृष्ठसी, कमर; बस्ती और गुदा की फूटन, हड्डी और जह्वा की फूटन, स्जन, देहसिन्ध के रोग और वातजन्य सब रोग शीष्ठ ही नष्ट हो जाते है, ये गोलियाँ क्षुपा को लगानेवाली, आरोग्यकर्ता, गौवन को स्थिर करनेवाली, वली और पिलत (बालों की श्वेतता) का नाश करनेवाली तथा अन्य भी अनेक गुणों की करनेवाली है।

१-अर्थात् मिश्रित सातों पदायों की मात्रा एक तीला केकर ॥

२-गुड के योग के बिना यदि केवल यह चूर्ण ही गर्म जल के साथ छ. मासे लिया जाने तो भी बहुत गुण करता है ॥

े २५-आमवातरोग में-पथ्यादि गृगुर्छ तथा योगराजं गृगुरू का सेवन करना अति गुण-कारक माना गया है।

२६—शुण्ठीखण्ड (साँठपाक)—सतवाँ साँठ ३२ तोले, गाय का धी पावमर, दूष चार सेर, चीनी खांड़ २०० तोले (ढाई सेर), साँठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, पत्रव और इलायची, ये सब प्रत्येक चार २ तोले लेना चाहिये, प्रथम साँठ के चूर्ण को पृत में सान कर दूध में पका कर खोवा (मावा) कर लेना चाहिये, फिर खांड़ की चासनी कर उस में इस खोवे को डाल कर तथा मिलाकर चूल्हें से नीचे उतार लेना चाहिये, पीले इस में से एक टकेमर अथना अभि के बलावल का विचार कर उचित मात्रा का सेवन करना चाहिये, इस के सेवन से आमवात रोग नष्ट होता है, बातु (रस और रक्त आदि) पुष्ट होते हैं, शरीर में शक्ति उत्पक्ष होती है, आयु और ओब की बृद्धि होती है तथा बलियों का पड़ना तथा वालों का श्वेत होना मिटता है।

२७ मिथी पाक चानमेथी आठ टकेमर (आठ पक) और सोंठ आठ टके मर, इन दोनों को कूट कर कपड़छान चूर्ण कर छेना चाहिये, इस चूर्ण को आठ टके मर घी में सान कर आठ सेर दूध में डाल के सोवा बनाना चाहिये, फिर आठ सेर लांड़ की चासनी में इस खोवे को डाल कर मिला देना चाहिये, परन्तु चासनी को कुछ नरम रखना चाहिये, पीछे चूल्हे पर से नीचे उतार कर उस में काली मिर्च, पीपल, सोंठ, पीपरामूल, चिन्नक, अजवायन, जीरा, धनियां, कलौजी, सोंफ, जायफल, कचूर, दालचीनी, तेजपात और मदमीया, इन सब को मत्येक को एक एक टका मर लेकर कपड़छान चूर्ण कर उस पाक की चासनी में मिला देना चाहिये तथा टका र मर की कतली अथवा छड़ू बना लेने चाहियें, इन को अधि के बलावल का विचार कर लाना चाहिये, इन के सेवन से आमवात, वादी के सब रोग, विषम उत्तर, पाण्डरोग, कामला, उन्माद (हिष्टीरिया), अपस्मार (मृगी रोग), ममेह, वातरक्त, अम्लपिच, रक्तपिच, शीतिपिच, मस्तकपीड़ा, नेत्ररोग और प्रदर, ये सब रोग नष्ट हो जाते है, देह में पुष्टता होती है तथा वल और वीये की वृद्धि होती है।

२-जिस के भीतर कूजट वहीं निकलता है अर्थात बिसे पीसने से केवल चूणे ही चूर्ण निकलता है उर्वे सतवा सोंट कहते हैं ॥

⁹⁻पथ्यादि मृगुल वातरोग के अन्तर्गत गृष्ठसी रोग की चिकित्सा में तथा योगराज गृगुल सामाय वातव्याधि की चिकित्सा में भावप्रकास आदि प्रन्यों में लिखा है, वहा इस के बनाने और सेवन करने आदि की विधि देख लेनी चाहिये।

३-त्रिकुटा सर्थात् सोंठ, मिर्च और पीपछ ॥

४-त्रिजातक सर्यात् दालचीनी, वडी इसायची सार वेजपात, इस को त्रिप्रगन्धि भी कहते हैं ॥

२८-छह्सुन १०० टकेभर, काले तिल पावमर, हींग, त्रिकुटा, सज्जीखार, जवाखार पांचों निमेंक, सोंफ, हलदी, कूठ, पीपरामूल, चित्रक, अजमोदा, अजवायन और घनिया, ये सब प्रत्येक एक एक टकामर लेकर इन का चूर्ण कर लेना - चाहिये तथा इस चूर्ण को घी के पात्र में भर के रख देना चाहिये, १६ दिन बीत जाने के बाद उस में आघ सेर कड़ुआ तेल मिला देना चाहिये तथा आघसेर कांजी मिला देना चाहिये, फिर इस में से एक तोले मर नित्य खाना चाहिये तथा इस के ऊपर से जल पीना चाहिये, इस के सेवन से आमवात, रक्तवात, सर्वोगंवात, एकांगवात, अपस्मार, मन्दामि, श्वास, खांसी, विष, उन्माद, वातमक्ष और शूल, ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं।

२९-छह्युन का रस एक तोळा तथा गाय का थी एक तोळा, इन दोनों को मिला कर पीना चाहिये, इस के पीने से आमवात रोग अवस्य नष्ट हो जाता है।

३०-सामान्य वातव्यावि की चिकित्सा में जो अन्यान्तरों में रसोनाष्टक भीषध छिला है वह भी इस रोग में अत्यन्त हितकारक है !

· ३१-छिप-सोंफ, बच, सोंठ, गोख़रू, वरना की छाल, पुनर्नवा, देवदार्ह, कचूर, गोरखमुंडी, प्रसार्रणी, अरनी और मैनफल, इन सब औषयों को कांजी अथवा सिरके में वारीक पीस कर गर्म २ लेप करना चाहिये, इस से आमवात नष्ट होता है।

३२-कल्हींस, फेबुँफ की जड़, सहजना और वर्मई की मिट्टी, इन सब को गोसूत्र में पीसकर गाड़ा २ लेप करने से आमवात रोग मिट जाता है।

३३—चित्रक, कुटकी, पाढ, इन्द्रजी, अतीस, गिलोय, देवदारु, बच, मोथा, सोंठ और इरड़, इन ओविषयों का काथ पीने से आमवात रोग शान्त हो जाता है।

३४-कचूर, सोंठ, हरड, वच, देवदारु, अतीस और गिलोय, इन अोषियों का काथ आम को पचाता है परन्तु इस काथ के पीने के समय रूला मोजन करना चाहिये।

३५-पुनर्नवा, कटेरी, मरुआ, मूर्वा और सहजना, ये सब ओषधियां कम से एक, दो, तीन, चार तथा पाच माग छेनी चाहियें तथा इन का काथ बना कर पीना चाहिये, इस के पीने से आमवात रोग शान्त हो जाता है।

१-श्रिकटा अर्थात् सोंठ, मिर्च और पीपल ॥

२-पाँचो निमक अर्थात् संवानिमक, सौवर्षक्रनिमक, कालानिमक, सामुद्रनिमक और औद्विद्रनिमक ॥

३-कडुआ तेल अर्थात सरसो का तेल ॥

४-सवीगवात अर्थात् सव अंगो की वादी और एकाइवात अर्थात् किसी एक अग की वादी ॥

५-अपस्मार अर्थात् सृगीरोग ॥

६-इसे भाषा मे पसरन कहते हैं, यह एक प्रसर जाति की (फैलनेवाओ) वनस्पति होती है।

७-इसे हिन्दी में केउओं भी कहते हैं ॥

<-वनई को संस्कृत में बल्मीक कहते हैं, यह एक मिट्टी का ढींका होता है जिसे पुत्तिका (कीटविशेष) इकट्टा करती है, इसे भाषा में बमौटा मी कहते हैं॥

३६-आमवात से पीड़ित रोगी को दूव के साथ अंडी का तेल पिला कर रेचन . (जुलाब) कराना चाहिये। .

३७-गोम्त्र के साथ में सीठ, हरड़ और गूगुड़ को पीने से यह रोग मिट जाता है। ३८-सीठ, हरड़ और गिडोय, इन के गर्म २ काथ को गूगुड़ डाड़ कर पीने से कमर, जांघ, कर और पीठ की पीड़ा शीष्ठ ही दूर हो जाती है।

३९-हिंग्बादि चूर्ण-हींग, चव्य, विड निमक, सोंठ, पीपल, जीरा और पुहकर-मूल, ये सब ओषधियां कम से अधिक माग लेनी चाहियें, इन का चूर्ण गर्भ जल के साथ लेने से आमवात और उस के विकार दूर हो जाते है।

४०—पिप्पत्यादि चूर्ण—पीपल, पीपलामूल, सेंधा निमक, काला जीरा, चळा, चित्रक, तालीसपत्र और नागकेश्वर, ये सब प्रत्येक दो २ पल, काला निमक ५ पल, काली मिर्च, जीरा और सोंठ, प्रत्येक एक एक पल, अनारदाना पाव गर और अमः लवेत दो पल, सब को कूट कर चूर्ण बना लेना चाहिये, इस का गर्म जल के साथ सेवन, करने से अग्नि प्रदीप्त होती है, बवासीर, प्रहणी, गोला, उदररोग, अगन्दर, कृमिरोग, खुजली और अरुचि, इन सब का नाश होता है।

४१—पथ्यादि चूर्ण—हरड़, सोंठ और अजबायन, इन तीनों को समान माग केकर चूर्ण करना चाहिये, इस चूर्ण को छाछ, गर्म जल, अथवा कांजी के साथ पीने से आमवात, सूजन, मन्दामि, पीनस, खांसी, हृदयरोग, खरैमेद और अरुचि, इन सब रोगों का नाश होता है।

१२-रसोनादि काथ - कहप्रन, सौंठ और निर्गुण्डी, इन का काथ आम की चीन्न ही नष्ट करता है, यह सर्वोत्तम सोषि है ।

४३—दाट्यादि काथ—शठी (कच्र) और सोंठ, इन के कल्क की सांठ के काथ में मिलाकर सात दिन तक पीना चाहिये, इस के पीने से आमधात रोगं का नाश हो जाता है।

४४-पुनर्तवादि चूर्ण-पुनर्नवा, गिलोय, सोंठ, सतावर, विधायरा, कचूर और गोरलगुर्णेडी, इन का चूर्ण बना कर कांजी से पीना चाहिये, इस के पीने से आसाश्य

१-अर्थात् हींग एक भाग, चव्य दो भाग, विद्वनिमक तीन साग, सोंठ चार आग, पीपल पांच साग, जीरा छ: भाग और पुहकरमूछ सात आग केना चाहिये ॥

२-उस के निकार अर्थात् आमनात के क्षोध और ग्रूल आदि निकार ॥

३-स्वरमेद अर्थात् आवाज का बदलना ॥ '४-इस को मुण्डी, महामुण्डी तथा छोटी वडी गोरखमुण्डी भी कहते है, यह मसरजाति की स्वर्ग होती है, यह काठी जमीन तथा जलप्राय स्थान में बहुत होती है ॥

(होजरी) की वादी दूर होती है तथा गर्म जल के साथ लेने से आमवात और गृष्टेंसी रोग दर हो जाते है।

24-ची, तेळ, गुड़, सिरका और सोंठ, इन पांचों को मिळा कर पीने से तत्काल टेह की तृप्ति होती है तथा कमर की पीड़ा दूर होती है, निराम (आमरहित) कमर की पीड़ा को दूर करनेवाला इस के समान दूसरा कोई प्रयोग नहीं है³।

8६—सिरस के बक्कल को गाय के मूत्र में भिगा देना चाहिये, सात दिन के बाद निकाल कर हीग, बच, सोंफ और सेंधा निमक, इन को पीस कर पुटपाक करके उस का सेवन करना चाहिये, इस का सेवन करने से दारुण (धोर) कमर की पीड़ा, आमदृद्धि, मेदबृद्धि के सब रोग तथा वादी के सब रोग दूर हो जाते हैं।

१७-अन्द्रतादि चूर्ण-गिलोय, सोंठ, गोखुरू, गोरसमुंडी और वर्रना की छाल, इन के चूर्ण को दही के जल अथवा कांजी के साथ छेने से सामवात (आम के सहित वादी) का शीध ही नाश होता है।

४८-अस्त्रस्तुवादि चूर्ण-अलम्बुषा (लजाल का मेद), गोखुरू, त्रिफला, सोंठ जीर गिलोय, ये सब कम से अधिक माग लेकर चूर्ण करे तथा इन सब के बराबर निसोत का चूर्ण मिलावे, इस में से एक तोले चूर्ण को लाल का जल, लाल, कांनी, अथवा गर्म जल के साथ लेने से आमवात, स्जन के सहित बातरक्त, त्रिक; जॉनु; जरु और सिम्बयों की पीड़ा, जबर और अरुचि, ये सब रोग मिट जाते है तथा यह अलम्बुषादि चूर्ण सर्व-रोगों का नाशक है।

४९-अलम्बुषा, गोखुरू, वरना की जड़, गिलोय और सोंठ, इन सब ओपियों को समान भाग लेकर इन का चूर्ण करे, इस में से एक तोले चूर्ण को कांजी के साथ लेने से आमवात की पीड़ा अति श्रीन दूर हो जाती है अर्थात् आमवात की वृद्धि में यह चूर्ण अमृत के समान गुणकारी (फायदेमन्द) है।

५०-दूसरा अलम्बुषादि चूर्ण-अलम्बुषा, गोखुरू, गिलोय, विधायरा, पीपल, निसोत, नागरमोथा, वरना की छाल, साठ, त्रिफला और सोठ, इन सब ओपधियों को

१-यह रोग वातजन्म है।

२-अर्थात् आमरहित (विना आम की) यानी केवल वादी की पीढा श्रीव्र ही इस प्रयोग से दूर हो जाती है।

३-वरना को संस्कृत में वरुण तथा वरण भी कहते हैं ॥

४-कम से अधिक माग छेकर अर्थात् अलम्बुषा एक भाग, गोखुरु दो भाग, त्रिफला तीन भाग, सोठ चार माग और गिलोब पॉच माग छेकर ॥

५-नाज अर्थात घटने ॥

६-साठ अर्थात् लाल पुनर्नवा, इस (पुनर्नवा) के बहुत से भेद है, जैसे-धेत पुनर्नवा, इसे हिन्दी में विवस्तपरा कहते हैं तथा नीकी पुनर्नवा, इसे हिन्दी में नीकी साठ कहते हैं. इस्तादि ॥

u-त्रिफला सर्थात् हरड, वहेवा और ऑवला, ये तीनों समान माग वा कम से अधिक भाग ॥

समान भाग छेकर चूर्ण बना छेना चाहिये, इस में से एक तोछे चूर्ण को दही का बछ, कांजी, छाछ अथवा दूध के साथ लेना चाहिये, इस का सेवन करने से आमवात, सूजन और सन्धिवात, ये रोग शान्त हो जाते हैं।

५१-वैश्वानर चूर्ण-संघा निमक दो तोले, अजवायन दो तोले, अजमोद तीन तोले, सींठ पांच तोले और हरड़ बारह तोले, इन सन ओषधियों का बारीक चूर्ण कर के उसे दही का जल, छाछ, कांजी, घी और गर्म जल, इन में से चाहें जिस पदार्थ के साथ लेना चाहिये, इस के सेवन से व्यामवात, गुल्म, इदय और वस्ती के रोग, तिल्ली, गांठ, शूल, अफरा, गुदा के रोग, विवैध और उदर के सब रोग शीष्ठ ही शान्त हो बाते हैं तथा अधोवायु (अपानवायु) का अनुलोमन (नीचे को गमन) होता है।

५२-असीतकादि चूर्ण-कोयल, पीपल, गिलोय, निसोत, बाराहीकन्द, गनकर्ण (साल का मेद) और सीठ, इन सब ओषधियों को समान माग लेकर चूर्ण करे तथा इस चूर्ण को गर्भ जल, मांड़, यूप, छाछ और दही का जल, इन में से किसी एक के साथ लेवे, इस के सेवन से अपबाहुक, गृत्रसी, खझवात, विश्वाची, तूनी, प्रतूनी, जंबा के रोग, आमबात, अर्दित (उक्तवा), वातरक्त, कमर की पीड़ा, गुल्म (गोला), गुदा के रोग, प्रकोष्ठें के रोग, पाण्डुरोग, स्वन तथा करुलर्म, ये सब रोग मिट जाते हैं।

५३-ह्युण्ठीघान्यकचृत-सोंठ का चूर्ण छः टके भर (छः परु) तथा पनिया दो टके भर, इन में चौगुना जल डाल कर एक सेर वी को परिपक्त करना (पकाना) चाहिये, यह घुत वातकफ के रोगों को दूर करता है, अमि को बढ़ाता है तथा बवासीर; श्वास और खांमी को नष्ट कर बल और वर्ण को उत्पन्न करता है।

५४-शुण्ठी घृत-पृष्टता के लिये यदि वनाना हो तो दूध, दही, गोसूत्र और गोवर के रस के साथ बी को पकाना चाहिये तथा यदि अग्निदीपन के लिये बनाना ही सो छाछ के साथ घी को पकाना चाहिये, इस घी को सोंठ का करूक डाल कर तथा चौगुनी कांजी को डाल कर सिद्ध करना चाँहिये, यह वृत अग्निकारक तथा आमवात-हरणकर्ता है।

५५-दूसरा ग्रुण्ठी घृत-सोंठ के काथ और कल्क से एक सेर वृत और चार

१-गुल्म अर्थात् गोले का रोग ॥

२-नाभि के नीचले माग को विद्यालन कहते हैं ॥

३-विवघ अर्थात् मरु और मूत्रादि का रुकना ॥

४-अपवाहक आदि सब वातजन्य रोग है ॥

५-प्रकोष्ठ के रोग अर्थात् कोठे के रोग ॥

६-ऊरुत्तम्भ अर्थात् जंघाओं का रह जाना ॥ .

७-पृत तथा तैल को सिद्ध करने की निधि पहिले खौषधप्रयोगवर्णन नामक प्रकरण में लिख चुके हैं॥

सेरं जल से अथवा फेवल उक्त काथ और फरक से ही घृत को सिद्ध करना चाहिये, यह शुण्ठीपृत वातकफ को शान्त करता है, अग्नि को भदीस करता है तथा कमर की पीड़ा और आम को नष्ट करता है।

५६-कांजिकादि घृत-हींग, त्रिकुटा, चव्य और सेंघा निमक, इन सब की प्रत्येक को चार २ तोळे छेवे तथा करूक कर इस में एक सेर घृत और चार सेर कांजी को ढाळ कर पचावे, यह कांजिक घृतें उदररोग, गूळ, विवन्ध, अफरा, आमवात, कमर की पीड़ा और प्रहणी को दूर करता है तथा अभि को मदीस करता है।

५७-इट्टुइबेरादिघृत-अदरस, जबासार, पीपल और पीपरामूल, इन को चार २ तोले लेकर करक करे, इस में एक सेर घृत को तथा चार सेर कांनी को डाल कर पकाने, यह घृत निवन्ध, अफरा, शूल, आमवात, कमर की पीड़ा और प्रहणी को दूर करता है तथा नष्ट हुई अग्न को पुनः उत्पन्न करता है ।

५८-प्रसारणी छेह- मसार्णी (सीप) के चार सेर काथ में एक सेर घृत डाल कर तथा सोंट, मिर्च, पीपल और पीपरामूल, इन को चार र तोले लेकर तथा करक वना कर उस में डाल कर घृत को सिद्ध करे, यह घृत आमवात रोग को दूर कर देता है।

५९-प्रसारणीतैल - प्रसारणी के रस में अंडी के तेल को सिद्ध कर लेना चाहिये तथा इस तेल को पीना चाहिये, यह तेल सब दोषों को तथा कफ के रोगों को चीन ही नष्ट कर देता है।

६०- सिपश्च मूल्या दितेल - दशम्ले का गोंद, फल, वहीं और खही कांजी, इन के साथ तेल को पकाकर सिद्ध कर लेना चाहिये, यह तेल कमर की पीड़ा, करुओं की पीड़ा, कफवात के रोग और बालमह, इन को दूर करता है तथा इस तेल की विस्त करने से (पिचकारी लगाने से) अग्नि प्रदीस होती है।

६१-आमवातारिरस—पारा एक तोला, गन्यक दो तोले, हरड़ तीन तोले, लॉबला चार तोले, बहेड़े पाच तोले, चीते (चित्रक) की छाल छः तोले और गूगुल सात तोले, इन सब का उत्तम चूर्ण करे, इस में अंडी का तेल मिलाकर पीवे, इस से आमवात रोग शान्त हो जाता है, परन्तु इस ओषि के ऊपर दूष का पीना तथा मूंग के पदार्थों का खाना वर्जित (मना) है।

⁹⁻त्रिकुटा अर्थात् सोंठ, मिर्च और पीपल, इसे त्रिकटु मी कहते हैं ॥

२-कॉजी में सिद्ध होने के कारण इस पृत को कांत्रिक पृत कहते हैं॥

३-- अर्थात् अप्रि की मन्दता को मिटाता है ॥

४-इसे पसरन भी कहते हैं जैसा कि पहिले लिख चुके हैं ॥

५-वेल, गॅमारी, पाडर, अरनी और स्रोनाक, यह वृहत्पधमूछ तथा ज्ञालपणी, प्रष्टपणी, छोटी क्टेरी, बढी कटेरी और गोखुरू, यह लघुपधमूल, ये दोनों मिलकर दशमूल कहा जाता है॥

पथ्यापथ्य इस रोग में दही, गुड़, दूष, पोई का साग, उड़द तथा पिसा हुआ अल (चून और मैदा आदि), इन पदार्थों को त्याग देना चाहिये अर्थात् ये पदार्थ इस रोग में अपथ्य हैं, इन के सिवाय जो पदार्थ अभिज्यन्दी (देह के छिदों को बन्द करने वाले), भारी तथा मठाई के समान गिळगिले हैं उन सब का भी त्याग कर देना चाहिये॥

उन्माद अर्थात् हिष्टीरिया (Hysteria) रोग का वर्णन ॥

लक्ष्मण-यद्यपि इस रोग के लक्षण विविध प्रकार के (अनेक तरह के) होते हैं अर्थात् ऐसे बहुत थोड़े ही रोग होंगे कि जिन के चिद्व इस (हिष्टीरिया रोग) में न होते हों तथापि इस का मुख्य चिद्व सैचतान है।

प्रिय वावकहन्द! अब तो चेतो और अविद्या का शरण छोडकर विद्या है वी की उपासना करो, अर्थात भूत प्रेत आदि के श्रम (बहम) को तथा' मावच्यां जी और यह जी आदि के होप को एव कामण हमण आदि के वहमों को छोडो, देखो ! इन्हीं बहमों ने इस शहरणाश्मम का सलानाश कर दिया कामण हमण आदि के वहमों को छोडो, देखो ! इन्हीं बहमों ने इस शहरणाश्मम का सलानाश कर दिया कामण हमण आदि कार है इस छिये सज्जानों और बुद्धिमानों को इन बहमों को खय लाग देना चाहिये तथा श्रित नगर (हर शहर) और प्रति प्राम (हर गाँव) में इन बहमों से बचने का उपदेश भी लोगों की प्रति नगर (हर शहर) और प्रति प्राम (हर गाँव) में इन बहमों से बचने का उपदेश भी लोगों की करना चाहिये कि जिस से ये बहम सर्वत्र ही इर हो जानें । प्रश्न-आप ने भूत प्रेत आदि के विषय करना चाहिये कि जिस से ये बहम सर्वत्र ही इर हो जानें । प्रश्न-आप ने मूल प्रेत आदि के विषय मं केवल अम (बहम) मात्र वतलाया, सो क्या आप भी अंग्रेजी पढने पहानेवाले होगों के समान मूर्श की निष्या ठहराते हो है उत्तर-प्रिय वन्सुओ ! हम पूर्वाचारों के वचनों को कभी पृश्वाचारों के वचनों को किया नहीं ठहरा सकते हैं और न उन के बचनों का खण्डन कर सकते हैं, क्योंकि उन के बचनों को मानना तथा उसी के अनुसार चळना, हम सब लोगों का परम धर्म है, जो लोग उन के वचनों को समानना तथा उसी के अनुसार चळना, हम सब लोगों का परम धर्म है, जो लोग उन के वचनों को समानना तथा उसी के अनुसार चळना, हम सब लोगों का परम धर्म है, जो लोग उन के वचनों को समानना तथा उसी के अनुसार चळना, हम सब लोगों का परम धर्म है, जो लोग उन के वचनों का समानने तथा उन के वचनों का खण्डन करते हैं सो यह उन को महामूल है, क्योंकि वे (पूर्वाचार्य) मानते तथा उन के वचनों का खण्डन करते हैं सो यह उन को महामूल है, क्योंकि वे (पूर्वाचार्य)

१ - यह हिद्यीरियास्पी भृत कियों में ही प्राय: देखा जाता है अर्थात् कियों के ही यह रोग प्राय: होता है, वहुत से मोले लोगों ने इस रोग के यथार्थ (असली) खरूम को न समझ कर इसे भृत वा भृतनी मान रक्खा है, अर्थात् वर्तमान में यह देखा जाना है कि जाव यह रोग कियों के होता है तथा इस के हंसना और रोना आदि लक्षणों को जाव कियां प्रकट करती हैं उस समय हमारे मोले श्रीमान लोग तथा साधारण जन रोग और उस के हेत्र को न जान कर भृत आदि की बाधा ही समझ लेते हैं तथा करें खावा, यखा, मखा और झाडा झपाटा आदि करने कराने में कुछ भी बाकी नहीं रखते हैं, ऐसे समय को पाकर ठम लोग भी उन को अपने पंदों में फंसा कर अपना मतलब साधने में कुछ भी बाकी नहीं रखते हैं, इस प्रकार यखा, मखा, बोराडांडा और झाडा झपाटा आदि करते कराते उन को बचों बीत जाते हैं, इस प्रकार यखा, मखा, बोराडांडा और झाडा झपाटा आदि करते कराते उन को बचों बीत जाते हैं, सैकडों और हजारों रुपये खर्च हो जाते हैं, परन्तु रोगी को कुछ भी लाम नहीं होता है अर्थात् वह हिशीरियास्भी भूत ज्यों का खों ही बना रहता है, आजिरकार परिणाम (नतीजा) यह होता है कि—रोगी के सब कुट्टेम्टी जन हाथ मल मल कर पछताते हैं और बहुत समय के हो जाने से वह रोग प्रवस्त्य धारण कर लेता है और रोगी चर्चु को प्राप्त हो जाता है।

यह लैंचतान निद्रावस्था (नींद की हालत) और एकाकी (अकेले) होने के समय में नहीं होती है किन्तु जब रोगी के पास दूसरे लोग होते है तब ही होती है तथा एकाएक (अचानक) न होकर धीरे २ होती हुई माल्यम पड़ती है, रोगी पहिले हँसता है, बकता है, पीछे डसके भरता है और उस समय उस के गोला भी ऊपर को चढ जाता है, लैंच-तान के समय यद्यपि असावधानता माल्यम होती है परन्तु वह पायः अन्त में मिट जाती है।

महात्मा, परोपकारी (दूसरों का उपकार करनेवाले) और सखवादी (सख बोलनेवाले) ये तथा उन का बचन इस भव (लोक) और पर भव (बूसरा लोक) दोनों में हितकारी (मलाई करनेवाला) है, इसी लिये हम ने भी इस प्रन्थ में उन्हीं महात्माओं के बचनो को अनेक शाकों से छेकर सप्रहीत (इस्ट्रा) किया है, किन्तु जिन होगों ने उक्त महात्माओं के वचनों को नहीं माना, वे अविद्या के उपासक समझे गये और उसी के प्रसाद से वे धर्म को अधर्म. सला को असला, असला को सला, शुद्ध को अशुद्ध, अशुद्ध को शुद्ध, जड को चेतन, चेतन को जड तथा अधर्म नो धर्म समझने लगे, यस उन्हीं लोगों के र प्रताप से आज इस पवित्र ग्रहस्थाधम की यह दुर्दगा हो रही है और होती जाती है तथा इस आश्रम की यह दुईशा होने से इस के आध्यीमृत (सहारा केनेवाले) श्लेष तीनों आधर्मों की दुईशा होने में आधर्य ही क्या है ? क्योंकि-"जैसा आहार, वैसा उहार" वस-हमारे इस पूर्वोक्त (पहिले कहे हुए) वचन पर थोडा सा ध्यान दो तो हमारे कथन का आशय (मतलव) तुम्हें बच्छे प्रकार से मालूम हो जावेगा । (प्राप्त) आपने मत प्रेत आदि का केवल वहम बतलाया है. सो क्या भूत प्रेत आदि है ही नहीं है (उत्तर) हमारा यह कथन नहीं है कि-भूत प्रेत आदि कोई पदार्थ ही नहीं है. क्योंकि हम सब ही छोग शाकातुसार सर्ग और नरक आदि सब व्यवहारों के माननेवाले हैं अत. हम भूत प्रेत आदि भी सब कुछ मानते हैं, क्योंकि जीवविचार शाहि प्रन्यों में व्यन्तर के आठ भेद कहे हैं-पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किमर. किन्युक्ष, महोरम और गन्धर्व, इस लिये हम उन सब को यथावत (ज्यों का ल्यो) मानते हैं, इस लिये हमारा कथन यह नहीं है कि भूत प्रेत आदि कोई पदार्थ नहीं है किन्तु हमारे कहने का मतलब यह है कि-एहस्य लोग रोग के समय में जो मृत प्रेत आहि के बहम में फॅस बाते है सो यह उन की मूर्खता है. क्योंकि-देखों । कपर लिखे हुए जो पिशाच आदि देव हैं वे प्रलेक मनुष्य के शरीर में नहीं आते हैं, हां वह वृसरी बात है कि-पूर्व मव (पूर्व जन्म) का कोई वैराजुवन्य (वैर का सम्बंध) हो जाने से ऐसा हो जाने (किसी के शरीर में पिशाचादि प्रवेश करे) परन्त इस बात की तो परीक्षा भी हो सकती है अर्थात शरीर में पिशाचादि का प्रदेश है वा नहीं है इस वात की परीक्षा को तम सहज में शोदी देर में ही कर सकते हो, देखो ! जब किसी के शरीर में तुम को मृत भेत आदि की सम्मावना हो तो तुम किसी छोटी सी चीज को हाय की मुद्री में बन्द करके उस से पूछो कि हमारी मुद्री में क्या चीज है 2 यदि वह उस चीज को ठीक २ बतला दे तो पुन भी दो तीन वार दूसरी २ चीजो को छेकर पूँछो, जब कई बार ठीक २ सब बस्तुओं को बतला दे तो वेशक शरीर में भूत प्रेत आदि का प्रवेश समझना चाहिये, यही परीक्षा मैक् जी तथा मावच्यों जी आदि के मोणे पर (जिन पर मैक् जी आदि की छाया का आना माना जाता है) भी हो सकती है, अर्थान् वे (सोपे) भी यदि वस्त को ठीक २ वतला देवे तो अलवसह उक्त देवों की छाया उन के शरीर में समझनी चाहिये. परन्तु यदि सही की चीज को न वतला सके तो

क़मी २ खेंचतान बोड़ी और कमी २ अधिक होती है, रोगी अपने हाब पैतें को फेंकता है तथा पछाड़ें मारता है, रोगी के दाँत बँघ जाते हैं परन्तु प्रायः जीम नहीं जक़ इती है और न मुख से फेन गिरता है, रोगी का दम घुटता है, वह अपने वालों को तोड़ता है, कपड़ों को फाइता है तथा छड़ना प्रारम्म करता है।

जपर कहे हुए दोनों को झूठा समझना चाहिये। (प्रश्न) महाशय! हम ने आप की वतलाई हुई सीख को तो कभी नहीं किया, क्योंकि यह बात आजतक हम को मालूम ही नहीं थी, परन्तु हम ने भतनी हो निकालते तो अपनी गोंखो से (प्रसक्ष) देखा है, वह आप से कहता हूं. ध्रुनिये-मेरी स्री के शरीर ह महीने में दो तीन बार भूतनी आया करती थी, मैं ने बहुत से झाडा झपाटा करने वालो से झाडे हपाडे आदि करवाये तथा उन के कहने के अनुसार बहुत सा द्रव्य भी खर्च किया, परना कुछ भी लाम तम हुआ, आखिरकार झाबा देनेवाला एक उत्साद मिला, उस ने मुझ से कहा कि-"मैं तुम को ऑसों हे भृतिनी को दिखला दूंगा तथा उसे निकाल दूंगा परन्तु तुम से एक सौ एक रूपये छगा" में ने उस ही वात को खीकार कर लिया, पीछे मगलवार के दिन शाम को वह मेरे पास आया और मुझ से क्रमंत्र कागज़ का आधा शीट (तहता) मंगवाया और उस (कागज़) को मन्त्र कर मेरी की के शब में उसे दिया और लोबान की भूप देता रहा, पीछे मन्त्र पढ कर शांत करूडी उस ने गारी और मेरी जी है 🐯 कि-"देसो । इस में तुम्हें कुछ दीखता है" मेरी स्त्री ने ठला के कारण जब कुछ नहीं कहा तब मैं ने अ कागज को देखा तो उस में साक्षात भतनी का चेहरा मुझ को दीख पड़ा, तब सुस को विश्वास हो का और भूतनी निकल गई, पीछे उस के कहने के अनुसार में ने उसे एक सी एक रुपये दे दिये, जाते समय उस ने एक यन्त्र भी बना कर मेरी स्त्री के वेंघवा दिया और वह चला गया, उस के चले जाने के वार एक महीने तक मेरी की अच्छी रही परन्तु फिर पूर्ववत् (पहिछे के समाव) हो गई, यह मैं ने अपनी ऑखों से देखा है, अब यदि कोई इस को झूठ कहे तो भका मैं कैसे मार्ने ? (उत्तर) द्वम ने को जाँकों से देखा है उस को झूठ कीन कह सकता है, परन्त तुम को मालूम नहीं है कि उननेवाले लोग ऐसी र चालाकिया किया करते है जो कि साधारण लोगों की समझ में कभी नहीं आ सकती हैं और उन की वैसी ही चालाकियों से तुम्हारे कैसे मोले लोग उगे जाते हैं, देखो ! तुम लोगों से यदि कोई वियोनति (विया की बृद्धि) आदि उत्तम काम के लिये पांच रुपये भी मांगे तो तुम कभी नहीं दे सकते हो, परन्तु उन भूर्त पाखिण्डयों को खुशी के साथ सैकड़ो रूपये दे देते हो, बस इसी का नास अविवा का प्रसाद (अहान की इपा) है, तुम कहते हो कि उस झाटा देनेवाले उस्ताद ने हम को कागज में भूतनी का नेहरा साक्षात दिखला दिया, सो प्रथम तो इम तुम से यही पूँछते है कि-तुम ने उस कागज में लिखे हुए नेहरे को वेखकर यह कैसे निध्यम कर छिया कि यह भूतनी का चेहरा है, क्योंकि तुस ने पहिछे तो कमी भूतनी को देखा ही नहीं था, (यह नियम की नात है कि पहिले साक्षात् देखे हुए मूर्तिमान् पदार्थ के चित्र की देखकर भी वह पदार्थ जाना जाता है) वस विना भृतिनी को देखे कायज में लिखे हुए चित्र को देख कर भृतिनी के चेहरे का निष्य कर छेना तुम्हारी अज्ञानता नहीं तो और क्या है ? (प्रस्र) हम ने माना कि-कागज में भूतनी का चेहरा मले ही न हो परन्तु निना लिखे वह चेहरा उस कागज में आ गया, यह उस की पूरी उस्तादी नहीं तो और क्या है है अब कि विना किसे उस की विद्या के वरू से यह चेहरा जब खैचतान बन्द होने को होती है उस समय नृम्मा (जॅमाइयाँ वा उबासियाँ) अथवा डकारें आती है, इस समय भी रोगी रोता है, इँसता है अथवा पागलपन को प्रकट (जाहिर) करता है तथा वारंवार पेशाव करने के लिये जाता है और पेशाव उत्तरती भी बहुत है।

कागज में आ गया इस से यह ठीक निश्चय होता है कि वह विद्या में पूरा उस्ताद था और जव उस की उस्तादी का निश्चय हो गया तो उस के कथनाजुसार कागज में मूतनी के चेहरे का भी विश्वास करना ही पड़ता है। (उस्तर) उस ने जो तुम को कागज़ में साक्षात चेहरा दिखला दिया वह उस का विद्या का वरू वहीं किन्तु केवल उस की चालकी थी, तुम उस चालकी को जो विद्या का वरू समझते हो यह तुम्हारी विल्कुल खड़ानता तथा पदार्थविद्यानभिज्ञता (पदार्थविद्या को न जानना) है, देखों! विना लिखे कामज में चित्र का दिखला देना यह कोई आक्षर्य की बात नहीं है, क्योंकि पदार्थविद्या के द्वारा अनेक प्रकार के अद्भुत (विचित्र) कार्य दिखलाये जा सकते हैं, उन के यथार्थ तरन को न समझ कर भूत प्रेत आदि का निश्चय कर लेना अखन्त मूर्खता है, इन के सिवाय इस बात का जान लेना भी आवश्यक (जहरी) है कि उन्माद आदि कई रोगों का विशेष सम्बद्ध मन के साथ है, इस लिये कभी २ वे महीने दो महीने तक नहीं भी होते है तथा कभी २ जब यन और तरफ को हुक जाता है अथवा मन की आहा। पूर्ण हो जाती है तथ विल्कुल ही देखने में नहीं खाते हैं।

उन्माद रोग में रोना बकना आदि उक्षण मन के सम्बद से होते हैं परन्तु मूर्ख जन उन्हें देख कर मूत और भूतनी को समझ केते हैं, यह अम वर्तमान में प्राय. देखा जाता है, इस का हेतु केवछ कुर्स-रकार (हुरा सरकार) ही है, देखो! जब कोई छोटा वाछक रोता है तब उस की माता कहती है कि—"हीआ आवा" इस को छुन कर बालक जुप हो जाता है, वस उस वाछक के हृदय में उसी हीए का सरकार जम जाता है और वह आजन्म (जन्मभर) नहीं निकछता है, प्रिय वाचकहन्द! विचारों तो सही कि वह हीआ क्या बीज है, कुछ भी नहीं, परन्तु उस असावरूप होए का भी तुरा असर वाछक के कोमल हृदय पर कैसा पड़ता है कि वह जन्मभर नहीं जाता है, देखो! इमारे देशी माहयों में से बहुत से जोग राष्ट्रि के समय में दूसरे प्राम में वा किसी दूसरी जगह अकेले जाने में उरते हैं, इस का क्या कारण है, केवल यही कारण है कि—अज्ञान माता ने बालकपन में उन के हृदय में हीआ का भय और उस का हुरा सस्कार स्थापित कर दिया है।

यह कुसस्कार विचा से रहित मारवाड आदि अनेक देशों में तो अधिक देखा ही जाता है परन्तु गुजरात आदि जो कि पठित देश कहळाते हैं वे भी इस के भी दो पैर आगे वखे हुए हैं, इस का कारण स्रीवर्ग की अज्ञानता के सिवाय और कुछ नहीं है।

यद्यि इस निपय में यहा पर इस को अनेक अद्भुत बातें भी लिखनी थीं कि जिन से एइस्थों और मीडे लोगों का सब अम दूर हो जाता तथा पदार्थिवज्ञानसम्बधी कुछ जमत्कार भी उन्हें विदित हो जाते परन्तु अन्य के अधिक वह जाने के भय से उन सब वार्तों को यहा नहीं लिख सकते हैं, किन्तु सूचना मात्र असगवशात यहा पर बतला देना आवश्यक (ज़रुरी) था, इस लिये कुछ बतला दिया गया, उन सब अद्भुत वार्तों का वर्णन अन्यत्र असगानुसार किया जाकर पाठकों की नेना में उपस्थित किया जानेगा, आशा है कि समझदार पुरुप हमारे इतने ही लेख से तत्त्व का विचार कर मिथ्या अम (हार्ड बहम) को दूर कर धूर्त और पाखण्डी लोगों के पंजे में न फॅस कर लाग उठावेंगे । सैचतान के सिवाय—इस रोग में अनेक प्रकार का मनोविकार मी हुआ करता है अर्थात् रोगी किसी समय तो अति आनन्द को प्रकट करता है, किसी समय जीत उदास हो जाता है, कभी र अति आनन्ददशा में से भी एकदम उदासी को पहुँच जाता है अर्थात् हँसते र रोने उगता है, इसी प्रकार कभी र उदासी की दशा में से भी एकदम आनन्द को प्राप्त हो जाता है अर्थात् रोते र इसने उगता है। इसी प्रकार कभी र उदासी की दशा में से भी एकदम आनन्द को प्राप्त हो जाता है अर्थात् रोते र हँसने उगता है।

रोगी का चित्त इस वात का उत्सुक (चाहवाळा) रहता है कि—छोग मेरी तरफ ध्यान देकर दया को प्रकट करें तथा जब ऐसा किया जाता है तब वह अपने पागळपन को और भी अधिक प्रकट करने लगता है।

इस रोग में स्पर्शसन्बन्धी भी कई एक चिंह प्रकट होते हैं. जैसे-मलक, क्रोह और छाती आदि स्थानों में चसके चलते हैं, अथवा गूल होता है, उस समय रोगी का स्पर्ध का ज्ञान वढ जाता है अर्थात थोड़ा सा भी स्पर्श होने पर रोंगी की अधिक माल्स होता . है और वह स्पर्भ उस को इतना असब (न सहने के बोग्य) माल्स होता है कि-रोगी किसी को हाथ भी नहीं लगाने देता है. परन्त यदि उस (रोगी) के लक्ष्य (ध्यान) को इसरे किसी विषय में लगा कर (इसरी तरफ ले जाकर) टक्त स्थानों में रुपर्श किया जावे तो उस को कुछ भी नहीं माख्य होता है, तात्पर्य यही है कि-इस रोग में नाख-विक (असठी) विकार की अपेक्षा मनोविकार विशेष होता है, नाक, कान, आँख और जीय, इन इन्द्रियों के कई प्रकार के विकार माछम होते हैं अर्थात कानों में बॉबाट (बॉ २ की आवाज) होता है, आँखों में विचित्र दर्शन प्रतीत (माल्म) होते हैं, जीम में विचित्र खाद तथा नाक में विचित्र गन्य मतीत होते हैं, पेट अर्थात पेहू में से गोला कपर को चढता है तथा वह छाती और गर्ल में जाकर ठहरता है जिस से ऐसा मतीत होता है कि रोगी को अधिक व्याकलता हो रही है तथा वह उस (गोले) को निकलवाने के लिये प्रयत कराना चाहता है, कभी २ स्नर्ज का ज्ञान बढ़ने के बदले (एवज में) उस (स्पर्श) का ज्ञान न्यून (कम) हो बाता है, अथवा केवल शून्यता (शरीर की सुन्नता) सी प्रतीत होने लगती है अर्थात् श्ररीर के किसी २ भाग में स्पर्श का ज्ञान ही नहीं होता है।

इस रोग में गतिसम्बन्धी भी अनेक विकार होते हैं, जैसे—कमी २ गित का बिनाश हो जाता है, अकेठी दाँती ठग जाती है, एक अथवा दोनों हाथ पैर खिंचते हैं, खिंचने के समय कमी २ खायु रह जाते हैं और अर्थाग (आधे अंग का रह जाना) अथवा उत्तवन्म (उत्तवनों का रकना अर्थात् वँच जाना) हो जाता है, एक वा दोनों हाथ पैर रह जाते हैं, अथवा तमाम शरीर रह जाता है और रोगी को शब्या (चारपाई) का आश्रय (सहारा) केना पड़ता है, कभी २ आवाज बैठ जाती है और रोगी से विलक्षक ही नहीं बोला जाता है।

इस रोग में कभी २ श्ली का पेट वड़ा हो जाता है और उस को गर्भ का अम होने छगता है, परन्तु पेट तथा बोनि के द्वारा गर्भ के न होने का ठीक निध्यय करने से उस का उक्त अम दूर हो जाता है, गर्भ के न रहने का निध्यय क्वोरोफार्म के हुँघाने से अथवा विजुली के छगाने से पेट के शीघ्र बैठ जाने के द्वारा हो सकता है।

इस रोग से युक्त खियों में प्रायः अजीर्ण, वमन (उछटी), अम्छपित, हकार, दस्त की कब्डी, चूंक, गोळा, खांसी, दम, अधिक आर्तन का होना, आर्तन का न होना, पीड़ा से युक्त आर्तन का होना और मूत्र का न्यूनाधिक होना, ये छक्षण पाये जाते हैं, इन के सिवाय पेशान में गर्मी आदि निचित्र प्रकार के चिद्व मी होते हैं।

रोगी के यथार्थ वर्णन से तया इस रोग के चिहों के समुदाय (समूह) का ठीक मिलान करने से यद्यपि इस रोग का ठीक र निश्चय हो सकता है परन्तु तथापि कमी र यह अवश्य (जरूर) सन्देह (शक) होता है कि रोग हिष्टीरिया के सहश (समान) है अथवा वास्तिविक है अर्थात् कमी र रोग की परीक्षा (जॉच) का करना अति कठिन (वहुत मुश्किल) हो जाता है, परन्तु जो बुद्धिमान् (अक्कमन्द अर्थात् चतुर) और अनुमवी (तजुर्वेकार) वैद्य है वे इस रोग की सैचतान को वायुजन्य आदि रोग के द्वारा ठीक र पहिचान छेते है।

कारण—इस रोग का वास्तविक (असली) कारण कोई भी नहीं मिलता है, क्योंकि इस (रोग) के कारण विविधरूप (अनेक प्रकार के) और अनेक है।

े स्त्रीजाति में यह रोग विशेष (प्रायः) देखा जाता है तथा पुरुष जाति में किचित् ही दीख पड़ता है।

इस के सिवाय-पन्द्रह बीस वर्ष की अवस्थाबाळी, विषवा तथा वन्ध्या (बांझ) स्त्रियों के वर्ग में यह रोग विशेष देखने में आता है।

स्पर्शविकार, गतिविकार, मनोविकार, गर्भाशय तथा दिमाग की व्याधि, मन की चिन्ता, खेद, मय, शोक, विवाहसम्बंधी सन्ताप (दुःख), अजीर्ण (कब्ती), हथरस (हाथ के द्वारा वीर्य का निकालना), मन का अधिक अम (परिअम), अति विषयसेवन तथा मन को किसी प्रकार का घका पहुँचना, इत्यादि अनेक कारणों से यह रोग हो जाता है।

१--ययार्थं वर्णन से अर्थात् सला २ हाल के कह देने से ॥

२--वास्तविक अर्थात् असली ॥

र-क्योंकि इस रोग की उत्पत्ति रजोविकार से प्रायः होती है, अर्थात् रज में विकार होने से वा मासिक-धर्म (रजोदर्शन) में रज की तथा समय की न्यूनाधिकता होने से यह रोग उत्पन्न होता है ॥

४-स्पर्शविकार और गतिविकार की अपेक्षा मनोविकार प्रधान कारण है ॥

५-बात्तव में तो दिसाग की व्याधि, सन की चिन्ता, खेद, सथ, शोक और विवाहसम्बधी सन्ताय का समावेश मनोविकार में ही हो सकता है परन्तु स्पष्टता के हेतु इन कारणों को प्रथक् कह दिया गया है ॥

चिकित्सा इस रोग की खेँचतान के लिये किसी विशेष (खास) प्रयत्न (कोशिश) करने की आवश्यकता (जल्दात) नहीं है, क्योंकि वह (खेँचतान) इस रोग का ऊपरी चिह्न है।

इस रोग की निवृत्ति का सब से अच्छा उपाय यही है कि जिस औषघ आदि से शरीर को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे तथा मन को खंस्थता (आराम वा तहिंदछी) प्राप्त हो सके उसी को उपयोग (ज्यवहार) में लाना चाहिये।

इस के सिवाय—रोगी के शरीर की विशेष (खास तौर से) सम्माल रखनी चाहिये, ठंढे पानी के छीटे गुख पर लगाना चाहिये, अमोनिया हुँघाना चाहिये तथा विजुली लगानी चाहिये, यदि रोगी की दाँती कैंव जावे तो नाक और गुख को कुल मिनटों तक चन्द कर देना चाहिये, त्वचा (चमड़ी) में पिचकारी लगानी चाहिये तथा राई लगानी चाहिये तौर रोगी को पानी पिलाना चाहिये।

इस रोग के होने का जो कोई कारण विदित (माछम) हो उस का शीघ ही योग्य उपाय करना चाहिये अर्थात् उस कारण की निवृत्ति करनी चाहिये, मन को वश में रखना चाहिये तथा रोगी को हिम्मत और उत्साह दिलाना चाहिये, उस के मन को काम काब में लगाये रखना चाहिये।

किन्ही र का यह रोग विवाह करने से अववा वचे के जन्मने से जाता रहता है, उस का कारण यही है कि—काम काज में प्रवृत्ति और मन की वृत्ति के वदलने से ऐसा होता है।

इन के सिनाय—इस रोग में प्रायः वे इलाज उपयोगी होते हैं कि जिन से रोगी का शरीर सुधरे और उस को शक्ति भास हो तथा शारीरिक (शरीर का) और मानसिक (मन का) ज्यायाम भी इस रोग में अधिक लामदायक (फायदेमन्द) माने गये हैं।

यह चतुर्घ अध्याय का प्रकीणे रोगवर्णन नामक पन्द्रहवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

इति श्री जैन श्वेताम्बर धर्मोपदेशक, यतिप्राणाचार्य, विवेकलिमशिष्य, श्रीलसौमाग्य-निर्मितः, जैनसम्प्रदाय शिक्षायाः,

चतुर्थोऽध्यायः ॥

पश्चम अध्याय॥

मङ्गलाचरण ॥

वर्षमान के चरणयुग, नित वन्दों कर जोर ॥
ओस वाल वंदाावली, प्रकट करूँ चहुँ ओर ॥ १ ॥
श्री सरखति देवो सुमैति, अविरेंल वाणि अयोह ॥
ओसवाल उपमा इलाँ, सकल कला साराँह ॥ २ ॥
दान वीर सब जगत में, वनधुत ग्रुण गम्भीर ॥
राजवंदा चढ़ती कला, जस सुरेधुनि को नीरं ॥ ३ ॥
सकल वारहों न्यांत में, घनयुत राज कुमार ॥
ग्रूर वीर मकराल है, जानै सब संसार ॥ ४ ॥

प्रथम प्रकरण—ओसवाल वंशोत्पत्ति वर्णन ॥

ओसवाल वंशोत्पत्ति का इतिहास ॥

चतुर्दश (चौदह) पूर्वधारी, श्रुतकेवली, अनेक लव्धिसंयुत, सकल गुणों के आगार, विद्या और मन्त्रादि के चमत्कार के मण्डार, शान्त, दान्त और जितेन्द्रिय, एवं समस्त

१-चरणयुग अर्थात् दोनों करण ॥ २-हाध ॥ ३-अच्छी बुद्धि ॥ ४-निरन्तर टहरने नाळी ॥ ५-वेपरिमाण ॥ ६-पृथिनी ॥ ७-सकळ कळा साराह अर्थात् सब कळाओं में प्रशसनीय ॥ ८-ऐश्वर्ययुक्त ॥ ९-गङ्गा ॥ १०-जळ ॥ ११-जाति ॥

१२-विदित हो कि जैनाचार्य भी राजप्रसासूर जी महाराज ने खोसियों नगरी में राजा सादि १८ जाति के राजपूरों को जैनधर्म का अहण कराके उन का "माहाजन" (खो कि 'महाजन' अर्थात् 'वह जन' का अपश्रवा है) वद्य तथा १८ गोत्र स्थापित किये थे, इस के पश्चात् जिस समय खेंडेला नगर में प्रथम समस्य वारह न्यातें एकत्रित हुई थी उस समय जिस २ नगर से जिस २ वशवाले प्रतिनिधित्त में (प्रतिनिधि वन कर) आर्य थे उन का नाम उसी नगर के नाम से स्थापित किया गया था, ओसियों नगर से माहाजन वद्य वाले प्रतिनिधि वन कर गये थे खत. उन का नाम ओसवाल स्थापित किया गया, यस उसी समय से माहाजन वंद्य का दूसरा नाम 'ओसवाल' प्रसिद्ध हुआ, वर्त्तमान में इस ही (ओसवाल ही) नाम का विशेष व्यवहार होता है (माहाजन नाम तो छप्तप्राय हो रहा है, तात्पर्य यह है कि-इस नाम 'का उपयोग किन्हीं विरले तथा प्राचीन स्थानों में ही होता है, जैसे-जैसलमेर आदि कुछ प्राचीन स्थानों

आचार्यगुणों से परिपूर्ण, उपकेशगच्छीय जैनाचार्य श्री रलप्रमस्रि जी महाराज पाँच सी साधुओं के साथ विहार करते हुए श्री आहू जी अचलगढ़ पर पघारे थे, उन का यह नियम या कि वे (उक्त स्रि जी महाराज) मासक्षमण से पारणा किया करते थे, उन की ऐसी कठिन तपस्या को देख कर अचलगढ़ की अधिष्ठात्री अम्वा देवी मसन्न होकर श्री गुरु महाराज की मक्त हो गई, अतः जन उक्त महाराज ने वहाँ से गुजरात की तरफ विहार करने का विचार किया तन अम्बा देवी ने हाथ जोड़ कर उन से पार्थना की कि—'हे परम गुरो! आप मरुवर (मारवाइ) देश की तरफ विहार की जिये, क्योंकि आप के उघर पधारने से द्यामूल धर्म (जिनधर्म) का उद्योत होगा" देवी की इस प्रार्थना को धुन कर उक्त आचार्य महाराज ने उपयोग देकर देखा तो उन को देवी का उक्त वचन ठीक माद्यस हुआ, तन महाराज ने अपने साथ के पाँच सी मुनियों (साधुओं) को धर्मो-पदेश देने के लिये गुजरात की तरफ विचरने की आज्ञा दी तथा आप एक शिष्य को साथ में रख कर प्रामानुप्राम (एक प्राम से दूसरे प्राम में) विहार करते हुए ओसियाँ पर्टुन में आये तथा नगर के बाहर किसी देवालय में ध्यानारुद्ध होकर श्रीजी ने मासकरण

में अब तक 'माहाजन, नाम का ही व्यवहार होता है, जैसलमेर में ''माहाजनसर'' नामक एक कुमा है जिस को बने हुए अनुमान सात सौ वर्ष हुए हैं) इस लिये हम ने भी इतिहासलेखन में तथा अन्यत्र मी इसी नाम का उल्लेख किया है।

बहुत से कोग माहाजनवंशवाकों (ओसवाकों) को विषयों वा वाणियों (वैश्य) कहा करते हैं, यह उन की बढ़ी भूळ है, क्योंकि उक्त वश्याके जैन क्षत्रिय (जिनधर्मानुवायी राजपूत) हैं, इस किये इन को वैश्य समझना महाश्रम है।

हमारे बहुत से भोलेमाले ओसनाल श्राता भी बूझरों के कथन से अपनी बैश्य जाति युन अपने को बैश्य ही समझने लगे हैं, यह उन की अहता है, उन को चाहिये कि बूझरों के कथन से अपने को बैश्य कदापि न समझें, किन्दु उत्पर लिखे अनुसार अपने को जैनक्षत्रिय सानें।

हमने श्रीमान् सान्यवर सेठ श्री बॉदमळ जी ढड्डा (बीकानेर) से सुना है कि-बनारसिनवासी राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने मनुष्यसद्या के परिगणन (मर्डुमञ्जूमारी की मिनतीं) में अपने को जैनसिन्य लिखाया है, हमें यह सुन कर अलन्त प्रसन्नता हुई, क्योंकि बुद्धिमान् का यही प्रमं है कि-अपने प्राचीव इंश्व कम को ठीक रीति से समझ कर तदहुक्छ ही खपने को साने और प्रकट करे ॥

१—इस नगरी के वसने का कारण गह है कि-श्रीमांछ नगर (जिस को अब जीनमांछ कहते हैं) का राजा पेंबार वकी भीनसेन का पुत्र श्रीपुद्ध था, उस का पुत्र उत्पक्ष (उपलब्दे) कुरेगर और उद्दूड़ सन्त्री, ये दोनों जन अठारह हजार कुट्टम्ब के सहित किसी कारण से दूसरा नगर नसाने के किये श्रीमांछ नगर से निकले थे और नर्तमान में जिस स्थान पर जोधपुर नसा है उस से पन्द्रह कोख के फासले पर उत्तर दिशा में लाखों मजुष्यों की बस्तीरूप उपकेशपहण (ओसियों) नामक नगर बसाया था, यह नगर बोटे ही समय में जच्छी बोमा से युक्त (रीनकदार) हो गया, तेईसनें तीर्थहर श्रीपार्श्वनाय खामी के छठे ही समय में जच्छी बोमा से युक्त (रीनकदार) हो गया, तेईसनें तीर्थहर श्रीपार्श्वनाय खामी के छठे

का प्रारम्भ किया, आचार्य महाराज का शिष्य अपने वास्ते आहार ठाने के लिये सदा ओसियाँ पट्टन में गोचरी जाता वा परन्तु जैन साघुओं के लेने योग्य शुद्ध आहार उसे किसी जगह मी नहीं मिळता था, क्योंकि उस नगरी में राजा आदि सन लोग नास्तिक मतानुयायी अर्थात् वाममार्गी (कूँड़ा पन्थी) देवी के उपासक तथा चामुण्डा (साचिया देवी) के मक्त थे इस लिये दबाधमें (जैनधमें) के अनुसार साधु आदि को आहारादि के देने की विधि को वे लोग नहीं जानते थे।

पाटधारी श्री रक्षप्रससूरि सहाराज बीर सक्त ७० (सहावीर खामी के निर्वाण से ७० वर्ष पीछे) अर्थात् विकस सवत् से ४०० (बार सौ) वर्ष पहिछे विहार करते हुए जब ओसियाँ पधारे ये उस समय यह नगर गढ, सठ, थन, थान्य, बख और सर्व प्रकार के पण्य ब्रह्मादि (न्यापार करने योग्य वस्तुओं आदि) के व्यापार से परिपूर्ण (सरपूर) था॥

१-कपाली, अस्म लगानेबाले, जोगी, नाय, कौलिक और त्राह्म आदि, इन को बाममार्गी और नास्तिक कहते हैं, इन के अत का नाम नास्तिक मत वा चार्वाक मत है, ये ओग खगे, नरक, जीव, प्रव्य और पाप आदि कुछ भी नहीं मानते हैं, फिन्तु केवल चात्रमेंतिक देह मानते हैं अर्थात् उन का यह मत्त है कि-जार भतों से ही मयशक्ति के समान (जैसे गद्य के प्रखेक पदार्थ में मादक शक्ति नहीं है परन्त सब के मिळने से माइक शक्ति उत्पन्न हो जाती है इस प्रकार) चैतन्य उत्पन्न होता है तथा पानी के जलड़के के समान शरीर ही जीवरूप है (अर्थात् जैसे पानी मे उत्पन्न हुआ बुलखुका पानी से मिन्न नहीं है किन्त पानीरूप ही है इसी प्रकार कारीर में उत्पन्न हुना जीव कारीर से मिन नहीं है किन्त कारीररूप ही ई). इस मत के अनुवायी जन मदा और मास का सेवन करते है तथा माता वहिन और कन्या आदि अगम्य (न वसन करने योग्य) भी क्रियों के साथ वसन करते हैं. ये नाश्चिक वासमार्गी छोग प्रतिवर्ण एक दिन एक नियत स्थान में सब मिल कर इकट्रे होते हैं तथा वहां खियो को नम करके उन की योगि की पूजा करते हैं. इन छोगों के मत में कामसेवन के सिवाय बुसरा कोई धर्म नहीं है अर्थीन, ये छोग कामसेवन को ही परम धर्म मानते हैं, इस मत में तीन चार फिरके हैं-यदि किसी को इस मत की उत्पत्ति के वर्णन के देखने की इच्छा हो तो शीलतरिक्षणीनामक प्रन्य में देख छेना चाहिये, व्यभिचार प्रधान होने के कारण यह मत ससार ने पूर्व समय में बहत फैळ गया या परन्त विदा के संसर्ग से वर्तमान में इस मत-का पूर्व समय के अनुसार प्रचार नहीं है तथापि राजपुराना, पृष्ठाव, बगाल और गुजरात आदि कई देशों में अब भी इस का भोड़ा बहुत प्रचार है, पाठकगण इस मत की अध्यसता को इसी से जान सकते है कि-इस मत में सम्मिलित होने के बाद अपने मुख से कोई भी मूलूज्य यह नहीं कहता है कि-में बाममार्ग में हैं, राजपुताने के बीकानेर नगर में भी पंचीस वर्ष पहिन्ने तक उत्तम जातिवाले भी वहत से लोग ग्राप्त रीति से इस मत में सम्मिलित होते ये परन्तु जब से छोगों को कुछ २ ज्ञान हुआ है तब से वहाँ इस मत के फन्दे से लोग निकलने छने, अब भी वहाँ छूद वणों में इस मत का अधिक अवार है परन्तु उत्तम वर्ण के भी थोड़े बहुत छोग इस में गुप्ततया फूँसे हुए हैं, जिन की पोल किसी २ समय उन की गफलत से खुल जाती है, इस का कारण यह है कि-मरनेवाले के पीछे यदि उस का प्रजादि कोई कड़म्बी उस की गही पर न बैठे तो वह (मृत प्ररूप) व्यन्तरपन में अनेक उपहब करने सगता है, सबत १९६३ के आछ

निदान दोनों गुरु और चेलों का मासक्षमण तप पूरा हो गया तथा करण के पूर हो जाने से उक्त महाराज ज्योंही विहार करने के लिये उचत हुए त्योंही नगरी की अधि-ब्रात्री सचियाय देवी ने अविध ज्ञान से देख कर यह विचारा कि-हाय! बहे ही खेद की बात है कि-ऐसे अनि महात्मा इस पाँच लाख मनुष्यों की बसी में से एक महीने के मूखे इस नगरी से विदा होते हैं, यह विचार कर उक्त (साचियाय) देवी गुरुजी के पास आकर तथा बन्दन और नमन आदि शिष्टाचार करके सन्मुख खड़ी हुई और गुरु-जी से कहा कि-"हे महाराज! कुछ चमत्कार हो तो दिखलाओ" देवी के इस वचन को धन कर गुरुजी ने कहा कि "हे देवि! कारण के विना साधुजन लिन की नहीं फोरते है" इस पर पुनः देवी ने आचार्य से कहा कि-"हे महाराज! धर्म के लिये सनि जन छिंच को फोरते ही है, इस में कोई दोष नहीं है, इस सन विषय को आप जानते ही हो अतः मैं विशेष आप से क्या कहूँ, यदि आप यहाँ छठिव को फोरेंगे तो यहाँ दयामल धर्म फैलेगा जिस से सब को बड़ा नारी लाम होगा" देवी के बचन को सन कर सरि महाराज ने उस पर उपयोग दिया तो उन्हें देवी का कबन ठीक मास्त्र हुआ, निदान छिटिंध का फोरना उचित जान महाराज ने देवी से रुई की एक पोनी मँगवाई और उस का एक पोनिया सर्प (साँप) बन गया तथा उस सर्प ने मरी समा में जाकर राजा उप-छदे पँबार के राजकुमार महीपाछ को काटा, सर्प के काटते ही राजकुमार मूर्छित होकर पृथ्वीशायी हो गया, सर्प के विष की नियुत्ति के लिये राजा ने मन्त्र यन्त्र तन्त्र और **ओविधि आदि अनेक उपचार करवाये परन्तु कुछ भी लाम न हुआ, अब क्याया-तमाम** रनिवास तथा ओसियाँ नगरी में हाहाकार मच गया, एकळीते कुमार की यह दशा देख

महीने की बात है कि—उक्त (बीक्सनेर) नगर में बोधरों की गुवाड में दिन को चारों दिशाओं से आ का कर पत्थर गिरते थे तथा उन को देखने के िन्ये सैकड़ों महण्य जमा हो खाते थे, इस प्रकार तीन दिन तक पत्थर गिरते रहे, हम ने भी उक्त गुवाड में जाकर अपनी आंखों से गिरते हुए एत्यरों को देखा था, इस मत का अधिक वर्णन यहां पर अनावश्यक समझ कर नहीं किखते हैं किन्तु प्रवह्नवधात, वायक्यन को इस मत का कुछ रहस्य हात (माल्स) हो जाने इस लिये दिगदर्शन मात्र (बहुत ही थोड़ा सा) इस मा वर्णन कर दिया गया है, इस के निषय में हम अपनी ओर से इतना ही कहना पर्याप्त (काफी) समझते हैं कि—यदापि संसार में अनेक निकृष्ट (खराव) मत प्रचरित हो यसे हैं तथापि इस कृष्टाप्य मत के समान यूसरा कोई भी निकृष्ट मत नहीं है, देखिये। आप चाहे किसी मतवाले से पृक्षिय परन्त मत के समान यूसरा कोई भी निकृष्ट मत नहीं है, देखिये। आप चाहे किसी मतवाले से पृक्षिय परन्त मह क्यापियार को कमी घर्म नहीं कहेगा परन्तु इस मत के लोग व्यक्तियार को समी पर्म मानते हैं इस लिये वह व्यक्तियार को कमी घर्म नहीं कहेगा परन्तु इस मत के लोग व्यक्तियार को समी मतवाले से इस लिये कि का इसे अवश्य कोट देना चाहिये, क्योंकि मत्युम्पकान वहुत जो लोग इस मत में फेसे हुए हैं उन को इसे अवश्य कोट देना चाहिये, क्योंकि मत्युम्पकान वहुत कि लिया हो सम्ताल की समान वीर पुरुषाये से सन्मार्ग का आध्य लेकर मतुष्यकान्य के धर्म, अर्थ, काम और मोझरूप बारों परम यहा और पुरुषाये से सन्मार्ग का आध्य लेकर मतुष्यकान्य के धर्म, अर्थ, काम और मोझरूप बारों परस वाल को प्राप्त कर हम की प्राप्त की साम कर ना और साम कीर मोझरूप बारों परस वाल कीर पुरुषाये से सन्मार्ग का आध्य लेकर मतुष्यकान्य के धर्म, अर्थ, काम और मोझरूप बारों परस वाल की प्राप्त कर ना बीर सुक्त और खानित प्राप्त हो।

राजा के हृदय में जो शोक ने बसेरा किया मठा उस का तो कहना ही क्या है ! एकमात्र आँखों के तारे राजकमार की यह दशा होने पर मछा राजवंश में अल जल किस को अच्छा रुगता है और जब राजवंश ही निराहार होकर सन्तप्त हो रहा है तब नगरीवासी खामिसक्त प्रजाजन अपनी उदरदरी को कैसे मर सकते है ? निदान मूखे प्यासे और जोक से सन्तप्त सब ही लोग इघर उघर दौहने लगे. यन्त्र मन्त्रादिवेत्ता अनेक जन हुँढ़ र कर उपचारादि के लिये बुलाये गये परन्तु कुछ न हुआ, होता कैसे कहीं मायिक (माया से बने हुए) सर्प का भी उपचार हो सकता है ? काचार होकर राजा आदि सर्व परिवारजन तथा नागरिक जन निराश हो गये और कुमार को मरा हुआ जान कर इमशानमूमि में जलाने के लिये छेकर प्रस्थित (रवाना) हुए, जब कुमार की लाश की िबे हुए राजा आदि सब क्रोग नगर के द्वार पर पहुँचे उस समय रत्नप्रभ सूरि जी का शिष्य आफर उन से बोला कि-"यदि तम हमारे गुरुजी का कहना खीकार करो तो वे इस मृत कुमार को जीवित कर सकते है" यह सून कर वे सब छोग बोले कि-"यह कुमार फिसी प्रकार जीवित हो जाना चाहिये, तम्हारे गुरु की जो कुछ आजा होगी वह अवस्य ही हम सब लोगों के शिरोधार्य होगी" (सत्य है-गरजी और दर्दी सब कुछ स्वीकार करते हैं) निदान शिष्य के कथनानुसार राजा आदि सब छोग कुमार की छाश को गुरुजी के पास हे गये. उस समय सरिजी ने राजा से कहा कि-"यदि तम अपने कुटुन्बसहित मिथ्यात्व धर्म का त्याग कर सर्वज्ञ के कहे हुए दयामूळ धर्म का ग्रहण करो तो हम क़मार को जीवित कर सकते है" राजा आदि सब लोगों ने गुरु जी का कहना हुर्पपूर्वक सीकार कर लिया, फिर क्या था-वही पोनिया सर्प आया और क़मार का सन्पूर्ण विष लींच कर चला गया. क्रमार आलस्य में मरा हुआ तथा जॅमाइयों को लेता हुआ। निद्रा से उठे हुए पुरुष के समान उठ खड़ा हुआ और चारों ओर देख कर कहने छगा कि-"तम सब कोग मुझे इस जड़ाल में क्यों काये" कुमार के इस वचन की सन कर राजा आदि सब कोगों के नेत्रों में प्रेमाश्च (प्रेम के ब्लॉस्) बहने करे तथा हुई छीर आनन्द की तरकें इदय में उमदने लगी, उपलदे राजा ने इस कौत्रक से विस्मित और आनन्दित होकर तथा सूरि जी को परम चमत्कारी महात्मा जान कर अपने मुकुट को उतार कर उन के चरणों में रख दिया और कहा कि-"हे परम गुरो! यह सर्व राज्य कोठार, मण्डार, वरु मेरे प्राण तक सच कुछ आपके अर्पण है, दयानिधे ! इस मेरे सर्व राज्य को छेकर मुझे अपने ऋण से मुक्त की जिये" राजा के ऐसे निनीत (निनययुक्त) वचनों को छन कर सूरि जी वोछे कि-"हे नरेन्द्र ! जब इस ने अपने पिता के ही राज्य को छोड़ दिया तो अन हम नरकादि दु:सप्रद राज्य को ठेकर क्या करेंगे! इस लिये हम को राज्य से कुछ मी प्रयोजन नहीं है किन्तु-हमें प्रयोजन केवल श्रीवीतराग सगवान् के

कहे हुए धर्म से है, अत: तुम्हें अद्धाछ देख हम यही चाहते हैं कि—तुम मी श्रीवीतराग भगवान, के कहे हुए सम्यक्त्वयुक्त दयामूळ धर्म को सुनो और परीक्षा करके उस का ग्रहण करो कि—जिस से तुम्हारा इस मव और पर मव में कल्याण हो तथा तुम्हारी सन्तित भी सदा के लिये सुसी हो, क्योंकि कहा है कि—

बुद्धेः फलं तत्विचारणं च, देइस्य सारो व्रतघारणञ्ज॥ अर्थस्य सारः किल पात्रदानं, वाचः फलं प्रीतिकरं नराणाम्॥१॥

अर्थात् बुद्धि के पाने का फल-तर्रवों का विचार करना है, मनुष्य शरीर के पाने का सार (फल) अत का (पचक्लाण आदि नियम का) घारण करना है, वन (लक्ष्मी) के पाने का सारद्यपात्रों को दान देना है तथा बचन के पाने का फल सब से श्रीति करना है" ॥ १ ॥ '

"हे नरेन्द्र!, नीतिशास्त्र में कहा गया है कि:---

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते । निर्धर्षणच्छेदनतापताड्नैः ॥ तथैव धर्मो विदुषा परीक्ष्यते । अतेन शीलेन तपोद्यागुणैः"॥१॥

"अर्थात्—कसौटी पर विसने से, छेनी से काटने से, अग्नि में तपाने से और हथोड़े के द्वारा कूटने से, इन चार प्रकारों से जैसे सोने की परीक्षा की जाती है उसी प्रकार दुदि-मान् छोग धर्म की भी परीक्षा चार प्रकार से करते हैं अर्थात् श्रुत (कास्त्र के वचन) से, शीखसे, तप से तथा दया से" ॥ १ ॥

"इन में से श्रुत अर्थात् शास्त्र के वचन से धर्म की इस प्रकार परीक्षा होती है कि जो धर्म शासीय (शास्त्र के) वचनों से विरुद्ध न हो किन्तु शासीय वचनों से समर्थित (पुष्ट किया हुआ) हो उस धर्म का प्रहण करना चाहिये और ऐसा धर्म केवल श्री वीत-रागकियत है इस लिये उसी का प्रहण करना चाहिये, हे राजन् ! मैं इस बात को किसी पक्षपात से नहीं करता हूँ किन्तु यह बात बिल्कुल सत्य है, तुम समझ सकते हो कि बब हम ने संसार को छोड़ दिया तब हमें पक्षपात से क्या प्रयोजन है ? हे राजन् ! आप निश्चय जानो कि—न तो वीतराग महावीर खामी पर मेरा कुछ पक्षपात है (कि महावीर खामी ने जो कुछ कहा है वही मानना चाहिये और दूसरे का कथन नहीं मानना चाहिये और न कपिल लादि अन्य ऋषियों पर मेरा द्वेष है (कि कपिल लादि का वचन नहीं मानना चाहिये) किन्तु हमारा यह सिद्धान्त है कि जिस का वचन शास्त्र और युक्ति से लाविरुद्ध (अप्रतिकूल अर्थात् अनुकूल) हो उसी का प्रहण करना चाहिये ने। ? ॥

⁹⁻जीव और अजीव सादि नी तस्व हैं ॥

२-वनन के द्वारा वर्म की परीक्षा का सिद्धान्त न्यायशास से जाना जा सकता है B

३-यही समस्त बुद्धिमानों का भी विद्धान्त है ॥

"धर्म की दूसरी परीक्षा श्रील के द्वारा की जाती है—शील नाम आचार का है, वह (श्रील) द्रव्य और माव के सेद से दो प्रकार का है—इन में से जगर की शुद्धि को द्रव्य-शील कहते है तथा पाँचों इन्द्रियों के और क्रोध आदि कथायों के जीतने को माव-शील कहते हैं, अतः जिस धर्म में उक्त दोनों प्रकार का शील कहा गया हो वही माननीय है।

"धर्म की तीसरी परीक्षा तप के द्वारा की जाती है—वह (तप) मुख्यतया बाह्य और आस्यन्तर भेद से दो प्रकार का है, इस छिये जिस धर्म में दोनों प्रकार का तप कहा गया हो वही मन्तन्य है"।

"धर्म की चौथी परीक्षा इया के द्वारा की जाती है-अर्थात् जिस में एकेन्द्रिय जीव से केकर पश्चेन्द्रिय तक जीवों पर इया करने का उपदेश हो वही धर्म माननीय है''।

'हे नरेन्द्र ! इस प्रकार बुद्धिमान् जन उक्त चारों प्रकारों से परीक्षा करके धर्म का अङ्गीकार (स्वीकार) करते हैं"।

"श्री वीतराग सर्वज्ञ ने उस घर्म के दो मेद कहे हैं—साधुधर्म और श्रावकधर्म, इन में से साधुधर्म उसे कहते हैं कि—संसार का त्यागी साधु अपने सर्वविरितिरूप पश्च महाब्रत-रूपी कर्त्तक्यों का पूरा वर्त्ताव करे"।

"उन में से प्रथम महात्रत यह है कि—सन प्रकार के अर्थात् सूक्ष्म और स्थूल किसी जीव को एकेन्द्रिय से लेकर पश्चेन्द्रिय तक को न तो खयं मन वचन काय से मारे, न मरावे और न मरते को मला जाने"।

"दूसरा महानत यह है कि-मन वचन और काय से न तो स्वयं झूंठ बोले, न बोलावे और न बोलते हुए को भला जाने"।

"तीसरा महात्रत यह है कि-मन वचन और काय से न तो खर्य चोरी करे, न करावे और न करते हुए को भला जाने"।

"नीया महावृत यह है कि-मन वचन और काय से न तो स्वयं मैथुन का सेवन करे, न मैथुन का सेवन करावे और न मैथुन का सेवन करते हुए को मळा जाने"!

"तथा पॉचवाँ महात्रत यह हैं कि-मन वचन और काय से न तो खयं घर्मोपकरण के सिवाय परिग्रह को रक्खे न उक्त परिग्रह को रखावे और न रखते हुए को मला जाने"। "इन पाँच महात्रतों के मिवाय रात्रिमोजनविरमण नामक छठा त्रते है अर्थात मन

१-"शील समाने सहत्ते" इसमरः ॥

२-विचार कर देखा जाने तो इस वत का समानेश ऊपर लिखे वतों में ही हो सकता है अर्थान् यह वत उक्त वर्तों के अन्तर्गत ही है ॥

वचन और काय से न तो स्वबं रात्रि में मोजन करे, न रात्रि में मोजन करावे और न रात्रि में मोजन करते हुए को मठा जाने"

"इन नतों के सिवाय साधु को उचित है कि—मूख और प्यास आदि बाईस परीपहों को जीते, सन्नह प्रकार के संयम का पालन करे तथा चरणसत्तरी और करणसत्तरी के गुणों से युक्त हो, भावितात्मा होकर श्री वीतराग की आजानुसार चल कर मोक्षमार्ग का साधन करे, इस प्रकार अपने कर्तन्य में तत्पर जो साधु (ग्रुनिरान) हैं वे ही संसार-सागर से खयं तरनेवाले तथा दूसरों को तारनेवाले और परम गुरु होते हैं, उन में भी उत्सर्गनय, अपवादनय, द्रव्य, क्षेत्र, काल और मान के अनुसार चल कर संयम के निर्वाह करनेवाले तथा ओघा, मुँहपत्ती, चोलपद्दा, चहर, पाँगरणी, लोवड़ी, हण्ड और पात्र के रखनेवाले खेतान्वरी शुद्ध धर्म के उपदेशक यति को गुरु समझना चाहिये, इस प्रकार के गुरुओं के भी गुणखान के आश्रय से, नियण्ठे के योग से और काल के प्रमाव से समयानुसार उत्कृष्ट, मध्यम और जधन्य, ये तीन दर्जे होते हैं"।

"दूसरा श्रावकधर्म अर्थात् गृहस्थधर्म है-इस धर्म का पालन करनेवाले गृहस्य कोई तो सम्यक्तवी होते हैं जो कि नव तत्त्वों पर याधातथ्यक्तप से श्रद्धा रखते हैं, पाप को पाप समझते हैं और कुगुरु कुदेव तथा कुधर्म को नहीं मानते हैं किन्तु सुगुरु सुदेव और सुधर्म को मानते हैं अर्थात् अठारह प्रकार के दूपणों से रहित श्री वीतराग देव को देव मानते हैं और पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त गुरुओं को अपना गुरु मानते हैं तथा सर्वज्ञ के कहे हुए दयामूल धर्म को मानते हैं (वे सन्यक्त्वी आवक के लक्षण हैं), ये पहिले दर्जे के श्रावक हैं, इन के कृष्ण वासुदेव तथा श्रेणिक राजा के समान वत और प्रत्याख्यान (पश्चक्खाण) किसी वस्तु का त्याग नहीं होता है"।

"दूसरे दर्जे के आवक वे हैं जो कि सम्यक्त से युक्त बारह अतों का पाठन करते हैं, वे बारह अत थे हैं—स्थूछ प्राणातिपात, स्थूछमृषावाद, स्थूछअदत्तादान, स्थूछमेशुन, स्थूछपरिग्रह, दिशापरिमाण, मोगोपमोग अत, अनर्भदण्डमत, सामायिक अत, देशा-वकाशी अत, पौषघोपवास अत तथा अतिथिसंविमाग अत"।

"हे राजेन्द्र! इन बारह वर्तों का सारांश संक्षेप से तुम को सुनाते हैं घ्यानपूर्वक सुनो—पूर्वीक्त साधु के लिये तो वीस विश्वा दया है अर्थात् उक्त साधु लोग वीस विश्वा दया का पालन करते हैं परन्तु गृहस्थ से तो केवल सवा विश्वा ही दया का पालन करना वन सकता है, देखों"—

१-प्रमादी और अप्रमादी आदि ॥ १-यह नीथे गुणठाणे के आध्यब से पहिले दर्जे के सम्यक्ती को आवक कहा है, पाँचवें गुणठाणे-वाले सम्यक्तगुक्त अनुरत्ति होते हैं ॥

"गाथा—जीवा सुहुमा थूला, संकष्पा आरंभा भवे दुविहा॥ सवराह निरवराह, साविक्खा चेव निरविक्खा॥१॥

अर्थ — जगत् में दो प्रकार के जीव हैं — एक खावर और दूसरे त्रस, इन में से खावरों के पुन: दो भेद है — सूक्ष्म और वादर, उन में से जो स्क्ष्म जीव है उन की तो हिंसा होती ही नही है, क्योंकि अति स्क्ष्म जीवों के शरीर में वाध (वाहरी) शक्त (हिश्यार) आदि का घाव नहीं लगता है परन्तु यहाँ पर स्क्ष्म शब्द स्थावर जीव प्रथ्वी, पानी, अग्नि, पवन और वनस्पति रूप जो वादर पाँच स्थावर हैं उन का वाचक है, दूसरे स्थूल जीव है वे द्वीन्द्रिय, श्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पश्चेन्द्रिय माने जाते है, इन दो भेदों में सर्व जीव क्षा जाते हैं"।

"साधु इन सब जीवों की त्रिकरण छुद्धि (मन वचन और काय की छुद्धि) से रक्षा फरता है, इस लिये साधु के बीस विश्वा दया है परन्तु गृहस्त (आवक) से पाँच स्थावर की दया नहीं पाली जा सकती है, क्योंकि सचित्र आहार आदि के करने से उसे अवश्य हिसा होती है, इस लिये उस की दश विश्वा दया तो इस से दूर हो जाती है, अब रही दश विश्वा अशीत एक त्रस जीवों की दया रही, सो उन त्रस जीवों में भी दो भेद होते है—संकरुपसंहनन (सद्घरुप अर्थात् इरादे से मारना) और आरम्मसंहनन (आरम्म अर्थात् कार्यं के द्वारा मारना), इन में से श्रावक को आरम्महिसा का त्याग नहीं है किन्त सद्भरपिंदिसा का त्याग है, हां यह ठीक है कि आरम्मिटिसा में उस के किये भी यह अवस्य है परन्त त्याग नहीं है, क्योंकि आरम्महिंसा तो श्रावक से हुए विना नहीं रहती है, इस लिये उस शेप दश विश्वा दया में से पाँच विश्वा दया आरम्महिंसा के कारण जाती रही, अब शेष पाँच विश्वा दया रही अर्थात् सद्धल्प के द्वारा त्रस जीव की हिंसा का त्याग रहा, अब इस में भी दो भेद होते है-सापराषसंहनन और निरपराषसंहनन. इन में से निरपराघसंहनन गृहस्य को नहीं करना चाहिये अर्थार्त जो निरपराधी जीव है उन को नहीं मारना चाहिये, श्लेष सापराष्ट्रसंहनन में उसे बतना रखने का अधिकार है सर्थात् अपराधी जीवों के मारने में यत्नमात्र है, इस से सिद्ध हुआ कि अपराधी जीवों की दया आवक से सदा और सर्वथा नहीं पाली जा सकती है क्योंकि जब चीर घर में व्रस कर तथा चोरी करके चीज को लिये जाता हो उस समय उसे मारे कूटे विना कैसे . काम चल सकता है, एवं कोई पुरुष जब अपनी स्त्री के साथ अनाचार करता हो तब उसे देख कर दण्ड दिये विना कैसे काम चल सकता है, इसी प्रकार जब कोई आवक राजा हो अथवा राजा का मन्त्री हो और जब वह (मन्त्रित्व दशा में) राजा के आदेश

१-क्योंकि शको की घार से भी वे॰जीव सुट्म होते हैं इस लिये शकों की घार का उन पर असर नहीं होता है॥

(कथन) से भी थुंद्ध करने को जाने तब चाहे आवक प्रथम शक्ष को न भी चलाने परन्तु जन शत्रु उस पर शक्ष को चलाने अथना उसे मारने को आने उस समय उस आवक को भी शाचु को भी मारना ही पड़ता है, इसी प्रकार जन कोई सिंहादि हिंस (हिंसक) जन्तु आवक को मारने को आने तब उस को भी मारना ही पड़ता है, ऐसी दशा में संकल्प से भी हिंसा का त्याग नहीं हो सकता है, इस लिये उस क्षेम पाँच विश्वा दया में से भी आधी जाती रही, अब केवल टाई विश्वा ही दया रह गई अर्थात् केवल यह नियम रहा कि—जो निरपराधी जस मात्र जीव हिंगोचर हो उसे न माल, अब इस में भी हो भेव होते हैं—सापेक्ष और निरपेक्ष, इन में से भी सापेक्ष निरपराधी जीव की दया आवक से नहीं पाली जा सकती है, क्योंकि जब आवक घोड़े, बैल, रख और गाड़ी आदि सनारी पर चढता है तब उस घोड़े आदि को हाँकते समय उस के चाड़क आदि मारना पड़ता है, यद्यपि उन घोड़े और बैल आदिकों ने उस का कुछ अपराव नहीं किया है क्योंकि व

१-हमारे बहुत से आज करू के भोले आवक कह बैठते हैं कि आवक को कभी युद्ध नहीं करना वाहिये परन्तु उन का यह कथन विलक्षण वेसमझी का है क्योंकि जैनकाल में बहुत से स्थानों में आवकों का युद् करना खिला है, देशो ! श्री निरावकिका सूत्र तथा श्री भगवती सूत्र में कहा है कि-वरणाग नट नामक वारह प्रतथारी जैन क्षत्रिय ने छड़ के पारणे के समय लड़ाई के विगुल को झुन कर अहम पगल कर खदेशसेवा के किये युद्ध में आकर अपना पराक्रम दिखलाया, अन्त में एक तीर के छाती में समने से अपनी मृत्यु को स्मीप जान कर सन्यारा किया (यह वर्णन ऊपर कहे हुए दोनो सूत्रों में मौजूद है), देखों ! उक्त जैन क्षत्रिय ने अपना शासारिक कर्त्तम्य भी पूरा किना और धार्मिक कर्तम्य को भी पूरा किया, उस के विषय में पुनः सूत्रकार साक्षी देवा है कि वह उक्त व्यवहार से देवलोक को गया, इस के सिवाय उक्त सूत्रों में यह भी वर्णन है कि श्री महावीर खासी के मक्त और वारहब्रतशारी आवक चेटा राजा ने कृषिक राजा के साथ नारह बुद्ध किये और उन में से एक ही युद्ध में १,८०,००,००० (एक करोड़ अरसी लाख) मनुष्य मरे, इसी प्रकार बहुत से प्रमाण इस विषय में बतलाये जा सकते हैं, तास्पर्य बह है कि सबदेशरक्षा के लिये युद्ध काने में जैन आज में कोई निवेश नहीं है, विचार करने से यह बात अच्छे प्रकार माळ्य हो सकती है कि-खदेशरहा के छिये छडता हुआ अतथारी आवक हिंसा करने के हेतु से नहीं कड़ता है किन्तु हिंसकों को दूर रखने के लिये कडता है तथा अपराधी को शिक्षा देने (शब्द देते) के कियें, छड़ता है, इस किये आवक का पहिच्य (प्राचातिपात) त्रत उस को इस विवय में नहीं रोक ं सकता है (देखों बारह अतों में से पहिले वत के आगार), पाठकवर्ण ! इसारे इस कथन से यह न समझ लीजिये कि आवक को युद्ध में जाने में कोई दोष नहीं है किन्तु हमारे कथन का प्रयोजन यह है कि कारणिक्रीय से तथा धर्म के अमुकूछ युद्ध में जाने से आवक के पहिले जत का अग नहीं होता है, इन विषय में जैनागम की ही अनेक साक्षिया है, जिस का कुछ वर्णन ऊपर कर ही चुके हैं, प्रन्य के बढ जाने के अब से वहां पर इस विषय में निक्षेष नहीं लिखना चाहते हैं, क्योंकि निचारकील पाठकों के लिये प्रमाण-सहित थोड़ा ही किखना पर्यास (काफी) भीर उपयोगी होता है ॥

बेचारे तो उस को पीठ पर चढाये हुए है जा रहे है और वह प्रथम तो उन की पीठ पर चढ रहा है दूसरे यह नहीं समझता है कि इस वेचारे जीव की चलने की शक्ति है वा नहीं है, जब वे जीव धीरे २ चलते है वा नहीं चलते है तब वह अज्ञान के उदय से उन को गालियाँ देता है तथा मारता भी है, तात्पर्य यह है कि-इस दशा में यह निरप-राधी जीवो को भी दु:ख देता है, इसी प्रकार अपने श्वरीर में अथवा अपने पुत्र पुत्री नाती तथा गोत्र आदि के मस्तक वा कर्ण (कान) आदि अवयवों में अथवा अपने मुख के दातों में जब कीडे पह जाते है तब उन के दूर करने के छिये उन (कीड़ों) की जगह में उसे जोपिंच क्यानी पहती है, यद्यपि यह तो निश्चय ही है कि-इन जीवों ने उस श्रावक का कुछ भी अपराध नहीं किया है, क्योंकि ने बेचारे तो अपने कर्मों के वश इस योनि में उत्पन्न हुए है कुछ श्रावक का बुरा करने वा उसे हानि पहुँचाने की मावना से उत्पन्न नहीं हुए है, परन्त आवक को उन्हें गारना पड़ता है, तात्पर्य यह है कि इन की हिसा भी श्रावक से त्यागी नहीं जा सकती है, इस लिये ढाई विश्वों में से आधी दया फिर चली गई, अब केवल सवा विश्वा दया शेष रही, वस इस सवा विश्वा दया की भी शुद्ध आवक ही पाल सकता है अर्थात संकल्प से निरपराधी त्रस जीवों को विना कारण न मारूँ इस प्रतिज्ञा का यथाशक्ति पालन कर सकता है, हा यह श्रावक का अवश्य कर्चन्य है कि-वह जान वृक्ष कर ध्वंसता को न करे. मन में सदा इस भावना को रक्खे कि मुझ से किसी जीव की हिंसा न हो जावे, तात्पर्य यह है कि-इस कम से स्थल प्राणातिपात व्रत का श्रावक को पालन करना चाहिये, हे नरेन्द्र ! यह बत मूलरूप है तथा इस के अनेक भेद और मेदान्तर है जो कि अन्य प्रन्थों से जाने जा सकते हैं, इस के सिवाय वाकी के जितने वत है वे सब इसी वत के पुष्प फल पत्र और शासारूप है" इत्यादि ।

इस प्रकार श्रीरत्नप्रभ सूरि महाराज के मुख से अमृत के समान उपदेश की मुन कर राजा उपलेदे पँवार की प्रतिनोध हुआ और वह अपने पूर्व ग्रहण किये हुए महामिध्यात्व-रूप तथा नरकपात के हेतु मृत देन्युपासकत्वरूपी स्वमत की छोड़ कर सत्य तथा दया से युक्त धर्म पर आ उहरा और हाथ जोड़ कर श्री आचार्य महाराज से कहने लगा कि—'हे परम गुरो! इस में कोई सन्देह नही है कि—यह दयामूल धर्म इस मव और परमव दोनों में कल्याणकारी हैं परन्तु क्या किया जावे में ने अवतक अपनी अज्ञानता के उदय से व्यभिचारप्रधान असत्य मत का अहण कर रक्सा था परन्तु हॉ अब मुझे उस की निःसारता तथा दयामूल धर्म की उत्तमता अच्छे प्रकार से माल्यम हो गई है, अब मेरी आप से यह प्रार्थना है कि—इस नगर में उस मत के जो अध्यक्ष लोग है उन के साथ आप शासार्थ करें, यह तो मुझे निश्चय ही है कि शासार्थ में आप जीतेंगे क्योंकि सत्य धर्म के आगे असत्य मत कैसे उहर सकता है है वस इस का परिणाम यह होगा कि मेरे

क़द्रन्बी और समें सम्बंधी आदि सब छोग प्रेम के साब इस दयामूल धर्म का ग्रहण करेंगे" राजा के इस वचन को सुन कर श्रीरबागम सारि महाराज बोले कि-"निस्सन्देह (वेशक) वे छोग आवें हम उन के साथ शास्त्रार्थ करेंगे. क्योंकि हे नरेन्द्र ! संसार में ऐसा कोई मत नहीं है जो कि दयामूळ अर्थात् अहिंसाप्रधान इस निनधर्म को शास्त्रार्थ के द्वारा हटा सके, उस में भी मला व्यभिचारप्रधान यह कृण्डापन्थी मत तो कोई चीज ही नहीं है. यह मत तो अहिंसाप्रधान धर्मरूपी सूर्य के सामने खबोतवत् (जुगुन के समान) है, फिर मला यह मत उस धर्म के आगे कन उहर सकता है अर्थात कमी नहीं उहर सकता है, निस्तन्देह उक्त मतावलम्बी आवें हम उन के साथ शासार्थ करने को तैयार हैं" गुरु-जी के इस बचन को छुन कर राजा ने अपने कुटुम्बी और संगे सम्बन्धियों से कहा कि-"जाकर अपने गुरु को बुळा लाओ" राजा की आज्ञा पाकर दश बीस मुख्य २ मनुष्य गये और अपने मत के नेता से कहा कि-''जैनाचार्य अपने मत को व्यमिचार प्रधान तथा बहुत ही बुरा बतलाते है और अहिंसामूल धर्म को सब से उत्तम बतला कर उसी का स्थापन करते हैं, इस लिये आप कृपा कर उन से शालार्थ करने के लिये शीघ ही चिल्ये" उन लोगों के इस वाक्य को छुन कर गद्यपान किये हुए तथा उस के नहीं में उन्मच उस मत का नेता श्रीरसमम सूरि महाराज के पास आया परन्तु पाठकगण जान सकते है कि सूर्य के सामने अन्यकार कैसे उहर सकता है ? बस दयामूळ धर्मरूपी सूर्य के सामने उस का अज्ञानितमिर (अज्ञानरूपी वेंधेरा) दूर हो गया अर्थात वह शास्त्रार्थ में हार गया तथा परम लिजित हुआ, सत्य है कि-उल्लूका जोर रात्रि में ही रहता है किन्तु जब सूर्योदय होता है तब वह नेत्रों से भी नहीं देख सकता है, अब क्या था-श्रीरत्तपम सूरि का उपदेश और ज्ञानरूपी सूर्य का उदय ओसियाँपट्टन में हो गया भीर वहाँ का अज्ञानरूपी सब अन्धकार दूर हो गया अर्थात् उसी समय राजा उपलंदे पँवार ने हाथ जोड़ कर सम्यक्त्वसहित आवक के बारह नतों का प्रहण किया और

१-इन मतों के खण्डन के प्रन्य श्रीहेमाचार्य वी महाराज तथा श्रीहरिमह सूरि जी के बनाये हुए संस्कृत में अनेक हैं परन्तु केवल माथा जानने वालों के लिये वे प्रन्य उपकारी नहीं हैं, अतः भाषा जानने बालों को यदि उत्ता विषय देखना हो तो श्रीचिदानन्दची मुनिष्ठत स्थाहादानुभव रलाकर नामक प्रन्य को देखना चाहिये, जिस का कुछ वर्णन इस इसी प्रन्य के दूसरे अच्याय में नोट में कर चुके हैं, क्योंकि यह प्रन्य भाषामात्र जानने वालों के लिये बहुत ही उपयोगी है ॥

२-राजा उपलदे प्वार ने द्यामूल धर्म के महण करने के बाद श्रीमहावीर खाणी का मन्दिर ओसियों में बनवाया था और उस की प्रतिष्ठा श्रीरलप्रम सूरि महाराज ने ही करवाई थी, वह मन्दिर अब भी ओसियों में विद्यमान (भीजूद) है परन्तु बहुत समय बीत जाने के कारण वह मन्दिर विरक्ताछ से असन्त ओसियों में विद्यमान (भीजूद) है परन्तु बहुत समय बीत जाने के कारण वह मन्दिर विरक्ताछ से असन्त ओणि हो रहा था तथा ओसियों में श्रावकों के घरो के न होने से पूजा खादि का भी प्रवन्त यथोवित 'वहीं जीणे हो रहा था तथा ओसियों में श्रावकों के घरो के न होने से पूजा खादि का भी प्रवन्त यथोवित 'वहीं था, अतः फलोधी (भारवाड) निवासी गोलेच्छायोत्रमूषण श्रीमान् श्रीफूलवन्द, जी महाराय ने उस के था, अतः फलोधी (भारवाड) निवासी गोलेच्छायोत्रमूषण श्रीमान् श्रीफूलवन्द, जी महाराय ने उस के

छत्तीस कुठी राजपूतों ने तत्काल ही दयामूल वर्म का अङ्गीकार किया, उस छत्तीस कुली में से जो २ राजन्य कुल वाले थे उन सब का नाम इस प्राचीन छप्पय छन्द से जाना जा सकता है:—

छण्य — वर्द्धमान तणें पछै वरष वावन पद लीयो । श्री रतन प्रभ सूरि नाम तासु सत गुरु व्रत दीयो ॥ भीनमाल सुँ जठिया जाय ओसियाँ वसाणा । क्षत्रि हुआ द्याल अठारा उठै ओसवाल कहाणा ॥ इक लाल चौरासी सहस घर राजकुली प्रतिवोधिया । श्री रतन प्रभ ओस्याँ नगर ओसवाल जिण दिन किया ॥ १ ॥

जीनोंद्वार में अल्पन्त प्रयास (परिश्रम) किया है अर्थात् अनुमान से पाँच सात हजार रुपये अपनी तरफ है लगाये हैं तथा अपने परिचित श्रीमानों से कह युन कर अनुमान से पचास हजार रुपये उक्त महोदय ने अन्य भी लगवाये हैं, तारप्य यह है कि—उक्त महोदय के प्रश्नसनीय उद्योग से उक्त कार्य में करीव साठ हज़ार द्वयों लग चुने हैं तथा वहाँ का सर्व प्रवन्ध भी उक्त महोदय ने प्रश्नस के योग्य कर दिया है इस श्रुम कार्य के, लिये उक्त महोदय को जितना धन्यवाद दिया जाने वह थोड़ा है क्यांकि मन्दिर का जीनोंद्वार करवाना बहुत ही पुण्यसक्त कार्य है, देखों! जैनशासकारों ने नवीन मन्दिर के बनवाने की अपने प्राचीन मन्दिर के जीनोंद्वार का आटगुणा फल कहा है (यथा च—मनीनजिनगेहस्म, विधाने यरफल भनेत्॥ तस्मादश्रम पुण्य, जीनोंद्वारिण जायते॥ १॥ इस का अर्थ स्पष्ट ही है) परन्तु महानशोक का विषय है कि—वर्तमान काल के श्रीमान् लोग अपने नाम की प्रतिद्वि के लिये नगर में जिनालयों के होते हुए भी नवीन जिनालयों को बनवाते हैं परन्तु प्राचीन जिनालयों के उद्वार की तरफ विखकुरू प्यान नहीं वैते हैं, इस का कारण फेवल बही विचार में आता है कि—उन का उद्वार करवाने से उन के नाम की प्रसिद्ध नहीं होती है—विलहारी है ऐसे विचार और बुद्धि की! हम से पुन: यह कहे बिना नहीं रहा जाता है कि—धन्य है श्रीमान् श्रीफूल्यन्य जी गोलेच्छा को कि जिन्हों ने व्यर्थ नामवरी की ओर तिनक भी ध्यान न देकर सबे ग्रुपश्च तथा अखण्ड धर्म के उपार्जन के लिये ओरियाँ में श्रीमहावीर खामी के मन्दिर का जीगोंद्वार करा के "ओसवाल वंशोत्पत्तिस्थान" को देदीत्यसान किया।

हम श्रीमान् श्रीमानमळ जी कोचर महोदय को मी इस प्रसंग में धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकते हैं कि-जिन्हों ने नाजिम तथा तहसीळदार के पद पर स्थित होने के समय बीकानेरराज्यान्तर्गत सर्दार-शहर, ल्लकरणसर, काळ, मादरा तथा सुरतगढ आदि स्थानों में अल्पन्त परिश्रम कर अनेक जिनालगों का जीगोंद्वार करवा कर सचे पुष्प का उपार्चन किया ॥

१-वहुत से लोग ओसवाल वस के स्थापित होने का संवत् वीया २ वाहसा २२ कहते हैं, सो इस छन्द से वीया वाहसा संवत् गलत है, क्योंकि श्री महावीर खामी के निर्वाण से ७० वर्ष थीलें ओसवालवश की स्थापना हुई है, जिस को प्रमाणसहित लिख ही चुके हैं॥ प्रथम साख पँचार सेस सीसौद सिँगाला।
रणधम्मा राठोड़ बंस चंचाल बचाला ॥
दैया भाटी सौनगए कछावा धनगौड़ कहीजै।
जादम झाला जिंद लाज मरजाद लहीजै॥
खरदरा पाट औ पेखरा लेगाँ पटा जला खरा।

एक दिवस इता माहाजैन हुवा सूर वडा मिडसाखरा॥१॥

उस समय श्रीरक्षप्रम सूरि महाराज ने क्यर कहे हुए राजपूर्तों की शाखाओं का माहाजन वंश और अठारह गोत्र स्थापित किये वे जो कि निम्निलित है:—१-तातहह गोत्र । २-वाफणा गोत्र । ३-कर्णाट गोत्र । ४-वल्हरा गोत्र । ५-मोराक्ष गोत्र । ६-कृल्हट गोत्र । ७-विरहट गोत्र । ८-श्रीश्रीमाल गोत्र । ९०-श्रेष्ठिगोत्र । १०-स्रुचिती गोत्र । ११-आईचणांग गोत्र । १२-मूरि (मटेवरा) गोत्र । १३-माद्रगोत्र । १४-चिट गोत्र । १५-कुंभट गोत्र । १६-हिंदू गोत्र । १७-क्नोज गोत्र । १८-ल्खु-श्रेष्ठ गोत्र ॥

इस प्रकार ओसिया नगरी में माहाजन वंश और उक्त १८ गोत्रों का स्थापन कर श्री सूरि जी महाराज विहार कर गये और इस के पश्चात् दश वर्ष के पीछे पुनः रुक्ती-जङ्गरू नामक नगर में सूरि जी महाराज विहार करते हुए पधारे और उन्हों ने राज-पूतों के दश हजार घरों को प्रतिबोध देकर उन का माहाजन वंश और सुमड़ादि बहुत से गोत्र स्थापित किये।

प्रिय वाचक कृन्द । इस प्रकार ऊपर लिखे अनुसार सब से प्रथम माहाजन वंश की स्थापना जैनानार्थ श्री रक्षप्रमसूरि जी महाराज ने की, उस के पीछे विक्रम संवत् सोलह सी तक बहुत से जैनानार्थों ने राजपूत, महेश्वरी वैश्य और ब्राह्मण जातिवालों को प्रति- बीध देकर (अर्थात् ऊपर कहे हुए माहाजन वंश का विस्तार कर) उन के माहाजन वंश और अनेक गोत्रों का स्थापन किया है जिस का प्रामाणिक इतिहास अत्यन्त सोज करने पर जो कुछ हम को प्राप्त हुआ है उस को हम सब के जानने के लिये लिखते हैं।

माहाजन महिमा का कवित्त ॥

१— महाजन महिना पा पा पा पा पा स्वाच यात्र यहा है।

महाजन जहाँ होत तहाँ इही बाजार सार माहाजन जहाँ होत तहाँ नाज व्याच यहा है।

महाजन जहाँ होत तहाँ छेन देन विधि विव्हार माहाजन जहाँ होत तहाँ सब क्षी का भक्षा है।

महाजन जहाँ होत तहाँ छाखन को फेर कार माहाजन जहाँ होत तहाँ दहन वै हक्षा है।

माहाजन जहाँ होत तहाँ छक्षमी प्रकाश करे माहाजन नहिं होत तहाँ रहवो विन साग है ॥ १ ॥

माहाजन जहाँ होत तहाँ छक्षमी प्रकाश करे माहाजन नहिं होत तहाँ रहवो विन साग है ॥ १ ॥

प्रथम संख्या-संचेती (सचंती) गोत्र ॥

विक्रम संवत् १०२६ (एक हज़ार छठ्वीस) में जैनाचार्य श्री वर्धमानैसूरि जी महा-राज ने सोनीगरा चौहान वोहित्य कुमार को प्रतिबोघ देकर उस का माहाजन वंश और संचेती गोत्र स्थापित किया।

अजमेरिनवासी संचेतीगोत्रम्षण सेठ श्री वृद्धिचन्द्र जी ने खरतरगच्छीय उपाध्याय श्री रामचन्द्रं जी गणी (जो कि छरकर में बढ़े नामी विद्वान् और पट् शास्त्र के ज्ञाता हो गये हैं) महाराज से भगवतीसूत्र झुना और तदनन्तर शेत्रुझय का सह निकाला, कुछ समय के बाद शेत्रुझय गिरनार और आबू आदि की यात्रा करते हुए मरुस्थलदेशस्थ (मारवाइ देश में स्थित) फलोधी पार्श्वनाथ नामक स्थान में आये, उस समय फलवधीं पार्श्वनाथ खामी के मन्दिर के चारों और कांटों की बाइ का पड़कीटा था, उक्त विद्वहर्ष छपाध्याय जी महाराज ने घमोंपदेश के समय यह कहा कि—"वृद्धिचन्द्र ! लक्ष्मी लगा कर उस का लाम छेने का यह स्थान है" इस वचन को छुन कर सेठ वृद्धिचन्द्रजी ने फलनेषीं पार्श्वनाथ खामी के मन्दिर का जीणोंद्धार करवा दिया और उस के चारों तरफ पका संगीन पड़कोटा भी बनवा दिया जो कि अब मी मौजूद है ॥

१-तदा त्रयोदश सुरत्राण छत्रोहालक चन्त्रावती नगरी स्थापक वोरवाड ज्ञातीय श्री विसल सिम्नणा श्री अर्धुदाचक्षे कृषसवेवप्रासाद कारित ।

^{&#}x27; '' ''तत्राचापि विभव्न वसही इति प्रसिद्धिरस्ति । ततः श्रीवर्षमानसूरिः सवत् १०८८ सच्ये प्रतिष्ठा कृता प्रान्तेऽनचान गृहीला स्वर्गं गतः ॥

२—इस तीर्थ पर वार्षिकोत्सव प्रतिवर्ष आसीज विद नवमी और दश्मी को हुआ करता है, उस समय साभारणतया (आम तीर पर) समस्य देशों के और विशेषतया (खास तीर पर) राजपूताना और मार-वाड के बात्री जन अनुमान दश्च पन्त्रह सहस्र इक्छे होते हैं, हम ने सब से प्रथम संवत १९५८ के वैशाख मास में मुर्शिदाबाद (अजीमगज) से बीकानेर को जाते समय इस स्थान की बात्रा की थी, दर्शन के समय गुरुदत्तात्राय से अनुमान पन्त्रह मिनट तक हम ने व्यान किया था, उस समय इस तीर्थ का जो नमस्कार हम ने वेखा तथा उस से हम को जो आनन्द प्राप्त हुआ उस का हम वर्णन नहीं कर सकते हैं, उस के पखात वित्त में यह अमिलावा वरावर बनी रही कि कियी समय वार्षिकोत्सव पर अवस्य चलना चाहिये, नमोंकि ऐसा करने से एक पन्य दो काज होंगे परन्तु कार्यव्या वह अमिलावा बहुत समय के पखात पूर्ण हुई अर्थात सनत् १९६३ में वार्षिकोत्सव पर हमारा वहा गमन हुआ, वहां जाकर यदापि हमें अनेक प्रकार के आनन्द प्राप्त हुए परन्तु उन में से कुछ आनन्दों का तो वर्णन किये विना छेखनी नहीं मानती है अत वर्णन करना ही पढता है, प्रथम तो वहां जोधपुरनिवासी श्री कानमल जी पटवा के मुख से नवपदपूजा का गाना गुन कर हमे अतीव आनन्द प्राप्त हुआ, दूसरे उसी कार्य में पूजा के समय जोधपुरनिवासी विद्वह्वर्य उपाच्याय श्री खुहारमल जी गणी वीच २ में अनेक जगहों पर पूजा का अर्थ कर रहे से (जो कि गुरुगमशैली से अर्थ की धारणा करने की वाला रखनेवाले तथा मध्य जीवों के सनने

द्वितीय संख्या-बरिंदया (वरिंदया) गोत्र ॥

धारा नगरी में वहाँ के राजा मोज के परलोक हो जाने के बाद उक्त नगरी का राज्य जिस समय तँवरों को उन की बहादुरी के कारण प्राप्त हुआ उस समय मोजवशज (मोज की कौलाद वाले) लोग इस प्रकार बे:—

योग्य था) उसे भी छुन कर हमें सकथनीय जानन्द प्राप्त हुआ, तीसरे-रात्रि के समय देवदर्शन करके थीमान् थी फूलचन्द जी गोलच्छा के साथ "श्री फलोघी तीथाँस्रति सभा" के उत्सव में गये, उस समय जो आनन्द इस को प्राप्त हुआ वह अवापि (अब भी) नहीं भूळा जाता है. उस समय सभा में जयपुरनिवासी थी जैनश्वेताम्यर कान्फ्रेंस के जनरक सेकेटरी श्री गुळावचन्द जी डड्डा एस. ए. विद्योत्रति के विषय में अपना भाषणासृत वर्षों कर लोगों के हृदयाबुजो (हृदयकमलों) को विकसित कर रहे थे, हम ने पहिन्ने पहिन्न उक्त महाशय का भाषण यहीं छुना था, दशमी के दिन प्रातःकाल हमारी उक्त महोदय (श्रीमान् श्री गुलावचन्द जी बदा) से मुलाकात हुई और उन के साथ अनेक विषयों में बहत देर तक वार्तालाप होता रहा, उन की गम्भीरता और सौजन्य को देख कर हमें अल्पन्त आनन्द प्राप्त हुआ, अन्त में उक्त महाधाय ने इस से कहा कि-"आज रात्रि को जीगेपसाकोदार आहि विवयों में भाषण होगे, अतः आप भी किसी निषय में अवस्य भाषण करें" अहा हम ने भी उक्त महोदय के अनुरोध से जीर्णपुत्तकोद्धार विषय में मापण करना स्वीकार कर लिया, निदान राष्ट्रि में करीव नी वजे पर जक्त विषय में इस ने अपनी प्रतिक्षा के अनुसार मेज के समीप खडे हो कर उक्त सभा में वर्तमान प्रविश्वत रीति आदि का उद्घोध कर मावण किया. दूसरे दिन जब उक्त महोदय से हमारी बातचीत हुई उस समय उन्हों ने हम से कहा कि-"यदि आप कान्म्रेंस की तरफ से राजपुताने में उपदेश करें तो उम्मेद है कि बहुत सी वालों का सुधार हो अर्थात् राजपूताने के छोग भी कुछ सचेत होकर कर्तव्य में तत्पर हों" इस के उत्तर में हम ने कहा कि-"ऐसे उत्तम कायों के करने में तो हम खब तत्पर रहते हैं अर्थात यथाधन्य क्रम न कुछ उपदेश करते ही हैं, क्योंकि इस छोगों का कर्तव्य ही बही है परन्तु सभा की तरफ से अभी इस कार्य के करने में हमें लाचारी है,क्योंकि इस में कई एक कारण हैं-प्रथम तो-हमारा शरीर कुछ अखस्य रहता है. इसरे-वर्तमान में ओसवालवशोत्पत्ति के इतिहास के लिखने में समक्त कालगापन होता है, इसादि कई कारणों से इस श्रुम कार्य की अखीक़ति की क्षमा श्री प्रदान करावें" इखादि वार्ते होती रहीं, इस के पक्षात हम एकादशी की बीकानेर चले गये, वहां पहुँचने के बाद थोड़े ही दिनों में अजनेर से श्री जैनश्वेताम्बर कान्फ्रेंस की तरफ से पुनः एक पत्र इमें त्राप्त हुआ, जिस की नकल ज्यों की खों निम्नलिखित है.-

> ॥ श्री जैन (श्वेतास्वर) कोन्फरन्स— अजमेर—

> > ता॰ १५ अक्टूबर १९०६.

॥ गुरां की महाराज श्री १०९८ श्री श्रीपालकंड की की सेना में—वनराज कांस्टिया—िल-बदना मालुम होने—आप को शुवसाता को पत्र नहीं सो दिरावें—और फलोकी में आप को भाषण बड़ो मनोरजन हुदो राजपूताना भारवाड़ में आप जैसे गुणनान पुरुष विख्यान है जिस्की हम को नहीं खुशी है—आप देशाटन करके जगह व जगह पर्म की बहुत उन्नति की—अठी की तरफ भी आप जैसे भहारमाओं को

१—निहंगपाछ । २—तारुणपाछ ३—तेजपाछ । ४—तिहुआणपाछ (त्रिमुबनपार) । ५-अनंगपार । ६-पोतपार । ७-गोपार । ८-रुक्ष्मणपार । ९-मदनपार । १०-कुमारपाल । ११-कीर्तिपाल । १२-जयतपाल, इत्यादि ।

वे सब राजक्रमार उक्त नगरी को छोड़ कर जब से मग्नरा में आ रहे तब से वे माशुर कहलाये, कुछ वर्षे के वीतने के बाद गोपाल और लक्ष्मणपाल, वे दोनों भाई केकेई ग्राम में जा वसे, संवत् १०३७ (एक हजार सैतीस) में जैनाचार्य श्री वर्द्धमीनसरि जी महाराज मधुरा की यात्रा करके विहार करते हुए उक्त (केकेई) श्राम में पधारे, उस समय छक्ष्मणपाल ने आचार्य महाराज की बहुत ही मिक्त की और उन के धर्मीपदेश को छनकर दयामूल धर्म का अजीकार किया, एक दिन व्याख्यान में शेत्रुक्षय तीर्थ का माहात्म्य आया उस को सुन कर उक्ष्मणपाल के मन में संघ निकाल कर शेत्रुजय की यात्रा करने की इच्छा हुई और बोड़े ही दिनों में संघ निकाल कर उन्होंने उक्त तीर्थ-यात्रा की तथा कई आवश्यक स्थानों में छाखों रुपये धर्मकार्य में छगाये, जैनाचार्य श्री वर्द्धमानसूरि जी महाराज ने उदमणपाल के सद्माव को देख उन्हें संघ्रपति का पद दिया, यात्रा करके जब केकेई आम में वापिस आ गये तब एक दिन लक्ष्मणपाल ने गुरु महा-राज से यह प्रार्थना की कि-'हे परम गुरो ! धर्म की तथा आप की सत्क्रपा (वदीलत) से मुझे सब प्रकार का आनन्द है परन्तु मेरे कोई सन्तति नहीं है, इस लिये मेरा हृदय सदा शस्यवत् रहता है" इस बात को सुन कर गुरुजी ने खरोदय (योगविद्या) के ज्ञान-वल से कहा कि-"तुम इस वात की चिन्ता मत करो, तुम्हारे तीन पुत्र होंगे और उन से तुम्हारे कुल की वृद्धि होगी" कुछ दिनों के बाद आचार्य महाराज अन्यत्र विहार कर गये विचरनो बहुत जरूरी है---नडा २ गहरा में तथा प्रतिष्ठा होने तथा मेला होने जठे-फानफेन्स सूं आप को जावणों हो सके या किस तरह जिस्का समाचार विवादें-क्योंकि उपदेशक ग्रजराती आये जिन्की जबान इस तरफ के कोगों के कम समझ ने आती है-आप की जबान में इच्छी तरह समझ सकते हैं-और आप इस तरफ के देश काछ से बाकिफकार हैं-सी आप का फिरना हो सके तो पीछा कृपा कर जनाब लिखें-और सर्च क्या महावार होगा-और आप की शरीर की तदुरुसी तो ठीक होगी समानार लिखावे--वीकानेर में मी जैनक़व कायम हुना है-सारा हाखात वहां का शिववस्श जी साहब कोचर आप को धाकिक करेगे-बीकानेर से भी बहुत सी बातो का ग्रुवारा की जरूरत है सो वणे तो कोशीश करसी-क्रुपा-

> आप का सेवक. धनराज कांसरिया-~स्रपर चाईझर--

श्यपि हमारे पास उक्त पत्र आया तथापि पूर्वोक्त कारणे से हम उक्त कार्य को खीकार नहीं कर सके ॥ १-एक स्थान में श्रीवर्द्धमान सुरि के बदछे में श्रीनेमचन्द्र सुरि का नाम देखा गया है ।।

दृष्टी है वैसी वनी रहै-

और उन के कथनानुकूछ छहमणपाछ के कम से (एक के पीछे एक) तीन छड़के उत्पन्न हुए, जिन का नाम लक्ष्मणपाल ने यशोषर, नारायण और महीचन्द रक्खा, जब ये तीनों पुत्र योवनावस्था को भार हुए तव उदमणपाठ ने इन सब का विवाह कर दिया, उन में से नारायण की स्त्री के जब गर्भस्थिति हुई तब प्रथम जापा (प्रसूत) कराने के लिये नारायण की स्त्री को उस के पीहरवाले के गये, वहाँ जाने के वाद यथासमय उस के एक जोड़ा उत्पन्न हुआ, जिस में एक तो छड़की थी और दूसरा सर्पाकृति (साँप की शकछ-बाला) लड़का उत्पन्न हुआ था, कुछ महीनों के बाद जब नारायण की स्त्री पीहर से सस-राल में आई तब उस जोड़े को देखकर रूक्मणपाल आदि सब लोग अत्यन्त चिकत हुए तथा लक्ष्मणपाल ने अनेक लोगों से उस सर्पाकृति वालक के उत्पन्न होने का कारण पूछा परन्तु किसी ने ठीक २ उस का उत्तर नहीं दिया (अर्थात् किसी ने कुछ कहा और किसी ने कुछ कहा), इस लिये लक्ष्मणपाल के मन में किसी के कहने का ठीक तौर से विश्वास नहीं हुआ, निदान वह बात उस समय यों ही रही, अब सपीकृति बालक का हाल सुनिये कि-वह शीत ऋतु के कारण सदा चूल्हे के पास आकर सोने छगा, एक दिन भवितव्यता के वश क्या हुआ कि वह सर्पाकृति वालक तो चूरहे की राख में सो रहा था और उस की बहिन ने चार बड़ी के तड़के उठ कर उसी चुरुहे में अग्नि जला दी, उस अग्नि से जल-कर वह सर्पाकृति बालक मर गया और मर कर व्यन्तर हुआ, तब वह व्यन्तर नाग के रूप में वहाँ आकर अपनी वहिन को बहुत विकारने लगा तथा कहने लगा कि-"जब तक मैं इस ज्यन्तरपन में रहुंगा तब तक लक्ष्मणपाल के वंश में लड़कियां कमी सुखी नहीं रहेंगी अर्थात् शरीर में कुछ न कुछ तकलीफ सदा ही बनी रहा करेगी" इस प्रसंग को झनकर वहाँ बहुत से छोग एकत्रित (जमा) हो गये और परस्पर अनेक प्रकार की बातें करने छगे, थोड़ी देर के बाद उन में से एक मनुष्य ने जिस की कमर में दर्द हो गया था इस ज्यन्तर से कहा कि - "यदि तू देवता है तो मेरी कमर के दर्द को दूर कर दे" तब उस नागरूप व्यन्तर ने उस मनुष्य से कहा कि-"इस लक्ष्मणपाल के घर की दीवाछ (मीत) का तू स्पर्श्व कर, तेरी पीड़ा चली जावेगी" निदान उस रोगी ने लक्ष्मण-पाल के मकान की दीवाल का स्पर्श किया और दीवाल का स्पर्श करते ही उस की पीड़ा चली गई, इस प्रत्यक्ष चमत्कार को देख कर लक्ष्मणपाल ने विचारा कि यह नागरूप में कब तक रहेगा अर्थात् यह तो वासाव में व्यन्तर है, अभी अहरव हो बावेगा, इस लिये इस से वह बचन छे छेना चाहिये कि जिस से छोगों का उपकार हो, यह विचार कर लक्ष्मणपाल ने उस नागरूप -ज्यन्तर से कहा कि—''हे नागदेव ! हमारी सन्तति (औलाद) को कुछ वर देशो कि जिस से तुम्हारी कीर्चि इस संसार में वनी रहे" लक्ष्मणपाछ की बात को सन कर नागदेव ने उन से कहा कि-"नर दिया" "नह वर यही है कि-तुम्हारी

सन्तित (ओलाद) का तथा तुम्हारे मकान की दीवाल का जो स्पर्श करेगा उस की कमर में चिणक से उत्पन्न हुई पीड़ा दूर हो बावेगी और तुम्हारे गोत्र में सर्प का उपद्रव नहीं होगा" वस तब ही से 'वरदिया, नामक गोत्र विख्यात हुआ, उस समय उस की विहन को अपने माई के मारने के कारण अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ और उस न शोकवश अपने प्राणों का त्याग कर दिया और वह मरकर व्यन्तरी हुई तथा उस ने प्रत्यक्ष होकर अपना नाम भ्वाल प्रकट किया तथा अपने गोत्रवालों से अपनी पूजा कराने की स्वीकृति ले ली; तब से यह वरदियों की कुलदेवी कहलाने लगी, इस गोत्र में यह बात अब तक भी सुनने में आती है कि नाग व्यन्तर ने वर दिया ॥

तीसरी संख्या-कुकुड़ चोपड़ा, गणधर चोपड़ा गोत्र ॥

खरतरगच्छािषपति जैनाचार्य श्री जिन अभयदेवस्रि जी महाराज के शिज्य तथा वाचनाचार्यपद में स्थित श्री जिनवछमस्रि जी महाराज विक्रम संवत् ११५२ (एक हजार एक सौ वावन) में विचरते हुए मण्डोर नामक स्थान में पघारे, उस समय मण्डोर का राजा नानुदे पिंइहार था, जिस का पुत्र घवठचन्द गळित कुछ से महादुःसी हो रहा था, उक्त स्रि जी महाराज का आगमन युन कर राजा ने उन से पार्थना की कि—"हे परम गुरो! हमारे कुमार के इस कुछ रोग को अच्छा करो" राजा की इस पार्थना को युन कर राजकुमार के कारीर पर चुपड़ाया, तीन दिन तक जरीर पर घी के चुपड़े जाने से राजकुमार के कारीर पर चुपड़ाया, तीन दिन तक जरीर पर घी के चुपड़े जाने से राजकुमार का शरीर कंचन के समान विशुद्ध हो गया, तव गुरू जी महाराज के इस प्रमाव को देखकर सब कुदुम्ब के सहित राजा नानुदे पिंदहार ने दयामूल धर्म का प्रहण किया तथा गुरुजी महाराज ने उस का महाजन वंश और कुकुड़ चोपड़ा गोत्र स्थापित किया, राजा नानुदे पिंदहार का मन्त्री था उस ने भी प्रतिवोध पाकर दयामूल जैनधर्म का प्रहण किया और गुरु जी महाराज ने उस का माहाजन वंश और गणेधर चोपड़ा गोत्र स्थापित किया।

राजकुमार धवलचन्द्जी से पाँचर्वा पीड़ी में दीपचन्द जी हुए, जिन का विवाह ओसवाल महाजन की पुत्री से हुआ था, यहाँ तक (उन के समय तक) राजपूतों से सम्बंध होता था, दीपचन्द जी से ग्यारहीं पीढी में सोनपाल जी हुए, जिन्हों ने संध निकाल कर शेत्रुझय की थात्रा की, सोनपाल जी के पोता ठाकरसी जी वड़े वुद्धिमान् तथा चतुर हुए, जिन को राव चुढे जी राठौर ने अपना कोठार सुपुर्द किया था, उसी

१-"वर दिया" गोत्र का अपश्रश "वरहिया" हो गया है ॥

२-इस गोत्र बाळे लोग बालोतरा तथा पश्चमदा आदि सारवाड के स्थानों से है ॥

दिन से प्रजा ठाकरसी जी को कोठारी जी के नाम से पुकारने छगी, इन्हीं से कोठारी नल हुआ अर्थात् ठाकरसी जी की बौजादबांडे छोग कोठारी कहलाने छगे, कुकुड़ चोपड़ा गोत्र की ये (नीचे लिखी हुईं) चार साखायें हुई:—

१-कोठारी । २-बुबिकया । ३-धूपिया । १-बोगिया ॥

इन में से बुनिकिया आदि तीन श्वासा नाले लोगों के कुटुम्न में बजने नाले गहनों के पहिरने की स्वास मनाई की गई है परन्तु यह मनाई क्यों की गई है अर्थात् इस (मनाई) का क्या कारण है इस नात का ठीक २ पता नहीं लगा है ॥

चौथी संख्या-घाडीवाल गोत्र॥

गुजरात देश में डींडो जी नामक एक खीची राजपूत बाड़ा भारता था, उस को विक्रम संवत् ११५५ (एक हजार एक सौ पचपन) में वाचनाचार्थ पद पर स्थित श्री जिन बाइमसूरि जी महाराज ने प्रतिबोध देकर उस का माहाजन बंश और धाड़ीवाल गोष्ठ स्थापित किया, डीडों जी की सातवीं पीढी में शांवल जी हुए, जिन्हों ने राज के कोठार का काम किया था, इस लिये उन की खोलादवाले लोग कोठारी कहलाने लगे, सेडों जी धाड़ीवाल जोधपुर की रियासत के तिँवरी गांव में आकर बसे थे, उन के धिर पर टाँट भी इस लिये गाँववाले लोग सेडो जी को टाँटिया र कह कर पुकारने लगे, अत एव उन की खोलादवाले लोग भी टाँटिया कहलाने लगे।

पाँचवीं संख्या—ठाळाणी, वाँठिया, विरमेचा, हरखावत, साह और महावत गोत्र॥

विक्रम संवत् ११६७ (एक हजार एक सो सड़सठ) में पँवार राजपूत ठाठसिंह को सरतरगच्छाधिपति जैनाचार्य श्री जिनवहामसूरि जी महाराज ने प्रतिवोध देकर उस का माहाजन वंश और ठाठाणी गोत्र स्थापित किया, ठाठसिंह के सात पुत्र थे जिन में से बड़ा पुत्र बहुत वंठ अर्थात् जोरावर था, उसी से वाँठिया गोत्र कहळाया, इसी मकार दूसरे चार पुत्रों के नाम से उन के भी परिवार वाळे छोग विरमेचा, हरसावत, साह और महा- वृत कहळाने छगे ॥

सूचना—युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदेत्तस्रि जी (जो कि वड़े दादा जी के नाम से जैनसंघ में प्रसिद्ध हैं) महाराज ने विक्रम संवत् ११७० (एक हजार एक सी सत्तर) से लेकर विक्रम संवत् १२१० (एक हजार दो सौ दश) तक में राजपूत, महे- धरी वैश्य और ब्राह्मण वर्णवालों को प्रतिनोध देकर सवा लाख आवक बनाये थे, इस के

१-इन का जन्म विक्रम संवत् १९३२ में, दीक्षा १९४१ में, आवार्यपद १९६९ में और देवलोक १२१९ में आपाठ सदि ११ के दिन अजमेर नगर में हजा ॥

प्रमाणरूप बहुत से प्राचीन छेस देखने में आये है परन्तु एक प्राचीन गुरुदेव के स्तोर्त्र में यह भी लिखा है कि-प्रतिबोध देकर एक छास तीस हजार आवक बनाये गये थे, उक्त आवकसंघ में यद्यपि ऊपर छिस्ने हुए तीनों ही वर्ण थे परन्तु उन में राजपूत विशेष थे, उन को अनेक स्थलों में प्रतिबोध देकर उन का जो माहाजन वंश और अनेक गोत्र स्थापित किये गये थे उन में से जिन र गोत्रों का इतिहास प्राप्त हुआ उन को अब लिखते हैं॥

छठी संख्या—चोरिंड्या, भटनेरा, चौघरी, सावणसुखा, गोलेच्छा, बुचा, पारल और गद्दहिया गोत्र ॥

चन्देरी के राजा खरहत्यसिंह राँठोर ने विक्रम संवद् ११७० (एक हजार एक सौ सत्तर) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्तस्रि जी महाराज के उपदेश से दयामूल जैनधर्म का श्रहण किया था, उक्त राजा (खरहत्थ सिंह) के चार पुत्र थे—-१-अम्ब-देव। २-नीबदेव। ३-मेंसासाह और ४-आसू। इन में से प्रथम अम्बदेव की छोडादवाले लोग चोर बेरिइया (चोरिइया) कहलाये।

भोर वेरड़ियों में से नीचे लिले अनुसार पुनः शालायें हुई:---

१—तेंजाणी । २—घन्नाणी । ३—पोपाणी । ४—मोलाणी । ५—गह्नाणी । ६—देवस-याणी । ७—नाणी । ८—श्रवणी । ९—सहाणी । १०—ककड़ । ११—मकड़ । १२—मकड़ १३—ह्यटंकण । १४—संसारा । १५—कोवेरा । १६—सटारिकया । १७—पीतिलया ।

दूसरे नींबदेव की औछादवाछे छोग मटनेरा चौघरी कहछाये । तीसरे मेंसासाह के पॉच कियाँ थीं उन पॉचों के पॉच प्रत्र इस थे----

१-कुँवर जी । २-गेळो जी । १-वुचो जी । ४-पास् जी और ५-सेल्हस्य जी । इन में से प्रथम कुँवर जी की जीळादवाळे ळोग साहसुसा (सावणसुसा) कहळाये ।

१-वड वडे गामे ठाम ठामें सूपती प्रतिवोधिया ॥ इग छक्कि ऊपर सहस्र तीसा फल्रू में शावक किया ॥ परचा देखाच्या रोग झाच्या छोक पागळ सतए ॥ विगदत्त सूरि सूरीस सद गुरु सेवता सुख सन्तए ॥२१॥

२-कनोज में आसयान जी राठाँर ने युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्त सूरि जी महाराज से कहा था कि-"राठाँर आज से छेकर जैनधमें को न पालनेवाले भी खरतरगच्छवालों को अपना ग्रह मानेंगे" आसथान जी के ऊपर उक्त महाराज ने जव उपकार किया था उस समय के प्राचीन दोहे बहुत से हैं-जो कि उपाध्याय श्री मोहन लाल जी गणी के द्वारा हम को प्राप्त हुए हैं, जिन में से इस एक दोहें को तो प्राय बहुत से लोग जानते भी हैं---

दोहा—गुरु खरतर प्रोहित सेवड़, रोहिड़ियो वारटु॥ घर को मंगत दे दड़ो, राठोड़ां कुछ मट्ट॥ १॥

दूसरे गेळो जी की औठादबाठे ठोग गोठनच्छा (गोठेच्छा) कहलाये। तीसरे बुचो जी की औठादबाठे ठोग बुचा कहलाये। चौथे पासू जी की औठादबाठे ठोग पारस कहलाये।

पारल कहलाने का हेतु यह है कि-साहड़ नगर में राजा चन्द्रसेन की समा में किसी समय अन्य देश का निवासी एक जीहरी हीरा वेंचने के छिये छाया और राजा को उस हीरे को दिखलाया, राजा ने उसे देख कर अपने नगर के जौहरियों को परीक्षा के लिये बुळवा कर उस हीरे को दिखलाया, उस हीरे को देख कर नगर के सब जौहरियों ने उस हीरे की बड़ी तारीफ की, दैवयोग से उसी समय किसी कारण से पास जी का भी राज-समा में आगमन हुआ, राजा चन्द्रसेन ने उस हीरे की पासू जी की दिखलाया और पूछा कि-"यह हीरा कैसा है ?" पासू जी उस हीरे को अच्छी तरह देख कर बोले कि-"प्रथ्वीनाथ ! यदि इस हीरे में एक अवस्ण न होता तो यह हीरा वास्तव में प्रशंसनीय (तारीफ के लायक) था, परन्तु इस में एक अवगुण है इस लिये आप के पास रहने योग्य यह हीरा नहीं है" राजा ने उन से पूछा कि-"इस में क्या अवगुण है" पासू जी ने कहा कि-"पृथ्वीनाय! यह हीरा जिस के पास रहता है उस के की नहीं ठहरती है. यदि मेरी बात में आप को कुछ सन्देह हो तो इस जौहरी से आप दर्गात्फ कर हैं" राजा ने उस जीहरी से पूछा कि-"पासू जी जो कहते है क्या वह बात ठीक है !" जीहरी ने अत्यन्त खुश होकर कहा कि-"पृथ्वीनाथ ! निस्सन्देह पास जी आप के नगर में एक नामी जौहरी हैं, मैं बहुत दूर २ तक घूमा हूँ परन्तु इन के समान कोई जौहरी मेरे देखने में नहीं आया है, इन का कहना बिलकुल सत्य है क्योंकि जब यह हीरा मेरे पास आया शा उस के थोड़े ही दिनों के बाद मेरी स्त्री गुजर गई थी, उस के मरने के बाद मैं ने दसरा विवाह किया परन्त वह स्त्री भी नहीं रही, अब मेरा विचार है कि-मै अपना तीसरा विवाह इस हीरे को निकाल कर (वैंच कर) कहंता" जौहरी के सत्यमावण पर राजा बहुत खुश हुआ और उस को ईनाम देकर विदा किया, उस के जाने के बाद राजा चन्द्रसेन ने भरी समा में पासू जी से कहा कि-"वाह ! पारख जी वाह ! आप ने खूव ही परीक्षा की" बस उसी दिन से राजा पास् जी को पारल जी के नाम से पुकारने लगा, फिर क्या या यथा राजा तथा प्रजा अर्थात् नगरवासी भी उन्हें पारख जी कह कर पुका-रने छगे।

पाँचवें सेल्हत्य जीकी खौलादवाले लोग गद्दिंबा कहलाये ॥

१-यह भी सुनने में आया है कि गहा साह (मैंसा साह के माई) की औछाद वाळे छोग गहहिया कहलाये 1)

भैंसा साह ने गुजरात देश में गुजरातियों की जो लॉग छुड़वाई उस का वर्णन ॥

भैंसा साह कोट्यविपति तथा वड़ा नामी साहकार था, एक समय भैंसा साह की मातु:-श्री हक्ष्मीवाई २५ घोडों, ५ रथों, १० गाड़ियों और ५ केंटों को साथ छेकर सिद्ध-गिरि की यात्रा को खाना हुई, परन्तु दैवयोग से वे द्रव्य की सन्द्रक (पेटी) को साथ में लेना मूळ गई, जब पाटन नगर में (जो कि रास्ते में था) मुकाम किया तव वहाँ द्वव्य की सन्दक की याद आई और उस के लिये अनेक विचार करने पड़े, आखिरकार रूक्ष्मीवाई ने अपने ठाकुर (राजपूत) को मेज कर पाटन नगर के चार बढ़े २ व्यवहा-रियों को बुळवाया, उन के बुळाने से गर्धमसाह आदि चार सेठ आये, तत्र रुक्ष्मीवाई ने उन से द्रव्य (रुपये) उधार देने के लिये कहा. लक्ष्मीनाई के कथन की सन कर गर्धम-साह ने पछा कि-''तुम कौन हो और कहाँ की रहने वाली हो" इस के उत्तर में लक्ष्मी-बाई ने कहा कि "मै भैसे की माता हैं" लक्ष्मीबाई की इस वात को छन कर गर्धम-साह ने उन डोकरी उक्सीबाई से हँसी की अर्थीत यह कहा कि-"मैसा तो हमारे यहाँ पानी की पखाल लाता है" इस मकार लक्ष्मीवाई का उपहास (दिल्लगी) करके वे गर्घम-साह आदि चारों व्यापारी चले गये, इघर लक्ष्मीवाई ने एक पत्र में उक्त सब हाल लिख-कर एक ऊँटवाले अपने सवार को उस पत्र को देकर अपने पत्र के पास भेजा, सवार बहुत ही चीब गया और उस पत्र को अपने मालिक भैसा साह को दिया, भैसा साह उस पत्र को पढ कर उसी समय वहुत सा द्रव्य अपने साथ में छेकर रवाने हुआ और पाटन नगर में पहुँच कर इधर तो खय गर्धभसाह आदि उस नगर के व्यापारियों से तेल लेना शुरू किया और उधर जगह २ पर अपने गुमाइतों को भेज कर सब गुजरात का तेल खरीद करवा लिया तथा तेल की नदी चलवा दी. आखिरकार गर्धमसाह आदि मारु को हाजिर नहीं कर सके अर्थात् वादे पर तेल नहीं दे सके और अत्यन्त लजित होकर सब ज्यापारियों को इकट्टा कर छट्मीबाई के पास जा कर उन के पैरों पर गिर कर वोळे कि "हे माता । हमारी प्रतिष्ठा अब आप के हाथ में है" लड़मीबाई अति क्रूपाल धी अतः उन्हों ने अपने पुत्र भैसे साह को समझा दिया और उन्हें समा करने के लिये कह दिया, माता के कथन को मैसे साह ने स्वीकार कर लिया और अपने गुमाश्तों को आजा दी कि यादगार के लिये इन सब की एक लॉग ख़ुलवा ली जावे और इन्हें माफी दी जावे, निदान ऐसा ही हुआ कि भैसा साह के गुमाश्तों ने स्मरण के लिये उर्न सब गुज-

⁹⁻इन का विवासस्थान मॉडवगढ था, जिस के मकानों का चॅडहर अब तक विद्यमान है, कहते हैं कि-इन के रहने के मकान में कस्त्री और अम्बर आदि सुगन्धित डब्ब पोठे जाते थे, इन के पास कस्मी इतनी थी कि-जिस का पाराबार (ओर छोर) नहीं था, भैसा साह और गहा साह नामक ये दो माई थे ॥

रातियों की घोती की एक लॉग खुल्वा कर सब को माफी दी और वे सब अपने २ घर गये, वहां पर देंसे साह को रुपारेलें विरुद्ध मिला ॥

सातवीं संख्या—मण्डशौळी, भूरा गोत्र ॥

श्री छोद्रवापुर पहुन (जो कि जैसलमेर से पाँच कोस पर है) के माटी राजपूत सागर रावल के श्रीधर और राजधर नामक दो राजकुमार ये, उन दोनों को विकम संवत् ११७३ (एक हजार एक सौ तेहतर) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्तसूरि जी महाराज ने मित्रवोध देकर उन का माहाजन वंश और मण्डशाली गोत्र स्थापित किया, भण्डशाली गोत्र में थिरु साह नामक एक बड़ा माग्यशाली पुरुष हो गया है, इस के विषय में यह बात मिसद है कि—यह वी का रोजगार करता था, किसी समय इस ने रुपासियाँ गाँव की रहने वाली धी बेचने के लिये खाई हुई एक खी से चित्रावेल की पँडरी (इंटोणी) किसी चतुराई से ले ली थी, उसी पँडरी के प्रमाव से थिरु साह के पास बहुत सा द्रव्य हो गया था, इस के पश्चात् थिरु साह ने लोद्रवपुर पहुन में सहस्रफण पार्श्वनाथ सानी के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया, फिर ज्ञानमण्डार स्थापित किया, इत्यादि, तासर्य यह है कि उस ने सात क्षेत्रों में बहुत सा द्रव्य क्वे कियाँ, मण्डशाली गोत्रवाले लोग लोद्रवपुर पहुन से उठ कर और २ देशों में जा बसे, ये ही मण्डशाली जैसलमेर में कालवा कहलाते है।

एक मण्डशाली जोधपुर में आकर रहा और राज्य की तरफ से उसे काम मिला अतः वह राज्य का काम करने लगा, इस के बाद उस की औलादवाले लोग महाजनी वेशा

२-भण्डवाल में वासक्षेप दिवा या इस लिये इन का अण्डवाली चोत्र स्थापित किया, इसी नाम का अपन्नवा पीछे से भणवाली (सण्डावाली) हो गया है ॥

र-यह की जाति की जाटिनी भी और यह घी वेंचने के िक्ये रुपासियों गॉव से लोहनापुर पहन को निकार भी, इस ने राक्ते में जगर में से एक हरी छता (वेंछ) को उसाब कर उस की ऐंडरी बनाई थी और उस पर घी की हॉडी रख कर यह थिव साह की कुकान पर आई, थिव साह ने इस का घी खरीर किया और हॉडी में से घी निकार ने छगा, जब घी निकार र बहुत देर हो गई और उस हॉडी में से घी निकार के सन्देह हुवा और उस ने विचारा कि-इस हॉडी में इतना घी बैसे मी निकारता जाता है, जब उस ने ऐंडरी पर से हॉडी को उठा कर देखा तो उस में घी नहीं दीखा, यस वह समझ गया कि यह ऐंडरी का ही प्रमान है, जह समझ कर उस ने मन में विचारा कि-इस ऐंडरी को समझ गया कि यह ऐंडरी का ही प्रमान है, जह समझ कर उस ने मन में विचारा कि-इस ऐंडरी उस जाटिनी किसी प्रकार देना चाहिंगे, यह विचार कर विच साह ने की दियों बनी हुई एक सुन्दर ऐंडरी उस जाटिनी को दी और उस चित्राबेठ की ऐंडरी को उठा कर वसनी दुकान में रख किया ॥

४-इस ने एक जिनासम आगरे में भी बनवामा या जो कि अन तक मौजूद है ॥

^{&#}x27; १-स्पारेड नामक एक जानवर होता है वह जिस के पास रहता है उस के पास अब्दर (असेवस) इच्छ होता है ॥

करने छगे, जोधपुर नगर में कुछ स्रोसवालों के चौधरी ये ही हैं, अर्थात न्यात (जाति) सम्बन्धी काम इन की सम्मति के विना नहीं होता है, ये छड़के के शिर पर नौ वर्ष तक चोटी को नहीं रखते है, पीछे रखते है, इन में जो वोरी दासोत कहलाते है वे ब्राह्मणों को और हिजड़ों को व्याह में नहीं बुलाते है, जोधपुर में मोजकों (सेवकों) से विवाह करवाते है।

एक भण्डशाली वीकानेर की रियासत में देशनोक गाँव में जा बसा था वह देखने में आत्यन्त भूरा था, इस लिये गाँववाले सब लोग उस की भूरा २ कह कर पुकारने लगे, इस लिये उस की औलादवाले लोग भी भूरा कहलाने लगे।

ये सब (ऊपर कहे हुए) राय मण्डशाली कहलाते है, किन्तु जो खड मणशाली कहलाते है वे जाति के सोलंखी राजपूत थे, इस के सिवाय खडमणशालियों का विशेष वर्णन नहीं प्राप्त हुआ।

आठवीं संख्या-आयरिया, ऌणावत गोत्र ॥

सिन्ध देश में एक इजार प्रामों के माटी राजपूत राजा अमय सिह की विक्रम संवत् ११७५ (एक हजार एक सी पचहत्तर) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्त सूरि जी महाराज ने प्रतिनोध देकर माहाजन वंश और आयरिया गोत्र स्थापित किया, इस की बौळाद में छणे नामक एक बुद्धिमान तथा माग्यशाली पुरुष हुआ, उस की बौळादवाळे छोग छणावत कहलाने लगे, छणे ने सिद्धाचल जी का संघ निकाला और लाखों रुपये धर्मकार्य में खर्च किये, कोछ प्राम में कावेली खोड़ियार चारणी नामक हरखू ने छणे को वर दिया था इस लिये छणावत लोग खोड़ियार हरखू को पूजते है, ये लोग बहुत पीड़ियों तक वहलवे ग्राम में रहते रहे, पीछे जैसलमेर में इन की जाति का विस्तार होकर मारवाड़ में हुआ।

नवीं संख्या-बहुफणी, नाहटा गोत्र॥

धारा नगरी का राजा पृथ्वीघर पंवार राजपूत था, उस की सोलहवां पीड़ी में जीवन और सच्चू, ये दो राजपुत्र हुए थे, ये दोनों माई किसी कारण धारा नगरी से निकल कर और जांगल को फतह कर वही अपना राज्य स्थापित कर छुल से रहने लगे थे, विकम संवत् ११७७ (एक हजार एक सौ सतहत्तर) में छुगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्त सूरि जी महाराज ने जीवन और सच्च् (दोनों माहयों) को प्रतिवोध देकर उन का माहाजन वंश और बहुफणागोत्र स्थापित किया।

इन्हीं की औछादबाछे छोग युद्ध में नहीं हटे थे इस लिये ने नाहटा कहलाये।

१-वद्दुफणा नाम का अपश्रवा वाफणा हो गया है ॥

इस के पश्चात् लखनों के नवाव ने इन को राजा का पद प्रदान किया था जिस से राजा बच्छराज जी के घरानेवाले लोग भी राजा कहलाने लगे थे।

जगर कहे हुए गोत्रवालों में से एक बुद्धिमान् पुरुष ने फतहपुर के नवाव को अपनी चतुराई का अच्छा परिचय दिया था, जिस से नवान ने प्रसन्न होकर कहा था कि—"यह रायजादा है" तब से नगरवासी लोग भी उसे रायजादा कहने लगे और उस की जीलाद वाले लोग भी रायजादा कहलाये, इस प्रकार उपर कहे हुए गोत्र का निरन्तर विसार होता रहा और उस की नीचे लिखी हुई १७ शासायें हुई:——१—वाफणा । २—नाहटा । ३—रायजादा । १—घुछ । ५—घोरवाइ । ६—हुंहिया । ७—जांगड़ा । ८—सोमलिया । ९—वाहंतिया । १०—वसाह । ११—मींठड़िया । १२—वाधमार । १३—माम् । ११—घत्-रिया । १५—मगदिया । १६—पटवा (जैसलमेरवाला) १७—नानगाणी ॥

दशवीं संख्या-रतनपुरा, कटारिया गोत्र॥

विक्रम संवत् १०२१ (एक हजार इकीस) में सोनगरा चौहान राजपूत रतनसिंह ने रतनपुरनामक नगर वसाया, जिस के पाँचवें पाट पर विक्रम संवत् ११८१ (एक हजार एक सी इन्यासी) में अक्षय तृतीया के दिन धनपाल राजसिंहासन पर बैठा, एक दिन राजा धनपाल शिकार करने के लिये जंगल में गया और सुध न रहने से बहुत दूर चला गया परम्त्र कोई भी शिकार उस के हाथ न लगी, आखिरकार वह निराश होकर वापिस छौटा, छौटते समय रास्ते में एक रमणीक तालाब दीख पड़ा, वहां वह घोड़े को एक इस के नीचे बाँध कर तालाव के किनारे बैठ गया, थोड़ी देर में उस को एक काला सर्प थोड़ी ही दूर पर दीख पड़ा और जोश में आकर ज्यों ही राजा ने उस के सामने एक पत्थर फेंका त्यों ही वह सर्प अत्यन्त गुस्से में भर गया और उस ने राजा धनपाल को शीघ ही काट खाया, काटते ही सर्प का विप चंढ़ गया और राजा मूर्छित (बेहोश) होकर गिर गया, दैवयोग से उसी अवसर में वहां शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय तथा अनेक विद्याओं के निधि युगप्रधान जैनाचार्य श्रीजिनदत्त सूरि जी महाराज अनेक साधुओं के सङ्ग निहार करते हुए आ निकले और मार्ग में मृततुल्य पड़े हुए मनुष्य को देख कर आचार्य महाराज खड़े हो गये और एक शिष्य से कहा कि-"इस के समीप जाकर देखो कि-इसे क्या हुआ है" शिप्य ने देख कर विनय के साथ कहा कि-"हे महाराज! माछम होता है कि-इस की सर्प ने काटा है" इस वात को छुन कर परोपकारी दयानिषि आचार्य महाराज उस के पास अपनी कमली विछा कर बैठ गये और दृष्टिपाश विद्या के द्वारा उस पर अपनी ओघा फिराने लगे, थोड़ी ही देर में धनपाल चैतन्य होकर उठ बैठा और अपने पास महा-प्रतापी आचार्र महाराज को बैठा हुआ देख कर उस ने श्रीघ्र ही खड़े होकर उन की नमन भौर क्न्द्रन किया-तथा गुरु महाराज ने उस से घर्मलाम कहा, उस समय राजा धनपाल

ने गुरु जी से अपने नगर में पधारने की अत्यन्त विनित की अतः आंचार्य महाराज रखपुर नगर में पधारे, वहाँ पहुँच कर राजा ने हाथ जोड़कर कहा कि—'मैं अपने इस राज्य
को आप के अपण करता हूँ, आप कृपया इसे स्वीकार कर मेरे मनोवांछित को पूर्ण
कीजिये" यह सुन कर गुरुजी ने कहा कि—'राज्य हमारे काम का नहीं है, इस लिये
हम इस को छेकर क्या करें, हम तो यही चाहते हैं कि—तुम दयामूछ जैनधर्म का प्रहण
करों कि जिस से तुम्हारा इस मन और पर मन में कल्याण हो" गुरु महाराज के इस
निर्छीम बचन को सुन कर धनपाछ आत्यन्त प्रसन्न हुआ और महाराज से हाथ जोड़ कर
बोछा-कि—''हे दयासागर! आप चतुर्मास में यहाँ विराज कर मेरे मनोवांछित को पूर्ण
कीजिये" निदान राजा के अत्यन्त आग्रह से गुरु महाराज ने नहीं चतुर्मास किया और
राजा धनपाछ को प्रतिनोध देकर उस का माहाजन वंश और रखपुरा गोत्र स्थापित किया,
इस नगर में आचार्य महाराज के धर्मीपदेश से २४ खांप चौहान राजपूँतों ने और बहुत
से महेश्वरियों ने प्रतिनोध प्राप्त किया, जिन का गुरुदेव ने माहाजन वंश और मार्छ आदि
अनेक गोत्र स्थापित किये, इस के पश्चात् रखपुरा गोत्र की दश शासायें हुई जो कि
निम्नछिसित है:—

१-रत्नपुरा । २-कटारिया । ३-कोचेटा । १-नराण गोता । ५-सापद्राह । ६-भळा-णिया । ७-सॉॅंमरिया । ८-रामसेन्या । ९-वलाई । १०-वोहरा ।

रह्मपुरा गोत्र में से कटारिया ज्ञाला के होने का यह हेतु है कि—राजा धनपाछ रह्म-पुरा की जीठाद में झाँझणसिंह नामक एक बड़ा मतापी पुरुष हुआ, जिस को झुळतान ने अपना मन्त्री बनाया, झाँझणसिंह ने रियासत का इन्तिजाम बहुत अच्छा किया इस छिये उस की नेकनामी चारों तरफ फैछ गई, कुछ समय के बाद झुळतान की आज्ञा छेकर झाँझणसिंह कार्चिक की पूर्णिमा की यात्रा करने के छिये शेत्रुझय को रवाना हुआ, बहाँ पर इस की गुजरात के पटणीसाह अवीरचंद के साथ (जो कि वहाँ पहिछे, आ पहुँचा था) प्रभु की आरति उतारने की बोछी पर बदाबदी हुई, उस समय हिम्मत बहादुर गुँहते झाँझणसिंह ने माछने का महसूछ ९२ (बानने) छाल (जो कि एक वर्ष के इजारह में आता था) देकर प्रभुजी की आरती उतारी, यह देख पटणीसाह भी चिकत हो गया और उसे अपना साधमीं कह कर धन्यवाद दिया, झाँझणसिंह पाछीताने से रवाना हो कर मार्ग में दान पुण्य करता हुआ वापिस आया और दर्वार में जाकर

१--१-हाडा । २-देवडा । ३-सोनगरा । ४-मालडीचा । ५-कृदणेचा । ६-वेडा । ७-वालोत । ८-चीवा । ९-काच । १०-खीची । ११-विहल । १२-केमटा । १३-मेलवाल । १४-वालीचा । १५-माल्हण । १६-पावेचा । १७-कावलेचा । १८-रापडिया । १९-हुदणेच । २०-नाहरा । २१-ईवरा । १२-राकतिया । २३-वाबेटा । २४-साचोरा ॥

२-माल् जाति के राठी महेश्वरी थे ॥

मुलतान से सलाम की, मुलतान उसे देख कर बहुत भसन हुआ तथा उसे उस का पूर्व काम सौंप दिया, एक दिन हलकारे ने अलतान से झाँझणसिंह की चुगली साई वर्धात् यह कहा कि-"हजूर सलामत ! शाँझणसिंह ऐसा जनरदस्त है कि उस ने अपने धीर के िये करोड़ों रुपये खनाने के सर्च कर दिये और आप को उस की ख़बर तक नहीं दी" हलकारे की इस वात को सुन कर सुलतान बहुत गुस्से में आगया और झाँझणसिंह को उसी समय दर्नार में बुळवाया, झाँझणसिंह को इस बात की खबर पहिले ही से हो गई थी इस लिये वह अपने पेट में कटारी मार कर तथा ऊपर से पेटी बाँघ कर दबीर में हाजिर हुआ और अलतान को सलाम कर अपना सब हाल कहा और यह मीं कहा कि-"हजूर ! आप की बोलवाला पीर के आगे मैं कर आया हूँ" इस बात को सुनं कर सुरू-तान बहुत प्रसन्न हुआ परन्तु कमरपेटी के खोलने पर ऑझणसिंह की जान निकल गई, वस यहीं से कटारिया शाला प्रकट हुई अर्थात् झाँझणींसह की भौजद वाले लोग कटा-रिया कहलाये, कुछ समय के बाद इन की औलाद का निवास माँडवंगढ़ में हुआ, किसी कारण से असलमानों ने इन लोगों को पकड़ा और वाईस हजार रुपये का दण्ड किया, उस समय जगरूप जी बति (जो कि खरतरमद्वारकगच्छीय थे) ने मुसलमानों को कुछ चमरकार दिखला कर कटारियों पर जो वाईस हजार रुपये का दण्ड मुसल्मानों ने किया था नह छुड़वा दिया, रलपुरा गोत्रवाले एक पुरुष ने बलाइयों (देद जाति के छोगों) के साथ छेन देन का व्यापार किया था वहीं से वलाई शासा हुई अर्थात उस की **औडादवाले लोग वलाई फहलाने लगे ॥**

ग्यारहवीं संख्या-रांका, काला, सेठिया गोत्र ॥

पाली नगर में राजपूत जाति के काकू और पाताक नामक दो माई थे, विक्रमसंवर्त ११८५ (एक हजार एक सी पजासी) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्त स्रि जी महाराज विहार करते हुए इस नगर में पधारे, महाराज के धर्मोपदेश से काकू को प्रतिचीष प्राप्त हुआ, पाताक ने गुरु जी से कहा कि—"महाराज ! इन्य तो मेरे पास बहुत है परन्तु सन्तान कोई नहीं है, इस लिये मेरा चित्त सदा दुःखित रहता है" यह युन कर गुरु महाराज ने कहा कि—"तू द्यामूल धर्म का ग्रहण कर तेरे पुत्र होनेगे" इस बचन पर अद्धा रख कर पाताक ने द्यामूल धर्म का ग्रहण किया तथा आजार्य महाराज अन्यत्र विहार कर गये, काकू बहुत दुवेल शरीर का या इस लिये लोग उसे राका नाम से पुकान्ते लगे, पाताक के दो पुत्र हुए जिन का नाम काला और वांका था, इन में से राका को नगर सेठ का पद मिला, राका सेठ की औलादनाले लोग राका और सेठिया कहलाये, पाताक के प्रथम पुत्र काला की औलादनाले लोग काला और बोंक कहलाये तथा धांका की जीलादनाले लोग बाला गोरा और दक्त कहलाये, वस इन का वर्णन यही निम्नलिखित है:—

2 स्था । 2 सेठिया । 2 काला । 8 बोंक । 4 बांका । 4 नोरा। 9 दक ॥

बारहवीं संख्या-राखेचाह, पूगळिया गोत्र ॥

प्राल का राजा भाटी राजपूत सोनपाल था तथा उस का पुत्र केलणदे नामक था, उस के शरीर में कोड़ का रोग हुआ, राजा सोनपाल ने पुत्र के रोग के मिटाने के लिये अनेक यह किये परन्त वह रोग नहीं मिटा, विक्रमसंवत ११८७ (एक हजार एक सौ सतासी) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्त सूरि जी महाराज विहार करते हुए वहाँ पघारे, राजा सोनपाल बहुत से आदिमयों को साथ लेकर आचार्य महाराज के पास गया और नमन वन्दन आदि शिष्टाचार कर बैठ गया तथा गुरु जी से हाथ जोड़ कर बोला कि-"महाराज! मेरे एक ही पुत्र है और उस के कोड़ रोग हो गया है. मैं ने उस के मिटने के लिये बहुत से लपाय भी किये परन्तु वह नहीं मिटा, अब मैं आप की शरण में आया हूँ, यदि आए क्रूपा करें तो अवस्य मेरा पुत्र नीरोग हो सकता है. यह मुझ को इट विश्वास है" राजा के इस बचन को सन कर गुरु जी ने कहा कि—"तुम इस मद और पर भव में कल्याण करने वाले दयामूल धर्म का प्रहण करो, उस के प्रहण करने से तम को सब प्रख मिलेंगे" राजा सोनपाल ने गुरु जी के बचन को आदरपूर्वक खीकार किया, तब गुरु जी ने कहा कि-"तुम अपने पुत्र को यहाँ छे आओ और गाय का ताजा धी भी छेते आस्रो" गुरु जी के वचन को सुन कर राजा सोनपाल ने शीव ही गाय का ताजा थी मंगवाया और पुत्र को लाकर हाजिर किया, गुरु महाराज ने वह यत केलणदे के शरीर पर लगवाया और उस पर दो घंटे तक खयं दृष्टिपाश किया, इस प्रकार तीन दिन तक ऐसा ही किया, चौथे दिन केळणदे कुमार का शरीर कम्बन के समान हो गया, राजा सोनपाछ अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उस के मन में अत्यन्त भक्ति और श्रद्धा की चाँह को देख कर आचार्य महाराज ने वासक्षेप देने के समय उस का माहाजन वंश और राखेचाह गोत्र खापित किया ।

राखेचाह गोत्रवालों में से कुछ लोग पूगल से उठ कर अन्यत्र जाकर बसे तथा उन को कोग पूगलिया कहने लगे, बस तब से ही वे पूगलिया कहलाये ॥

तेरहवीं संख्या-लूणिया गोत्र ॥

सिन्घ देश के मुलतान नगर में सुंघड़ा जाति का महेश्वरी है।शीशाह राजा का देश दीवान था, हाथीशाह ने राज्य का प्रवंध अच्छा किया तथा प्रजा के साथ नीति के अनु-

⁹⁻एक जगह इस का नाम घींगडमाह लिखा हुआ देखने में आया है तथा दो चार इदों से हम ने गह भी छुना है कि मुंघडा जाति के महेश्वरी घींगडमाह और दानीशाह दो भाई थे, उन में से हानीशाह ने पुत्र को सर्प के काटने के समय में श्री जिनदत्त जी स्पृर्ट के कथन से दयामूल घम का प्रहण किया था, इसादि, इस के सिवाय खणिया गोत्र की तीन बशावलियों भी हमारे देखने में आई जिन में आय' लेख तुस्य है अर्थात, तीनों का लेख परस्पर में श्रीक मिखता है ॥

सार वर्तीव किया, इस लिये राजा और मजा, उस पर बहुत खुश हुए, केल समय के बाद हाथीशाह के पुत्र उत्पन्न हुआ और उस ने दसीटन का उत्सव बड़ी चूमधाम से किया तथा पुत्र का नाम नक्षत्र के अनुसार छणा रक्खा, बब वह पाँच वर्ष का हो गया तब दीवान ने उस को विद्या का पढ़ाना प्रारंग किया, बुद्धि के तीक्ष्ण होने से छणा ने विद्या तथा कलाकुश्ला में अच्छी निपुणता प्राप्त की, जब खुणा की अवस्था बीस वर्ष की हुई तब दीवान हाथीशाह ने उस का विवाह नहीं भूमधाम से किया, एक दिन का प्रसंग है कि-रात्रि के समय छणा और उस की स्त्री पठँग पर सो रहे थे कि इतने में दैववश सोते हुए ही छूणा को साँप ने काट लाया, इस बात की खबर छूणा के पिता को प्रात:काल हुई, तब उस ने झाड़ा झपटा और ओषधि आदि बहुत से उपाय करवाये परन्तु कुछ भी फायदा नहीं हुआ, विष के वेग से छुणा बेहोश्च हो गया तथा इस समा-चार को पाकर नगर में चारों धोर हाहाकार मच गया, सब उपायों के निष्फल होने से दीवान भी निराश हो गया अर्थात उस ने पुत्र के जीवन की आशा छोड़ दी तथा छणा की स्ती होने को तैयार हो गई, उसी दिन अशीत् विक्रमसंवत् ११९२ (एक हजार एक सौ वानवे) के अक्षयतृतीया के दिन युगमधान जैनाचार्य श्री जिनदत्तस्रि जी महाराज विहार करते हुए वहाँ पघारे, उन का आगमन छुन कर दीवान हाथीखाह आचार्य महाराज के पास गया और नमन वन्दन आदि करके अपने पुत्र का सब बुचान्त फह सुनाया तथा यह भी कहा कि—''यदि मेरा जीवनाषार कुळदीपक प्यारा पुत्र जीवित हो जावे तो मैं लाखों रुपयों की जबाहिरात आप को मेंट करूँगा और आप जो कुछ आज्ञा प्रदान फरेंगे वही में सीकार करूँगा" उस के इस वचन को छुन कर आचार्य महा-राज ने कहा कि-"हम त्यागी हैं, इस लिये द्रन्य लेकर इस क्या करेंगे, हाँ यदि तुम अपने कुटुम्ब के सहित द्यामूल धर्म का ग्रहण करो तो तुम्हारा पुत्र जीवित हो सकता है" जब हाथीशाह ने इस बात को स्वीकार कर लिया तब आचार्य महाराज ने चारों तरफ पहते डलवा कर जैसे रात्रि के समय छणा और उस की की पर्लंग पर सोते हुए ये उसी प्रकार झुळवा दिया और ऐसी शक्ति फिराई कि वही सर्प आकर उपस्थित हो गया, तब आचार्य महाराज ने उस सर्प से कहा कि-"इस का सम्पूर्ण निष खींच छे" यह धुनते ही सर्प पलॅंग पर चढ़ गया और विष का चूंसना प्रारम्भ कर दिया, इस प्रकार कुछ देर में सम्पूर्ण विव को खींच कर वह सर्प चला गया और छणा सचेत हो गया, नगर में राग रंग होने और आनन्द बाजन बजने छगे तथा दीवान हाथीशाह ने उसी समय बहुत कुछ दान पुण्य कर कुटुम्बसहित द्यामूल धर्म का ग्रहण किया, आचार्य महाराज ने उस का माहाजन वंश और ऋणिया गोत्र स्वापित किया ॥

सूचना-भिय वाचकवृत्द ! पहिले लिख चुके हैं कि-दादा साहब युगप्रधान जैना-

चार्य श्री जिनदत्त सूरि महाराज ने सवा छाल श्रावकों को प्रतिवोध दिया या अर्थात् उन का माहाजन वंश और अनेक गोत्र स्थापित किये थे, उन में से जिन र का प्रामाणिक वर्णन हम को प्राप्त हुआ उन गोत्रों का वर्णन हम ने कर दिया है, अन इस के आगे लर- तरगच्छीय तथा दूसरे गच्छाधिपति जैनाचार्यों के प्रतिवोधित गोत्रों का जो वर्णन हम को प्राप्त हुआ है उस को छिलते हैं:—

चौदहवीं संख्या-साँखला, सुराणा गोत्र ॥

विक्रमसंवत् १२०५ (एक हजार दो सौ पाँच) में पँवार राजपूत जगदेव को पूर्ण तहागच्छीय किलाल सर्वज्ञ जैनाचार्य श्री हेर्मचन्द्रसूरि जी महाराज ने प्रतिबोध देकर जैनी श्रावक किया था, जगदेव के सूर जी और सॉवल जी नामक दो पुत्र थे, इन में से सूर जी की औलादवाले लोग झुराणा कहलाये भीर सॉवल जी की औलादवाले लोग सॉलला कहलाये।

पन्द्रहवीं संख्या-आघरिया गोत्र॥

सिन्ध देश का राजा गोसलसिंह माटी राजपूत था तथा उस का परिवार करीब पन्द्रह सौ घर का था, विकामसंवत् १२१४ (एक हजार दो सौ चौदह) में उन सब को नरमणि मण्डित मालस्थल खोड़िया क्षेत्रपालसेवित खरतरगच्छाधिपित जैनाचार्य श्री जिन्वेचन्द्रसार जी महाराज ने प्रतिबोध देकर उस का माहाजन वंश और आधरिया गोत्र स्थापित किया ॥

९-इन का जम्म विक्रमसंवत् १९४५ के कार्तिक छुदि १५ को हुआ, १९५४ में बीक्षा हुएँ, १९६६ में सूरि पद हुआ तथा १९९९ में खर्गवास हुआ, ये जैनावार्य बढ़े प्रतापी हुए हैं, इन्हों ने अपने जीवन में साढ़े तीन करोड कोकों की रचना की थी अर्थात् संस्कृत और प्राकृत भाषा में व्याकरण, कोश, काव्य, छन्द, योग और न्याय आदि के अनेक प्रन्य बनाये थे, न केमळ इतना ही किन्तु इन्हों ने अपनी विद्वत्तर के बळ से अठारह देशों के राजा कुमारपाछ को जैनी बना कर जैन मत की बड़ी उन्नति की थी तथा पाटन नगर में पुस्तकों का एक बड़ा नारी अण्डार स्थापित किया था, इन के गुणों से प्रसन्न होकर न केबळ एतहेशीय (इस देश के) जनों ने ही इन की प्रशंसा की है किन्तु विभिन्न देशों के विद्वानों ने भी इन की गुक्त कच्छ से प्रशस्त की है, देखिये ! इन की प्रशंसा करते हुए यूरोपियन स्कालर डाक्टर पीटरसन साहव फरसाते हैं कि—"श्रीहेमचन्द्राचार्य जी की विद्वत्ता की खुति जवान से नहीं हो सकती है" इसादि, इन का विश्रेप वर्णन देखना हो तो प्रवन्यविन्तामणि आदि प्रन्थों में देख छेना चाहिये ॥

२-इन का जन्म विक्रमसंबद् ११९१ के माद्रपद सुदि ८ के दिन हुआ, १२११ में वैशाख सुदि ५ को ये सूरि पद पर वैठे तथा १२२३ मे माद्रपद विद १४ को दिक्षी में इन का स्वर्गवास हुआ, इन को दादा साहिव श्री जिन दत्त सूरि जी महाराज ने अपने हाथ से सबत् १२११ में वैशाख सुदि ५ के दिन विक्रस-पुर नगर में (विक्रमपुर से बीकानेर को नहीं समझना नाहिये किन्तु यह विक्रमपुर दूसरा नगर था)

ं सोलहवीं संख्या-दूगड़, सूगड़ गोत्र॥

पाछी नगर में सोमचन्द्र नामक खीची राजपूत राज्याविकारी था, किसी कारण से वह राजा के क्षोम से वहाँ से भाग कर जङ्गल देश के मध्यवर्ती जांगळ नगर में आकर बस गया, सोमचन्द्र की ग्यारहवीं पीढ़ी में स्रसिंह नामक एक वड़ा नामी शरवीर हुआ, सरसिंह के दो पत्र थे जिन में से एक का नाम दगड़ और दूसरे का नाम सगड़ था. इन दोनों माइयों ने जांगळ को छोड़ कर मेबाइ देश में आवाट गाँव को जा दावा तथा वहीं रहने लगे, वहाँ तमाम गाँववाले लोगों को नाहरसिंह वीर वड़ी तकलीफ देता था, उस (तकलीफ) के दूर करने के लिये प्रामनिवासियों ने अनेक मोपे आदि को बुलाया तथा उन्हों ने आकर अपने २ अनेक इल्म दिखलायें परन्त कुछ सी उपदव शान्त न हुआ और वे (सोपे आदि) हार २ कर चले गये, विक्रमसंवद १२१७ (एक हजार हो सौ सन्नह) में युराप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्तत्तर जी महाराज के पह प्रभाकर नरमणिमण्डित मालस्थल खोड़िया क्षेत्रपाल सेवित नैनाचार्य श्री जिनचन्द्र सारे जी महा-राज विहार करते हुए वहाँ (आघाट आम में) पधारे, उन की महिमा को छनकर तूगढ़ और सगह दोनों आई आचार्य महाराज के पास आये और नमन वन्दन आदि शिष्टा-चार कर बैठ गये तथा महाराज से अपना सब दुःस प्रकट कर उस के मिटाने के लिये अत्यन्त आग्रह करने छगे, उन के अत्यन्त आग्रह से क्रुपाछ आचार्य महाराज ने पद्मावती जया और विजया देवियों के प्रमाव से नारसिंह बीर को वश में कर लिया, ऐसा होने से गाँव का सब उपद्रव शान्त हो गया, महाराज की इस अपूर्व शक्ति को देल कर

शासार्य पर पर स्थापित किया था तथा नन्दी (पाट) का महोत्सव रासक ने किया था, ये होनों (प्रक्षिक्य) आसार्य महाप्रतापी हुए थे, यहाँ तक कि देवलोक होने के बाद सी इन्हों ने अनेक बगतकार दिखलाये थे और वर्तमान में भी थे अपने मक्तों को प्रसास बमतकार दिखला रहे हैं, इन की महिमा का प्रसास प्रमाण यही है कि—ऐसा कोई भी प्राचीन जैन बत्ती वाला नवर नहीं है जिल में इन के बरण का स्थापन न किया गया हो अर्थात सब ही प्राचीन नगरों में, मन्दिरों और बगीचों में इन के बरण विराजमान हैं और दादा जी के नाम से निक्षात हैं, जब शीधनचन्त्रसूरि जी महाराज का दिही में सर्ववास हुआ था तब शासकों ने उन की रत्यों को दिश्री के माणिक जीक में विसाई छेने के लिये रस्वी थी, जस समय यह चमतकार हुआ कि नहीं से रत्यी नहीं छठी, इस चमतकार को देख कर बादशाह में वहीं पर दान देने का हुक्म दे दिया तव श्रीसङ्घ ने वहीं पर उन को दान दे दिया, पुरानी दिश्री में वहीं पर अभी तक उन के चरण मौजूद हैं, यदि इन का विश्रेष वर्णन देखवा हो तो उपाध्याय श्री क्रमा फरस्याण जी गणी (जो कि गत सतान्दी में महान विद्वान हो गये हैं और जिन्हों ने मूल श्रीपालकरिय पर संस्कृतरीका बनाई. है तथा आत्मप्रवीध आदि अनेक प्रन्य संस्कृत में रचे हैं) के वनाये हुए कोटिक- एन्छ गुर्वाविक जामक संस्कृतप्रन्य में देख छेवा चाहिये ॥

दोनों माई बहुत प्रसन्न हुए और बहुत सा द्रव्य छाकर आचार्य महाराज के सामने रख कर मेंट करने छगे, तब महाराज ने कहा कि—''यह हमारे काम का नहीं है, अतः हम इसे नहीं छेंगे, तुम द्यामूळ धर्म के उपदेश को छुनो तथा उस का प्रहण करो कि जिस से तुम्हारा उमय छोक में कल्याण हो" महाराज के इस बचन को छुन कर दोनों माइयों ने द्यामूळ जैनधर्म का प्रहण किया तथा आचार्य महाराज थोड़े दिनों के बाद वहाँ से अन्यत्र विहार कर गये, बस उसी धर्म के प्रभाव से दूगड़ और स्माइ दोनों माहयों का परिवार बहुत बढ़ा (क्यों न वहे—'यतो धर्मस्तो जयः' क्या यह वाक्य अन्यथा हो सकता है) तथा बड़े माई दुगड़ की औछादवाले छोग दूगड़ और छोटे माई स्माइ की औछादवाले छोग दूगड़ और छोटे माई स्माइ की औछादवाले छोग स्माइ छोन स्माइ की

सत्रहवीं संख्या—मोहीवाल, आलावत, पालावत, दूधेडिया गोत्र ॥

विक्रमसंवत् १२२१ (एक इजार दो सौ इक्कीस) में मोहीमामाधीश पँवार राज-पूत नारायण को नरमणि मण्डित मालस्थल खोडिया क्षेत्रपाल सेवित नैनाचार्य श्री जिन-चन्द्र सूरि जी महाराज ने प्रतिबोध देकर उस का माहाजन वंश और मोहीवाल गीत्र स्थापित किया, नारायण के सोलह पुत्र थे अतः मोहीबाल गीत्र में से निझलिखित सोलह शालायें हुई:—

१—मोहीवाल । २—आलावत । ३—पालावत । ४—दूषेडिया । ५—गोय । ६—थरावत । ७—खुद्धा । ८—टौडरवाल । ९—माघोटिया । १०—वमी । ११—गिडिया । १२—गोड़-वाल्या । १३—पटवा । १४—बीरीवत । १५—गांग । १६—गोध ॥

अठारहवीं संख्या—बोथरा (बोहित्थरा), फोफलिया बच्छावतादि ९ खाँपे ॥

श्री कालोर महादुर्गाधिप देवड़ावंशीय महाराजा श्री सामन्त सी जी थे तथा उन के दो रानियाँ थी, जिन के सगर, वीरमदे और कान्हड़नामक तीन पुत्र और ऊँमा नामक एक पुत्री थी, सामन्त सी जी के पाट पर खित होकर उन का दूसरा पुत्र वीरमदे जालो-राधिप हुआ तथा सगर नामक बड़ा पुत्र देखवाड़े में आकर वहाँ का खामी हुआ, इस का कारण यह था कि सगर की माता देखवाड़े के झाला जात राना भीमसिंह की पुत्री थी और वह किसी कारण से अपने पुत्र सगर को लेकर अपने पीहर में जाकर (पिता के यहाँ) रही थी अतः सगर अपने नाना के घर में ही बड़ा हुआ था, जब सगर युवावस्था

१-दोहा—गिरि अठार आबू घणी, गढ़ जालोर दुरंग ॥ तिहाँ सामन्त्र भी देवडो, अमठी माण अमंग ॥ १ ॥

२-यह पिइल राजा को व्याही गई थी ॥

को पास हुआ उस समय सगर का नाना भीमसिंह (जो कि अपुत्र था) मृत्यु को प्राप्त हो गया तथा गरने के समय वह सगर को अपने पाट पर स्थापित कर देने का प्रबंध कर गया, वस इसी लिये सगर १४० मामों के सिंहत देवलवाड़े का राजा हुआ और उसी दिन से वह राना फहकाने लगा, उस का श्रेष्ठ तपस्तेज चारों ओर फैल गया, उस समय चिचौड़ के राना रतन सी पर मालवपति मुहम्मद बादशाह की फीज चढ़ आई तब राना रतन सी ने सगर को शूरवीर जान कर उस से अपनी सहायता करने के लिये कहला मेजा, उन की खबर की पाते ही सगर चतुरिक्तणी (हाथी, घोड़े, स्थ और पैदलों से युक्त) सेना को सजवा कर राना रतनसी की सहायता में पहुँच गया और ग्रहम्मद बाद-शाह से युद्ध किया, बादशाह उस के आगे न ठहर सका अर्थात् हार कर माग गया, तब मालब देश को सगर ने अपने कड़ों में कर लिया तथा आन और दुहाई को फेर कर भालने का मालिक हो गया, कुछ समय के बाद गुजरात के मालिक बहिलीम जात अह-मद बादशाह ने राना सगर से यह कहला भेजा कि-"तू मुझ को सलामी दे और इमारी नौकरी को मज़्र कर नहीं तो मालव देश को मैं तुझ से छीन छंगा" सगर ने इस बात को खीकार नहीं किया, इस का परिणाम यह हुआ कि-सगर और बादशाह में परस्पर घोर युद्ध हुआ, जालिरकार बादशाह हार कर माग गया और सगर ने सब गुजरात को अपने आधीन कर लिया अर्थात् राना सगर गालव और गुजरात देश का गालिक हो गया, कुछ समय के बाद पुनः किसी कारण से गोरी बादशाह और राना रतन सी में परसर में विरोध उत्पन्न हो गया और बादशाह चित्तौड़ पर चढ़ आया, उस समय राना जी ने शरवीर सगर को बुलाया और सगर ने आकर उन दोनों का आपस में मेल करा दिया तथा नादशाह से दण्ड छेकर उस ने माछन और गुजरात देश को पुनः नादशाह को वापिस दे दिया, उस समय राना जी ने सगर की इस बुद्धिमचा को देख कर उसे मझी-श्वर का पद दिया और वह (सगर) देवळवाड़े में रहने कगा तथा उस ने अपनी बुद्धि-मचा से कई एक शरवीरता के काम कर दिख्छाये।

सगर के बोहित्य, गङ्गदास और जयसिंह नामक तीन पुत्र थे, इन में से सगर के पाट पर उस का बोहित्य नामक ज्येष्ठ पुत्र मन्नीश्वर होकर देवलवाड़े में रहने लगा, यह भी अपने पिता के समान बड़ा श्रूरवीर तथा बुद्धिमान् था।

बोहित्थ की मार्था वहरंगदे थी, जिस के श्रीकरण, जेसो, जयमछ, नान्हा, गीमसिंह, पदमसिंह, सोम जी और पुण्यपाल नामक खाठ पुत्र वे और पद्मा बाई नामक एक पुत्री थी, इन में से सब से बड़े श्रीकरण के समघर, वीरदास, हरिदास और क्षणण नामक चार पुत्र हुए।

१-बोहिस्य ने नित्तीड के न्याना संबग्धक की सहामता में उपस्थित हो कर बादशाह से युद्ध किया था तथा उसे मंगा-दिया था परन्तु उस युद्ध में म्यारह सी सोनहरी बंध से काम आया था ॥

यह (श्रीकरण) बड़ा शूर्वीर था, इस ने अपनी मुजाओं के वरू से मच्छेन्द्रगढ़ को फतह किया था, एक समय का प्रसंग है कि-बादशाह का खजाना कही को जा रहा था उस को राना श्रीकरण ने छट लिया, चत्र इस बात की खबर वादशाह को पहुँची तब उस ने अपनी फीज को छड़ने के छिये मच्छेंद्रगढ पर मेज दिया. राना श्रीकरण बादगाह की उस फीज से खब ही छड़ा परन्त आखिरकार वह अपना शूरवीरत्व दिखला कर उसी युद्ध में काम आया, राना के काम आ जाने से इधर तो नादशाह की फौज ने मच्छेन्द्रगढ पर अपना कला कर लिया उघर राना श्रीकरण को काम आया हुआ छुन कर राना की स्त्री रतनादे कुछ द्रव्य (जितना साथ में चल सका) और समघर आदि चारों पत्रों को छेकर अपने पीहर (खेड़ीपुर) को चछी गई और वहीं रहने छगी तथा अपने पत्रों को अनेक प्रकार की कला और विद्या को सिखला कर निप्रण कर दिया, विक्रमसंबत् १२२३ (एक हजार तीन सौ तेईस) के आषाड विव र प्रष्य नक्षत्र ग्ररु-बार को खरतरगच्छाधिपति जैनाचार्य श्री जिनेश्वर सुरि जी महाराज विहार करते हुए वहाँ (खेडीपर में) पथारे. नगर में प्रवेश करने के समय महाराज को बहुत उत्तम शकन हुआ, उस को देख कर सरिजी ने अपने साथ के साधुओं से कहा कि-"इस नगर में अवश्य जिनभर्म का उद्योत होगा" चौमासा अति समीप या इस लिये आचार्य महाराज उसी खेडीपर में ठहर गये और वहीं चौमासे भर रहे, एक दिन रात्रि में पद्मावती देवी ने गुरु से कहा कि-"पात:काछ बोहित्य के पोते चार राजकुमार व्याख्यान के समय आर्वेगे और मतिबोध को प्राप्त होंगे" निदान ऐसा ही हुआ कि उस के दूसरे दिन मातःकाल जब आचार्य महाराज दया के विषय में धर्मीपदेश कर रहे थे उसी समय समधर आदि चारों राजपुत्र वहाँ आये और नमन वन्दन आदि शिष्टाचार कर धर्मोपदेश को झुनने छगे तथा उसी के प्रमाव से प्रतिबोध को प्राप्त हुए अर्थात् आचार्य महाराज से उन्हों ने शास्त्रोक्त विधि से श्रावक के बारह वर्तों का ग्रहण किया तथा आचार्य महाराज ने उन का माहाजन वंश और बोहित्यरा गोत्र खापित किया, इस के पश्चात उन्हों ने धर्मकायों में द्रव्य लगाना ग्ररू किया तथा उक्त चारों माई संघ निकाल कर और आचार्य महाराज को साथ लेकर सिद्धिगिरि की यात्रा को गये तथा मार्ग में प्रतिस्थान में उन्हों ने साधर्मी माइयों को एक मोहर और सुपारियों से भरा हुआ एक शाल लाहन में दिया. इस से लोग इन को फोफलिया कहने लगे, वस तब ही से बोहित्यरा गोत्र में से फोफलिया शाला प्रकट हुई, इस यात्रा में उन्हों ने एक करोड़ द्रव्य छगाया, जन छौट कर घर पर आये तब सब ने मिल कर समघर को संघपति का पद दिया।

समधर के तेजपाल नामक एक पुत्र था, पिता समधर खर्य विद्वान् या अतः उसने

१-इसी नाम का अपश्रुषा बोबरा हुआ है ॥

अपने पुत्र तेजपाळ को भी छः वर्ष की अवस्या से ही विद्या का पढाना ग्रुख किया और नीति के कथन के अनुसार दश वर्ष तक उस से विद्यान्यास में उत्तम परिश्रम करवाया, तेजपाल की बुद्धि बहुत ही तेज भी अतः वह विद्या में खूब निपुण हो गया तथा पिता के सामने ही गृहस्थाश्रम का सब काम करने छगा, उस की बुद्धि को देख कर बढ़े र नामी रईस चिकत होने छगे और अनेक तरह की बार्ते करने छगे अर्थात् कोई कहता था कि-"जिस के माता पिता विद्वान हैं उन की सन्तित विद्वान क्यों न हो" और कोई कहता था कि-"तेजपाल के पिता ने अपने लोगों के समान पत्र का लाड़ नहीं किया किन्त उस ने पत्र को विद्या सिखला कर उसे सुशोगित करना ही परम छाड समझा" इत्यादि. तात्पर्य यह है कि-तेजपाल की बुद्धि की चतुराई को देख कर रईस लोग उस के विषय में अनेक प्रकार की बातें करने छगे, दैवयोग से समधर देवछोक को प्राप्त हो गया. उस समय तेजपाल की अवस्था लगमग पन्नीस वर्ष के थी. पाटकगण समझ सकते हैं कि-विद्यासहित बुद्धि और द्रव्य, ये दोनों एक जगह पर हों तो फिर कहना ही क्या है अर्थात सोना और सुगन्य इसी का नाम है, अस्त तेजपाल ने गुजरात के राजा को बहुत सा द्रव्य देकर देश की सुकाते के लिया अर्थात् वह पाटन का मालिक वन गया और उस ने विक्रमसंवत् १३७७ (एक हजार तीन सौ सतहत्तर) में ज्येष्ठ विद एका-दशी के दिन तीन लाख रुपये लगा कर दादा साहिन जैनाचार्य श्री जिनकुशल सरि जी महाराज का नन्दी (पाट) महोत्सव पाटन नगर में किया तथा उक्त महाराज की साथ में लेकर क्षेत्रक्षय का संघ निकालों और बहुत सा द्रव्य शुम मार्ग में लगाया, पीछे सब संघ ने मिळ कर माला पहिना कर तेजपाल को संघपति का पद दिया. तेजपाल ने मी सोने की एक मोहर, एक बाली और पाँच सेर का एक छत्त मितगृह में छावण बाँटा, इस प्रकार यह अनेक शुम कार्यों को करता रहा और अन्त में अपने पुत्र वीस्हा जी की घर का भार सौंप कर अनञ्चन कर खर्ग को पाप्त हुआ, तात्पर्य यह है कि तेजपाल की मृत्यु के पश्चात् उस के पाट पर उस का पुत्र वील्हा जी बैठा !

२-बोजुजय पर आचार्य महाराज ने मानतुग नामक खरतर वसी के मन्दिर में सत्ताहैस अगुल के परिमाण में श्री आदिनाय विस्व की प्रतिष्ठा की थी ॥

१-इन का जन्मे छाजेड गोत्र में निक्रमसंबत् १३३० में हुआ, संबत् १३४७ में दीक्षा हुई तथा संवत १३७७ में ये पाटन में सूरिपद पर विराजे, ये भी जैनाचार्य बड़े प्रतापी हो गये है, इन्हों ने अनेक सङ्गों का उपकार किया है, संवत १३८९ में फागुन विंद ३० (अमावास्या) के दिव वे देशाउर नगर में आठ दिनों तक अनशन कर खर्ग को प्राप्त हुए थे, इन्हों ने खर्गप्राप्ति के बाद सी अपने अनेक भर्जी को दर्शन दिया तथा अब भी ये अक्तजनों के हावराह्न्यूर (काम पबने पर शीघ्र ही उपस्थित होकर सहायता देने वाछे) हैं, इन के चरण आयः सब नगरों में दादाजी के नाम से मन्दिरों तथा वर्गाचों में विराजसान हैं तथा प्रति सोमवार तथा पूर्णमासी को क्रोग उन का दर्शन करने के लिये जाते हैं ॥

वील्हा जी के कड़्वा और घरण नामक दो पुत्र हुए, वील्हा जी ने भी अपने पिता (तेजपाल) के समान अनेक धर्मकुँत्य किये।

वीरुहा जी की मृत्यु के पश्चात् उन के पाट पर उन का वड़ा पुत्र कड़्वा वैठा, इस का नाम तो अलवत्ता कड़्वा था परन्तु वास्तव में यह परिणाम में अमृत के समान मीठा निकला ।

किसी समय का प्रसंग है कि-यह मेवाडदेशस्थ वित्तीहगढ को देखने के लिये गया, उस का आगमन धुन कर चित्तौड़ के राना जी ने उस का बहुत सम्मान किया, थोडे दिनों के बाद माँडवगढ का बादशाह किसी कारण से फीज छेकर चित्तीड़गढ पर पढ आया. इस बात को जान कर सब छोग अत्यन्त व्याकुछ होने छगे, उस समय राना जी ने कहूवा जी से कहा कि-"पहिले भी तुम्हारे पुरुषाओं ने हमारे पुरुषाओं के अनेक बढ़े २ काम सुधारे है इस लिये अपने पूर्वजों का अनुकरण कर आप भी इस समय हमारे इस काम को सुवारो" यह सुन कर कहूवा जी ने वादशाह के पास जा कर अपनी बुद्धि-मत्ता से उसे समझा कर परस्पर में मेळ करा दिया और बादशाह की सेना को बापिस छौटा दिया. इस बात से नगरवासी जन बहुत प्रसन्न हुए और राना जी ने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर बहुत से बोड़े आदि ईनाम में देकर कहूवा जी को अपना मन्त्रीश्वर (प्रधान मन्त्री) बना दिया, उक्त पद को पाकर कडूवा जी ने अपने सद्वर्तीव से नहाँ उत्तम यश प्राप्त किया, कुछ दिनों के बाद कहवा जी राना जी की आजा छेकर अणहिल पत्तन में गये, वहां भी गुजरात के राजा ने इन का बड़ा सम्मान किया तथा इन के गुणों से द्वष्ट होकर पाटन इन्हें सीप दिया, कडूवा जी ने अपने कर्चन्य को विचार सात क्षेत्रों में वहत सा द्रव्य लगाया. गुजरात देश में जीवहिंसा को वन्द करवा दिया तथा विक्रम संवत १४३२ (एक हजार चार सौ वत्तीस) के फागुन बदि छठ के दिन खरतरगच्छाधि-पति जैनाचार्य श्री जिनराज सूरि जी महाराज का नन्दी (पाट) महोत्सव सवा लाख रुपये लगा कर किया, इस के सिवाय इन्हों ने श्रेत्रुखय का संघ मी निकाला और मार्ग में एक मोहर, एक थाल और पाँच सेर का एक मगदिया लड्डू, इन का घर दीठ लावण अपने साधमी माहयों को बाँटा, ऐसा करने से गुजरात यर में उन की अत्यन्त कीर्ति फैल गई, सात क्षेत्रों में भी बहुत सा द्रव्य लगाया, तालर्य यह है कि इन्हों ने यथाशक्ति जिनशासन का अच्छा उद्योत किया, अन्त में अनुश्रन आराधन कर थे स्वर्गवास को प्राप्त हुए ।

कहूना जी से चौथी पीड़ी में जेसल जी हुए, उन के वच्छराज, देवराज और हंस-

⁹⁻श्री शेत्रुजय गिरनार का संघ निकाला तथा मार्ग में एक मोहर, एक बाल और पॉच सेर का एक मगदिया लड्डू, इन की आवण प्रतियह में सावमीं माहयों को बॉटी तथा सात क्षेत्रों में मी बहुत सा हज्य लगाया ॥

राज नामक तीन पुत्र हुए, इन में से ज्येष्ठ पुत्र बच्छराज जी अपने माइयों को साथ छेकर मण्डोवर नगर में राव श्री रिड्मल जी के पास जा रहे और राव रिड्मल जी ने बच्छराज जी की बुद्धि के अद्भुत चमत्कार को देख कर उन्हें अपना मन्त्री नियत कर लिया, बस बच्छराज जी भी मन्त्री बन कर उसी दिन से राजकार्य के सब व्यवहार को यथोचित रीति से करने छगे।

कुछ समय के बाद चित्तीह के राना कुम्मकरण में तथा राव रिहमल जी के पुत्र जोघा: जी में किसी कारण से आपस में वैर बँघ गया, उस के पीछे राव रिहमल जी और मन्नी बच्छराज जी राना कुम्मकरण के पास चित्तीह में मिलने के लिये गये, यद्यपि वहां जाने से इन दोनों से राना जी मिले खुले तो सही परन्तु उन (राना जी) के मन में कपट या इस लिये उन्हों ने छल कर के राव रिहमल जी को घोखा देकर मार ढाला, मन्त्री बच्छराज इस सर्व व्यवहार को जान कर छलवल से वहाँ से निकल कर मण्डोर में आ गये।

राव रिड़मल जी की सृत्यु हो जाने से उन के पुत्र जोधा जी उन के पाटनसीन हुए क्योर उन्हों ने मन्त्री बच्छराज को सम्मान देकर पूर्ववत् ही उन्हें मन्त्री रस कर राजकाज सौप विया, जोधा जी ने अपनी वीरता के कारण पूर्व बैर के हेतु राना के देश को उजाड़ कर दिया और अन्त में राना को भी अपने वश में कर लिया, राव जोधा जी के जो नर्व-रंग वे रानी थी उस रजगमी की कोख से विकम (वीका जी) और बीदा नामक दो पुत्र-रज हुए तथा दूसरी रानी जसमादे नामक हाड़ी थी, उस के नीवा, सूजा और सातल नामक तीन पुत्र हुए, बीका जी छोटी अवस्था में ही बड़े चक्कल और दुद्धिमान थे इस लिये उन के पराकम तेज और बुद्धि को देख कर हाड़ी रानी ने मन में यह विचार कर कि बीका की विद्यमानता में हमारे पुत्र को राज नहीं मिलेगा, अनेक युक्तियों से राव जोधा जी को बश में कर उन के कान मर दिये, राव जोधा जी बड़े बुद्धिमान थे अतः उन्हों ने थोड़े ही में रानी के अमिप्राय को अच्छे प्रकार से मन में समझ लिया, एक दिन दर्वार में माई बेटे और सर्वार उपस्थित थे, इतने ही में कुँवर बीका जी भी अन्दर से आ गये और सुजरा कर अपने काका कान्यल जी के पास बैठ गये, दर्वार में राज्यनीति के विषय में अनेक बातें होने लगीं, उस समय अवसर पाकर राव जोधा जी ने यह कहा

⁹⁻वच्छावतों के कुछ के इतिहास का एक रास बना हुआ है जो कि बीकानेर के बढ़े उपाध्रय (उपासरे) में महिमामिक झानमण्डार में विध्यान है, उसी के अनुसार यह छेस छिसा गया है, इस के सिवाय-मारवाडी आपा में जिसा हुआ एक छेस भी इसी विषय का बीकानेरिनवासी उपाध्याय थी पण्डित मोहनलाल जी गणी ने बस्बई में हम को प्रदान किया था, वह छेस भी प्वाँक रास से प्रायः मिलता हुआ ही है, इस छेस्न के प्राप्त होने से हम को उक्त निषय की और भी दृषता हो गई, अतः हम उक्त महोदय को इस छुपा का अन्त करण से धन्यवाद देते हैं॥

२-यह जांगळ के सांखलों की पुत्री थी।

कि-"जो अपनी मुजा के वल से पृथ्वी को लेकर उस का भोग करे वही संसार में सुपुत्र कहलाता है, किन्तु पिता का राज्य पाकर उस का मोग करने से संसार में पुत्र की कीर्ति नहीं होती है" गरी समा में कहे हुए पिता के उक्त वचन कुँवर वीका जी के हृदय में सुनते ही अंकित हो गये, सत्य है-प्रमावशाली पुरुष किसी की अवहेलना को कमी नहीं सह सकता है. बस वही दशा कुँवर बीका जी की हुई, वस फिर अपने काका कान्यल-बी तथा मन्त्री बच्छेराज आदि कतिपय खेही बनों को साथ चलने के लिये तैयार करं और पिता की आजा लेकर वे जोधपुर से रवाना हुए, ज्ञाम को मण्डीर में पहुँचे और वहाँ गोरे भैरव जी का दर्शन कर प्रार्थना की कि-"महाराज ! अब आप का दरीन आप के हक्स से होगा" इस प्रकार प्रार्थना कर रात गर मण्डोर में रहे और ज्यों ही गनर-दम उठे त्यों ही भैरन नी की मूर्ति बहुली में मिली, उस मूर्ति की देखते ही सायवाले बोले कि-"लोगो रे ! जीतो. हम आप के साथ चलेंगे और आप का राज्य बढेगा" बीका जी भैरव जी की उस मूर्ति को छेकर शीप्र ही वहाँ से खाना हुए और काँउनी शाम के मोमियों को वश में कर वहाँ अपनी आन दहाई फेर दी तथा वहीं एक उत्तम जगह को देख कर तालाव के ऊपर गोरे जी की सूर्ति को स्थापित कर आप भी स्थित हो गये, यही पर राव बीका जी महाराज का राज्यामिषेक हुआ, इस के पीछे अधीत संबद १५४१ (एक हजार पाँच सौ इकतालीस) में राव बीका जी ने राती घाटी पर

9-राव बीका जी महाराज का जीवनचरित्र मुशी देवीप्रसाद जी कायस्य मुसिफ जोधपुर ने सबत् 1940 में छपवाया है, उस में उन्हों ने इस बात को इस प्रकार से किसा है कि-"एक दिन जोषा जी दरवार में बैठे थे, भाई बेटे और सब सरदार हाजिर थे, कुँबर बीका जी भी अदर से आये और मुजरा कर के अपने काक काषक जी के पास बैठ गये और कानों में उन से कुछ बातें करने लगे, जोषा जी ने यह देख कर कहा कि-आज बचा मतीजे में क्या कानाफुसी हो रही है, क्या कोई नया मुल्क फतेह करने की सज़ाद है यह मुनते ही काषल जी ने उठ कर मुजरा किया और कहा कि-मेरी शरम तो जब ही रहेगी कि जब कोई नया मुक्क फतह करना-अब बीका जी और काषळ जी ने जाने की तयारी की तो मण्डला जी और वीदा जी वगेरा राव जी के साई वेटों ने भी राव जी से अरज की कि हम बीका जी को आप की जगह समझते हैं सो हम भी उन के साथ जावेगे, राव जी ने कहा अच्छा और इतने राजवी बीका जी के साथ हुये-

१-काका काथल जी।	६—माई जोगायत जी।	१ १—कोठारी चोषमळ ।
२ - म रुपा जी।	७- " वीदा जी ।	१२-बच्छावत वरसिंघ ।
३- " साहण जी।	८–साखला नापा जी ।	१३-प्रोयत वीकमसी ।
४- "मडला जी।	९-पटिहार वेला जी।	१४-साहुकार राठी साला जी"।
५- " नाथू जी।	१०-वेद बाला वाखण बी।	•

२-परन्तु मुंशी देवीप्रसादजी ने संवत् १५४२ लिखा है ॥

किला बना कर एक नगर बसा दिया और उस का नाम बीकानेर रक्खा, राव बीका बी महाराजका यश खुन कर उक्त नगर में ओसवाल और महेश्वरी वैश्व आहि बड़े २ धनाख साहकार आ २ कर वसने लगे, इस प्रकार उक्त नगर में राव बीका ली महाराज के पुण्य-प्रमाव से दिनों दिन आवादी बढ़ती गई।

मन्त्री वच्छराज ने भी नीकानेर के पास वच्छासर नामक एक ग्राम वसाया, कुछ कार के पश्चात् मन्त्री वच्छराज जी को शेनुझय की यात्रा करने का मनोरथ उत्पन्न हुआ, अतः उन्हों ने संघ निकाल कर शेनुझय और गिरनार आदि तीथों की यात्रा की, मार्ग में साधमीं माइयों को प्रतिगृह में एक मोहर, एक बाल और एक छड्डू का लावण बाँटा तथा संघपति की पदवी प्राप्त की और फिर आनन्द के साथ वीकानेर में वापिस आ गये।

वर्च्छराज मन्त्री के-करमसी, वरसिंह, रत्ती और नरसिंह नामक चार पुत्र हुए और बच्छराज के छोटे माई देवराज के-देसू, तेजा और भूण नामक तीन पुत्र हुए।

राव श्री खणकरण जी महाराज ने वच्छावत करम सी को अपना मन्त्री बनाया, मुहते करमसी ने अपने नाम से करमसीसर नामक श्राम वसाया, फिर बहुत से स्थानों का संघ बुळा कर तथा बहुत सा द्रव्य खर्च कर खरतरगच्छाचार्य श्री जिनहंस स्रीर महाराज का पाट महोत्सव किया, एवं विक्रमसंवत् १५७० में बीकानेर नगर में नेमिनाथ खामी का एक बड़ा मन्दिर बनवाया जो कि धर्मसान्मरूप अभी तक मौजूद है, इस के सिवाय इन्हों ने तीर्थयात्रा के लिये संघ निकाला तथा शेनुक्रय गिरनार और आव् आदि तीर्थों की यात्रा की तथा मार्ग में एक मोहर, एक बाल और एक लड्ड् का मिन्गृह में साधर्मी माहयों को लावण बाँटा और आनंद के साथ बीकानेर आ गये।

े राव श्री ऋणकरण जी के-पाटनशीन राव श्री जैतसी जी हुए, इन्हों ने मुहते करें-मसी के छोटे माई बरसिंह को अपना मन्नी नियत किया।

वरसिंह के मेघराज, नगराज, अमरसी, भोजराज, दुगरेंसी और हरराज नामक छः पुत्र हुए। इन के द्वितीय पुत्र नगराज के संग्रामसिंह नामक पुत्र हुआ और संग्रामसिंह के कर्म-चन्द्र नामक पुत्र हुआ।

वरसिंह के काल को पास होने से राव श्री जैतसी जी ने उन के स्थानपर उन के दितीय पुत्र नगराज को नियत किया।

९-राज्यमुत्रो बच्छराज की औलादवाले लोग बच्छावत कहलाये ॥

२-द्सू जी की औलादनाले लोग इसवाणी कड्डाये ॥

३-यह नारनील के लोदी राबीखान के साथ बुद कर उसी बुद में काम आया ॥

४-इंगरसी की औलादवाछे खोग हुंगराणी कहलाये ॥

५-एक रेख में ऐसा मी लिखा है कि अमरसी जी के पुत्र सैत्रामसिंह जी हुए II

ŀ

. मन्त्री नगराज को चाँपानेर के बादशाह गुंदफर की सेवा में किसी कारण से रहना पड़ा और उन्हों ने बादशाह को अपनी, चतुराई से खुश करके अपने मालिक की पूरी सेवा बजाई तथा बादशाह की आजा लेकर उन्हों ने श्री शेशुक्षय की यात्रा की और वहाँ भण्डार की गड़बड़ को देख कर शेशुक्षय गढ़ की कूँची अपने हाथ में ले ली, मार्ग में एक रुपया, एक थाल और पाँच सेर का एक लड़्दू, इन का प्रतिगृह में साधमी माइयों को मितस्थान में लावण बाँटते हुए तथा गिरनार और आबू तीर्थ को मेंट करते हुए ये बीकानेर में आ गये।

संवत् १५८२ में जब कि दुर्भिक्ष पड़ा उस समय इन्हों ने शत्रुकार (सदावर्ष) दिया, जिस में तीन छाल पिरोजों का व्यय किया।

एक दिन इन के मन में शयन करने के समय देरावर नगर में जाकर दादा जी श्री जिनक्रश्रेश सूरि जी महाराज के दर्शन करने की अमिलाबा हुई परन्तु मन में यह भी विचार उत्पन्न हुआ कि देरावर का मार्ग बहुत कठिन है, पीने के लिये जलतक भी साथ में छेना पहेगा, साथ में संघ के रहने से साधर्मी माई भी होंगे, उन को किसी प्रकार की तक्रजीफ होना ठीक नहीं है, इस लिये सब प्रवंध उत्तम होना चाहिये, इत्यादि अनेक विचार मन में होते रहे, पीछे निद्रा आ गई, पिछठी रात्रि में साम में श्री गुरुदेव का दर्शन हुआ तथा यह आवाज हुई कि-"हमारा स्तम्म गड़ाले में करा के वहाँ की यात्रा ंकर, तेरी यात्रा मान छेंगे" आहा ! देखो मक्त जनों की मनोकामना किस प्रकार पूर्ण होती है. बास्तव में नीतिशास्त्र का यह बचन बिलकुल सत्य है कि-"नहीं देव पाषाण में, दारु मुत्तिका माँहि ॥ देव भाव गाँही वसे. भावमूळ सब माँहि" ॥ १ ॥ अर्थात न तो देव परथर में है, न छकड़ी और मिट्टी में है, किन्तु देव केवल अपने माव में है, तात्पर्य यह है कि-जिस देवपर अपना सचा माव होगा वैसा ही फल वह देव अपनी शक्ति के अनुसार दे सकेगा, इस लिये सब में माव ही मूल (कारण) समझना चाहिये, निदान मुहते नगराज ने स्वप्न के वाक्य के अनुसार खम्म कराया और विक्रम संवत् १५८३ में यात्रा की, उन की यात्रा के समाचार को छुन कर गुरुदेव का दर्शन करने के लिये बहुत दर २ के यात्री जन आने छगे और उन की वह यात्रा सानन्द पूरी हुई।

कुछ कार के पश्चात् इन्हों ने अपने नाम से नगासर नामक ग्राम वसाया ।

राव श्री कल्याणमळ जी महाराज ने मन्त्री नगराज के पुत्र संमामसिंह की अपना राज्यमन्त्री नियत किया, संमामसिंह ने सरतरगच्छाचार्य श्री जिनमाणिक्य सूरि महा-राज को साथ में ठेकर शेनुझय आदि तीर्थों की यात्रा के लिये संघ निकाला तथा शेनु-झय, गिरनार और आबू आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए तथा मार्ग में प्रतिगृह में साधमी साहयों को एक रुपया, एक शाल और एक छहू, इन का लावण बाँटते हुए चिचौड़गढ़ में आये, वहाँ राना श्री उदयसिंह जी ने इन का बहुत मान सम्मान किया. वहाँ से रवाना हो कर जगह २ सम्मान पाते हुए ये आनन्द के साथ बीकानेर में आ गये, इन के सब ज्यवहार से राव श्री कल्याणमळ जी महाराज इनपर बड़े प्रसन्न हुए।

इन (मुहता संश्रामसिंह जी) के कर्मचन्द नामक एक वड़ा बुद्धिमान् पुत्र हुवा, जिस को बीकानेर महाराज श्री रायसिंह जी ने अपना मन्त्री नियत किया।

राज्यमन्त्री वच्छावत कर्मचन्द मुहते ने किया के उद्धारी अर्थात् त्यागी वैरागी खर-तरगच्छाचार्य श्री जिनचन्द्र सूरि जी महाराज के आगमन की वधाई को सुनानेवाले याचकों को बहुत सा द्रैन्थमदान किया और बड़े ठाठ से महाराज को बीकानेर में काये, उन के रहने के लिये अपने घोड़ों की घुड़कील जो कि नवीन बनवा कर तैयार करवाई थी मदान की अर्थात् उस में महाराज को ठहराया और विनित्त कर संवत् १६२५ का चतुर्मास करवाया, उन से विधिपूर्वक अगवतीसूत्र को सुना, चतुर्मास के बाद आचार्य महाराज गुजरात की तरफ विहार कर गये।

कुछ दिनों के बाद कारणवश्च वीकानेरमहाराज की तरफ से मन्त्री कर्मचन्द का अकबर बादशाह के पास ठाहौर नगर में जाना हुआ, वहीं का प्रसंग है कि—एक दिन जब आनन्द में बैठे हुए अनेक छोगों का वार्चाठाप हो रहा था उस समय अकबर बादशाह ने राज्यमंत्री कर्मचन्द से पूछा कि—"इस बख्त अविख्या कानी जैन में कीन है" इस के उत्तर में कर्मचन्द ने कहा कि—जैनाचार्य श्री जिनचन्द्र सूरि हैं, जो कि इस समय गुजरात देश में घमोंपदेश करते हुए विचरते हैं" इस बात को छन कर बादशाह ने आचार्य महाराज के पधारने के छिये छाहौर नगर में अपने आदिमियों को भेज कर उन से बहुत आग्रह किया, अतः उक्त आचार्य महाराज विहार करते हुए कुछ समय में छाहौर नगर में पधारे, महाराज के वहाँ पधारने से जिनधर्म का जो कुछ उद्योत हुआ उस का वर्णन हम विस्तार के मय से यहां पर नहीं छिस सकते हैं, वहाँ का हाछ पाठकों को उपाध्याय श्री समयछन्दर जी गणी (जो कि बढ़े नामी विद्वान हो गये हैं) के बनाय हुए प्राचीन स्तीत्र आदि से विदित हो सकता है।

९—नव हाथी दीने नरेस मद सों अतवाङ ॥ नवे गाम बगसीस छोक खावै वित हाले ॥ १ ॥ ऐराकी सो पांच सुतो जग सगलो जाणे ॥ सवा कोड को दान मक्ष कवि सब बखाणे ॥ २ ॥ कोई राव न राणा करि सके संग्रासनन्दन तें किया ॥ श्री सुगत्रवान के नाम सु ज करमचद इतवा दिया ॥ ३ ॥

२-यह स्थान उस दिन से बड़े उपासरे के नाम से निख्यात है जो कि अब भी बीकानेर में रागडी के चौक में मौजूद है और बड़ा माननीय स्थान है, इस में प्राचीन इस्तक्षिखित प्रन्यों का एक जैन प्रस्तकालय भी है जो कि देखने के योग्य है।

३-पाठकों को उक्त निषय का कुछ नोघ हो जाने इस लिये उक्त खोत्र यहाँ पर लिखे देते हैं, देखिये-एकु संतन की मुख नाणि मुणी जिननद मुणिंद महन्त जती .। तप जप्प करे ग्रुव गुक्तर में प्रतिनोधत है भनि कू सुमती ॥ तब ही नित चाहन चूंप मद्दे समबसुन्दर के ग्रुव गण्डमती । पठाय पतिसाह

कर्मचन्द बच्छावत ने बीकानेर में जातिसम्बंधी भी अनेक रीति रिवाजों में संशोधन किया, वर्तमान में जो उक्त नगर में ओसवाओं में चार टके की छावण बाँटने की प्रथा जारी है उस का नियम भी किसी कारण से इन्ही (कर्मचन्द) ने बाँधा था।

मुसलमान समलाँ को जब सिरोही देश को खटा या उस समय अनुमान हज़ार वा श्यारह सो जिनप्रतिमार्थे भी सर्व धातु की मिली थीं, जिन को कर्मचन्द बच्छावत ने लाकर बीकानेर में श्री चिन्तामणि सामी के मन्दिर में तल्धर में मण्डार करके रस दिया था जो कि अब भी वहां मौजूद है और उपद्रवादि के समय में मण्डार से संघ की तरफ से इन प्रतिमाओं को निकाल कर अष्टाही महोत्सव किया जाता है तथा अन्त में जलयात्रा की जाती है, ऐसा करने से उपद्रवादि अवस्य शान्त हो जाता है, इस विषय का अनुभव प्राय: हो जुका है और यह बात वहां के छोगों में प्रसिद्ध भी है।

कर्मचंद बच्छावत ने उक्त (बीकानेर) नगर में पर्यूषण आदि सब पर्वों में कारू जनों (छहार, सूँथार और महर्स्ँ आदि) से सब कार्मों का कराना बंद करा दिया या सथा उन के छागे भी छगवा दिये थे और जीवहिंसा को बंद करवा दिया था।

पैतीस की साल में जब दुर्भिक्ष (काल) पड़ा था उस समय कर्मज़न्द ने बहुत से

अजब्ब को छाप बोलाए ग्रह गन्छ राज गती ॥ १ ॥ ए ज गुजर तें गुहराज चले विच में चोमास जालोट रहै । मेदिनी तट सडाण कियो ग्रह नागोर आदर मान कहै ॥ मारबाड रिणी ग्रह वन्द की तरसै परसै विश्व वेग वहै । इरस्यो सप लाहोर आय ग्रह पतिसाह अकव्यर पाव प्रहे ॥-२ ॥ ए ज साह अकव्यर क्ष्यर के ग्रह सरत देखत ही इरखे। इम जोग जती सिथ साथ नती सब ही वट दरहान के निरखे। (तीसरी गाथा के उत्तरार्व का प्रथम पाद ऊपरटी पक्त में न होने से नहीं लिख सके हैं)। तप जप्प वया धर्म घारण को जग कोइ नहीं इन के सरखे ॥ ३ ॥ गुरु अम्मृत वाणि छुणी चळतान ऐसा पतिसाड हकमा दिया । सब आलम माँहि अमार पलाय बोलाय गुरु फ़रमाण दिया ॥ जग जीव दया धर्म दाखिल ते जिनशासन में ज सोभाग लिया। समें सुदर के ग्रणवत ग्रस्त हम देखत हरपित होत हिया॥ ४॥ ए दा श्री जी ग्रह धर्म व्यान मिळे सळतान सकेम करका करी । ग्रह जीन प्रेम बाहत है जित अन्तर प्रति प्रतीति घरी ॥ कर्मचद ब्रकाय दियो फ़ुरमाण छोडाय संभाइत की मछरी । समे धुंदर के सब लोकन में ख खरतर गच्छ की ख्यात खरी ॥ ५ ॥ ए जु श्री जिनदत्त चरित्र पुणी पतिसाह भए गुरु राजी ये रे । उमराव सने कर जोड खरे पमणे आपणे मुख हाजी ये रे॥ जुम प्रधान का ए गुरु कू गिगड दू गिगड हु घु बाजीये रे। समय सुदर के गुरु गान गुरू पविसाह अकट्यर गाजीये रे॥ ६॥ ए चुन्यान विज्ञान करू गुण देख मेरा मन रींझीये जू। इसाउ को नदन एम सखै मानसिंह पटोघर कीजीए जू॥ पतिसाह इन्तर थायो संघ सूरि महाण मत्री सर बींबीएजू । जिल चद गुरू-जिण सिंह गुरू चद सर ज्यं प्रतापी ए जू ॥ ७ ॥ ए जू रीहड वश्च विभूषण हंस खरतर गच्छ ससह ससी । प्रतच्यो जिण साणिक सरि के पाट प्रमाकर ज्यू प्रणम् उकसी ॥ मन शुद्ध मकन्यर मानत है जग जागत है परतीत इसी । जिण चट मणिद चिर प्रतपो समें मंदर देत वसीस इसी ॥ ८ ॥ इति गुरुदेवाष्ट्रकं सम्पूर्णम् ॥

ĩ

ì

ï

;

ŧ

í

.;

.;

14-18

ď

.:

٠, اا लोगों का प्रतिपालन किया था और अपने सावर्गी माइयों को बारह महीनों (साल भर) तक अन्न दिया था तथा वृष्टि होने पर सब को मार्गव्यय तथा खेती आदि करने के लिये द्रव्य दे दे कर उन को अपने २ स्थान पर पहुँचा दिया था, सत्य है कि सचा साधर्मिवात्सल्य यही है।

विदित हो कि ओसवालों के गोत्रों के इतिहासों की वहियाँ महात्मी लोगों के पास थीं और वे छोग यजमानों से बहुत कुछ द्रव्य पाते थे (जैसे कि वर्तमान में भाट छोग यजमानों से द्रव्य पाते हैं), परन्तु न माछम कि उन पर कर्मचंद की क्यों कडी दृष्टि हुई जो उन्हों ने छल करके उन सब (महात्मा छोगों) को सचना दी कि-"आप सब लोग पर्धारे क्योंकि मुझ को खोसवालों के गोत्रों का वर्णन सनने की अलक्त अभिलापा है. आप कोगों के पधारने से मेरी उक्त अनिलापा पूर्ण होगी मैं इस क्रपा के बदले में आप लोगों का द्रव्यादि से यथायोग्य सत्कार करूँगा" बस इस बचन को यन कर सब महात्मा आ गये और इधर तो उन को कर्मचन्द ने योजन करने के लिये बिठला दिया, उधर उन के नौकरों ने सब बहियों को लेकर कर में डाल दिया, क्यों-कि कर्मचंद ने अपने नौकरों को पहिले ही से ऐसा करने के लिये आजा दे रक्सी थी, इस बात पर बचापे महात्मा लोग अप्रसन्न तो बहुत हुए परन्तु विचारे कर ही क्या सकते थे, क्योंकि कर्मचंद के प्रभाव के आगे उन का क्या वश चक सकता था, इस विधे है सब लाचार हो कर मन ही मन में दःशाप देते हुए चले गये, कर्मचंद भी उन की चेष्टा को देख कर उन से बहुत अमसन हुए, मानो उन के कोभानल में और भी पृत की आहुति दी, अस्तु-किसी विद्वान् ने सत्य ही कहा है कि-"न निर्मितः केन न चापि दृष्टः । श्रुतोऽपि नो हेममयः कुरङ्गः ॥ तथापि तृष्णा रच्चनन्दनस्य । विनाशकाले विपरीतबुद्धिः"॥ १॥ अर्थात् सुवर्णं के हरिण को न तो किसी ने कभी बनाया है भौर न उसे कमी किसी ने देखा वा छुना ही है (अर्थात् छुवर्ष के मुग का होना सर्वथा असम्भव है) परन्तु तो भी रामचन्द्र जी को उस के लेने की अभिकाश हुई (कि वे उसे पकड़ने के लिये उस के पीछे दौड़े) इस से सिद्ध होता है कि-विनाशकाल के आने पर मनुष्य की बुद्धि भी विपरीत हो जाती है ॥ १ ॥ वस यही वाक्य कर्मचन्द में भी चरि-तार्थे हुआ, देखो । जब तक इन के पूर्व पुण्य की प्रवलता रही तब तक तो इन्हों ने उस के प्रभाव से अठारह रजवाड़ों में मान पाया तथा इन की बुद्धिमत्ता पर प्रसन होकर वीकानेर महाराज श्री रायसिंह जी साहव से मांग कर बादशाह अकबर ने इन को अपने पास रक्खा, परन्तु जब विनाशकाल उपस्थित हुआ तब इन की बुद्धि भी विपरीत ही

१-ये महात्मा लोग खरतर गच्छ के थे, इन की बजमानी प्रेनत, जब भी विद्यमान है, इसी प्रकार से अम्यान्य गच्छों के महात्माओं के पास भी तत्सम्बद्यी गच्छवाकों की वज्ञावलियों है यह इस वे छुना है,॥

गई अर्थात् उधर तो इन्हों ने सासवालों के इतिहासों की वहियों को कुए में डलवा दिया (यह कार्य इन्हों ने हमारी समझ में बहुत ही तुरा किया) और इधर ये बीका-नेर महाराज श्री रायसिंह जी साहव के गी किसी कारण से अभीति के पात्र बन गैये, इस कार्य का परिणाम इन के लिये बहुत ही तुरा हुआ। अर्थात् इन की सम्पूर्ण विमूति नष्ट हो गई, उक्त कार्य के फलरूप मितशंश से इन्हों ने अपने गृह में स्थित तमाम कुड़न्व को क्षण भर में तलवार से काट डाला, (केवल इन के लड़के की की बच गई, क्यों-कि वह गर्भवती होने के कारण अपने पीहर में श्री) तथा अन्त में तलवार से अपना भी शिर काट डाला और दुर्दशा के साथ मृत्यु को प्राप्त हुए, तारपर्य यह है कि—इन के दुम्कृत्य से इन के घराने का तुरी तरह से नाश हुआ, सत्य है कि—वुरे कार्य का फल तुरा ही होता है, इन के पुत्र की की (जो कि कपर लिखे अनुसार बच गई श्री) के कालान्तर में पुत्र उत्पन्न हुआ, जिस की सन्तिति (औलाद) वर्तमान में उदयपुर, तथा माह्यवगढ़ में निवास करती है, ऐसा सनने में आया है ॥

बोहित्थरा गोत्र की निम्निकेखित शाखार्ये हुई:-

१—बोहित्यरा । २—फोफिलिया । ३—बच्छावत । १—दसवाणी । ५—ईंगराणी । ६—मुकीम । ७—साह । ८—रताणी । ९—जैणावत ॥

उन्नीसवीं संख्या-गैळड़ा गोत्र॥

- विक्रम संवत् १५५२ (एक इज़ार पाँच सौ वावन) में गहलोत राजपूत गिरधर को जैनाचार्य श्री जिनहंस सूरि जी महाराज ने प्रतिवोध दे कर उस का ओसवाल वंश और गैळेड़ा गोत्र स्थापित किया था, इस गोत्र में जगत्सेठैं एक बड़े नामी पुरुष हुए तथा

9—अप्रीति के पात्र बनने का इन (कर्मचंद जी) से कीन सा कार्य हुआ था, इस बात का वर्णन हम को प्राप्त नहीं हुआ, इस लिये उसे वहाँ नहीं लिख सके हैं, बच्छावतों की बचावलीविषयक जिस लेख का उन्नेख प्रथम नोट में कर चुके हैं उस में केवल कर्मचंद जी के पिता संप्रामसिंह जी तक का वर्णन है अर्थात कर्मचंद जी का वर्णन उस में कुछ नहीं है।

२~एक युद्ध महात्मा से यह भी छुनने में आया है कि—पैलडा राजपूत तो गहलोत हैं और प्रतिवोध के समय आवार्य महाराज ने उक्त नाम स्थापित नहीं किया था किन्तु प्रतिवोध के प्राप्त करने के बाद उन मे गैलाई (पागलपन) मौजुद बी जतः उन के गोत्र का गैलडा नाम पड़ा ॥

३-प्रथम तो ये ग्रीबी झालत में ये तथा नागौर में रहते ये परन्तु ये पायवन्द गच्छ के एक यति जी की सखन्त सेवा करते थे, वे यति जी ज्योतिष् आदि विद्याओं के पूर्ण विद्वान् ये, एक दिन रात्रि में तारामण्डल को देख कर यति जी ने उन से कहा कि-"यह बहुत ही उत्तम समय है, यदि इस समय में कोई पुरुष पूर्व दिया में परदेश को गमन करे तो उसे राज्य की प्राप्ति हो" इस वात को छुनते ही ये वहाँ से उसी समय निकले परन्तु नागौर से बोडी दूर पर ही इन्हों ने रास्ते में फण निकाले हुए एक वड़े भारी काले सर्प को देखा, उस को टेस कर ये मगमीत हो कर वापिस लीट आवे और मति जी से सब मुत्तान्त

उन्हीं के कुटुम्ब में बनारसवाले राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द भी बड़े विद्वान् हुए, जिन पर प्रसन्त हो कर श्रीमती गवर्नमेंट ने उन्हें उक्त उपाधि दी थी॥

बीसवीं संख्या-लोढी गोत्र॥

महाराज पृथ्वीराज चौहान के राज्य में छाखन सिंह नामक चौहान अजमेर का स्वे-दार था. उस के कोई पत्र नहीं था. लाखन सिंह ने एक जैनाचार्य की बहत कुछ सेवा भक्ति की और आचार्य महाराज से पुत्रविषयक अपनी कामना प्रकट की. जैनाचार्य ने कहा कि-"यदि त दयामूळ जैन धर्म का महण करे तो तेरे प्रत्र हो सकता है" ठाखन सिंह ने जपरी गन से इस बात का खीकार कर िया परन्तु गन में दगा रक्तवा अर्थात मन में यह विचार किया कि-पुत्र के हो जाने के बाद दयामूल जैन धर्म को छोड़ दूँगा, निदान काखन सिंह के पुत्र तो हुआ परन्त वह विना हाथ पैरों का केवरू मांस के कोढे (कींदे) के समान उत्पन्न हुआ, उस को देख कर काखन सिंह ने समझ किया कि मैं ने जो मन में छल रकता था उसी का यह फल है. यह विचार वह शीघ ही आचार्य महाराज के पास जा कर उन के चरणों में गिर पड़ा और अपनी सब दगावाजी को प्रकट कर दिया तव आचार्य महाराज ने कहा कि-"फिर ऐसी दगावाजी करोगे" लाखन सिंह ने हाथ जोड कर कहा कि"-महाराज ! अब कभी ऐसा न करूँगा" तब सुरि महाराज ने कहा कि-"इस को तो वस्त्र में छपेट कर वर्गद (बड़) की थोथ (सोह) में रख दो और हम से मन्ने हुए पानी को ले जा कर उस के ऊपर तीन दिन तक उस पानी के छीटे लगा-ओ, ऐसा करने से अब की बार भी तुन्हारे पुत्र होगा, परन्तु देखो ! यदि दयामूछ धर्म में दढ़ रहोगे तो तुम इस भव और पर भव में सुख को पानोगे" इस प्रकार उपदेश दे-

कह छुनाया, उस को छुन कर यति बी ने कहा कि—"अरे! धर्प देखा तो क्या हुआ । तू अब भी कला जा, जयपि अब जाने से तू राजा तो नहीं होगा परन्तु हां तस्मी तेरे चरणों में छोटेगी और तू जगरपेट के मां से संसार में प्रसिद्ध होगा" यह छुनते ही वे वहां से कल दिये और वित जी के कथन के अनुसार ही सब बात हुई अर्थात हन को खुब ही छहमी प्राप्त हुई और वे जगरपेट कहलाये, हन का विशेष वर्णन यहां पर छेख के बढ़ने के भग से नहीं कर सकते हैं किन्तु हन के विषय में इतना ही लिखना काफी है कि-लहमी इन के लिये जफ़ल और पानी के बीच में भी हाजिर खड़ी रहती थी, इन का स्थान मुश्चिदा- बाद में पूर्व काल में खड़ा ही छुन्दर बना हुआ था, परन्तु अब उस को मागीरथी ने विरा दिया है, अब उन के स्थान पर गोह आये हुए पुत्र हैं और वे भी जगरपेट के नाम से प्रसिद्ध हैं, उन का कायदा भी समयाञ्चसार अब भी इन्छ कम नहीं है उन के हो पुत्ररक हैं उन की बुद्धि और तेज को देख कर आशा की जाती है कि ने भी अपने वहों की कीर्तिक्ष ग्रहा का सिखन कर सबस्य अपने नाम को प्रदीप करेंगे, क्योंकि अपने सत्पूर्वजों के ग्रुणों का अनुसरण करना ही छुपूत्रों का परम कर्तव्य है ॥

१-इस गोत्र की उत्पत्ति के दो छेख हमारे वेखने में आये हैं तथा एक दन्तकथा भी छुतने में आहे है परन्तु सवत् और प्रतिबोध देने वाले जैनाचार्य का नाम नहीं देखने में आया है ॥ कर आचार्य महाराज ने छाखन सिंह को दयामूछ जैन घर्म का अर्झीकार करनाया और उस का ओसवाल वंश तथा छोढा गोत्र स्वापित किया ।

महाराज के कथनानुसार लाखन सिंह के पुनः पुत्र उत्पन्न हुआ और उस का परिवार बहुत बढा अर्थात् दिखी, अजमेर नागीर और जीषपुर आदि खानों में उस का परिवार फैल कर आबाद हुआ।

छोटों के गोत्र में दो प्रकार की मातायें मानी गई अर्थात् एक तो वड़ की पाटी बना कर उस पाटी को ही माता समझ कर पूजने छगे और कई एक बड़छाई माता की पूजने छगे।

लोढा गोत्र में पुनः निम्नलिखित खाँपें हुई:--

१-टोर्डर मलोत । २-इज मलोत । ३-रतन पालोत । ४-मान सिन्धोत ॥

सूचना— उपर लिख चुके हैं कि—लोटों की कुल्देवी बड़लाई माता मानी गई है, अतः जो लोटे नागौर में रहते है उन की क्षियों के लिये तो यह बहुत ही आवश्यक धात मानी गई है कि—सन्तान के उत्पन्न होने के पीछे वे जा कर पहिले माता के दर्शन करें फिर कहीं दूसरी जगह को जाने के लिये घर से निकलें, इन के सिवाय जो लोटे बाहर रहते हैं वे तो बड़ी लड़की का और मत्येक लड़के का झहूला वहाँ जा कर उता-रते हैं तथा काली बकरी और मैंस को न तो खरीदते हैं और न घर में रखते हैं, ये लोग चाक को भी ज्याह में नहीं पूजते है, जोअपुर नगर में लोटों को राव का खिताव है, कुल वर्षों से इन लोगों में से कुल लोग दयामूल जैन धर्म को छोड़ कर वैष्णव भी हो गये हैं।

ओसवालों के १४४४ गोत्र कहे जाने का कारण॥

छगभग १६०० संवत् में इस बात को जानने के छिये कि ओसवाओं के गोत्रों की कितनी संख्या है एक सेवक (योजक) ने परिश्रम करना शुरू किया तथा बहुत असें में उसने १४४३ (एक हजार चार सौ तेताछीस) गोत्रों को छिख कर संग्रहीत किया, उस समय उस ने अपनी समझ के अनुसार यह भी विचार छिया कि अब कोई भी गोत्र बाकी नहीं रहा है, ऐसा विचार कर बह अपने घर छौट आया और देशाटन का सब हाछ अपनी छी से कह शुनाया, तब उस की खी ने कहा कि—"तुम ने मेरे पीहरवाछे ओस-वाछों की खांप छिखी है" यह शुन कर सेवक ने चौंक कर अपनी छी से पूछा कि—"उन छोगों की क्या खांप है" छी ने कहा कि "डोसी" है, यह शुन कर सेवक ने कहा

१-टोडर मल सौर छजमल को दिल्ली के बादशाह ने शाह की पदवी दी थी अतः सब ही छोडे शाह कहलाते हैं॥

कि—"फिर भी कोई होसी" इस प्रकार कह कर उक्त खाँप को भी लिख लिया, वस तब ही से ओसवालों के १४४४ गोत्र कहे जाते हैं॥

. सूचना—हमारी समझ में ऊपर छिखा हुआ छेख केवल दन्तकथारूप प्रतीत होता है, अतः इस विषय में इम तो पाठकगणों से यही कह सकते हैं कि-ओसवालों के १४४४ गोत्र कहने की केवल एक प्रधामात्र चल पड़ी है, क्योंकि ने सन मूल गोत्र नहीं हैं किन्तु एक एक मूछ गोत्र में से पीछे से शाखार्ये तथा प्रतिशाखार्थे निकली हैं, वे सब ही मिला कर १४४४ संख्या समझनी चाहिये, उन्हीं को शाखा, खांप, नल भीर ओलखाण इत्यादि नामों से भी कह सकते हैं, अतः जिन शाखाओं के प्रचरित होने का हाल मिला है उन को हम आगे "शाला गोत्र" इस नाम से लिखेंगे, क्योंकि लांपें तो व्यापार आदि अनेक कारणों से होती गई हैं अर्थात् राज का काम करने से, किसी नगर से उठ कर अन्यत्र जा कर वसने से, व्यापार धन्धा करने से और लीकिक प्रथा आदि अनेक कारणों से बहुत सी लांपें हुई हैं, उन के कुछ उदाहरण भी वहाँ किसते हैं-देखिये ! राज के खजाने का काम करने से छोगों को सब छोग खजांची कहने छमे तथा उन की औलादवाछे छोग भी खजांची कहछाये, राज के कोठार का काम करने से कोगों को सब छोग कोठारी कहने छगे और उन की औछादबाके छोग भी कोठारी कहलाये, राज में लिखने का काम करने से कोचरों को फलोधी मारवाड़ में सव लोग 'कानंगा कहने लगे (वे अब 'कानुँगा' कहलाते हैं) छानेड़ों को दीकानेर में निरखी का खिताव है तथा बेगाणियों को भी निरखी तथा सुसरफ का खिताब मिळा अतः वे उक्त नामों से ही प्रकार जाते हैं, इसी प्रकार बांठियों में से हरखा जी की औछ।दबाळे लोग हरलावत कहलाये, ऐसे ही वोधरों के गोत्रवाले लोग बीकानेर में सकीम और साह भी कहलाते हैं, राखेचा गोत्रवाले कुछ घर पूराल को छोड़ कर अन्यत्र जा

⁹⁻इस प्रन्य की दूसरी आहति में इस बात का बच्छे प्रकार से खुलासा कर दिया जावेगा कि-कौन र से मूल गोत्रों की कौन र सी शाखायें तथा प्रतिशाखायें हैं, इस लिये सब ओसवाल पाठकगणों को उचित है कि-अपनी जाति के इस अच्छे कार्य में अवस्य सहायता प्रदान करें, सहायता इम केवल इतनी टी बाहते हैं कि ने अपने र मूल गोत्र और उस की शाखा आदि का वो कुछ हाल उन्हें बाद हो उस सब की लिख कर हमारे विवेकलिय सीलसीमाग्य पुस्तकादि कार्याव्य (बीकानेर) में मेंब देवें तथा बो र बात बाद र इस विषय की विदित्त होने तब र उसे भी छूपा कर मेंबते रहें, उक्त विषय का टेख मेंबते समय उन को उस की प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता आदि का कुछ मी खयाल नहीं करना चाहिये अर्थात दन्तकथा, प्राचीन छेख तथा माटों के पास की बंद्यावि का टेख हसादि, वो कुछ मिले उसे मेज देना चाहिये, परन्तु हाँ साथ में उस का नाम अन्देश टिख देना चाहिये, इमारी इस प्रायंना पर ध्यान दे कर यदि ग्रुह ओसवाल महोदय इस विषय में सहायता करेंगे तो बोड़े ही समय में ओसवालों के सम्पूर्ण गोत्रो का इतिहास पूर्ण रीति से तैयार हो जावेगा ॥

वसे ये अतः उन को सब छोग पूगिलिया कहने छगे, वेगवाणी गोत्र का एक पुरुष मकस्दावाद में गया था उस के अरीर पर रोम (बाछ) वहुत ये अतः वहाँ वाछे छोग उस
को "रूँबाछ जी" कह कर पुकारने छगे, इसी छिये उस की औछादवाछे छोग भी रूँबाछ
कहलाये, बहूफणा गोत्रवाछे एक पुरुष ने पटने का काम किया था अतः उस की औछादवाछे छोग पटवा कहलाये, फलोधी में झानक गोत्र का एक पुरुष शरीर में बहुत दुवछा
था इस छिये सब छोग उस को मिह्निया २ कह कर पुकारते ये इस छिये अब उस की
ओछादवाछे छोग वहाँ मिह्निया कहछाते है, इस रीति से ओसवाछों में वर्छाई चण्डाछिया
और बंगी ये भी नल हैं, ये (नल) किसी नीच जाति के हेतु से नहीं प्रसिद्ध हुए
है—किन्तु बात केवछ इतनी थी कि इन छोगों का उक्त नीच जातिवाछों के साथ ज्यापार
(रोज़गार) चछता था, अतः छोगों ने इन्हें वैसा २ ही नाम दे दिया था, उन की
ओडादवाछे छोग भी, ऊपर कहे हुए उदाहरणों के अनुसार उन्हीं खापों के नाम से
प्रसिद्ध हो गये, तारपर्य यह है कि—ऊपर छिले अनुसार उनेक कारणों से ओसवाछ
वंश में से अनेक शाखायें और प्रतिशाखायें निकलती गई।

ओसवालों में वर्लाई और चण्डालिया आदि सांगों के नाम छन कर बहुत से अक्क के अन्धे कह बैठते है कि—जैनाचार्यों ने नीच जातिवालों को भी ओसवाल वंश में शामिल कर दिया है, सो यह केवल उन की मूर्सता है, क्योंकि ओसवाल वंश में सोलह आने में से पन्द्रह आने तो राजपूत (क्षत्रियवंश) हैं, वाकी महेश्वरी बैश्य और ब्राह्मण है अर्थात् प्रायः इन तीन ही जातियों के लोग ओसवाल वने है, इस बात को अभी तक लिसे हुए ओसवाल वंशोत्पित्त के खुलासा हाल को पढ़ कर ही बुद्धिमान् अच्छे प्रकार से समझ सकते हैं।

पहिले लिख चुके है कि—एक सेवक ने अत्यन्त परिश्रम कर ओसवालों के १४४४ गोत्र लिखे थे, उन सब के नामों का अन्वेषण करने में यदापि हम ने बहुत कुछ प्रयंत किया परन्तु वे नहीं मिले, किन्तु पाठकगण जानते ही है कि—उद्यम और खोज के करने से यदि सर्वेषा नहीं तो कुछ न कुछ सफलता तो अवस्य ही होती है, क्योंकि यह

१-गुजरात देश में कुमारपाल राजा के समय में खर्यात विक्रम सवत् बारह सौ में पूर्णतिलक गच्छीय जैनावार्य श्री हेमचन्द्र सूरि जो महाराज ने श्रीमालियों को प्रतिवोध दे कर जैनवमीं श्रावक बनाया था जो कि गुजरात देश में वर्तमान में दशे श्रीमाली और वीसे श्रीमाली, इन दो नामों से पुकारे जाते हैं तथा जैनी श्रावक कहलाते हैं, इन के सिवाय उक्त देश में छीप और मावसार भी जैन धमें का पालन करते हैं और ने मी उक्त जैनावार्य से ही प्रतिवोध को प्राप्त हुए हैं, उन में से बदाप कुछ लोग वैष्णव भी हो गये हैं परन्तु विशेष जैनी हैं, उक्त देश में जो श्रीमाली तथा मावसार आदि जैनी हैं उन के साथ भोसवालों का कत्या का देना लेगा आदि व्यवहार तो नहीं होता है, परन्तु जैन धर्म का पालन करने से उन को ओसवाल वशवाले जन साधर्मी माई अलबक्ता स्वस्ति हैं॥

एक खामाविक नियम है, वस इसी नियम के अनुसार हमारे परम मित्र यतिवर्ष पण्डित श्रीयुत श्री अनुपचन्द्र जी मुनि महोदय के खापित किये हुए इस्तिलिखित पुराकालय में ओसवालों के गोत्रों के वर्णन का एक छन्द हमें प्राप्त हुआ उस छन्द में करीब ६०० (छ: सौ) गोत्रों के नाम हैं—छन्दोरचियता (छन्द के बनाने वाले) ने मूलगोत्र, शाखा तथा प्रतिशाखा, इन सब को एक में ही मिला दिया है और सब को गोत्र के ही नाम से लिखा है कि—जिस से उक्त गोत्र आदि बातों के ठीक २ जानने में अम का रहना सम्भव है, अतः हम उक्त छन्द में कहे हुए गोत्रों की नामाविल को छाँट कर पाठकों के जानने के लिये अकारादि कम से लिखते हैं:—

 अ १ असङ् १ अस्त्राचिया १ अस्त्राचिया १ असी १ अस १ असी १ असी १ अस १ असी 	सं । गोत्रों के नाम।	सं०। गोत्रो के नाम।	सं॰ गोत्रों के नाम।	सं॰ गोत्रो के नाम ॥
२ अप्तम १५ जासी २८ कनीजा ४१ काकिल्या ३ असोचिया १६ आम् २९ करणारी ४२ काकरेचा ४ असी १७ आला ३० करहेडी ४३ कॉबसा आ ह	अ ्			
३ असोचिया १६ आम् २९ करणारी ४२ काकरेचा ४ असी १७ आला ३० करहेडी ४३ कॉबसा आ ह	१ अमङ्	१४ आवगोत	२७ कनिया	४० कवाड़िया
४ अमी १७ आला ३० करहेडी ४३ कॉबसा आ ह	२ असुम	१५ जासी	२८ कनोजा	४१ काकलिया
आ ह	३ असोचिया	१६ आम्	२९ करणारी	४२ काकरेचा
	४ अमी	१७ आखा	३० करहेडी	८३ कॉब सा
५ आईचर्णांग १८ इळड्रिया ३१ कड्रिया ४४ काग		Ę		
	५ आईचणांग	१८ इल्डिया	३१ कड़िया	८८ काग
ਰ		ड		
६ ञाकाशमार्गी १९ उनकण्ठ ३२ कठोतिया ४५ काँकरिया	६ आकाशमार्गी	१९ उनकण्ठ	३२ कठोतिया	८५ कॉकरिया
७ क्राँचिकया २० उर १३ कठफोड़ ४६ कासतबारू	७ जाँचिलया	२० डर	३३ कठफोड़	४६ कासतवारू
भी		ओ		
८ जाछा २१ ओसतवारू ३४ कहा ४७ काजरू	८ সান্তা	२१ ओसतवाल	३४ कहा	
९ आयरिया २२ ओदीचा ३५ कसाण ४८ काठेलवडा	९ आयरिया	२२ बोदीचा	३५ कसाण	८८ काठेलवडा
क		%		
१० आमदेव २३ कउक ३६ कठ ४९ कानेडिया	१० आमदेव	२३ कडक	३६ कठ	
११ आलझाड़ा २४ कटारिया ३७ कटार ५० कांघाल	११ भारुझाड़ा	२४ कटारिया	३७ कठाल	
१२ आलावत २५ कठियार ३८ कनक ५१ कापड		२५ कठियार	३८ कनक	_
१३ अवङ् २६ कणोर ३९ ककड़ ५२ काँचिया		२६ कणोर	३९ ककड़	५२ कॉचिया

१-इन महोदय की कृपा से उक्त छन्द की त्राप्ति के द्वारा जो हम को गोत्रविज्ञान में सहायता मिठी है, उस का दम उक्त महोदय को अन्तःकरण से घन्यवाद देते हैं, इन के तिवाय उपाध्याय पण्डित श्रीयुत श्री रामकाल जी गणी और यतिवर्ष पण्डित श्रीयुत श्री अवीरचन्द जी मुनि महोदय (जो कि एद और जैनसिंदान्त के अच्छे झाता हैं) ने भी ओसवालवशाविल के सङ्ग्रह करने में हम को सहायता प्रदान की है अतः हम उक्त सच्चों को भी भन्यवाद देते हैं।

्षश्चम अध्याय ॥ 🏸

५३ कानरेळा	- ८३ खड्गणशाली	११३ गाँची	१९२ चम
५८ काला	् ८४ सरवड्	११४ गाय	, १४३ चामङ
५५ काउ	- ८५ साटेड़	११५ गावद्रिया	१४४ चाल 🔑 🖯
५६ काविया	८६ साटोड़ा	११६ मिडिया	१८५ चितोड़ा
५७ किराइ	८७ सारीवाळ .	,११७ गिणा	.१४६ चित्रवाल 👵 🔈
५८ कुम्भज	. ८८ साम्या	११८ गिरमेर - 👵	१८७ चीचट 🔭 🐫
५९ कुंकुंरोल	८९ खिल्ची	११९ गुणहंडिया	१४८ चीचॅड - ु
६० कुंकुम	९० सीचिया	१२० गुवाळ ्	. १४९ चीपट 👯
६१ कुणन	९१ खीची	-१२१ गुलगुलिया	१५० चीपङ्
६२ कुंड	९२ खीमसरा	१२२ गूगलिया	१५१ चुंलइ 💠
६३ कुम्भट	९३ खुड्धा	१२३ गूँदेचा	- १५२ चोधरी
६८ कुचोर्या	, ९४ सेचा .	१२४ गूजिंडिया	्र १५३ चोल
६५ कुबुद्धि	९५ खेड़िया	्१२५ गेमावत	१५८ चोपड़ा 🤫
६६ कुलवन्स	. ९६ खेत्तरपाळ	१२६ गेरा	ः १५५ चोरङ्ग्या
६७ कुकुइ	९७ खेतसी	१२७ गोवरिया	-१५६ चौहाण
६८ कुरुहट	९८ खेमासरिया	१२८ गोढा	१५७ वंबल
६९ कूकड़ा	९९ खेमानंदी	१२९ गोठी	्१५८ चंडालिया -
७० क्मड	१०० खैरवाळ	१३० गोसल	ন্ত -
७१ कूहड़	१०१ खुतड़ा	१३१ गोलेच्छा	१५९ छछोहा
७२ केड़	, ग	१३२ गोहीलाण	१६० छजलाणी ,
७३ केराणी	१०२ गणघर	१३३ गोलक	१६१ छाजेड
७४ केळवाळ	१०३ गटागट	१३४ गोघ	१६२ छागा
७५ कोचर	१०४ गहा	१३५ गोलेचा	१६३ छॉटा
७६ कोठारी	१०५ गढवाणी	घ	१६४ छाडोरिया
७७ कोठेचा	१०६ गळुंडक	१३६ घाँघरोछ	१६५ छीलिया
७८ कोवेड़ा	१०७ गदैया	१३७ घिया	१६६ छेर
७९ कोल्या	१०८ गंधिया	१३८ घोला	१६७ छैल
८० कोलर	१०९ गहलड़ा	१३९ घंघवाल	१६८ छोहरिया
८१ कंठीर	११० गहलोत	च	१६९ छोगाला .
ख	१११ गांग	१४० चतुर	ਗ ਼ੰ
८२ खगाणी ८३	, ११२ गॉबी	१४१ चवा ्	१७० जिंद्या

जैनसम्प्रज् <i>या</i> श्चिमा
६५८ - १५६ वहा "
्र चित्रा रे प्राप्त देशका
- 404 clair.
- 402 colo 2 3 3 m 4 do di.
- 1 - 2 - 2 - 2 - 2 - 2 - 2 - 2 - 2 - 2
- 464 Boles
- नवानम
् ल्याना , १०७०
नाजीशी
THE STATE OF THE S
C TO THE TAX TO THE TA
१८२ जाँगी २११ ठावा २३९ ताते । २६९ वेहरा २६९ वेहरा २४० तिरपेकिया २६९ वेहरा
्र वर्षा क्रांसाणा । वर्षा
१८५ जीत ११३ छेठेर २४२ तिरणांच २७१ धनपांच
रेटन गा
वस्तिवत
र्टि नाम र्थि होगा
र जिल्हा
दश्य होया न्या तेल्डिया
१९० जीमनेरा २१८ डाकिंखिया २४८ तीहरवाल १२७६ घन
१९१ जा ३ १ ९ हाकूवाकिया
२२० डाह्
१९३ जर २२१ हुँगारिया ३५० शॉमलेचा . २७५ वामर
२२२ हुँगरिल २५१ शारावत २२० वाजा
१९४ मान १२३ हुगरेवाल १ क्रावाल १ २८१ वास
१९५ सार्ग २२४ हाहिया
1 , 4 - , 544 01.
१९७ शामान २२६ होठा २५७ दश २८४ भ
१९८ कार । ३२७ होसा
१९६ शादा
१ १०० संह

२८६ घोलियाः - ३१५ पँगार		
२८७ घोछ 🚎 ः ३१६ परजा	γ γ γ γ γ γ γ γ γ γ γ γ γ γ γ γ γ γ γ	
्रें से स्टब्स से श्री के स्टब्स		१७६ बहुला
्न : २२० पहु २८८ नवलक्साः ४२१८ पश्लीवाल	१४७ फलााच्य	ा १३७७ वॉका
२८९ नपावलिया - , ३१० प्रतापा	१ १४८ फाल .	३७८ बागरेचा 👵
२८९ नपाविष्या ३१९ पठाण -	, १४५ क्ष्मार	' ३७९ बाघमार'
२९०-नलवाद्या :- । ३२० पटोळ २९१-नस्तत १२१ पहगतिय	ं १५० फोकटिया	१८० बॉगाणी ८२ -
२९२ नरायणः - ३२२ पटणी -		३८१ मानेताः 👵
269 annia 222 annia	् ब .	ः - ३८२ नातङ्ग्या -
२९३ नगगोत ३२३ पदमावत २९४ निलेत्रेत - ३२४ पटवा	ं ३५२ बच्छावत	दे८३ वाफणा 🗸 .
२९५ -नसत्रगोता ३२५ पटविद्या	🕶 ३५३ चड्गोता,	१८ ८-बादरिया 🕞
२९६ नगरिकः ३३० -	′ ३५४ वड्डोया	
२९६ नरसिंघ - ३२६ पहिचार २९७ नरायम	ः ३५५ बड़ोल	
२९७ नागपुरा १२७ पसाइया		- ३८७ बाल्ड्- ्रा
२९८ नाडोलिया ३२८ परवाला		ं ३८८ वालंबा 🔭
२९९ नाणवट - १२९ पापड़िया ३०० नाँदेचा १३० पामेचा		३८९ वावेला
	' ३५९ बरवत 🔅	' ३९० बाहरिया '.
३०१ नारियाः - ३३१ पाळकेचा	३६० बराङ् -	३९१ बॉबिकिया :
३०२ नाहटा ३३२ पाहणिया	३६१ बडेर	३९२ विदामिया - : .
३०३ नागोरी ३३३ पाँचा	३६२-बल्देवा	३९३ विनसट
३०४ नावरिया - ३३४ पारस	३६३ वट	३९४ विनायक
३०५ नावटी - ३३५ पाळावत -	· ३६४ नलइ	३९५ बिरमेचा
३०६ नावेड़ा ३३६ पीपलिया	े १६५ बहुबोछ	३९६ विनय
२०७ नाहर २२७ पीतक्रिया २०८ निष्ठी ३३८ मीणाऱ्य	३६६ बलहरी	३९७ बिरदाल
1/0 4(4)61	१६७ बलाही	३९८ विशाल
	रे६८ बवाल	३९९ बिरहट
३१० नीमाणी ३४० पूगिलया	३६९ बवेछ	४०० बीराणी
३११ नीसटा - ३४१-पुहाइ -	" ३७० वृष -	४०१ बीरावत
३१२ नेणसर ३४२ पूराणी	३७१-वद्याणी	४०२ बुरह
११२ नेर ३४३ पोकरवाल	३७२ वषेरवाळ -	४०३ वुद्धा
प . ३१४ पोक्रणा	३७३ वब्बर	४०४ व्यक्तिया
३१४ पगारिया - , ३४५ मोचाल	३७४ बद्धह	४०५ बूह
	••	a gb

नैनसंन्यवायशिका ॥

४०६ बेगङ् ।	े ४३६ मागू	४६६ महेच	- ४९७ मोहनाणी
	- ४३७ मादर	_	ं ४९८ मोदी
४०८ बेगाणी	ं ४३८ साम् भांडावत	४६८ मन	े ४९९ मोगिया
४०९ बेलीम	"४३९ माणेश"	'४६९ महा	* ५०० मोडोत
४१० वेहड	े ४४० साहंगा	४७० महद	५०१ मोहञ्जा
४११ बैदम्ता	४४१ मॉॅंभठ	४७१ माळ	५०२ मोहीवाल
४१२ बोकड़िया	१४२ मीनमाछ	'४७२ मालकस	ॅ ५०३ मीतियाण 'ं
४१३ बोपीचा	४४३ भीर	४७३ गाउनेसा	_
४१४ बोरियया	८८८ से अंदी	४७४ मारु	५०४ मंग्लिया
४१५ बोरुदिया	४४५ मुरदिया	८०४ गाँ ८७५ गाँडलेचा	५०५ मंडोचित
४१६ बोहित्यरा	४४६ भूरी	४७६ मा ड िया	५०६ मंडीबरा
४१७ बोरोचा	४४७ भूरा	१७५ माँडोता	५०७ मंगीवाळ
४१८ बोहरा	. ४४८ मृतहा	४७८ माधीरी ४७८ माघीरिया	५०८ मंडलीक
४१९ बाँठिया	- ४४९ म्तेडिया	४७६ मानाहिया ४७६ मिन्नी	le co morror
४२० वंका	४५० सूचण	४८० मिछेला [*]	५०९ रतनपुरा
४२० वका ४२१ वंस	४५१ मोर	४८० (मछला ४८१ मिण	५१० रतनगोता
४२९ वन ४२२ वंबोई	४५२ मोरू	•	े ५११ रखवाल
४२२ वंगाल ४२३ वंगाल	८५३ मोगर	१८२ मीठ ड्या	े ५१२ स्थ ५०३ सम्बद्ध
		४८३ मुखतरपाछ	५१३ रायनादी
- म	४५४ मोरडिया	४८४ मुहाणाणी	ं ५१४ रायमणशाली
४२४ मधह	४५५ मंडसाठी	४८५ मुणोत	ं ५१५ राठोड़
४२५ भगिकया	४५६ मंडारी	४८६ मूंघड़ा	५१६ रॉका
४२६ मटेवरा	म	४८७ मुँहिमवाल	५१७ राखेचा
१२९७ मड्कृतिया	४५७ मकुवाण	४८८ मुत्यह	५१८ रातिहया
भड़गोता	४५८ मगदिया	४८९ मुहिलाण	५१९ रावल
१९४ झारवाङ	४५९ म्थाणा	४९० मुंगरोल	५२० रीसाँण
१९५ झावाणा	४६० महेला	४९१ मूलनेरा	. ५२१ स्वणवाल
१९६ झाँवड़ ₹ 🐪	४६१ मणहरा	४९२ मेड्तवाल	५२२ ह्य
१९७ झाँबावत	४६२ मंण हाड़िया	४९३ मेहुँ - त्रे	ं ५२३ रूपधरा
१९८ झाँबरपाल 🧭	४६३ ^६ मरहिया	४९४ ⁻ मैराण	५२४ हॅंबलेचा
१९९ झोटा	५४६४ मसरा	४९५ मोगरा	ं ५२५ रेहड़
•	.२२६५ महामद	४९६ मोरच 🕐	५२६ रोऑ

_		_ n_	
५२७ रोटागण	५४७ श्रीश्रीमाल	५६८ सियाङ	५९० सोभावत
५२८ रंक	स	५६९ सीखा	५९१ सोठिल
छ	५४८ समघड़िया	५७० सीचाँ-सींगी	५९२ सोजन
५२९ लघुश्रेष्ठी	५४९ सही	५७१ सीसोदिया	५९३ संखलेचा
५३० लक्ष्	५५० सफ्ला	५७२ सीरोहिया	५९४ संचेती
५३१ छलवाणी	५५१ सराहा	५७३ सुंदर	५९५ संड
५३२ छषु खँडेलवाङ	५५२ समुदरिस	५७४ सुराणा	५९६ संखवाल
५३३ लालण	५५३ सवरला	५७५ सुघेचा	₹
५३८ लिंगा	५५८ सवा	५७६ सूर	५९७ हगुड़िया
५३५ लीगा	५५५ सरमेल	५७७ स्वा	५९८ हरसोरा
५३६ छंबक	५५६ साँखळा	५७८ सूरिया	५९९ हड़िया
५१७ छंडा	५५७ सॉइ	५७९ स्र्पुरा	६०० हरण
५३८ छछा	५५८ साहिबगोत	५८० द्वरहा	६०१ हिरण
५३९ ढॅकड़	५५९ साँहेळा	५८१ स्थूल	६०२ हुव्बद्
५४० छ्णावत	५६० साहिला	५८२ स्काली	६०३ हुइिया -
५४१ छणिया	५६१ सावणद्यसा	५८३ स्डाल	६०४ हेमपुरा
५४२ डेड	५६२ साँबरा	५८४ सेठिया	६०५ हेम
५४३ केवा	५६३ सांगाणी	५८५ सेठियापावर	६०६ हीहाउ
५४४ होडा	५६४ साहळेचा	५८६ सोनी	६०७ हीगड
५४५ छोलग	५६५ साचोरा	५८७ सोनीगरा	६०८ इंडिया
হা	५६६ साचा	५८८ सोठंखी	६०९ हंस
५४६ श्रीमाल	५६७ सिणगार	५८९ सोजतिया	
	~ 9~	10 0	

शाखागोत्रों का संक्षिप्त इतिहास ॥
१-डाकिल्या-पूर्व समय में सोढा राजपूत थे जो कि द्यामूल जैन घर्म का
अहण किये हुए थे, कालान्तर में ये लोग राज का काम करते २ किसी कारण से रात को
भाग निकले परन्तु पकड़े जा कर वापिस लाये गये, अतः ये लोग डाकलिया कहलाये
क्योंकि पकड़ कर लाये जाने के समय ये लोग डके हुए लाये गये थे।

२-कोचर-इन छोगों के बढ़रे का नाम कोचर इस कारण से हुआ था कि उस के जन्म समय पर कोचरी पक्षी (जिस की बोठी से मारवाड़ में अकुन छिया करते हैं) बोठा था।

१—इन (शाखागोत्रों) को मारवाड़ में खॉप, नख और शाख आदि नमों से कहते हैं तथा कच्छ देश के निवासी ओसवाछ इन को "ओछख" कहते हैं, मारवाड से उठ कर ओसवाछ छोग कच्छ देश में जा वसे थे, इस बात को क़रीन तीन सी वा चार सी वर्ष हुए हैं॥

रे—चाम् इ—पूर्व काल में बांधल राठौड़ ये तथा द्याम्ल जैन वर्म का ग्रहण करने के बाद ये लोग खाल का व्यापार करने लगे थे इस लिये ये चामड़ कहलाये।

४—वागरेचा-पूर्व समय में सोनगरा चौहान थे तथा जालोर में दयामूल जैन धर्म का ग्रहण करने के बाद वे बागरे गाँव में रहने लगे थे इस लिये वे बागरेच कहलाये परन्तु कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि-वाध के मारने से उन की जात बाबरेचा हुई।

4—श्रेदस्ता—पूर्व काल में ये पँचार राजपूत थे, ओसियाँ में द्यामूल जैन धर्म का प्रहण करने के बाद इन के किसी पूर्वज (बड़ेरे) ने दिल्ली के बादगाह की आँस का इलाज किया था जिस से इन को बेद का खिताव मिला था, बीकानेर में राजा की तरफ से इन को राव तथा महाराब की पदवी भी मिली थी, असल में ये बीदावतों के कामदार थे इस लिये इन्हें मोहता पदवी भी मिली थी, बस दोनों (बेद और मोहता) पदवियों के मिलने से यें लीग बेदमूता कहलाने लगे।

६ - छ्कड़ - पहिले ये चौहान राजपूत थे, दर्यामूल जैन धर्म का ग्रहण करने के पीछे इन के एक पूर्वज (नड़ेरे) को एक जती (यति) ने सन्दुक में छिपा कर उसी राजा के आदमियों से बचाया था कि जिस राजा की वह नौकरी करता था, चूंकि छिपाने को छकाना भी कहते हैं इस लिये उस का और उस की जीलाद का नाम दकड़ हो गया।

७-मिझी-(मिझिया)-पहिले ये चौहान राजपूत थे, दया मूल जैन धर्म का महण करने के बाद इन का एक पूर्वज (बड़ेरा) (जिस के पास में धन माल था) किसी गाँव को जा रहा था परन्तु रास्ते में उसे छुटेरे मिल गये और उन्हों ने उस से कहा कि—"सेठ! राम राम" सेठ ने कहा कि—"कूड़ी बात" फिर छुटेरों ने कहा कि—"सेठ! अच्छे हो" सेठ ने फिर जवाब दिया कि—"कूड़ी बात" इस प्रकार छुटेरों ने दस शीस बातें पूंछी परन्तु सेठ उसी (कूड़ी बात) अन्द को कहता रहा, आखिरकार छुटेरों ने कहा कि—"तेरे प्रास्त जो माल और गहना आदि सामान है वह सब दे दे" तब सेठ बोला कि—"हाँ आ साँची बात, महें तो लेण देण रोही धंधो करां छां, ये हाँ ने खत लिख दो और ले छो " छुटेरों/ने विचारा कि—यह सेठ मोला है, खत लिखने में अपना क्या हर्ज है, अपने को कीन सा देना पहेंगा, यह सोच कर उन्हों ने सेठ के कहने के अनुसार खत लिख दिया, सेठ ने भी इच्छा के अनुसार अपने माल से चौगुने माल का खत लिखन लिया और छुटेरों से कहा कि—"इस खत में साख धलवाँ दो" छुटेरों ने कहा कि—"यह पर

१-"कृडी बात" अर्थात् यह झूठी बात है ॥

२-अर्थात् यह सबी वात है, हम तो छेने डेने का ही घन्या करते हैं, तुम हम को सत लिख दो औं। हमारा नय सामान छे छो ॥

३-"साख घलवा दो" अर्थात् किसी की साक्षी (गवाही) डलवा दो ॥

किस की साख ढलवार्वे, यहाँ तो कोई नहीं है, हाँ यह एक लोंकेड़ी तो खड़ी है तुम कहो तो इस की साख-डलवा दें" सेठ ने कहा कि-"अच्छा इसी की साख डलवा दो" बस छटेरों ने लोंकडी की साल लिख दी और सेठ ने गहना आदि जो कुछ सामान अपने पास में या वह सब अपने हाय से छुटेरों को दे दिया तथा कागज छेकर वहाँ से चला आया. दो तीन वर्ष बीतने के बाद वे ही छटेरे किसी साहकार का मारू छट कर उसी नगर में वेंचने के लिये आये और सेठ ने ज्यों ही उन को वाजार में देखा त्यों ही पहिचान कर उन का हाथ पकड़ लिया और कहा कि-"व्याजसमेत हमारे रुपये लाओ" होटेरे बोले कि-"हम तो तुम को पहिचानते भी नहीं है. हमने तम से रुपये कव लिये थे! " छटेरों की इस बात को सन कर सेठ जोर में आ गया, क्योंकि वह जानता था कि-यहाँ तो बाजार है, यहाँ ये भेरा क्या कर सकते है, (किसी कवि ने यह दोहा सत्य ही कहा है कि-'अंगळ जाट न छेडिये. हाटा बीच किराड ॥ रंगड कदे न छेडिये, मारे पटक पछाड. ॥ १ ॥) निदान दोनों में खुव ही हुजात (तकरार) होने छगी . और इन की हजात को सन कर बहुत से साहकार आकर इकट्टे हो गये तथा सेठ का पक्ष करके वे सब छटेरों को हाकिम के पास छे गये, हाकिम ने सेठ से रूपयों के मांगने का सबत पूछा. इयर देरी ही क्या बी-सीम ही सेठ ने उन (छूटेरों) के हाय की छिली हुई चिट्ठी दिखला ती. तब हाकिम ने छटेरों से पूछा कि-"सच २ कही यह क्या बात है" तब छटेरों ने कहा कि-"साहन ! सेठ ने यह चिट्टी तो आप को दिखलां दी परन्तु इस (सेठ) से यह पूछा जाने कि इस बात का साक्षी (साखी वा गवाह) कौन है ?" लटेरों की बात को सनते ही (डाकिम के पूछने से पहिले ही) सेठ बोल उठा कि-"मित्री" यह सन कर छटेरे बोके कि-"हाकिम साहब ! वाणियो झठो है, सो ळॉकडी ने मित्री कहे हे³¹¹ यह सुन कर हाकिम ने उस खत को उठा कर देखा, उस में लॉकड़ी की साल लिखी हुई थी, बस हाकिम ने समझ लिया कि-बनिया सचा है, परन्तु उप-हास के तौर पर हाकिम ने सेठ से घमका कर कहा कि-"अरे! ठोंकडी, को सिन्नी कहता है" सेठ ने कहा कि-"मिन्नी और डोंकड़ी में के फरक है³! मिन्नी २ सात वार मित्री" अस्त, हाकिम ने उन छुटेरों से कागज़ में लिखे अनुसार सब रुपये सेठ को दि-छवा दिये, वस उसी दिन से सब छोग सेठ को 'मित्री, कहने छगे और उस की औलाद वाले भी मिन्नी कहलाये ।

८-सिंगी-पहिले ये जाति के नन्दवाणे ब्राह्मण ये और सिरोही के देलड़ी आम में

१-लोंकडी को मारवाही घोली में जगली मिन्नी (विली) कहते हैं॥

२-"लॉकड़ी ने मिन्नी कहे छे" सर्यात लोकडी को मिन्नी बतळाता है।

३-"ने फरक है" अर्थात् क्या मेद है ॥

रहते थे, इसी से इन को सब छोग देखिंद्रिया बोहरा कहने छो। थे, इन में सोनपाल नामक एक बोहरा बड़ा धादमी था, उस को दैनवश सर्प ने काट खाया था तथा एक जती (यित) ने उसे अच्छा किया था इसी लिये उस ने दयामूळ जैन धर्म का प्रहण किया था, उस के बहुत काळ के पीछे उस ने शत्रुक्षय की यात्रा करने के लिये अपने खर्च से संघ निकाला था तथा यात्रा में ही उस के पुत्र उत्पन्न हुआ था, संघ ने मिल कर उसे संघेवी (संघपति) का पद दिया था अतः उस की औलाद्वाले लोग सिंगी कहळाँथे, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि—संघवी का अपअंस सिंगी हो गया है, इन (सिंगियों) के भी—महेवावत, गढावत, थीमराजीत और मूलचन्दोत आदि कई फिरके हैं ॥

ओसवाल जाति का गौरव ॥

भिय पाठकराण ! इस जाति के विषय में आप से विशेष क्या कहें ! यह वही जाति है जो कि—कुछ समय पूर्व अपने धर्म, विद्या, एकता और परस्पर मीतिंमाब आदि सद्गुणों के बल से उन्नति के शिखर पर विराजमान थी, इस जाति का विशेष मशंसनीय
गुण यह या कि—जैसे यह वर्मकार्यों में कटिवद्ध थी वैसे ही सांसारिक वनोपार्जन आदि
कामों में भी कटिवद्ध थी, तात्पर्य यह है कि—जिस मकार यह पारमार्थिक कामों में
संख्य थी उसी मकार लैकिक कार्यों में भी कुछ कम न थी अर्थात् अपने—'आंहसा

१-"डेलडिया" अर्थात् डेलडी के निवासी ॥

२-गुजरात और कच्छ आदि देशों में संगवी जोत्र अन्य प्रकार से भी अनेकविष (कई तरह का) सांवा जाता है ॥

३-ये सिंगी (संघवी) जोधपुर आदि मारबाड़ वाले समझने नाहियें ॥

४-श्रीति के तीन भेद हैं-शिक, बादर और बेह, इन में से सिवा उसे कहते हैं कि-नो पुरुष अपनी अपेक्षा पद में श्रेष्ठ हो, सहुणों के हारा मान्य हो और विद्या तथा जाति में बडा हो, उस की सेवा करनी चाहिये तथा उस पर श्रद्धाभाष रखना चाहिये, नयोंकि वहीं सिक्त का पात्र है, सख पूछों तो यह ग्रुणों से उत्क्रष्ट है, नयोंकि-यहीं सब ग्रुणों की आित का मूळ कारण है अर्थात इस के होने से ही मतुष्य को सब ग्रुण आत हो सकते हैं, इस की गति कर्ष्यामिनी है, श्रीति का इसरा सेद आदर है-आदर उसे कहते हैं कि-जो पुरुष अवस्था, इत्य, विद्या जारे जाति आित ग्रुणों में अपने समान हो उस के साथ ग्रीय प्रतिष्ठापूर्वक वक्तीय करना चाहिये, इस (आदर) की गति समतळवाहिनी है तथा प्रीति का तीवरा शेद हे है नेह उसे कहते हैं कि-जो पुरुष अवस्था, इत्य, विद्या और समतळवाहिनी है तथा प्रीति का तीवरा शेद हो है के सहते हैं कि-जो पुरुष अवस्था, इत्य, विद्या और इस्त के सम्बंध में अपने से छोटा हो उस के हित को विचार कर उस की इस्ति का उपाय करना चाहिये, इस (केह) का अवाह चळलोत के समान अघोगानी है, बस प्रीति के वे ही तीनों प्रकार हैं, क्योंकि उक्त तीनों वार्तों के झन के बिना वास्त में प्रीति नहीं हो सकती है-इस लिये इन तीनों मेदों के खरूप को जान कर वथायोग्य इन के वत्तीय का स्थान रखना आवश्यक है।

परमो घर्म:, रूप सदुपदेश के अनुसार यह सत्यतापूर्वक व्यापार कर अगणित द्रव्य को प्राप्त करती थी और अपनी सत्यता के कारण ही इस ने 'श्राह, इन दो अक्षरों की अनुपम उपाधि को प्राप्त किया था जो कि अन तक मारवाड़ तथा राजपूताना आदि प्रान्तों में इस के नाम को देदीप्यमान कर रही है, सच तो यह है कि—या तो शाह या बादशाह, ये दो ही नाम गौरवान्वित माख्स होते है।

इस के अतिरिक्त-इतिहासों के देखने से निदित होता है कि-राजपूताना आदि के शाय: सब ही रजवाड़ों में राजों और महाराजों के समक्ष में इसी जाति के छोग देश-दीवान रह चुके हैं और उन्हों ने अनेक धर्म और देशहित के कार्य करके अतुलित यश को प्राप्त किया है, कहाँ तक लिखें-इतना ही लिखना काफी समझते है कि-यह जाति पूर्व समय में सर्वगुणागार, विद्या आदि में नागर तथा द्रव्यादि का मण्डार थी, परन्तु श्रोक का विषय है कि-वर्तमान में इस जाति में उक्त बार्ते केवल नाममात्र ही दीख पड़ती है, इस का मुख्य कारण यही है कि-इस जाति में अविद्या इस प्रकार वृस गई है कि-जिस के निक्रष्ट प्रभाव से यह जाति कृत्य को अकृत्य, ग्रुभ को अग्रुम, बुद्धि को निर्वृद्धि तथा सत्य को असत्य आदि समझने लगी है, इस विषय में यदि विस्तार-पूर्वक लिला जावे तो निस्संदेह एक बड़ा अन्य वन जावे, इस लिये इस विषय में यहाँ विशेष न छिल कर इतना ही छिलना काफी समझते है कि-वर्तमान में यह जाति अपने कर्तन्य को सर्वथा मूळ गई है इसलिये यह अधोदशा को प्राप्त हो गई है तथा होती जाती है, यद्यपि वर्त्तमान में भी इस जाति में समयानुसार श्रीमान् जन कुछ कम नहीं हैं अर्थात् अब भी श्रीमान् जन बहुत है और उन की तारीफ-घोर निद्रा में पड़े हुए सब आर्यावर्त्त के भार को उठानेवाळे मृतपूर्व बढ़े छाट श्रीमान् कर्जन खयं कर चुके हैं परन्तु केवल द्रव्य के ही होने से क्या हो सकता है जब तक कि उस का बुद्धिपूर्वक सद्पयोग न किया जावे, देखिये। हमारे मारवाडी ओसवाळ आता अपनी अज्ञानता के कारण अनेक अच्छे २ व्यापारों की तरफ कुछ भी व्यान न दे कर सड़े नामक जुए में रात दिन जुटे (संख्या) रहते हैं और अपने मोलेपन से वा यों कहिये कि-खार्थ में अन्ये हो कर जुए को ही अपना व्यापार समझ रहे है, तब कहिये कि-इस जाति की उन्नति की क्या आशा हो सकती है ! क्योंकि सव आसकारों ने जुए को सात महाव्यसनों का राजा कहा है तथा पर भव में इस से नरकादि द:ख का प्राप्त होना नतलाया है, अन सोचने की नात है कि-जन यह जुआ पर भन के भी छल का नाशक है तो इस भव में भी इस से सुख और कीर्ति कैसे प्राप्त हो सकती है. क्योंकि सत्कर्त्तेच्य नहीं माना गया है जो कि उमय लोक के सुख का सावक है।

इस दुर्व्यसन में हमारे जोसवाल त्राता ही पड़े है यह वात नहीं है, किन्तु वर्तमान में

. 'प्रायं: मारवाड़ी' वैश्य (महेश्वरी' और अगरवाल आदि) मी सब ही इस दुर्व्यसन में निमम हैं, हा विचार कर देखने से यह कितने खोक का विषय प्रतीत होता है इसी लिये तो कहा जाता है कि-वर्तमान में वैश्य जाति में अविद्या पूर्णरूप से घुस रही है, देंखिये ! पास में द्रव्य के होते हुए सी इन (वैक्य जनों) को अपने पूर्वजों के प्राचीन व्यवहार (व्यापारादि) तथा वर्तमान काल के अनेक व्यापार बुद्धि को निर्वुद्धि-रूप में करने वाली अविद्या के निकृष्ट प्रमाव से नहीं सुझ पड़ते हैं. अर्थात् सप्टे के सिवाय इन्हें और कोई व्यापार ही नहीं सुझता है। मला सोचने की नात है कि-सहे का करने वाला पुरुष साह्कार वा जाह कमी कहला सकता है ! कमी नहीं, उन को निश्चयपूर्वक यह समझ छेना चाहिये कि इस दुर्व्यसन से उन्हें हानि के सिवाय और कुछ भी लाम नहीं हो सकता है, यद्यपि यह बात भी कचित् देखने में आती है कि-किन्हीं लोगों के पास इस से भी द्रव्य आ जाता है परन्तु उस से क्या हुआ ! क्योंकि वह द्रव्य तो उन के पास से शीव्र ही चला जाता है (जुए से द्रव्यपात्र हुआ आज तक कहीं कोई भी सुना वा देखा नहीं गया है), इस के सिवाय यह भी विचारने की बात है कि-इस काम से एक को बाटा छग कर (हानि पहुँच कर) दूसरे को द्रव्य प्राप्त होता है अतः वह द्रव्य विद्युद्ध (निष्पाप वा दोवरहित) नहीं हो सकता है, इसी छिये तों (दोषयुक्त होने ही से तो) वह द्रव्य निन के पास उहरता भी है वह कार्छा-न्तर में औसर आदि व्यर्थ कामों में ही खर्च होता है, इस का प्रमाण प्रत्यक्ष ही देंस डीजिय कि-जार्ज तक सट्टे से पाया हुआ किसी का भी द्रव्य विद्यालय, औषघालय, धर्म-शाला और सदावत आदि शुम कमों में लगा हुआ नहीं दीखता है, सत्य है कि पंग का पैसा ग्रुम कार्य में कैसे छग सकता है, क्योंकि उस के तो पास आने से ही मनुष्य की बुद्धि मलीन हो जाती है, बस बुद्धि के मलीन ही जाने से वह पैसा शुम कार्यों में व्यय न हो कर बुरे मार्ग से ही जाता है।

संयुक्त प्रान्त (यूनाइटेड प्राविन्सेन) के छोटे छाट साहन आगरे में प्रागंज का बुनियादी पर्थर रखने के महोत्सन में पधारे थे तथा वहाँ आगरे के तमाम ज्यापारी सर्जन भी उपस्थित थे, उस संमंथ श्रीमान छोटे छाट साहन ने अपनी सुयोग्य नकृता में फीगंज ने ने और यसुना जी के नये पुछ के छामों को दिख्छा कर आगरे के ज्यापारियों को नहीं के ज्यापारि के ज्यापारियों को नहीं के ज्यापारि के ज्यापारियों को नहीं के ज्यापारि के बढ़ाने के छिये कहा था, उक्त महोदेंय की बक्तता को अविकेष ने छिस कर पाठकों के ज्ञानार्थ हम उस का सारमात्र छिखते हैं, पाठकंगण उसे देखें कर समझ सकेंगे कि उक्त साहन नहादुर ने अपनी नकृता में ज्यापारियों को कैसी उक्त दी थी, नकृता का सारांश यही था 'कि कि ईमानदारी और सचा छेन देन उक्त शिक्षा दी थी, नकृता का सारांश यही था 'कि कि ईमानदारी और सचा छेन देन

करना ही न्यापार में सफलता का देने नाला है, आगरे के निवासी तीन प्रकार के जुए में लगे हुए है, यह अच्छी वात, नहीं है-क्योंकि यह आगरे के व्यापार की उन्नति का बावक है, इस लिये नाज का जुआ, - चाँदी का जुआ और अफीम का सट्टा तुम लोगों को छोड़ना चाहिये, इन जुओं से नितनी बल्दी नितना धन आता है वह उतनी ही जल्दी उन्हीं से नष्ट भी हो जाता है, इस लिये इस बुराई को छोड़ देना चाहिये, यदि ऐसा न किया जावेगा तो-सर्कार को इन के रोकने का कानून वनाना पड़ेगा, इस लिये अच्छा हो कि लोग अपने आप ही अपने मले के लिये इन जुओं को छोड़ दें, स्मरण रहे कि-सकीर को इन की रोक का कानून बनाना कुछ कठिन है परन्तु असम्भव नहीं है, भीगंज की भविष्यत् उन्नति ज्यापारियों को ऐसे दोयों को छोड़ कर सचे व्यापार में मन लगाने पर ही निर्भर है" इत्यादि, इस प्रकार अति सुन्दर उपदेश देकर श्रीमान् छाट साहब ने चमचमाती (चमकती) हुई कन्नी और वस्की से चूना छगाया और पत्थर रखने की रीति पूरी की गई, अब सेठ साहुकारों और न्यापारियों की इस विपय पर ध्यान देना चाहिये कि-श्रीमान लाट साहन ने जुआ न खेलने के लिये जो उपदेश किया है वह वासाव में कितना हितकारी है, सत्य तो यह है कि-यह उपदेश न केवल व्यापारियों और मारवाड़ियों के लिये ही हितकारक है बरन सम्पूर्ण भारतवासियों के किये यह उन्नति का परम मूल है, इस किये हम भी प्रसंगवञ अपने जुआ खेळने वाले भाइयों से पार्थना करते हैं कि-अँमेन जातिरत श्रीमान् छोटे लाट साहव के उक्त सद्पदेश को अपनी हृदयपटरी पर लिख लो, नहीं तो पीछे अवश्य पछताना पहेगा. देखों। छोकोक्ति भी प्रसिद्ध है कि-"जो न माने वड़ो की सीख, वह ठिकरा छ मांगे भीख" देखो। सब ही को विदित है कि-तुम ने अपने गुरु, शास्त्रों तथा पूर्वजों के उपवेश की ओर से अपना ध्यान प्रथक् कर छिया है, इसी छिये तुम्हारी जाति का वर्चमान में उपहास हो रहा है परन्तु निश्चय रक्लो कि-यदि तुम अब भी न चेतोगे तो तुन्हें राज्यनियम इस विषय से लाचार कर रेंट्र क् करेगा, इस लिये समस्त मार-वाड़ी और ज्यापारी सज्जनों को उचित है कि हुन्यसन का त्याग कर सचे ज्यापार को करें, हे प्यारे मारवाडियो और न्यापारियो। आप छोग न्यापार में उन्नति करना चाहें तो आप लोगों के लिये कुछ मी कठिन बात नहीं है, क्योंकि यह तो आप लोगों का पुरुपरा का ही व्यवहार है, देखो ! यदि आप लोग एक एक हजार का भी शेयर नियत कर आपस में वेंचे (छे छेवें) तो आप छोग बात की बात में दो चार करोड़ रुपये इक्ट्रे कर सकते हैं और इतने धन से एक ऐसा उत्तम कार्याख्य (कारखाना) खुल सकता है कि जिस से देश के अनेक कप्ट दूर हो सकते है, यदि आप लोग इस वात से डरें और कहें कि हम छोग कहां और कारखानों के काम को नहीं जानते हैं,

तो यह आप लोगों का मय और कथन न्यर्थ है, क्योंकि मर्तृहरि जी ने कहा है कि—
"सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति" अर्थात् सन गुण कञ्चन (सोने) का आश्रय लेते हैं,
इसी प्रकार नीतिशास्त्र में भी कहा गया है कि—"न हि तद्विद्यते किञ्चित, यद्धेन न
सिघ्यति" अर्थात् संसार में ऐसा कोई काम नहीं है जो कि घन से सिद्ध न हो सकता
हो, तात्पर्य यही है कि—घन से प्रत्येक पुरुष सब ही कुछ कर सकता है, देखो! यदि
आप लोग कलों और कारखानों के काम को नहीं जानते हैं तो द्रव्य का न्यय करके
अनेक देशों के उत्तमोत्तम कारीगरों को बुला कर तथा उन्हें खाघीन रख कर आप कारखानों का काम अच्छे प्रकार से चला सकते हैं।

अब अन्त में पुनः एक बार आप लोगों से यही कहना है कि-हे प्रिय मित्रो! अब शीघ ही चेतो, अज्ञान निद्रा को छोड़ कर खजाति के सद्गुणों की बृद्धि करो और देश के कल्याणरूप श्रेष्ठ व्यापार की उन्नति कर उमय छोक के मुख को प्राप्त करो॥

यह पश्चम अध्याय का जोसवाल वंशोत्पत्तिवर्णन नामक प्रथम प्रकरण समाप्त हुआ ॥

दितीय प्रकरण--पोरवाल वंशोत्पत्तिवर्णन ॥

पोरवाल वंशोत्पत्ति का इतिहास ॥

पद्मावती नगरी (जो कि आबू के नीचे वसी थी) में जैनाचार्य ने प्रतिबोध वेकर छोगों को जैनधर्मी बना कर उन का पोरवाल बंश स्थापित किया शोहसत्य हा कि

दो एक छेख हमारे देखने में ऐसे भी आये हैं जिन में पोरवाल ने से में को प्रतिवीध देने बाला जैनाचार्य श्रीहरिशद सूरि जी महाराज को छिला है, परन्तु अ^मं यह बात किल्डुक

१-ये (पोरवाल) जन दक्षिण सारवाड़ (गोडवाड़) और ग्रजरात में के विक हैं, इन लोगों का लोसवालों के साथ विवाहादि सम्बन्ध नहीं शिता है, किन्तु केवल मोजनव्यवहारे हैं होता है, इन लोगों का फिरका जॉघडानामक है, उस में २४ गोज हैं था उस में जैनी और वैष्णव दोनों वर्मी के नाले हैं, इन का एक फिरका जॉघडानामक है, उस में २४ गोज हैं था उस में जैनी और वैष्णव दोनों वर्मी के नाल हैं, इन के स्थानों में वैष्णव पोरवालों के करीव तीन हजार घर नसते हैं, इन के सिवाय वाकी के जैनघर्मघारी पोरवाल जॉघड़े हैं जो कि मेदपुर और उज्जैन सादि में विवास करते हैं, उन दें सिवाय वाकी के जैनघर्मघारी पोरवाल जॉघड़े हैं जो कि मेदपुर और उज्जैन सादि में विवास करते हैं, उन दें सिवाय वाकी के जैनघर्मघारी पोरवाल जॉघड़े हैं जो कि मेदपुर और उज्जैन सादि में विवास करते हैं, उन निवायर वाकी के जैनघर्मघारी पोरवाल जॉघड़े हैं जो कि मेदपुर और उज्जैन सादि में विवास करते हैं, उन निवायर वाकी के जिनघर्मघारी पोरवाल जॉघड़े हैं जो कि मेदपुर और उज्जैन सादि में विवास करते हैं, उन निवायर वाकी के अन्य वाकी के निवायर करते हैं, उन निवायर वाकी के निवायर करते हैं, उन निवायर वाकी के अन्य वाकी के निवायर करते हैं, उन निवायर वाकी के जिनघर्मघार पारवायर वाकी के निवायर करते हैं, उन निवायर वाकी के निवायर करते हैं, उन के सिवायर वाकी के निवायर करते हैं, उन का तो हैं कि निवायर वाकी के निवायर करते हैं, उन के सिवायर वाकी के निवायर करते हैं, उन का तो हैं विवायर करते हैं, उन का तो वाकी के निवायर वाकी के सिवायर वाकी के निवायर वाकी के सिवायर वाक

गठत सिद्ध होती है, क्योंिक श्री हरिमद्र स्रि जी महाराज का खर्गवास विक्रम संवत् ५८५ (पांच सी पचासी) में हुआ या और यह वात बहुत से अन्यों से निर्श्रम सिद्ध हो चुकी है, इस के अतिरिक्त—उपाध्याय श्री समयसुन्दर जी महाराजकृत रोचु- क्षय रास में तथा श्री वीरविजय जी महाराज कृत ९९ मकार की पूजा में सोठह उद्धार शेचुक्षय का वर्णन किया है, उस में विक्रम संवत् १०८ में तेरहवां उद्धार जावड़ नामक पोरवाल का लिखा है, इस से सिद्ध होता है कि—विक्रम संवत् १०८ से पहिले ही किसी जैनाचार्य ने पोरवालों को मितवोध देकर उक्त नगरी में उन्हें जैनी बनाया था। सूचना—इस पोरवाल बंश में—विमलशाह, धर्जाशाह, वस्तुपाल और तेजपाल आदि अनेक पुरुष धर्मज्ञ और अन्योल लक्ष्मीवान् हो गये है. जिन का नाम इस संसार में खर्णीक्षरों (खुनहरी अक्षरों) में इतिहासों में संलिखित है, इन्ही का संक्षिप्त वर्णन पाठकों के ज्ञानार्थ हम यहाँ लिखते है:—

पोरवाल ज्ञातिभूषण विमलज्ञाह मन्त्री का वर्णन ॥

गुर्जैरात के महाराज भीमदेव ने विमलकाह को अपनी तरफ से अपना प्रधान अधि-कारी अर्थात् दण्डपति नियत कर आबू पर भेजा था, यहाँ पर उक्त मन्त्री जी ने अपनी

9—इन्हों ने मुल्क बोखवाड में श्री आदिनाय खानी का एक मनोहर मन्दिर बनवाया या (जो कि सावरी से तीन कोश पर अभी राणकपुर नाम से प्रसिद्ध है), इस मन्दिर की उत्तमता यहाँ तक प्रसिद्ध है कि—रचन में इस के समान दूसरा मन्दिर नहीं माना जाता है, कहते हैं कि—इस के बनवाने में ९९ लाख खर्ण मोहर का क्षर्य हुआ था, यह बात श्री समयग्रन्दर जी उपाध्याय ने लिखी है ॥

िक्षिट्ट र-आबू और चन्त्रावती के राजकुटुम्बजन अगहिलवाडा पहन के महाराज के माण्डलिक थे, इन क्षित्र, इतिहास इस प्रकार है कि-यह वश नालुक्य वश का था, इस वश में नीचे लिखे हुए लोगों ने इस कि हिंदी कि एक विद्या कि मुल्याज ने ईस्ती सन् ९४१ से ९९६ पर्यन्त, नामुण्ड ने ईस्ती सन् ९९६ से १०१० से १०१२ तक, वलम ने ६ वहीने तक, दुर्लम ने ईस्ती सन् १०१० से १०२२ तक (यह जैनवर्मी था), भीमदेव ने ईस्ती सन् १०१२ से १०६२ तक, इस की वरकरारी में घनराज आबू पर राज्य करता था तथा भीमदेव ने ईस्ती सन् १०१२ से १०६२ तक, इस की वरकरारी में घनराज आबू पर राज्य करता था तथा भीमदेव ने सारा नगर में भोजराज गही पर था, आबू के राजा घनराजने अणहिल पहन के राजवज्ञ का पक्ष छोड़ कर राज्य मोज का पक्ष किया था, इसी लिये मीमदेव ने अपनी तरफ से विमल्लाह को अपना प्रधान अधिकारी अर्थात दण्डपति नियत कर आबू पर मेजा था और उसी समय में विमल्लाह ने श्री आदिनाथ का देवालय बनवाया था, भीमदेव ने धार पर भी लाकमण किया था और इन्हीं की वरकरारी में गज़नी के महमूद ने सोमनाय (महादेव) का मन्दिर खट़ा था, इस के पीछे गुजरात का राज्य कर्ण ने ईस्ती सन् १०६३ से १०६३ तक किया, जयसिंह अथवा विद्याल ने ईस्ती सन् १०९३ से १०९३ तक राज्य किया विद्याल ने ईस्ती सन् १०९३ से १०४३ तक राज्य किया (यह जयसिंह चालुक्य वश में एक वड़ा तेजसी और धुरन्धर पुष्प हो गया है), इस के पीछे कुमारपाल ने ईस्ती सन् १९४४ से १९४३ तक राज्य किया (इस ने जैनावार्य श्री हेमचन्द्र जी मूरि से जैन धर्म का प्रहण किया था, उस

योग्यतानुसार राज्यसंचा का अच्छा प्रबंध किया या कि जिस से सब लोग उन से प्रसन्न थे, इस के अतिरिक्त उन के सद्ध्यवहार से श्री अम्बादेवी भी साक्षात, होकर उन पर प्रसन्न हुई श्री और उसी के प्रसाव से मन्नी जी ने आबू पर श्री आदिनाथ सामी के मन्दिर को बनवाना विचारा परन्तु ऐसा करने में उन्हें जगह के लिये कुछ दिकत उठानी पड़ी, तब मन्नी जी ने कुछ सोच समझ कर प्रथम तो अपनी सामर्थ्य की दिखला कर ज़गीन को कको में किया, पीछे अपनी उदारता को दिखलाने के लिये उस ज़गीन पर रुपये जिछा दिये और वे रुपये ज़गीन के मालिक को दे दिये; इस के प्रधात देशान्तरों से नामी कारीगरों को बुलवा कर संगमरमर परण्य (श्रेत पाषाण) से अपनी इच्छा के अनुसार एक अति सुन्दर अनुपम कारीगरी से युक्त मन्दिर बनवाया, जब वह मन्दिर बन कर तैयार हो गया तब उक्त मन्नी जी ने अपने गुरु बृहत्खरतरगच्छीय जैनाचार्य श्री बर्द्धमान सूरि जी महाराज के हाथ से विक्रम संवत् १०८८ में उस की प्रतिष्ठा करवाई।

इस के अतिरिक्त—अनेक धर्मकार्यों में मन्नी विमल्जाह ने बहुत सा द्रव्य लगाया, विस की गणना (गिनती) करना अति कठिन है, धन्य है ऐसे धर्मन्न आवकों को जो कि लक्ष्मी को पाकर उस का सदुपयोग कर अपने नाम को अचल करते है।

समय बन्द्रावती और आबू पर बद्योधकल परमार राज्य करता था), इस के पीछे अजगपाल ने ईसी सन् १९७३ से १९७६ तक राज्य किया. इस के पीछे दसरे मुखराज ने ईसी सन् १९७६ से १९७४ तक राज्य किया. इस के पीछे भोला भीमदेव ने ईस्ती सन् १२१७ से १२४१ तक राज्य किया (इस की अमलदारी में आबू पर कोटपाल और घारावल राज्य करते थे, कोटपाल के सुलोच नामक एक पुत्र और इन्छिनी क्रमारी नामक एक कन्या थी अर्थात दो सन्तान वे, इच्छिनी क्रमारी अखन्त सन्दरी यी अतः शीमदेव ने कोटपाल से उस कुमारी के देने के लिये कहला भेजा परन्त कोटपाल ने इन्छिनी छमारी की अजमेर के चौहान राजा वेशकदेन को देने का पहिन्ने ही से उहरान कर किया था इस किये कोउपाल ने भीमदेव से क्रमारी के देने के लिये इनकार किया. उस इनकार को सुनते ही भीमदेव ने एक वह सैन्य को साथ में क्रेकर कोटपाल पर चढाई की और आवृगढ के आगे दोनों में ख्व ही युद्ध हुआ, आखिर कार उस युद्ध में कोटपाल हार गया परन्त उस के पीछे भीमदेव को श्वष्ठात्रहीन गोरी का सामना करना पड़ा और उसी में उस का नाश हो गया), इस के पीछे त्रिसुनन ने ईसी सन् १२४१ से १२४४ तक राज्य किया (यह ही चालुक्य वश में आखिरी पुरुष था), इस के पीछे दूसरे भीमदेव के अधिकारी मीर धवल ने वाषेला क्या को आकर जमाया, इस ने गुजरात का राज्य किया और अपनी राजवानी को अगहिल वाहा पहन में न करके घोलेरे में की, इस वंश के निशालदेव, अर्जुन और सारंग, इन तीनों ने राज्य किया और इसी की वरकरारी में आबू पर प्रसिद्ध देवालय के निर्मापक (बनवाने वाले) पोरवाल ब्रातिभवण वस्तपाल और वेजपाल का पदाव हुआ ॥

१-इस मन्दिर की मुन्दरता का वर्णन इस यहाँ पर क्या करें, क्योंकि इस का पूरा खरूप तो वर्ध जा कर देखने से ही माछम हो सकता है ॥ पोरवाल ज्ञातिमूषण नररत वस्तुपौल और तेजपार्ल का वर्णन ॥

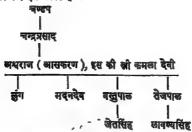
वीर घवल वाधेला के राज्यसमय में वस्तुपाल और तेजपाल, इन दोनों भाइयों का बड़ा मान था, वस्तुपाल की पत्नी का नाम लिलता देवी था और तेजपाल की पत्नी का नाम अनुपमा था।

बस्तुपौछ ने गिरनार पर्वत पर जो श्री नेमिनाथ मगवान का देवालय बनवाया था बह छलिता देवी का स्मारकरूप (स्मरण का चिहरूप) बनवाया था।

किसी समय तेजपाल की पत्नी अनुपमा देवी के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि—अपने पास में अपार सम्पित है उस का क्या करना चाहिय, इस बात पर लूव विचार कर उस ने यह निश्चय किया कि—आबूराज पर सब सम्पित को रख देना ठीक है, यह निश्चय कर उस ने सब सम्पित को रख कर उस का अचल नाम रखने के लिये अपने पति और जेठ से अपना विचार प्रकट किया, उन्हों ने भी इस कार्य को श्रेष्ठ समझ कर उस के विचार का अनुमोदन किया और उस के विचार के अनुसार आबूराज

१-इन्हीं के समय में दशा और बीसा, ये दो तड़ पड़े हैं, जिन का वर्णन छेख के वढ़ जाने के मय से यहाँ पर नहीं कर सकते हैं॥

२-इन की वशाविल का कम इस प्रकार है कि:--



् ३-वम्बई इलाके के उत्तर में आखिरी टॉवपर सिरोही संस्थान में अरवली के पिद्यम में करीन साठ माइल पर अरवली की घाटी के सामने यह पर्नत है, इस का आकार वहुत अन्या और चौड़ा है अर्थात हस की लम्बाई तलहटी से १० माइल है, कपर का घाटमाथा १४ माइल है, शिखा १ माइल है, इस की दिशा ईशान और नैक्ट्रिस है, यह पहाल बहुत ही प्राचीन है, यह बात इस के खरंप के देखने से ही जान की जाती है, इस के परश्र वर्तुलाकार (गोर्लाकार) हो कर ब्रॅबाले (विकने) हो गये हैं, इस स्थित का हेतु यही है कि इस के उपरश्र वर्तुल कालपर्यन्त वायु और वर्षा आदि पश्च महामूर्तों के परमाण्यों का परिणमन हुआ है, यह भूगर्मशास्त्रनेताओं का मत है, यह पहाल समुद्र की सपाटी से घाटमाथा तक ४००० फुट है और पाया से ३००० फुट है तथा इस के सर्वान्तिम ऊंचे शिखर ५६५३ फुट हैं उन्हीं को ग्रंग शिखर कहते हैं, ईसी सन् १८२२ में—राजस्थान के प्रियद इतिहासलेखक कर्नल टाड साह्य यहाँ (आवृराज) पर आये ये तथा यहाँ के मन्दिरों को देख कर असन्त प्रसन्न हो कर उन की, बहुत

पर प्रथम से ही विमलकाह के बनवाये हुए श्री आदिनाथ सामी के भव्य देवालय के समीप में ही संगमरमर पत्थर का एक सुन्दर देवालय बनवाया तथा उस में श्री नेमिनाथ मगवान् की मूर्ति स्वापित की।

उक्त दोनों देवालय केवल संगमरमर पाषाण के बने हुए हैं और उन में प्राचीन् आर्य लोगों की शिल्पकला के रूप में रत्न मरे हुए हैं, इस शिल्पकला के रत्नमण्डार की देखने से यह बात स्पष्ट मान्द्रम हो जाती है कि—हिन्दुस्थान में किसी समय में शिल्पकला कैसी पूर्णावस्था को पहुँची हुई थी।

इन मन्दिरों के बनने से वहाँ की श्लोमा अक्षयनीय हो गई है, क्योंकि-प्रथम तो आबू ही एक रमणीक पर्वत है, दूसरे-ये छन्दर देवालय उस पर बन गये हैं, फिर मला शोमा की क्या सीमा हो सकती है! सब है-"सोना और छुगन्ध" इसी का नाम है।

तारीफ की थी, देखिये। यहाँ के जैन मन्दिरों के विषय में उन के कथन का सार यह है—"यह शत निर्विवाद है कि-इस मारतवर्ष के सव देवालयों में ये आयू पर के देवालय विशेष मध्य है और ताज-महल के विवाय इन के साथ मुकायिला करने वाली इसरी कोई भी इमारत नहीं है, धनाक्ष्य भक्तों में से एक के खड़े किये हुए आनन्ददर्शक तथा अमिमान योग्य इस कीर्तिलाम्म की अनहत् मुन्दरता का वर्णन करने में कलम अधाक है" इत्यादि, पाठकमण जानते ही हैं कि-कर्नल टाड साहद ने राजपूताने का इतिहास बहुत धुयोग्य रीति से छिखा है तथा उन का लेख प्राय: सव को माय्य है, क्योंकि-जो कुछ उन्हों ने लिखा है वह सब प्रमाणसहित छिखा है, इसी लिये एक कवि ने उन के विषय से यह दोहा कहा है—"टाड समा साहिव विना, अत्रिय यश स्तय थात ॥ फार्वस सम साहिव विना, नहिँ उधरत गुजरात" ॥ १ ॥ अर्थात् यह टाड साहद न लिखते तो क्षत्रियों के यश का नाश हो जाता तथा फार्वस साहद न छिखते तो गुजरात का उद्धार नहीं होता ॥ १ ॥ तास्पर्य यह है कि-राजप्-ताने के इतिहास को कर्नल टाड साहद ने और गुजरात के राजाओं के इतिहास को मि॰ फार्वस साहद ने बहुत परिश्रम करके लिखा है ॥

9-इस पवित्र और रमणीक स्थान की यात्रा इस ने संबत् १९५८ के कार्तिक कृष्ण ७ को की थी तथा दीपमालिका (दिवाली) तक वहाँ ठहरें थे, इस यात्रा में मक्सूद्रावादिवासी राय बहाइर श्रीमान् श्री मेघराज जी कोठारी के करेष्ठ पुत्र श्री रखाळ बावू खगंजासी की धर्मपत्नी श्राविका सुन्न कुमारी और उन के मामा बच्छावत श्री गोविन्द्वन्द जी तथा नीकर चाकरों सहित कुळ सात आदमी थे, (इन की श्राविक विनती होने से हमें भी यात्रासंगम करना पड़ा था), इस यात्रा के करने में आवृ, श्रेष्ठित श्री सिर्ता के करने में आवृ, श्रेष्ठित ग्रीरावार, मोयणी और राणपुर आदि पश्वतीर्थी की यात्रा भी बढ़े आनन्द के साथ हुई थी, इस यात्रा में जो इस (आयू) स्थान की अनेक बार्तों का अनुमन हमें हुआ उन में से कुछ बार्तों का वर्णन हम पाठकों के आनार्थ यहां किखते हैं:—

क आगाप पर क्यां कर करती — आबू पर वर्तमान में बस्ती अच्छी है, यहाँ पर तिरोही महाराज का अस्तू पर क्तीमान चस्ती — आबू पर वर्तमान में बस्ती अच्छी है, यहाँ पर तिरोही महाराज का एक अधिकारी रहता है और वह देखनाड़ा (जिस जगह पर उक्त मन्दिर बना हुआ है उस को इसी देखनाड़ा नाम से कहते हैं) को जाते हुए यात्रियों से कर (महस्त्व) वसूब करता है, परन्तु साधु, यदी;

उक्त देवालय के बनवाने में द्रव्य के ज्यय के विषय में एक ऐसी दन्तकथा है कि— शिल्पकार अपने हथियार (औज़ार) से जितने पत्थर कोरणी को खोद कर रोज़ निकालते थे उन्हीं (पत्थरों) के बरावर तौल कर उन को रोज मजूरी के रुपये दिये जाते थे, यह कम बरावर देवालय के बन चुकने तक होता रहा था।

दूसरी एक कथा यह भी है कि -दुष्काल (' दुर्भिक्ष वा अकाल) के कारण आबू पर बहुत से मजदूर लोग इकट्ठे हो गये थे, वस उन्हीं को सहायता पहुँचाने के लिये यह देवालय बनवाया गया था।

भीर आझण आदि को कर नहीं देना पडता है, वहीं की और यहां के अधिकार में आये हुए जिस्सा आदि प्रामों की उत्पत्ति की सबै व्यवस्था उक्त अधिकारी ही करता है, इस के सिवाय—यहां पर बहुत से सकीरी नौकरों, व्यापारियों और दूसरे भी कुछ रहवासियों (रहेसो) की वस्ती है, वहां का बाज़ार भी नाभी है, वर्तमान में राजपूताना आदि के एजेंट यवनंद जनरक के निवास का यह मुख्य स्थान है इस किये यहां पर राजपूताना के राजो महाराजों ने भी अपने २ बॅगके बनवा किये हैं और वहां वे कोग प्राय: उच्च ऋतु में हवा खाने के किये जाकर उहरते हैं, इस के अतिरिक्त उन (राजों महाराजों) के दवारी वकीरक कोग वहां रहते हैं, अवीचीन सुधार के अनुकूक सबे साधन राज्य की ओर से प्रजा के ऐश आराम के किये वहाँ उपस्थित किये गये हैं जैसे—म्यूनीसिपालटी, प्रशस्त मार्ग और रोशनी का सुप्रवन्ध आदि, यूरोपियन कोगों का मोजनालय (होटक), पोष्ट आफिस और सरत का मैहान, इलावि इमारतें इस स्थळ की शोमारूप हैं।

आव पर जाने की सुरामता-खरैडी नामक स्टेशन पर उतरने के बाद उस के पास में धी सुर्शिदाबादनिवासी श्रीमान् श्रीद्धुथ सिंह जी रायबहादुर दुधेडिया के बनवाये हुए जैन मन्दिर और धर्मेशाला हैं. इस लिये गढ़ि आवस्यकता हो तो धर्मेशाला में ठहर जाना चाहिये नहीं तो सवारी कर आब पर चल्ले जाना चाहिये, आबू पर डाक के पहेंचाने के लिये और वहां पहेंचाने की सवारी का प्रवध करने के लिये एक भावेदार रहता है उस के पास तांगे आदि साडे पर मिळ सकते हैं. आब पर जाने का मार्ग उत्तम है तथा उस की अम्बाई सत्रह माइल की है. ताँगे में तीन मनुष्य बैठ सकते हैं और प्रति मनुष्य भ) रुपये माडा लगता है अर्थात् पूरे तोंगे का किराया १२) रुपये लगते हैं, अन्य सवारी की अपेक्षा तोंगे में जाने से आराम भी रहता है, आबू पर पहुँचने में ढाई तीन घण्टे छगते हैं, वहाँ भाडेबार (ठेके वाछे) का आफिस है और घोडा गाडी का तवेला भी है. आबू पर सब से उत्तम और प्रेक्षणीय (देखने के भोग्य) पदार्थ जैन देवालय है, वह माडेदार के स्थान से डेढ माइल की बूरी पर है, वहां तक जाने के लिये वैछ की और घोडे की गाडी मिलती है, देलवाडे में देवालय के बाहर शात्रियों के उतरने के किये स्थान वने हुए हैं, यहाँ पर बनिये की एक बूकान भी है जिस में आदा दाल स्नादि सब सामान अल्य से मिल सकता है, देलवाडा से थोडी दूर परमार जाति के गरीव लोग रहते है जो कि अजद्री खादि काम काज करते हैं और दही दूध आदि भी देंचते हैं. देवालय के पास एक बावडी है उस का पानी अच्छा है. यहाँ पर भी एक मावेदार घोडों को रखता है इस किये कहीं जाने के लिये घोडा माडे पर मिल सकता है, इस से अचलेश्वर, बोमुख, नखी तालान और पर्वत के प्रेक्षणीय बूसरे स्थानों पर जाने के लिये तथा सैर करने को जाने के लिये बहुत खाराम है, उष्ण ऋतु में आबू पर बड़ी बहार रहती है इसी छिये वहें लोग प्राय: उष्ण ऋतु को वहीं व्यतीत करते हैं ॥

. इसी रीति से इस के विषय में बहुत सी बातें अचिकत हैं जिन का वर्णन अनावश्यक समझ कर नहीं करते हैं, खैर-देवालय के बनने का कारण चाहे कोई ही क्यों न हो किन्तु ,असल में सारांश तो यही है कि-इस देवालय के बनवाने में अनुपमा और लील-वती की घर्मबुद्धि ही मुख्य कारणमूत समझनी चाहिये, क्योंकि-निस्सीम धर्मबुद्धि और निष्काम मिक के विना ऐसे महत् कार्य का कराना अति कठिन है, देखो। आवृ सरीखे दुर्गम मार्ग पर तीन हजार फुट ऊँची संगमरमर पत्थर की ऐसी मनोहर इमा-रत का उठवाना क्या असामान्य औदार्य का दर्शक नहीं है ? सब ही जानते हैं कि-आबू के पहाड़ में संगमरमर पत्थर की खान नहीं है किन्तु मन्दिर में छगा हुआ सब ही पत्थर आबू के नीचे से करीब पचीस माइल की दूरी से जरीवा की खान में से लाया गया था (यह पत्थर अम्बा भवानी के हुँगर के समीप वखर प्रान्त में मिळता है) परन्तु कैसे लाया गया, कौन से मार्ग से लाया गया, लाने के समय क्या २ परिश्रम उठाना पड़ा और कितने द्रव्य का खर्च हुआ, इस की तर्कना करना अति कठिन ही नहीं किन्तु अशस्यवत् प्रतीत होती है, देखों! वर्तमान में तो आबू पर गाड़ी आदि के जाने के लिये एक मशस्त मार्ग बना दिया गया है परन्तु पहिले (देवालय के बनने के समय) तो आबू पर चढ़ने का मार्ग अति दुर्गम था अर्थात् पूर्व समय में मार्ग में गहन झाड़ी थी तथा अवोरी जैसी क्रूर जाति का सञ्चार आदि था, मला सोचने की बात है कि-इन सब फठिनाइयों के उपस्थित होने के समय में इस देवालय की स्थापना जिन पुरुषों ने करवाई थी उन में घमें के इट निश्चय और उस में स्थिर मक्ति के होने में सन्देह ही क्या है।

वस्तुपाल और तेजपाल ने इस देवालय के अतिरिक्त भी देवालय, प्रतिमा, शिवालय जपाश्रय (उपासरे), विद्याशाला, स्तूप, मस्जिद, कुत्था, तालाव, वावड़ी, सदावत और पुरतकालय की स्थापना आदि जनेक शुम कार्य किये थे, जिन का वर्णन हम कहाँ तक करें बुद्धिमान् पुरुष कपर के ही कुछ वर्णन से उन की वर्मबुद्धि और लक्ष्मीपात्रता का अनुमान कर सकते हैं।

इस (वस्तुपाल कीर तेजपाल) को उदाहरणहरूप में आगे रखने से यह बात भी स्पष्ट माल्यम हो सकती है कि-पूर्व काल में इस आर्यावर्त देश में बड़े २ परोपकारी वर्मात्मा तथा कुवेर के समान बनाट्य गृहस्य जन हो जुके हैं, आहा! ऐसे ही पुरुष-रखों से यह रलगर्मा वस्तुन्धरा स्रोमायमान होती है और ऐसे ही नररलों की सत्कीर्ति और नाम सदा कायम रहता है, देखों! ग्रुम कार्यों के करने वाले वे वस्तुपाल और तेज-पाल इस संसार से चले जा जुके हैं, उन के गृहस्थान आदि के भी कोई चिह्न इस समय हुँ हुने पर भी नहीं मिलते है, परन्तु उक्त महोदयों के नामाङ्कित कार्यों से इस मारतम्मि

के इतिहास में उन का नाम सोने के अक्षरों में अद्भित होकर देदीप्यमान हो रहा है और सदा ऐसा ही रहेगा, वस इन्हीं सब बातों को सोच कर मनुष्य को यथाशक्ति शुभ कार्यों को करके उन्हीं के द्वारा अपने नाम को सदा के लिये स्थिर कर इस संसार से प्रयाण करना चाहिये कि—जिस से इस संसार में उस के नाम का स्मरण कर सब लोग उस के गुणों का कीर्चन करते रहें और परलोक में उस को अक्षय सुख का लाम हो॥

यह पश्चम अध्याय का पोरवाल वंश्वोत्पत्तिवर्णन नामक दूसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

तीसरा प्रकरण-खंडेलवाल जातिवर्णन ॥

संडेल वाल (सिरावगी) जाति के ८४ गोत्रों के होने का संक्षिप्त इतिहास ॥

श्री महाबीर खामी के निर्वाण से ६०९ (छः सौ नौ) वर्ष के पश्चात् दिगम्बर मतं की उत्पत्ति सहस्रमञ्ज साधु से हुई, इस मत में कुमदचनद्रनामक एक मुनि बड़ा पण्डित हुआ, उस ने सनातन जैन धर्म से चौरासी बोलों का मुख्य फर्क इस मत में डाला, इस के अनन्तर कुछ वर्ष बीतने पर इस मत की नींव का पाया जिनसेनाचार्य से दृढ़ हुआ, जिस का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है कि—खंडेला नगर में सूर्यवंशी चौहान खंडेलगिर राज्य करता था, उस समय अपराजित मुनि के सिँगाड़े में से जिनसेना-चार्य ५०० (पाँच सौ) मुनियों के परिवार से युक्त विचरते हुए इस (खंडेला) नगर के उद्यान में आकर ठहरे, उक्त नगर की अमलदारी में ८४ गाँव लगते थें, दैववश कुछ दिनों से सम्पूर्ण राजधानी में महामारी और विधूचिका रोग अत्यन्त फैल रहा था

१-यह सत सनातन जैनसेताम्बर धर्म में से ही निकला है, इस सत के आवायों तथा साधुजों ने नम्र रहना पसन्द किया था, वर्षमान से इस सत के साधु और साध्वी नहीं हैं सतः आवकों से ही धर्मोपदेग आदि का काम चलता है, इस सत में जो ८४ बोलों का फर्क बाला गया है उन में मुख्य ये पॉच वार्ते हैं— १-केवली आहार नहीं करे, १-पल में केवल झान नहीं है, १-ली को मोक्ष जहां होता है, ४-केनमत के दिगम्बर आन्नाय के सिनाय इसरे को मोक्ष नहीं होता है, ५-सब हल्यों में काल हल्य मुख्य है, इन बोलों के विषय में जैनावायों के बनाये हुए संस्कृत में खण्डन मण्डन के बहुत से प्रम्य मौजूद है परम्तु केवल माथा जानने वालों को यह उन्त किय देखना हो तो विद्यासायर न्यायरल सुनि श्री धान्तिविजय जी का बनाया हुआ सानवप्रमंसिहता नामक प्रम्य तथा खर्मवासी सरतरपच्छीय सुनि श्री विदानन्द जी का बनाया हुआ सानवप्रमंसिहता नामक प्रम्य (जिस के विषय में इसी प्रम्य के दूसरे अध्याय में हम लिस कुके है) वेखना चाहिये ॥

कि-जिस से हजारों आदमी गर ज़के वे और गर रहे थे, रोग के प्रकोप को देख कर वहाँ का राजा बहुत ही मयातुर हो गया और अपने गुरु बाक्सणों तथा ऋषियों को बुळाकर सब से उक्त उपद्रव की शान्ति का उपाय पूछा, राजा के पूछने पर उक्त धर्म-गुरुओं ने कहा कि-"हे राजन ! नरमेघ यह को करो, उस के करने से शान्ति होगी" उन के बचन को सन कर राजा ने शीघ ही नरमेघ यज्ञ की तैयारी करवाई और यज्ञ में होमने के लिये एक मनुष्य के लाने की आज्ञा दी, संयोगवश राजा के नौकर मनुष्य को हुँढ़ते हुए इमज्ञान में पहुँचे, उस समय वहाँ एक दिगम्बर मुनि ध्यान लगाये हुए खड़े थे, बस उन को देखते ही राजा के नौकर उन्हें पकड़ कर यज्ञशाला में के गये, यज्ञ की विधि कराने वालों ने उस सनि को सान करा के वसामुमण पहिरा कर राजा के हाथ से तिलक करा कर हाथ में सद्धरूप दे कर तथा वेद का मन्न पढ़ कर हवनकुण्ड में स्वाहा कर दिया, परन्तु ऐसा करने पर भी उपद्रव शान्त न हुआ किन्तु उस दिन से उलटा असंख्यातगुणा क्केश और उपद्रव होने लगा तथा उक्त रोगों के सिवाय अमिदाह, अनाष्ट्रष्टि और प्रचण्ड हवा (आँथी) आदि अनेक कहाँ से प्रजा को अस्यन्त पीड़ा होने लगी और प्रजाजन अत्यन्त व्याकुछ होकर राजा के पास जा २ कर अपना २ कष्ट खुनाने लगे, राजा भी उस समय चिन्ता के मारे विहल हो कर मुर्कागत (बेहोश) हो गया, मुर्छा के होते ही राजा को लग्न आया और लग्न में उस ने पूर्वोक्त (दिगम्बर मत के) मुनि को देखा, जब मूर्छी दूर हुई और राजा के नेत्र खुरू गये तब राजा पुनः उपद्रवों की शान्ति का विचार करने छगा और थोड़ी देर के पीछे अपने अमीर उमरावों को साथ छेकर वह नगर के बाहर निकला, बाहर जाकर उस ने उद्यान में ५०० दिगम्बर मुनिराजों को ध्यानारूट देखा, उन्हें देखते ही राजा के हृदय में विस्मय उराक हुआ और वह शीघ़ ही उन के चरणों में गिरा और रुद्व करता हुआ बोला कि—'है महाराज! आप क्रपा कर मेरे देश में शान्ति करो" राजा के इस विनीत (विनययुक्त) वचन को भ्रुन कर जिनसेनाचार्य नोले कि-"हे राजन्! तू दयावर्म की वृद्धि कर" राजा बोला कि-'हे महाराज! मेरे देश में यह उपद्रव क्यों हो रहा है" तब दिगम्बरा-चार्य ने कहा कि-''हे राजन्! तू और तेरी प्रजा मिथ्यात्व से अन्वे हो कर जीवहिंसा करने छगे हैं तथा गांससेवन और मदिरापान कर अनेक पापाचरण किये गये हैं, उन्हीं के कारण तेरे देश भर में महामारी फैछी भी और उस के विशेष बढ़ने का हेतु यह है कि-त ने शान्ति के बहाने से नरमेष यश में मुनि का होम कर सर्व प्रजा को कष्ट में डाल दिया, बस इसी कारण ये सब दूसरे भी अनेक उपद्रव फैल रहे हैं, तुझे यह भी सरण रहे कि-वर्तमान में जो बीवहिंसा से अनेक उपद्रव हो रहे हैं यह तो एक सामान्य बात है, इस की विशेषता तो तुझे भवान्तर (परलोक) में विदित होगी अर्थात् भवान्तर में

त् बहुत दुःख पावेगा, क्योंकि-जीवहिंसा का फल केवल दुर्गति ही है" मुनि के इस वचन को सन कर राजा ने अपने किये हुए पाप का पश्चात्ताप किया तथा मुनि से सत्य धर्म को पूछा, तब दिगम्बराचार्य बोळे कि-"हे राजन्! जहाँ पाप है वहां धर्म कहाँ से हो सकता है ! देख ! जैसा तुझे अपना जीव प्यारा है वैसा ही सब जीवों को भी अपना २ जीव प्यारा है. इस छिये अपने जीव के समान सब के जीव को प्रिय समझना चाहिये. पञ्च महाजतरूप यतिधर्म तथा सम्यक्तसहित बारह जत-रूप गृहस्थधमें ही इस मव और पर मव में झुखदायक है, इस लिये यदि तुशे रुचे तो उस (द्यामय जैन धर्म) का अङ्गीकार कर और सुपात्रों तथा दीन दु: खियों को दान दे, सत्य बचन को बोरू, परनिन्दा तथा विकथा को छोड़ और जिनराज की द्रन्य तथा माव से पूजा...कर" आचार्य के मुख से इस उपदेश को मुन कर राजा जिनधर्म के मर्म को समझ गया और उस ने शीव ही जिनराज की शान्तिक पूजा करवाई, जिस से शीघ ही उपद्रव शान्त हो गया. वस राजा ने उसी समय चौरासी गोत्रों सहित (८३ उमराव और एक आप खुद, इस प्रकार ८४) जैन धर्म का अङ्गीकार किया, ऊपर कहे हुए ८४ गॉवों में से ८२ गॉव राजपूतों के थे और दो गाँव सोनारों के थे, ये ही छोग चौरासी गोत्रवाले सिरावगी कहलाये, यह भी सरण रहे कि इन के गाँवों के नाम से ही इन के गोत्र स्थापित किये गये थे, इन में से राजा का गोत्र साह नियत हुआ था और वाकी के गोत्रों का नाम पृथक २ रक्खा गया या जिन सब का वर्णन क्रमानुसार निम्निखिलत है:--

संख्य	î	गोत्र		वंश		गांव	হু,	छदेवी
8	साह	गोत्र	चौहान	राजपूत	खँडेलो	गाँव	चक्रेश्वरी	देवी
3	पाटणी	93	तंवर	33	पाढणी	33	आमा	33
ş	पापड़ीवाल	27	चौहान	27	पापड़ी	27	चकेश्वरी	77
, 8	दौसा	"	राठौड़	99	दौसा	39	जमाय	23
ч	सेठी	59	सोम	27	सेठाणियो	23	चकेश्वरी	77
Ą	भौसा	22	चौहान	33	मौसाणी	22	नांदणी	33
૭	गौघा .	27	गौषड्	99	गौघाणी	27	मातणी	"
6	चाँदूवाड़	23	चॅदेला	- 33	चंदूबाड़	22	मातणी	,, ,,
٩	मौठ्या	33	ठीमर	>>	मौठ्या	33	औरल	
80	अजमेरा	"	गौड़	79	अजमेर्यो	33	नॉदणी	"
११	दरङ्गोद्याः	"	चौहान -	33	दरङ्गौद		चकेश्वरी	"
१२	गद्द्या	"	चौहान	» »	गद्यौ -	33 33	चकेखरी चकेखरी))))

जैनसम्प्रदायशिक्षा ॥

	जैनसम्प्र	इायशिक्षा	ll .		कुरुवे	alt	
کوہ			ग	ia		₹71	
:— गोत्र		वंश		-	चकेश्वरी	- 93	
संख्या	चौहान	33	पाहाड़ी	77	आमण	19	
१३ पाहाड्या »	सूर्यवंशी	77	मूछड़	55	आमण	15	
१४ मूच "		33	वजाणी	53	मीहणी	19	
০ দু বুলি 🤫	हेम	37	वजमासी	77	औरङ	35	
१६ वज्जमहाराया,	हेम	59	राठोठी	37	पद्मावती	9	
१७ राजका "	सोम	57	पाटोदी	17	जमवाय	5 1	
१८ पाटीचा "	तंबर		गगवाणी	17	चकेश्वरी	13	,
६८ सहास,	क्छावा	11	पादणी	17	आमण	98	
86 11.1.11	नीहान	37	सीहनी	33	औरल	17	
	सौठंखी	37	ৰিভা তা	77	सौतल	17	
2 8 11.10	ठीमर स	मि ११	छोटी विला	र्की भ	वेथी	33	
२२ विकाला "	कुरुवंशी	1 33	विन्याय	की 33	जीणी	93	
२३ विरलाला "		77	बाँकर	ति श	जीर्ग		j
२४ विन्यायक्या,	′ <u>%</u>	5 51	काँस		आम		11
२५ बांकीवाल	" मीहिर	5 1	पापर	s t 1	3	rest.	93
२६ कासकावाक	" सीढा	!	म सीरा	Α.	1	fiå.	15
२.७ पापला	" सूर्यवं	शी	গ জাঁহ		, जम		55
३ / सोगाणा	97			6	জ ন	वाय	19
२० जॉझ्ड्या	17 কুন্ত)) व्या	मणी	17
३० कराया		द्गी	17	गाणी	भ वा	वडी	33
३१ देव	" . ďe		" 3	ोहोरी	₹	ोत्तरी	99
३३ होस्या	11 3	ढा	33	त्र्वाड़ी	₹	हिणी	99
३३ बोहोरा		रुवंशी	11	कुष्या । अवस्या	,	बीर ल	15
२० काला	77	बौहान	77	लगाणी	33	आमणी	31
त्र छावड	चा भ	सूर्यवंशी	57	Cothen		डोसिं ड	11
वह क्रीय	25	मीर्ट्या	17	तुहाङ्गा भंडसाठी	33	आमणी	11
2.2 25	હ્યા મ	मारूपा सौङ्खी	57	महलाज	77	आमणी))
३८ मैंड	साकी ग	साउंसा सोठंसी	33	दरहोदा		पद्मावती	
वृद् द्या	इवित ग	सारुपा - तुवर	13	चीवत्या	97	पद्मावती	1
ડું નો	घरा ग	त्तवर गहलौत		वीरका		श्रीदेवी	
४१ पी	रल्या ११		17	गिन्होई	1 79		
88 1		सौडा	••				

पद्मभ अन्याय ॥

संख्या	गोत्र		वंश		गांव	ą	ल्देवी
४३ साखूण्य	Т "	सौढा	37	साखूणी	3)	सिरवराय	57
ं ४४ अनौपड़		चँदेला	22	अन <u>ौ</u> पड़ी	77	मातणी	"
४५ निगात्य	Ι,,	गौइ	27	नागौती	33	नॉंदणी	33
४६ पाँगुल्य	••	चौहान	33	पाँगुल्यो	77	चकेश्वरी	33
८० मूलाण्य		चौहान	33	मूलाणी	22	चकेश्वरी	5)
८८ पीतस्य		चौहान	77	पीतल्यो	>>	चकेश्वरी	37
४९ बनमार	**	चौहान	57	वन्माल	99	चकेश्वरी	17
५० अरहर		चौहान	77	अरह क	22	चकेश्वरी	91
५१ रावत्या		ठीमरसौम	"	रावत्यौ	23	बौरन	75
५२ मौदी	"	ठीमरसौम	37	मौदहसी	17	लौर ल	"
५३ कौकण	राज्या,,	कुरुवंशी	99	कौकणराव	या,,	सौनल	**
५४ जुगरा		कुरुवंशी	99	जुगराज्या		सौनल	**
५५ मूलरा		कुरुवशी	37	मूलराज्य	799	सौनल	33
५६ छहड़		कुरुवंशी	37	छाहङ्या	35	सीनक	33
५७ दुकड़ा	"	दुबारू	59	दुकड़ा	13	हेमा	33
५८ गौती	. 33	<u> ব</u> ুজান্ত	33	गौतङ्ग	"	हेमा	11
५९ कुलम		दुजारु	"	कुलमाण	t "	हेमा	**
६० बीरखं	ड्या ,,	दुनारू	33	वौरलंडी	99	हेमा	13
६१ सरपत	या ,,	मौहिक	17	सरपती	35	जीणदेवी	"
६२ चिरड़		चौहान	39	चिरङ्की	33	चकेश्वरी	13
६३ निगद	•••	गीड़	39	निरगद	22	नाँदणी	93
६४ निरपौ	••	गौड़	23	निरपाछ	33	नाँवणी	11
६५ सरव		गौड़	32	सरवड्रच		नॉदणी	"
६६ कड़व	_	गौड़	21	फड़ वगरी	"	नींदणी	33
६७ साँम		चौहान	27	साँमर्थी	33	चकेश्वरी	27
६८ हरु		मौहिल	37	हरकौद	23	जाणिषयाड <u>़ा</u>	35
६९ सीम	ासा "	गहलीत	37	सीमद	32	चै।थी	>>
৩০ ৰ্ববা	23	सौढा	13	वंबाछी	73	सिखराय	32
७१ चीवा		चौहान	33	चीवरत्या	77	चकेश्वरी	33
७२ राजह	इस "	सौदा	23	राबहंस	77	सिस्तराय	17

संस्	भा गोत्र		वंश	गांव		कुलदेवी
इ्थ	अहंकार्या ,,	सौढा	. 57	अहंकर "	सिखण्य	
98	मूसावङ्चा,,	कुरुवंशी	73	ससवङ्घा "	सौनळ))))
<i>હહ</i>		सौढा	177	मीलसर "	सिखराय	» »
७६	भाँगड़ा "	स्वीमर	55	भागङ्	औरल	,, ·
99	कौहड़चा "	मीरठा	"	लौहर "	लै सलिया	11
७८ ७९	खेत्रपाल्या "	दुवाल	23	खेत्रपाल्यौ ,,	हेमा	"
60	राजमद " सुँवाल्या "	साँखळा	53	राजमदरा "	सरस्रती	33
رو	जुवारया ,,	कछावा	53	सुवाल "	जमबाय	77
८२	2	कछावा ठीमर	55	जलवाणी ,, बनवौड़ा ,,	जमवाय	>y ~
८३	वदास्या " कठीवाक "	रागर सौढा	77	SPREMENT	और ल श्रीदेवी	* # *
ς8	निरपाल्या ,,	सोरटा	12	जिल्ली	श्राद्धाः अमाणीः	17
*	e ner man	E	"		41.11411	"

यह पद्मम अध्याय का खंडरुमान जातिवर्णन नामक तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ ।।

चौथा प्रकरण-माहेश्वरी वंशोत्पत्ति वर्णन ॥

माहेश्वरी वंशोत्पित का संक्षिप्त इतिहाँस ॥

खंडेटा नगर में स्पैवंशी चौहान जाति का राजा खड़गलसेन राज्य करता था, उस के कोई पुत्र नहीं था इस लिये राजा के संहित सम्पूर्ण राजधानी चिन्ता में निमम थी, किसी समय राजा ने ब्राह्मणों को धांत आदर के साथ अपने यहाँ बुड़ाया तथा अत्यन्त मीति के साथ उन को बहुत सा द्रव्य मदान किया, तब ब्राह्मणों ने मसन्न होकर राजा को वर दिया कि—"हे राजन् ! तेरा मनोवांछित सिद्ध होगा" राजा बोला कि— "हे महाराज ! मुझे तो केवल एक पुत्र की वाल्छा है" तब ब्राह्मणों ने कहा कि— "हे राजन् ! तू शिवशक्ति की सेवा कर ऐसा करने से शिव जी के वर और हम-छोगों के आशीर्वाद से तेरे वड़ा बुद्धिमान् और बल्यान् पुत्र होगा, परन्तु वह सोलह

⁹⁻यह माहेश्वरी कैशों की उत्पत्ति का इतिहास खास उन के भारों के पास जो लिखा हुआ है उसी के अधुसार हम ने लिखा है, यह इतिहास भारों का बनाया हुआ है अथवा वास्तिवकस्य (जो कुछ हुआ या उसी का वर्णनरूप) है, इस बात का विचार ठेख को देख कर दुद्धिमान खाद ही कर सकेंगे, हम ने तो उक्त वैश्वों की उत्पत्ति कैसे मानी जाती है इस बात का सब को झान होने के लिये इस विषय का वर्णन कर दिया है।

वर्ष तक उत्तर दिशा को न जावे, सूर्यकुण्ड में खान न करे और ब्राक्षणों से द्वेष न करें तो वह साम्राज्य (चक्रवर्तिराज्य) का मीग करेगा, अन्यथा (नहीं तो) इसी देह से पनर्जन्म को प्राप्त हो जावेगा" उन के वचन को धुन कर राजा ने उन्हें वचन दिया (प्रतिज्ञा की) कि-"हे महराख! आप के कथनानुसार वह सोलह वर्ष तक न तो उत्तर दिजा को पैर हेगा. न सर्यकुण्ड में खान करेगा और न ब्राह्मणों से द्वेष करेगा" राजा के इस बचन को सन कर ब्राह्मणों ने पुण्याहवाचन को पढ कर आशीर्वाद देकर अक्षत (चावल) दिया और राजा ने उन्हें द्रव्य तथा पृथ्वी देकर धनपूरित करके विदा किया, ब्राह्मण भी अति तुष्ट होकर वर को देते हुए विदा हुए, उन के विदा के समय राजा ने पन: प्रार्थना कर कहा कि-"हे महाराज! आप का वर सुझे सिद्ध हो" सर्व भूदेव (ब्राह्मण) भी 'तथास्त्र' कह कर अपने २ स्थान को गये, राजा के २४ रानियां थीं. **उन में से चाँपावती रानी के गर्माधान होकर राजा के पुत्र उत्पन्न हुआ, पुत्र का जन्म** सनते ही चारों तरफ से बधाइयाँ आने लगी, नामस्थापन के समय उस का नाम सजन कुंबर रक्ता गया, बुद्धि के तीक्ष्ण होने से वह वारह वर्ष की अवस्था में ही घोड़े की सवारी और शस्त्रविद्या आदि चौदह विद्याओं को पढ कर उन में प्रवीण हो गया. हृदय में भक्ति और श्रदा के होने से वह बाह्मणों और याचकों को नाना प्रकार के दान और मनोवांक्रित दक्षिणा आदि देने लगा, उस के सहचवहार को देख कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ, किसी समय एक बौद्धं जैन साबु राजकुमार से मिला और उस ने राजकुमार को अहिसा का उपदेश देकर जैनवर्ग का उपदेश दिया इस लिये उस उपदेश के प्रमाव से राजकुमार की बुद्धि शिवमत से हट कर जैन मत में प्रवृत्त हो गई और वह ब्राह्मणों से यज्ञसन्त्रन्थी हिंसा का वर्णन और उस का खण्डन करने छगा. आखिरकार इस ने अपनी राजधानी की तीनों दिशाओं में फिर कर सब जगह जीवहिंसा को बंद कर दिया, केवल एक उत्तर दिशा वाकी रह गई, क्योंकि-उत्तर दिशा में जाने से राजा ने पहिले ही से उसे मना कर रक्खा था. जब राजकमार ने अपनी राजधानी की तीनों दिशाओं में एकदम जीवहिंसा को वंद कर दिया और नरमेघ, अश्वमेघ तथा गोमेध आदि सब यज्ञ वंद किये गये तब ब्राह्मणों और ऋषिजनों ने उत्तर दिशा में जाकर यज्ञ का करना शुरू किया, जब इस बात की चर्ची राजकुमार के कानों तक पहुँची तब बह वडा ऋद हुआ परन्त पिता ने उत्तर दिशा में जाने का निषेध कर रक्ला था अतः वह

१-यह बात तो अप्रेजों ने भी इतिहासों में बतला दी है कि-बीद और जैनधर्म एक नहीं हैं किन्तु अलग र ई परन्तु अफसोस है कि-इस देश के अन्य मताबल्डम्बी विद्वान् भी इस बात में भूल खाते हैं अर्थात् ने वौद और जैन वर्म को एक ही मानते हैं, जब विद्वानों की यह व्यवस्था है तो बेचारे भाट बौद्ध और जैनधर्म को एक लिखें इस में आश्चर्य ही बचा है ॥

उघर जाने में सङ्कीच करता था, परन्तु प्रारव्यरेसा तो वड़ी प्रवछ होती है, वस उसे ने अपना जोर किया और राजकुमार की उमरावों के सहित बुद्धि पछट गई. फिर क्या था-ये सब जीझ ही उत्तर दिशा में चले गये और वहाँ पहुँच कर संयोगवश सर्यक्रण्ड पर ही खंडे हुए; वहाँ इन्हों ने देखा कि-छः ऋषीश्वरों (पाराश्वर और गौतम आदि) ने यज्ञारम्म कर कुण्ड, मण्डप, ध्वला और कछश आदि का खापन कर रक्खा है और वे वेदध्वनिसहित यज्ञ कर रहे हैं, इस कार्यवाही को देख, वेदध्वनि का अवण कर और यज्ञज्ञाला के मण्डप की रचना को देख कर राजकुमार को वड़ा आधर्य हुआ और वह मन में विचारने छगा कि-देखी! मुझ को तो यहाँ आने से राजा ने मना कर दिया और यहाँ पर छिपा कर यज्ञारम्म कराया है, राजा की यह चतुराई मुझे आज माल्स हुई, यह विचार कर राजकुमार अपने साथ के उमरानों से वीला कि-"न्राझणों की पकड़ ले भीर सम्पूर्ण यज्ञसामग्री को छीन कर नष्ट कर डालो, राजकुमार का यह वचन ज्यों ही ब्राक्षणों और ऋषियों के कर्णगोचर हुआ त्यों ही उन्हों ने समझा कि राक्षस आन पहे है, वस उन्हों ने तेजी में आकर राजकुमार को न पहिचान कर किन्तु उन्हें राक्षस ही जान कर घोर शाप दे दिया कि-"हे निर्वृद्धियो ! तुम छोग पाषाणवत् जड़ हो जानो" ज्ञाप के बेते ही बहत्तर उमराव और एक राजपुत्र बोड़ों के सहित पाषाणवत् जड़बुद्धि हो गये अर्थात् उन की चलने फिरने देखने और नोलने आदि की सब शक्ति मिट गई खीर वे मोहनिद्रा में निमम्न हो गये, इस वात को जब राजा और नगर के छोगों ने सुना तो शीम ही वहाँ आकर उपस्थित हो गये और उन्हों ने कुमार तथा उमरावों को शाप के कारण पाषाणवत् वहवुद्धि देखा, वस उन्हें ऐसी दशा में देख कर राजा का अन्तः करण विद्वल हो गया और उस ने उसी दुःख से अपने प्राणों को तज दिया, उस समय राजा के साथ में रानियाँ भी आई थीं, जिन में से सोलह रानियाँ तो सती हो गई और शेष रानियाँ बासणों और ऋषियों के शरणागत हुई, ऐसा होते ही आस पास के रजवादे वालों ने उस का राज्य दवा लिया, तब राजकुमार की स्त्री उन्हीं बहत्तर उमरावों की खियों को साथ ठेकर रुद्न करती हुई वहाँ आई और त्राक्षणों तथा ऋषियों के चरणों में गिर पड़ी, उन के दुःख को देख कर ऋषियों ने शिव जी का अष्टाश्ररी मन्न देकर उन्हें एक गुफा वतला दी और यह वर दिया कि-तुम्हारे पति महादेव पार्वती के वर से शुद्धवुद्धि हो जावेंगे, तब तो वे सब स्नियाँ वहाँ बैठ कर शिवजी का सरण करने लगी, कुछ काल के पीछे पार्वती जी के सिंहत शिव जी वहाँ आये, उस समय पार्वती जी ने महादेव जी से पूछा कि यह क्या व्यवस्था है ! तब शिव जी ने उन के पूर्व इतिहास का वर्णन कर उसे पार्वती बी को धुनाया, जब राजा के कुँवर की रानी और बहत्तर उमरावों की ठकुरानियों को यह माछम हुआ कि-सचमुच पार्वती नी के

सहित शिव जी पघारे हैं. तब वे सब खियाँ आ कर पार्वती जी के चरणों का स्पर्भ करने लगीं, उन की श्रद्धा को देख कर पार्वती जी ने उन्हें आशीवीद दिया कि-"तुम सौमाग्यवती धनवती तथा पुत्रवती हो कर अपने २ पतियों के सुख को देखो और तुम्हारे पति चिरझीव रहें" पार्वती जी के इस वर को धन कर रानियाँ हाथ जोड़ कर कहने लगीं कि-"हे मातः! आप समझ कर वर देओ, देखो ! यहाँ तो हमारे पतियों की यह दशा हो रही हैं" उन के वचन को छन कर पार्वती जी ने महादेव जी से प्रार्थना कर कहा कि-"महाराज! इन के शाप का मोचन करो" पार्वती जी की प्रार्थना को सुनते ही शिव जी ने उन सब की मोहनिद्रा को दूर कर उन्हें चैतन्य कर दिया, बस वे सब सुमट जाग पड़े, परन्त उन्हों ने मोहवश शिव जी को ही घेर लिया तथा सजन कुँवर पार्वती जी के रूप को देख कर मोहित हो गया, यह जान कर पार्वती जी ने उसे शाप दिया कि-"अरे मँगते ! त माँग ला" वस वह तो जागते ही याचक हो कर माँगने छगा। इस के पीछे वे बहत्तरों उमराव बोछे कि-"हे महाराज! हमारे वर में अब राज्य तो रहा नहीं है, अब हम क्या करें! तब शिव जी ने कहा कि-"तुम क्षत्रियत्व तथा शक्त को छोड़ कर वैदय पद का प्रहण करो" किव जी के वचन को सव उमरावों ने अङ्गीकृत किया परन्तु हाथों की जड़ता के न मिटने से दे हाथों से शक्ष का त्याग न कर सके, तब शिव जी ने कहा कि-"तुम सब इस सूर्यकुण्ड में जान करो, ऐसा करने से तुम्हारे हाथों की जड़ता मिट कर शक्ष छूट जावेंगे" निदान ऐसा ही हुआ कि सूर्य-कुण्ड में सान करते ही उन के हाथों की जड़ता मिट गई और हाथों से शस्त्र छूट गये, तब उन्हों ने तलवार की तो लेखनी, मालों की ढंढी और ढालों की तराजू बना कर वणिज् पद (वैश्य पद) का शहण किया, जब बाझणों को यह खबर हुई कि-हमारे दिये हुए शाप का मोचन कर शिव जी ने उन सब की वैश्य बना दिया है, तब तो वे (ब्राह्मण) वहाँ आ कर शिव जी से मार्थना कर कहने छगे कि "हे महाराज! इन्हों ने हमारे यज्ञ का विच्वंस किया था अतः हम ने इन्हें शाप दिया था, सी आप ने हमारे दिये हुए शाप का तो भोचन कर दिया और इन्हें वर दे दिया, अब कृपया यह बतला-इये कि-हमारा यज्ञ किस प्रकार सम्पूर्ण होगा " व्राक्षणों के इस वचन को छुन कर शिव जी ने कहा कि—"ममी तो इन के पास देने के लिये कुछ नहीं है परन्तु जब २ इन के घर में मझलोत्सव होगा तब २ ये तुम को श्रद्धानुकूल यथाशक्य द्रव्य देते रहें-गे, इस लिये अब तुम भी इन को धर्म में चलाने की इच्छा करों" इस प्रकार वर दे कर इधर तो शिव जी अपने छोक को सिघारे, उधर वे बहत्तर उसराव छःवों ऋषियों के चरणों में गिर पढ़े और शिष्य बनने के लिये उन से प्रार्थना करने लगे, उन की प्रार्थना

को सन कर ऋषियों ने भी उन की बात को लीकृत किया, इस लिये एक एक ऋषि के बारह २ शिष्य हो गये, बस वे ही अब यजमान कहालाते हैं।

कुछ दिन पीछे वे सब खंडेला को छोड़ कर ढीढवाणा में था वसे और चूँकि वे बहत्तर खाँपों के उमराव के इस छिये वे बहत्तर खाँप के ढीड़ महेश्वरी कहलाने लगे, कालान्तर में (कुछ काल के पीछे) इन्हीं बहत्तर खाँपों की यृद्धि (बढती) हो गई अर्थात् वे अनेक मुल्कों में फैल गये, वर्तमान में इन की सब खाँपें करीब ७५० हैं, यद्यपि उन सब खाँपों के नाम हमारे पास विद्यमान (मौजूद) हैं तथापि वित्तार के भय से उन्हें यहाँ नहीं लिखते हैं।

महेश्वरी वैदयों में भी यद्यपि बड़े २ श्रीमान् हैं परन्तु क्षोक का विषय है कि-विद्या इन छोगों में भी बहुत कम देखी जाती है, विशेष कर मारवाड़ में तो हमारे स्रोसवाड बन्ध्र और महेश्वरी बहुत ही कम विद्वान देखने में आते हैं, विद्या के न होने से इन का धन भी व्यर्थ कामों में बहुत उठता है परन्तु विद्यादृद्धि आदि शुम कार्यों में ये लोग कुछ भी खर्च नहीं करते हैं, इस छिये हम अपने मारवाइनिवासी महेश्वरी सज्जनों से भी प्रार्थना करते हैं कि-प्रथम तो-उन को निधा की बृद्धि करने के लिये कुछ न कुछ अवद्य प्रवन्ध करना चाहिये, दूसरे-अपने पूर्वजी (बड़ेरी वा पुरुषाओं) के व्यवहार की तरफ घ्यान देकर औसर और विवाह आदि में न्यर्थव्यय (फिज्डलर्ची) की बन्द कर देना चाहिये, तीसरे-कन्याविकय, वालविवाह, बृद्धविवाह तथा विवाह में गा-लियों का गाना आदि क़रीतियों को विलक्षल उठा देना चाहिये, चौथे-परिणाम में क्षेत्र देने वाले तथा निन्दनीय व्यापारों को छोड़ कर शुभ वाणिज्य तथा कला कौशल के प्रचार की और ज्यान देना चाहिये कि जिस से उन की रूक्षी की बृद्धि हो और देश की मी हितसिद्धि हो, पाँचर्वे-सांसारिक पदार्थ और उन की तृष्णा को वन्धन का हेतु जान कर उन में अतिशय आसक्ति का परित्याग करना चाहिये, छठे-द्रव्य को सांसारिक तथा पारलैंकिक मुख के साधन में हेतु मूत जान कर उस का उचित रीति से तथा सन्मार्ग से ही व्यय करना चाहिये, बस आजा है कि हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान दे कर इसी के अनुसार बर्चाव कर इमारे महेश्वरी आता सांसारिक झुल को प्राप्त कर पारलीकिक सुख के भी अधिकारी होंगे ॥

यह पञ्चम अध्याय का माहेश्वरी वंश्रोत्पत्तिवर्णन नामक चैाथा मकरण समाप्त हुआ ॥

पाँचवाँ प्रकरण-बारह न्यात वर्णन ॥

बारह न्यातों का वर्ताव ॥

बारह न्यातों में जो परस्पर में वर्ताव है वह पाठकों को इन नीचे छिले हुए दी दोहों से अच्छे प्रकार विदित हो सकता है:---

दोहा-खण्ड खँडेला में मिली, सब ही बारह न्यात ॥ खण्ड प्रस्य नृप के समय, जीम्या दालक भात ॥ १ ॥ बेटी अपनी जाति में, रोटी शामिल होय॥ काची पाकी दूघ की, भिन्न भाव नहिँ कोर्य ॥ २॥ सम्पूर्ण बारह न्यातों का स्थानसहित विवरण ॥

संख्या	नाम न्यात	स्थान से	संस्या	नाम न्यात	स्थान से				
٤	श्रीमारू	मीनमाल से	v	संहेलवाछ	खंडेला से				
2	ओसवाङ	ओसियाँ से	6	महेश्वरी ढीडू	ढीढवाणा से				
ą	मेड्तवारू	मेड़ता से	9	पौकरा	पौकर जी से				
S	जायळवाल	जायल से	१०	र्टाटोड़ा	टींटोड्गड़ से				
ч	वघेरवाळ	ववेरा से	११	कठाड़ा	खाटू गढ़ से				
Ę	पञ्जीवाल	पाछी से	१२	राजपुरा	राजपुर से				
	मध्यप्रदेश (मालवा) की समस्त बारह न्यातें ॥								

संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संस्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात
१	श्री श्रीमाल	8	बोसवा ळ	v	पल्लीवाल	१०	महेश्वरी डीडू
२	श्रीमाल	ч	खँढेळवाळ	6	पोरवाङ	28	हुमढ़
ą	अप्रवाङ	Ę	वघेरवाळ	9	जेसवाङ	१२	चौरंडियाँ

१-इन दोहों का अर्थ सुगम ही है, इस लिये नहीं लिखा है ॥

⁴⁻सब से प्रथम समस्त बारह न्यार्ते खँडेळा नगर मे एकत्रित हुई थी, उस समय जिन २ नगरो से जो २ वैस्य आये थे वह सब विषय बोछ में छिख दिया गया है, इस कोछ के सागे के दो कोछा में देशप्रशा के अनुसार बारह न्यातों का निदर्शन किया गया है अर्थात् जहाँ अप्रवाल नहीं आये वहाँ चित्रवाल शामिछ गिने गये, इस प्रकार पीछे से कैसा २ मौका जिस २ देशवार्जों ने डेखा वैसा ही दे करते गये. इस में असकी तात्पर्य उन का यही या कि सब वैदर्शों में एकता रहे और उन्नति होती रहे किन्तु केवल पेष्ट को भर २ कर चले जाने का उन का तात्पर्य नहीं या ॥

३-'स्थान सहित, अर्थात् अन र स्थानो से आ र कर ने सन एकत्रित हुए वे (देखो संख्या र का नोट)॥ ४-इन में श्री श्रीमाल इस्तिनापुर से, अप्रवाल अगरोहा से, पोरवाल पारेवा से, जैसवाल जसलगढ से. हमड सादवाडा से तथा चौरिडिया चाविडया से आये थे, शेष का स्थान प्रथम किस ही चुके हैं ॥

गौढवाड़, गुजरात तथा काठियावाड़ की समस्त बारह न्यातें ॥ संख्या नाम न्यात संख्या नाम न्यात संख्या नाम न्यात संख्या नाम न्यात

१ श्रीमारू ४ चित्रवाछ ७ पोरवाल १० महेश्वरी २ श्रीश्रीमारू ५ पछीवाल ८ खंडेलवाल ११ ठंठवाल ६ ओसवाल ६ वधेरवाल ९ मेड्रतवाल १२ हरसीरी

यह पश्चम अध्याय का नारह न्यातवर्णन नामक पाँचवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

छठा प्रकरण-चौरासी न्यातवर्णन ॥

चौरासी न्यातों तथा उन के स्थानों के नामों का विवरण ॥

संख्या	नाम न्यात	स्थान से	संख्या	नाम न्यात	स्थान से
१	श्रीमारू	भीनमाल से	१ ८	ककस्थन	वालकूँडा से
२	श्रीश्रीमाछ	हिखनापुर से	१५	कपौछा	नप्रकोट से
ર	श्रीखण्ड	श्रीनगर से	१६	काँकरिया	करौळी से
8	श्रीगुरु	आम्ना डौळाइ से	१७	खरवा	खेरवा से
ц	श्रीगौड	सिद्धपुर से	26	खडायता	खँडवा से
Ę	अगरवाल	नगरोहा से	१९	खेमवाल	खेमानगर से
9	अजमेरा	अ जमेर से	२०	सँडेलवाल	खंडेलानगर से
6	अजैविया	जयो घ्या से	28	गँगराड़ा	गॅगराइ से
٩	अडालिया	आडणपुर से	२२	गाहिलवाल	गौहिलगढ़ से
१०	अवकथवाल	नावर जामानगर से	२३	गौलवाल	गौलगढ़ से
११	ओसवाल	ओसियाँ नगर से	38	गोगवार	गोगा से
१२	कठाड़ा 🚶	लाटू से	२५	गींदोड़िया	गीँदोड़ देवगढ से
१३	कटनेरा	कटनेर से	२६	चकौड़	रणथंभचकावा
					गद मल्हारी से

१-इन में से वित्रवाल वित्तोड़गड़ से, ठंडबाल.....से तथा इत्सीरा इत्सीर से आये थे, द्वीय का स्थान प्रथम किस ही सुके हैं।

२--'स्थानों के, अर्थात् जिन २ स्थानों से आ २ कर एकत्रित हुए से उम २ स्थानों के ॥

संख्या	नाम न्यात	स्थान से	संख्या	नाम न्यात	स्थान से
२७	चतुरथ	चरणपुर से	५६	वदनौरा	वदनौर से
२८	चीतौड़ा	चित्तौड़गढ़ से	40	वरमाका	ब्रह्मपुर से
२९	चोरंडिया	चावंडिया से	46	विदियादा	विदियाद से
३०	जायलवा ळ	बावल से	५९	वागार	विछास पुरी से
3 ?	जाळोरा	सौवनगढ बाह्रीर से	80	भवनगे	भावनगर से
१२	जैसवाल	जैसलगढ से	६१	मूँगढवार	मूरपुर से
इइ	जम्बूसरा	जम्बू नगर से	६२	महेश्वरी	ढीढवाणे से
३४	टीटीड़ा	टॉटौड़ से	ĘĘ	मेहतवाल	मेडता से
३५	टंटौरिया	टंटेरा नगर से	€8	माशुरिया	मथुरा से
३६	ढूँसर	ढाकलपुर से	84	मौड	सिद्धपुर पाटन से
३७	दसौरा	दसौर से	६६	मांडलिया	मॉडलगढ़ से
३८	घवलकौष्टी	धी ळपुर से	६७	राजपुरा	राजपुर से
३९	वाकड	धाकगढ़ से	६८	राजिया	राजगढ़ से
80	नारनगरेसा	नराणपुर से	६९	ठवेचू	ळावा नगर से
४१	नागर	नागरचाळ से	90	ভাਵ	काँवागढ़ से
४२	नेमा	हरिश्चन्द्र पुरी से	_	हरसौरा	हरसीर से
८३	नरसिंघपुरा	नरसिंघपुर से	७२	ह्मड	सादवाड़ा से
88	नवाँमरा	नवसरपुर से	şe	हलद	हलदा नगर से
84	नागिन्द्रा	नागिन्द्र नगर से	98	हाकरिया	हाकगढ नलवर से
88	नाथचल्ला	सिरोही से	હત	साँगरा	साँमर से
80	नाळेला	नाडोळाइ से	७६	सडीइया	हिंगलादगढ़ से
84	नौटिया	नौसलगढ से	99	सरेडवाळ	सादड़ी से
88	पह्नीवारू	पाछी से	७८	सौरठवाळ	गिरनार से
40	परवार	पारा नगर से	७९	सेतवाङ	सीतपुर से
५१	पश्चम	पश्चम नगर से	60	सौहितवाळ	सौहित से
५२	पौकरा *	पोकर बी से	८१	सुरन्द्रा	सुरन्द्रपुर अवन्ती से
५३	पौरवार	परिवा से	८२	सौनैया	सौनगढ से
५४	पौसरा	पौसर नगर से	८३	सौरंडिया	शिवगिराणा से
५५	वघेरवारु	बघेरा से	۲8	****	*** ****

		,					
٠	गुज	रात		रासी	न्यातों का वि	वेवरण	11-
संख्य		संस्ट	। नाम न्यात	संस्ट	।। नाम न्यात	संख	या नाम न्यात
8	श्रीमाली	33	गूजरवाल	83		६४	माड
२	श्रीश्रीमाल	२३	गौयखवाछ	88	दोहलवाल	६५	मेहवाड़ा
₹	अगरवाक	₹8	नफाक	ខូ៤	पदमौरा	६६	मीहीरिया
8	अनेरवाछ	34	नरसिंघपुरा	8 €	पछेवाछ	६७	मॅगौरा
ч	आदवरजी	38	नागर	80		86	मँडाहुळ
Ę	आरचितवाल	२७	नागेन्द्रा	84		६९	मौठ
9	औरवाल	२८	नाषौरा	88	बटीवरा	90	माँडलिया
2	औसवा छ	२९	चीतौड़ा	40	वस्दरी	७१	मेडौरा
9	अंडौरा	₹0	चित्रवाछ	५१	बाईस	७२	लाह
90	कढेरवाळ	3 8	जारी ळा	५२	वामीबा	७३	लाडीसाका
88	कपोल	३२	जीरणवास	५३	वावरवाछ	ଓଡ	िंगायत
१२	करवेरा	३३	जेलवारु	ષ્ઠ	वामणवाल	७५	वाचड़ा
88	काकलिया	38	नेमा	५५	बालमीवाक	७६	स्तवी
\$8	काजौटीवाळ	३५	जम्बू	ષદ્	वाहीरा	७७	सुररबाक
१५	कौरदवाल	38	झिखारा	५७	वेड्नीरा	96	सिरकेरा
१६	कंवीवाल	३७	ठाकरवाळ	46	मागेरवा ङ	७९	सौनी
१७	खड़ायता	36	डीझ	ષ્	मारीचा	60	सौजतबाळ
१८	खातरवाङ	३९	डींडोरिया	ξo	मूँगरवाल	د ۲	सारविया
१९	खीची	80	डीसँगिक	ξţ	भूगड़ा	८२	सौहरबाळ
२०	खंडेवाल	88	वेरीड़ा	83	मानतवारू	८३	साचौरा
२१	गसीरा	85	वीपौरा	83	मेड्तवाल	۲8	हरसौरा
					यातों का वि		-
संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	
8	हुमङ्	9	व घेरवाळ	23	मेड्तवाङ	38	नाथचला
2	बंहेलवा ळ	6	बावरिया	\$8	पस्रीवाल	२०	खरवा
3	पौरवाल	٩	गैलवाड़ा	१५	गॅगेरवाल	२१	सडौड्या
8	अग्रवाल	ξo	गौलपुरा	१६	खडायते	33	कटनेरा
ષ	जेसवाळ	!	श्रीमाल	१७	छवेचू	२३	काकरिं
Ę	परवाळ	१२	ओसवाल	26	वैस	२४	कपौला
1	11 11 4	1.1	44 44 44 4			• -	

संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात
२५	हरसौरा	८२	सारेड़वाळ	५९	खंडवरत	७६	ननौरा
२६	दसौरा	83	माँडलिया	ξo	नरसिया	७७	पहासया
२७	नाछेळा	88	अहालिया	६१	भवनगेह	১৩	चकौड़
२८	टंटारे	84	खरिन्द्र	६२	करवस्तन	७९	वहङ्ग
२९	हरद	88	माया ′	६३	आनंदे	60	घॅ वछ
३०	नालौरा	80	अ ष्टवार	88	नागौरी	८१	पवार्छिया
38	श्रीगुरु	84	चतुरथ	६५	टकचाल	८२	वागरौरा
३२	नौटिया	४९	पञ्चम	इह	सरहिया	८३	तरीड़ा
३३	चौरडिया	40	वपछवार	υβ	कमाइया	58	गॉदौड़िया
३४	सूँगङ्वाल	५१	हाकरिया	38	पौसरा	64	पितादी
३५	धाकड़	42	कंदोइया	६९	माकरिया	25	बघेरवाल
35	वौगारा	43	सौनैया	90	बदबइया	69	बूढेला
३७	गौगवार	48	राजिया	१७	नेमा	66	कटनेरा
36	ভাৰ	५५	वहेळा	७२	अस्तकी	८९	सिँगार
३९	अवक्यवाल	ષ્ક	मटिया	१७	कारेगराया	90	नरसिंघपुरा
80	विदियादी	५७	सेतवार	૭૪	नराया	९१	महता
88	त्रसाका	46	चक्कचपा	190	मौड़मॉडलिया		

एतदेशीय समस्त वैश्य जाति की पूर्वकाळीन सहातुभूति का दिग्दर्शन ॥

विद्वानों को विदित हो होगा कि-पूर्व काल में इस आर्थावर्ष देश में प्रत्येक नगर और प्रत्येक शाम में जातीय पश्चायतें तथा आमनासियों के शासन और पालन आदि विचार सम्बंधी उन के प्रतिनिधियों की व्यवस्थापक समायें थी, जिन के सत्प्रवन्ध (अच्छे इन्तिजाम) से किसी का कोई भी अनुचित वर्षाव नहीं हो सकता था, इसी कारण उस समय यह आर्थावर्त सर्वथा आनन्द मझल के शिखर पर पहुँचा हुआ था।

प्रसंगवशात् यहां पर एक ऐतिहासिक कृतान्त का कथन करना आवश्यक समझ कर पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जाता है,आशा है कि—उस का अवलोकन कर प्राचीन प्रथा से विज्ञ होकर पाठकगण अपने इदयस्थळ में पूर्वकालीन सिद्धचारों और सद्धर्चावों को स्थान देंगे, देखिये—पद्मावती नगरी में एक अनाल्य पोरवाल ने पुत्रजन्ममहोत्सव में अपने अनेक मित्रों से सम्मति ले कर एक वैश्यमहासया को स्थापित करने का

कर जगह २ निमन्त्रण मेर्जा, निमन्नण को पाकर यथासमय पर बहुत दूर २ नगरों के प्रतिनिधि था गये और समाकर्जा पोरवाल ने उन का मोजनादि से अत्यन्त सम्मान किया तथा सर्व मतानुसार उक्त समा में यह ठहराव पास किया गया कि—जो कोई खानदानी धनाल्य वैक्य इस समा का उत्सव करेगा उस को इस समा के समासदों (मेम्बरों) में प्रविष्ट (मरती) किया जावेगा ।

१-पाठकगणों को उक्त केस को पढ़ कर विस्मित (सार्क्य से युक्त) नहीं होना चाहिये और न यह विचार करना चाहिये कि-पूर्व समय में सभायें कव होती औ, सभाणों की प्रथा (रिनाज) तो थोड़े समय पूर्व से प्रचित्त हुई है, इसाबि, क्योंकि समाओं का प्रचार खाधुनिक (योवे समय पूर्व का) नहीं किन्तु प्राचीन ही है, हो यह बात सस है कि-कुछ काल तक समाओं की प्रथा वन्द रह चुकी है तथा थोबे समय से इस का पुनः प्रचार हुआ है, इसी लिये प्राचीन काल में इस प्रथा के प्रचलित होने में कुछ पाठकों को विस्मय (आकर्य) उत्पन्न हो सकता है, परन्तु वास्तव में यह बात नहीं हैं, क्योंकि-समाओं की प्रथा प्राचीन ही है, अर्थात् प्राचीन काल में सभाओं की प्रथा का ख्व प्रचार रह चुका है, उक्त विषय का पाठकों को ठीक रीति से निक्षय हो जावे इस लिये इम ता० २ नोवेंबर सन् १९०६ के वेंकटेशर समान्वार पत्र में छपे हुए (इसी आक्षय के) केस को यहां पर अविकल (ब्यों का खों) प्रकाशित करते हैं, उस के पढ़ने से पाठकों को अच्छे प्रकार से विदित (माख्य) हो जावेगा कि-प्रचीन काल में किस प्रकार का प्रवन्य या तथा सभाशों के हारा किस प्रकार से व्यवस्था होती वी, वेखिये:—

"गांधों में पञ्चायत—सन् १८१९ है॰ में एळफिनस्टन साहब ने हिन्दुस्थानवासियों के विषय में लिखा था:—

Their village Communities are almost sufficient to protect their members if all other Governments are withdrawn.

अर्थात् हिन्दुस्थानवासियों की गॉनों की पश्चायतें इतनी हद हैं कि किसी प्रकार की गमनेसेंड न रहने पर भी वे अपने अधीनस्थ कोगों की रक्षा करने में समर्थ हैं।

सन् १८३० ई० में सर चार्ल्स मेट्काफ महाध्य ने छिखा था:--

The village Communities are little republics having nearly everything they want within themselves. They seem to last where nothing else lasts. Dynasty after dynasty tumbles down, revolution succeeds to revolution Hindu, Pathan, Moghul, Maharatta, Sikh, English are masters in turn but the village Communities remain the same. The union of the village communities each one forming a little separate State in itself has I conceive contributed more than any other cause to the preservation of the people of India through all revolutions and changes which they have suffered and it is in a high degree conducive to their happiness and to the unjoyment of great portion of freedom and independence.

इस समास्थापन के समय में जिस २ नगर के तथा जिस २ जाति के वैश्य प्रति-निधि आये थे उन का नाम नौरासी न्यातों के वर्णन में छिला हुआ समझ छेना चाहिये, अर्थात् नौरासी नगरों के प्रतिनिधि यहाँ आये थे, उसी दिन से उन की नौरासी न्यातें भी कहळाती है, पीछे देशप्रया से उन में अन्य २ भी नाम शामिंळ होते गये हैं जो कि पूर्व दो कोष्ठो में ळिले जा चुके है।

अर्थात् हिन्दुस्थान की गॉवों की पद्मायतें विना राजा के छोटे १ राज्य हैं, जिन में लोगों की रक्षा के लिये प्रायः सभी वसुयें हैं, जहां अन्य सभी विषय विगव् दे दिखाई देते हैं तहां ये पत्मायतें निरस्थायी दिखाई पत्नती हैं, एक राजवक के पीछे दूसरे राजवक का नाश हो रहा है, राज्य में एक गड़वड़ी के पीछे दूसरी गड़वड़ी खबी हो रही है, कभी हिन्दू, कभी पत्मन, कभी मुगल, कभी मरहरा, कभी खिख, कभी अप्रेज, एक के पीछे दूसरे राज्य के अधिकारी वन रहे हैं किन्तु प्रामों की पत्मायतें सदैन वनी हुई हैं, ये प्रामों की पत्मायतें जिन में से हर एक अलग २ छोटी २ रिसासत सी मुश जेंच रही है सब से बढ़ कर हिन्दुस्थानवासियों की रक्षा करने वाली हैं, ये ही प्रामों की पत्मायतें सभी गड़वड़ियों से राज्येश्वरों के सभी अदल ववलों से देश के तहस नहस होते रहने पर भी प्रजा को सब दु:कों से बचा रही है, इन्हीं गॉवों की पत्मायतों के रिसर रहने से प्रजा के सब दु:कों से बचा रही है, इन्हीं गॉवों की पत्मायतों के सिम रहने से प्रजा के सुब खच्छन्यता में वाघा नहीं पढ़ रही है तथा वह खाबीनता का मुख सोगने को समयें हो रही है।

अभेज ऐतिहासिक एळफिनस्टन साहब और सर चार्ल्स मेह्काफ महाशय ने जिन गाँवों की प्वायतों को हिन्दुस्थानवासियों की सब विपदों से रक्षा का कारण जाना था, जिन को उन्हों ने हिन्दुस्थान की प्रजा के छुख और खन्छन्दता का एक मात्र कारण निक्षय किया था वे अब कहां है है सन् १८३० है खी में भी जो गाँवों की प्वायते हिन्दुस्थानवासियों की छौकिक और पार्लाकिक स्थिति में इन्छ भी आँव आने नहीं देती थीं वे अब क्या हो गई है एक उन्हों प्रवायतों का नाश हो जाने से ही आज दिन भारत-वासियों के सर्वे वी वी वे अब क्या हो गई है एक उन्हों प्रवायतों का नाश हो जाने से ही आज दिन भारत-वासियों के सर्वे की रक्षा की थी उन के निना इन दिनों अभेवी राज्य में भारत की राष्ट्रसम्बन्धी सभी अज्ञानियों के मिट जाने पर भी हमारी दशा दिन प्रतिदिन बदलती हुई, मरती हुई जाति की घोर शोचनीय दशा बन रही है, शोचने से भी शरीर रोमाबित होता है कि सन् १८५० ईस्ती के गदर के प्रधात जब स्वर्गाया महाराणी विकटोरिया ने भारतवर्ष को अपनी रियासत की शान्तियायी छन्नछाया में मिला क्रिया तब से प्रथम २५ वर्षों में ५० ठाख मारतवासी अब विना तड़फते हुए मृत्युलोक में पहुँच गये तथा वृद्धरे २५ वर्षों में ५० करोड साठ जाख मारतवासी मूख के हाहाकार से ससार सर को गुँजा कर अपने जीवित माहयों को समझा गये कि गाँवों की उन छोटी २ प्रधायतों के विसर्जन से मारत की दुर्गति केसी भयानक हुई है, अन्य दुर्गतियों की आज्ञेचना करने से हदसवालों की वाक्यशिक तक हर जाती है।

गाँवों की ने पश्चायतें कैसे मिट गईं, सो कह कर आज श्वक्तिमान, पुरुषों का अप्रियमाजन होना नहीं है, ने पश्चायतें क्या थीं सो भी आज पूरा २ लिखेने का सुमीता नहीं है, मारतवासियों को सब विपदो से रक्षा करने वाली ने पश्चायतें मानो एक एक बड़ी ग्रहस्थी थीं, एक ग्रहस्थी के सब समर्थ लोग जिस प्रकार अपने अधीनस्य परिवारों के पालन पोपण तथा विपदों से तारने के लिये उद्यम और प्रयक्ष करते उस के बाद उक्त सभा किस २ समय पर तथा कितनी वार एकत्रित हुई और उस के ठहराव किस समय तक नियत रह कर काम में आते रहे, इस बात का पता छगाना यद्यपि अति कठिन बात है तथापि स्रोज करने पर उस का थोड़ा बहुत पता

रहते हैं वैसे ही एक पद्मायत के सब समर्थ लोग अपनी अधीनस्थ सब ग्रहिस्थ्यों की सब प्रकार रहा का उद्यम और प्रयक्त करते थे, आज कल के अमेरिका फ्रॉस आदि निना राजा के राज्य निस प्रकार प्रजा की इच्छा के अनुसार कुछ लोगों को अपने में से चुन कर उन्हीं के द्वारा अपने शासन पालन निनार आदि का प्रवध करा लेते हैं उसी प्रकार ने पद्मायतें शामवासियों के प्रतिनिधियों की शासन पालन निनार आदि की व्यवस्थासभायें थीं, राजा चाहे जो कोई क्यों न होता वा उसी पत्रायत से उस को सम्पूर्ण प्रामनासियों से मालगुजारी आदि मिल जाती थीं, राज्येश्वर राजा से प्रामवासियों का और कोई सम्बद्ध नहीं रहता था, पत्रायत ही की व्यवस्था से सब लोग निज २ कर्तव्यों का पालन करते थे, पत्रायत ही की व्यवस्था से इकाल के लिये अन्न आदि का प्रवच होता था, पत्रायत ही की व्यवस्था से इकाल के लिये अन्न आदि का प्रवच होता था, पत्रायत ही की व्यवस्था से इन्हाल के लिये अन्न आदि का प्रवच होता था, पत्रायत ही की व्यवस्था से इन्हाल का प्रवच्या से परस्थर के झगड़ों का निवटेरा होता था, पद्मायत ही की व्यवस्था से इन्हाल का प्रवच्या से सामन होता था, पद्मायत ही की व्यवस्था से इन्हाल का प्रवच्या ही सामवासियों की रहा का प्रवच्या होता था।

हिन्दू राजाओं के दिनों में गांवों की वे पद्मायतें दढ रह कर अपने उन प्रवंधों से प्रामधासियों की रक्षा करती थीं, मुसलमान राजाओं के दिनों में पद्मायतों की वह रक्षाकारिया शक्त शिषिल नहीं होने पाई थी, अंग्रेज़ी अमलदारी की पहिली दशा में भी वह शक्ति सबैया दृढने नहीं पाई थी किन्तु अंगरेजी अमलदारी पुष्ट होने पर गांवों की पद्मायतें अपनी सारी शक्ति का सकौर के बरणों में कृष्णार्थण करने को लाचार हो कर महाकाल के महाचाल में समा गई, तब से अंगरेजी सकौर उन पद्मायतों के सबैया स्थानापन्न हो कर अवद्य ही हुई हुगैतियों का कथियत् शासन कर रही है, शत्रुओं के आक्रमण के मय से लोगों को सबैया बचा रही है, परस्पर के झगडों का नियटेरा भी कर रही है, किन्तु उस से झगड़ों का नियटेरा कराने में प्रायः दोनों झगड़ीलों का दिवाला निकल रहा है और पद्मायत की अन्याच्य सिक्षों का नियटेरा स्थानदार के अगरेजी सकौर कर रही है सो तो हुगारे सभी देशवासी नस नस में अनुभव कर रहे हैं।

अन्नहीनों के लिये अन की व्यवस्था अंगरेज़ी सर्कार नहीं कर सकती है, दुष्काल के लिये अन की व्यवस्था करा रखना अंग्रेज़ी सर्कार से हो नहीं सकता है, क्योंकि गॉवों के निवासी अपनी प्रधायतों के जिस प्रकार सर्वस्थ ये उस प्रकार हम भारतवासी अंग्रेज़ी सर्कार के सर्वस्थ नहीं हो सकते, अंग्रेज़ी सर्कार का अपना देश भी है, अपने देश की, अपनी जातिवाली अनहींन प्रचा का पालन भी उस को करना है, उस प्रचा के पालन की व्यालसा लिये रह कर वह हमारी प्रधायतों की गाँवि किसी दशा में भी हमारी रहा नहीं कर सकती है, इसी से पंचायतों के बने रहने के दिनों की गाँवि हमारी रहा नहीं हो रही है, हमारे जो अगणित देशवासी भूखों तक्फ २ कर गर जुके हैं उस का एक मात्र कारण हमारी गाँवों की पंचायतों की भाँवि सर्कार के हारा हमारी रहा न होगा ही है, सो यदि हम को जीना है तो पुनर्वार गाँवों की उन पंचायतों का निर्माण करना है, वैसी ही शक्तिशाली रक्षाकारिणी प्वायतों का निर्माण प्राम प्राम में पुनर्वार विना किये कहारि हमारी रक्षा नहीं होगी"।

लगता कुछ असंमव नहीं है, परन्तु अनावश्यक समझ कर उस विषय में हम ने कोई परिश्रम नहीं किया, क्योंकि सभासम्बंधी प्रायः वे ही प्रस्ताव हो सकते हैं जिन्हें वर्त-मान में भी पाठकगण कुछ २ देखते और छुनते ही होंगे।

अब विचार करने का स्थल यह है कि—देखो! उस समय न तो रेल थी, न तार था और न वर्चमान समय की मॉति मार्गप्रबंध ही था, ऐसे समय में ऐसी घृहत् (वड़ी) समा के होने में जितना परिश्रम हुआ होगा तथा जितने द्रव्य का व्यय हुआ होगा उस का अनुमान पाठकगण खयं कर सकते हैं।

अब उन के जात्युत्साह की तरफ तो ज़रा ज्यान दीजिये कि—वह (जात्युत्साह) कैसा हार्दिक और सद्भावगर्भित था कि—वे छोग जातीय सहानुमृतिरूप करपृक्ष के प्रमाव से देशहित के कार्यों को किस प्रकार आनन्द से करते थे और सब छोग उन पुरुषों को किस प्रकार मान्यदृष्टि से देख रहे थे, परन्तु अफ्सोस है कि—वर्त्तमान में उक्त रीति का विछक्तछ ही अभाव हो गया है, वर्तमान में सब वैश्यों में परस्पर एकता और सहानुमृति का होना तो दूर रहा किन्तु एक जाति में तथा एक मत वाड़ों में भी एकता नहीं है, इस का कारण केवछ आत्माभिमान ही है अर्थाद छोग अपने २ बद्धप्पन को चाहते है, परन्तु यह तो निक्षय ही है कि—पहिछे छम्र बने विना बद्धप्पन नहीं मिछ सकता है, क्योंकि विचार कर देखने से विदित होता है कि छम्रुता ही मान्य का स्थान तथा सब गुणों का अवछम्बन है, इसी उद्देश्य को हृदयस्य कर पूर्वज महज्जनों ने

⁹⁻एकता और सहानुभूति की वात तो जहाँ तहाँ रही किन्तु यह कितने शोक का विषय है कि-एक जाति और एक मतवालों में भी परस्पर विरोध और मात्सर्थ देखा जाता है अर्थात् एक दूसरे के ग्रुणो-रूप को नहीं देखा सकते हैं और न हिंद का सहन कर सकते हैं ॥

२-किसी विद्वात् ने सल ही कहा है कि-सर्वे यत्र प्रवक्तारः, सर्वे पण्डितमानिन. ॥ धर्वे महत्त्व-मिच्छन्ति, तहुन्दमवसीदिति ॥ १ ॥ अर्थात् जिस समूह में सब ही बक्का (ब्र्सरों को उपदेश देने वाले) हैं अर्थात् स्रोता कोई भी वनना नहीं बाहता है), सब अपने को पण्डित समझते हैं और सब ही महत्व (वहुप्पन) को बाहते हैं वह (समूह) दु-ख को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ पाठकाण समझ सकते हैं कि वर्तमान में ठीक यही दशा सब समूहों (सब जातिवालों तथा सब मतवालों) में हो रही है, तो कहिये सुवार की आशा कहों से हो सकती हैं ! ॥

३-सरण रहे कि-अपने को उधु समझना नम्रता का ही एक रूपान्तर है और नम्रता के विना किसी गुण की प्राप्ति हो ही नहीं सकती है, क्योंकि नम्रता ही मनुष्य को सब गुणों की प्राप्ति का पात्र बनाती है, जब मनुष्य नम्रता के द्वारा पात्र बन जाता है तब उस की बह पात्रता सब गुणों को खींच कर उस में स्थापित कर देती है मर्यात् पात्रता के कारण उस में सब गुण खबं ही आ जाते हैं, जैसा कि एक विद्वान् ने कहा है कि-नोदन्बानर्थितामोति, न नाम्मोमिन पूर्यते । आत्मा उ पात्रतां

लयुता की अति प्रशंसा की है, देखो ! अध्यात्मपुरुष श्री चिदानन्दजी महाराज ने रुष्टुता का एक स्तवन (स्तोत्र) वनाया है उस का मानार्थ यह है कि-चन्द्र और सुर्व बड़े है इस लिये उन को प्रहण लगता है परन्तु लघु तारागण को प्रहण नहीं लगता है संसार में यह कोई भी नहीं कहता है कि-तुम्हारे माथे छागूँ किन्तु सब कोई यही कहता है कि-तुम्हारे पगे लागूँ, इस का हेतु यही है कि-चरण (पैर) दूसरे सब संगों से लघ है इस लिये उन को सब नमन करते हैं, पूर्णिमा के चन्द्र को कोई नहीं देखता और न उसे नमन करता है परन्ता द्वितीया के चन्द्र को सब ही देखते और उसे नमन करते है क्योंकि वह लघु होता है, कीड़ी एक अति छोटा जन्तु है इस छिये चाहे जैसी रस-वती (रसोई) तैयार की गई हो सब से पहिन्ने उस (रसवती) का खाद उसी (कीड़ी) को मिलता है किन्त किसी बड़े जीव को नहीं मिलता है, जब राजा किसी पर कड़ी दृष्टि वाला होता है तब उस के कान और नाक आदि उत्तमाझों को ही कट-वाता है किन्त लघु होने से पैरों को नहीं कटवाता है. यदि बालक किसी के कानों को र्खिने, मूँछों को मरोड़ देवे अथवा शिर में भी मार देवे तो भी वह मनुष्य प्रसन्न ही होता है, देखिये! यह चेष्टा कितनी अनुचित है परन्तु रुघतायक्त बारूक की चेष्टा होने से सब ही उस का सहन कर छेते हैं किन्त किसी बड़े की इस चेष्टा को कोई भी नहीं सह सकता है. यदि कोई बढ़ा पुरुष किसी के साथ इस चेष्टा को करे तो कैसा अनर्थ हो जाने, छोटे बालक को अन्तःपर में जाने से कोई भी नहीं रोकता है यहाँ तक कि-वहाँ पहुँचे हुए बालक को अन्तः पर की रानियाँ भी खेह से खिलाती हैं किन्तु वहे हो जाने पर उसे अन्त:पर में कोई नहीं जाने देता है, यदि वह चला जाने तो शिररछेद आदि कष्ट को उसे सहना पढ़े, जब तक बाठक छोटा होता है तब तक सब ही उस की सँमाळ रखते हैं अर्थात् माता पिता आरे माई आदि सब ही उस की सँमाल और निरी-क्षण रखते है, उस के बाहर निकल जाने पर सब को बोड़ी ही देर में जिन्ता हो जाती है कि वचा अभी तक क्यों नहीं आया परन्त जब वह वड़ा हो जाता है तव उस की कोई चिन्ता नहीं करता है, इन सब उदाहरणों से सारांश यही निकलता है कि जो कुछ सुल है वह रुपुता में ही है, जब इदय में इस (रुपुता) के सत्प्रमाव को स्थान निरु जाता है उस समय सब खरावियों का मूळ कारण आत्माभिमान और महत्वाकांक्षित्व

नेयः, पात्रमायान्ति सम्पदः ॥ १ ॥ अर्थात् समुद्र अर्थी (मागनेनाळा) नहीं होता है परन्तु (ऐसा होने से) वह जलों से पूरित न किया जाता हो यह वात नहीं है (जल उस को अवस्य ही पूरित करते हैं) इस से सिद्ध है कि अपने को (नम्नता आदि के द्वारा) पात्र बनाना चाहिये, पात्र के पास सम्पत्तिया सम ही आ जाती हैं ॥ १ ॥ इस निषय में यद्यपि हमे बहुत कुछ लिखने की आवश्यकता थी परन्तु प्रन्य के निस्तार के मय से यहाँ पर अब नहीं लिखते हैं ॥

(बहुप्पन की अभिछाषा) आप ही चलां जाता है, देखों! वर्तमान में दादामाई नौरोजी, लाला लाजपतराय और वाल गद्गाधर तिलक आदि सहुणी पुरुषों को जो समाम आयीवर्त्त देश मान दे रहा है वह उन की लघुता (नन्नता) से प्राप्त हुए देश- भक्ति आदि गुणों से ही प्राप्त हुआ समझना चाहिये।

इस विषय में विशेष क्या लिखें—क्योंकि प्राञ्जों (बुद्धिमानों) के लिये थोड़ा ही लिखना पर्याप्त (काफी) होता है, अन्त में हमारी समस्त वैश्य (महेश्वरी तथा ओस-वाल आदि) सज्जनों से सविनय प्रार्थना है कि—जिस प्रकार आप के पूर्वन लोग एक-त्रित हो कर एक दूसरे के साथ एकता और सहानुमृति का वर्जाव कर उनित के शिखर पर विराजमान ये उसी प्रकार आप लोग भी अपने देश जाति और कुटुम्ब की उनित कीजिये, देखिये! पूर्व समय में रेल आदि साधनों के न होने से अनेक कर्टों का सामना करके भी आप के पूर्वन अपने कर्तव्य से नहीं हटते थे इसी लिये उन का प्रभाव सर्वन्न फैल रहा था, जिस के उदाहरणरूप नररन बस्तुपाल और तेजपाल के समय में दसे और बीसे, ये दो फिरके हो चुके है ।

भिय वाचकबुन्द ! क्या यह थोड़ी सी बात है कि-उस समय एक नगर से दूसरे नगर को जाने में महीनों का समय छगता या और वही व्यवस्था पत्र के जाने में भी थी तो भी वे छोग अपने उद्देश्य को पूरा ही करते थे, इस का कारण यही था कि-वे छोग अपने बचन पर ऐसे हुद थे कि-मुख से कहने के बाद उन की बात परथर की छकीर के समान हो जाती थी, अब उस पूर्व दशा को इदयस्य कर वर्षमान दशा को स्रनिये. देखिये! वर्षमान में-रेड, तार और पोष्ट आफिस आदि सब साधन विद्यमान है फि-निन के समीते से मनुष्य बाठ पहर में कहाँ से कहाँ की पहुँच सकता है कुछ घंटों में एक दूसरे को समाचार पहुँचा सकता है इत्यादि, परन्त बढ़े अफसोस की बात है कि-इतना सुभीता होने पर भी छोग समा आदि में एकत्रित हो कर एक दूसरे से सहानुमृति को प्रकट कर अपने जात्यत्साह का परिचय नही दे सकते है, देखिये ! आज जैनदवेताम्बर कान्प्रेंस को स्थापित हुए छः वर्ष से भी कुछ अधिक समय हो चुका है इतने समय में भी उस के ठहराव का प्रसार होना तो दूर रहा किन्तु हमारे वहत से जैनी भाइयों ने तो उस समा का नाम तक नहीं सना है तथा अनेक लोगों ने उस का नाम और चर्चा तो छुनी है परन्तु उस के उद्देश्य और मर्म से अद्यापि अनिमज्ञ है, देखिये! जैनसम्बंधी समस्त समाचारपत्रसम्पादक यही प्रकार रहे हैं कि-कान्केंस ने केवल लालों रुपये इकट्टे किये है. इस के सिवाय और कुछ भी नहीं किया है. इसी प्र-कार से विभिन्न छोगों की इस विषय में विभिन्न सम्मतियां हैं, हमें उन की विभिन्न सम्म-तियों में इस समय हस्तक्षेप कर सत्यासत्य का निर्णय नहीं करना है किन्त हमारा असीप्र तो यह है कि—लोग प्राचीन प्रथा को स्ले हुए हैं इस लिये वे समा आदि में कम एकतित होते हैं तथा उन के उहेश्यों और ममों को कम समझते हैं इसी लिये वे उस ओर ध्यान भी बहुत ही कम देते हैं, रहा किसी समा (कान्मेंस आदि) का विभिन्न सम्मितयों का विषय, सो समासन्वंधी इस प्रकार की सब वातों का विचार तो बुद्धिमान् और विद्वान स्वयं ही कर सकते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि—प्रायः सब ही विषयों में सत्यासत्य का मिश्रण होता है, प्रचलित विचारों में विलक्षल असत्य ही विषय हो थेसा मान लेना सर्वथा अमास्पद है, क्योंकि उक्त दोनों विचारों में विलक्षल असत्य ही विषय हो ऐसा मान लेना सर्वथा अमास्पद है, क्योंकि उक्त दोनों विचारों में न्यूनाधिक अंश में सत्य रहा करता है।

देखी। बहुत से लोग तो यह कहते हैं कि—जैन श्वेताम्बर कान्सेंस पाँच वर्ष से हो रही है और उस में लाखों रुपये खर्च हो चुके हैं और उस के सम्बंध में शब भी बहुत कुछ खर्च हो रहा है परन्तु कुछ भी परिणाम नहीं निकला, बहुत से लोग यह कहते हैं कि—जैन श्वेताम्बर कान्सेंस के होने से जैन वर्म की बहुत उन्नति हुई है, जब उक्त होनों विचारों में सत्य का अंश किस विचार में अधिक है इस का निर्णय चुद्धिमान् और वि-द्वान् जन कर सकते हैं।

यह तो निश्चय ही है कि गणित तथा युक्छिड के विषय के सिवाय दूसरे किसी विषय में निर्विवाद सिद्धान्त स्थापित नहीं हो सकता है, देखी! गणित विषयक सिद्धान्त में यह सर्वमत है कि-पाँच में दो के मिलाने से सात ही होते हैं, पाँच को चार से गुणा करने पर बीस ही होते हैं, यह सिद्धान्त ऐसा है कि इस को उठटने में ब्रह्मा भी असमर्थ है परन्त इस प्रकार का निश्चित सिद्धान्त राज्यनीति तथा धर्म आदि विवादास्यद विषयों में माननीय हो. यह वात अति कठिन तथा असम्मववत् है, क्योंकि-मनप्यों की प्रकृतियों में मेद होने से सन्मति में मेद होना एक स्तामाविक बात है, इसी तत्त्व का विचार कर हमारे शासकारों ने स्याद्वाद का विषय स्थापित किया है और भिन्न २ नयों के रहस्यों को समझा कर एकान्तवाद का निरसन (खण्डन) किया है, इसी नियम के अनुसार विना किसी पक्षपात के हम यह कह सकते हैं कि-जैन खेतान्वर कान्फेंस को श्रीमान् श्री गुलावचन्द जी ढड़ा एस. ए. ने अकथनीय परिश्रम कर प्रथम फलोधी तीर्थ में स्थापित किया था, इस समा के स्थापित करने से उक्त महोदय का अमीष्ट केवल जात्युन्नति, देशोन्नति, विद्यावृद्धि, एकतामचार धर्मवृद्धि, परस्पर सहानुभृति तथा कुरीतिनिवारण आदि ही या, अन यह दूसरी वात है कि-सम्मतियों के विभिन्न होने से सभा के सत्यय पर किसी प्रकार का अवरोध होने से समा के उद्देश्य अन तक पूर्ण न हुए हों वा कम हुए हों, परन्तु यह विषय समा को दोपास्पद बनाने बाला नहीं हो सकता है, पाठकगण समझ सकते हैं कि सदुदेख

से सभा को स्थापित करने बाला तो सर्वथा ही आदरणीय होता है इस लिये उक्त सच्चे बीर पत्र को यदि सहस्रों घन्यवाद दिये जावें तो भी कम है, परन्तु वृद्धिमान् समझ सकते है कि-ऐसे बृहत् कार्य में अकेला पुरुष चाहे वह कैसा ही उत्साही और वीर क्यों न हो क्या कर सकता है? अर्थात् उसे दूसरों का आश्रय ढूंढना ही पड़ता है, वस इसी नियम के अनुसार वह बालिका सभा कतिपय मिथ्यामिमानी पुरुषों को रक्षा के उद्देश्य से सौंगी गई अर्थात प्रथम कान्फेंस फलोधी में हो कर दूसरी बम्बई में हुई, उस के कार्य-वाहक प्रायः प्रथम तो गुजराती जन हुए, इस पर मी "काल में अधिक मास" वाली कहावत चितार्थ हुई अर्थात उन को कुगुरुंओं ने शुद्ध मार्ग से हटा कर विपरीत मार्ग पर चला दिया, इस का परिणाम यह हुआ कि वे अपने नित्य के पाठ करने के भी पर-मात्मा बीर के इस उपदेश को कि-"मित्ती में सब्ब मूप्स वेर मज्झं न केण इ" अर्थात् मेरी सर्व मतों के साथ मैत्री है. किसी के साथ मेरा वैर (शत्रुता) नहीं है, मिध्यामि-मानी और कुगुरुओं के विपरीत मार्ग पर चला देने से मूल गये, वा यों कहिये कि-वम्बर्ड में जब दसरी कान्फ्रेंस हुई उस समय एक वर्ष की वालिका समा की वर्षगाँठ के महोत्सव पर श्री महाबीर खामी के उक्त वचन को उन्हों ने एकदम तिलाक्ति दे दी. यद्यपि ऊपर से तो एकता २ पुकारते रहे परन्तु उन का भीतरी हाल जो कुछ बा वा उस का प्रभाव अब तक जो कुछ है उस का खिलना अनावश्यक है, फिर उस का फल तो नही हुआ जो कुछ होना चाहिये या, सत्य है कि-"अवसर चुकी हुमणी, गावे आछ पंपाल" प्रिय वाचकबृन्द! इस बात को आप जानते ही है कि-एक नगर से दूसरे नगर को जाते समय यदि कोई ग्रुद्ध मार्ग को मूळ कर उजाइ जंगल में चला जावे तो वह फिर ग्रद्ध मार्ग पर तब ही आ सकता है जब कि कोई उसे कुमार्ग से हटा कर श्रद्ध मार्ग को दिख्ला देवे, इसी नियम से हम कह सकते है कि-सभा के कार्यकर्ता भी अब सत्पय पर तब ही आ सकते है जब कि कोई उन्हें सत्पय को दिखला देवे. चूँकि सत्पथ का दिखळाने वाळा केवळ महज्जनोपदेश (महात्माओं का उपदेश) ही हो सकता है इस लिये यदि समा के कार्यकर्ताओं को जीवनरूपी रंगशाला में शद भाव से कुछ करने की अमिलाया हो तो उन्हें परमात्मा के उक्त वार्क्य को हृदय में स्थान दे कर

१-शुद्ध मार्ग पर जाते हुए पुरुष को विपरीत मार्ग पर चला देने वाछे को ही वास्तव में कुगुरु समझ-ना चाहिये, यह सब ही प्रन्यों का एक मत है ॥

२-हमारा यह कथन कहाँ तक सख है, इस का विचार उक्त समा के मर्ग को जानने वाले बुद्धिमान् ही कर सकते हैं।।

३-इस विषय को छेख के वह जाने के कारण वहाँ पर नहीं लिख सकते है, फिर किसी समय पाठकों की सेवा में यह विषय उपस्थित किया जानेगा ॥

४-इस कथन के आशय को सूक्ष्म बुद्धि बाले पुरुष ही समझ सकते हैं किन्तु स्थूल बुद्धि बाले नहीं समझ सकते हैं ॥

अपने मीतरी नेत्र खोलने चाहियें, क्योंकि—जन तक उक्त वाक्य को हृदय में स्थान न दिया जावेगा तन तक उक्ति स्थान को पहुँचाने वाला एकताह्नपी शुद्ध मार्ग हमारी समझ में सम में भी नहीं मिल सकता है, इस लिये कान्फेंस के सम्यों से तथा सम्पूर्ण आयावर्षिनवासी वैश्य बनों से हमारी सिवनय प्रार्थना है कि—'मेरी सब मूतों से मैत्री है, किसी के साथ मेरा वैर नहीं है" इस मगवद्भाक्य को सच्चे भाव से हृदय में अङ्गित करें कि जिस से पूर्ववत् पुनः इस आर्यावर्ष देश की उक्षति हो कर सर्वत्र पूर्ण आनन्द मक्कल होने लगे॥

यह पश्चम अध्याय का चौरासी न्यातवर्णन नामक छठा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

सातवाँ प्रकरण-ऐतिहासिक व पदार्थविज्ञानवर्णन ॥

ऐतिहासिक तथा पदार्थिविज्ञान की आवश्यकता॥

सम्पूर्ण प्रमाणों और महज्जनों के अनुभव से यह बात भछी माँति सिद्ध हो चुकी है कि—मनुष्य के सदाचारी वा दुराचारी बनने में केवल ज्ञान और अज्ञान ही कारण होते है अर्थात् अन्तःकरण के सतोगुण के उद्मासक (प्रकाशित करने वाले) तथा तमोगुण के आच्छादक (ढाँकने वाले) यथेष्ट साधनों से ज्ञान की प्राप्ति होने से मनुष्य सदाचारी होता है तथा अन्तःकरण के तमोगुण के उद्मासक और सतोगुण के आच्छादक यथेष्ट साधनों से अज्ञान की प्राप्ति होने से मनुष्य दुराचारी (दुष्ट व्यवहार वाला) हो जाता है।

प्रायः सब ही इस बात को जानते होगे कि—मनुष्य सुसंगति में पड़ कर सुघर जाता है तथा कुसकृति में पड़ कर विगड़ जाता है, परन्तु कभी किसी ने इस के हेतु का भी विचार किया है कि—ऐसा क्यों होता है देखिये। इस का हेतु विद्वानों ने इस मकार निश्चित किया है:—

अन्तःकरण की—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, ये चार वृत्तियाँ हैं, इन में से मन का कार्य संकल्प और विकल्प करना है, बुद्धि का कार्य उस में हानि लाम दिखलाना है, चित्त का कार्य किसी एक कर्तव्य का निश्चय करा देना है तथा अहसूत्, का कार्य अहं (मैं) पद का प्रकट करना है।

यह भी सरण रहे कि अन्तःकरण सतीगुण, रजोगुण तथा तमोगुण रूप है, अशीव ये तीनों गुण उस में समानावस्था में विश्वमान हैं, परन्तु इन (गुणों) में कारणसा-मग्री को पा कर न्यूनाधिक होने की खामाविक शक्ति है। जब किसी मनुष्य के अन्तःकरण में किसी कारण से किसी विषय का उद्मास (प्रकाश) होता है तब सब से प्रथम वह मनोवृत्ति के द्वारा संकल्प और विकल्प करता है कि—मुझे यह कार्य करना चाहिये वा नहीं करना चाहिये, इस के पश्चात् बुद्धिवृत्ति के द्वारा उस (कर्चव्य वा अकर्तव्य) के हानि लाम को सोचता है, पीछे चिचवृत्ति के द्वारा उस (कर्चव्य वा अकर्चव्य) का निश्चय कर छेता है तथा पीछे अहद्धारवृत्ति के द्वारा अभिमान प्रकट करता है कि मै इस कार्य का कर्चा (करने वाला) वा अकर्चा (म करने वाला) हूं।

यदि यह प्रश्न किया जाने कि किसी निषय को देख वा सुन कर अन्तः करण की चारों वृत्तियां क्यों कम से अपना २ कार्य करने लगती है तो इस का उत्तर यह है कि मनुष्य को खकर्मानुकूल मननशक्ति (विचार करने की शक्ति) खमाव से ही प्राप्त हुई है, बस इसी लिये प्रत्येक निषय का निज्ञान होते ही उस मननशक्ति के द्वारा चारों वृत्तियाँ कम से अपना २ कार्य करने लगती है।

बुद्धिमान् यद्यपि इतने ही छेख से अच्छे प्रकार से समझ गये होंगे कि—मनुष्य धुस-इति में रह कर क्यों धुघर जाता है तथा कुसइति में पड़ कर क्यों विगड़ जाता है तथापि सामारण जनों के ज्ञानार्थ थोड़ा सा और मी छिखना आवश्यक समझते है, देखिये:—

यह तो सब ही जानते है कि-मनुष्य जब से उत्पन्न होता है तब ही से दूसरों के चिरित्रों का व्यवलम्बन कर (सहारा के कर) उसे अपनी जीवनयात्रा के पथ (मार्ग) को नियत करना पड़ता है, अर्थात् लयं (खुद) वह अपने लिये किसी मार्ग को नियत नहीं कर सकता है', हाँ यह दूसरी बात है कि-मथम किन्हीं विशेष चिरित्रों (खास

१—देखिये बालक अपने माता पिता आदि के चित्रों को देख कर प्रायः उसी ओर शुक जाते हैं अबांत वैसा ही व्यवहार करने लगते हैं, इस से विलक्षक सिद्ध है कि—मनुष्म की जीवनयात्रा का मार्ग
सर्वमा दूसरों के निदर्शन से ही नियत होता है, इस के सिवाब पाधाल विद्वानों ने इस बात का प्रसाक्ष
अनुभव भी कर लिया है कि—मदि मनुष्य उरपन होते ही निर्जन स्थान में रक्खा जाने तो वह विलक्षक
मानुषी व्यवहार से रहित तथा पशुवत चेश बाला हो जाता है, कहते हैं कि-किसी वालक को उरपन होने
से कुछ समय के पश्चात एक मेहिया उठा के गया और उसे के जा कर अपने मिटे में रक्खा, उस वालक
को मेलिये ने खाया नहीं किन्तु अपने वचे के समान उस का भी पाछन पोषण करने कमा (कमी २ ऐसा
होता है कि—मेहिया छोटे बचों को उठा के जाता है परन्तु उन्हें मारता नहीं है किन्तु उन का अपने
वक्षों के समान पाछन पोपण करने लगता है, इस प्रकार के कई एक वालक सिल चुके हैं जो कि किसी
समय सिकंन्दरे.आदि के अनावल्यों में भी पोषण पा चुके हैं), बहुत समय के वाह देखा गया कि—वह
धालक मनुष्यों की सी मापा को न वोल कर मेहिये के समान ही शुरपुर शब्द करता था, मेहिये के समान
ही नारों पैरों से (हाथ पैरों के सहारे) नलता था, मनुष्य को देख कर मागता वा चोट करता था तथा
पीभ से चप २ कर पानी पीता था, तारपर्य यह है कि—उस के सर्व कार्य मेहिये के समान ही थे, इस से
निर्जन सिस्द है कि—मनुष्य की जीवनयात्रा का पय विलक्षक ही दूसरों के अवलम्बन पर नियत और
निर्मर है अर्थात जीता वह दूसरों को करते देखता है वैसा ही खर्य करने लगता है।

आचरणों) के द्वारा नियत किये हुए तथा चिरकारुसेनित अपने मार्ग पर गमन करता हुआ वह कारुान्तर में ज्ञानविशेष के बरू से उस मार्ग का परित्याग न करे, परन्तु यह बहुत दूर की वात है।

वस इसी नियम के अनुसार सत्पुरुषों की सङ्गति पा कर अर्थात् सत्पुरुषों के सदाबार को देख वा छन कर आप मी उसी मार्ग पर मनुष्य जाने लगता है, इसी का नाम छुघरना है, इस के विरुद्ध वह कुत्सित पुरुषों की सङ्गति को पा कर अर्थात् कुत्सित पुरुषों के दुराचार को देख वा छन कर आप भी उसी मार्ग में जाने लगता है, इसी का नाम विगड़ना है।

उक्त लेख से सर्व साधारण भी अब अच्छे प्रकार से समझ गये होंगे कि मुसंगति तथा कुसक्रिति से मनुष्य का सुधार वा विगाड़ क्यों होता है, इस छिये अब इस विषयः में छेखविस्तार की कोई आवश्यकता नहीं है।

अब ऊपर के छेख से पाठकगण अच्छे प्रकार से समझ ही गये होंगे कि-मनुष्य के सुधार वा विगाड़ का द्वार केवल दूसरों के सदाचार वा दुराचार के अवलम्बन पर निर्मर है, क्योंकि-दूसरों के व्यवहारों को देख वा सुन कर मनुष्य के अन्तःकरण की चारों वृत्तियाँ कम से अपने भी तद्वत् (दूसरों के समान) कर्चव्य वा अकर्चव्य के विषय में अपना २ कार्य करने लगती हैं।

हाँ इस विषय में इतनी विशेषता अवश्य है कि—जब दूसरे सत्पुरुषों के सदाबार का अनुकरण करते हुए मनुष्य के अन्तःकरण में सतोगुण का पूरा उद्धास हो जाता है तथा उस के द्वारा उत्कृष्ट (उत्तम) ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तब उस की शृति कुत्सित पुरुषों के व्यवहार की ओर नहीं झुकती है अर्थात् उस पर कुसक्त का प्रमाव नहीं होता है (क्योंकि सतोगुण के प्रकाश के आगे तमोगुण का अन्यकार उच्छिनपाय हो जाता है) इसी प्रकार जब दूसरे कुत्सित पुरुषों के कुत्सिताचार का अनुकरण करते हुए मनुष्य के अन्तःकरण में तमोगुण का पूरा उद्मास हो जाता है तथा उस के द्वारा उत्कृष्ट अज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तब उस की शृति सत्पुरुषों के व्यवहार की ओर नहीं झुकती है अर्थात् सत्संग और सदुपदेश का उस पर प्रमाव नहीं होता है (क्योंकि तमोगुण की अधिकता से सतोगुण उच्छिनप्राय हो जाता है)।

इस कथन से सिद्ध हो गया कि—पारम्म से ही मनुष्य को दूसरे सत्पुरुषों के सब-रित्रों के देखने सुनने तथा अनुसन करने की आवश्यकता है कि जिस से नह भी उन के सबरित्रों का अनुकरण कर सतोगुण की दृद्धि के द्वारा उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त हो कर अपने जीवन के नास्तविक उद्धय को समझ कर निरन्तर उसी मार्ग पर चला जाने और मनुष्यजनम के धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चारों फलों को प्राप्त होने। इस विषय में यह मी स्नरण रखना चाहिये कि—दूसरे सत्पुरुषों के वार्चमानिक (वर्चमान काल के) सचिरित्र मनुष्य पर उतना प्रमाव नहीं डाल सकते हैं जितना कि मूतकालिक (मृत काल के) डाल सकते हैं, क्योंकि वार्चमानिक सचिरित्रों का फल आगामिकालमावी (मविष्यत् काल में होने वाला) है, इस लिये उस विषय में मनुष्य का आत्मा उतना विश्वस्त नहीं होता है जितना कि मृतकाल के सचिरित्रों के फल पर विश्वस्त होता है, क्योंकि—मृतकाल के सचिरित्रों का फल उस के प्रत्यक्ष होता है (कि अमुक पुरुष ने ऐसा सचिरित्र किया इस लिये उसे यह शुम फल प्राप्त हुआ) इस लिये आवश्यक हुआ कि—मनुष्य को मृतकालिक चरित्र का अनुमव होना चाहिये, इसी मृतकालिक चरित्र को ऐतिहासिक विषय कहते है ।

पेतिहासिक विषय के दो मेद है—ऐतिहासिक इत्त और ऐतिहासिक घटना, इन में से पूर्व मेद में पूर्वकालिक पुरुषों के जीवनचिरतों का समावेश होता है तथा दूसरे मेद में पूर्व काल में हुई सब घटनाओं का समावेश होता है, इस लिये मनुष्य को उक्त दोनों विषयों के प्रन्थों को अवस्य देखना चाहिये, क्योंकि इन दोनों विषयों के प्रन्थों के अवस्य देखना चाहिये, क्योंकि इन दोनों विषयों के प्रन्थों के अवलोकन से अनेक प्रकार के लाम पास होते हैं।

स्मरण रहे कि-जीवन के कक्ष्य के नियत करने के लिये जिस प्रकार मनुष्य को ऐति-हासिक विषय के जानने की आवश्यकता है उसी प्रकार उसे पदार्थविज्ञान की भी आव-श्यकता है क्योंकि पदार्थविज्ञान के विना भी मनुष्य अनेक समयों में और अनेक खानों में घोला ला जाता है और घोले का लाना ही अपने कक्ष्य से चूकना है इसी लिये पूर्वीय विद्वानों ने इन दोनों विषयों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध माना है, अतः मनुष्य को पदार्थविज्ञान के विषय में भी यथाशक्य अवश्य परिश्रम करना चाहिये॥

यह पञ्चम अध्याय का ऐतिहासिक व पदार्थविज्ञानवर्णन नामक सातवाँ प्रकरण समाप्त हुआ।

आठवाँ प्रकरण-राजनियमवर्णन ॥

- 1866.22.P

राजनियमों के साथ प्रजा का सम्बन्ध ॥

घर्मशाओं का कथन है कि—राजा और प्रजा का सम्बंघ ठीक पिता और पुत्र के समान है, अर्थात् जिस प्रकार सुयोग्य पिता अपने पुत्र की सर्वेथा रक्षा करता है उसी प्रकार राजा का धर्म है कि—वह अपनी प्रजा की रक्षा करे, एवं जिस प्रकार सुयोग्य पुत्र अपने पिता के अनेक उपकारों का विचार कर मक्त हो कर सर्वेथा उस की आज्ञा का

पालन करता है उसी प्रकार प्रजा का धर्म है कि—वह अपने राजा की आज्ञा को माने अर्थात् राजा के नियत्त किये हुए नियमों का उछह्वन न कर सर्वदा उन्हीं के अनुसार वर्ताव करे।

प्राचीन शासकारों ने राजयक्ति को भी एक अपूर्व गुण माना है, जिस मनुष्य में यह गुण विद्यमान होता है वह अपनी सांसारिक जीवनयात्रा को अस से व्यतीत कर सकता है।

राजमिक्त के दो मेद है-प्रथम मेद तो वही है जो अभी लिख चुके हैं अर्थात् राजा के नियत किये हुए नियमों के अनुसार वर्ताव करना, दूसरा मेद यह है कि-समयानु-सार आवश्यकता पढ़ने पर यथाशक्ति तन मन धन से राजा की सहायता करना।

देखों! इतिहासों से विदित है कि—पूर्व समय में जिन छोगों ने इस सर्वोत्तम गुण राजभिक्त के दोनों भेदों का यथावत् परिपाछन किया है उन की सांसारिक जीवनयात्रा किस प्रकार छुल से व्यतीत हो जुकी है और राज्य की जोर से उन्हें इस सद्गुण का परिपाछन करने के हेतु कैसे २ उत्तम अधिकार जागीरें तथा उपाधियाँ पास हो चुकी हैं।

राजभक्ति का यथोचित पाळन न कर यदि कोई पुरुष चाहे कि मैं अपनी जीवन-यात्रा को झुल से व्यतीत करूँ तो उस की यह बात ऐसी असम्भव है जैसे कि पश्चि-मीय देश को प्राप्त होने की इच्छा से पूर्व दिशा की ओर गमन करना।

जिस प्रकार एक कुटुम्ब के बाल बच्चे आदि सर्व जन अपने कुटुम्ब के अधिपति की नियत की हुई प्रणाली पर चल कर अपने जीवन को सुलपूर्वक व्यतीत करते है तथा उस कुटुम्ब में सर्वदा सुल और शान्ति का निवास बना रहता है ठीक उसी प्रकार राजा के नियत किये हुए नियमों के अनुसार वर्षाव करने से समस्त प्रजानन अपने जीवन को सुलपूर्वक व्यतीत कर सकते हैं तथा उन में सर्वदा सुल और शान्ति का निवास रह सकता है, इस के विरुद्ध जब प्रजानन राजनियमों का उल्लुह्वन कर खेच्छापूर्वक (अपनी मर्जी के अनुसार अर्थात् मनमाना) वर्षाव करते वा करने लगते है तब उन को एक ऐसे कुटुम्ब के समान कि जिस में सब ही किसी एक को प्रधान च मान कर स्वतन्नतापूर्वक वर्षाव करते हों तथा कोई किसी को आधीनता की न चाहता हो चारों ओर से दुःख और आपतियाँ धेर लेती

१-हां यह दूसरी बात है कि-राजनियमों में यदि कोई नियम प्रजा के विपरीत हो अर्थात सीख्य और कर्त्तव्य में बाधा पहुँचाने बाळा हो तो उस के विषय में एकमत हो कर राजा से निवेदन कर उस का सत्रीधन करवा केना चाहिये, झुयोग्य तथा पुत्रवत् प्रजापालक राजा प्रजा के बाधक नियम को क्सी नहीं रखते हैं, क्योंकि प्रजा के सुख के लिये ही तो नियमों का संगठन किया जाता है।

है¹ जिस का अन्तिम परिणाम (भाखिरी नतीजा) विनाश के सिवाय और कुछ मी नहीं होता है।

भला सोचने की बात है कि—जिस राज्य में हम सुख और आन्तिगूर्वक निर्भय होकर अपनी जीवन यात्रा को व्यतीत कर रहे हों उस राज्य के नियत किये हुए नियमी का पालन न करना तथा उस में खामिमिक्त का न दिखलाना हमारी ऋतमेता नहीं तो और क्या है!

सोचिये तो सही कि—यदि हम सब पर सुयोग्य राज्यशासनपूर्वक धात्रच्छाया न हो तो क्या कभी सम्भव है कि—इस संसार में एक दिन भी सुम्बपूर्वक हम अपना नि-बीह कर संकें, कभी नहीं, देखिये! राज्य तथा उस के शासनकर्ता जन अपने ऊपर कि-तनी कठिन से कठिन आपत्तियों का सहन करते है परन्तु अपने अथीनस्य प्रजाजनों पर तिनक भी आँच नहीं आने देते है अर्थात् उन आई हुई आपत्तियों का ज़रा भी असर यथाश्वस्य नहीं पड़ने देते हैं, बस इसी लिये प्रजाजन निर्मय हो कर अपने जीवन को व्यतीत किया करते हैं।

सारांश यही है कि-राज्यशांसन के विना किसी दगा में किसी प्रकार से कमी किसी का सुखपूर्वक निर्वाह होना असम्भव है, जब यह व्यवस्था है तो क्या प्रत्येक पुरुष का

१-यदि इन के उदाहरणों के जानने की इच्छा हो तो इतिहामनेताओं से पृष्टिये ॥

२-हतझ की कभी छुम गति नहीं होती है; जैमा कि-धमेशाल में कहा है कि-मिश्रहरः एतप्रसा, क्रीझस्य गुक्यातिनः ॥ चतुर्णी वयमेवेया, निष्कृतिं नानुशुध्रम ॥ १ ॥ अर्थात् मित्र से द्रोह रूरने यांचे, कृतम्न (उपकार को न मानने वाले), स्त्रीहत्या करने वाले तथा गुक्याती, इन चारों की निष्कृति (उद्धार वा मोक्ष) को हम ने नहीं सुना है ॥ १ ॥ तात्यर्थ यह है कि उफ चारों पानियों की कभी शुक्ष गति नहीं होती है ॥

६—यदि राज्यशासनपूर्वक क्षत्रच्छाया न हो तो एक दूनरे वा प्राणपानक हो जाये, प्ररेक भुरूत के सम व्यवहार उच्छित्र (नष्ट) हो जावें और कोई भी गुरापूर्वक अपना पेट तर न भर पाने, परन्तु रुख राज्यशामनपूर्वक क्षत्रच्छाया होती है अर्थान् कल्लियाविशास्त्र राज्यशासक जब स्थापीन प्रता को रक्षा करते हुए सब आपित्यों ने अपने ऊपर केलते है सब सावारण प्रजाजनों को यह भी क्षान नहीं होना है कि—किघर क्या हो रहा है अर्थान् मब निर्भय हो कर अपने २ शर्यों ने स्ने रहते हैं, मन्दर्श हि—"क्षेत्र रिक्षिते राष्ट्रे, शास्त्रविन्ता प्रवतंते" अर्थान् श्रम के द्वारा गज्य की रक्षा होने पर शास्त्रविन्तन जादि शव पार्य होते हैं॥

४-ऐमी दशा में विचारवील दूरदर्गी जन अपने वर्णन्यों का पारन रिया करते हैं परस्यु ध्रहान स्टन पैर पतार कर नींट लिया करते हैं॥

५-राज्यसासन बारे पदावती हो बाहे आधिराजिक हो निन्तु उन का होना आबस्यक है ॥

यह कर्त्तव्य नहीं है कि-वह सची राजमिक्त को अपने हृदय में स्थान दे कर सामिमिक्त का परिचय देता हुआ राज्य नियमों के अनुकूछ सर्वदा अपना निर्वाह करे।

वर्चमान समय में हम सब प्रजाजन उस श्रीमती न्यायशीला वृटिश गवर्नमेण्ट के अधिशासन में हैं कि—जिस के न्याय, दया, सौजन्य, परोपकार, विश्वोन्नति और सुखप्रचार आदि गुणों का वर्णन करने में जिह्ना और छेखनी दोनों ही असमर्थ हैं, इसि लिये उपर लिसे अनुसार हम सब का परम कर्चव्य है कि—उक्त गवर्नमेंट के सबे सामिम्क वन कर उस के नियत किये हुए सब नियमों को जान कर उन्हीं के अनुसार सर्वदा वर्त्ताव करें कि जिस से हम सब की संसारयात्रा सुखपूर्वक व्यतीत हो सथा हम सब पारलैकिक सुख के भी अधिकारी हों।

सन ही जानते हैं कि—सची खामियक्ति को हृदय में खान देने का मुख्य हेतु प्रलेक पुरुष का सद्भान और उस का आत्मिक सिद्धचार ही है, इस छिये इस विषय में हम केवळ इस उपदेश के सिवाय और कुछ नहीं छिल सकते हैं कि—ऐसा करना (लामि-भक्त बनना) सर्व साधारण का परम कर्तव्य है।

सरण रहे कि—राज्यमिक का रखना तथा राज्यनियम के अनुसार वर्षाव करना (जो कि कपर लिखे अनुसार मनुष्य का परम धर्म है) तन ही वन सकता है जब कि मनुष्य राज्यनियम (कानून) को ठीक रीति से जानता हो, इस लिये मनुष्यमात्र को उचित है कि—वह अपने उक्त कर्तव्य का पालन करने के लिये राज्यनियम का विज्ञान ठीक रीति से प्राप्त करे।

यद्यपि राज्यनियम का विषय अत्यन्त गहन है इस लिये सर्व साधारण राज्यनियम के सब छात्रों को मली मॉित नहीं जान सकते है तथापि प्रयत्न करने से इस (राज्यनियम) की मुख्य २ और उपयोगी वार्तों का परिज्ञान तो सर्व साधारण को मी होना को है कठिन बात नहीं है, इस लिये उपयोगी और मुख्य २ वार्तों को तो सर्व साधारण को अवश्य जानना चाहिये।

यद्यपि हमारा विचार इस प्रकरण में राज्यनियम के कुछ आवश्यक विषयों के मी वर्णन करने का था परन्तु अन्य के विस्तृत हो जाने के कारण उक्त विषय का वर्णन नहीं किया है, उक्त विषय को देखने की इच्छा रखनेवाले पुरुषों को ताबीरातहिन्द अ-श्रीत् हिन्दुस्थान का दण्डसंत्रह नामक अन्य (जिस का कानून ता० १ जनवरी सन् १९६२ ई० से अब तक जारी है) देखना चाहिये॥

यह पञ्चम अध्याय का राजनियमवर्णन नामक आठवां प्रकरण समाप्त हुआ।

नवाँ प्रकरण-ज्योतिर्विषयवर्णन॥

ज्योतिष्शास्त्र का संक्षिप्त वर्णन ॥

ज्योति:शास्त्र का शब्दार्थ प्रहों की विद्या है, इस में प्रहों की गति और उन के परस्पर के सम्बंध को देख कर भविष्य (होने वाली) वार्ताओं के जानने के नियमों का
वर्णन किया गया है, बाखाव में यह विद्या भी एक दिव्य चक्कुरूप है, क्योंकि—इस विद्या
के ज्ञान से आगे होने वाली बातों को मनुष्य अच्छे प्रकार से जान सकता है, इस विद्या
के अनुसार जन्मपत्रिकारों भी बनती है जिन से अच्छे वा बुरे कमों का फल ठीक रीति
से माख्य हो सकता है, परन्तु बात केवल इतनी है कि—जन्मसमय का लग्न ठीक होना
वाहिये, वर्तमान में अन्य विद्याओं के समान इस विद्या की भी न्यूनता अन्य देशों की
अपेक्षा मारवाइ तथा गोदवाइ आदि विद्याशून्य देशों में अधिक देखी जाती है, तार्त्य
यह है कि—विद्यारहित तथा अपनी २ यजमानी में उदरपूर्ति (पेटमराई) करने बाले
ज्योतिकी लोगों को यदि कोई देखना चाहे तो उक्त देशों में देख सकता है, इस लेख
से पाठकवृन्द यह न समझें कि—उक्त देशों में ज्योतिष् विद्या के जानकर पण्डित विलकुळ नहीं है क्योंकि उक्त देशों में ग्रस्थ २ राजधानी तथा नगरों में यतिसम्प्रदाये
में तथा ब्राह्मण लोगों में कही २ अच्छे २ ज्योतिषी देखे जाते है; परन्तु अधिकतर तो जगर
लिखे अनुसार ही उक्त देशों में ज्योतिषी देखने में आते हैं, इसी लिये कहा जाता है
कि—उक्त देशों में अन्य विद्यालों के समान इस विद्या की मी अत्यन्त न्यूनता है।

इस विद्या को साधारणतया जानने की इच्छा रखने वाठों को उचित है कि—वे प्रथम तिथि; वार; नक्षत्र, योग जौर कर्ण आदि बातों को कण्ठख कर छेवें, क्योंकि—ऐसा करने से उन को इस विद्या में आगे बढ़ने में सुगमता पड़ेगी, इस विद्या का काम मत्येक गृहस्थ को प्रायः पड़ता ही रहता है, इस ठिये गृहस्थ छोगों को भी उचित है कि—कार्य-योग्य (काम के लायक) इस विद्या को भी अवश्य प्राप्त कर छे कि जिस से वे इस विद्या के द्वारा अपने कार्यों के शुभाशुम फल को विचार कर उन में प्रवृत्त हो कर सुख का सम्पादन करें।

ħ

è

^{9—}देखों! जोघपुर राजधानी से ज्योतिष् निया, जैनागम, मन्त्रादि जैनामान तथा मुमाधितादि नियम के पूर्ण ज्ञाता महोपाध्याय श्री जुहारमञ्ज जी गणी वर्तमान में ८० वर्ष की अवस्था के अच्छे निहान हैं, इन के पास बहुत से प्राह्मणों के पुत्र ज्योतिष् निया को पढ कर निपुण हुए हैं तथा जोधपुर राज्य में पूर्व समय में ब्राह्मण लोगों में चण्डू जी नामक अच्छे ज्योतिपी हो चुके हैं, इन्हीं के नाम से एक पद्मात निकलता हैं जिस का वर्तमान में बहुत प्रचार है, इन की सन्तित में भी अच्छे २ विद्वान् तथा ज्योतिषी देखे जाते हैं।

जागे चल कर इस ज्योतिष् की कुछ जावस्यक बातों को लिखेंगे उन में सर्व का उदय और अला तथा उम्र को स्पष्ट वानने की रीति, ये दो निषय मुख्यतया गृहस्तो के लाम के डिये दिसे जारेंगे, क्योंकि गृहस छोग पुत्रादि के जन्मसमय में सामात् (कुछ पढ़े हुए) ज्योतिषियों के द्वारा वन्मसमय को वतला कर जन्मकंडली वनवात हैं, इस के पीछे अन्य देश के वा उसी देश के किसी विद्वान क्योतियीं से जन्मश्री वनवाते हैं. इस दशा में भायः यह देखा जाता है कि बहुत से छोगों की जन्मपत्री हा शुमाञ्चम पार नहीं निखता है तब वे छोग जन्मपत्री के बनाने वाछे विद्वान को तहा ज्योतिष् विद्या को दोष देते हैं अर्थात् इस विद्या को असत्य (झूठा) वतलाते हैं, परन्तु विचार कर देखा जावे तो इस विषय में न तो जन्मपत्र के बनाने वाले विद्वान् का दोप है और न ज्योतिष् विचा का ही दोष है किन्तु दोष केवल जन्मसमय में ठीक लम न छन का है, तास्पर्य यह है कि-यदि जन्मसमय में ठीक रीति से लम के लिया जाबे तथा उसी के अनुसार जन्मपत्री वनाई जाबे तो उस का ग्रामाग्रम फल मक्स मिल सफता है, इस में कोई भी सन्देह नहीं है, परन्तु श्लोक का विषय तो यह है कि-नाममात्र के ज्योतियां छोग छम बनाने की किया को थी वो ठीक रीति से नहीं जानते हैं फिर उन की बनाई हुई जन्मकुण्डली (टेवे) से शुमाशुम फल कैसे विदित हो सकता है, इस लिये हम लग्न के बनाने की किया का वर्णन अति सरल रीति से करेंगे॥

सोलह तिथियों के नाम ॥

संख्या	संस्कृत नाम	हिन्दी नाम	संख्या	संस्कृत नाम	हिन्दी नाम
१	मतिपद्	पहिना	٩	नवमी	नौमी
3	द्वितीया	द्वैन	१०	दश्रमी	दशर्वी
Ę	<u> चृतीया</u>	तीव	११	एकादशी	ग्यार्स
8	<u> বরুখী</u>	चौथ	१२	द्वादशी	नारस -
ધ	पश्चमी .	पाँचम	१३	त्रयोदशी	तेरस
ક્	षष्ठी	छठ	{8	चतुर्दश्री	चौदस
9	सप्तमी	सातम	१५	पूर्णिमा वा पूर्ण मासी	- पूनम वा पूरनमासी
6	अप्टमी	अठिम	१६	अमावात्या	अमावस

सूचना — कृष्ण पक्ष (वदि) में पन्द्रहर्वी तिथि अमावास्म कहलाती है तथा शुक्क पक्ष (सुदि) में पन्द्रहर्वी तिथि पूर्णिमा वा पूर्णमासी कहलाती है ॥

सात वारों के नाम ॥

i	संख्या	संस्कृत नाम	हिन्दी नाम	मुसलमानी नाम	अंग्रेज़ी नाम
•	१	सूर्यवार	इतवार	आइतवार	सन्डे
	3	चन्द्रवार	सोमवार	पीर	मन्डे
	3	मौमवार	भंगळवार	मंग ल	ळ्यून्डे
	8	बुषबार	बुधवार	बुध	वेड्नेस्डे
	4	गुरुवार	बृहस्पतिवार	जुमेरात	थर्सडे
	Ę	शुक्रवार	गुक्रवार	जुमा	फा इंडे
	ø	शनिवार	शनिश्वर	शनीवार	सटर्ड

सूचना-सूर्यवार को आदित्यवार, सोमवार को चन्द्रवार, शृहस्पतिवार को विहफै तथा शनिवार को शनैश्वर वा शनीचर भी कहते है ॥

सत्ताईस नक्षत्रों के नाम ॥

संख्या	नाम	संख्या	नाम	संस्या	नाम	संख्या	नाम
१	<u> অश्विनी</u>	6	पुष्य	१५	स्वाति	२२	अवण
२	भरणी	9	आश्चेषा	१६	विशाला	२३	घनिष्ठा
Ę	कुत्तिका	१०	मघा	१७	अनुराधा	२४	शतभिषा
8	रोहिणी	११	पूर्वाफाल्गुनी	१८	ज्येष्ठा	२५	पूर्वामाद्रपद
ч	मृगशीर्ष	१२	उत्तराफाल्गुनी	१९	मुल	२६	उत्तरामाद्र् पढ
Ę	भादी	१३	हस्त	२०	पूर्वीषाद्रा	२७	रेवती
v	पुनर्वसु	\$8	चित्रा	२१	उत्तरापादा		
		_	2	22			

सत्ताईस योगों के नाम ॥

संख्या	नाम	संख्या	नाम	संख्या	नाम	संख्या	नाम
१	विष्कुम्भ	6	घृति	१५	वज्र	२२	साध्य
२	म ीति	9	शूल	१६	सिद्धि	२३	शुम
Ę	आयु ण्मान्	ξo	गण्ड	१७	व्यतीपात	२४	गुक
8	सौभाग्य	११	बृद्ध	१८	वरीयान	२५	त्रहा
ч	शोभन	१२	घुव	१९	परिष	२६	ऐन्द्र
Ę	अतिगण्ड	१३	व्याघात	२०	शिव	२७	वैघृति
ø	सुकर्मा	\$8	हर्षण	२१	सिद्ध		

सात करणों के नाम ॥

१—वब । २—वालव । ३—कीलव । ४—तैतिल । ५—गर । ६—वणिल । धौर ७—विष्टि ॥
सूचना—तिथि की सम्पूर्ण घड़ियों में दो करण मोगते हैं अर्थात् यदि तिथि साठ
घड़ी की हो तो एक करण दिन में तथा दूसरा करण रात्रि में बीतता है, परन्तु गुक्त
पक्ष की पड़िवा की तमाम घड़ियों के दूसरे आधे माग से वन और वालव आदि आते हैं
तथा कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की घड़ियों के दूसरे आधे माग से सदा स्थिर करण आते
हैं, जैसे देखो ! चतुर्दशी के दूसरे माग में शकुनि, अमावास्या के पहिले माग में चतुप्यद, दूसरे माग में नाग और पड़िवा के पहिले माग में किस्तुम, थे ही चार स्थिर
करण कहलाते हैं ॥

करणों के बीतने का स्पष्ट विवरण ॥

	शुक्क पक्ष (सुवि	हे) के करण ॥	कुला	पक्ष (वदि) वे	हे करण !!
तिथि	प्रथम भाग	द्वितीय माग	तियि	प्रथम साग	द्वितीय माग
8	किंस्तुम	वव	8	बालव	कौळव
2	बालव	कौछव	3	वैतिक	गर
ą	तैतिल	गर	ą	वणिज	विष्टि
8	वणिज	विष्टि	8	वव	বাতৰ
ц	वब	बाङव	ч	कौलव	तैतिङं
8	कौछव	वैतिछ	Ę	गर	वणिज
9	गर	वणिज	v	विष्टि	बब
6	विष्टि	बब	6	बालव	कौलब
9	बालव	कौलब	9	तैतिल	गर
٠ و ٠	तैतिङ	गर	१०	वणिज	विष्टि
११	वणिज	विष्टि	११	वव	बालव
१२	वव	बालव	१२	कौलव	वैतिङ
१३	कौलव	तैतिङ	१३	गर	वणिन ——ि
\$8	गर	ৰ্ণিজ	\$8	विष्टि	ञ्चकुनि
१५		ब्ब	३०	चतुष्पद	नाग
पूर्णि			अमावस		
7	**	W 4 00-	- A-C	गारी का वर्ष	ति ॥

शुस कार्यों में निषिद्ध तिथि आदि का वर्णन ॥ जिस तिथि की शुद्धि हो वह तिथि, जिस तिथि का क्षय हो वह तिथि, का पहिला आधा माग, विष्टि, वैधृति, व्यतीपात, कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी (तेरस) से मितपद् (पिड़वा) तक चार दिवस, दिन और रात्रि के वारह वजने के समय पूर्व और पिछ के दश पल, माता के ऋतुधर्म संबंधी चार दिन, पिहले गोद लिये हुए लड़के वा लड़की के विवाह आदि में उस के जन्मकाल का मास; दिवस और नक्षत्र, जेठ का मास, अधिक मास, क्षय मास, सत्वाईस योगों में विष्कुम्म योग की पिहली तीन धड़ियाँ, व्याघात योग की पिहली नौ घड़ियाँ, शूल योग की पिहली पाँच घड़ियाँ, वज्र योग की पिहली नौ घड़ियाँ, गण्ड योग की पिहली छः धड़ियाँ, अतिगण्ड योग की पिहली छः धड़ियाँ, चीया चन्द्रमा, आठवाँ चन्द्रमा, बारहवाँ चन्द्रमा, कालचन्द्र, गुरु तथा गुक्त का अस, जन्म तथा प्रत्यु का स्त्तकं, मनोमक्ष तथा सिह राश्चि का चृहस्पति (सिंहस्थ वर्ष), इन सब तिथि आदि का गुम कार्य में बहण नहीं करना चाहिये॥

१-स्तक विचार तथा उस में कर्ताब्य-पुत्र का जन्म होने से दश दिन तक, पुत्री का जन्म होने से वारह दिन तक, जिस की के पुत्र हो उस (की) के छिये एक मास तक, पुत्र होते ही मर जावे तो एक दिन तक, परदेश में मृत्यु होने से एक दिन तक, घर में गाय; मैंस; घोडी और कैंटिनी के ब्याने से एक दिन तक, घर में इन (गाय आदि) का मरण होने से जब तक इन का गृत शारीर घर से बाहर न निकला जावे तब तक, दास दासी के पुत्र तथा पुत्री आदि का जन्म या मरण होने से तीन दिन तक तथा गर्म के गिरने पर जितने महीने का गर्म गिरे उतने दिनों तक सुतक रहता है।

बिस के ग्रह में जन्म वा सरण का स्तफ हो वह बारह दिन तक देवपूजा को न करे, उस में भी सतकसम्बधी स्तफ में घर का मूक स्कथ (मूळ कॉधिया) दश दिन तक देवपूजा को न करे, इस के िखाब श्रेष घर बाले तीन दिन तक देवपूजा को न करें, बाद सतक को छुआ हो तो नीवीस प्रहर तक प्रतिक्रमण (पिंडक्रमण) न करे, बाद सदा का भी असण्ड नियम हो तो समता भाव रख कर शाम्यर-पने में रहे परन्तु मुख से नवकार मन्त्र का भी उचारण न करे, स्थापना जी के हाथ न लगावे; परन्तु बाद सतक को न छुआ हो तो केवल आठ प्रहर तक प्रतिक्रमण (पिंडक्रमण) न करे, भेंस के बचा होने पर पन्त्रह दिन के पीछे उस का द्र्य पीना कल्पता है, वाय के बचा होने पर भी पन्त्रह दिन के पीछे द्र्य पीना कल्पता है तथा बकरी के बचा होने पर उस समय से आठ दिन के पीछे द्र्य पीना कल्पता है।

ऋदुमती ही चार दिन तक पात्र आदि का स्पर्ध न करे, चार दिन तक प्रतिक्रमण न करे तथा पॉच दिन तक देवपूजा न करे, यदि रोगादि किसी कारण से तीन दिन के उपरान्त भी किसी ही के रफ चलता हुआ दीखे तो उस का निशेष दोप नहीं माना गया है, ऋदु के पद्मात ली को उनित है कि-शुद्ध विवेक से पवित्र हो कर पॉच दिन के पीछे स्थापना पुस्तक का स्पर्ध करे तथा साधु को प्रतिक्रमण आदि का करना शोग्य नहीं है (जैसा कि कपर किस चुके है), यह चर्चरी प्रन्य में कहा है, जिस घर में जन्म मा मरण का सूतक हो वहाँ बारह दिन तक साधु आहार तथा पानी को न यहरें (छे), क्योंकि-निशीय-सूत्र के सोलहदें उद्देश्य में जन्म मरण के सूतक से सुक सर दुग्छिनीक कहा है ॥

दिन का चौघड़िया॥

रवि	सोम	मञ्जल	बुध	गुरु	য়ুক	शनि
उद्वेग	अमृत	रोग	छाम	शुम	चल	काल
चल	কান্ত	उद्वेग	अमृत	रोग	लाम	शुभ
लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
अमृत	रोग	लाम	शुभ	च्छ	কান্ত	उद्वेग
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुम	ৰক
शुभ रोग	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	छाभ
रोग	लाम	शुम	चरू	কাক	उद्वेग	असृत
उद्वेग	अमृत	रोग	छा भ	शुम	चल	काल

विज्ञान—कपर के कोष्ठ से यह समझना चाहिये कि—जिस दिन जो नार हो उस दिन उसी वार के नीचे किसा हुआ चौषड़िया सूर्योदय के समय में बैठता है वह पहिला समझना चाहिये, पीछे उस के उतरने के बाद उस वार से छठे वार का चौषड़िया बैठता है वह दूसरा समझना चाहिये, पीछे उस के उतरने के बाद उस (छठे) नार से छठे वार का चौषड़िया बैठता है, यही कम जागे भी समझना चाहिये, जैसे देलो! रिववार के दिन पहिला उद्देग नामक चौषड़िया है उस के उतरने के पीछे रिव से छठे शुक्र का चल नामक चौषड़िया बैठता है, इसी अनुक्रम से प्रत्येक वार के दिन भर का चौषड़िया जान लेना चाहिये, एक चौषड़िया ढेड़ वण्टे तक रहता है अर्थात सबेरे के छः बने से छे कर शाम के छः बने तक बारह वण्टे में आठ चौषड़िये व्यतीत होते हैं, इन में से—अमृत; शुम; लाम भीर चल; ये चार चौषड़िये उत्तम तथा उद्वेग; रोग और काल; ये तीन चौषड़िये निकृष्ट हैं, इस लिये अच्छे चौषड़ियों में शुभ काम को करना चाहिये॥

रात्रि का चौघडिया ॥

रवि	सोम	मङ्गळ	बुष	गुरु	शुक	श्चनि
शुभ	ৰ ন্ত	काळ	उद्वेग	अमृत	रोग	ग्रम
अमृत	रोग	न्य	शुम	चल	काल	उद्वेग
चळ	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाम	शुभ
रोग	लाम	शुम	च्छ	কারু	उद्वे ग	अमृत
काल	उद्वेग	असृत	रोग	लाम	शुम	चल
लाम	शुभ	ৰভ	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
उद्वेग	अमृत	रोग	ग्रम	शुम	ৰত	काल
शुभ	च्छ	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ

विज्ञान—इस कोष्ठ में ऊपर से केवल इतना ही अन्तर है कि—एक बार के पहिले चौघड़िये के उतरने के पीछे उस बार से पाँचनें बार का दूसरा चौघड़िया बैठता है, शेष सब विषय ऊपर लिखे अनुसार ही है ॥

छोटी बड़ी पनोती तथा उस के पाये का वर्णन ॥

प्रत्येक मनुष्य को अपनी जन्मराशि से जिस समय नौथा वा आठवां शनि हो उस समय से २॥ वर्ष तक की छोटी पनोती जाननी चाहिये, बारहवाँ शनि बैठे (लगे) तब से लेकर दूसरे शनि के उतरने तक बरावर ७॥ वर्ष की बड़ी पनोती होती है, उस में से बारहवें शनि के होने तक २॥ वर्ष की पनोती मस्तक पर समझनी चाहिये, पहिले शनि के होने तक २॥ वर्ष की पनोती छाती पर जाननी चाहिये तथा दूसरे शनि के होने तक २॥ वर्ष की पनोती पैरों पर जाननी चाहिये।

जिस दिन पनोती बैठे उस दिन यदि जन्मराधि से पहिछा; छठा तथा ग्यारहवाँ चन्द्र हो तो उस पनोती को सोने के पाये जानना चाहिये, यदि दूसरा; पाँचवां तथा नवां चन्द्र हो तो उस पनोती को रूपे के पाये जानना चाहिये, यदि तीसरा; सातवाँ तथा दशवाँ चन्द्र हो तो उस पनोती को तांने के पाये जानना चाहिये तथा यदि चौथा आठवाँ और वारहवाँ चन्द्र हो तो उस पनोती को छोहे के पाये जानना चाहिये ॥

पनोती के फल तथा वर्ष और मास के पाये का वर्णन ॥

यदि पनोती सोने के पाये बैठी हो तो चिन्ता को उत्पन्न करे, यदि पनोती रूपे के पाये बैठी हो तो घन मिछे; यदि पनोती ताँने के पाये बैठी हो तो छल और सम्पित्त मिछे तथा यदि पनोती छोहे के पाये बैठी हो तो कष्ट माप्त हो, इसी मकार जिस दिन वर्ष तथा मास बैठे उस दिन जिस राशि का चन्द्र हो उस के द्वारा ऊपर छिले अनुसार सोने के; रूपे के तथा ताँने के पाये पर बैठने वाछे वर्ष अथवा मास का निचार कर सम्पूर्ण वर्ष का अथवा मास का फल जान छेना चाहिये, जैसे—देखो! करुपना करो कि—संवत् १९६४ के प्रथम चैत्र शुक्क पढ़िंचा के दिन मीन राशि का चन्द्र है वह (चन्द्र) मेपराशि वाछे पुरुष को बारहवा होता है इस छिये ऊपर कही हुई रीति से छोहे के पाये पर वर्ष तथा मास बैठा अत उसे कष्ट देने वाला जान छेना चाहिये, इसी रीति से दूसरी राशिवालों के छिये भी समझ छेना चाहिये॥

चोरी गई अथवा खोई हुई वस्तु की प्राप्ति वा अप्राप्ति का वर्णन ॥

पूर्व दिशा में	दक्षिण दिशा में	पश्चिम दिशा में	उत्तर दिशा में
श्रीघ मिलेगी	तीन दिन में मिलेगी	एक मास में मिलेगी	नहीं मिलेगी
रोहिणी	म्टग शीर्ष	आद्री	पुनर्वसु
पुष्य	आश्चेषा	मघा	पूर्वाफाळगुनी
उत्तरा फाल्गुनी	हस्त	चित्रा	स्वाति
विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा	मूल
पूर्वीषाढा	उत्तराषाढा	समिजित्	अवण
धनिष्ठा	शतिमवा	पूर्वीभाद्रपद	उत्तराभाद्रपद
रेवती	জ श्चिनी	मरणी	कृत्तिका

विज्ञान जपर के कोष्ठ से यह समझना चाहिये कि निस दिन वस्तु खोई गई हो अथवा चुराई गई हो (वह दिन यदि माद्धम हो तो) उस दिन का नक्षत्र देखना चाहिये, यदि रोहिणी नक्षत्र हो तो ऊपर लिखे अनुसार समझ लेना चाहिये कि वह वस्तु पूर्व दिशा में गई है तथा वह शीत्र ही मिलेगी, यदि वह दिन माद्धम न हो तो जिस दिन अपने को उस वस्तु का चोरी जाना वा खोया जाना माद्धम हो उस दिन का नक्षत्र देख कर ऊपर लिखे अनुसार निर्णय करना चाहिये, यदि उस दिन मृगशीर्ष नक्षत्र हो तो जान लेना चाहिये कि वस्तु दक्षिण दिशा में गई है तथा वह तीन दिन में मिलेगी, यदि उस दिन आद्धां नक्षत्र हो तो जानना चाहिये कि वह वस्तु पश्चिम दिशा में गई है तथा एक महीने में मिलेगी और यदि उस दिन पुनर्वसु नक्षत्र हो तो जान लेना चाहिये कि—वह वस्तु उत्तर दिशा में गई है तथा वह नहीं मिलेगी, इसी मकार कोष्ठ में लिखे हुए सब नक्षत्रों के अनुसार वस्तु के विषय में निश्चय कर लेना चाहिये ॥

नाम रखने के नक्षत्रों का वर्णन ॥

संख्या	नाम नक्षत्र अक्षर	संख्या	नाम नक्षत्र अक्षर
8	अश्विनी चू, चे, चो, छा,		पुनर्वस्रु के, को, हा, ही,
2	भरणी ली, ख, हे, लो		पुष्य हू, हे, हो, डा,
	कृत्तिका स, ई, ऊ, ए,		आश्चेषा ही, डु, हे, हो,
	रोहिणी ओ, बा, बी, बू,	-	मघा म, मी, मू, मे,
ц	मृगशिर बे, बो, का, की,	११	पूर्वाफारगुनी मो, टा, टी, ह,
Ę	आद्री कू, घ, ड, छ,	१२	उत्तराफाल्गुनी टे, टो, प, पी,

संख्या नाम नक्षत्र अक्षर १३ हस्त पु, ब, ज, ठ, १४ चित्रा पे, पो, रा, री, १५ खाती रू, रे, रो, ता, १६ विशाखा ती, तू, ते, तो, १७ अनुराधा ना, नि, नू, ने, १८ ज्येष्ठा नो या, यी, यू, १९ मूल ये, यो, भ, भी, २० प्रवीषादा मू. घ. फ. ड.

संख्या नाम नक्षत्र अक्षर २१ उत्तराषादा मे, मो, ज, जी, २२ अमिनित् जू, जे, जो, खा, रं३ अवण खी, खु, खे, खो, २४ धनिष्ठा ग, गी, गू, गे, २५ शतभिषा गो, सा, सी, सू, २६ पूर्वामाद्रपद से, सो, द, दी, २७ उत्तरामाद्रपद दु, ञ, झ, थ, २८ रेवती दे, दो, च, ची,

चन्द्रराशि का वर्णन ॥

नक्षत्र तथा उस के पार्व । राश्चि । नक्षत्र तथा उस के पाद । मेप अश्विनी, मरणी, कृत्तिका का प्रथम तुल चित्रा के दो पाद, साति, विशासा के पाद । शिर के दो पाद। मिश्रन मृगशिर के दो पाद, आर्द्री, पुनर्वेस के तीन पाद । कर्क पुनर्वस का एक पाद, पुष्य, आश्चेषा। सिंह मघा, पूर्वीफाल्युनी, उत्तराफाल्युनी का कुम्म भनिष्ठा के दो पाद, शतिमवा, पूर्वी-प्रथम पाद । कत्या उत्तराफाल्गुनी के तीन पाद, इस्त, भीन पूर्वाभाद्रपद का एक पाद, उत्तरामाद्र-चित्रा के दो पाद। पद, रेवती ॥

तीन पाद। कृत्तिका के तीन पाद, रोहिणी, मृग- वृश्चिक विशाला का एक पाद, अनुराधा, ज्येष्ठा। धन मूळ, पूर्वीषादा, उत्तराषादा का प्रथम पाव । मक्रर उत्तराषाड़ा के तीन पाद, अवण, ध-निष्ठा के दो पाद ।

भाद्रपद् के तीन पाद।

तिथियों के भेदों का वर्णन ॥

पहिले जिन तिथियों का वर्णन कर चुके है उन के कुल पाँच मेद है-नन्दा, मद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा, अब कौन २ सी तिथियाँ किस २ मेदबाली है यह बात नीचे लिखे कोष्ठ से विदित हो सकती है:-

१-उत्तरापाढा के नौथे माग से छेकर श्रषण की पहिली चार घडी पर्यन्त अभिजित् नक्षत्र गिना जाता है, इतने समय में जिस का जन्म हुआ हो उस का अभिनित नक्षत्र में जन्म हुआ समझना चाहिये ॥

२-स्मरण रहे कि-एक नक्षत्र के चार चरण (पाद वा पाये) होते हैं तथा चन्द्रमा दो नक्षत्र और एक पाये तक अर्थात नी पायों तक एक राश्चि में रहता है, बन्द्रमा के राश्चि से स्थित होने का यही कम बरावर जानना चाहिये॥

संख्या। मेद। तिथियाँ। 🏅 संख्या। मेद। तिथियाँ।

१ नन्दा पड़िवां, छठ और एकादशी। १ रिक्ता चौथ, नौमी और चौदश।

२ मद्रा द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी । ५ पूर्णा पश्चमी, दशमी और पूर्णिमा।

३ जया तृतीया, अष्टमी और तेरस।

सूचना—यदि नन्दा तिथि को शुक्रवार हो, यदा तिथि को बुधवार हो, जया तिथि को मङ्गळवार हो, रिक्ता तिथि को शनिवार हो तथा पूर्णा तिथि को गुरुवार (बृहस्पति-वार) हो तो उस दिन सिद्धि योग होता है, यह (योग) सब शुभ कामों में अच्छा होता है।

दिशाशूल के जानने का कोष्ठ ॥

नाम बार । दिशा में । नाम बार । दिशा में । सोम और शनिवार को । पूर्व दिशामें । बुध तथा मङ्गळवार को । उत्तर दिशा में । गुरुवार को । दक्षिण दिशा में । रिव तथा शुक्रवार को । पश्चिम दिशा में ।

योगिनी के निवास के जानने का कोष्ठ ॥

नाम तिथि । दिशा में । नाम तिथि । दिशा में । पिड़िना और नौमी । पूर्व दिशा में । पिड़ी और चतुर्दशी । पिड्यम दिशा में । तृतीया और प्रकादशी । अधि कोण में । सप्तमी और पूर्णनासी । नायव्य कोण में । पिड्यमी और त्रयोदशी । दिक्षण दिशा में । द्वितीया और दशमी । उत्तर दिशा में । चतुर्थीं और द्वादशी । नैर्ऋत्य कोण में । अष्टमी और अमानास्या । ईशान कोण में ।

योगिनी का फल ॥

फल । संख्या । तरफ । फल । संख्या । तरफ। बाँछित फल को ३ पीठकी तरफ ! धन की हानि दाहिनी तरफ । देने वाली। करने वाळी। मरण तथा तक्लीफ स्रख देने वाली। ४ सम्मुख होने पर। बाई तरफ। 3 को देने वाली।

चन्द्रमा के निवास के जानने का कोष्ठ ॥

राशि । विशा में । राशि । दिशा में । मेष और सिंह । पूर्व दिशा में । मिश्रुन, तुल और कुम्म । पश्चिम दिशा में । बृष, कन्या और मकर । दक्षिण दिशा में । बृश्चिक, कर्क और मीन । उत्तर दिशा में ।

चन्द्रमा का फल ॥

संख्या ।	तरफ।	फळ ।	संख्या ।	तरफ ।	দন্ত ।
ξ	सम्मुख होने पर।	अर्थ का लाम	3	पीठ की तरफ	प्राणों का नाश
		करता है। .		होने पर ।	करता है।
२	दाहिनी तरफ हो	सुख तथा सम्पत्ति	8 1	वाइ तँरफ होने पर।	धन का क्षय
	ने पर ।	करता है।			करता है।

कालराहु के निवास के जानने का कोएँ ॥

नाम बार | दिशा में | शनिबार | पूर्व दिशा में | गुरुवार | दक्षिण दिशा में | मंगळवार | पश्चिम दिशा में | रिववार | उत्तर शुक्रवार | अभिकोण में | बुधवार | नैर्ऋत्य कोण में | सोमबार | वायव्य कोण में | दिशा में |

अर्कदग्धा तथा चन्द्रदग्धा तिथियों का वर्णने ॥

अर्कदुग्घा वि	तेथियाँ ।	 चन्द्रस्था	तिथियाँ ॥
at died att t	111231 1	 4.96.4.10	404-1-11 6

. सङ्गान्ति ।	तिथि।	चन्द्रराशि ।	तिथि।
घन तथा मीन की।	द्वितीया।	वृष और कर्क राशि के चन्द्र में ।	दशमी ।
वृष तथा कुम्म की।	चतुर्थी ।	धन और कुम्भ राशि के चन्द्र में।	द्वितीया ।
मेष तथा कर्क की।	षष्ठी ।	वृक्षिक और कन्या राशि के चन्द्र में।	द्वावशी ।
कन्या तथा मिश्रुन की ।	अष्टमी।	मीन और मकर राशि के चन्द्र में।	अप्टमी ।
बृश्चिक तथा सिंह की।	दशमी ।	तुल और सिंह राशि के चन्द्र में।	पष्टी ।
मकर तथा तुरु की।	द्वादशी ।	मेष और मिधुन राशि के चन्द्र में ।	चतुर्थी ।

इप्ट काल साधन ॥

पहिले कह चुके है कि-जन्मकुंडली वा जन्मपत्री के बनाने के लिये इष्टकाल का साधन करना अत्यावश्यक होता है, क्योंकि-इस (इष्टकाल) के शुद्ध किये विना जन्म-

१-परदेशादि में गमन करने के समय उक्त सब बातो (दिशाश्र्ल आहि) का देखना आवश्यक होता है, इन बातों के श्वानार्थ इस दोहे को कण्ठ रखना चाहिये कि-"दिशाश्र्ल ले जावे बार्ये, राहु थोगिनी पूठ ॥ सम्मुख लेचे चन्द्रमा, लाचे लक्ष्मी लूट" ॥ १ ॥ इम के विवास जन्म के चन्द्रमा में परदेशगमन, तीर्थयात्रा, युद्ध, विवाह, बीरकर्म अर्थात् गुण्डन तथा नये घर में निवास, ये पाँच कार्य नहीं करने चाहियें ॥

२-अर्फदग्धा तथा चन्द्रदग्धा तिथियों मे शुम तथा माइविक कार्य का करना अलन्त निपिद्ध है।।

पत्री का फल कभी ठीक नहीं मिल सकता है, इस लिये अब इस विकय का स्केर के वर्णन किया जाता है:—

घण्टा बनाने की विधि — एक घटी (घड़ी) के २१ निनट होते हैं, इस किन होई दण्ड (घड़ी) का एक घण्टा (खर्यात् ६० मिनट) होता है, इस सीति से कहे- रात्र (रात दिन) साठ घटी का अर्थात् चौनीस घण्टे का होता है, जन घण्टा आहि बनाने के समय इस बात का स्थाल रखना चाहिये कि—वितनी घटी लौर पल हों उन को २॥ से माग देना चाहिये, क्योंकि—इस से घण्टा; मिनट तथा सेकिण्ड तक नाइत हो सकते हैं, वैते—देखो! १४ घटी, २० पल तथा ४५ विपल के घण्टे बनाने हें—ते पाँच हाम साड़े बारह को निकाल तो छेब (बाकी) रहीं—११५०१४५, अब एक घटी के २४ मिनट हुए तथा ५० पल के—२० हाम ५० वर्षात् २० मिनट हुए, इन में पूर्व के २४ मिनट निलाये तो ४४ मिनट हुए तथा ४५ विपल के—१८ हान १५ अर्थात् १८ सेकिण्ड हुए, इस लिये—१४ घटी २० पल तथा ४५ विपल के पूरे ५ घटे, ४४ मिनट तथा १८ सेकिण्ड हुए, इस लिये—१४ घटी २० पल तथा ४५ विपल के पूरे ५ घटे, ४४ मिनट तथा १८ सेकिण्ड हुए ॥

दूसरी विधि—घटी; पल तया विपल को द्विगुण (दूना) करके ६० से बझ कर ५ का माग दो, जो लग्न आदे उसे घण्टा समझो, शेष को ६० से गुणा कर के तथा पल के अक्कों को जोड़ कर ५ का माग दो, जो लग्न आदे उसे निनट सन्त्रों और शेष को साठ (६०) से गुणा कर के तथा विपल के अक्कों को जोड़ कर ५ का माग दो, जो लग्न आदे उसे सिकण्ड सनझो, उदाहरण—१४१२०१९५ को द्विगुण (दूना) किया तो २८१४०१९० हुए, इन में से अन्तिम अक्क ९० में ६० का माग दिया तो लग्न एक आया, इस एक को पल में जोड़ा तो २८१४११० हुए, इन में ५ का माग दिया तो लग्न ५ आया, वे ही पाँच बन्टे हुए, शेष ३ को ६० से गुणा करके उन में ४१ जोड़े तो २२४ हुए, इन में ५ का माग दिया तो लग्न ४४ हुए, इन में ५ का माग दिया तो लग्न ४४ हुए, इन में ५ का माग दिया तो लग्न ४४ हुए, इन में ५ का माग दिया तो लग्न ४४ हुए, इन में ५ का माग दिया तो लग्न ४४ हुए, इन में ५ का माग दिया तो लग्न ४४ हुए, इन में ५ का माग दिया तो लग्न ४४ हुए,

१-स्तरण रहे कि सवाये का तिशान इस प्रकार से जिसा जावेगा-११९५, सई का विहास-२११९ पोने दो का ११४५। पूरी राक्षि ६० हैं, इसी का लेल ११२१३ वा हिस्सा १५१३०४४ जानता काहिंवे प्र

२-दण्ड, नाड़ी साँत करा सादि चंहावें घटो (घड़ी) की ही हैं और यह, विघटी तथा विद्वास सादि विपन ही की चंहायें हैं II

२-१४१२०१४५ बाकी १२२।२० सब २० में से २० नहीं घट सकता है, इस किये बेची हुई से घटिकाओं में से एक घटिका को के कर उस के पर बनाये तो ६० पर हुए, इन को २० में कोड़ा तो ८० पर हुए, इन में से २० को घटाया तो ५० बनें, इस किये ११९०१४५ हुए, इसी प्रकार सब क्याह ज्यानने कहिये हैं।

हुए, इन में ५ का माग दिया तो छन्न १८ हुए, इन्हीं को सेकिण्ड समझो, बस १४ घड़ी, २० पळ तथा ४५ विपळ के ५ घण्टे, ४४ मिनट तथा १८ सेकिण्ड हुए।

इसी प्रकार यदि घण्टा; मिनट और सेकिण्ड के घटी; पछ और विपछ बनाने हों तो घण्टा; मिनट और सेकिण्ड को ५ से गुणा कर तथा ६० से चढा कर २ का भाग दो अर्थात् आधा कर दो तो घण्टा मिनट और सेकिण्ड के घटी; पछ और विपछ बन जावेंगे, जैसे—देखो! इन्हीं ५ घण्टे; ४४ मिनट तथा १८ सेकिण्ड को ५ से गुणा किया तो २५।२२०।९० हुए, इन को ६० से चढ़ायों तो २८।४१।२० हुए, इन में दो का भाग दिया (आधा किया) तो १४।२०।४५ रहे अर्थात् ५ घण्टे; ४४ मिनट तथा १८ सेकिण्ड की १४ घटी; २० पछ तथा ४५ विपछ हुए, यह भी सरण रखना चाहिये कि—दो का माग देने पर जब आधा वचता है तब उस की जगह ३० माना जाता है, जैसे कि—४१ का आधा २०॥ होगा, इस छिये वहाँ आधे के स्थान में ६० समझा जावेगा, इसी प्रकार ढाई गुणा करने में भी उक्त बात का सरण रखना चाहिये।

इस का एक अति सुलम उपाय यह भी है कि-घण्टे; मिनट और सेकिण्ड की जब घटी आदि बनाना हो तो घण्टे आदि को दूना कर उस में उसी का आधा जोड़ दो, जैसे-५१४४११८ को दूना किया तो १०।८८१६ हुए, उन में उन्हीं का आधा २। ५२१९ जोड़े तो १२।१४०।४५ हुए, इन में ६० का भाग दिया तो १४।२०।४० हुए अर्थात् उक्त घण्टे आदि के उक्त दण्ड और पल आदि हो गये॥

सूर्यास्त काल साधन ॥

पश्चाङ्क में लिखे हुए प्रतिदिन के दिनमान के प्रथम कपर लिखी हुई किया से घण्टे; मिनट और सेकिण्ड बना लेने चाहियें, पीछे उन्हें आधा कर देना चाहिये, ऐसा करने से सूर्यास्तकाल हो जानेगा, उदाहरण—कल्पना करों कि—दिनमान ३१।६५ है, इन के घण्टे बनाये तो १२ घण्टे तथा ३८ मिनट हुए, इन का आधा किया तो ६।१९ हुए, वस यही सूर्यास्तकाल हुआ अर्थात् सूर्य के अस्त होने का समय ६ बन कर १९ मिनट पर सिद्ध हुआ, इसी प्रकार आवश्यकता हो तो सूर्यास्तकाल के घंटे आदि को दूना करके घटी तथा पल बन सकते है अर्थात् दिनमान निकल सकता है॥

⁹⁻महिले ९० में ६० का भाग दिया तो खब्म एक आया, इस एक को २२० में लोड़ा तो २२९ हुए, शेष बचे हुए २० को वैसा ही रहने दिया, अब २२१ में ६० का भाग दिया तो कच्घ ३ आये, इन ३ को २५ में जोड़ा तो २८ हुए, कोष बचे हुए ४१ को वैसा ही रहने दिया, वस २८।४९।३० हो गये॥

सूर्योद्य काल के जानने की विधि॥

१२ में से स्वीस्तकाल के घण्टों और मिनटों को घटा देने से स्वीद्यकाल वन जाता है, जैसे—१२ में से ६।१९ को घटाया तो ५।११ शेष रहे वर्षात् ५ वने के ११ मिनट पर स्वीद्यकाल ठहरा, एवं स्वीद्यकाल के घण्टों और मिनटों को दूना कर घटी और पल बनाये तो २८।२५ हुए, बस यही रात्रिमान है, दिनमान का आधा दिनार्घ और रात्रिमान का आधा रात्रिमानार्घ (राज्यर्घ) होता है तथा दिनमान में रात्रिमानार्घ को जोड़ने से राज्यर्घ अर्थात् निशीयसमय होता है, जैसे—१५।१७।३० दिनार्घ है तथा १४।१२। ३० रात्रिमानार्घ है, इस रात्रिमानार्घ को (१४।१२।३० को) दिनमान में जोड़ा तो राज्यर्घ अर्थात् निशीयकाल १५ ।१७।३० हुआ।

दूसरी किया—६० में से दिनमान को बटा देने से रात्रिमान बनता है, दिन-मान में ५ का भाग देने से स्थास्तकाल के घण्टे और मिनट निकलते हैं तथा रात्रिमान में ५ का भाग देने से स्थोद्यकाल बनता है, बैसे—३१।३५ में ५ का भाग दिया तो ६ लब्ब हुए, शेष बचे हुए एक को ६० से गुणा कर उस में ३५ जोड़े तथा ५ का भाग दिया तो १९ लब्ब हुए, बस यही स्थीस्तकाल हुआ अर्थात् ६।१९ स्थीस-काल ठहरा, ६० में से दिनमान ३१।३५ को घटायां तो २८।२५ रात्रिमान रहा, उस में ५ का भाग दिया तो ५।४१ हुए, बस यही स्थीद्यकाल बन गया।

इप्रकाल विरचन ॥

यदि स्थेंदियकाल से दो पहर के भीतर तक इष्टकाल बनाना हो तो स्थेंदिथकाल को इष्टसमय के घण्टों और मिनटों में से घटा कर दण्ड और पल कर लो तो मध्याह के भीतर तक का इष्टकाल वन जावेगा, वैसे—कल्पना करो कि—स्थेंदिय काल ६ वन के ७ मिनट तथा ४९ सेकिण्ड पर है तो इष्टसमय १० वज के ११ मिनट तथा ३७ सेकिण्ड पर हुआ, क्योंकि—अन्तर करने से ११३१४८ के घटी और पल आदि १०१८ ३० हुए, वस यही इष्टकाल हुआ, इसी प्रकार सध्याह के ऊपर जितने वण्टे आदि हुए हों उन की घटी आदि को दिनार्घ में जोड़ देने से दो पहर के ऊपर का इष्टकाल स्थें-दय से वन जावेगा ॥

सूर्यात के घण्टे और मिनट के उपरान्त जितने घण्टे आदि व्यतीत हुए हों उन की घटी और पळ आदि को दिनमान में जोड़ देने से राज्यर्घ तक का इष्टकाळ वन जानेगा।

१—स्मरण रहे कि—२४ घण्टे का अर्थात ६० घटी का अहोरात्र (दिनरात) होता है, घटाने की रीति इस प्रकार समझनी चाहिये—३,६५% देखो! ६० में से ३१ को घटाया तो २९ रहे, अब २५ को घटाना है परन्तु ३५ के कपर श्रन्य है अर्थात ग्रन्थ में से ३५ घट नहीं सकता है तो २९ में से एक निकाला अर्थात २९ की जगह २८ रक्खा तथा उस निकाले हुए एक के पल बनाये तो ६० हुए, इन में से ३५ को निकाला (घटाया) तो २५ वने अर्थात ६० में से ३१।३५ को घटाने से २८।२५ रहे॥

राज्यर्घ के उपरान्त जितने घण्टे और मिनट हुए हों उन के दण्ड और पर्लों को राज्यर्घ में जोड़ देने से सूर्योदय तक का इष्ट वन जावेगा ॥

दूसरी विधि—सूर्योदय के उपरान्त तथा दो प्रहर के मीतर की घटी और पलों को दिनार्घ में घटा देने से इष्ट बन जाता है, अथवा सूर्योदय से लेकर जितना समय व्यतीत हुआ हो उस की घटी और पल बना कर मध्याहोत्तर तथा अर्घ रात्रि के मीतर तक का जितना समय हो उसे दिनार्घ में बोड़ देने से मध्य रात्रि तक का इष्ट बन जावेगा, अथवा सूर्योदय के अनुन्तर जितने घण्टे व्यतीत हुए हों उन की घटी और पल बना कर उन्हें ६० में से घटा देने से इष्ट बन जाता है, दिनार्घ के ऊपर के जिनते घण्टे व्यतीत हुए हों उन की घटी और पल बना कर उन्हें राज्यर्घ में घटा देने से राज्यर्घ के भीतर का इष्टकाल बन जाता है।

लग्न जानने की रीति॥

जिस समय का लग्न बनाना हो उस समय का प्रथम तो जगर लिखी हुई किया से इष्ट बनाओ, फिर-उस दिन की वर्तमान संक्रान्ति के जितने अंश गये हों उन को पश्चाक्त में देख कर लग्नसारणी में उन्हीं अंशों की पिक्क में उस सक्कान्ति बाले कोष्ठ की पिक्क के बरावर (सामने) जो कोष्ठ हो उस कोष्ठ के अक्कों को इष्ट में जोड़ दो और उस सारणी में फिर देखो जहाँ तुन्हारे जोड़े हुए अंक मिलें वही लग्न उस समय का जानो, परन्तु सारण रखना चाहिये कि—यदि तुन्हारे जोड़े हुए अंक्क साठ से उपर (अधिक) हों तो उपर के अक्कों को (साठ को निकाल कर शेष अक्कों को) कायम रक्वों अर्थात् उन अक्कों में से साठ को निकाल डालो फिर उपर के जो अक्क हों उन को सारणी में देखो, जिस राश्चि की पिक्क में वे अक्क मिलें उतने ही अंश पर उसी लग्न को समझो ॥

कतिपय महज्जनों की जन्मकुंडलियाँ

अव कृतिपय महज्जनों की जन्मकुण्डलियाँ लिखी जाती है—जिन की प्रहिवशेष-स्थिति को देख कर विद्वज्जन अहिवशेषजन्य फल का अनुभव कर सर्केगे:—

तीर्थेकर श्री महावीर सामी की जन्मकुण्डली ॥ श्री रामचंद्र जी महाराज की जन्मकुण्डली ॥





श्रीकृष्णचन्द्र महाराज की जन्मकुण्डली ॥



श्री हुउकर महाराज श्री सियाजीरावें बहादुर इन्दोर की जन्मकुण्डली ६।१७॥



महाराज श्री प्रतापसिंह जी वहादुर ईंदर की जन्मकुण्डली ॥



कैसरेहिन्द महाराणी स्वर्गवासिनी श्री विक्टोरियाँ की जन्मकुण्डली |}



स्वर्गवासी महाराज श्री यशवन्त सिंहै जी बहादुर जोघपुर की जन्मकुण्डली ॥



महाराज श्री सिरदारसिंहें जी बहादुर जोधपुर की जन्म कुण्डली ॥



सूचना—बहुत से पुरुषों की जन्मपत्री का शुमाशुम फल प्रायः नहीं मिलता हैं जिस का कारण प्रथम लिख चुके हैं कि—उन में इष्टकाल ठीक रीति से नहीं लिया जाता है, इस लिये जिन जन्मपत्रिओं का फल न मिलता हो उन में इष्टकाल का गड़बढ़ समझना चाहिये, किन्तु ज्योति:शाब समझना चाहिये, किन्तु ज्योति:शाब

१-इस शाहवादी का जन्म केन्सिगटन के राजमहरू में सन् १८९९ ई. के सई मास की २४ ता. की सुदेरे ४ यज के ६ मिनट तथा ९६ सेकिंग्ट के समय हुआ था ॥

२-संवत् १९१६ मिति कार्तिक कृष्णा १, इष्ट ५८।५ पर जन्म हुना ॥

३-संवत् १८९४ आश्विन सुदि ९, इष्ट ५७५८ पर जनम हुला ॥

४-संबत् १९०१ मिति मिगशिर बदि ५, इष्ट ३०।३१ के समय जन्म हुआ।।

५-संवत् १९३६ मिदि साम सुदि १, बुधवार, इष्ट ३२।१० के समग्र जनम हुआ।

पर से श्रद्धा को नहीं हटाना चाहिये, क्योंकि—ज्योतिःशास (निमित्तज्ञान) कभी मिथ्या नहीं हो सकता है, देखों! ऊपर जिन प्रसिद्ध महोदयों की जन्मफुण्डिल्या यहाँ उद्भृत (दर्ज) की हैं उन के लग्नसमय में फर्क का होना कदापि सम्भव नहीं है, क्योंकि इस विद्या के पूर्ण ज्ञाता विद्वानों से इष्टकाल का संशोधन करा के उक्त कुण्डिल्याँ ननावाई गई प्रतीत होती हैं और यह बात कुण्डिल्यों के अहों वा उन के फल से ही विदित होती है, देखों! इन कुण्डिल्यों में जो उच्च ग्रह तथा राज्ययोग आदि पड़े हैं उन का फल सब के प्रत्यक्ष ही है, बस यह बात ज्योतिष् शास्त्र की सत्यता को स्पष्ट ही बतला रही है।

जन्मपत्रिका के फलादेश के देखने की इच्छा रखने वाले जनों को भईबाहुर्सहिता, जन्माम्मोधि, त्रैलोक्यमकाश तथा सुवनप्रदीप आदि प्रन्थ एवं बृहुजातक, मावकुतृहरू तथा रुपुपाराशरी आदि ज्योतिष्शास के प्रन्थों को देखना चाहिये, क्योंकि—उक्त प्रन्थों में सर्व योगों तथा प्रहों के करू का वर्णन बहुत उक्तम रीति से किया गया है।

यहाँ पर विस्तार के भय से महों के फलादेश आदि का वर्णन नहीं किया जाता है किन्तु गृहस्थों के लिये लामदायक इस विद्या का जो अत्यावश्यक विषय था उस का संसोप से कथन कर दिया गया है, आशा है कि-गृहस्थ जन उस का अभ्यास कर उस से अवश्य लाग उठावेंगे ॥

यह पद्मम अध्याय का ज्योतिर्विषय वर्णन नामक नवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

दशवाँ प्रकरण-खरोदयवर्णन ॥

2700000T

स्तरोदय विद्या का ज्ञान ॥

विचार कर देखने से विदित होता है कि—खरोदय की विद्या एक बड़ी ही पवित्र तथा आत्मा का कल्याण करने वाली विद्या है, क्योंकि—इसी के अभ्यास से पूर्वकालीन महानुमाव अपने आत्मा का कल्याण कर अविनाशी पद को प्राप्त हो चुके है, देखों! श्री जिनेन्द्र देव और श्री गणघर महाराज इस विद्या के पूर्ण ज्ञाता (जानने वाले) थे अर्थात् वे इस विद्या के प्राणायाम आदि सब अक्तों और उपाक्तों को मले प्रकार से जानते थे, देखिये! जैनागम में लिखा है कि—"श्री महावीर अरिहन्त के पश्चात् चौदह पूर्व के पाठी श्री मद्रवाहु खामी जब हुए थे तथा उन्हों ने स्क्ष्म प्राणायाम के घ्यान का परावर्त्तन किया था उस समय समस्त सहु ने मिल कर उन को विद्यप्ति की शी" इत्यादि।

१-भद्रवाहुसहिता आदि प्रन्य जैनाचार्यों के वनाये हुए हैं ॥

२-वृहजातक आदि प्रन्य अन्य (जैनाचार्यों से मित्र) आचार्यों के बनाये हुए है ॥

इतिहासों के अवलोकन से विदित होता है कि—जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि जी तथा दादा साहिब श्री जिनदत्त सूरि जी आदि अंनेक जैनाचार्य इस विद्या के पूरे अभ्यासी थे, इस के अतिरिक्त—बोड़ी शताब्दी के पूर्व आनन्दघन जी महाराज, चिदानन्द (कपूरचन्द) जी महाराज तथा ज्ञानसार (नारायण)जी महाराज आदि बड़े २ अध्यात्म पुरुष हो गये हैं जिन के बनाये हुए अन्धों के देखने से विदित होता है कि—आत्मा के कल्याण के लिये पूर्व काल में साधु लोग योगाभ्यास का खूब वर्ताव करते थे, परन्तु अब तो कई कारणों से बह व्यवहार नहीं देखा जाता है, क्योंकि—प्रथम तो—अनेक कारणों से शरीर की शक्ति कम हो गई है, दूसरे—धर्म तथा अद्धा घटने लगी है, तीसरे—साधु लोग पुरतकादि परिश्रह के इकड़े करने में और अपनी मानमहिमा में ही साद्यत्व (साधुपन) समझने लगे हैं, चौथे—लोग ने मी कुछ २ उन पर अपना पज्ञा केला दिया है, कहिये अब खरोदयज्ञान का श्वगड़ा किसे अच्छा लगे! क्योंकि यह कार्य तो लोमरहित तथा आत्मकल्याण का मुख्य मार्ग यही है, अब यह दूसरी बात है कि—वे (मुनि) अपने आत्मकल्याण का मार्ग छोड़ कर अज्ञान सांसारिक जनों पर अपने होंग के द्वारा ही जपने साधुत्व को प्रकट करें।

प्राणायाम योग की दश भूमि हैं, जिन में से पहिली भूमि (मझल) सरोदयज्ञान ही है, इस के अभ्यास के द्वारा बड़े २ गुप्त भेदों को मनुष्य सुगमतापूर्वक ही जान सकते हैं तथा बहुत से रोगों की ओषि भी कर सकते हैं।

सरोदय पद का शब्दार्थ क्वास का निकालना है, इसी लिये इस में केवल श्वास की पहिचान की जाती है और नाकपर हाथ के रखते ही ग्रुप्त बातों का रहस्य चित्रवर्ष सामने आ जाता है तथा अनेक सिद्धियां उत्पन्न होती हैं परन्तु यह इट निश्चय है कि-इस विद्या का अभ्यास ठीक रीति से गृहस्थों से नहीं हो सकता है, क्योंकि प्रथम तो-यह विषय अति कठिन है अर्थात् इस में अनेक साधनों की आवश्यकता होती है, दूसरे इस विद्या के जो अन्थ है उन में इस विषय का अति कठिनता के साथ तथा अति संक्षेप से वर्णन किया गया है जो सर्व साधारण की समझ में नहीं आ सकता है, तीसरे-इस विद्या के ठीक रीति से जानने वाले तथा दूसरों को द्यगमतों के साथ अभ्यास करा सकने वाले पुरुष विरले ही खानों में देसे जाते हैं, केवल यही कारण है कि-चर्तगान में इस विद्या के अभ्यास क्रिय स्था इस्था होने के

९-जोगाभ्यास का विशेष वर्णेष देखना हो तो 'विवेकमार्तण्ड' 'बोग रहस्व' तथा 'बोगशाल्न' आदि प्रन्यों को देखना चाहिये ॥ २-छिपे हुए रहस्यों ॥ ३-आसानी से ॥ ४-तस्वीर के समान ॥ ५-आसानी ॥ ६-तत्पर वा स्त्रेग हुव्या ॥

बद्छे अनेक हानियाँ कर बैठते हैं, अस्तु,—इन्हीं सब बातों को विचार कर तथा गृहस्य जनों को भी इस विद्या का कुछ अभ्यास होना आवश्यंक समझ कर उन (गृहस्यों) से सिद्धे हो सकने योग्य इस विद्या का कुछ विद्यान हम इस प्रकरण में लिखते है, आशा है कि—गृहस्य जन इस के अवलम्बन से इस विद्या के अभ्यास के द्वारा लग उठावेंगे, क्योंकि— इस विद्या का अभ्यास इस मब और पर मब के सुखं को निःसन्देह प्राप्त करा सकता है॥

खरोदय का स्वरूप तथा आवश्यक नियम ॥

१—नासिका के भीतर से जो श्वास निकलता है उस का नाम खर है, उस को स्थिर चित्र के द्वारा पहिचान कर शुभाशुभ कार्यों का विचार करना चाहिये।

२—खर का सम्बन्ध नाड़ियों से है, यद्यपि क्षरीर में नाड़ियाँ बहुत हैं परन्तु उन में से २१ नाड़ियाँ प्रधान हैं तथा उन २४ नाड़ियों में से नी नाड़ियाँ अति प्रधान हैं तथा उन नी नाड़ियों में भी तीन नाड़ियाँ अतिश्चय प्रधान मानी गई हैं, जिन के नाम— इक्तजा, पिक्तजा और शुधुन्ना (शुस्तमना) हैं, इन का वर्णन आगे किया जावेगा।

२—सरण रखना चाहिये कि—मौंओं (मैंवारों) के बीच में जो चक है वहाँ से श्वास का प्रकाश होता है और पिछली बह्न नाल में हो कर नामि में जा कर ठहरता है।

8-दक्षिण अर्थात् दाहिने (जीमणे) तरफ जो श्वास नाक के द्वारा निकलता है उस को इहला नाड़ी वा सूर्य सर कहते हैं, वाम अर्थात् वायें (डावी) तरफ जो श्वास नाक के द्वारा निकलता है उस को पिक्का नाड़ी वा चन्द्र सर कहते हैं तथा दोनों तरफ (दाहिने और बायें तरफ अर्थात् उक्त दोनों नाड़ियों (दोनों खरों) के बीच में अर्थात् दोनों नाड़ियों के द्वारा जो खर चलता है उस को झुलमना नाड़ी (सर) कहते है, इन में से जब वायाँ सर चलता हो तब चन्द्र का उदय जानना चाहिये।

९-जरूरी ॥ १-सफळ वा पूरा ॥

२-प्रशंक महुष्य जब श्वास छेता है तब उस की नारिका के दोनों छेदों में से किसी एक छेद से प्रषण्डतया. (तेजी के साथ) श्वास निकछता है तथा दूसरे छेद से मन्दतया (धीरे २) श्वास निकछता है
धर्यात दोनों छेदों में से समान श्वास नहीं निकछता है, इन में से जिस तरफ का श्वास सेजी के साध
धर्यात अधिक निकछता हो उसी खर को नकता हुआ खर समझना चाहिये, दाहिने छेद में से जो नेग
से श्वास निकछे उसे सूर्य खर कहते हैं, वायें छेद में से जो अधिक श्वास निकछे उसे नन्द्र खर कहते
हैं तथा दोनों छेदों में से जो समान श्वास निकछे अथवा कभी एक में से अधिक निकछे और कभी दूसरे
में से अधिक निकछे उसे सुख्यना खर कहते हैं, परन्तु यह (युख्यना) खर प्राय: उस समय मे चछता है जब कि खर बदलना चाहता है, अच्छे नीरोग मनुष्य के दिन रात में घण्टे घण्टे मर तक चन्द्र
खर और सूर्य खर अदल वदछ होते हुए चछते रहते हैं परन्तु रोगी मनुष्य के यह नियम नहीं रहता है
अर्थात उस के खर में समय की न्यूनाधिकता (कभी ज्याहती) भी हो जाती है।

٤

५—शीतल और स्थिर कार्यों को चन्द्र खेर में करना चाहिये, जैसे—नये मन्दिर का बनवाना, मन्दिर की नीव का खुदाना, मूर्ति की प्रतिष्ठा करना, मूळ नायक की मूर्ति की स्थापित करना, मन्दिर पर दण्ड तथा कळका का चढ़ाना, उपाश्रय (उपासरा); धर्मश्चाला; दानशाला; विद्याशाला; पुस्तकालय; घर (मकान); हाँट; महळ; गढ़ और कोट का बनवाना, सङ्घ की माला का पहिराना, दान देना, दीक्षा देना, यज्ञोपवीत देना, नगर में प्रवेश करना, नये मकान में प्रवेश करना, कपड़ों और आम्यणों (गहनों) का कराना अथवा मोल छेना, नये गहने और कपड़े का पहरना, अधिकार का छेना, लोषधि का बनाना, खेती करना, बाग बगीचे का लगाना, राजा आदि बड़े पुरुषों से मित्रता करना, राज्यसिंहासन पर बैठना तथा योगाम्यास करना इत्यादि, सात्पर्य यह है कि—ये सब कार्य चन्द्र खर में करने चाहियें क्योंकि चन्द्र खर में किये हुए उक्त कार्य करवाणकारी होते हैं।

६-कूर और चर कार्यों को सूर्य खैर में करना चाहिये, जैसे-विद्या के सीखने का प्रारम्भ करना, ध्यान साधना, मन्न तथा देव की आराधना करना, राजा वा हाकिम को अर्ज़ी देना, बकालत वा अखत्यारी लेना, बैरी से अकावल करना, सर्प के विष तथा मृत का जतारना, रोगी को दवा देना, विज्ञ का शान्त करना, कष्टी की का जपाय करना, हाथी; घोड़ा तथा सवारी (बग्धी रथ आदि) का लेना, मोजन करना, खान करना, की को ऋदुदान देना, नई वहीं को लिखना, व्यापार करना, राजा का शञ्ज से लड़ाई करने को जाना, जहाज वा अभि बोट को दर्याय में चलाना, वैरी के मकान में पैर रखना, नदी आदि के जल में तैरना तथा किसी को रुपये उभार देना वालेना हत्यादि, तात्पर्य यह है कि-ये सब कार्य सूर्य खर में करने चाहियें, क्योंकि सूर्य खर में किये हुए उक्त कार्य सफल होते हैं।

७—जिस समय चळता २ एक लर रुक कर दूसरा लर बदळने को होता है अर्थात् जब चन्द्र लर बदळ कर सूर्य लर होने को होता है अथवा सूर्य लर बदळ कर चन्द्र लर होने को होता है उस समय पाँच सात मिनट तक दोनों लर चळने छगते हैं, उसी को सुखमना लर कहते हैं, इस (सुखमना) लर में कोई काम नहीं करना चाहिये, नयों कि इस लर में किसी काम के करने से वह निष्फळ होता है तथा उस से केश मी उत्पन्न होता है।

९-इस में भी जल तत्त्व और प्रथिनी तत्त्व का होना अति श्रेष्ठ होता है ॥

२-हाट अर्थात् दूकान ॥

३-इस मे भी प्रथिवी तत्त्व और जल तत्त्व का होना अति श्रेष्ठ होता है ॥

८—कृष्ण पक्ष (अँघरे पक्ष) का सामी (मालिक) सूर्य है और शुक्क पक्ष (उजेले पक्ष) का सामी चन्द्र है ।

९—कृष्ण पक्ष की प्रतिपद् (पिड्वा) को बिद पातःकाल सूर्य खर चले तो वह पक्ष बहुत जानन्द से बीतता है।

१०─शुक्क पक्ष की प्रतिपद् के दिन यदि प्रातःकाल चन्द्र खर चले तो वह पक्ष भी बहुत सुख और आनन्द से बीतता है।

११-यदि चन्द्र की तिथि में (ग्रुक्क पक्ष की मितपद् को मातःकाल) सूर्य खर चले तो क्केश और पीड़ा होती है तथा कुछ द्रव्य की भी हानि होती है।

१२—सूर्य की तिथि में (कृष्ण पक्ष की प्रतिपद् को प्रातःकाछ) यदि चन्द्र खर चले तो पीड़ा; कल्ह तथा राजा से फिसी प्रकार का भय होता है और चित्त में चश्चलता उ-स्पन्न होती है।

१३—यदि कदाचित् उक्त दोनों पक्षों (कृष्ण पक्ष और शुक्क पक्ष) की पड़िवा के दिन मातःकाळ सुखमना खर चले तो उस मास में हानि और लाम समान (बराबर) ही रहते हैं।

१४—कृष्ण पक्ष की पन्द्रह तिथियों में से कम २ से तीन २ तिथियाँ सूर्य और चन्द्र की होती हैं, जैसे—पिड़वा, द्वितीया और तृतीया, ये तीन तिथियाँ सूर्य की हैं, च-तुर्थी, पश्चमी और विधी, ये तीन तिथियाँ चन्द्र की है, इसी प्रकार अमावास्या तक होव तिथियों में भी समझना चाहिये, इन में जब अपनी २ तिथियों में दोनों (चन्द्र और सूर्य) खर चलते है तब ने कल्याणकारी होते है।

१५-शुक्क पक्ष की पन्द्रह तिथियों में से कम २ से तीन २ तिथियाँ चन्द्र और सूर्य की होती है अर्थात प्रतिपद्, द्वितीया और तृतीया, ये तीन तिथियाँ चन्द्र की है तथा चतुर्थी, पञ्चमी और पष्टी, ये तीन तिथियाँ सूर्य की हैं, इसी प्रकार पूर्णमासी तक शेप तिथियों में मी समझना चाहिये इन में भी इन दोनों (चन्द्र और सूर्य) खरों का अपनी २ तिथियों में प्रातःकाल चलना शुमकारी होता है।

१६-वृश्चिक, सिंह, वृष और कुम्म, ये चार राशियाँ चन्द्र खर की हैं तथा थे (राशियां) स्थिर कार्यों में श्रेष्ठ हैं।

१७-कर्क, मकर, तुल और मेष, ये चार राशियाँ सूर्य खर की है तथा ये (राशियाँ) चर कार्यों में श्रेष्ठ है।

१८--मीन, मिथुन, धन और कन्या, ये झुखमना के द्विसभाव छम हैं, इन में कार्य के करने से हानि होती है। १९-७क्त वारह राशियों से बारह महीने भी जान छेने चाहियें अर्थात् ऊपर हिसी जो सङ्गान्ति छेगे वही सूर्य; चन्द्र और ग्रुखमना के महीने समझने चाहियें।

२०-यदि कोई मनुष्य अपने किसी कार्य के लिये प्रश्न करने को आवे तथा अपने सामने; बार्ये तरफ अथवा ऊपर (ऊँचा) ठहर कर प्रश्न करे और उस समय अपना चन्द्र स्तर चलता हो तो कह देना चाहिये कि-तेरा कार्य सिद्ध होगा।

२१-यदि अपने नीचे, अपने पीछे अथवा दाहिने तरफ खड़ा रह कर कोई प्रश्न करे और उस समय अपना सूर्य खर चलता हो तो भी कह देना चाहिये कि-तेरा कार्य सिद्ध होगा।

२२-यदि कोई दाहिने तरफ खड़ा होकर प्रश्न करे और उस समय अपना सूर्य सर चलता हो तथा लग्न; वार और तिथि का भी सब योग मिल जाने तो कह देना चाहिये कि-तेरा कार्य अवश्य सिद्ध होगा।

. २२-यदि प्रश्न करने नाला दाहिनी तरफ सड़ा हो कर वा बैठ कर प्रश्न करें और उस समय अपना चन्द्र खर चलता हो तो सूर्य की तिथि और वार के विना वह शून्य (खाली) विज्ञा का प्रश्न सिद्ध नहीं हो सकता है।

२४-यदि कोई पीछे खड़ा हो कर प्रश्न करे और उस समय अपना चन्द्र खर चळता हो तो कह देना चाहिये कि-कार्य सिद्ध नहीं होगा।

२५-यदि कोई बाई तरफ खड़ा हो कर प्रश्न करे तथा उस समय अपना सूर्य खर चळता हो तो चन्द्र योग स्वर के विना वह कार्यसिद्ध नहीं होगा।

२६-इसी प्रकार यदि कोई अपने सामने अथवा अपने से ऊपर (ऊँचा) खड़ा हो कर प्रश्न करे तथा उस समय अपना सूर्य लर चलता हो तो चन्द्र लर के सब योगों के मिले निना वह कार्य कभी सिद्ध नहीं होंगा।

स्वरों में पाँचों तत्वों की पहिचान ॥

उक्त दोनों (चन्द्र और सूर्य) खरों में पाँच तत्त्व चलते हैं तथा उन (तत्त्वों) का रंग, परिमाण, आकार और काल भी विशेष होता है, इस लिये खरोदयक्षान में इस विषय का भी जान लेना अत्यावंश्यक है, क्योंकि जो पुरुष इन के विज्ञान की अच्छे प्रकार से समझ लेता है उस की कही हुई बात अवश्य मिलती है, इस लिये अब इन के विषय में आवश्यक वर्णन करते हैं:—

१-सङ्गल, द्यानि और रिव, इन बारों का खामी सूर्य खर है तथा सोम, वुघ, ग्रह और छुक, इन वारों का खामी चन्द्र खर है ॥ २-बहुत जरूरी ॥

१-पृथिनी, जल, अग्नि, नायु और आकाश, ये पाँच तत्त्व हैं, इन में से प्रथम दो का अर्थात् पृथिनी और जल का खामी चन्द्र है और श्रेष तीनों का अर्थात् अग्नि, नायु और आकाश का खामी सूर्य है।

२-पीछा, सफेद, छाछ, हरा और काछा, ये पाँच वर्ण (रंग) कम से पाँचों तस्वों के जानने चाहियें अर्थात् पृथिवी तस्य का वर्ण पीछा, जरू तस्य का वर्ण सफेद, अभि तस्य का वर्ण छाछ, वायु तस्य का वर्ण हरा और आकाश तस्य का वर्ण काछा है।

३—पृथिवी तत्त्व सामने चळता है तथा नासिका (नाक) से बार्रह अहुल तक धूर जाता है और उस के खर के साथ समचौरस आकार होता है।

४—जल तत्त्व नीचे की तरफ चलता है तथा नासिका से सोलह अङ्गुल तक दूर जाता है और उस का चन्द्रमा के समान गोल आकार है ।

५-अग्नि तत्त्व कपर की तरफ चलता है तथा नासिका से चार अङ्गुल तक दूर जाता है और उस का त्रिकोण आकार है।

६—बायु तत्त्व टेडा (तिरछा) चळता है तथा नासिका से आठ अङ्गुळ तक दूर जाता है और उस का ध्वला के समान आकार है।

७-आकाश तत्त्व नासिका के भीतर ही चळता है अर्थात् दोनों सरों में (युखमना) सर में) चळता है तथा इस का आकार कोई नहीं है रें।

८-एक एक (मत्येक) सर ढाई घड़ी तक अर्थात् एक घण्टे तक चला करता है और उस में उक्त पाँचों तस्त इस रीति से रात दिन चलते है कि-एथिनी तस्त पचास पल, जल तस्त चालीस पल, अप्न तस्त तीस पल, बायु तस्त बीस पल और आकाश तस्त दश पलै, इस प्रकार से तीनों नाड़ियाँ (तीनों सर) उक्त पाँचों तस्तों के साथ दिन रात (सदा) प्रकाशमाँन रहती है ॥

पाँचों तत्त्वों के ज्ञान की सहज रीतियाँ॥

१--पांच रं गों की पाँच गोलियाँ तथा एक गोली विचित्र रंग की बना कर इन छचों गोलियों को अपने पास रख लेना चाहिये और जब बुद्धि में किसी तत्त्व का विचार

१—नाक पर अगुळि के रखने से यदि श्वास वारह अगुळ तक दूर जाता हुआ ज्ञात हो तो प्रिभेवी ' सत्त्व समझना चाहिये, इसी प्रकार क्षेत्र तत्त्वों के परिसाण के विषय में समझना चाहिये ॥

२-क्योंकि माकाश शून्य पदार्थ है ॥

रे-सब मिला कर १५० वल हुए, सो ही बाई वडी वा एक चण्टे के १५० वल होते हैं ॥

४- प्रकाशमान' अर्थात् प्रकाशित ॥

५-पॉच रंग वे ही समझने चाहियें जो कि-पहिले प्रथिवी खादि के लिख चुके हैं अर्थात् पीला, सफेद, लाल, हरा और काला ॥

करना हो उस समय उन छःवों गोलियों में से किसी एक गोली को जाँल मीच कर उठा लेना चाहिये, यदि बुद्धि में विचारा हुआ तथा गोली का रंग एक मिल जावे तो जान लेना चाहिये कि—तत्त्व मिलने लगा है।

२-अथवा-किसी तूसरे पुरुष से कहना चाहिये कि-तुम किसी रंग का विचार करो, जब वह पुरुष अपने मन में किसी रंग का विचार कर के उस समय अपने नाक के खर में तत्त्व को देखना चाहिये तथा अपने तत्त्व को विचार कर उस पुरुष के विचार हुए रंग को बतलाना चाहिये कि-तुमने अमुक फलाने) रंग का विचार किया था, यदि उस पुरुष का विचारा हुआ रंग ठीक मिळ बावे तो जान केना चाहिये कि-तत्त्व ठीक मिळता है।

३—अथवा—काच अर्थात् दर्पण को अपने ओष्ठों (होठों) के पास लगा कर उस के ऊपर बलपूर्वक नाक का श्वास छोड़ना चाहिये, ऐसा करने से उस दर्पण पर जैसे आकार का चिद्व हो जाने उसी आकार को पिहले लिखे हुए तत्त्वों के आकार से मिळाना चाहिये, जिस तत्त्व के आकार से वह आकार मिळ जाने उस समय वहीं तत्त्व सम-झना चाहिये।

४—अथवा—दोनों अङ्गूठों से दोनों कानों को, दोनों तर्जनी अङ्गुलियों से दोनों आँखों को और दोनों मध्यमा अङ्गुलियों से नासिका के दोनों छिद्रों को बन्द कर के और दोनों अनामिका तथा दोनों कनिष्ठिका अङ्गुलियों से (चारों अङ्गुलियों से) ओठों को जपर नीचे से खूब दाब के, यह कार्य करके एकाम चित्त से गुरु की बताई हुई रीति से मन को अञ्जुटी में के जावे, उस जगह जैसा और जिस रंग का बिन्दु मास्ट्रम पड़े वहीं सत्त्व जानना चाहिये।

५—ऊपर कही हुई रीतियों से मनुष्य को कुछ दिन तक तत्त्वों का साधन करना चाहिये, क्योंकि कुछ दिन के अभ्यास से मनुष्य को तत्त्वों का ज्ञान होने छगता है और तत्त्वों का ज्ञान होने से वह पुरुष कार्याकार्य और शुमाशुम आदि होने बार्ड कार्यों को श्रीप्र ही जान सकता है ॥

स्वरों में उदित हुए तत्त्वों के द्वारा वर्षफळ जानने की रीति॥

अभी कह चुके हैं कि पाँचों तत्त्वों का ज्ञान हो जाने से मनुष्य होने वाले शुमाशुम आदि सब कार्यों को जान सकता है, इसी नियम के अनुसार वह उक्त पाँचों तत्त्वों के द्वारा वर्ष में होने वाले शुमाशुम फल को भी जान सकता है, उस के जानने की निम्नलिखित रीतियाँ है:—

१-जिस समय भेष की संकान्ति छगे उस समय श्वास को ठहरा कर खर में चलने वाले तत्त्व को देखना चाहिये, यदि चन्द्र खर में पृथिवी तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि-ज़मानां बहुत ही श्रेष्ठ होगा अर्थात् राजा और प्रजानन प्राली रहेंगे पशुओं के लिये घास आदि बहुत उत्पन्न होगी तथा रोग और मय आदि की शान्ति रहेगी, हत्यादि।

२—यदि उस समय (चन्द्र खर में) जल तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि वर्सात बहुत होगी, पृथिवी पर अपिरिमित अज होगा, प्रजा खुली होगी, राजा और प्रजा धर्म के मार्ग पर चलेंगे, पुण्य; दान और धर्म की वृद्धि होगी तथा सब प्रकार से सुल और सम्पत्ति बढ़ेगी, इत्यादि।

६-यदि उस समय सूर्य सर में प्रश्रिवी तस्त्व और जल तस्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि-कुछ कम फल होगा।

४-यदि उक्त समय में दोनों खरों में से चाहे जिस खर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि-वर्सात कम होगी, रोगपीड़ा अधिक होगी, दुर्भिक्ष होगा, देश उजाड़ होगा तथा मना दुःखी होगी, इत्यादि ।

५-यदि उक्त समय में चाहे जिस सर में वांयु तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि-राज्य में कुछ विश्रह होगा, बर्सात थोड़ी होगी, जुमाना साधारण होगा तथा पशुओं के लिये वास और चारा भी थोड़ा होगा, इत्यादि ।

६—यदि उक्त समय में आकाश तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि—वड़ा भारी दुर्मिक्ष पड़ेगा तथा पशुओं के लिये घास आदि भी कुछ नही होगा, इत्यादि !

वर्षफळ के जानने की अन्य रीति॥

१—यदि चैत्र सुदि पिडवा के दिन मातःकाल चन्द्र खर में पृथिवी तस्व चलता हो तो यह फल समझना चाहिये कि—वर्षा बहुत होगी, जुमाना श्रेष्ठ होगा, राजा और मजा में सुख का सच्चार होगा तथा किसी मकार का इस वर्ष में भय और उत्पात नहीं होगा, इत्यादि ।

२—यदि उस दिन प्रातःकाल चन्द्र सर में जल तत्त्व चलता हो तो यह फल सम-झना चाहिये कि—यह वर्ष अति श्रेष्ठ है अर्थात् इस वर्ष में वर्सातः; अन्न और घर्म की अतिशय दृद्धि होगी तथा सब प्रकार से आनन्द रहेगा, इत्यादि !

३-यदि उस दिन प्रातःकाळ सूर्य सर में प्रथिवी अथवा जळ तस्व चळता हो तो मध्यम अर्थात् साघारण फळ समझना चाहिये।

8-यदि उस दिन प्रातःकाळ चन्द्र सर में वा सूर्व सर में शेष (अग्नि; वायु और आकाश) तीन तत्त्व चळते हों तो उन का नही फळ समझना चाहिये जो कि पूर्व मेष सङ्कान्ति के विषय में ळिख चुके है, जैसे-देखो! यदि सूर्य सर में अग्नि तत्त्व चळता हो तो जानना चाहिये कि-प्रजा में रोग और शोक होगा, दुर्भिक्ष पड़ेगा तथा राजा के चित्त में चैन नहीं रहेगा इत्यादि, यदि सूर्य लर में वायु तस्त चलता हो तो समझना चाहिये कि-राज्य में कुछ विश्रह होगा और दृष्टि योड़ी होगी तथा यदि सूर्य लर में सुखमना चलता हो तो जानना चाहिये कि-अपनी ही सृत्यु होगी और छत्रमङ्ग होगा तथा कहीं २ थोड़े अन्न व धास आदि की उत्पत्ति होगी और कहीं २ बिलकुल नहीं होगी, हत्यादि ॥

वर्षफळ जानने की तीसरी रीति॥

१—यदि माघ द्वंदि संसमी को अथवा अक्षयतृतीया को प्रातःकाल चन्द्र खर में पृथिवी तत्त्व वा जल तत्त्व चलता हो तो पूर्व कहे अनुसार श्रेष्ठ फल जानना चाहिये।

२-यदि उक्त दिन प्रातःकाल अभि आदि तीन तस्व चलते हों तो पूर्व कहे अनुसार निकृष्ट फल समझना चाहिये।

३-यदि उक्त दिन मातःकाल सूर्य खर में पृथिवी तस्त और जल तस्व चलता हो तो मध्यम फल वर्षीत् साधारण फल जानंना चाहिये।

४-यदि उक्त दिन प्रातःकारू शेष तीन तस्य चरुते हों तो उन का फरू भी पूर्व कहे अनुसार जान रेना चाहिये॥

अपने चारीर; कुटुम्ब और घन आदि के विचार की रीति ॥

१-यदि चैत्र सुदि पड़िया के दिन प्रातःकाल चन्द्र सर न चलता हो तो जानना चाहिये कि-तीन महीने में हृदय में बहुत चिन्ता और क्केश उत्पन्न होगा।

२--यदि चैत्र धुदि द्वितीया के दिन मातःकाल चन्द्र खर न चलता हो तो जान छेना चाहिये कि--परदेश में जाना पड़ेगा और वहाँ अधिक दुःख मोगना पड़ेगा।

३—यदि चैत्र सुदि तृतीया के दिन प्रातःकाल चन्द्र सर न चलता हो तो जानना चाहिये कि—शरीर में गर्मी; पितज्वर तथा रक्तविकार आदि का रोग होगा।

४-यदि चैत्र सुदि चतुर्थी के दिन प्रातःकाल चन्द्र खर न चलता हो तो जानना चाहिये कि-नी महीने में मृत्यु होगी।

५-यित चैत्र सुदि पश्चमी के दिन प्रातःकाल चन्द्र खर न चलता हो तो जानना चाहिये कि-राज्य से किसी प्रकार की तकलीफ तथा दण्ड की प्राप्ति होगी।

६—यदि चैत्र धुदि षष्टी (छठ) के दिन प्रातःकारू चन्द्र सर न चलता हो तो जानना चाहिये कि-इस वर्ष के अन्दर ही माई की मृत्यु होगी।

७-यदि चैत्र झुदि सप्तमी के दिन आतःकारू चन्द्र स्वर न चळता हो तो जानना चाहिये कि-इस वर्ष में अपनी स्त्री मर जावेगी । ८—यदि चैत्र सुदि अष्टमी के दिन पातःकाल चन्द्र खर न चलता हो तो जानना चाहिये कि—इस वर्ष में कष्ट तथा पीड़ा अधिक होगी अर्थात् भाग्ययोग से ही सुख की प्राप्ति हो सकती है, इत्यादि ।

९-इन के सिवाय-यदि उक्त दिनों में भातःकाल चन्द्र खर में पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्व आदि ग्रुम तत्त्व चलते हों तो और मी श्रेष्ठ फल जानना चाहिये॥

पाँच तत्वों में प्रश्न का विचार ॥

१—यदि चन्द्र खर में प्रथिवी तत्त्व वा खळ तत्त्व चळता हो और उस समय कोई किसी कार्य के लिये प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि—अवश्य कार्य सिद्ध होगा ।

२-बदि चन्द्र सर में अग्नि तत्त्व वा बायु तत्व चळता हो अथवा आकाश तत्त्व हो और उस समय कोई किसी कार्य के लिये प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि-कार्य किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं होगा।•

१—सरण रखना चाहिये कि—चन्द्र सर में जल तस्त्रं और पृथिवी तत्त्र स्थिर कार्य के लिये अच्छे होते हैं परन्तु चर कार्य के लिये अच्छे नहीं होते हैं और वायु तस्त्व; अपि तस्त्र और आकाश तस्त्र; ये तीनों चर कार्य के लिये अच्छे होते हैं; परन्तु ये भी सूर्य सर में अच्छे होते हैं किन्तु चन्द्र सर में नहीं।

8—बदि कोई पुरुष रोगिविषयके मश्न को आकर पूछे तथा उस समय चन्द्र खर में पृथिनी तस्त वा जल तस्त चलता हो और मश्न करने वाला मी उसी चन्द्र खर की तरफ ही (बाई तरफ ही) बैठा हो तो कह देना चाहिये कि—रोगी नहीं मरेगा।

५-यदि चन्द्र खर बन्द हो अर्थात् सूर्य खर चलता हो और प्रश्न करने वाला बाई तरफ बैठा हो तो कह देना चाहिये कि-रोगी किसी प्रकार मी नहीं जी सकता है।

६—यदि कोई पुरुष खाली दिशौँ में जा कर प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि—रोगी नहीं बचेगा, परन्तु यदि खाली दिशा से आ कर गरी दिशा में वैठ कर (जिघर का खर चलता हो उघर बैठ कर) प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि—रोगी अच्छा हो जावेगा।

७-यदि प्रश्न करते समय चन्द्र सर में बढ़ तत्त्व वा प्रथिवी तत्त्व चढ़ता हो तो जान केना चाहिये कि-रोगी के शरीर में एक ही रोग है तथा यदि प्रश्न करने के समय चन्द्र सर में अभि तत्त्व आदि कोई तत्त्व चढ़ता हो तो जान केना चाहिये कि-रोगी-के शरीर में कई रोग मिश्रित (मिळे हुए) हैं।

१-चर और स्थिर कार्यों का वर्णन संक्षेप से पहिले कर चुके हैं ॥-

२-रोगी के विषय में ॥

३-जिघर का खर चलता हो उस दिशा को छोड कर सर्व दिशाये खाली मानी गई है ॥

८—यदि प्रश्न करते समय सूर्य खर में अग्नि; वायु अथवा आकाश तत्त्व चळता हो 'तो जान छेना चाहिये कि—रोगी के शैरीर में एक ही रोग है परन्तु यदि प्रश्न करते समय सूर्य खर में प्रथिवी तत्त्व वा जळ तत्त्व चळता हो तो जान छेना चाहिये कि—रोगी के शरीर में कई मिश्रित (मिछे हुए) रोग हैं।

९-सरण रखना चाहिये कि—वायु और पित्त का खामी सूर्य है, कफ का खामी चन्द्र है तथा सिनपात का खामी सुखमना है।

१०-यदि कोई पुरुष चलते हुए स्वर की तरफ से था कर उसी (चलते हुए) खर की तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि-तुम्हारा काम अवस्य सिद्धे होगा ।

· ११—यदि कोई पुरुष खाळी खर की तरफ से आ कर उसी (खाळी) खर की तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर मश्न करे तो कह देना चाहिये कि—द्वम्हारा कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होगा।

१२—यदि को है पुरुष खाली खर की तरफ-से आ कर चलते खर की तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि—तुम्हारा कार्य निस्सन्देहैं सिद्ध होगा।

१२—यदि कोई पुरुष चकते हुए खर की तरफ से आ कर खाकी खर की तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर मक्ष करे तो कह देना चाहिये कि—तुम्हारा कार्य सिद्ध नहीं होगा।

१४—यदि शुर्रेवार को बायु तत्त्व, शनिवार को आकाश तत्त्व, बुधवार को श्रिश्वी तत्त्व सोमवार को बळ तत्त्व तथा शुक्रवार को अग्नि तत्त्व पातःकाळ में चळे तो जान केना चाहिये कि –शरीर में जो कोई पहिले का रोग है वह अवस्य मिट जावेगा॥

१-इस शरीर में उदान, प्राण, व्यान, समान और अपान नामक पॉच वायु हैं, ये वायु विपरीत खान पान, अपरी कुपव्य तथा विपरीत व्यवहार से कुपित होकर अनेक रोगों को उरपत्त करते हैं (जिन का वर्णन जीये अध्याय में कर चुके हैं) तथा शरीर में पाचक, आजक, रजक, आलोचक और साधक नामक पॉच पित्त हैं, ये पित्त चरपरे, तीखे, कवण, खटाई, मिचे आदि गमे चीज़ों के खाने से तथा भूए; अप्ति और मैशुन आदि विपरीत व्यवहार से कुपित हो कर चालीस प्रकार के रोगों को उरपत्र करते हैं, एवं शरीर में सावलम्बन, केश, रसन सेहन और अध्यण वामक पाँच कफ हैं, ये कफ बहुत भीठे, बहुत चिकने, वासे तथा ठढे अस आदि के खान पान से, दिन में सोना, परिश्रम न करना तथा सेन और विश्वोनों पर सदा बैठे रहना आदि विपरीत व्यवहार से कुपित होकर बीस प्रकार के रोगों को उरपत्र करते हैं, परन्तु जब विरुद्ध आहार और विहार से ये तीनों होष कुपित हो जाते हैं तब सिनपात रोग होकर प्राणियों की मृत्यु हो जाती है ॥

२-पूर्ण वा सफल ॥ ३-विना सन्देष्ट् के वा वेशक ॥ ४-वृहरपितवार ॥

· खरों के द्वारा परदेशगर्मन का विचार ॥

१—जो पुरुष चन्द्र खर में दक्षिण और पश्चिम दिशा में परदेश को जावेगा वह पर-देश से आ कर अपने घर में सुख का मोग करेगा।

२-सूर्य सर में पूर्व और उत्तर की तरफ परदेश को जाना शुमकोरी है।

३-चन्द्र सर में पूर्व और उत्तर की तरफ परदेश को जाना अच्छा नहीं है।

४-सूर्य खर में दक्षिण और पश्चिम की तरफ परदेश के जाना अच्छा नहीं है।

५-ऊर्घ्व (ऊँची) दिशा चन्द्र लर की है इस छिये चन्द्र लर में पर्वत आदि ऊर्घ्य दिशा में जाना अच्छा है।

६—पृथिनी के तल माग का सामी सूर्य है, इस लिये सूर्य सर में पृथिनी के तल भाग में (नीचे की तरफ) जाना अच्छा है, परन्तु मुखमना सर में पृथिनी के तल भाग में जाना अच्छा नहीं है ॥

परदेश में स्थित मनुष्य के विषय में प्रश्नविचार ॥

१-प्रश्न करने के समय यदि र्खेर में जल तत्त्व चलता हो तो प्रश्नकर्ता से कह देना चाहिये कि-सब कामों को सिद्ध कर के वह (परदेशी) शीव्र ही आ जावेगा।

२-यदि प्रश्न करने के समय खर में प्रथिवी तत्त्व चलता हो तो प्रश्नकर्ता से कह देना चाहिये कि-वह पुरुष ठिकाने पर बैठा है और उसे किसी बात की तकलीफ नहीं है।

१—यदि पश्च करने के समय खर में वायु तत्त्व चलता हो तो पश्चकर्ता से कह देना चाहिये कि—वह पुरुष उस स्थान से दूसरे स्थान को गया है तथा उस के हृदय में चिन्ता उसक हो रही है।

४-यदि पक्ष करने के समय खर में अभि तत्त्व चलता हो तो प्रश्नकर्ता से कह देना चाहिये कि -उस के ऋरीर में रोग है।

५-यदि प्रश्न करने के समय लर में आकाश तत्त्व चळता हो तो प्रश्नकर्ता से कह देना चाहिये कि-वह पुरुष मर गया ॥

अन्य आवश्यक विषयों का विचार ॥

१—कही जाने के समय अथना नीवँ से उठ कर (जाग कर) विक्रोने से नीचे पैर रखने के समय यदि चन्द्र खर चळता हो तथा चन्द्रमा का ही बार हो तो पहिले चार पैर (कदम) बार्ये पैर से चळना चाहिये ।

१-इसरे देश में जाना ॥ २-कल्याणकारी ॥ ३-ठहरे हुए ॥ ४-"खर में, अर्थात् चाहे जिस स्वर में ॥

२--यदि सूर्य का बार हो तथा सूर्य खर चळता हो तो चळते समय पहिले तीन पैर (कदम) दाहिने पैर से चळना चाहिये।

२—जो मनुष्य तत्त्व को पहिचान कर अपने सब कामों को करेगा उस के सब काम अवस्य सिद्ध होंगे।

४—पश्चिम दिशा जरू तत्त्वरूप है, दक्षिण दिशा पृथिनी तत्त्वरूप है, उत्तर दिशा अप्रि तत्त्वरूप है, पूर्व दिशा वायु तत्त्व रूप है तथा आकाश की स्थिर दिशा है।

५-जय, दृष्टि, पुष्टि, रति, खेलकूद और हास्य, ये छः अवस्थार्ये चन्द्र सर की हैं।

६—ज्वर, निद्रा, परिश्रम और कम्पन, ये चार अवस्थायें जब चन्द्र खर में बायु तस्व तथा अग्नि तस्त्व चलता हो उस समय शरीर में होती हैं।

७ जब चन्द्र लर में आकाश तत्त्व चलता है तब आयु का क्षय तथा मृत्यु होती है। ८ - पाँचों तत्त्वों के मिलने से चन्द्र लर की उक्त बारह अवस्थायें होती हैं।

९—यदि प्रथिवी तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि—पूछने वाले के मन में मूल की चिन्ता है।

१०-यदि जल तस्व और वायु तस्व चलते हों तो जान लेना चाहिये कि-पूछने वाले के मन में जीवसम्बन्धी चिन्ता है।

११-अमि तस्य में भातु की चिन्ता जाननी चाहिये।

१२-आकाश तत्त्व में शुभ कार्य की चिन्ता जाननी चाहिये।

१३-पृथिबी तस्व में बहुत पैर वालों की चिन्ता जाननी चाहिये।

१ ४-जल और वायु तत्त्व में दो पैर वालों की चिन्ता जाननी चाहिये !

१५-अग्नि तत्त्व में चार पैर वालों (चौपायों) की चिन्ता जाननी चाहिये।

१६-आकाश तंत्रव में विना पैर के पदार्थ की चिन्ता जाननी चाहिये।

१७-रिव, राहु, मझल और श्रानि, ये चार सूर्य खर के पाँची तस्वों के खामी हैं।

१८—चन्द्र लर में पृथिनी तत्त्व का खामी बुध, अरु तत्त्व का खामी चन्द्र, अपि तत्त्व का खामी शुक्र और वायु तत्त्व का खामी गुरु है, इस लिये अपने २ तत्त्वों में ये ब्रह्म अथवा वार शुभफलदायक होते हैं।

े १९—पृथिवी आदि चारों तत्त्वों के क्रम से मीठा, कवैळा, खारा और खटा, ये चार रस हैं, इस लिये जिस समय जिस रस के खाने की इच्छा हो उस समय उसी तत्त्व का चलना समझ लेना चाहिये।

२०-अग्नि तत्त्व में कोघ, बायु तत्त्व में इच्छा तथा जल और पृथिबी तत्त्व में क्षमा और नम्रता आदि यतिधर्मरूप दश गुण उत्पन्न होते हैं। २१-श्रवण, घनिष्ठा, रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, अभिनित्, ज्येष्ठा और अनुराधा, ये सात नक्षत्र पृथिवी तत्त्व के हैं तथा श्रुमफलदायी है।

२२—मूल, उत्तरामाद्रपद, रेवती, खाद्री, पूर्वाषाढा, श्रतमिषा और आश्वेषा, ये सात नक्षत्र जल तत्त्व के हैं।

२३-थे (उक्त) चौदह नक्षत्र स्थिर कार्यों में अपने २ तत्त्वों के चलने के समय में जानने चाहियें।

२४-मधा, पूर्वाफाल्युनी, पूर्वामाद्रपद, साती, क्रिचिका, मरणी और पुण्य, ये सात नक्षत्र स्रप्ति के है।

२५-इस्त, विशासा, मृगशिर, पुनर्वेष्ठ, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी और अश्विनी, ये सात नक्षत्र वास के हैं।

२६-पहिले आकाश, उस के पीछे वायु, उस के पीछे आमि, उस के पीछे पानी और उस के पीछे पृथिवी, इस कम से एक एक तत्त्व एक एक के पीछे चळता है।

२७—पृथिवी तत्त्व का आधार गुदा, जल तत्त्व का आधार लिक्क, अमि तत्त्व का आधार नेत्र, बायु तत्त्व का आधार नासिका (नाक) तथा आकाश तत्त्व का आधार कर्ण (कान) है।

२८-यदि सूर्य खर में भोबन करे तथा चन्द्र खर में बढ़ पीवे और बाई करवट सोवे तो उस के शरीर में रोग कभी नहीं होगा।

२९-यदि चन्द्र सर में ओजन करे तथा सूर्य सर में जल पीवे तो उस के शरीर में रोग अवस्य होगा।

३०-चन्द्र सर में शीच के लिये (दिशा मैदान के लिये) जाना चाहिये, सूर्यसर में मुनोत्सर्ग (पेशाब) करना चाहिये तथा श्रयन करना चाहिये।

३१-यदि कोई पुरुष खरों का ऐसा अभ्यास रक्ले कि-उस के चन्द्र खर में दिन का उदय हो (दिन निकले) तथा सूर्य खर में रात्रि का उदय हो तो वह पूरी अवस्था को प्राप्त होगा, परन्तु यदि इस से विपरीतं हो तो जानना चाहिये कि-मौत समीप ही है।

३२--ढाई २ घड़ी तक दोनों (सूर्य और चन्द्र) खर चलते है और तेरह श्वास तक मुखमना खर चलता है।

३२-यदि अष्ट प्रहर तक (२४ घण्टे अर्थात् रात दिन) सूर्य लर में वायु तत्त्व ही चलता रहे तो तीन वर्ष की आयु जाननी चाहिये।

⁹⁻यदि कोई पुरुष पाँच सात दिन तक बरावर इस व्यवहार को करे तो वह अवश्य रूपण (रोगी) हो जावेगा, यदि किसी को इस विषय में संभय (शक) हो तो वह इस का वर्ताव कर के विश्वय कर छे॥ २-विपरीत हो, अर्थात् सूर्य खर मे दिन का उदय हो तथा चन्द्र खर में रात्रि का उदय हो॥

३४-यदि सोलह प्रहर तक सूर्य खर ही चलता रहे (चन्द्र खर आवे ही नहीं) तो दो वर्ष में मृत्यु जाननी चाहिये।

३५-यदि तीन दिन तक एक सा सूर्य खर ही चळता रहे तो एक वर्ष में मृखु जाननी चाहिये।

२६-यदि सोळह दिन तक बराबर सूर्यस्वर ही चळता रहें तो एक महीने में मृत्यु जाननी चाहिये।

२७-यदि एक महीने तक सूर्य खर निरन्तर चलता रहे तो दो दिन की आयु जाननी चाहिये।

२८-यदि सूर्य; चन्द्र और मुखमना; ये तीनों ही खर न चकें अर्थात् मुख से श्वास केना पड़े तो चार घड़ी में मृत्यु जाननी चाहिये।

३९-यिव दिन में (सब दिन) चन्द्र खर चले तथा रात में (रात मर) सूर्य खर चले तो बड़ी आयु जाननी चाहिये।

४०-यदि दिन में (दिन भर) सूर्य सर और रात में (रात भर) बराबर चन्द्र सर चलता रहे तो छः महीने की आग्रु जाननी चाहिये।

४१-ंयिद चार आठ, बारह, सोल्ह अथवा बीस दिन रात बराबर चन्द्र खर चलता रहे तो बड़ी आयु जाननी चाहिये।

४२-यदि तीन रात दिन तक झुलमना स्वर चळता रहे तो एक वर्ष की आयु जाननी चाहिये।

४३—यदि चार दिन तक बराबर सुखमना खर चळता रहे तो छः महीने की आयु जाननी चाहिये ॥

स्वरों के द्वारा गर्भसम्बन्धी प्रश्न-विचार ॥

१—यदि चन्द्र सर चलता हो तथा उघर से ही था कर कोई प्रश्न करे कि—गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा वा पुत्री, तो कह देना चाहिये कि—पुत्री होगी।

२--यदि सूर्य खर चळता हो तथा उघर से ही आ कर कोई प्रश्न करे कि गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा वा पुत्री, तो कह देना चाहिये कि--पुत्र होगा।

३--यदि: मुखमनो सर के चलते समय कोई आ कर प्रश्न करे कि-गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा वा पुत्री, तो कह देना चाहिये कि-नपुंसक होगा ।

8-यदि अपना सूर्य खर चळता हो तथा उघर से ही आ कर कोई गर्भविषयक प्रश्न

٠,

१-इन के सिवाय-चैयक कालज्ञान के अनुसार तथा अनुसमिस कुछ बार्ते चौथे अध्याय में लिस चुके हैं, नहां देख लेना चाहिये ॥

करे परन्तु प्रश्नकर्ता (पूछने वाले) का चन्द्र लर चलता हो तो कह देना चाहिये कि— पुत्र उत्पन्न होगा परन्तु वह जीवेगा नहीं ।

५-यदि दोनों का (अपना तथा पूछने नाले का) सूर्य खर चलता हो तो कह देना चाहिये कि-पुत्र होगा तथा वह चिरस्त्रीनी होगा।

६-यदि अपना चन्द्र सर चलता हो तथा पूछने वाले का सूर्य सर चलता हो तो कह देना चाहिये कि-पुत्री होगी परन्तु वह जीवेगी नहीं।

७-यदि दोनों का (अपना और पूछने वाले का) चन्द्र खर चलता हो तो कह देना चाहिये कि-प्रत्री होगी तथा वह दीघीय होगी !

८-यदि सूर्य सर में प्रथिवी तत्त्व में तथा उसी दिन के लिये किसी का गर्भसम्बन्धी प्रश्न हो तो कह देना चाहिये कि-पुत्र होगा तथा वह रूपवान्; राज्यवान् और सुसी होगा।

९--यदि सूर्य लर में जल तस्व चलता हो और उस में कोई गर्भसम्यन्धी प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि--पुत्र होगा तथा वह मुखी; धनवान् और छः रसों का मोगी होगा।

१०-यदि गर्भसम्बन्धी प्रश्न करते समय चन्द्र खर में उक्त दोनों तत्त्व (प्रथिवी तत्त्व और जल तत्त्व) चलते हों तो कह देना चाहिये कि-पुत्री होगी तथा वह ऊपर लिखे अनुसार लक्षणों वाली होगी।

११-यदि गर्भसम्बन्धी प्रश्न करते समय उक्त खर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिये कि-गर्भ गिर जावेगा तथा यदि सन्तति भी होगी तो वह जीवेगी नहीं।

१२-यदि गर्भसम्बन्धी प्रश्न करते समय उक्त खर में बायु तत्त्व चळता हो तो कह देना चाहिये कि-या तो छोड़ (पिण्डाकृति) वेंधेगी वा गर्भ गरू जावेगा ।

१२—यदि गर्भसन्यन्थी प्रश्न करते समय सूर्य खर में आकाश तत्त्व चळता हो तो गपुंसक की तथा चन्द्र खर में आकाश तत्त्व चळता हो तो वॉझ ळड़की की उत्पत्ति कह देनी चाहिये।

१४-यदि कोई सुखमना खर में गर्भ का प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि-दो छड़िक्याँ होंगी।

१५-यदि कोई दोनों खरों के चलने के समय में गर्भविषयक प्रश्न करे तथा उस समय यदि चन्द्र खर तेन चलता हो तो कह देना चाहिये कि-दो कन्यायें होंगी तथा यदि सूर्य खर तेन चलता हो तो कह देना चाहिये कि-दो पुत्र होंगे॥

गृहस्यों के लिये आवश्यक विज्ञप्ति॥

खरोदय ज्ञान की जो २ बार्ते गृहस्यों के लिये उपयोगी थीं उन का हम ने ऊपर कथन कर दिया है, इन सब बार्तों को अभ्यस्त (अभ्यास में) रखने से गृहस्यों को अवश्य ओनन्द की प्राप्ति हो सकती है, क्योंकि खरोदय के ज्ञान में मन और इन्द्रियों का रोकना आवश्यक होता है।

यद्यपि प्रथम अभ्यास करने में गृहस्थों को कुछ कठिनता अवस्य माछम होगी परन्तु थोड़ा बहुत अभ्यास हो जाने पर वह कठिनता आप ही मिट जावेगी, इस लिये मारम्य में उस की कठिनता से भय नहीं करना चाहिये किन्तु उस का अभ्यास अवस्य करना ही चाहिये. क्योंकि-यह विद्या अति लामकारिणी है, देखो। वर्त्तमान समय में इस देश के निवासी श्रीमान् तथा दूसरे छोग अन्यदेशवासी जनों की वनाई हुई जागरण-घटिका (जगाने की घड़ी) आदि वस्तुओं को निदा से जगाने आदि कार्य के हिये द्वय का व्यय कर के लेते है तथा रात्रि में जितने बजे पर उठना हो उसी समय की जगाने की चावी लगा कर बड़ी को रख देते हैं और ठीक समय पर बड़ी की आवाल को सन का उठ बैठते हैं, परन्त हमारे प्राचीन आर्यावर्त्तनिवासी जन अपनी योगादि विद्या के वह से उक्त जागरण आदि का सब काम छेते थे, जिस में उन की एक पाई भी खर्च नहीं होती थी। (प्रश्न) आप इस बात को क्या हमें प्रत्यक्ष कर बतला सकते है कि-आर्योवर्त्तनिवासी प्राचीन जन अपनी योगादि विद्या के वल से उक्त जागरण आदि का सन काम लेते थे ? (उत्तर) हाँ, हम अवस्य वतला सकते है, क्योंकि-गृहस्थों के लिये हितकारी इस प्रकार की वालों का प्रकट करना हम अत्यावश्यक समझते हैं, यद्यपि वहत से छोगों का यह मन्तव्य होता है कि-इस प्रकार की गोप्य बातों को प्रकट नहीं करना चाहिये परन्त हम ऐसे विचार को बहुत तुच्छ तथा सङ्कीर्णहृदयता का चिह्न समझते है, देखी ! इसी विचार से तो इस पवित्र देश की सब विद्यार्थे नष्ट हो गई।

पाठकवृन्द ! तुम को रात्रि में जितने बने पर उठने की आवश्यकता हो उस के लिये ऐसा करों कि—सोने के समय प्रथम दो चार मिनट तक चित्त को स्थिर करों, फिर विछीने पर छेट कर तीन वा सात वार ईश्वर का नाम को अर्थात् नमस्कारमं को पटों, फिर अपना नाम के कर सुख से यह कहों कि—हम को इतने बने पर (जितने बने पर तुम्हारी उठने की इच्छा हो) उठा देना, ऐसा कह कर सो जाओ, यदि तुम को उक्त कार्य के बाद दश पाँच मिनट तक निद्रा न आवे तो पुनः नमस्कारमं को निद्रा आने तक मन में ही (होठों को न हिला कर) पढते रही, ऐसा करने से तुम रात्रि में अभीष्ट समय पर जाग कर उठ सकते हो, इस में सन्देह नहीं है ।

१ निद्रा के आने तक पुन सन से सन्त्र पट्ने का तात्पर्य यह है कि-ईश्वरनसस्कार के पीछे सन को अनेक वार्तों में नहीं छे जाना चाहिये अर्थात् अन्य किसी वात का स्मरण नहीं करना चाहिये॥

२-हाथकञ्जन के लिये आरसी की क्या आनश्यकना है अर्थात् इस वात की जो परीक्षा करना नाहे वह कर सकता है।

योगसम्बन्धिनी मेस्मेरिजम विद्या का संक्षिप्त वर्णन ॥

वर्त्तमान समय में इस विद्या की चर्चा भी चारों बोर अधिक फैल रही है अर्थात् अंग्रेज़ी शिक्षा पाये हुए मनुष्य इस विद्या पर तन मन से मोहित हो रहे है, इस का यहाँ तक प्रचार वढ़ रहा है कि—पाठशालाओं (स्कूलों) के सन विद्यार्थों भी इस का नाम जानते है तथा इस पर यहाँ तक श्रद्धा वढ रही है कि—हमारे जैन्टिल्मैन भाई भी (जो कि सब वातों को व्यर्थ बतलाया करते हैं) इस विद्या का सच्चे भाव से खीकार कर रहे है, इस का कारण केवल यही है कि—इस पर श्रद्धा रखने वाले जनों को वालक-पन से ही इस प्रकार की शिक्षा मिली है और इस में सन्देह भी नहीं है कि—यह विद्या बहुत सच्ची और अत्यन्त लाभदायक है, परन्तु बात केवल इतनी है कि—यदि इस विद्या में सिद्धता को प्राप्त कर उसे यथोचित रीति से काम में लाया बावे तो वह बहुत लामदायक हो सकती है।

इस विद्या का विशेष वर्णन हम यहां पर प्रन्थ के विस्तार के भय से नहीं कर सकते हैं किन्तु केवल इस का खरूपमात्र पाठक जनों के ज्ञान के लिये लिखते हैं ।

निस्सन्देह यह विद्या बहुत प्राचीन है तथा योगाम्यास की एक शाखा है, पूर्व समय में भारतवर्षीय सम्पूर्ण आचार्य और मुनि महात्मा जन योगाम्यासी हुआ करते थे जिस का कृतान्त प्राचीन प्रन्थों से तथा इतिहासों से विदित हो सकता है।

अावर्यक सूचना—संसार में यह एक साधारण नियम देखा जाता है कि जन कमी कोई पुरुष किन्ही नृत्न (नये) विचारों को सर्व साधारण के समक्ष में प्रचरित करने का मारम्म करता है तब छोग पहिछे उस का उपहास किया करते है, तात्पर्य यह है कि जब कोई पुरुष (चाहे वह कैसा ही विद्वान क्यों न हो) किन्हीं नये विचारों को (संसार के छिये छामदायक होने पर भी) प्रकट करता है तब एक बार छोग उस का उपहास अवश्य ही करते है तथा उस के उन विचारों को बारू छीछ। समझते है, परन्तु विचारप्रकटकर्ता (विचारों को प्रकट करने बाला) गम्भीर पुरुष जब छोगों के उपहास का कुछ भी विचार न कर अपने कर्त्तव्य में सोदोग (उद्योगयुक्त) ही रहता है तब उस का परिणाम यह होता है कि उन विचारों में जो कुछ सत्यता विद्यमान होती है वह शनै: २ (धीरे २) कालान्तर में (कुछ काल के पश्चात्) प्रचार को प्राप्त होती है अर्थात् उन विचारों की सत्यता और असिख्यत को छोग समझ कर मानने लगते है.

१-यह विद्या भी खरोदयनिया से विषयसाम्य से सम्बद्ध रखती है, अत- यहाँ पर थोडा सा इस का भी खरूप दिखलाया जाता है ॥

२-इतने ही आवस्यक विषयों के वर्णन से प्रन्य अब तक वह जुका है तथा आगे भी कुछ आंवस्यक विषय का वर्णन करना अवशिष्ट है, अतः इस (नेस्मेरियम) विद्या के सहस्यमात्र का वर्णन किया है ॥

विचार करने पर पाठकों को इस-के अनेक प्राचीन उदाहरण मिछ सकते हैं अतः हम उन (प्राचीन उदाहरणों) का कुछ भी उछेल करना नहीं चाहते हैं किन्तु इस विषय के पश्चिमीय विद्वानों के दो एक उदाहरण पाठकों की सेवा में अवस्य उपस्थित करते हैं, देखिये—अठारहवीं सताव्दी (सदी) में मेससे "एनीमछ मेगनेतीज़म" (जिस ने अपने ही नाम से अपने आविष्कार का नाम "मेरमेरिज़म" रक्खा तथा जिस ने अपने आविष्कार की सहायता से अनेक रोगियों को अच्छा किया) का अपने नूतन विचार के प्रकट करने के प्रारम्भ में कैसा उपहास हो जुका है; यहाँ तक कि-विद्वान हानतरों तथा दूसरे छोगों ने भी उस के विचारों को हैंसी में उड़ा दिया और इस विद्या को प्रकट करने वाले डानतर मेससर को छोग ठग बतलाने छगे, परन्तु "सल्यमेव विजयते" इस बाक्य के अनुसार उस ने अपनी सल्यता पर हड़ निश्चय रक्खा, जिस का परिणाम यह हुआ कि—उस की उक्त विद्या की तरफ कुछ छोगों का घ्यान हुआ तथा उस का आन्दोलन होने छगा, कुछ काल के पश्चात् अमेरिका वालों ने इस विद्या में विशेष अन्वेषण किया जिस से इस विद्या की सारता प्रकट हो गई, फिर क्या या इस विद्या का खूब ही प्रचार होने छगा और थियासोफिक्छ सुसाहटी के द्वारा यह विद्या समस्त देशों में प्रचरित हो गई तथा बड़े र प्रोफेसर विद्वान जन इस का अभ्यास करने छगे।

दूसरा उदाहरण देखिये-ईसी सन् १८२८ में सब से प्रथम जब सात पुरुषों ने मब (वारू वा शराव) के न पीने का नियम ग्रहण कर मध का प्रचार होगों में कम करने का प्रयक्त करना प्रारंभ किया बा उस समय उन का बड़ा ही उपहास हुआ था, विशेषता यह थी कि—उस उपहास में विना विचार बड़े २ सुयोग्य और नामी श्राह मी सम्मीलित (शामिल) हो गये थे, परन्तु इतना उपहास होने पर भी उक्त (मच न पीने का नियम छेने वाले) होगों ने अपने नियम को नहीं छोड़ा तथा उस के लिये चेशा करते ही गये, परिणाम यह हुआ कि—दूसरे भी अनेक बन उन के अनुगामी हो गये, आज -उसी का यह कितना बड़ा फल प्रत्यक्ष है कि—इँगलेंड में (यद्यपि वहाँ मध का अब भी बहुत कुछ खर्च होता है तथापि) मद्यपान के विरुद्ध सेकड़ों मंडलियाँ स्थापित हो चुकी हैं तथा इस समय प्रेट ब्रिटन में साठ लाख मनुष्य मद्य से निलकुल परहेन करते हैं इस से अनुमान किया जा सकता है कि—जैसे गत शताब्दी में सुघरे हुए सुरुकों में गुलामी का व्यापार वन्द किया जा चुका है उसी प्रकार वर्तमान शताब्दी के अन्त तक मद्य का व्यापार मी अन्तन्त वन्द कर दिया जाना आश्चर्यवनक नहीं है।

इसी प्रकार तीसरा उदाहरण देखिये-यूरोप में बनस्पति की ख़राक का समर्थन और मांस की ख़ुराक का असमर्थन करने वाढी मण्डली सन् १८४७ में मेनचेप्टर में थोड़े से पुरुषों ने मिल कर जब खापित की थी उस समय भी उस (मण्डली) के समासदों का उपहास किया गया था परन्तु उक्त ख़ुराक के समर्थन में सत्यता विद्यमान थी इस कारण आज इँग्लेंड, यूरोप तथा अमेरिका में वनस्पित की ख़ुराक के समर्थन में अनेक मण्ड-लियां स्थापित हो गई हैं तथा उन में हजारों विद्वान, यूनीवर्सिटी की वड़ी २ डिग्नियों को मास करने वाले, डाक्टर, वकील और बढ़े २ इझीनियर आदि अनेक उच्चाविकारी जन समासद्द्रप में प्रविष्ट हुए हैं, तात्पर्य यह है कि—वाहें नये विचार वा आविष्कार हों, चाहें प्राचीन हों यदि वे सत्यता से युक्त होते है तथा उन में नेकनियती और इमानदारी से सदुचम किया जाता है तो उस का फल अवस्य मिळता है तथा सदुचम वाले का ही अन्त में विजय होता है ॥

यह पञ्चम अध्याय का खरोदयवर्णन नामक दशवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

ग्यारहवाँ प्रकरण—शकुनावलिवर्णन ॥

शकुनविद्या का खरूप ॥

इस विद्या के अति उपयोगी होने के कारण पूर्व समय में इस का बहुत ही प्रचार था अर्थात् पूर्व जन इस विद्या के द्वारा कार्यसिद्धि का (कार्य के पूर्ण होने का) शकुन (सगुन) छे कर प्रत्येक (हर एक) कार्य का प्रारम्भ करते थे, केवल यही कारण था कि—उन के सब कार्य प्रायः सफल और शुमकारी होते थे, परन्तु अन्य विद्याओं के समान घीरे २ इस विद्या का भी प्रचार घटता गया तथा कम बुद्धि वाले पुरुष हसे बच्चों का सेक समझने लगे और विशेष कर बंग्रेज़ी पढ़े हुए लोगों का तो विश्वास इस पर नाममात्र को भी नहीं रहा, सत्य है कि—"न वेति यो यस्य गुणप्रकर्ष स तस्य निन्दां सततं करोति" अर्थात् जो जिस के गुण को नहीं जानता है वह उस की निरन्तर निन्दां किया करता है, अस्तु—इस के विषय में किसी का विचार चाहे कैसा ही क्यों न हो परन्तु पूर्वीय सिद्धान्त से यह तो भुक्त कण्ठ से कहा जा सकता है कि—यह विद्या प्राचीन समय में अति आदर पा जुकी है तथा पूर्वीय विद्वानों ने इस विद्या का अपने बन्नाये हुए ग्रन्थों में बहुत कुछ उछेल किया है।

पूर्व काल में इस विद्या का प्रचार बद्यपि प्रायः सब ही देशों में था तथापि मारवाड़ देश में तो यह विद्या जित उत्क्रष्ट रूप से प्रचलित थी, देखों! मारवाड़ देश में पूर्व समय में (थोड़े ही समय पिहले) परदेश आदि को गमन करने वालों के सहायक (चोर आदि से रक्षा करने वाले) वन कर माटी आदि राजपूत जाया करते थे वे लोग जानवरों की माषा आदि के शुमाशुम शकुनों को मुली माँति जानते थे, हड़वूकी नामक

सांखला राजपूत हुए हैं; जिन्हों ने मदेश्वगमनादि के शुभाशुभ शकुनों के विषय में सैकड़ों दोहे बनाये हैं, वर्चमान में रेल आदि के द्वारा यात्रा करने का प्रचार हो गया है इस कारण उक्त (मारवाड़) देश में भी शकुनों का प्रचार घट गया है और घटता चला जाता है।

हमारे देशवासी बहुत से जन यह भी नहीं जानते हैं कि—शुम शकुन कौन से होते हैं तथा अशुम शकुन कौन से होते हैं, यह बहुत ही छजास्पद विषय है, क्योंकि शुमाशुम शकुनों का जानना और यात्रा के समय उन का देखना अत्यावश्यक है, देखो ! शकुन ही आगामी शुमाशुम के (भळे वा बुरे के) अथवा यों समझो कि—कार्य की सिद्धि ना असिद्धि तथा शुख वा दुःख के सूचक होते हैं।

शकुन दो प्रकार से लिये (देखे) जाते हैं—एक तो रमक के द्वारा वा पाशा आदि के द्वारा कार्य के विषय में लिये (देखे) जाते हैं और दूसरे प्रदेशादि को गमन करने के समय शुमाशुम फल के विषय में लिये (देखे) जाते हैं, इन्हीं दोनों प्रकार के शकुनों के विषय में संक्षेप से इस प्रकरण में लिखेंगे, इन में से प्रथम वर्ग के शकुनों के विषय में गर्गाचार्य मुनि की संस्कृत में बनाई हुई पाशशकुनाविक का मावा में अनुवाद कर वर्णन करेंगे, उस के पश्चाद प्रदेशादिगमनविषयक शुमाशुम शकुनों का संक्षेप से वर्णन करेंगे, आशा है कि—गृहस्थ जन शकुनों का विज्ञान कर इस से लाम उठांनेंगे।

जो कुछ कार्य करना हो उस का प्रथम स्थिर मन से विचार करना चाहिये, फिर थोड़े चाँवछ, एक सुपारी और दुर्जनी वा चाँदी की अगुटी आदि की पुराक पर भेंट-रूप रख कर पौसे को हाथ में छे कर इस निम्नलिखित मन्न को सात वार पढ़ना चाहिये, फिर तीन वार पासे को डालना चाहिये तथा तीनों वार के जितने अह हों उन का

१-तीनों क्रोकों के पूज्य भी गर्गाचार्य महात्मा ने सखपासा केवली राजा अप्रसेन के सामने प्रजा-हितकारिणी इस (शक्तनावली) का वर्णन संस्कृत गया में किया था उसी का भाषातुवाद कर के यहां पर हम ने लिखा है।

२—इस सम्बन्ध का जो द्रव्य इक्ट्रा हो जाने उस को झानखाते में लगा देना योग्य होता है, इस लिये जो लोग देश वैशान्तरों में रहते हैं उन को उनित है कि—काम काज से छुटी पा कर अवकाश के समय में व्यर्थ गापों भार कर समय को न गमानें किन्तु अपने वर्ग में से जो पुरुष कुछ पठित हो उस के यहाँ व्यर्थ गोग्य पांच सात अच्छे २ अन्यों को मेंगना कर रक्कों और उन को छुना करें तथा खय भी बाँचा करें और जो झानखाते का द्रव्य हो उस से उपयोगी पुस्तकों को मेंगा किया करें तथा उपयोगी साप्ताहिक पत्र और जो झानखाते का द्रव्य हो उस से उपयोगी पुस्तकों को मेंगा किया करें तथा उपयोगी साप्ताहिक पत्र और मासिक पत्र भी दो चार मेंगाते रहें, ऐसा करने से महत्व को बहुत छाम होता है।

३—जीपड के पासे के समान काष्ट, पीतल वा दांत का चौकोना पासा होना चाहिये, जिस में एक, हो, सीन और चार, ये अंक लिखे होने चाहियें ॥

फल देख लेना चाहिये, (इस शकुनायिक का फल ठीक २ मिलता है) परन्तु यह सारण रखना चाहिये कि—एक बार शकुन के लेनेपर (उस का फल चाहे बुरा आवे चाहे अच्छा आवे) फिर दूसरी वार शकुन नहीं लेना चाहिये।

मञ्ज---ओं नमो अगवति कूप्मांडनि सर्वकार्यप्रसाधिनि सर्वनिमित्तप्रकाशिनि एग्रेहि २ वरं देहि २ हिं २ मातक्षिनि सत्यं श्रृहि २ खाहा ।

इस मझ को सात बार पढ़ कर "संत्य माषे असत्य का परिहार करे" इस अकार सुख से कह कर पासे को डालना चाहिये, यदि पासा उपस्थित न हो तो नीचे जो पासाविल का यन्त्र लिखा है उस पर तीन बार अङ्गुलि को फेर कर चाहे जिस कोठे पर रख दे तथा आगे जो उस का फल लिखा है उसे देख ले।

पासावलिका यन्त्र ॥

888	११२	\$ \$ ₹	888	१२१	१२२	१२३	१२४
१३१	१३२	१३३	१३४	१४१	१४२	१ 8३	\$88
२११	२१२	२१३	२१४	२२१	२२२	२२३	२२४
२३१	२३२	र३३	२३४	र४१	२४२	र ४३	₹88
388	३१२	३१३	3 \$ 8	३२१	३२२	३२३	३२४
३३१	३३२	३३३	३ ३8	३४१	३४२	३८३	₹88
४११	४१२	883	8 \$ 8	४२१	४२२	४२३	858
४३१	४३२	४३३	8 ई 8	888	४४२	८८३	888

पासावलिका का ऋमानुसार फल ॥

१११-हे पूछने वाले। यह पासा बहुत ग्रुम है, तेरे दिन अच्छे है, तू ने विलक्षण बात विचार रक्सी है, बह सब सिद्ध होगी, व्यापार में लाग होगा और युद्ध में जीत होगी।

११२—हे पासा छेने वाछे! तेरा काम सिद्ध नहीं होगा, इस लिये विचारे हुए काम को छोड़ कर दूसरा काम कर तथा देवाधिदेव का ध्यान रख, इस शकुन का यह प्रमाण (पुरावा) है कि—तू रात को स्तप्त में काफ (कीया), घुग्चू, गीघ, मक्सियाँ, मच्छर, मानो अपने शरीर में तेल लगाया हो अथवा काला साँप देखा हो, ऐसा देखेगा!

११३—हे पूछने वाले! तू ने जो विचार किया है उस का फल सुन, तू किसी खान (ठिकाने) को वा धन के लाम को अथवा किसी सज्जन की मुलाकात को चाहता है, यह सब तुझे मिलेगा, तेरे क्केश और चिन्ता के दिन बहुत से बीत गये, अब तेरे अच्छे दिन आ गये है, इस बात की सत्यता (सचाई) का प्रमाण यह है कि—तेरी कोल पर तिल वा मसा अथवा कोई धाव का चिह्न है।

'११८-हे पूछने वाले ! यह पासा बहुत कल्याणकारी है, कुल की वृद्धिः होगी, जमीन का लाम होया, घन का लाम होगा, पुत्र का भी लाम दीखता है और प्यारे मित्र का दर्शन होगा, किसी से सम्बंध होगा तथा तीन महीने के मीतर विचारे हुए काम का लाम होगा, गुरु की मिक्त और कुलदेनी का पूजन कर, इस बात की सत्यता का प्रमाण यह है कि—तेरे शरीर के ऊपर दोनों तरफ मसा; तिल वा बाव का चिह्न है।

१२१-हे पूछने वाले! तूने ठिकाने का लाम तथा सज्जन की मुलाकात विचारी है, धातु; धन; सम्पत्ति और माई बन्धु की वृद्धि तथा पहिले जैसे सम्मान का मिलना वि-चारा है, यह सब बात निर्विघ्न (विना किसी विघ्न के) तेरे लिये मुखदायी होगी, इस का निश्चय तुझे इस प्रकार हो सकता है कि-तू स्वग्न में अपने बड़े लोगों को देखेगा।

१२२—हे पूछने वाले ! तुझे वित्त (धन) और यश का लाम होगा, ठिकाना और सम्मान मिलेगा तथा तेरी मनोऽमीष्ट (मनचाही) वस्तु मिलेगी, इस में श्रङ्का मत कर, अब तेरा पाप और दुःख क्षीण हो गया, इस लिये तुझे कल्याण की प्राप्ति होगी, इस का पुरावा यह है कि—तू रात को स्तम में अथवा प्रत्यक्ष में उद्दाई का करना देखेगा।

१२३-हे पूछने वाले! तेरे कार्य और धन की सिद्धि होगी, तेरे विचारे हुए सब मामले सिद्ध होंगे, कुटुम्ब की बृद्धि, ली का लाम तथा खबन की मुलाकात होगी, तेरे मन में जो बहुत दिनों से विचार है वह अब जल्दी पूर्ण होगा, इस बात का यह पुरावा है कि-तेरे घर में लड़ाई तथा खीसम्बंधी चिन्ता आज से पाँचवें दिन के मीतर हुई होगी।

१२४—हे पूछने बाले! तेरी माइयों से जल्दी मुखाकात होगी, तेरा मुक्त अच्छा है, प्रह का बळ भी अच्छा है, इस लिये तेरे सब काम हो जावेंगे, तू अपनी कुळदेवी का

पूजन कर।

१३१—हे पूछने वाले! तुझे ठिकाने का छाम, धन का छाम तथा चित्त में चैन होगा, जो कुछ काम तेरा बिगड़ गया है वह भी सुघर खावेगा तथा जो कुछ चीज चोरी में गई है वह भी मिल जावेगी, इस बात का यह पुरावां है कि—तू ने सम में धूस को देखा है अथवा देखेगा।

१३२-हे पूछने वाले! जो काम तू ने विचारा है वह सब हो जावेगा, इस बात का

यह पुरावा है कि-तेरी स्त्री के साथ तेरी बहुत प्रीति है।

१३३-हे पूछने वाले! इस शकुन से तेरे घन के नाश का तथा शरीर में रोग होने का सम्भव है तथा तेरे किसी अकार का बन्धन है, जान के घोले का खतरा है, तू ने भारी काम विचारा है वह बड़ी तकलीफ से पूरा होगा।

१३४-हे पूछने वाले! तुझे राजकाज की तरफ की वा सर्कार की तरफ की अथवा सोना चाँदी की और परदेश की चिन्ता है, तू किसी दुशमन से जीतना चाहता है, यह सब बात धीरे २ तुझे पास होगी, जैसी कि तू ने विचारी है, अब हानि नहीं होगी, तेरे पाप कट गये, तू वीतराग देव का ध्यान धर, तेरे सब कार्य सिद्ध होंगे।

१४१-हे पूछने वाले ! तेरा विचार किसी व्यापार का है तथा तुझे दूसरी भी कोई चिन्ता है, इस सब कष्ट से छूट कर तेरा मझल होगा, आब के सातवें दिन या तो तुझे कुछ लाम होगा वा अच्छी बुद्धि उत्पन्न होगी।

१४२—हे पूछने वाछे । तेरे भन में धन और घान्य की अथवा घर के विष्य की चिन्ता है, वह सब चिन्ता दूर होगी, तेरे कुटुम्ब की वृद्धि होगी, कल्याण होगा, सज्जनों से मुखाकात होगी तथा गई हुई वस्तु भी मिछेगी, इस बात का यह पुरावा है कि—तेरे घर में अथवा बाहर छड़ाई हुई है वा होगी।

१४३-हे पूछने बाले ! तेरे विचारे हुए सब काम सिद्ध होंगे, कल्याण होगा तथा छड़की का लाम होगा, इस बात का यह पुरावा है कि-तू साम में किसी प्राम में जाना देखेगा।

१४४ — हे पूछने वाछे! तेरे सब कामों की सिद्धि होगी और तुझे सम्पत्ति मिछेगी इस बात का यह पुरावा है कि — तू अपने विचारे हुए काम को खम में देखेगा वा देव-मन्दिर को वा मूर्ति को अथवा चन्द्रमा को देखेगा।

२११—हे पूछने बाछे ! तू ने अपने मन में एक बड़ा कार्य विचारा है तथा तुझे धनविषयक चिन्ता है, सो तेरे छिये सब अच्छा होगा तथा प्यारे माइयों की मुकाकात होगी, इस बात की सत्यता का प्रमाण यह है कि—तू ने खप्त में ऊँचे मकान पर पहाड़ पर चड़ना देखा है अथवा देखेगा।

२१२—हे पूछने बाछे । तेरे सब बातों की बृद्धि होगी, मित्रों से मुलाकात होगी, संसार से छाभ होगा, विवाह करने पर कुछ की बृद्धि होगी तथा सोना चाँदी आदि सब सम्पत्ति होगी, इस बात का यह पुरावा है कि—तू ने खम में गाय वा वैल को देखा है अथवा देखेगा, तू परदेश में भी जाने का विचार करता है, तू कुछदेवी को मना, तेरे लिये अच्छा होगा।

२१६—हे पूछने वाछे! तेरे मन में द्विपद अर्थात् दो पैर वाछे की चिन्ता है और तू ने अच्छा काम, विचारा है उस का छाम तुझे एक महीने में होगा, माई तथा सज्जन मिळेंगे, घरीर में मसन्नता होगी और तेरे मनोऽमीष्ट (मनचाहे) कार्य होंगे परन्तु जो तेरा गोत्रदेव है उस की आराधना तथा सन्मान कर, तू माता; पिता; माई और पुत्र आदि से जो कुछ मयोजन चाहता है वह तेरा मनोरय सिद्ध होगा, इस बात का यह पुरावा है कि—तू ने रात्रि में मत्यक्ष में अथवा सम में सी से समागम किया है।

२१४-हे पूछने बाले ! जो कुछ तेरा काम बिगड़ गया है अर्थात् जो कुछ नुकसान आदि हुआ है अथवा किसी से जो कुछ तुझे लेना है वा जिस किसी ने तुझ से दगा-बाज़ी की है उस को तू मूल जा, यहाँ से कुछ दूर जाने से तुझे लाम होगा, आज तू ने सप्त में देव को वा देवी को वा कुछ के बड़े जनों को वा नदी आदि को देखा है, अथवा सज्जनों से तेरी मुलाकात हुई है।

२२१ — हे पूछने वाले! इतने दिनों तक जो कुछ कार्य तू ने किया उस में तुझे नरानर क्षेत्र हुआ अर्थात तू ने सुख नहीं पाया, अन तू अपने मन में कुछ कल्याण को चाहता है तथा धन की इच्छा रखता है, तुझे नड़े स्थान (ठिकाने) की चिन्ता है तथा वित्त किया चित्त किया वित्त किया चित्त किया कि स्थान की साप्ति हुई समझ छे, इस नात की सत्यता का यह प्रमाण है—कि तू लग्न में वृक्ष को देखेगा।

२२२—हे पूछने बाछे । तेरा सज्जनों के साथ विरोध है और तेरी कुमित्र से मित्रता है, जो तेरे मन में चिन्ता है तथा जिस बड़े काम को तू ने उठा रक्स्ता है उस काम की सिद्धि बहुत दिनों में होगी तथा तेरा कुछ पाप वाकी है सो उस का नाश हो जाने से तुझे स्थान (ठिकाने) का छाम होगा।

२२३-हे पूछने बाछे ! इस समय तू ने बुरे काम का मनोरध किया है तथा तू दूसरे के धन के सहारे से व्यापार कर अपना मतलब निकालना चाहता है, सो उस सम्पत्ति का मिलना कठिन है, तू व्यापार कर, तुझे लाम होगा; परन्तु तू ने जो मन में बुरा विचार किया है उस को छोड़ कर दूसरे प्रयोजन को विचार, इस बात की सत्यता का यही प्रमाण है कि तू लग्न में अपने लोटे दिन देखेगा !

२२४—हे पूछने वाले ! तेरे मन में परसी की चिन्ता है, तू बहुत दिनों से तकलीक को देख रहा है, तू इघर उघर मटक रहा है तथा तेरे साथ यहाँ पर लड़ाई आदि बहुत दिनों से चल रही है, यह सब विरोध ज्ञान्त हो जावेगा, अब तेरी तकलीक गई, कल्याण होगा तथा पाप और दुःख सब मिट गये, तू गुरुदेव की मिक्क कर तथा कुलदेव की पूजा कर, ऐसा करने से तेरे मन के विचारे हुए सब काम ठीक हो जावेंगे।

२३१-हे पूछने वाले! तुझे दोषों के विना विचारे ही घन का लाम होगा, एक महीने में तेरा विचारा हुआ मनोरय सिद्ध होगा और तुझे बड़ा फल मिलेगा, इस बात की सत्यता का यही प्रमाण है कि-तू ने कियों की कथा की है अथवा तू सप्त में इसों की; सूने घरों की; अथवा सूने देश की; वा सूले तालाव को देखेगा।

२३२-हे पूछने वाछ । तू ने बहुत कठिन काम विचारा है, तुझे फायदा नहीं होगा, तेरा काम सिद्ध नहीं होगा तथा तुझे झुल मिलना कठिन है, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि तू सम में मैंस को देखेगा।

२३३—हे पूछने बाले! तेरे मन में अचानक (एकाएक) काम उत्पन्न हो गया है, तू दूसरे के काम के लिये चिन्ता करता है, तेरे मन में विकक्षण तथा कठिन चिन्ता है, तू ने अनर्थ करना विचारा है, इस लिये कार्य की चिन्ता को छोड़ कर तू दूसरा काम कर तथा गोत्रदेवी की आराधना कर, उस से तेरा मछा होगा, इस बात की सत्यता का प्रमाण यह है कि—तेरे घर में कलह है; अथवा तू बाहर फिरता है ऐसा देखेगा, अथवा तुझे सम में देवतों का दर्शन होगा।

२२४—हे पूछने वाले! तेरे काम बहुत है, तुझे घन का लाम होगा, तू कुटुन्ब की चिन्ता में वार २ ग्रुझीता है, तुझे ठिकाने और जमीन जगह की भी चिन्ता है, तेरे मन में पाप नहीं है; इस लिये जरूदी तेरी चिन्ता मिटेगी, तू लाम में गाय को; मैस को तथा जल में तैरने को देलेगा, तेरे दु:स का अन्त आ गया, तेरी बुद्धि अच्छी है इस लिये ग्रुद्ध मिक्क से तू कुलदेवता का ध्यान कर।

२ ४१-हे पूछने वाले! तुझे विवाहसम्बन्धी चिन्ता है तथा तू कही छाम के लिये जाना चाहता है, तेरा विचारा हुआ कार्य जल्दी सिद्ध होगा तथा तेरे पद की चृद्धि होगी, इस बात का यह पुरावा है कि मैथुन के लिये तू ने बात की है।

२४२—हे पूछने वाले ! तुझे बहुत दिनों से परदेश में गये हुए मनुष्य की चिन्ता है, तू उस को बुलाना चाहता है तथा तू ने जो काम विचारा है वह अच्छा है, परन्तु भावी बलवान है इस लिये यह बात इस समय सिद्ध होती नहीं मार्डम देती हैं।

२४२-हे पूछने बार्छ ! तेरा रोग और दुःख मिट गया, तेरे सुल के दिन था गये, तुझे मनोबाव्निछत (मनचाहा) फल मिलेगा, तेरे सब उपद्रव मिट गये तथा इस समय जाने से तुझे लाम होगा।

२८८—हे पूछने वाले! तेरे चित्त में जो चिन्ता है वह सब मिट जावेगी, कर्र्याण होगा तथा तेरा सब काम सिद्ध होगा, इस बात का पुरावा यह है कि—तेरे गुप्त अझ पर तिल है।

६११-हे पूछने वाले ! तू इस बात को विचारता है कि मै देशान्तर (दूसरे देश) को जाऊँ मुझे ठिकाना मिलेगा वा नहीं, सो तू कुछदेवी को वा गुरुदेव को याद कर, तेरे सब विघ्न मिट जावेंगे तथा हुझे अच्छा छाम होगा और कार्य में सिद्धि होगी, इस नात की सत्यता में यह प्रमाण है कि तू सम में पहाड़ वा किसी ऊँचे स्वल को देखेगा ।

३१२-हे पूछने वार्छ ! तेरे मनोरथ पूर्ण होवेंगे, तेरे लिये धन का लाग दीलता है, तेरे छुदुम्ब की दृद्धि तथा श्ररीर में सुख धीरे २ होगा, देवतों की तथा श्रहों की जो पूर्व की पीड़ा है उस की शान्ति के लिये देवता की आराधना कर, ऐसा करने से तू जिस

काम का आरम्भ करेगा वह सब सिद्ध होगा, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि—त्तू स्वप्न में ग़ाय, घोड़ा और हाथी आदि को देखेगा।

३१३—हे पूछने वाले । तेरे मन में घन की चिन्ता है और तू कुछ दिछं का नरम है, तेरे दुश्मन ने तुझे दना रक्खा है, तेरा मित्र भी तेरी सहायता नहीं करता है, तू सज्जनता को बहुत रखता है, इस लिये तेरा घन छोग खाते हैं, सो कुछ ठहर कर परिणाम में तेरा भछा होगा अर्थात् तेरा सब दुःख मिट जावेगा, इस बात का यह पुरावा है कि—तेरे घर में छड़ाई हुई है वा होगी।

३१४—हे पूछने वाले ! यह झकुन कल्याण तथा गुण से मरा हुआ है, तू निश्चिन्तता (वेफिकी) के साथ जल्दी ही सब कार्मों का सिद्ध होना चाहता है; सो वे सब काम धीरे र सिद्ध होंगे, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि तू स्त्रप्त में दृष्टि का होना; सन्पति; तालाव; वा मछली; इन में से किसी वस्तु को देखेगा।

३२१—हे पूछने वाले! यह शकुन अच्छा नहीं है, यह काम जो तू ने विचारा है निर्श्वक है, एक महीने तक तेरे पाप का उदय है इस लिये इस की आशा को छोड़ कर तु दूसरा काम कर, क्योंकि—यह काम अभी नहीं होगा, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि—तू सम में प्रोल वा गवैया लोगों को अथवा नगर को देखेगा, सर्कार से तुझे तकलीफ होगी इस लिये यहाँ से और स्थान को चला जा कि—विस से तुझे तकलीफ न होगी।

३२२—हे पूछने बाछे! एक महीना हुआ है तब से धन के लिये तेरे चित्र में उद्देग हो रहा है परन्तु अब तेरे अञ्ज भी भित्र हो जावेंगे, मुख सम्पत्ति की बृद्धि होगी, धन का छाम अवस्य होगा और सर्कार से भी तुझे कुछ सम्मान मिलेगा, इस बात का यह पुरावा है कि—तू ने मैथुन की बात चीत की है।

- ३२३ — हे पूछने वाले ! यद्यपि तेरे भाग्य का बोड़ा उदय है परन्तु तकलीफ तो तुझे है ही नहीं, तुझे अच्छे प्रकार से रहने के लिये ठिकाना मिलेगा, घन का लाग होगा, प्यारे सज्जनों की मुलाकात होगी तथा सब दु खों का नाश होगा, तू मन में चिन्ता मत कर, इस बात का यह पुरावा है कि — तू खप्त में प्यारों से मुलाकात को देखेगा।

३२8-हे पूछने वाले! तेरे मकान और जमीन की दृद्धि होगी, तू व्यापार में सम्पत्ति को पावेगा तथा जो तू ने मन में विचार किया है अविप वह सब सिद्ध तो हो जावेगा परन्तु तेरे मन में कोई खटका तथा चिन्ता है, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि तेरे शिर में जलम का निशान है, अथवा तू रात को छड़ाई कर के सोया होगा। - ३-३१-हे पूछने वाले! तू अपने चित्त में काम, कुटुम्ब, घर, सम्पत्ति और धन की

{

वृद्धि, प्रजा से लाग तथा वस्रलाम आदि का विचार करता है; सो तू कुलदेव तथा गुरु की भक्ति कर, ऐसा करने से तुझ को अच्छा लाग होगा, इस वात का यह पुरावा है किन्तू लग्न में गाय को देखेगा।

- ३३२—हे पूछने वाले ! तुझ को तकलीफ है, तेरे माई और मित्र मी तुझ से बदल कर चल रहे है तथा जो तू अपने मन में विचार करता है उस तरफ से तुझे लाम का होना नहीं दीखता है, इस लिये तू देशान्तर (दूसरे देश) को चला जा, वहाँ तुझे लाम होगा, तू आम बात में पराये घन से वर्ताव करता है, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि— तू सम में माई तथा मित्रों को देखेगा।

३३२-हे पूछने वाले ! तू अपने मन के विचारे हुए फड़ को पावेगा, तुझे व्यवहार की तथा माई और मित्रों की चिन्ता है, सो ये सब तेरे विचारे हुए काम सिद्ध होंगे।

३३४-हे पूछने वाले ! तू चिन्ता को मत कर, तेरी अच्छे आदमी से मुलाकात होगी, अब तेरे सब दुःख का नाश हुआ, तेरे विचारे हुए सब काम सफल होंगे।

३४१ — हे पूछने वाले ! तेरे मन में किसी पराये आदमी से प्रीति करने की इच्छा है सो तेरे लिये अच्छा होगा, तू धवड़ा मत, तुझे झुल होगा, धन का छाम होगा तथा अच्छे आदमी से मुलाकात होगी।

३४२—हे पूछने बाले ! तेरे मन में पराये आदमी से मुलाकात करने की चिन्ता है, तेरे ठिकान की दृद्धि होगी, करुयाण होगा, मजा की दृद्धि तथा आरोग्यता होगी, इस बात का यह पुरावा है कि—तू सम में दृक्ष को देखेगा।

२४२-हे पूछने बाछे ! तुझे बैरी की अथवा जिस किसी ने तेरे साथ विश्वासवात (दगाबाजी) किया है उस की चिन्ता है, सो इस झकुन से ऐसा माछम होता है कि— तेरे बहुत दिन क्षेत्रा में बीतेंगे और तेरी जो चीज़ चछी गई है वह पीछे नहीं आवेगी परन्तु कुछ दिन पीछे तेरा कल्याण होगा।

३४४—हे पूछने वाले ! तेरे सब काम अच्छे हैं, तुझे शीघ ही मनोवाब्छित (मन चाहा) फल मिलेगा, तुझे जो व्यापार की तथा माई बन्धुओं की चिन्ता है वह सब मिट जावेगी, इस वात का यह पुरावा है कि तेरे शिर में बाव का चिह्न है, तू उद्यम कर अवस्थ लाम होगा ।

४११-हे पूछने वाले । तेरे धन की हानि, शरीर में रोग और चित्त की चझंछता, ये बातें सात वर्ष से हो रही है, जो काम तू ने अन तक किया है उस में नुकसान होता रहा है परन्तु अन तू खुश हो, क्योंकि—अन तेरी तकलीफ चली गई, तू अन चिन्ता मत कर; क्योंकि—अन कल्याण होगा, धन धान्य की आमद होगी तथा सुख होगा।

४१२-हे पूछने वाले ! तेरे मन में स्नीविषयक चिन्ता है, तेरी कुछ रकम भी लोगों में फॅस रही है जोर जब तू गाँगता है तब केवल हाँ, नाँ होती है, घन के विषय में तकरार होने पर भी तुझे लाम होता नहीं दीखता है, यद्यपि तू अपने मन में शुभ समय (खुशवस्ती) समझ रहा है परन्तु उस में कुछ दिनों की ढील है अर्थात् कुछ दिन पीछे तेरा मतलब सिद्ध होगा।

४१३—हे पूछने वाले ! तेरे मन में घनलाम की चिन्ता है और तू किसी प्यारे मित्र की मुलकात को चाहता है, सो तेरी जीत होगी, अचल ठिकाना मिलेगा, पत्र का लाम होगा, परदेश जाने पर कुशल क्षेम रहेगा तथा कुछ दिनों के बाद तेरी बहुत दृद्धि होगी, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि—तू लग्न में काच (दर्पण) को देखेगा।

४१४—हे पूछने वाले । यह बहुत अच्छा शकुन है, तुझे द्विपद अर्थात् किसी आदमी की चिन्ता है, सो महीने मर में मिट जावेगी, धन का काम होगा, मित्र से मुलकात होगी तथा मन के विचारे हुए सब काम शीघ्र ही सिद्ध होंगे।

४२१—हे पूछने वाले ! तू घन को चाहता है, तेरी संसार में प्रतिष्ठा होगी, परदेश में जाने से मनोवान्छित (मनचाहा) लाम होगा तथा सज्जन की मुलाकात होगी, तू ने स्वम में घन को देखा है, वा सी की बात की है; इस अनुमान से सब कुछ अच्छा होगा, तू माता की शरण में जा; ऐसा करने से कोई भी विश्व नहीं होगा।

४२२—हे पूछने वाले! तेरे मन में ठकुराई की चिन्ता है; परन्तु तेरे पीछे तो वरि-द्रता पड़ रही है, तू पराये (दूसरे के) काम में छगा रहा है, मन में बड़ी तकलीफ पारहा है तथा तीन वर्ष से तुझे क्केश हो रहा है अर्थात् सुख नहीं है, इस लिये तू अपने मन के विचारे हुए काम को छोड़ कर दूसरे काम को कर, वह सफल होगा, तू किन स्प्रम को देखता है तथा उस का तुझे ज्ञान नहीं होता है, इस लिये जो तेरा कुलधर्ष है उसे कर, गुरु की सेवा कर तथा कुलदेव का ध्यान कर, ऐसा करने से सिद्धि होगी।

8२३—हे पूछने वाले ! तेरा विजय होगा, शत्रु का क्षय होगा, घन सम्पत्ति का लाम होगा, सज्जनों से प्रीति होगी, कुशल क्षेम होगा तथा ओषधि करने आदि से लाम होगा, अब तेरे पाप क्षय (नाश) को प्राप्त हुए; इस लिये जिस काम को तू विचारता है वह सब सिद्ध होगा, इस बात का यह पुरावा है कि तू सक्ष में बुक्ष को देखेगा।

878—हे पूछने वाले ! तेरे मन में बड़ी मारी चिन्ता है, तुझे अर्थ का लाग होगा, तेरी जीत होगी, सज्जन की मुलाकात होगी, सब काम सफल होंगे तथा चित्त में आनन्द होगा !

83१-हे पूछने वाले ! यह शकुन दीर्घायुकारक (बड़ी उम्र का करने वाला) है, तुले दूसरे ठिकाने की चिन्ता है, तू माई बन्धुओं के आगमन को चाहता है, तू अपने मन में जिस काम को बिचारता है वह सब सिद्ध होगा, अब तेरे दुःख का नाश हो गया है परन्तु तुझे देशान्तर (दूसरे देश) में जाने से घन का लाम होगा और कुशल क्षेम से आना होगा, इस बात का यह पुरावा है कि—तू खम में पहाड़ पर चढ़ना तथा मकान आदि को देखेगा, अथवा तेरे पैर पर पचफोड़े का चिह्न (निशान) है।

४३२-हे पूछने वाले ! अब तेरे सब दुःख समाप्त हुए तथा तुझे कल्याण प्राप्त हुआ तुझे ठिकाने की चिन्ता है तथा तू किसी की मुलाकत को चाहता है सो जो कुछ काम तू ने विचारा है वह सब होगा, देशान्तर (दूसरे देश) में जाने से धन की प्राप्ति होगी तथा वहाँ से कुशल क्षेम से तू आवेगा !

४३१-हे पूछने वाले! जब तेरे पास पहिले घन था तव तो. मित्र पुत्र और साई आदि सब लोग तेरा हुक्म मानते थे, परन्तु लोटे कर्म के प्रमाव से अब वह सब घन नष्ट हो गया है, खैर! तू चिन्ता मत कर, फिर तेरे पास धन होगा, मन खुश होगा तथा मन में विचारे हुए सब काम सिद्ध होंगे।

8२8—हे पूछने वाले! जिस का तू गरना विचारता है वह अभी नहीं होगा (वह अभी नहीं मरेगा) और तू ने जो यह विचार किया है कि—यह मेरा काम कब होगा, सो वह तेरा काम कुछ दिनों के बाद होगा।

४४१ — हे पूछने वाले ! तेरे माई का नाश हुआ है तथा तेरे क्लेश; पीड़ा और कष्ट के बहुत दिन बीत गये हैं; अब तेरे यह की पीड़ा केवल पॉच पक्ष वा पांच दिन की है, जिस काम को तू विचारता है उस में तुझे फायदा नहीं है; इस लिये दूसरे काम को विचार, उस में तुझे कुछ फल मिळेगा।

४४२-हे पूछने बाले ! जिस काम का तू पारम्भ करता है वह काम यत करने पर भी सिद्ध होता हुआ नहीं दीखता है, अर्थात् इस शकुन से इस काम का सिद्ध होना प्रतीत नहीं होता है इस लिये तू दूसरा काम कर ।

88३-हे पूछने वाले! जिस काम का तू आरम्म करता है वह काम सिद्ध नहीं होगा, तू पराये वास्ते (दूसरे के लिये) जो अपने प्राण देता है वह सब तेरा उपाय ज्यर्थ है इस लिये तू दूसरी बात का विचार कर; उस में सिद्ध होगी।

४४४-हे पूछने वाले ! जिस काम का तू वारंवार विचार करता है वह तुझे शीष्ट्र ही प्राप्त होगा अर्थात् पुत्र का लाम, ठिकाने का लाम, गई हुई वस्तु का लाम तथा घन का लाम, ये, सब कार्य बहुत शीष्ट्र होंगे ॥

प्रदेशगमनादिविषयक शकुन विचार ॥

१-यदि माम को जाते समय कुमारी कन्या, सघवा (पतिवाली) स्त्री, गाय, भरा

1

हुआ बड़ा, दही, मेरी, शक्क, उत्तम फल, पुष्पमाला, विना धूम की लिम, घोड़ा, हाथी, रख, बैल, राजा, मिट्टी, चँवर, सुपारी, लिल (छाता), सिद्ध (तैयार किये हुए) मोजन से मरा हुआ थाल, वेक्या, चोरों का समूह, गहुआ, आरसी, सिकोरा, दोना, मांस, मब, मुकुट, चकडोल (यानविशेष), मधुसहित गृत, गोरोचन, चावळ, रख, वीणा, कमल, सिंहासन, सम्पूर्ण हथियार, सुदक्क आदि सम्पूर्ण बाजे, गीत की ध्वनि, पुत्र के सहित सी, बल्ले के सहित गाय, घोये हुए वस्तों को लिये हुये घोबी, ओघा और मुँहपत्ती के सहित सामु, तिलक के सहित बाबाण, बजाने का नगारा तथा ध्वनापताका इत्यादि शुम पदार्थ सामने दीख पढ़ें अथवा गमन करने के समय—'जाओ जाओ' 'निकलो' 'छोड़ दो' 'जय पालो' 'सिद्धि करो' 'वाल्लित फल को प्राप्त करो' इस प्रकार के शुम शब्द सुनाई देवें तो कार्य की सिद्धि समझनी चाहिये अर्थात् इन शकुनों के होने से अवस्य कार्य सिद्ध होता है।

२-प्राम को जाते समय यदि सामने त्रा दाहिनी तरफ छींक होवे, काँटे से बस फट जावे वा उलझ जावे, वा काँटा लग जावे, वा कराहने का शब्द छुनाई पढ़े, अथवा साँप का वा बिलाब का दर्शन हो तो गमन नहीं करना चाहिये।

२—चलते समय यदि नीलचास, मोर, मारद्वाज और नेउला दृष्टिगत हो तो उत्तम है।

8—चलते समय कुकुट (मुर्गे) का नाई तरफ नोलना उत्तम होता है ।

५-चलते समय बाई तरफ राजा का दर्शन होने से सब कष्ट दूर होता है।

६-वलते समय बाई तरफ गधे के मिलने से मनोवान्छित कार्य सिद्ध होता है।

७-चलते समय दाहिनी तरफ नाहर के मिलने से उत्तम ऋद्भि सिद्धि होती है।

८—वळते समय सम्पूर्ण नखायुषो का बाई तरफ मिळना तथा वुसते समय दाहिनी तरफ मिळना मङ्गळकारी होता है ।

९—चळते समय गर्थे का नाई तरफ मिलना तथा धुसते समय दाहिनी तरफ मिलना उत्तम होता है।

१०-पीछे तथा सामने जब गधा बोलता हो उस समय गमन करना चाहिये।

' ११—चळते समय यदि गधा मैथुन सेवन करता हुआ मिले तो धन का लाम तथा कार्य की सिद्धि जानी जाती है।

१२ चळते समय यदि गघा बाई तरफ शिक्ष को हिलाता हुआ दीसे तो कुश्ल का सचक होता है।

१३-यदि घुआ (तोता) नाई तरफ बोले तो मय, दाहिनी तरफ बोले तो महार लाम,सूसी हुई लक्ट कोले तो सय तथा सन्मुल बोले तो बन्धन होता है।

१-उत्तम कि झना चाहिये॥

१४-यदि मैना सामने बोले तो कलह, दाहिनी तरफ बोले तो लाम और सुल, बाई तरफ बोलें तो अशुम तथा पीठ पीके बोले तो मित्रसमागम होता है।

१५-आम को चलते समय यदि वगुला वार्ये पैर को ऊँचा (कपर को) उठाये हुए तथा दाहिने पैर के सहारे बड़ा हुआ दील पड़े तो छक्ष्मी का लाम होता है।

१६—यदि प्रसन्न हुआं बगुला नोलता हुआ दीले, अथवा ऊँचा (ऊपर को) उड़ता हुआ दीले तो कन्या और द्रव्य का लाम तथा सन्तोष होता है और यदि वह भयभीत होकर उड़ता हुआ दीले तो भय उत्पन्न होता है।

१७-शाम को जाते समय यदि बहुत से चकवे मिळे हुए बैठे दीखें तो बड़ा छाम और सन्तोष होता है तथा यदि मयभीत हो कर उड़ते हुए दीखें तो मय उत्पन्न होता है।

१८—यदि सारस बाई-तरफ दीले तो महासुल, कांग और सन्तोष होता है, यदि एक एक बैठा हुआ दीले तो मित्रसमागम होता है, यदि सामने बोळता हुआ दीले तो राजा की क्रपा होती है तथा यदि जोड़े के सहित बोळता हुआ दीले तो स्नी का काम होता है परन्तु दाहिनी तरफ सारस का मिळना निषिद्ध होता है।

१९-- आम को जाते समय यदि टिहिमी (टिंटोड़ी) सामने वोले तो कार्य की सिद्धि होती है तथा यदि बाई तरफ बोले तो निक्रष्ट फल होता है।

२७—जाते समय यदि जळकुकुटी (जलमुर्गावी) जल में बोलती हो तो उत्तम फल होता है तथा यदि जल के बाहर बोलती हो तो निकृष्ट फल होता है।

२१.—प्राम को चलते समय यदि मोर एक शर्टेद बोले तो लाम, दो बार बोले तो स्त्री का लाम, तीन वार बोले तो द्रन्य का लाम, चार बारे बोले तो राजा की कृपा तथा पॉच बार बोले तो कल्याण होता है, यदि नाचता हुआ मोर दीखे तो उत्साह उत्पन्न होता है तथा यह मंगलकारी और अधिक लायदायक होता है।

२२-गमन के समय यदि समली आहार के संहित क्रक्ष के ऊपर वैठी हुई दीखे तो बड़ा लाम होता है, यदि आहार के बिना बैठी हो तो गमन निष्फल होता है, यदि आई तरफ बोलती हो तो उत्तम फल होता है तथा यदि दाहिनी तरफ बोलती हो तो उत्तम फल नहीं होता है।

२३-आम को चळते समय यदि घुम्बू वाई तरफ बोळता हो तो उत्तम फळ होता है, यदि दाहिनी तरफ बोळता हो तो अय उत्पन्न होता है, यदि पीठ पीछे बोळता हो तो वैरी वश में होता है, यदि सामने बोळता हो तो मय उत्पन्न होता है, यदि अधिक शब्द

१-बुरा अर्थात् अशुभ फल का सूचक ।

२-'एक शब्द,' अर्थात् एक वार ।

करता हो तो अधिक वैरी उत्पन्न होते है, यदि घर के ऊपर बोले तो स्नी की मृत्यु होती है अथवा अन्य किसी गृहजन की मृत्यु होती है तथा यदि तीन दिन तक बोलता है तो चोरी का सूचक होता है।

२ श-चलते समय कबूतर का दाहिनी तरफ होना लामकारी होता है, बाई तरफ होने से माई और परिजन को कष्ट उत्पन्न होता है तथा पीछे चुगता हुआ होने से उत्तम फल होता है।

२५-यदि मुर्गा खिरता के साथ बाई तरफ शब्द करता हो तो छाम और सुख होता है तथा यदि सब से आन्त हो कर बाई तरफ बोळता हो तो सब और क्केश उत्पन्न होता है।

२६—यदि नीलकण्ठ पक्षी सामने वा दाहिनी तरफ क्षीर वृक्ष के ऊपर वैठा हुना बोले तो खुल और लाम होता है, यदि वह दाहिनी तरफ हो कर तोरण पर नावे तो अत्यन्त लाम और कार्य की सिद्धि होती है, यदि वह वाई तरफ और खिर विच से बोलता हुआ दीले तो उत्तम फल होता है तथा यदि चुप बैठा हुना दीले तो उत्तम फल नहीं होता है।

२७—नीलकण्ठ और नीलिया पक्षी का दर्शन भी शुमकारी होता है, क्योंकि चलते समय इन का दर्शन होने से सर्व सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

२८-ग्राम को चलते समय अथना किसी शुम कार्य के करते समय यदि मौरा नाई तरफ फूल पर नैठा हुआ दीखे तो हर्ष और कल्याण का करने नाला होता है, यदि सामने फूल के रूपर नैठा हुआ दीखे तो भी शुमकारक होता है तथा यदि लड़ते हुए दो मौरे शरीर पर आ गिरें तो अशुम होता है, इस लिये ऐसी दशा में नलों के सहित खान करना चाहिये और काले पदार्थ का दान करना चाहिये, ऐसा करने से सर्व दोष निश्च हो जाता है।

२९—ग्राम को चलते समय यदि मकड़ी बाई तरफ से दाहिनी तरफ को उतरे तो खस दिन नहीं चलना चाहिये, यदि बाई तरफ जाल को डालती हुई दील पड़े तो कार्य की सिद्धि; लाम और कुशल होता है, यदि दाहिनी तरफ से बाई तरफ को उतरे तो भी शुम होता है, यदि पैर की तरफ से ऊपर जाँघ पर चढ़े तो घोड़े की माप्ति होती है, यदि कण्ठ तफ चड़े तो वक्ष और आम्रण की माप्ति होती है, यदि मस्तक पर्यन्त चढ़े तो राजमान प्राप्त होता है तथा यदि शरीर पर चढ़े तो वक्ष की माप्ति होती है, मकड़ी तो राजमान प्राप्त होता है तथा यदि शरीर पर चढ़े तो वक्ष की माप्ति होती है, मकड़ी का उपर को चढ़ना शुमकारी और नीचे को उतरना अशुमकारी होता है।

३०-आम को चलते समय कानखजूरे का बाई तरफ को उतरना शुभ होता है तथा दाहिनी तरफ को उतरना एवं मस्तफ और शरीर पर चढ़ना बुरा होता है। ३१—ग्राम को चलते समय यदि हाथी दाहिने दाँत के ऊपर सूँड को रक्ले हुए अथना सूँड को उछालता हुआ सामने भाता दील पड़े तो सुल; लाम और सन्तोष होता है तथा नाई तरफ ना अन्य किसी तरफ सूँड को किये हुए दीले तो सामान्य फल होता है, इस के अतिरिक्त हाथी का सामने मिलना अच्छा होता है।

३२-यदि घोड़ा अगले दाहिने पैर से प्रियवी को खोदता हुआ ना दाँत से दाहिने अंग को ख़ुजलाता हुआ दीले तो सर्व कार्यों की सिद्धि होती है, यदि नार्ये पैर को पसारे हुए दील पड़े तो क्केश होता है तथा यदि सामने मिल जावे तो ग्रुमकारी होता है।

३३—ऊंट का बाई तरफ बोलना अच्छा होता है, दाहिनी तरफ बोलना क्रेश्वकारी होता है, यदि सॉड़नी सामने मिले तो शुम होती है।

३४—यदि चलते समय बैल वॉर्ये सीग से वा वॉर्ये पैर से घरती को खोदता हुआ दीख पड़े तो अच्छा होता है अर्थात् इस से ग्रुख और लाम होता है, यदि दाहिने अंग से पृथिवी को खोदता हुआ दीख पड़े तो तुरा होता है, यदि बैल और मैंसा इकड़े खड़े हुए दीख पड़ें तो अशुम होता है, ऐसी दशा में प्राम को नहीं जाना चाहिये, यदि जावेगा तो प्राणों का सन्देह होगा, यदि डकराता (दह्कता) हुआ सॉड़ सामने दीख पड़े तो अच्छा होता है।

३५—यदि गाय बाई तरफ शब्द करती हुई अथवा बछड़े को दूघ पिछाती हुई दीस पड़े तो लाम; मुख और सन्तोष होता है तथा यदि पिछली रात को गाय बोले तो क्लेश उत्पन्न होता है।

३६—यदि गथा बाई तरफ को जाने तो सुख और सन्तोष होता है, पीछे की तरफ वा दाहिनी तरफ को जाने तो क्केश होता है, यदि दो गथे परस्पर में कन्धे को खुजलानें, वा दाँतों को दिखानें, वा इन्द्रिय को तेज करें, वा बाई तरफ को जानें तो बहुत लाम और असे होता है, यदि गथा शिर को धुने वा राख में लोटे अथवा परस्पर में लखता हुँ की दीख में ते के खुन कोर के शकारी होता है तथा यदि चलते समय गथा बाई तरफ बोले और सुसतें समय दाहिनी तरफ बोले तो शुमकारी होता है।

्री विज्ञाम को चलते सुमन्न वन्दर का दाहिनी तरफ मिलना अच्छा होता है तथा मध्याह के पश्चात वाह-तरफ मिलना अच्छा होता है।

३८—यंदि कुत्ता दाहिंनी कोख को चाटता हुआ दीख पड़े अथवा मुख में किसी मध्य पदार्थ को लिये हुए सामने मिले तो मुख; कार्य की सिद्धि और बहुत लाम होता है, फले और फूले हुए दुख के नीचे वाड़ी में; नीली क्यारियों में; नीले तिनकों पर; द्वार की ईट पर तथा धान्य की राशि पर यदि कुत्ता पेशाव करता हुआ दीख पड़े तो वड़ा लाम और मुख होता है, यदि वाई तरफ को उतरे वा जाँव; पेट और इदय को क्तहिने पिछले

पैर से चाटता हुआ अथवा खुजलाता हुआ दील पड़े तो बड़ा लाम होता है, यदि स् पर; ऊलली की दाहिनी तरफ; इमशान में; वा पत्यर पर मृतता हुआ दील पड़े तो बड़ा कह उत्पन्न होता है, ऐसे शकुन को देल कर ग्राम को नहीं जाना चाहिये, ग्राम को चलते समय यदि कुत्ता ऊँचा बैठा हुआ कान मस्तक और इदय को खुजलाता हुआ वा चाटता हुआ दील पड़े अथवा दो कुत्ते लेलते हुए दील पड़ें तो कार्य की सिद्धि होती है तथा यदि कुत्ता मूमि पर लोटता हुआ वा सामी से लाड़ किया जाता हुआ साट पर बैठा दीले तो तो बड़ा क्रेश उत्पन्न होता है।

३९—यदि ग्राम को जाते समय मुख में मध्य पदार्थ को लिये हुए विछी सामने दी पड़े तो लाम और कुशल होता है, यदि दो विछियाँ लड़ती हो वा धुर २ शब्द कर रह हों तो अग्रुम होता है तथा यदि विछी मार्ग को काट जावे तो ग्राम को नहीं जाना चाहिये

४०-माम को जाते समय छ्यूँदर का बाई तरफ होना उत्तम होता है तथा दाहिन तरफ होना दुरा होता है।

४१—प्राम को जाते समय यदि पातःकाल हरिण दाहिनी तरफ जाने तो अच्छा हो है परन्तु यदि हरिण सींग को ठोंके, शिर को हिलाने, मूत्र करे, मल करे वा छींके त दाहिनी तरफ भी अच्छा नहीं होता है।

8२—आम को जाते समय शृगाल का बाई तरफ बोलना तथा घुसते समय दाहि तरफ बोलना उत्तम होता है।

यह पञ्चम अध्याय का शकुनाविवयर्णन नामक ग्यारहवाँ प्रकरण समाप्त.हुआ ।

इति श्री जैनक्षेताम्बर—धर्मोपदेशक—यतिप्राणाचार्य-विवेकरूविषशिष्य-शीळसौमाग्यनिर्भितः जैनसम्प्रदायशिक्षायाः।

पञ्चमोऽध्यायः ॥

